

ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला [ संस्कृत ग्रन्थाङ्क-२४ ]

श्रीमदरविपेणाचार्यप्रणीतम्

# पद्मपुराणम्

[ पद्मचरितम् ]

द्वितीयो भागः

हिन्दीभाषानुवादसहितः



—सम्पादक—

पण्डित पन्नालाल जैन साहित्याचार्य

भारतीय ज्ञानपीठ, काशी

प्रथम आवृत्ति  
१९०० प्रति

माघ, वार नि० २४८५  
वि० सं० २०१५  
परवरा १९५६

{ मूल्य  
दस रुपये

स्व० पुण्यश्लोका माता मूर्तिदेवीकी पवित्र स्मृतिमें तत्सुपुत्र साहू शान्तिप्रसादजी द्वारा

संस्थापित

भारतीय ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी जैन-ग्रन्थमाला

संस्कृत ग्रन्थाङ्क २४

इस ग्रन्थमालामें प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, हिन्दी, कन्नड, तामिल आदि प्राचीन भाषाओंमें उपलब्ध  
भागमिक, दार्शनिक, पौराणिक, साहित्यिक और ऐतिहासिक आदि विविध विषयक जैन  
साहित्यका अनुसन्धानपूर्ण सम्पादन और उसका मूल और यथासम्भव  
अनुवाद आदिके साथ प्रकाशन होगा। जैन भण्डारोंका सूचियों,  
शिलालेख संग्रह, विशिष्ट विद्वानोंके अध्ययन ग्रन्थ और  
लोकहितकारी जैन साहित्य ग्रन्थ भी इसी  
ग्रन्थमालामें प्रकाशित होंगे।

ग्रन्थमाला सम्पादक  
डॉ. हीरालाल जैन,  
एम० ए०, डी० लिट्०  
डॉ. आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये,  
एम० ए०, डी० लिट्०



प्रकाशक  
अयोध्याप्रसाद गोयलीय  
मन्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ  
दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी

मुद्रक—वाचूलाल जैन फागुल्ल, सन्मति मुद्रणालय, दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी

स्थापनान्द  
फाल्गुन कृष्ण ६  
वार नि० २४७०

सर्वाधिकार सुरक्षित

विक्रम सं० २०००  
१८ फरवरी सन् १९४४



स्वर्गाय मूर्तिदेवी, मानेन्द्रगी माह शान्तिमन्द चित

JĀNĀPĪTHA MURTIDEVĪ JAINA GRANTHAMĀLĀ  
SANSKRIT GRANTHA No 24

# PADAMA PURĀṆA

[VOL.II]

of

RAVISENACĀRYA

WITH

HINDI TRANSLATION



EDITOR

Pandit. PANNALAL JAN SAATYĀCHARYA

Published by

BHĀRATĪYA JĀNĀPĪTHA KĀSHĪ

First Edition }  
1100 Copies }

MAGHA VIRA SAMVAT 2185  
V S, 2015  
FEBRUARY 1959

{ Price  
{ Rs 10/-



# विषयानुक्रमणिका

## छन्द्रीसवाँ पर्व

विषय

१४

राजा जनककी रानी विदेहाके गर्भमें स्थित होता और भामण्डलके पूर्वभरोसा वर्णन । सीता चित्तोत्सना थी और भामण्डल कुण्डलमण्डित । कुण्डलमण्डितने चित्तोत्सनाका हरण किया था जिससे उसका पति विह्वल बहुत दुखी होता हुआ मरकर महाबाल नामका अमुर हुआ । पूर्व वैरके कारण वह कुण्डलमण्डितको नष्ट करनेके प्रयत्नमें तत्पर रहने लगा । रानी विदेहाके गर्भसे एक साथ पुत्र और पुत्रीका जन्म हुआ । महाबाल अमुर अधिष्ठानमें पुत्रको अपनी स्त्रीका हरण करनेवाला—कुण्डलमण्डित जानकर रोपसे उत्रल पड़ा और उत्पन्न होते ही उसने उसका अपहरण कर पश्चात् दयासे द्रवीभूत हो उसे आनाशसे नाचे गिरा दिया । साथही उसे दिव्य कुण्डलोसे अलङ्कृत भी कर दिया ।

१-१०

चन्द्रगति विद्याधरने आकाशसे पड़ते हुए पुत्रको भेला और अपनी अपुत्रपती पुष्पती रानीको सौंप दिया । पुत्र जन्मका उत्सव मनाया गया और पुत्रका भामण्डल नाम रक्खा गया ।

११-१२

पुत्रापहरणके कारण राजा जनककी रानी विदेहाका वरुण विष्णु और राजा जनकके द्वारा सान्त्वनाका वर्णन ।

१३-१४

सीता पुत्रीका बाल्यकाल तथा सीन्दर्यका वर्णन ।

१४

## सत्ताईसवाँ पर्व

श्लेच्छ राजाओंके द्वारा राजा जनकके देशमें उपद्रव होना । सहायताके लिए राजा जनकका दशरथको बुलाना । दशरथका तत्काल वहाँ जाना और श्लेच्छोंको परास्त करना । दशरथके इस अभूतपूर्व सहयोगसे प्रसन्न होकर राजा जनकका, दशरथके पुत्र रामके लिए अपनी पुत्री सीताके देनका निश्चय करना ।

१५-२२

## अट्ठाईसवाँ पर्व

नारद सीताके महलमें पहुँचे । सीता उस समय दर्पणमें मुग्ध देख रही थी । नारदकी प्रतिफलित दर्पणमें देख सीता भयभीत हो उठी । नारद और अन्तःपुरकी स्त्रियोंके बीच होइल्ला मुन द्वारापालोंने उसे रोकना चाहा । पर नारद जिस किसी तरह बचकर आनाशमार्गमें उड़ बैनास परत पर गये । वहाँ सीतासे बटला लेनेका विचार कर उसका चित्रपट बनाते हैं और उसे ले जाकर विजयार्थ पर्वत पर स्थित रथनूपुर नगरके राजाके उद्यानमें छोड़ दिव्ये हैं । चित्रपटको देखकर भामण्डल उसपर मोहित हो उठता है । नारदने चित्रपटका परिचय दिया जिससे भामण्डलका व्यामोह बढ़ता गया ।

२३-३०

राजा चन्द्रगतिकी संमतिसे चरलदेग नामका विष्णुधर अश्वना रूप रख मिथिलासे राजा जनकको हरकर रथनूपुर नगर ले गया । राजा जनक वहाँका वैभव देखकर प्रसन्न हुआ । विष्णुधरोंने राजा जनकके सामने भामण्डलके लिए सीता देनेका प्रस्ताव किया परन्तु राजा जनकने हठतासे साथ उत्तर दिया कि मैं दशरथके पुत्र रामके लिए पहलेसे देना निश्चित कर चुका हूँ । विष्णुधरों द्वारा मृगिणीचरिणीका निन्द्य मुन राजा जनकने करार उत्तर दिया । अन्तमें 'यदि राम दत्तावर्त धनुष चढ़ा देगे तो सीता ले सङ्गे भन्वया भामण्डल लेगा' इस शर्त

परजनक मिथिलामें चापिस आये। मिथिलामें स्वयंवर हुआ और रामने धनुष चढाकर सीताकी रत्नमाला प्राप्त की। लक्ष्मणने भी दूसरा धनुष चढाकर अठारह कन्याएँ प्राप्त कीं। भरतका राजा जनकके भाई जनककी पुत्री लोचनमुन्दरीके साथ विवाह हुआ।

३०-४४

### उनतीसवाँ पर्व

आषाढी अष्टाहिकामें राजा दशरथने भगवान्‌का अभिषेक कर गन्धोदक, सब रानियोंके पास भेजा। सुप्रभा रानीके पास एक वृद्ध कञ्चुकी ले गया इसलिए वह देरसे पहुँचा। अन्य रानियोंके पास तरुण दासियाँ ले गई थीं इसलिए जल्दी पहुँच गया। सुप्रभाने इसे अपना अपमान समझ प्राणघात करनेके लिए धिप मँगाया।

४५-४७

कञ्चुकी धिप लेकर सुप्रभाके पास पहुँचा ही था कि उसी समय राजा दशरथ उसके पास पहुँच गये। राजा तथा अन्य रानियाँ जब तक उसे समझाती हैं तब तक वृद्ध कञ्चुकी गन्धोदक लेकर आ पहुँचा।

४७-४८

प्रसन्न होकर सुप्रभाने गन्धोदक शिर पर धारण किया। राजा दशरथने कञ्चुकीसे विलम्ब का कारण पूछा तो उसने अपनी वृद्ध अवस्थाको ही उसका कारण बतलाया। उसकी अर्जर अग्रस्था देख राजाको वैराग्य उत्पन्न हो आया। उसी समय अयोध्याके महेंद्रोदय उद्यानमें सर्वभूतहित नामक मुनिराजका आगमन हुआ।

४८-५३

### तीसवाँ पर्व

विद्याधरोने यथार्थ बात भामण्डलसे छिपा रखी थी इसलिए वह सीताके मिलनेमें विलम्ब देख विह्वल हो उठा। निदान, एक दिन लज्जा छोड़ उसने पितृके समक्ष ही अपने मित्र वसन्त ध्वजको उपालम्भ दिया। तब विद्याधरोने सब बात स्पष्ट कर दी। भामण्डल उत्तेजित हो उठा और सीताहरणकी भावनासे सेना लेकर अयोध्याकी ओर चला। विदग्ध नामक देशके मनोहर नगर पर जब उसकी दृष्टि पड़ी तब उसे पूर्वभयका स्मरण हो आया जिससे मूर्च्छित हो गया। सचेत होनेपर अपने कुविचारोंने प्रति उसे गहुत घृणा हुई। उसने चन्द्रयान विद्याधरको बताया कि मैं पूर्वभयमें यहाँका राजा बुण्डलमण्डित था। धर्मके प्रभावसे राजा जनकका पुत्र हुआ। उत्पन्न होते ही मेरा हरण हुआ। और आपने यहाँ पलकर मैं पुष्ट हुआ। जिस सीताके व्यामोहसे मैं उन्मत्त हो रहा था वह तो मेरी सगी बहिन है। अन्तमें भामण्डल सब लोगोंके साथ अयोध्याके महेंद्रोदय उद्यानमें स्थित सर्वभूतहित मुनिराजके पास जाता है। चन्द्रयान विद्याधर टीका लेनेका भार प्रकट करता है। भामण्डलका निरदगान होता है जिसे मुनकर सीता जागती है। सर्वभूतहित मुनिके पास सन्तान मिलन होता है। सीता अपने भाईसे मिलती है। दशरथ राजा जनकको स्मरण देते हैं। राजा जनक सन्निवार आकर अपने जन्मदृष्ट पुत्रसे मिलकर परम आनन्दका अनुभव करते हैं। राजा जनक अपना राज्य अपने भाई जनकको सौंपकर भामण्डलके साथ विजयाधर चले जाते हैं।

५४-६६

### इकतीसवाँ पर्व

सर्वभूतहित मुनिराजके द्वारा दशरथके पूर्व भयाना वर्णन।

६५-७२

पूर्वभयाना वर्णन सुन राजा दशरथका निरक्त हृदय और भी अधिः निरक्त हो जाता है। वे मन्त्रियोंके समक्ष अपना अक्षय्य निधय प्रकट कर रामके राज्याभिषेककी घोषणा करते हैं। रामय पाकर भरवारी माँ देखा, अपना पूर्वसोहन घर मँगकर भरतके लिए राज्य मँगती है। राजा दशरथ असमञ्जसमें पड़ जाते हैं। रामके समक्ष वे अपनी इस दुःखस्थाना प्रकट

करते हैं। राम दृष्टांके साथ कहते हैं कि श्राव भरतको राज्प देकर श्राने सत्यवचनकी रक्षा कीजिये मेरी चिन्ता छोडिये। इसी नीच भरत संगारने निरक्त हो दीक्षाके लिए महलमे नीचे उतरता है तब राजा दशरथ और राम उभे त्रिम त्रिमी तरह समभा बुभुङ्कर रोसने है। भरतका राज्याभिषेक होता है।

७३-७८

पिताके पामसे उडकर गम श्रानी माता श्रगयजिता (कौशल्या) के पाम जाने हैं और उभे समभङ्कर तथा सान्धना देकर बनसो जानेके लिए उग्रत होने हैं। सीता और लक्ष्मण उनसे साथ हो जाते हैं। राम लक्ष्मणके साथ प्रजाके श्रनेर लोग ये। गुरांस्ता सम श्राया और राम लक्ष्मण तथा सीता तीनी ही नगरके बाहर श्री त्रिमन्दिरमें टहर गये। दशरथकी श्रय रािनयोने उनके पास जानर प्रार्थना को नि आर राम लक्ष्मणको लौटाकर शंभ्नागारमें डूबने हुए इम कुलकी रक्षा करो परन्तु दशरथके निरक्त हृदयने अर इम प्रयत्नमें पडना उचित नहीं समझा।

७९-८५

### वत्सीसर्वा पर्व

राम लक्ष्मण, सीताको साथ ले मध्यरात्रिके समय जब कि सय लोग गहामण्डपमें सो रहे थे मन्दिरके पश्चिम द्वारसे निरलकर दक्षिण दिशाकी श्रोर चल पडे। प्रातः जागनेर त्रिनने ही खोग उनने पीडिे दीडे तथा कुछ दूर तक साथ गये। श्रन्तमें परियाजा नामर बनके नीचमें पडनेवाली भर्गकर नदीको राम लक्ष्मण तैकर पार कर गये परन्तु सामन्त एव श्रन्य प्रजाजन उसे पार नहीं कर सके। पलम्बरूप त्रितने ही घर लौट गये और त्रितने ही टीक्षित हो गये। तदनन्तर राजा दशरथने सर्वभूतहित मुनिराजने पास दोक्षा धारण कर ली। कौशल्या और मुमिता पति एव पुत्रने त्रिना त्रुहूत दुःखी हुई। भरतकी माता केरथा इन दोनोंकी दुःखपूर्ण अवस्था देख भरतसे कहती है कि तू राम लक्ष्मणको लौटानेके लिए जा। मैं भी पीडेमे श्राती हूँ। तदनन्तर सयन वनमें एक सरोवरके तीरपर भरतने राम लक्ष्मणको देखा। सयना मित्रान हुआ। केकग और भरतने वापिस चलनेका बहुत आग्रह किया परन्तु सय व्यर्थ सिद्ध हुआ। राम वापिस नहीं लौटे। भरत निराश हो वापिस लौट श्राया और राज्यका पालन करने लगा। उसने द्युतिभद्राकके समक्ष प्रतिष्ठा ली कि मैं राम के दर्शनमात्रमे मुनिदीक्षा ले लूंगा। द्युतिभद्राकने सयको धर्मना यथार्थ उपदेश दिया। ८६-१००

### तैत्तीसर्वा पर्व

क्रम-क्रममे राम लक्ष्मण चित्रकूट वनको पारकर अरन्ति देशमें पहुँचे। वहाँ एक ऊजड देशको देख तत्रागत दीनहीन मनुष्यसे उसका कारण पूछा। उसने इसी प्रकारमें दशरथपुरके राजा वज्रकर्णका वृत्तान्त सुनाया। तदनन्तर सिहोदरकी उद्दण्डताका वर्णन सुनाया। सिहोदर और वज्रकर्णके पारस्परिक सयर्षका निरूपण किया और यह बताया कि सिहोदरने कुपित होकर इस हरे भरे देशकी ऊजड किग है। १०१-११३

राम लक्ष्मण आहार प्राप्त करनेकी इच्छासे आगे बढ़ते हैं। लक्ष्मणके सौन्दर्यसे आकृष्ट हो राजा वज्रकर्ण उसे उत्तमोत्तम भोज्यवार्थ देता है। लक्ष्मण उन सयको लेकर रामके पास आता है। वज्रकर्णके इस आतिथ्य सत्कारका रामके हृदयमें भारी प्रभाव पडता है और वे लक्ष्मणकी वज्रकर्णका रक्षाके लिए भेजने हैं। लक्ष्मण भरतका सयन बनकर सिहोदरकी अकल टिगने लगाता है और उसे पराम्पनर वज्रकर्णकी रक्षा करता है। श्रन्तने वज्रकर्ण और सिहोदरकी गिनता कथकर राम लक्ष्मण आगे बढ़ते हैं। ११५-१२५

११५-१२५



## चौतीसवाँ पर्व

राम वनमें विराजमान हैं और लक्ष्मण पानी लेनेके लिए एक सरोवरके किनारे जाते हैं। वहाँ हाथी पर चढा एक युवराज अपने सेवकोंके द्वारा लक्ष्मणको बुलाकर उसके प्रति प्रेम प्रकट करता है। लक्ष्मणके यह कहने पर कि प्रथम मुझे अपने भाईके पास भोजन सामग्री भेजना है। यह सुन उस युवराजने अपने पास उत्तमोत्तम भोजन सामग्री बुलाकर प्रधान द्वारपाल द्वारा राम और सीताको अपने मण्डपमें बुलाया। लक्ष्मण वहाँ विद्यमान था ही सीता और राम भी वहाँ पहुँच गये। सबका आनिध्य सत्कार करनेके बाद युवराजने अरना असली रूप प्रकट किया। वह कन्या होने पर भी अतक कुमारके वेपमें रह रहा था। पृच्छने पर उसने इसकी आद्यन्तकथा कह सुनाई। मेरा पिता बालिलिल्य मेरे जन्मके पूर्वसे ही श्लेच्छ राजाके यहाँ कैद है। उनके अभावमें मैं कुमारका वेप रख राज्यका पालन कर रही हूँ मेरा नाम कल्याणमाला है। राम लक्ष्मण सीताने उसे सान्त्वना दी। तदनन्तर आगे चलकर उन्होंने श्लेच्छ राजाको आज्ञाकारी बनाकर बालिलिल्यको बन्धन मुक्त कराया।

१२५-१३२

## पैंतीसवाँ पर्व

वन विहार करते करते सीता थक जानी है। प्याससे उसका मुख सूख जाता है। जिस किसी तरह सान्त्वना देकर राम-लक्ष्मण उसे समीपवर्ती गाँवमें ले जाते हैं और सब क्रमप्राप्त कविल ब्राह्मणी यज्ञशालामें ठहर जाते हैं। ब्राह्मणीके द्वारा दिया ठण्डा पानी पीकर सीताका हृदय शान्त हो जाता है परन्तु उसी समय लक्ष्मणका भार शिर पर रखे हुए कविल ब्राह्मण आता है और इन्हें अपनी यज्ञशालामें ठहरा देख ब्राह्मणीके प्रति रोपसे उबल उठता है। वह सबका तिरस्कार कर उन्हें घरसे निकलनेके लिए बाध करता है। उत्तेजित लक्ष्मणको शान्त कर राम और सीता वनमें एक वट वृक्षके नीचे पहुँच कर विश्राम करते हैं। आकाशमें घनघटा उमड़ आती है। जोरदार वर्षा होने लगती है तथा राम लक्ष्मण सीता असहायनी तरह पानीसे भीगने लगते हैं। यज्ञपति अपने अग्रधिष्ठानसे उन्हें बलभद्र और नारायण जानकर नगरीकी रचना करता है और उसमें सबको ठहराता है। अचानक कविल ब्राह्मण उस नगरीके पास जाकर जैन धर्म धारण करता है और रामकी दान-वीरतासे प्रलुब्ध चित्त हो ब्राह्मणीसे साथ उनके दरबारमें जाता है। वहाँ लक्ष्मणको देख भयसे भागनेका प्रयत्न करता है पर सान्त्वना मिलने पर धीरजसे बैठकर रामका स्तन करना है। राम उसे अग्रिमित धनधान्य-सम्पदासे परिपूर्ण करते हैं। अरकारके बदले उपकारका अनुभव कर ब्राह्मण लज्जासे नतमस्तक हो गया। अन्तमें ब्राह्मणने गृहस्थीका भार स्त्रीके लिए सौंप जिन-दीक्षा धारण कर ली।

१३३-१४६

## छत्तीसवाँ पर्व

वर्षाकाल शीतने पर जब राम उस यज्ञ निर्मित रामपुरीसे चन्दने लगे तब यज्ञराजने उनसे क्षमा माँगी। महावनको पारकर राम, वैजयन्तपुरके समीपवर्ती मैदानमें पहुँचे। रात्रिके समय एक वृक्षके नीचे ठहर गये। वैजयन्तपुरके राजा पृथिवीधर और रानी इन्द्राणीकी वनमाला नामक पुत्री प्रारम्भसे लक्ष्मणको चाहती थी पर उनसे वन भ्रमणका समाचार सुन राजा पृथिवीधर उसका अन्य कुमारके साथ विनाह करनेके लिए उद्यत हुआ। यह देख, वनमाला आत्म पातकी भावना लेकर रात्रिके समय अपनी सखियाके साथ वनदेवीकी पूजाका यज्ञाका यज्ञा कर वनमें गई और सायने सब लोगोके सो जाने पर वह उत्तरीय वस्त्रकी पर्तनी बना मरनेके लिए तैयार हुई। लक्ष्मणने द्विपे द्विपे उसके पास पहुँच कर उसकी प्राण-रक्षा की।

अपने आपको प्रकट किया। रामके पास सब लोग पहुँचे। राजा पृथिवीधर रानी इन्द्राणीने साथ सज धजकर उनके पास गये। आमोद प्रमोदसे लक्ष्मणका वनमालाके साथ विवाह हुआ।

१४७-१५४

### सैतीसवाँ पर्वा

राजा पृथिवीधरके सभामण्डपमें राम सुलासीन हैं उसी समय राजा अतिरीर्यका दूत एक वन राजा पृथिवीधरको देता है। उसमें लिखा था कि मैं अयोध्याके राजा भरतके प्रति अभियान कर रहा हूँ अतः सहायताके लिए सदल बल शीघ्र पधारो। रामके पूछने पर दूतने भरतके प्रति होनेवाले अभियानका कारण भी बताया। रामका सकेत पाकर राजा पृथिवीधरने दूतका आश्वासन देकर निदा किया। तत्पश्चात् परस्परके विचार विमर्शके बाद, राम लक्ष्मण सीता और पृथिवीधरके पुत्रोंके साथ अतिरीर्यको राजधानीकी ओर चले। वहाँ पहुँचकर उन्होंने उड़ी गम्भीरताके साथ कर्तव्य मार्गका निर्णय कर, राम-लक्ष्मण सीताको आर्यिमात्रोंके पास छोड़ नर्तकियोंके वेपमें अतिरीर्यके दरबारमें गये। वहाँ उन्होंने अपने अनुपम सगौरा और कलापूर्ण नृत्यासे उसे मन्त्र मुग्धकी तरह बशीमूत कर लिया। रङ्ग जमा हुआ देव नर्तकीने डॉर दिखाते हुए कहा कि वृ भरतके प्रति जो अभियान कर रहा है यह तेरी मृत्युका कारण है अतः यदि नीहित रहना चाहता है तो भरतको प्रणाम कर। इस प्रकार अपनी तर्जना और भरतकी प्रशंसा सुन क्रुद्ध हो अतिरीर्यने नर्तकियोंको मारनेके लिए जो तलवार ऊपर उठाई थी लक्ष्मणने उसे लपक कर छीन लिया और उससे ही सब राजाओंको भयभात कर अतिरीर्यको जीवित पकड़ लिया। नर्तकियोंको यह विचित्र शक्ति देख आगत राजा महाराजा पलायमान हो गये। राम लक्ष्मणने बन्धनरुद्ध अतिरीर्यको ले जाकर सीताके सामने रख दिया। उसकी दुःखपूर्ण अरस्था देख सीता दयासे द्रवीभूत हा गई। फलस्वरूप उसने उसे छुडवा दिया। अतिरीर्यने सब मान छोड़ कर जिनदीक्षा धारण कर ली। राम लक्ष्मण रात्रिमेषकी तरह अत्यन्त रूपसे भरतकी रक्षा कर आगे बढ़ गये।

१५५-१६६

### अष्टतीसवाँ पर्वा

रामने अतिरीर्यके पुत्र विजयधरा राज्याभिषेक किया। अतिरीर्यके मुनि होनेका समाचार सुन भरत उनके दर्शन करनेके लिए गया। दर्शन कर ज्ञाना मोगी, मुनिराजकी स्तुति की। भरतको नर्तकियोंका पता नहीं था अतः वह आश्चर्यसागरम निमग्न था। वनमालाको आश्वासन दे राम-लक्ष्मण आगे बढ़े। क्षेमावलिपुर नगरके गहर सध ठहरे। भोजनापरान्त लक्ष्मण, रामकी आज्ञासे नगरमें प्रविष्ट हुए और वहाँके राजा शत्रुघ्नमकी शक्तिके फेले कर उसकी पुत्री जिनपद्माको अपने पर आसक्त किया। जिनपद्माका पिता राजा शत्रुघ्नमन सेनाके साथ राम और सीताके पास गया। राम सेनाको आती देख पहले ती आश्चर्यम पड़े परन्तु बादमें यथार्थ बातका पता चलने पर निश्चिन्त हुए। लक्ष्मणका जिनपद्माके साथ विवाह हुआ।

१६७-१७७

### उनतालीसवाँ पर्वा

राम लक्ष्मण तथा सीताका यशस्थवृत्ति नगरमें जाना, भागते नगरवासियोंके द्वारा पर्वतसे आते हुए भयङ्कर शब्दकी सूचना तथा रामके द्वारा उसका अनुसरण। देशभूषण तथा कुलभूषण नामक मुनियोंके दर्शन करने उनका अग्निप्रम देवके द्वारा किये हुए उपसर्गको दूर करना। तथा मुनियोंको केवलज्ञान उपयुक्त होना। मुनियोंके द्वारा पश्चिमोत्तरीके राजा विजय पर्वत तथा रानी धारिणीके दूत अमृतस्वरके पुत्र उदित तथा मुदितकी कथाका भगन्तर सहित वर्णन, भगन्तर सहित देशभूषण तथा कुलभूषण मुनियोंका वर्णन।

१७८-१८४

## चालीसवाँ पर्व

वशस्थलपुरके राजा मुरप्रम द्वारा चरमशरीरी रामरत्न अभिवादन, रामचन्द्रका दण्डक वन प्रस्थान तथा रामगिरिका वर्णन ।

१६५-१६८

## इकतालीसवाँ पर्व

राम लक्ष्मण तथा सीताका कर्णरवा नदीको प्राप्त कर उसमें अवगाहन तथा सुगुति और गुति नामक दो मुनियोको आहार दान देनेसे पद्माश्र्वर्षकी प्राप्ति । मुनिराजके दर्शनसे गृध्र पक्षीका पूर्वभय ज्ञान उत्पन्न होना तथा मुनिवन्दनाके कारण दिव्य शरीरकी प्राप्ति, मुनि द्वारा गृध्रके पूर्वभयका कथन, मुनिराज द्वारा अपने पूर्वभवका वर्णन कर अपने स्थानको प्रस्थान, राम द्वारा गृध्रका 'जटासु' नाम करण तथा उसका रामके आश्रममें निवास ।

१६९-२१०

## बयालीसवाँ पर्व

पान्न दानके प्रभावसे राम लक्ष्मण रत्न तथा सुवर्णादि सभ्यदासे सभ्यन्न हो गये । तदनन्तर वे मनो रथ रथ पर आरूढ हो दण्डक वनमें स्नेच्छानुसार भ्रमण करने लगे । नामा छन्दोमें दण्डक वनका अद्भुत वर्णन । वनके सौन्दर्यसे प्रसन्न हो राम पहले तो लक्ष्मणसे कहते हैं कि जाओ अपनी माताओंको ले आओ फिर कुछ रुक कर कहते हैं कि नहीं अभी वर्षा ऋतु है अतः यातायातमें कष्ट होगा । शरद ऋतुके सुनहले दिन आने पर मैं स्वयं जाऊँगा ।

२११-२२१

## तैंतालीसवाँ पर्व

शरद ऋतुकी निर्मल चाँदनी आकाशमें छिटकने लगी । एक दिन लक्ष्मण वनमें भ्रमण करते करते दूर निकल गये । उन्हें एक ओरसे अद्भुत गन्ध आई उसी गन्धसे आकृष्ट हो वे उस ओर बढ़ते गये । श्रेणिके पृच्छने पर गौतम स्वामीने राजस वश तथा लज्जका वर्णन किया । एक बाँसके भिड़ेमें शम्भूक सूर्यहास राज्ञ सिद्ध कर दिया था । देवोपनीत राज्ञ आकाशमें लटक रहा था । उसीकी सुगन्धि सर्वत्र फैल रही थी । लक्ष्मणने लज्जकर सूर्यहास राज्ञ हाथमें ले लिया और उसकी तीक्ष्णताकी परख करनेके लिए उसे उन्होंने उसी बाँसके भिड़े पर चला दिया । चलाते ही बाँसोना भिड़ा कट गया और साथ ही उसके भीतर स्थित शम्भूक भी कट कर दो टुक हो गया । शम्भूक, रावणकी बहिन चन्द्रनखाका पुत्र था । वह प्रतिदिन पुत्रको भोजन देनेके लिए आती थी । उस दिन पुत्रके दो टुक देख उसके दुःखका पार नहीं रहा । उसका कषण विलाप आकाशमें गूँजने लगा । कुछ समय बाद राम लक्ष्मणके सौन्दर्यसे उसका मन हरा गया और वह उन्हें प्राप्त करनेके लिए छुलसे कन्या बन गई । राम-लक्ष्मण उसकी मायासे विचलित नहीं हुए ।

२२२-२३१

## चवालीसवाँ पर्व

कामेच्छा पूर्ण न होनेपर चन्द्रनखाको पुत्रशोकने फिर धर दनाया जिससे विलाप करती हुई वह अपने पति खरदूपणके पास गई । खरदूपणने स्वयं आकर पुत्रको मरा देखा । उसका शोक उबल पडा । वह राम लक्ष्मणके साथ युद्ध करनेके लिए उठ पडा हुआ । खरदूपणने रावणको भी इस घटनाकी खबर दी थी । खरदूपणना इधर लक्ष्मणके साथ घमासान युद्ध होता है उधर रावण उसकी सहायताके लिए आता है सो बीचमें सीताको देख मोहित हो उठता है । छुत्से सिंहाद कर रामको लक्ष्मणके पास भेज देता है और सीताको एकाकिनी देख हर ले जाता है । जटासु शक्ति भर प्रयत्न करता है पर सफलता नहीं प्राप्त कर पाता है । रण-भूमिमें रामको देख लक्ष्मण घटित घटनाकी आशकासे दुःखी हो उन्हें तत्काल वापिस भेजते हैं । पर राम वापिस आनेपर सीताको नहीं पाते हैं । उसके बिना कषण विलाप करते हैं । २३२-२४३

## पैतालीसवाँ पर्व

लक्ष्मण रावणदूषणको निःप्राणकर जब रामके पास आते हैं तब उन्हें सीतारहित देख बहुत दुःखी होते हैं। लक्ष्मण अपने उपकारी विराधित विद्याधरका रामको परिचय देते हैं। उसी समय विराधित सेना सहित रामके समीप आ पहुँचता है। रामको बहुत खुश करता है। लक्ष्मण उससे सीता हरणकी बात कहते हैं। विराधितने अपने मन्त्रियोंको सीताका पता लगानेका आदेश दिया। अर्जुनकी पुत्र रत्नजयी सीताका रोदन सुन रावणके पीछे दौड़ा परन्तु रावणने उसकी आकाशगामिनी विद्या छीनकर उसे नीचे गिरा दिया। वह समुद्रके मध्य कम्बु नामक द्वीपमें पड़ा। विद्याधरोंको सीताका पता नहीं लगा। अनन्तर विराधितके कहनेसे राम अचकार पुर ( पाताल लका ) गये। वहाँ सीताकी निरहानलमें कुनसने रहे। २४४-२४१

## द्वितीयसवाँ पर्व

रावण सीताको लेकर लकामें पहुँचा। वहाँ परिचमोत्तर दिशामें स्थित देवारण्य नामक उद्यानमें सीताको ठहराकर उससे प्रेम याचना करने लगा। शीलवती सीताने उसकी समस्त प्रार्थनाएँ ठुकरा दीं। रावणने माया द्वारा सीताको भयभीत करनेका प्रयत्न किया पर वह कर्तव्य पथसे रक्षमान भी विचलित नहीं हुई।

रावणकी निमलम्भजन्य दुर्दशा देख मन्दोदरीने उसे बहुत समझाया पर सब व्यर्थ हुआ। रावण की दुर्दशासे दुखी हो मन्दोदरी सीताको समझानेके लिए गई पर सीताने ऐसी पत्रकार दी कि मन्दोदरीको उत्तर नहीं सूझ पड़ा। प्रातःकाल होने पर रावण पुनः सीताके पास गया पर सीताको अनुकूल नहीं कर सका। मन्त्रियोंद्वारा प्रकृत बातपर गम्भीर विचार विमर्श हुआ और लकाकी रक्षाके उपाय किये गये। २४२-२६८

## सैतालीसवाँ पर्व

विट सुग्रीवके द्वारा उपहृत होनेके कारण किष्किन्धापुरीका स्वामी सुग्रीव दुःखी होकर इधर उधर भ्रमण करता फिरता था। उसी समय वह विराधितकी पाताललकामें आया। विराधितने उसका सम्मान किया। वहाँ रामके साथ उसका परिचय हुआ। मन्त्रियोंने रामसे सुग्रीवकी दुःखद दशाका वर्णन किया जिसे सुनकर रामने उसकी सहायता करना स्वीकृत किया। रामने जाकर वृन्निम सुग्रीव साहसगति विद्याधरको निष्प्राण किया। सुग्रीवकी तेरह कन्याओंने रामकी वरा\*\*\*। २६९-२८०

## अड़तालीसवाँ पर्व

राम सीताके निरहसे सतत है। सीताका पता चलानेमें सुग्रीवको मिलभग युक्त देख लक्ष्मण उसके प्रति कुपित होते हैं। सुग्रीव रामके पास आकर क्षमा मागता है और अपने सेनकोंको सीता का पता लगानेका आदेश देता है। रत्नजयीने पता दिया कि सीताको लकाविपति रावण हर कर ले गया है। रावणका नाम सुन विद्याधरोंके होश टपड़े पड़ जाते हैं। रामके प्रयत्न आग्रह वश बानर यह कहकर सहयोग देनेको तत्पर होते हैं कि रावणकी मृत्यु कोटिशिला उठाने वालेके द्वारा होगी ऐसा अनन्तनीचं मुनिग्रने कहा था सो यदि आप लोग कोटिशिला उठा सकें तो हम रावणके साथ युद्ध करनेके लिए उद्यत हो सकते हैं। लक्ष्मणने उरी समय बानर कोटिशिला उठा दी। बानर उनकी शक्तिमा विश्वास कर युद्धके लिए तैयार हुए। २८१-२९८

## उनचासवाँ पर्व

सुग्रीवने हनुमान्को बुलानेके लिए अपना कर्मभूति नामका दूत भेजा । इसने हनुमान्से खरदूपण की मृत्युका समाचार कहा जिससे उसके अन्तःपुरमें शोक छा गया । विट सुग्रीवके नाशका समाचार सुन हनुमान्की दूसरी स्त्री पद्मरागा प्रसन्न हुई । रामकी महिमा सुन हनुमान् उनके समीप आया और विनीत भावसे उनकी स्तुति कर सीताके पास राम सदेश भेजनेके लिए लंका गया ।

२६६-३०७

## पचासवाँ पर्व

लंका जाते समय हनुमान् मार्गपतित मातामह महेन्द्रके नगरमें पहुँचा वहाँ उसके द्वारा किये हुए माताके अपमानका स्मरण होनेसे उसे बहुत रोष उत्पन्न हुआ जिससे उसने उसे बलपूर्वक परास्त किया । हनुमान्का आदेश पाकर राजा महेन्द्र अपनी पुत्री अञ्जनाके साथ मिला । ३०८-३१२

## इक्यावनवाँ पर्व

दधिमुख द्वीपमें स्थित मुनिगोत्रके ऊपर दावानलका उपसर्ग हनुमान्ने दूर किया । समीप स्थित गन्धर्व कन्याओंने त्रिशासिद्ध हो जानेके कारण हनुमान्के प्रति कृतज्ञता प्रकट की । रामको गन्धर्व कन्याओंकी प्राप्ति हुई ।

३१३-३१६

## बावनवाँ पर्व

अचानक अपनी सेनाकी गति रुक जानेसे हनुमान् आश्चर्यमें पड़ा । आगे बढ़ कर उसने मायामय कोटको ध्वस्त कर दिया । और थोड़ी देरमें ही वज्रायुधको प्राणरहित कर दिया । तदनन्तर उसकी पुत्री लक्ष्मन्दरीके साथ हनुमान्का विवाह हुआ ।

३१७-३२३

## त्रेपनवाँ पर्व

हनुमान् लंकामें जाकर सर्व प्रथम विभीषणसे मिलता है और रावणके दुष्कृत्यका उसे उपालम्भ देता है । तदनन्तर विभीषणकी विषयताका विचार कर प्रमदोद्यानमें जाता है । वहाँ अशोक वृक्षके नीचे सीताको देण अपने जन्मको सफल मानता है । वह उसकी गोदमें रामप्रदत्त अण्डा छोड़ता है । सीता उसे बुलाती है । वह प्रकट होकर विनीतभावसे सीताके समक्ष आता है और सीताके लिए रामका सदेश सुनाता है । ग्यारहवें दिन रामका सदेश पाकर सीता आहार ग्रहण करती है । मन्दोदरी आदिके साथ हनुमान्का सवर्ष होता है । हनुमान् उद्यानकी स्तुति प्रस्त करता है । बन्धन बंद होने पर रावणके समक्ष उपस्थित होता है परन्तु अन्तमें बन्धन तोड़ तथा लंकाको नष्ट भ्रष्ट कर रामके पास वापिस आ जाता है । ३४२-३४३

## चौवनवाँ पर्व

वापिस आकर हनुमान्ने रामकी सीताना सब समाचार सुनाया उसका चूडामणि उन्हें अर्पित किया । साथ ही सीताकी दयनीय दशाका भी वर्णन किया । चन्द्रमरीचि त्रिशाघरकी धेरणासे उत्तेजित हो सब निशाघरने रामको साथ ले लंकाकी ओर प्रस्थान किया ।

३४४-३५०

## पचपनवाँ पर्व

लंकाके समीप पहुँचने पर राक्षसोंमें द्योम उदत्त हो गया । इन्द्रजित् और विभीषणमें पर्याप्त वाक्स्पर्ष हुआ । रावणसे निरस्तार प्राप्तकर विभीषण लंका छोड़ कर रामसे आ मिला । ३५१-३५७

## छप्पनवाँ पर्व

रावणकी अशोहिणी आदि सेनाका वर्णन ।

३५८-३६०

### सत्तावनवाँ पर्व

लंका निनाभिनी सेनाकी तैयारी तथा लंकासे आहर निकलनेका वर्णन ।

३६१-३६६

### अट्ठावनवाँ पर्व

नल और नीलके द्वारा हस्त और प्रहस्तका मारा जाना ।

३६७-३७०

### उनसठवाँ पर्व

श्रेणिकके पूछने पर गौतम स्वामी द्वारा हस्त प्रहस्त और नल नीलके पूर्वभवोंका वर्णन ।

३७१-३७३

### साठवाँ पर्व

अनेक राजसौंका मारा जाना तथा राम लक्ष्मणको दिव्यास्त्र तथा सिद्धवाहिनी और गरुडवाहिनी विद्याओंकी प्राप्तिका वर्णन ।

३७४-३८४

### इकसठवाँ पर्व

सुग्रीव और भामरपडलका नागपाशसे बँधा जाना तथा राम लक्ष्मणके प्रभावसे उनका उन्चन-मुक्त होना ।

३८५-३८७

### बासठवाँ पर्व

वानर और राजसंरंशी राजाओंका युद्ध, विभीषण और रावणका सवाद, योद्धाओंकी रणोन्मादिनी चेष्टाएँ और रावणके द्वारा शक्तिका चलाया जाना । शक्तिके लगनेसे लक्ष्मणका मूर्छित हो पृथिवी पर गिर पडना ।

३८८-३९५

### तिरसठवाँ पर्व

शक्ति निहत लक्ष्मणको देस राम विलाप करते हैं ।

३९६-३९८

### चौसठवाँ पर्व

इन्द्रजित् मेघनाहन तथा कुम्भकर्णने मरनेकी आशकासे रावण दुखी होता है । लक्ष्मणके घायल होनेका समाचार सुन सीता भी बहुत दुखी हुई । एक अपरिचित मनुष्य द्वारा लक्ष्मणकी शक्ति निशालनेका उपाय बताया जाता है, वह अपना परिचय देता है । विशाल्याके पूर्वभवों तथा उसके वर्तमान प्रभावका वर्णन कर वह रामको सान्त्वना देता है ।

३९९-४०७

### पैंसठवाँ पर्व

उस अपरिचित प्रतिचन्द्र विद्याधरके वचनसे हर्षित हो रामने हगूमान् भामरपडल तथा अंगदको तल्लाल शयो-या मेजा । अयोध्यामें क्षोभ फैल जाता है । अनन्तर द्रोणमेघके पास भरतकी मा स्त्रयं गई और विशाल्याकी लका मेघनेकी व्यवस्था की । विशाल्याके लका पहुँचते ही लक्ष्मणके वल्लस्थलसे शक्ति निकल कर दूर हो गई और रामकी सेनामें हर्ष छा गया । विशाल्याका लक्ष्मणके साथ विवाद हुआ ।

४०८-४१४

पञ्चपुसंनम

## श्रीमद्भरविपेणाचार्यकृतम्

पद्मचरितापरनामधेयं

## पद्मपुराणम्

### पद्मविंशतितमं पर्व

अतो जनकमग्रन्धं शृणु श्रेणिक ते परम् । निनेदयामि यद्ब्रूतं भगवहितमानसः ॥१॥  
भामिनी जनकस्यासीद् विदेहा नाम सुन्दरी । गर्भनिर्वेदन तस्याः प्रयत्नतः चिरं सुरः ॥२॥  
जगद् श्रेणिको नाथ तं गर्भं केन हेतुना । देवो ररष विद्यागुमेतद्विच्छामि<sup>१</sup> शिष्यताम् ॥३॥  
उवाच गीतमो राजा नाम्ना चक्रध्वजोऽभवन् । स्थाने चक्रपुरामिष्ये भार्या तस्य मनस्विनी ॥४॥  
तयोश्चित्तोन्मत्तापयं कन्या गुरुद्वे च सा । रराज सितमृदु<sup>२</sup>रोल्लवनी वर्णदूरिका ॥५॥  
राजः पुरोहितस्यास्य भूमकेशस्य पित्रलः । स्वाहाकुचिमवोऽर्धाते सुतस्तत्रैव पाठके ॥६॥  
विद्यालाम्बन्धोर्वासोऽन्योन्यद्वहतचेतसोः । विद्याधर्मावगाहश्च जायतेऽबहितामनाम् ॥७॥  
पुरा संमत्तः प्रीतिः प्राणिनामुपजायते । प्रीतितोऽभिरतिप्राप्ती रतेर्विश्रम्भसम्भवः ॥८॥  
सद्भावत् प्रणयोपतिः प्रेमेयं पद्महेतुकम् । दुर्मोचि वध्यने कर्म पातकैरिव पद्मभिः ॥९॥

अथानन्तर गीतमस्यामो राजा श्रेणिकसे कहते हैं कि हे श्रेणिक ! अब राजा जनकका वृत्तान्त कहता हूँ जो तुम सावधान चित्त होकर सुनो ॥१॥ राजा जनककी विदेहा नामकी सुन्दरी स्त्री थी । उसके गर्भ रक्षा, सो एक देव चिरकालसे उसके गर्भकी प्रतीक्षा करने लगा ॥२॥ यह सुन राजा श्रेणिकने कहा कि नाथ ! वह देव किस कारणसे विदेहाके गर्भकी रक्षा करता था ? यह मैं जानना चाहता हूँ सो कहिए ॥३॥ इसके उत्तरमें गीतमस्यामीने कहा कि चक्रपुरनामा नगरमें एक चक्रध्वज नामका राजा था । उसकी स्त्रीका नाम मनस्विनी था ॥४॥ उन दोनोंके चित्तोत्सवा नामकी कन्या उत्पन्न हुई । यह कन्या गुरुके घर अर्थात् चाटशालामें राखिया मिट्टीके टुकड़ोंसे वर्णमाला लिखती हुई सुरोभिवा होती थी ॥५॥ उसी गुरुके घर राजाके पुरोहित भूमकेशकी स्वाहा नामकी स्त्रीसे उत्पन्न पित्रल नामका पुत्र भी अध्ययन करता था ॥६॥ चित्तोत्सवा और पित्रल इन दोनोंका चित्त परस्परमें हूरा गया इसलिए उन्हें विद्याकी प्राप्ति नहीं हो पाई । सो ठीक ही है क्योंकि विद्या और धर्मकी प्राप्ति स्थिर-चित्तवालोंकी ही होती है ॥७॥ आचार्य कहते हैं कि पहले स्त्री पुरुषका संसर्ग अर्थात् मेल होता है फिर प्रीति उत्पन्न होती है, प्रीतिसे रति उत्पन्न होती है, रतिसे विश्वास उत्पन्न होता है और तदनन्तर विश्वाससे प्रणय उत्पन्न होता है । इस तरह प्रेम पूर्वोक्त पाँच कारणोंसे उत्पन्न होता है । जिस प्रकार हिसादि पाँच पापोंसे जो छूट न सके ऐसे कर्मका बन्ध होना है उसी प्रकार पूर्वोक्त पाँच कारणोंसे प्राणियोंके गाढ़ प्रेम उत्पन्न होता है ॥८-९॥



अथासौ ज्ञातसद्भावा तेन चित्तोत्सवा रह । हियतेस्म महारूपा कीर्तिदुर्यंशसा यथा ॥१०॥  
 दूर देश यदानाथि तदाज्ञाथि सुखन्धुभि । हता प्रमाददोषेग मोहेन सुगतिर्यथा ॥११॥  
 कन्यया मुदितश्रीर पिङ्गलो धनवजित । न विभाति यथा लोभी तृष्ण्या धर्मवजित ॥१२॥  
 विदग्धनगर चाप दुर्गम परराष्ट्रिणाम् । वहि कृत्वा कुर्वा तत्र तस्यौ नि स्वकपाटके ॥१३॥  
 ज्ञाविज्ञानरहितस्तृणकाष्ठादिविक्रयान् । अनुरक्षति ता पत्नीं मग्नो दारिद्र्यवसागरे ॥१४॥  
 पुत्र प्रकाशसिंहस्य परराष्ट्रभयकर । जातोऽत्र प्रवरावल्या राजा कुण्डलमण्डित ॥१५॥  
 तेन दृष्टान्यदा बाला निर्यातेन कथञ्चन । हतरच पञ्चभिर्बाणैर्मारस्याभूत् सुदु खित ॥१६॥  
 प्रच्छन्न प्रोपिता दूता तया रात्रौ मृपालयम् । यथासीत् कमलामेला सुमुखस्य प्रवेशिता ॥१७॥  
 तया तद् सुख रेमे प्रीत कुण्डलमण्डित । उर्वश्या सह सरनो यथासान्नलकृवर ॥१८॥  
 तत स पिङ्गलाख्योऽपि भ्रान्त स्वगृहमागमत् । तामपश्यन् विशालाक्षीं मग्नो वैयुर्यसागरे ॥१९॥  
 विस्तीर्णन किमुक्तेन सोऽथ विरहदु खित । न कश्चिन्नभते सौख्य चक्रारूढ इवाकुल ॥२०॥  
 हतभार्यो द्विजो दीनस्त राजानमुपागमन् । ऊचे चान्यिष्य मे राजन् पत्नी वेनापि चोरिता ॥२१॥  
 भाषिताना दरिद्राणामाताना च विशेषत । नारीणा पुरुषाणा च सर्वेषा शरं नृप ॥२२॥

अथानन्तर जब पिङ्गलकी चित्तोत्सवाके अभिप्रायका पूर्ण ज्ञान हो गया तब वह उस रूपवतीको एकान्त पाकर हर ले गया । जिस प्रकार अपयशके द्वारा कीर्तिका अपहरण होता है उसी प्रकार पिङ्गलके द्वारा चित्तोत्सवाका हरण हुआ ॥१०॥ जब वह उसे बहुत दूर देशमें ले गया तब बन्धुजनोको उसका पता चला । जिस प्रकार मोहके द्वारा उत्तम गतिका हरण होता है उसी प्रकार प्रमादके द्वारा उस कन्याका हरण हुआ था ॥११॥ इधर कन्याको चुरानेवाला पिङ्गल कन्या पाकर प्रसन्न था, पर निर्धन होनेके कारण वह उससे उस प्रकार मुशोभित नहीं हो रहा था जिस प्रकारका धर्महीन लोभो मनुष्य तृष्णासे मुशोभित नहीं होता है ॥१२॥ पिङ्गल कन्याको लेकर जहाँ दूसरे देशके लोगोका प्रवेश नहीं हो सकता था ऐसे विदग्ध नगरमें पहुँचा और वहाँ नगरके बाहर जहाँ अन्य दरिद्र मनुष्य रहते थे वहाँ कुटी बनाकर रहने लगा ॥१३॥ वह ज्ञान-विज्ञानसे रहित था साथ ही दरिद्रतारूपी सागरमें भी निमग्न था इसलिय तृण, काष्ठ आदि बँचकर अपनी उस पत्नीकी रक्षा करता था ॥१४॥

उसी नगरमें राजा प्रकाशसिंह और प्रवरावली रानीका पुत्र राजा कुण्डलमण्डित रहता था जो कि शत्रुओके देशको भय उत्पन्न करनेवाला था ॥१५॥ एक दिन वह नगरके बाहर गया था सो वहाँ चित्तोत्सवा उसकी दृष्टिमें आई । देखते ही वह कामके पोंचो वाणासे ताडित होकर अत्यन्त दुःखा हो गया ॥१६॥ उसने गुमरूपसे चित्तोत्सवाके पास दूता भेजी सो उस दूताने उसे राज्रिके समय राजमहलमें उस तरह प्रविष्ट करा दिया जिस प्रकार कि पहले राजा सुमुषकी दूताने कमलामेलाको उसके महलमें प्रविष्ट कराया था ॥१७॥ जिस प्रकार अनुरागसे भरा नलतूर उर्वशीके साथ रमण करता था उसी प्रकार प्रीतिसे भरा कुण्डलमण्डित उस चित्तोत्सवाके साथ रमण करने लगा ॥१८॥

तदनन्तर जब वह पिङ्गल यका-मोदा अपने घर आया तो उस विशाल लोचनाको न देखकर दृष्टरूपी सागरमें निमग्न हो गया ॥१९॥ गीतमर्यामी कहते हैं कि अधिक बहनेसे क्या ? उसके विरहसे दुःखी हुआ वह चक्रारूढकी तरह आकुल होता हुआ किसी भी जगह सुख प्राप्त नहीं करता था ॥२०॥ तदनन्तर जिसकी भार्या हरी गई थी ऐसा वह दीनहीन ब्राह्मण राजाने पास गया और जिस किसी तरह राजाका पता चलाकर बोला कि हे राजन् ! किसीने मेरी स्त्री चुरा ली है ॥२१॥ राजा ही सनका शरण है और खासकर जो स्त्री-पुरुष भयभीत, दरिद्र

अमायं धूममाह्वय समायं पार्थिवोऽज्ज्वलत् । विराय मा कृया माम जायास्यान्निग्न्यतामिति ॥२३॥  
जगादेति च तत्रैकः सविकारेण चक्षुषा । सा दृष्टा पथिकैर्देव पीदनस्थानवर्मानि ॥२४॥  
छान्दयार्पागृन्दमध्यस्था<sup>२</sup> तपः कर्तुं समुद्यता । विनिवर्तय तां चित्र किं विरीपि प्रत्र द्विज ॥२५॥  
को वा प्राप्नोष्यकाचोऽस्या दधत्यास्तस्त्रणीं तनुम् । वरस्त्रीगुणपूर्णाया हरन्यास्तस्त्रणीं जनम् ॥२६॥  
इत्युक्ते द्विज उल्लाय बद्ध्वा परिकरं ददम् । दद्याव रंहता विद्वो ब्रह्मरवतरको यथा ॥२७॥  
पीदने नगरेऽन्विष्य चैत्येषूपवनेषु च । भद्रद्व। पुनरागच्छद् विदग्धनगरं द्रुतम् ॥२८॥  
नृपाज्ञया नरैः क्रूरगोलाघातैः स तर्जनैः । यष्टिलोष्टप्रहारैश्च दूरं निवासितो भृशम् ॥२९॥  
स्थानभ्रंशं परिक्रमेणमवमानं धयं तया । अनुभूय परं दीर्यमध्वानं स प्रपन्नवान् ॥३०॥  
रतिं न रुग्न्ते क्वापि रहितः प्रियया तया । शुभयन्त्रहनि रात्री च पतितोऽग्नावित्रोरगः ॥३१॥  
विशालपद्भ्रजवनं दागग्निमिव परयति । सरोऽपि ग्राहमानोऽग्नी दहते विरहाग्निना ॥३२॥  
एवं सुदुःखितमतिः पर्यटन् पृथिवीतले । नगरस्य स्थितं द्वारं ददर्श गगनाग्ररम् ॥३३॥  
आचार्यमार्यगुप्तं च ममेव्य रचिताज्जलिः । प्रणम्य शिरसा हृष्टो धर्मं शुभ्रात्र तत्त्वतः ॥३४॥  
श्रुत्वा धर्मं मुनेः प्राप्तः स वैराग्यमनुत्तमम् । प्रशान्तं जिनोऽग्नां शासनं शान्तमानसः ॥३५॥  
• अहो परमनाहाय्यो मार्गोऽयं जिनदेशितः । ममान्धकारयातस्य यो भास्कर इवोदितः ॥३६॥

तथा दुःखी होते हैं उनका राजा ही शरण होता है ॥२२॥ यह सुन राजाने एक धूर्तमन्त्रीको बुलाकर मायासहित कहा कि विलम्ब मत करो, शीघ्र ही इसकी स्त्रीका पता चलाओ ॥२३॥ तब एक मन्त्रीने विकारसहित नेत्र चलाकर कहा कि हे राजन् ! उस स्त्रीको तो पथिकोंने पीदनपुरके मार्गमें देखा था ॥२४॥ वह आर्थिकाओके समूहके बीचमें स्थित थी तथा शान्तिपूर्वक तप करनेके लिए तत्पर जान पड़ती थी । अरे ब्राह्मण ! जल्दी जाकर उसे लौटा ला । इधर क्यों रो रहा है ? ॥२५॥ जब कि वह यौवनपूर्ण शरीरको धारण कर रही है, उत्तम स्त्रियोंके गुणोंसे परिपूर्ण है तथा तरुण जनोको हरनेवाली है तब उसका यह तप करनेका समय ही कौन-सा है ? ॥२६॥ मन्त्रीके ऐसा कहते ही वह ब्राह्मण उठा और अच्छी तरह कमर कसकर वेगसे इस प्रकार दौड़ा जिस प्रकार कि बन्धनसे छूटा घोड़ा दौड़ता है ॥२७॥ वहाँ जाकर उसने पीदनपुरके मन्दिरों तथा उपवनोमें अपनी स्त्रीकी बहुत खोज की । जब नहीं देखी तब वह पुनः शीघ्र ही विदग्धनगरमें वापिस आ गया ॥२८॥ राजाकी आज्ञासे दुष्ट मनुष्योंने उसे गलेमें पिचा देकर नाना प्रकारकी डाँट द्रिप्ताकर तथा लाठी और पत्थरोंसे मारकर बहुत दूर भगा दिया ॥२९॥ स्थान भ्रंश, अत्यन्त क्लेश, अपमान और मारका अनुभव कर उसने लम्बा रास्ता पकड़ लिया अर्थात् वह बहुत दूर चला गया ॥३०॥ स्त्रीके बिना वह कहीं भी रतिको प्राप्त नहीं होता था । वह अग्निमें पड़े हुए सोंपके समान रात दिन सूखता जाता था ॥३१॥ वह कमलोंके विशाल वनकी दावानलके समान देखता था और सरोवरमें प्रवेश करते समय विरहाग्निसे जलने लगता था ॥३२॥ इस प्रकार दुःखित हृदय होकर वह पृथिवीपर घूमता रहा । एक दिन उसने नगरके द्वारपर स्थित आर्यगुप्त नामक दिग्गम्बर आचार्यको देखा । उनके पास जाकर उसने हाथ जोड़कर शिरसे प्रणाम किया तथा हर्षित हो धर्मका यथार्थ स्वरूप सुना ॥३३-३४॥ मुनि-राजसे धर्म श्रवणकर वह परम वैराग्यको प्राप्त हुआ तथा शान्त-चित्त होकर इस प्रकार जिन-शासनकी प्रशंसा करने लगा ॥३५॥ कि अहो ! जिन भगवान्के द्वारा प्रदर्शित यह मार्ग उत्कृष्ट प्रभावसे सहित है । मैं अन्धकारमें पड़ा था सो यह मार्ग मेरे लिए मानो सूर्यके समान ही

१. मायासहितं यथा स्यात्तथा । २. मध्यस्था म० । ३. समुद्यता म० । ४. ग्राहमानो म० । ५. दूरे च०, व०, ए० । दूरं म० । ६. दिग्गम्बरसुनिम् । ७. -मर्गगुप्तिं च म० ।

नक्तदिवमशुष्यन् स तत्परराज्यचिन्तया । अनादरेण शरीरमपि कर्म प्रपन्नवान् ॥१०॥  
 ततोऽप्यौ बालचन्द्रेण सेनान्या जावमाण्यत । उद्दिग्धेन ह्य कम्पमाय मनन नाप न्ययमे ॥११॥  
 उद्देगकारण भद्र मम भण्डितक परम् । ह्ययुक्ते वाञ्छन्तरेण प्रतिज्ञेय समाश्रिता ॥१२॥  
 शान्तमवाधयिष्या त पाप मण्डितक तप । मन्त्राया नाममिष्यामि धनमेतन्मया कृतम् ॥१३॥  
 इति राज पुत्र ह्यत्रा सगर रोपमुद्दहन् । अथेन चतुरङ्गेण सेनानागान्नुमुद्यत ॥१४॥  
 चित्तोत्सवा समायुक्तचित्तो मुक्तान्यचेदित । प्रमादबहुलो निद्रमूलन्तृपपनायति ॥१५॥  
 भ्रष्टातलोककृत्तान्तो मण्डित गण्डितोऽयम् । ह्यलया बालचन्द्रेण गत्वा बद्धो मृगो यथा ॥१६॥  
 शृहीतबलराज्य त निर्वास्य विपयान् कृती । बालचन्द्राप्नरण्यस्य समीप पुनरागमन् ॥१७॥  
 ततस्त्वेन मृत्युव्येन कृतमुस्पवमुन्धर । पर प्रमोदमापन्नाप्नरण्य सुष्वमन्वभून् ॥१८॥  
 शरीरमात्रधारी तु मण्डित पादचारक । पर्यन् धरणीं तु स्त्री पश्चात्ताप समाहृत ॥१९॥  
 परिप्राप्या मपद धमणाना महामनाम् । नत्वा च शिरमाचार्य धर्म पत्ररुद्र भावत ॥२०॥  
 दु क्विताना दरिद्राणा धनिताना च बान्धवै । व्याधिमपीडिताना च प्रायो भवति धर्मधी ॥२१॥  
 प्रात्रये यस्य भगवन् शक्तिर्भक्तोर्न विद्यते । परिग्रहपरस्थास्य धर्म कश्चिन्न विद्यते ॥२२॥

सका । सो ठीक ही है क्योंकि पहाड़के नीलमें स्थित चूड़ेका सिंह क्या कर सकता है ? ॥४६॥  
 वह रात दिन उसीके पराजयकी चिन्तासे सूत्रता जाता था । भोजन, पान आदि शरीर-सम्पन्धी  
 कार्य भी वह अनादरसे करता था ॥१०॥

तदनन्तर किसी दिन उसके बालचन्द्र नामा सेनापतिने उससे कहा कि हे नाथ ! आप  
 सदा उद्दिग्ध-से क्यों दिखाई देते हैं ? ॥११॥ इसके उत्तरमें राजा अनरण्यने कहा कि हे भद्र !  
 मेरे उद्देगका परम कारण कुण्डलमण्डित है । राजाके यह कहनेपर बालचन्द्र सेनापतिने यह  
 प्रतिज्ञा की कि हे राजन् ! 'पापी कुण्डलमण्डितको वश किये जिना में आपके समीप नहीं आऊँगा'  
 मैंने यह व्रत लिया है ॥१२-१३॥ इस प्रकार राजाके सामने प्रतिज्ञा कर क्रोध धारण करता हुआ  
 सेनापति चतुरङ्ग सेनाके साथ जानेके लिए उद्यत हुआ ॥१४॥

उधर चित्तोत्सनामें जिसका चित्त लग रहा था ऐसा कुण्डलमण्डित अन्य सत्र चेष्टाएँ  
 छोड़कर प्रमादसे परिपूर्ण था । उसके मन्त्री आदि मूल पक्षके सभी लोग उससे भिन्न हो चुके  
 थे । लोकमें कहाँ क्या हो रहा है ? इसका उसे कुछ भी पता नहीं था । सत्र प्रकारका उग्रम  
 छोड़कर वह एक स्त्रीमें ही आसक्त हो रहा था । सो अनरण्यके सेनापति बालचन्द्रने जानर उसे  
 मृगकी भौंति अनायास ही बाँध लिया ॥१५-१६॥ चतुर बालचन्द्र उसकी सेना और गाय पर  
 अपना अधिकार कर तथा उसे देशसे निकालकर अनरण्यके समीप वापिस आ गया ॥१७॥  
 इस प्रकार उस उत्तम सेनरके द्वारा जिसकी वसुधामें पुन सुख शान्ति स्थापित की गई थी ऐसा  
 अनरण्य परम हर्षको प्राप्त होता हुआ सुखका अनुभव करने लगा ॥१८॥

कुण्डलमण्डितका सत्र राज्य छिन गया था, शरीर मात्र ही उसने पास बचा था । ऐसा  
 वशामें वह पैदल ही पृथिवी पर भ्रमण करता था । सत्र दुःखों रहता था और पश्चात्ताप करता  
 रहता था ॥१९॥ एक दिन वह भ्रमण करता दिगम्बर मुनियोंके तपोवनमें पहुँचा । वहाँ आचार्य  
 महाराजको शिरसे नमस्कार कर उसने मात्रपूर्वक धर्मका स्वरूप पूछा ॥२०॥ सो ठीक ही है  
 क्योंकि दुःखी, दरिद्री, भाई-बन्धुओंसे रहित और रोगसे पाडित मनुष्योंका बुद्धि प्राय धर्मन  
 लगती ही है ॥२१॥ उसने पूछा कि हे भगवन् ! जिसकी मुनिदीप्ता लेनेकी शक्ति नहीं है उस

१. तपराज्य म० । २. हे राजन् । असाधयिना = त स्वयम्भूत्वा । ३. पापमण्डितक स० ।  
 ४. देयात् ।

कथं वा मुच्यते पापैश्चतु सज्ञापरायण । एतद्विच्छामि विज्ञातु प्रसीद व्याकुरुष्व मे ॥६३॥  
 गुरु प्रोवाच वचन धर्मं प्राणिदया स्मृता । मुच्यन्ते देहिन पापैरामनिन्दाविगर्हणै ॥६४॥  
 हिंसाया कारणं घोरं शुभशोणितसम्भवम् । पिशितं मा भक्ष्य त्वं शुद्धं चेद्दर्शमिच्छसि<sup>१</sup> ॥६५॥  
 प्राणिना मृग्युभीरुणा मात्सैश्वर्यप्रसेविकाम्<sup>२</sup> । पूरयित्वा ध्रुवं याति नरकं पापमानव ॥६६॥  
 शिरसो मुण्डनैः स्नानैर्विलिङ्गप्रहणादिभिः । नास्ति सधारणं जन्तोर्मांसभक्षणकारिण ॥६७॥  
 तीर्थस्नानानि दानानि सोपवासानि देहिनः । नरकाच्च परित्राणं कुर्वन्ति पिशिताशिनः ॥६८॥  
 सर्वजातिगता जावा बान्धवा पूर्वजन्मसु । स्युरमा भक्षितास्तेन मांसभक्षणकारिणा ॥६९॥  
 पश्चिमस्यमृगान् हन्ति परिपन्थं च तिष्ठति । यो नरोऽस्मादापि क्रूरा मधुमासाद् गतिं व्रजेत् ॥७०॥  
 न वृक्षाजायते मांसं नोद्विद्य धरणीतलम् । नामभसं पद्मवक्ष्यामि सद्ब्रह्मव्येभ्यो यथौपधम् ॥७१॥  
 पश्चिमस्यमृगान् हवा वराकान् प्रियजावितान् । क्रूरैरुपाद्यते मांसं तन्नाशनं दयापरा ॥७२॥  
 स्तन्येन वधितं यस्यां शरीरं ता मृता सताम् । महिषी मातरं कष्टं भक्षयन्ति नराधमा ॥७३॥  
 माता पिता च पुत्रश्च मित्राणि च सहोदराः । भक्षितास्तेन यो मांसं भक्षयन्पथमो नरः ॥७४॥  
 इत्थं चापटल मेरोरधस्तात् सहस्रं स्मृतम् । तत्र रत्नप्रभाभिख्ये देवा भवन्वासिनः ॥७५॥  
 सकपायं तप कृत्वा जायन्ते तत्र देहिनः । देवानामधमास्ते तु दुष्टकर्मसमन्विता ॥७६॥

परिग्रही मनुष्यके लिए क्या कोई धर्म नहीं है ? ॥६२॥ अथवा चारों सज्ञाओंमें तत्पर रहनेवाला गृहस्थ पापोंसे किस प्रकार छूट सकता है ? मैं यह जानना चाहता हूँ सो आप प्रसन्न होकर मेरे लिए यह सब बताइये ॥६३॥

तदनन्तर मुनिराजने निम्नाङ्कित वचन कहे कि जीवदया धर्म है तथा अपनी निन्दा गद्दी आदि करनेसे मनुष्य पापोंसे छूट जाते हैं ॥६४॥ यदि तू शुद्ध अर्थात् निर्दोष धर्म धारण करना चाहता है तो हिंसाका भयकर कारण तथा शुरु और शोणितसे उत्पन्न मांसका कभी भक्षण नहीं कर ॥६५॥ जो पापी पुरुष मृत्युसे डरनेवाले प्राणियोंके मांससे अपना पेट भरता है वह अवश्य ही नरक जाता है ॥६६॥ शिर मुँडाना, स्नान करना तथा नाना प्रकारके वेप धारण करना आदि कार्योंसे मांसभक्षी मनुष्यका रक्षा नहीं हो सकती ॥६७॥ तीर्थक्षेत्रोंमें स्नान करना, दान देना तथा उपवास करना आदि कार्य मांसभोजी मनुष्यको नरकसे बचानेमें समर्थ नहीं हैं ॥६८॥ समस्त जातियोंके जीव इस प्राणीके पूर्वभवोंमें बन्धु रह चुके हैं । अतः मांसभक्षण करने वाला मनुष्य अपने इन्हीं भाई बन्धुओंको खाता है यह समझना चाहिए ॥६९॥ जो मनुष्य पक्षी, मत्स्य और मृगोंको मारता है तथा इनके विरुद्ध आचरण करता है वह मधु-मांसभक्षी मनुष्य इन पक्षी आदिसे भी अधिक क्रूर गतिको प्राप्त होता है ॥७०॥ मांस न वृक्षसे उत्पन्न होता है, न पृथिवीतलको भेदन कर निकलता है, न कमलकी तरह पानीसे उत्पन्न होता है और न ओषधिके समान किन्हीं उनमें द्रव्यासे उत्पन्न होता है । किन्तु जिन्हें अपना जीवन प्यारा है ऐसे पत्नी, मत्स्य, मृग आदि दीन-हीन प्राणियोंको मारकर दुष्ट मनुष्य मांस उत्पन्न करते हैं । इसलिए दयालु मनुष्य उसे कभी नहीं खाते ॥७१-७२॥ जिसके दूधसे शरीर पुष्ट होता है तथा जो माताके समान है ऐसी भैंसके मरने पर नीच मनुष्य उसे खा जाता है यह कितने क्रूरकी बात है ? ॥७३॥ जो नीच मनुष्य मांस खाता है उसने माता, पिता, पुत्र, मित्र और भाइयाका ही भक्षण किया है ॥७४॥ यहाँसे मेरु पर्वतके नीचे सात पृथिवियों हैं उनमें से रत्नप्रभानामक पृथिवीमें भवनवासा देव रहते हैं । जो मनुष्य कपायसहित तप करते हैं । वे उनमें उत्पन्न होते हैं । भवनवासी देव सब देवोंमें नीच देव कहलाते

१. मृच्छसि म० । २. उदरदरीम् । ३. निविधिलिङ्गधारणै । ४. अमार्गं प्रतिकूलप्रवृत्तिमिति यावत् ।

५. क्रूरान् म० । ६. स्तन्येन म० । ७. यत्या म० ।

अभ्यन्तस्या चितेरन्या दारुणः पट्ट च भूमयः । नारका यानु पापस्य मुञ्जन्ते कर्मणः फलम् ॥१७॥  
 बुरूपा दारुणारायानु दुःस्पर्शा ध्वान्तपुरिताः । उपमोक्तिस्तदुःस्पर्शा कारणीभूतविग्रहाः ॥१८॥  
 कुम्भीपाकास्त्वमास्यातं नरकं भीमदर्शनम् । नदी वैतरणी घोरा शालमली क्रूरकण्ठका ॥१९॥  
 असिपत्रवनच्छुद्धाः धुरधाराश्च पर्वताः । ज्वलद्गन्निभासतीक्ष्णोद्दकीका निरन्तराः ॥२०॥  
 तेषु ते तीक्ष्णदुःखानि प्राप्नुवन्ति निरन्तरम् । प्राणिनो मनुष्यामादा<sup>२</sup> घानकाश्रामुधारिणाम् ॥२१॥  
 नारकधर्माङ्गुलमात्रोऽपि प्रदेशस्तत्र दुःखितैः । त्रियते नारकैश्च विमेषमपि विभ्रमः ॥२२॥  
 प्रच्छन्नमिह तिष्ठाम इति ध्यात्वा पलायिताः । हन्यन्ते निर्दयैरन्यैर्नारकैर्भरैश्च ते ॥२३॥  
 ज्वलद्गङ्गाकुण्डिले दग्धा भस्या इवानिले । विरमं विहिताग्रन्दा विनिगूय्य कथयन् ॥२४॥  
 नारकाग्निभयप्रस्ताः प्रासा वैतरणीजलम् । चण्डकारोर्मिभिर्भूयो दहन्ते वद्विनोऽपिचम् ॥२५॥  
 असिपत्रवन वातसङ्घायाप्रयाशया द्रुतम् । पतद्भिस्तत्र द्वापन्ते चक्ररत्नगदादिभिः ॥२६॥  
 विच्छिन्ननामिकाकर्णस्कन्धजङ्घादिभिर्ग्रहाः । कुम्भीपाके<sup>३</sup> नियुज्यन्ते ध्वान्तशोणितवर्णिगः ॥२७॥  
 प्रपीड्यन्ते च यन्त्रेषु क्रूरावेषु विह्वलाः । पुनः शैलेषु सिध्न्ते तीक्ष्णेषु विरसस्तराः ॥२८॥  
 उल्लच्छ्यन्तेऽन्तिगुह्येषु पादपेष्वन्धकारिषु । ताल्यन्ते मुद्गरावातेर्महद्भिर्मस्तके तथा ॥२९॥  
 जलं प्रार्थयमानानां तृष्णाचानां प्रदीयते । ताम्रादिकलल तेन दग्धदेशः सुदुःखिताः ॥३०॥

हैं तथा ये दुष्ट कार्य करने वाले होते हैं ॥७५-७६॥ रत्नप्रभा पृथिवीके नीचे छह भयंकर पृथिवियों और हैं जिनमें नारकी जीव पाप कर्मका फल भोगते हैं ॥७७॥ वे नारकी बुरूप होते हैं, उनके शब्द अत्यन्त दारुण होते हैं, वे अन्धकारसे परिपूर्ण रहते हैं तथा उनके शरीर उपमातीत दुःखोंके कारण हैं ॥७८॥ उन पृथिवियोंमें कुम्भीपाक नामका भयंकर नरक है, भय उत्पन्न करने वाली वैतरणी नदी है, तथा तीक्ष्ण काँटोंसे युक्त शालमली वृक्ष है ॥७९॥ असिपत्र वनसे आच्छादित तथा क्षुरोंकी धारके समान तीक्ष्ण पर्वत हैं और जलती हुई अग्निके समान निरन्तर लोहेकी तीक्ष्ण कीलें वहाँ व्याप्त हैं ॥८०॥ मधु मांस खानेवाले तथा प्राणियोंका घात करनेवाले जीव उन नरकोंमें निरन्तर तीव्र दुःख पाते रहते हैं ॥८१॥ वहाँ अर्घ-अङ्गुल प्रमाण भी ऐसा प्रदेश नहीं है जहाँ दुःखी नारकी निमेषमात्रके लिए भी विश्राम कर सकें ॥८२॥ 'हम यहाँ छिपकर रहेंगे' ऐसा सोचकर नारकी भागकर जाते हैं पर वही पर व्याहीन अन्य नारकी और दुष्ट देव उनका घात करने लगते हैं ॥८३॥ जिस प्रकार जलते हुए अंगारोंसे कुण्डिल अग्निमें जलते हुए मच्छ विरस शब्द करते हैं उसी प्रकार नारकी भी अग्निमें पड़ कर विरम शब्द करते हैं । यदि अग्निके भयसे भयभीत हो किसी तरह निकलकर वैतरणी नदीके जलमें पहुँचते हैं तो अत्यन्त खारी तरङ्गोंके द्वारा अग्निसे भी अधिक जलने लगते हैं ॥८४-८५॥ यदि छायाकी इच्छासे शीघ्र ही भागकर असिपत्र वनमें पहुँचते हैं तो वहाँ पड़ते हुए चक्र, रत्न, गदा आदि शस्त्रोंसे उनके रण्ड-रण्ड हो जाते हैं ॥८६॥ जिनके नाक, कान, स्कन्ध तथा जङ्घा आदि अवयव काट लिये गये हैं तथा जो निकलते हुए खूनकी मानो वर्षा करते हैं ऐसे उन नारकियोंको कुम्भीपाकमें डाला जाता है अर्थात् किसी षडे आदिमें भर कर उन्हें पकाया जाता है ॥८७॥ जिनसे क्रूर शब्द निकल रहा है ऐसे कोल्लुओंमें उन विह्वल नारकियोंको पेल दिया जाता है फिर तीक्ष्ण चुक्रीले पर्वतों पर गिराकर उनके टुकड़े-टुकड़े किये जाते हैं जिससे वे विरस शब्द करते हैं ॥८८॥ अन्धा कर देने वाले बहुते ऊँचे वृक्षों पर उन्हें चढ़ाया जाता है तथा षडे-षडे मुद्गरों की चोटसे उनका मस्तक पीटा जाता है ॥८९॥ जो नारकी प्याससे पीड़ित होकर पानी माँगते

१. शालमली क्रूरकण्ठका क० । २. मामादिवाचका म० । ३. चन्द्र म० । तीव्र व० । ४. पापेन उच्यन्ते ।

५. चान्त म० । वात २० ।

द्रुवते नास्ति तृणा न इत्यतोऽपि यलादमी । पाप्यन्ते तदतिक्रूरैः संदशव्यावृताननाः ॥६१॥  
 प्रयात्य भूतले भूयो वक्षस्यात्रम्य<sup>४</sup> दायते । पादः क्रूरवचोभिस्तेस्तेषां कल्मषकर्मणाम्<sup>५</sup> ॥६२॥  
 तेषां निर्दग्धकण्ठानां दृढते हृदयं पुनः । निष्क्रामन्ति पुरीतन्ति<sup>६</sup> निर्भिद्य जडरं सह ॥६३॥  
 परस्परकृतं दुःखं तथा भवनवासिभिः । नरका यत्रपद्यन्ते कस्तद्वर्णयितुं चमः ॥६४॥  
 इति ज्ञात्वा महादुःखं नरके माससंभवम् । वर्जनीयं प्रयत्नेन विदुषा मांसभक्षणम् ॥६५॥  
 अत्रान्तरे जगादैवं कुण्डलस्त्रस्तमानसः । नाथाणुव्रतयुक्तानां का गतिर्दरयते वद ॥६६॥  
 गुरुरूचे न यो मांसं खादत्यतिदृढव्रतः । तस्य वक्ष्यामि यत्पुण्यं सम्यग्दृष्टेर्विशेषतः ॥६७॥  
 उपवासादिहीनस्य दरिद्रस्यापि धीमत्तः । मांसमुर्जेनिवृत्तस्य मुगतिर्हस्तवतिनो ॥६८॥  
 यः पुनः शीलसम्पन्नो जिनशासनभावितः । सोऽणुव्रतधरः प्राणी सौधर्माद्रिषु जायते ॥६९॥  
 अहिंसा प्रवर मूलं धर्मस्य परिकीर्तितम् । सा च मांसाक्षिप्तस्य जायतेऽन्यन्तनिर्मला ॥७०॥  
 दयावान् मद्भवान् योऽपि श्लेच्छश्चाण्डाल एव वा । मधुमांसाक्षिप्तः सन् सोऽपि पापेन मुच्यते ॥७१॥  
 मुक्तमात्रः स पापेन पुण्यं गृह्णाति मानवः । जायते पुण्यबन्धेन सुरः सन्मनुजोऽथवा<sup>७</sup> ॥७२॥  
 सम्यग्दृष्टिः पुनर्जन्तुः कृत्वाणुव्रतधारणम् । लभते परमान्धोगान् ध्रुव<sup>८</sup> स्वर्गनिवासिनाम् ॥७३॥

हैं उनके लिए तामा आदि धानुओका कलल ( पिघलाया हुआ रस ) दिया जाता है जिससे उनका शरीर जल जाता है तथा अल्पन्न दुःखी हो जाते हैं ॥६०॥ यद्यपि वे कहते हैं कि हमे प्यास नहीं लगी है तो भी जवर्दस्ती संडारशीसे मुँह फोड़ कर उन्हें वह कलल पिलाया जाता है ॥६१॥ पाप करने वाले उन नारकियोंको जमीन पर गिराकर तथा उनकी छाती पर चढ़कर दुष्ट घचन बोलते हुए बलवान् नारकी उन्हें पैरोसे रूदते हैं ॥६२॥ पूर्वोक्त कललपानसे उन नारकियोंके कण्ठ जल जाते हैं तथा हृदय जलने लगते हैं । यही नहीं पेट फोड़ कर उनकी आँते भी बाहर निकल आती हैं ॥६३॥ इसके सिवाय भवनवासी देव उन्हें परस्पर लड़ाकर जो दुःख प्राप्त करते हैं उसका वर्णन करनेके लिए कौन समर्थ है ? ॥६४॥ इस तरह मांस खानेसे नरकमे महादुःख भोगना पड़ता है ऐसा जानकर समझदार पुरुषको प्रयत्नपूर्वक मांसभक्षणका त्याग करना चाहिए ॥६५॥

इसी बीचमे जिसका मन अत्यन्त भयभीत हो रहा था ऐसे कुण्डलमण्डितने कहा कि हे नाथ ! अणुव्रतसे युक्त मनुष्योंको क्या गति होती है सो कहिये ॥६६॥ इसके उत्तरमे गुरु महाराजने कहा कि जो मांस नहीं खाता है तथा अत्यन्त दृढतासे व्रत पालन करता है उसे तथा खासकर सम्यग्दृष्टि मनुष्यको जो पुण्य होता है उसे कहता हूँ ॥६७॥ जो बुद्धिमान् मनुष्य मांस-भक्षणसे दूर रहता है भले ही वह लपकसादिसे रहित हो, रूपा दरिद्र हो, सो भी उल्लस गति उसके हाथमे रहती है ॥६८॥ और जो शीलसे सम्पन्न तथा जिनशासनकी भावनासे युक्त होता हुआ अणुव्रत धारण करता है वह सौधर्मादि स्वर्गमे उत्पन्न होता है ॥६९॥ धर्मका उत्तम मूल कारण अहिंसा कही गई है । जो मनुष्य मांस-भक्षणसे निवृत्त रहता है उसीके अत्यन्त निर्मल अहिंसा-धर्म पलता है ॥७०॥ जो परिग्रही श्लेच्छ अथवा चाण्डाल भी क्यों न हो यदि दयालु है और मधु-मांस-भक्षणसे दूर रहता है तो वह भी पापसे मुक्त हो जाता है ॥७१॥ ऐसा जीव पापसे मुक्त होते ही पुण्य-बन्ध करने लगता है और पुण्य-बन्धके प्रभावसे वह देव अथवा उत्तम मनुष्य होता है ॥७२॥ यदि सम्यग्दृष्टि मनुष्य अणुव्रत धारण करता है तो वह

१. अश्माम् । २. व्यावृताननः म० । ३. प्रयात्य म० । ४. वक्षस्यात्रम म० । ५. ६२-६३ श्लोऽधोरथं पाठः '३' पुस्तकममत्र । पुस्तकान्तरेषु त्विथं पाठोऽस्ति 'प्रयात्य भूतले भूयो वक्षस्यात्रमदीने । तेषां निर्दग्धकण्ठानां दृढते हृदयं पुनः ॥६२॥ निष्क्रामन्ति पुरीतन्ति निर्भिद्य जडर सह । जलता कल्लोनाशु तेषां कल्मसकर्मणाम् ॥६३॥ ६. अत्राणि । ७. यथा म० । ८. विशुः क०, रा०, ग० ।

हृद्याचार्यस्य वचनं ध्रुव्या कुण्डलमण्डितः । मन्दभाग्यतया शक्या इदितोऽगुणोऽपि ॥१०५॥  
 प्रणिपत्य गुणं मूर्धा मधुमांसत्रिजर्जनम् । जप्राह शरणोपनं ममार्थानं च दर्शनम् ॥१०५॥  
 कृत्वा चैवै नमस्कारं गुरोर्दिसुवायमां तथा । निष्कान्तः स<sup>२</sup> ततो देशादिनि चिन्तागुणागतः ॥१०६॥  
 मातुः सहोदरो भ्राता कृतान्तममत्रिमः । ध्रुवं मे मीदतः सोऽयं भविष्यत्यव्ययम् ॥१०७॥  
 राजा भूत्वा पुनः शशुं जेप्यामांति मुनिभितः । आशां वहन् प्रवृत्तोऽमावातुरो दक्षिणापथम् ॥१०८॥  
 ध्रमाविदुःखपूर्णस्य मजतोऽस्य शनैः शनैः । उर्दयुर्ग्यां रथो श्रेष्ठे पार्ष्ण्यभयार्जितैः ॥१०९॥  
 सन्धियु च्छिद्यमानेषु भिद्यमानेषु ममंसु । सर्वस्य जगतोऽप्राणं<sup>३</sup> मरणं तस्य दौक्षित्यम् ॥११०॥  
 मुञ्चते समये यस्मिन् जीवं कुण्डलमण्डितः । तत्रैव प्ययने देवः<sup>४</sup> शेषपुण्यादिवरप्युनः ॥१११॥  
 गर्भं च<sup>५</sup> तो विदेहाया विधिना परियोजिता । पश्य कर्मानुभास्य त्रिचप्रमिति चिन्तम् ॥११२॥  
 एतस्मिन्नन्तरे सायु कालं कृत्वा स पिङ्गलः । तपोयलाग्महातेजा महाकालोऽसुरोऽभवत् ॥११३॥  
 भयनेऽप्रथिना स्मृत्वा धर्मस्य च फलोदयम् । दृष्यौ चित्तोत्सवा इति तावमासे यथाविधि ॥११४॥  
 दुष्टया किं तथा कृत्यं वयांौ कुण्डलमण्डितः । येनाहं प्रापितोऽवस्थां विधुर्ना त्रिहाणं ॥११५॥  
 पत्न्यां जनकराजस्य गर्भमाश्रित्य मण्डितः । साकमन्येन जीवेन विवेद स्थित इयमी ॥११६॥  
 मृतं तापदियं देवौ युगलं किं ममानया । गर्भद्वितप्रयोगिन्या मृतयारित प्रयोजनम् ॥११७॥

निश्चित ही देवोंके उत्कृष्ट भोग प्राप्त करता है ॥१०३॥ इस प्रकार आचार्यके वचन सुनकर कुण्डलमण्डित मन्द भाग्य होनेसे अणुव्रत धारण करनेके लिए भी समर्थ नहीं हो सका ॥१०४॥ अतः उसने शिरसे गुरुको नमस्कार कर मधुमांसका परित्याग किया और शरणभूत सग्यदर्शन धारण किया ॥१०५॥

तदनन्तर जिन-प्रतिमा और दिगम्बराचार्यको नमस्कार कर वह ऐसा विचार करता हुआ उस देशसे बाहर निकला कि मेरी माताका सगा भाई यमराजके समान पराक्रमका धारी है सो वह विपत्तिमें पड़े हुए मेरी अवश्य ही सहायता करेगा । मैं फिरसे राजा होकर निश्चिन्त ही शत्रुको जीतूंगा । ऐसी आशा रखता हुआ वह कुण्डलमण्डित दुःखी हो दक्षिण दिशाकी ओर चला ॥१०६-१०८॥ वह थकावट आदि दुःखोंसे परिपूर्ण होनेके कारण धीरे-धीरे चलता था । बीचमें पूर्वभयमें संचित पाप कर्मके उदयसे उसके शरीरमें अनेक रोग प्रकट हो गये ॥१०९॥ उसकी सन्धियों छिन्न होने लगीं और मर्म स्थानोंमें भयंकर पीड़ा होने लगी । अन्तमें समस्त संसार जिससे नहीं बचा सकता ऐसा उसका मरण आ पहुँचा ॥११०॥ जिस समय कुण्डल-मण्डितने प्राण छोड़े उसी समय चित्तोत्सवाका जीव जो स्वर्गमें देव हुआ था शेष पुण्यके प्रभावसे स्वर्गसे च्युत हुआ ॥१११॥ भाग्यवशा वे दोनों ही जीव राजा जनरुको रानी विदेहाके गर्भमें उत्पन्न हुए । गीतमस्यामी कहते हैं कि अहो श्रेणिक ! कर्मोदयको यह विचित्र चेष्टा देखो ॥११२॥ इसी बीचमें वह पिङ्गल ब्राह्मण अच्छी तरह मरण कर तपके प्रभावसे महातेजशी महाकाल नामका असुर हुआ ॥११३॥ उसने उत्पन्न होते ही अवधिज्ञानसे धर्मके फलका विचार किया और साथ ही इस बातका ध्यान किया कि चित्तोत्सवा कहीं उत्पन्न हुई है ? वह अपने अवधिज्ञानसे इन सब बातोंको अच्छी तरहसे जान गया ॥११४॥ फिर कुछ देर बाद उसने विचार किया कि मुझे उस दुष्टासे क्या प्रयोजन है ? वह कुण्डलमण्डित कहीं है जिसने मुझे बिरहरूपी सागरमें गिराकर दुःखपूर्ण अवस्था प्राप्त कराई थी ॥११५॥ उसने अवधिज्ञानमे यह जान लिया कि कुण्डलमण्डित राजा जनरुकी पत्नीके गर्भमें चित्तोत्सवाके जीवके साथ विद्यमान है ॥११६॥ उसने विचार किया कि यदि गर्भमें ही इसे मारता हूँ तो रानी विदेहा

१. चैत्यनमस्कार व० । २. सततं ख० । ३. न विद्यते वागं यन्मातृ, व० पुन्यके टिप्पणम् ।

४. तस्मिन् म० । ५. देवी शेषपुण्यादिवः सती व० । ६. चित्ती म० । ७. यन्म म० ।

ततो निर्लुङ्गित सन्त पाप मण्डितक भुवम् । नेष्यामि यद्दह दु ख तत्तमेव दुरीहितम् ॥११८॥  
 इति सचिन्तयन् क्रुद्ध पूर्वकर्मानुबन्धत । देवो रक्षति त गर्भं समृद्ध्याणिना करम् ॥११९॥  
 इति ज्ञात्वा चम कर्तुं दु ख जन्तोर्न कस्यचित् । कालं व्यवहित तद्धि कृतमामन एव हि ॥१२०॥  
 कालेनाथ सुत देवी प्रसूता युगल शुभम् । सुत दुहितर चान्ते जहार पृथुक सुर ॥१२१॥  
 आस्ताल्य मारयाम्येन शिलाया पूर्वमण्डितम् । इति ध्यात पुरा तेन पुनरेवमचिन्तयत् ॥१२२॥  
 धिङ्मया चिन्तित सर्व ससारपरिवर्धनम् । जायते कर्मणा येन तत्कुर्वीत कथ बुध ॥१२३॥  
 नृणस्यापि पुरा दु ख २श्रामप्ये न कृत मया । सर्दारम्भनिवृत्तेन ३तपोवीवधवाहिना ॥१२४॥  
 गुरोस्तस्य प्रसादेन कृत्वा धर्मं सुनिर्मलम् । ईदृशीं द्युतिमातोऽस्मि करोमि दुरित कथम् ॥१२५॥  
 स्वल्पमप्यजित पाप व्रत्रयुपचय परम् । विमग्नो येन ससार चिर दु खेन दह्यते ॥१२६॥  
 निर्दोषभावो यस्तु दयावान् सुसमाहित । स्थित करतले तस्य रत्न सुगतिसञ्जकम् ॥१२७॥  
 धृणावान् सप्रधानेन तमलकृत्य बालकम् । कुण्डले कर्णयोरेस्य चक्रे दाप्ताशुमण्डले ॥१२८॥  
 पर्णलक्ष्मीं ततो विद्या सक्रमय्य शिशौ सुर । सुखदेशे विमुच्यैन गतो धाम मनापितम् ॥१२९॥

मरणको प्राप्त होगी इसलिए यह युगल सन्तानको उत्पन्न करे पीछे देखा जायगा । दो गर्भको धारण करनेवाली इस रानीके मारनेसे मुझे क्या प्रयोजन है ? गर्भसे निकलते ही इस पापी कुण्डलमण्डितको अवश्य ही भारी दु ख प्राप्त कराऊंगा ॥११७-११८॥ ऐसा विचार करता हुआ वह असुर पूर्वकर्मके प्रभावसे अत्यन्त क्रुद्ध रहने लगा तथा हाथसे हाथको मसलता हुआ उस गर्भकी रक्षा करने लगा ॥११९॥ गौतमस्वामी कहते हैं कि राजन् ! ऐसा जानकर कभी किसीको दु ख पहुँचाना उचित नहीं है क्योंकि कालान्तरमे वह दु ख अपने आपको भी प्राप्त होता है ॥१२०॥

अथानन्तर समय आनेपर रानी विदेहाने एक पुत्र और एक पुत्री इस प्रकार युगल सन्तान उत्पन्न की । सो उत्पन्न होते ही असुरने पुत्रका अपहरण कर लिया ॥१२१॥ उसने पहले तो विचार किया कि इस कुण्डलमण्डितके जीवको मैं शिलापर पड़ाकर मार डालूँ । फिर कुछ देर बाद वह यह विचार करने लगा ॥१२२॥ कि मैंने जो विचार किया है उसे धिक्कार है । जिस कार्यके करनेसे ससार ( जन्म मरण ) की वृद्धि होती है उस कार्यको बुद्धिमान् मनुष्य कैसे कर सकता है ? ॥१२३॥ पूर्वभवमे मुनि अवस्थामे जय में सब प्रकारके आरम्भसे रहित था तथा तपरूपी कौंवरको धारण करता था तब मैंने तृणको भी दु ख नहीं पहुँचाया था ॥१२४॥ उन गुरुके प्रसाद से अत्यन्त निर्मल धर्म धारण कर मैं ऐसी कान्तिको प्राप्त हुआ हूँ । अत अब ऐसा पाप कैसे कर सकता हूँ ॥१२५॥ सचिन्त किया हुआ थोडा पाप भी परम बुद्धिको प्राप्त हो जाता है जिससे ससार-सागरमे निमग्न हुआ यह जीव चिरकाल तक दु खसे जलता रहता है ॥१२६॥ परन्तु जिसकी भावना निर्दोष है जो दयालु है और जो अपने परिणामाको ठीक रखता है सुगतिरूपी रत्न उसके करतलमें स्थित रहता है ॥१२७॥ ऐसा विचार करके हृदयमे दया उत्पन्न हो गई जिससे उसने उस बालकको मारनेका विचार छोड़ दिया तथा उसके कानोंमे देदीप्यमान किरणोंके धारक कुण्डल पहिनाकर उसे अलकृत कर दिया ॥१२८॥ तदनन्तर वह देव उस बालकमे पर्णलक्ष्मी विद्याका प्रवेश कराकर तथा उसे सुखकर स्थानमें छोड़कर इच्छित स्थानपर चला गया ॥१२९॥



नक्त शक्या स्थितेनासाबुधाने नभस पतन् । विद्याभृतेन्दुगतिना दृष्टो सुखभाजनम् ॥१३०॥  
उडुपात किमेप स्याद् विद्युन्खण्डोऽप्यवा च्युत । वितर्क्यति समुपय दृष्टो वृषुक शुभम् ॥१३१॥  
गृहीत्वा च प्रमोदेन देव्या पुष्पवतीश्रुते । वरशय्याप्रसुसाया जङ्घादेशे चकार स ॥१३२॥  
ऊचे वैता हुतस्वान उत्तिष्ठोत्तिष्ठ सुन्दरि । किं शपे बालक परय सप्रसूतासि शोभनम् ॥१३३॥  
तत कान्तकरस्पर्शासौख्यसप प्रबोधिता । शय्यात सहसोत्तस्थौ सा विधुणितलोचना ॥१३४॥  
नभसं च ददर्शातिसुन्दर सुन्दरानना । तस्यास्तदशुजालेन निद्राशोपो निराहृत ॥१३५॥  
पर च विस्मय प्राप्ता पप्रच्छ प्रियदर्शना । कथाय जनितो नाथ पुण्यवत्या स्त्रिया शिशु ॥१३६॥  
सोऽबोचदृष्टिते जातस्तवाय प्रवर सुत । प्रतीहि सशय मा गारुवत्तो धन्या परा तु का ॥१३७॥  
साबोचप्रिय वन्ध्यास्मि कुतो मे सुतसभव । प्रतारितास्मि दैवेन कि मे भूय प्रतार्यते ॥१३८॥  
सोऽबोचद्वेवि मा शङ्का कार्पा कर्मनियोगत । प्रच्छन्नोऽपि हि नारीणा ज्ञापते गर्भपभव ॥१३९॥  
साबोचदस्तु नामैव कुण्डले त्वतिचारुणा । ईदृशी मन्व्यंलोकेऽस्मिन् सुरत्ने भवत कुत ॥१४०॥  
सोऽबोचद्वेवि नानेन विचारेण प्रयोजनम् । शृणु तथ्य पतत्रेप गगनाद्वाहती मया ॥१४१॥  
मयातुमादितस्तेऽय सुत सुकुलसभव । लक्षणाणि वदन्त्यस्य महापुरणभूमिक्म् ॥१४२॥  
श्रम कृत्वापि भूयास भारमूढा च गर्भपम् । फल तनयलाभोऽत्र तत्ते जात सुख प्रिये ॥१४३॥

तदनन्तर चन्द्रगति विद्याधर रात्रिके समय अपने उद्यानमें स्थित था सो उसने आकाशसे पडते हुए सुरके पात्रस्वरूप उस बालकको देखा ॥१३०॥ क्या यह नक्षत्रपात हो रहा है ? अथवा कोई विजलीका टुकड़ा नीचे गिर रहा है ऐसा सशय कर वह चन्द्रगति विद्याधर ज्योंही आकाशमें उडा त्योंही उसने उस शुभ बालकको देखा ॥१३१॥ देखते ही उसने बड़े हर्षसे उस बालकको बीचमें ही ले लिया और उत्तम शय्यापर शयन करनेवाली पुष्पवती रानी की जाँघों के बीचमें रख दिया ॥१३२॥ यही नहीं, ऊँची आवाजसे वह रानीसे बोला भी कि हे सुन्दरि ! उठो, क्या सो रही हो ? देखो तुमने सुन्दर बालक उत्पन्न किया है ॥१३३॥ तदनन्तर पतिके हस्त स्पर्शसे उत्पन्न सुररूपी सत्पत्तिसे जाग्रत हो रानी शय्यासे सहसा उठ खड़ी हुई और श्धर उधर नेत्र चलाने लगी ॥१३४॥ ज्योंही उस सुन्दरमुरीने अत्यन्त सुन्दर बालक देखा, त्योंही उसकी क्रिणाके समूहसे उसकी अवशिष्ट निद्रा दूर हो गई ॥१३५॥ उस सुन्दरीने परम आश्चर्यको प्राप्त होकर पूछा कि यह बालक किस पुण्यवती खाने उत्पन्न किया है ? ॥१३६॥ इसके उत्तरमें चन्द्रगतिने कहा कि हे प्रिये ! यह तुम्हारे ही पुत्र उत्पन्न हुआ है । विरवास रखो, सशय मत करो, तुमसे बढ कर और दूसरी धन्य स्त्री कौन हो सकती है ? ॥१३७॥ उसने कहा कि हे प्रिये ! मैं तो वन्ध्या हूँ, मेरे पुत्र कैसे हो सकता है ? मैं देवके द्वारा ही प्रतारित हूँ—ठगी गई हूँ अब आप और क्यों प्रतारित कर रहे हैं ? ॥१३८॥ उसने कहा कि हे देवि ! शङ्का मत करो, क्योंकि कदाचित् कर्मयोगसे क्रियाके प्रच्छन्न गर्भ भी तो होता है ॥१३९॥ रानीने कहा कि अच्छा ऐसा ही सही पर यह तो बताओ कि इसने कुण्डल लोकोत्तर क्या है ? मनुष्य लोकमें ऐसे उत्तम रत्न कहाँसे आये ? ॥१४०॥ इसने उत्तरमें चन्द्रगतिने कहा कि हे देवि ! इस विचारसे क्या प्रयोजन है ? जो सत्य बात है सो सुनो । यह बालक आकाशसे नीचे गिर रहा था सो बीचमें ही मैंने प्राप्त किया है ॥१४१॥ मैं जिसकी अनुमोदना कर रहा हूँ ऐसा यह तुम्हारा पुत्र उद्युल्लस उत्पन्न हुआ है क्योंकि इसके लक्षण इसे महापुरणसे उत्पन्न सूचित करते हैं ॥१४२॥ बहुत भारी श्रम कर तथा गर्भका भार धारण कर जो फल प्राप्त होता है वह पुत्रलाभ रूप ही होता है । सो हे प्रिये ! तुम्हें यह फल

कुञ्चिजातोऽपि पुत्रस्य य कृत्यं कुरुते न ना<sup>१</sup> । अपुत्र एव कान्तेऽसौ जायते रिपुरेव वा ॥१४४॥  
 तव सोऽयमपुत्राया सति पुत्रो भविष्यति । अन्तर्यानेन किं कृत्यमत्र वस्तुनि शोभने ॥१४५॥  
 एवमस्त्विति सभाप्य देवा सूतिगृह गता । प्रभाते सुतजन्मास्यास्तुष्टया लोके प्रकाशितम् ॥१४६॥  
 ततो जन्मो सवस्तस्य पुरेऽस्मिन् रथनूपुरे । सप्रवृत्त समागच्छद् विस्मिताशेषबान्धव ॥१४७॥  
 रत्नकुण्डलभान्ना मण्डलेन यतो वृत । प्रभामण्डलनामास्य पितृभ्या निमित्त तत ॥१४८॥  
 अपिंत पोपणयासौ धाम्या लीलामनोहर । सर्वान्त पुरलोकस्य करपद्ममधुवत ॥१४९॥  
 विदेहा तु हते पुत्रे कुररीवत्कृतस्वना । बन्धूनपातयत् सर्वान् गम्भारे शोकसागरे ॥१५०॥  
 परिदेवनमेव च चक्रे चक्राहतेव सा । हा वस वेन नातोऽसि मम दुष्करकारिणा ॥१५१॥  
 विष्णुस्य कथ तस्य पापस्य प्रवृत्तौ करी । अज्ञान जातमात्र त्वा गृहीतु भ्रावचेतस ॥१५२॥  
 परिचमाया इवाशया सध्येवेय सुता मम । स्थिता स तु परिप्रासो मन्दाया पूर्वव सुत ॥१५३॥  
 ध्रुव भवान्तरे कोऽपि मया बालो वियोजित । तदेव फलित कर्म न कार्यं बाजवजितम् ॥१५४॥  
 मारितास्मि न किं तेन पुत्रचोरणकारिणा । पुरु प्राप्तास्मि यददु ख समागत्यार्द्धवैशसम्<sup>२</sup> ॥१५५॥  
 इति तां कुर्वतीमुच्चैर्बिह्वलां परिदेवनम् । समास्वासयदागत्य जनको निगदन्नितम् ॥१५६॥  
 प्रिये मा गा पर शोक जीवयेव शरीरज<sup>३</sup> । हत केनाप्यसौ जीवन् द्रव्यसे ध्रुवमेव हि ॥१५७॥

अनायास ही प्राप्त हो गया है ॥१४३॥ जो मनुष्य कुञ्चिसे उत्पन्न होकर भी पुत्रका कार्य नहीं करता है हे प्रिये ! वह अपुत्र ही है अथवा शत्रु ही है ॥१४४॥ हे पतिव्रते ! तुम्हारे पुत्र नहीं है सो यह तुम्हारा पुत्र हो जायगा । इस उत्तम वस्तुके भीतर जानेसे क्या प्रयोजन है ? ॥१४५॥

तदनन्तर ऐसा ही हो इस प्रकार कहकर रानी प्रसूतिकಾಗृहमे चली गई और प्रात काल होते ही इसके पुत्र जन्मका समाचार लोकमे बड़े हर्षसे प्रकाशित कर दिया गया ॥१४६॥ तदनन्तर रथनूपुर नगरमे पुत्रका जन्मोत्सव किया गया । इस उत्सवमे आश्चर्यचकित होते हुए समस्त भाई-बन्धु रिश्तेदार सम्मिलित हुए ॥१४७॥ चूँकि वह बालक रत्नमय कुण्डलोकी किरणाके समूहसे घिरा हुआ था इसलिए माता पिताने उसका भामण्डल नाम रक्खा ॥१४८॥ अपनी लीलाआसे मनको हरनेवाला तथा समस्त अन्त पुरके करकमलाम भ्रमरके समान सचार करनेवाला वह बालक पोपण करनेके लिए धायको सौपा गया ॥१४९॥

इधर पुत्रके हरे जानेपर कुररीके समान विलाप करती हुई रानी विदेहाने समस्त बन्धुआ को शोकरूपी सागरमे गिरा दिया ॥१५०॥ चक्रसे ताड़ित हुईके समान वह इस प्रकार विलाप कर रही थी कि हाय वत्स ! कठोर कार्य करनेवाला कौन पुरुष तुम्हे हर ले गया है ? ॥१५१॥ जिसे उत्पन्न होते देर नहीं थी ऐसे तुम्हें अबोध बालकको उठानेके लिए उस निर्दय पापीके हाथ कैसे पसरे हागे ? जान पडता है कि उसका हृदय पत्थरका बना होगा ॥१५२॥ जिस प्रकार पश्चिम दिशामे आकर सूर्य तो अस्त हो जाता है और सन्ध्या रह जाती है उसी प्रकार मुझ अभागिनीका पुत्र तो अस्त हो गया और सध्याकी भाँति यह पुत्रो स्थित रह गई ॥१५३॥ निश्चित ही भवान्तरमे मैंने किसी बालकका वियोग किया होगा सो उसी कर्मने अपना फल दिखाया है क्योंकि बिना बीज के कोई कार्य नहीं होता ॥१५४॥ पुत्रकी चोरी करनेवाले उस दुष्टने मुझे मार हा क्या नहीं डाला । जब कि अधमरी करके उसने मुझे बहुत भारी दु ख प्राप्त कराया है ॥१५५॥ इस प्रकार बिह्वल होकर जोर जोरसे विलाप करती हुई रानीके पास जाकर राजा जनक यह कहते हुए उसे समझाने लगे कि हे प्रिये ! अत्यधिक शोक मत करो, तुम्हारा पुत्र जीवित ही है, कोई उसे हरकर ले गया

दरपते नेदयते भूयः पुनर्जांबलोन्यते । पूर्वकर्मानुभावेन जाये रोदिपि किं वृथा ॥१५८॥  
 व्रज स्वास्वमिमं लेखं सुहृदो<sup>१</sup> नाययाम्यहम् । घातां दशरथस्येमां परिवेदयितु प्रिये ॥१५९॥  
 स चाह च मुतस्याशु करिष्यामि गवेपणम् । प्रच्छाद्य धरणीं सर्वां चरैः कुशलचेष्टितैः ॥१६०॥  
 दयितां सान्त्वयित्वैवं लेखं मित्राय दत्तवान् । तं प्रप्राच्य सशोकेन पूरितोऽतिगरीयसा ॥१६१॥  
 मह्यमन्वेपितस्ताभ्यां नासी दष्टो यदाभ्रकः । मन्दीकृत्य तदा शोकमस्थुः कृच्छ्रेण बान्धववा<sup>२</sup> ॥१६२॥  
 नासावासीजनस्तत्र पुरुषः प्रमदायवा । यो न वाप्यपरीताडस्तच्छोकेन वशाहतः ॥१६३॥  
 शोकविस्मरणे हेतुर्बभूव सुमनोहरा । जानकी बन्धुलोकस्य शुभशैशवचेष्टिता ॥१६४॥

### मालिनीवृत्तम्

प्रमदमुपगतानां योपितामङ्गदेशे  
 पृथतनुभवकान्या लिङ्गती दिवसमूहम् ।  
 विपुलकमलयाता श्रीरिवाली सुकण्ठा  
 शुचिद्वसितसितास्या बर्धताम्भोजनेत्रा ॥१६५॥  
 प्रभरति गुणसस्यं येन तस्यां समृद्ध  
 भजदखिलजनानां सौख्यसंभारदानम् ।  
 तदतिशयमनोज्ञा चारुलक्षमान्विताङ्गा  
 जगति निगदितासौ भूमिसान्येन सीता ॥१६६॥  
 वदनजितशशाङ्का पल्लवच्छाद्यपाणिः  
<sup>३</sup>शितमणिसमतेजः<sup>४</sup>वेशसंघातरम्या ।

हे और निश्चित ही तुम उसे जीवित देसोगो ॥१५६-१५७॥ इष्ट वस्तु पूर्व कर्मके प्रभावसे अभी दिखती है फिर नहीं दिखती, तदनन्तर फिर कभी दिखाई देने लगती है । इसलिए हे प्रिये ! व्यर्थ ही क्यों रोती हो ? ॥१५८॥ तुम स्वस्थताको प्राप्त होओ । हे प्रिये ! मैं यह समाचार बतलानेके लिए मित्र राजा दशरथके पास पत्र भेजता हूँ ॥१५९॥ वह और मैं दोनों ही चतुर गुणचरोसे समस्त पृथिवीको आच्छादित कर शीघ्र ही तेरे पुत्रकी रोज करेंगे ॥१६०॥ इस प्रकार स्त्रीको सान्त्वना देकर उसने मित्रके लिए पत्र दिया । उस पत्रको बाँचकर राजा दशरथ अत्यधिक शोकसे व्याप्त हो गये ॥१६१॥ उन दोनोंने पृथिवीपर पुत्रकी रोज की । पर जब वहाँ पुत्र नहीं दिखता तब सब बन्धुजन शोकको मन्दकर बड़े कष्टसे चुप बैठ रहे ॥१६२॥ उस समय न कोई ऐसा पुरुष था और न कोई ऐसी स्त्री ही थी जिसके नेत्र पुत्र सम्यन्धी शोकके कारण अश्रुओंसे व्याप्त नहीं हुए हों ॥१६३॥ उस समय बन्धुजनोंका शोक भुलानेका कारण यदि कुछ था तो अत्यन्त मनोहर और शुभ बालचेष्टाओंको धारण करनेवाली जानकी ही थी ॥१६४॥

वह जानकी हर्षको प्राप्त होने वाली स्त्रियोंकी गोदमें निरन्तर वृद्धिगत हो रही थी । वह अपने शरीरकी विशाल कान्तिसे दिशाओंके समूहको लिप्त करती थी । वह विपुल कमलोंको प्राप्त लक्ष्मीके समान-सी जान पड़ती थी, उसका कण्ठ सुन्दर था, पवित्र हास्यसे उसका मुख शुभ हो रहा था और कमलके समान उसके नेत्र थे ॥१६५॥ समस्त भक्तजनोंके लिए सुखका समूह प्रदान करने वाला गुणरूपी धान्य, चूँकि उस जानकीमें अत्यन्त समृद्धिके साथ उत्पन्न होता था, अतः अत्यन्त मनोहर और उत्तम लक्ष्णांसे युक्त उस जानकी को लोग भूमिकी समानता रखनेके कारण सीता भी कहते थे ॥१६६॥ उसने अपने मुखसे चन्द्रमाको जीव लिया था, उसके हाथ पल्लवके समान लाल कान्तिके धारक थे, वह नील मणिके समान कान्तिके

जितसमदगहसखीगतिः सुन्दरभू-  
 र्यकुलसुरभिवत्रामोदयद्वालिमुन्दा ॥१६७॥  
 अतिमृदुमुजमाला शशशस्त्रानुमध्या  
 प्रवरसरसरम्भास्तम्भसाम्यस्थितोरः ।  
 स्थलकमलसमानोत्तुहृष्टोऽज्वलाद्भिः  
 प्रभवदतिविशालच्छायावर्चोजयुग्मा ॥१६८॥  
 प्रवरभवनकुक्षिप्रत्युदारेषु कान्त्या  
 विविधविहितमार्गा लब्धवर्णा पर सा ।  
 सततमुपगतान्तःससकन्याशताना-  
 मतिशय रमणीयं शास्त्रमार्गेण रेमे ॥१६९॥  
 अपि दितकरदीप्तिः कौमुदी चन्द्रकान्तिः  
 सुरपतिमहिषी वा कापि वा सा सुभद्रा ।  
 यदि भजति तद्रीयासङ्गशोभां कथं चि-  
 त्त्रिपतमतिमनोज्ञास्तास्ततो वेदनीयाः ॥१७०॥  
 विधिरिव रतिदेवी कामदेवस्य बुद्ध्या  
 दशरथतनयस्यावहृत्पत्यपूर्वजस्य ।  
 जनरुनरपतिस्तां सर्वविज्ञानयुक्तां  
 ननु रविवरसङ्गस्थोचिता पद्मलक्ष्मीः ॥१७१॥  
 इत्यार्षे रविपेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरि ते सीताभामण्डलोत्पत्त्यमिधानं  
 नाम पद्मिशातितमं पर्व ॥२६॥

धारक केशोके समूहसे मनोहर थी, उसने कामोन्मत्त हँसिनी चालको जीत लिया था, उसकी भौंहें सुन्दर थीं तथा मौलिश्रीके समान सुगन्धित उसकी मुखके सुवाससे उसके पास भौरांके समूह मँडराते रहते थे ॥१६७॥ उसकी भुजाएँ अत्यन्त सुकुमार थीं, उसकी कमर वज्रके समान पतली थी, उसकी जाँघें उत्तम सरस केलेके स्तम्भके समान सुन्दर थी, उसके पैर स्थलकमलके समान उन्नत पृष्ठभागसे सुशोभित थे और उसके ठठते हुए स्तनयुगल अत्यधिक कान्तिसे युक्त थे ॥१६८॥ वह विदुषी जानकी उत्तमोत्तम राजमहल्लोके विशाल कोष्ठोंमें अपनी कान्तिसे विविध मार्ग बनाती हुई सात सौ कन्याओके मध्यमें स्थित हो बड़ी सुन्दरताके साथ शास्त्रानुसार क्रीड़ा करती थी ॥१६९॥ यदि सूर्यकी प्रभा, चन्द्रमाकी चोँदनी, इन्द्रकी दन्द्राणी, और चक्रवर्ती की पट्टरानी सुभद्रा किसी तरह जानकीके शरीरकी शोभा प्राप्त कर सकतीं तो वे निश्चित ही अपने पूर्वरूपकी अपेक्षा अधिक सुन्दर होतीं ॥१७०॥ जिस प्रकार विधाताने रतिको कामदेवकी पत्नी निश्चित किया था उसी प्रकार राजा जनकने सर्व प्रकारके विज्ञानसे युक्त सीताको राजा दशरथके प्रथम पुत्र रामकी पत्नी निश्चित किया था सो ठीक ही है क्योंकि कमलोंकी लक्ष्मी सूर्यकी किरणोंके साथ संपर्क करने योग्य ही है ॥१७१॥

इस प्रकार आर्य नामसे प्रसिद्ध रविपेणाचार्यके द्वारा प्रोक्त पद्मचरितमें सीता और भामण्डलकी उत्पत्तिका कथन करने वाला छुन्नीसर्वां पर्व समाप्त हुआ ॥२६॥

## सप्तविंशतितमं पर्व

ततो मगधराजैन्द्रश्वारुच्युत्तान्तविस्मित । पप्रच्छ गणिनामप्रथं नूतनप्रथयान्वित ॥१॥  
 किं पुनस्तस्य माहात्म्यं दृष्टं जनवभूयता । रामस्य येन सा तस्मै तेन उद्धृता निरूपिता ॥२॥  
 तत करतलासङ्घद्विगुणीभूतदन्तभा । जगौ गणधरो वाक्यं चित्तप्रह्लादनावहम् ॥३॥  
 शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि रामस्याखिलकर्मण । यत् प्रकल्पिता कन्या जनकेन सुपुद्गिना ॥४॥  
 दक्षिणे विजयाद्वैत्य कैलासाद्रेस्तथोत्तरे । अन्तरेऽयन्तव्रह्मव सन्ति देशा महान्तरा ॥५॥  
 तत्रार्धवर्षी देशो नि सयमनमस्कृति । निर्विदग्धजनो घोरम्लेच्छलोकममाकुल ॥६॥  
 मयूरमालनगरे<sup>१</sup> वृत्तान्तनगरोपमे ।<sup>२</sup> आन्तरङ्गतमो नामेत्यर्द्धवर्षचारिणाम् ॥७॥  
 पूर्वापरायतज्ञोप्यां यावन्तो म्लेच्छनभवा । कपोतशुककाम्बोजमङ्कणाद्या सहस्रश ॥८॥  
 गुप्ता बहुविधैः सैन्यैर्भीषणैर्विधिधायुधैः । आन्तरङ्गतम प्रीत्या परिवार्यं ससाधना ॥९॥  
 आर्यानेताङ्गनपदान् प्रचण्डान्तररहस्य । उद्गासयन्त आजगमुरिति कारण्यवनिता ॥१०॥  
 देश जनकराजस्य ततो व्याप्तु समुद्यता । शलभा इव नि शेषमुपप्लवविधायिन ॥११॥  
 जनकेन च साकेता युवान प्रेषिता<sup>३</sup> दुतम् ।<sup>४</sup> आन्तरङ्गतम प्राप्तमुत्तुर्दशरथस्य ते ॥१२॥  
 विज्ञापयति देव त्वा जनको जनवसल । पौलिन्द<sup>५</sup> परचक्रेण समाक्रान्त महीतलम् ॥१३॥

अथानन्तर भामण्डलके सुन्दर वृत्तान्तसे आश्चर्यचकित हुए राजा श्रेणिकने नूतन चिनयसे युक्त हो अर्थात् पुन नमस्कार कर गौतम गणधरसे पूछा कि हे भगवन् ! राजा जनकने रामका ऐसा कौनसा माहात्म्य देखा कि जिससे उसने रामके लिए बुद्धिपूर्वक अपनी कन्या देनेका निश्चय किया ? ॥१-२॥ तदनन्तर करतलके आसङ्गसे जिनके दाँतोंकी फान्ति दूनी हो गई थी ऐसे गौतम गणधर चित्तको आह्लादित करनेवाले वचन बोले ॥३॥ उन्होंने कहा कि हे राजन् ! मुनो, संम्लेशहीन कार्यको करनेवाले रामचन्द्रके लिए अत्यन्त बुद्धिमान् जनकने जिस कारण अपनी कन्या देना निश्चित किया था वह मैं कहता हूँ ॥४॥ विजयाद्वै पर्वतके दक्षिण और कैलास पर्वतके उत्तरकी ओर बीच-बीचमें अन्तर देकर बहुतसे देश स्थित हैं ॥५॥ उन देशोंमें एक अर्धवर्षर नामका देश है जो असयमी जनोके द्वारा मान्य है; धूर्तजनोका जिसमें निवास है तथा जो अत्यन्त भयकर म्लेच्छ लोगोंसे व्याप्त है ॥६॥ उस देशमें यमराजके नगरके समान एक मयूरमाल नामका नगर है । उसमें आन्तरङ्गतम नामका राजा राज्य करता था ॥७॥ पूर्वसे लेकर पश्चिम तककी लम्बी भूमिमें कपोत, शुक, काम्बोज, मङ्कन आदि जितने हजारों म्लेच्छ रहते थे वे अनेक प्रकारके शस्त्र तथा नाना प्रकारके भीषण अस्त्रोंसे युक्त हो अपने सत्र साधनोंके साथ प्रीतिपूर्वक आन्तरङ्गतम राजाकी उपासना करते थे ॥८-९॥ जिनका गमन बीच-बीचमें अत्यन्त वेगसे होता था तथा जो वयासे रहित थे ऐसे वे म्लेच्छ इन आर्य देशोंको उजाडते हुए यहाँ आये ॥१०॥ तदनन्तर टिड्डियोंके समान उपद्रव करनेवाले वे म्लेच्छ राजा जनकके देशको व्याप्त करनेके लिए उद्यत हुए ॥११॥ राजा जनकने शीघ्र ही अपने योद्धा अयोध्या भेजे । उन्होंने जाकर राजा दशरथसे आन्तरङ्गतमके आनेकी खबर दी ॥१२॥ उन्होंने कहा कि हे राजन् ! प्रजा-

१. नूतनप्रथयान्वित क०, ए० । २. तत्रार्धवर्षरीदेशो व० । ३. मयूरमालानगरे क०, ए० ।

४. आन्तरङ्गतमे क०, ए० । ५. मङ्कन्याया व० । ६. प्रेषिता क०, ए०, व० । ७. आतासन्तजना तेन दूतस्तेन वदन्त ये (१) क०, ए० । ८. प्रातु व० । ९. पौलिन्ध म० ।

आर्यदेशा परिश्वस्ता म्लेच्छेद्भद्रासित जगत् । एकवर्णां प्रजा सर्वां पापा कर्तुं समुद्यता ॥१४॥  
 प्रजासु विप्रनष्टासु जावाम किं प्रयोजना<sup>१</sup> । चिन्वतामिति किं कुर्मो ब्रजामो वा कमाश्रयम् ॥१५॥  
 किं वा दुर्गं ममाश्रित्य निष्ठाम समुद्भ्रजना । नदीकालि<sup>२</sup>द्रभागान् वा गिरि वा विपुलाह्वयम् ॥१६॥  
 अथवा सर्वसैन्येन निकुञ्जगिरिमाश्रिता । सनिरुध्म<sup>३</sup> समागच्छत् परसैन्य भयानकम् ॥१७॥  
 साधुगोश्रावकाकाणां प्रजामेता सुविह्वलाम् । सत्यक् सधारयिष्यामस्यकथा जीव सुदुस्महम् ॥१८॥  
 अता ब्रवामि राजरुवा<sup>४</sup> यत्त्वया पाल्यते महा । तत्र राज्य महाभाग त्वमेव हि जगपति ॥१९॥  
 यजन्ते<sup>५</sup> भावत सन्तो यावन्त श्रावकादय । पञ्चयज्ञान् विधानेन<sup>६</sup> व्रीह्याद्यैर्वेदबाजकै<sup>७</sup> ॥२०॥  
 'मुक्तिचान्तिगुणैर्युक्ता यच्च ध्यानपरायणा । तप्यन्ते सुतपो मोक्षसाधन गगनाभ्ररा ॥२१॥  
 महा-तश्च पुरस्कारा यच्चैयमभवनादिषु । विधायन्तेऽभिमेषैश्च जिनाना षाण्कर्मणम् ॥२२॥  
 'प्रजासु रक्षितास्वेतसर्वं भवति रक्षितम् । ततश्च धर्मकामार्थां प्रेत्य चेह च भ्रूताम् ॥२३॥  
 बहुकोपो क्रशो य प्रात पालयति क्षितिम् । परचक्राभिभूतश्च नावसाद<sup>८</sup> समरनुते ॥२४॥  
 हिसाधर्मविहानाना यच्छ्रुता यागदक्षिणाम् । कुरुते पालन यश्च तस्य भोगा पुनर्भुव ॥२५॥  
 धर्मार्थकाममोक्षानामधिकारा मर्हीतले । जनाना राजगुप्ताना जायन्ते तेऽन्यथा वृत् ॥२६॥  
 नृपबाहुबलच्छाया समाश्रित्य सुख प्रजा । ध्यायन्त्यात्मानमन्यथास्तैर्वाधर्मिणो बुधा ॥२७॥

वत्सल राजा जनक आपसे निवेदन करते हैं कि समस्त पृथिवीतल म्लेच्छ राजाकी सेनासे आक्रान्त हो चुका है ॥१३॥ उन म्लेच्छोंने आर्य देश नष्ट भ्रष्ट कर दिये हैं तथा समस्त जगत्को उजाड़ दिया है । वे पापी समस्त प्रजाको एक वर्णकी करनेके लिए उद्यत हुए हैं ॥१४॥ जब प्रजा नष्ट हो रही है तब हम किसलिए जीवित रह रहे हैं ? विचार कीजिए कि इस दशामें हम क्या करें ? अथवा किसकी शरणमें जावें ? ॥१५॥ हम मित्रजन्तके साथ किस दुर्गका आश्रय लेकर रहें अथवा नन्दी, कलिन्द या विपुलगिरि इन पर्वतोंका आश्रय लें ? ॥१६॥ अथवा सब सेनाके साथ निकुञ्जगिरिमें जाकर शत्रुकी आती हुई भयकर सेनाको रोकें ॥१७॥ अथवा यह कठिन दिखता है कि हम अपना जीवन देकर भी साधु, गौ तथा श्रावकोंसे व्याप्त इस निह्वल प्रजाकी रक्षा कर सकेंगे ॥१८॥ इसलिए हे राजन् ! मैं आपसे कहता हूँ कि चूँकि आप ही पृथिवीकी रक्षा करते रहे, अत यह राज्य आपका ही है और हे महाभाग ! आप ही जगत्के स्वामी हैं ॥१९॥ जितने श्रावक आदि सत्पुरुष हैं वे भावपूर्वक पूजा करते हैं । अङ्कुर उत्पन्न होनेकी शक्तिसे रहित पुराने धान आदिके द्वारा विधिपूर्वक पाँच प्रकारके यज्ञ करते हैं ॥२०॥ निर्मथ्य मुनि मुक्ति चान्ति आदि गुणोंसे युक्त होकर ध्यानमें तत्पर रहते हैं तथा मोक्षका साधनभूत उत्तम तप तपते हैं ॥२१॥ जिनमन्दिर आदि स्थलोंमें कर्मोंको नष्ट करनेवाले जिनेन्द्र भगवान्की बड़ी बड़ी पूजाएँ तथा अभिषेक होते हैं ॥२२॥ प्रजाकी रक्षा रहने पर ही इन सबकी रक्षा हो सकती है और इन सबकी रक्षा होने पर ही इस लोक तथा परलोकमें राजाआके धर्म, अर्थ, कामरूप त्रिवर्ग सिद्ध हो सकते हैं ॥२३॥ बहुत बड़े खजानेका स्वामी होकर जो राजा प्रसन्नतासे पृथिवीको रक्षा करता है और परचक्रके द्वारा अभिभूत होने पर भी जो विनाशको प्राप्त नहीं होता तथा हिसाधर्मसे रहित एव यज्ञ आदिमें दक्षिणा देनेवाले लोगोंको जो रक्षा करता है उस राजाको भोग पुन प्राप्त होते हैं ॥२४-२५॥ पृथिवीतलपर मनुष्योंकी धर्म अर्थ, काम और मोक्षका अधिकार है सो राजाआके द्वारा सुरक्षित मनुष्योंको ही वे अधिकार प्राप्त होते है अन्यथा किस प्रकार प्राप्त हो सकते हैं ? ॥२६॥ राजाके बाहुबलकी छायाका आश्रय

१ किं प्रयोजनम् म० । २ नदीकीली द्रभागान्वा म० । ३ सत्रिरुध्म म० । ४ राजत्त्वम् म० । ५ यजते क०, ल० । ६ प्रधानेन म० । निधानेन व० । ७ यवगीजकै व० । ८ युक्ति म० । ९ प्रजा सुरक्षितास्वेतम् म० । १० समश्रुतम् म० । ११ पुनरपि प्राप्या भवन्ति ।

यस्य देश समाश्रित्य साधव कुर्वते तप । पष्टमश नृपस्तस्य लभते परिपालनात् ॥२८॥  
 अथैवमिति तत्सर्वमुपश्रव्य<sup>१</sup> नराधिप । द्रुत राम समाहूय<sup>२</sup> राज्य दातु समुद्यत ॥२९॥  
 मुदितै विद्मरैर्भैरापनानन्दा समाहता<sup>३</sup> । आजगमु सचिवा मर्धं गजवानिसत्समाहृता ॥३०॥  
 जाम्बूनदमयान् कुम्भान् गृहीत्वा वारिष्पूरितान् । यद्दृष्ट्वा परिकर यूग भागमाना न्यागता ॥३१॥  
 चारनपुरनिस्त्वाना दधाना वेपमञ्चितम् । षट्त्रालङ्कारमादाय पटलेष्वागता<sup>४</sup> स्त्रिय ॥३२॥  
 आटोपमादरा दृष्ट्वा क्रिमेतदिति शन्दितम् । राम दशरथोऽञ्चोच पालयेमा सुत व्रितम् ॥३३॥  
 रिपुचञ्चमिहायात यद्देवैरपि दुर्जयम् । विजेप्ये तद्दह गावा प्रजाना हितकाम्यया ॥३४॥  
 ततो राज्ञीवदयनो राघवो नृपमप्रवीत् । विमर्शं तात सरम्ममस्थाने प्रतिपद्यसे ॥३५॥  
 किं कार्यं पशुमस्यैस्त्वैरसभापैर्दुरा मभि । येषामभिसुखीभाव प्रयासि रणकाङ्क्षया ॥३६॥  
 न ह्याखूना विरोधेन क्षुभ्यन्ति वरवारणा । न चापि तूदादाहार्थं<sup>५</sup> सन्नद्यति विभावसु ॥३७॥  
 तत्र प्रयातुमस्माक दुष्यते यच्छ शासनम् । इत्युक्ते हृषिताङ्गस्त परिष्वज्य पिताम्बवात् ॥३८॥  
 एव बाल सुकुमारान् पद्म<sup>६</sup> पद्मनिनेषण । कथं तान् सदसे जेतु न प्रत्येग्यहमर्भकं<sup>७</sup> ॥३९॥  
 सोऽञ्चोच सद्य उत्पन्नो भृशमलपोऽपि पावक । कथं दहति विस्तीर्णं महद्भि किं प्रयोजनम् ॥४०॥  
 बाल सूर्यस्तमो घोर घृतीरक्त्तगणस्य च । एको नाशयति क्षिप्र भूतिभि किं प्रयोजनम् ॥४१॥

लेकर प्रजा मुत्ससे आत्माका ध्यान करती है तथा आश्रमवासी चिद्वान् निराकुल रहते हैं ॥२७॥  
 जिस देशका आश्रय पाकर साधुजन तपश्चरण करते हैं उन सबकी रक्षाके कारण राजा तपका  
 छठवों भाग प्राप्त करता है ॥२८॥

अथानन्तर यह सब सुनकर राजा दशरथ शीघ्र ही रामको बुलाकर राज्य देनेके लिए उद्यत  
 हो गये ॥२९॥ किङ्करोने प्रसन्न होकर बहुत भारी आनन्द देनेवाली भेरी बजाई । हाथी और  
 घोडासे व्याकुल समस्त मन्त्री लोग आ पहुँचे ॥३०॥ देदीप्यमान शूरवीर जलसे भरे हुए सुवर्ण-  
 कलश लेकर तथा कमर कसकर आ गये ॥३१॥ जितके नूपुरोंसे सुन्दर राक्ष हो रहा था तथा  
 जो उत्तमोत्तम वेप धारण कर रही थीं ऐसी स्त्रियों पिटारोंमें बच्चालकार ले लेकर आ गईं ॥३२॥  
 यह सब तैयारी देखकर रामने पूछा कि यह क्या है ? तत्र राजा दशरथने कहा कि हे पुत्र !  
 तुम इस पृथिवीका पालन करो ॥३३॥ यहाँ ऐसा शत्रुदल आ पहुँचा है जो देवाके द्वारा भी  
 दुर्जय है । मैं प्रजाके हितकी वाञ्छासे जाकर उसे जीतूँगा ॥३४॥ तदनन्तर कमललोचन रामने  
 राजा दशरथसे कहा कि हे तात ! अस्थानमें नोध क्यों करते हो ? ॥३५॥ आप रणकी इच्छा  
 से जिनने सम्मुख जा रहे हैं, उन पशुरूप भापाहीन दुष्ट मनुष्योंसे क्या कार्य हो सकता  
 है ? ॥३६॥ चूहोंके विरोध करनेसे उत्तम गजराज क्षोभको प्राप्त नहीं होते और न सूर्य रईको  
 जलानेके लिए तत्पर हाता है ॥३७॥ वहाँ जानेके लिए तो मुझे आज्ञा देना उचित है सो दीजिये ।  
 ऐसा कहनेपर हर्षित शरीरके धारी पिताने रामका आलिङ्गन कर कहा ॥३८॥ कि हे पद्म ! अभी  
 तुम बालक हो, तुम्हारा शरीर सुकुमारहै, तथा नेत्र कमलके समान हैं, इसलिए हे बालक ! तुम  
 उन्हें किस तरह जीत सकोगे इसका मुझे प्रत्यय नहीं है ॥३९॥ रामने उत्तर दिया कि तत्काल  
 उत्पन्न हुई थोड़ी-सी अग्नि बड़े विस्तृत वनको जला देती है इसलिए बड़ोंसे क्या प्रयोजन  
 है ? ॥४०॥ बालसूर्य अकेला ही घोर अन्धकारको तथा नक्षत्र समूहकी कान्तिको नष्ट कर देता  
 है इसलिए विभूतिसे क्या प्रयोजन है ? ॥४१॥

१. मुपश्रित्य ज०, ब०, क०, ख० । २. दातु राज्यम् म० । ३. समाहता म० । ४. पटलेष्वागताः  
 म० । ५. तत्परो भवति । ६. हे राम । ७. प्रत्यय करोमि । ८. अर्भक म० । ९. सद्यमुत्पन्नो क०, ख०, म० ।

तत सहस्ररोमाज्ञो नृपो दशरथ पुन । प्रमोद परम प्राप्नो विपाद च सनात्परकृ ॥४२॥  
 सत्त्वयागादिवृत्तीना क्षत्रियाणामिय स्थिति । उसहन्ते प्रयातु यद्दिहातुमपि जीवितम् ॥४३॥  
 अथवा क्षयमप्राप्ते जन्तुरायुपि नाशनुते । मरण गहन प्राप्त पर यद्यपि जायते ॥४४॥  
 इति चिन्तयतस्तस्य कुमारी रामलक्ष्मणौ । पितु पादाब्जयुगल प्रणम्योपगती वहि ॥४५॥  
 तत सर्वाङ्कुशशैलै सर्वशास्त्रविशारदौ । सर्वलक्षणसपूर्णा सर्वस्य प्रियदर्शनी ॥४६॥  
 चतुरङ्गत्रलोपेतौ धर्ममाणौ विभूतिभि । सप्रयाती रथारूढौ दीप्यमानौ स्वतेजसा ॥४७॥  
 पूर्वमेव तु निर्यातो जनक सोदरान्वित । अन्तर योजने द्वे च परसैन्यस्य तस्य च ॥४८॥  
 शत्रुशब्दममृष्यन्तो जनकस्य महारथा । विविशुर्गच्छसपात मेघवृन्दमिव प्रहा ॥४९॥  
 प्रवृत्तश्च महाभीम सप्राप्तो रोमहर्षण । बृहप्रहरणाटोप आर्यम्लेच्छभटाकुल ॥५०॥  
 जनक कनक इष्टा पर गहनमागतम् । अचोदयदतिक्रुद्धो दुर्वारकरिणा घटाम् ॥५१॥  
 वर्धरेणु महासैन्यैर्भर्गैर्भर्गै पुन पुन । भीमैर्जनकराजोऽपि दिक्षु सर्वांसु वेष्टित ॥५२॥  
 एतस्मिन्नन्तरे प्राप्त पद्म सौमित्रिणा सह । अपार गहन सैन्यमपश्यच्चारलोचन ॥५३॥  
 इष्टा तस्य सितच्छत्र विशीर्गा शत्रुवाहिनी । तमसा सन्तति स्कीता पीर्णमासीविषु यथा ॥५४॥  
 आश्वासितश्च बाणौपैर्जनको ध्वस्तकङ्कट । तेन जन्तुर्यथा दु खो धर्मेण जगदायुषा ॥५५॥

तदनन्तर जिनका शरीर रोमाञ्चित हो रहा था ऐसे राजा दशरथ पुन परम प्रमोद और विपादको प्राप्त हुए । उनके नेत्रासे आँसू निकल पड़े ॥४२॥ सत्त्व त्याग आदि करना जिनकी वृत्ति है ऐसे क्षत्रियोंका यही स्वभाव है कि वे युद्धमें प्रस्थान करनेके लिए अथवा जीवनका भी त्याग करनेके लिए सदा उत्साहित रहते हैं ॥४३॥ उन्होंने विचार किया कि जब तक आयु क्षीण नहीं होती है तब तक यह जीव परम कष्टको पाकर भी मरणको प्राप्त नहीं होता ॥४४॥ इस प्रकार राजा दशरथ विचार ही करते रहे और राम लक्ष्मण दोनों कुमार उनके चरण कमलको नमस्कार कर बाहर चले गये ॥४५॥

तदनन्तर जो सर्व शास्त्र चलानेमें कुशल थे, सर्व शास्त्रोंमें निपुण थे, सर्व लक्षणोंसे परिपूर्ण थे, जिनका दर्शन सबके लिए प्रिय था, जो चतुरङ्ग सेनासे सहित थे, विभूतियोंसे परिपूर्ण थे तथा आत्मतेजसे देदीप्यमान हो रहे थे ऐसे दोनों कुमार रथपर आरूढ होकर चले ॥४६-४७॥ राजा जनक अपने भाईके साथ पहले ही निकल पडा था । जनक और शत्रुसेनाके बीचमें दो योजनका ही अन्तर रह गया था ॥४८॥ जिस प्रकार सूर्य चन्द्रमा आदि ग्रह मेघसमूहके बीच में प्रवेश करते हैं उसी प्रकार राजा जनकके महारथी योद्धा शत्रुके शब्दको सहन नहीं करते हुए म्लेच्छसमूहके भीतर प्रविष्ट हो गये ॥४९॥ दोनों ही सेनाओंके बीच जिसमें बड़े बड़े शास्त्रों का विस्तार फैला हुआ था, और जो आर्य तथा म्लेच्छ योद्धाओंसे व्याप्त था, ऐसा रोमहर्षित करनेवाला महाभयकर युद्ध हुआ ॥५०॥ राजा जनकने देखा कि भाई कनक सकटमें पड गया है तब उसने अत्यन्त क्रुद्ध होकर दुर्वार हाथियोंकी घटाको प्रेरित कर आगे बढ़ाया ॥५१॥ म्लेच्छोंकी सेना बहुत बड़ी तथा भयकर थी इसलिए उसने बार बार भग्न होनेपर भी भी राजा जनकको सब दिशाओंमें घेर लिया ॥५२॥ इसी बीचमें सुन्दर नेत्रोंको धारण करनेवाले राम लक्ष्मणके साथ वहाँ जा पहुँचे । पहुँचते ही उन्होंने शत्रुकी अपार तथा भयकर सेना देखी ॥५३॥ रामके सफेद छत्रकी देखकर शत्रुकी सेना इस प्रकार नष्ट भ्रष्ट हो गई जिस प्रकार कि अधकारकी सन्तति पूर्णिमाके चन्द्रमाको देख कर नष्ट भ्रष्ट हो जाती है ॥५४॥ बाणोंके समूहसे जिसका कवच टूट गया था ऐसे जनकको रामने उसी तरह आर्यासन



राघवो रथमारूढो युक्त चपलवाजिभि । कवचोद्यतितवपु हारकुण्डलमण्डित ॥५६॥  
धनुरायतमास्थाय शरपाणिर्हरिष्वज्ज । प्रकाणंकोल्मणच्छूरो धरणीधीरमानस ॥५७॥  
प्रविशन् विपुल सैन्य लालया लोक्वत्सल । सुभटै र्यमाण सन् भायकं ह्य रश्मिभि ॥५८॥  
सरस्व जनक प्रातः कनक च यथाविधि । बल व्यम्बसयच्छूरोरिभवत् कदलावनम् ॥५९॥  
तत्रैव लक्ष्मणस्तथ याणानाकर्णसहस्रान् । बधयं वायुना युज्य सागरे जलदो यथा ॥६०॥  
निशितानि च चक्राणि शर्त्तानि कनकानि च । शूलप्रकचनिर्घातान्येवमाद्यायचिन्तित ॥६१॥  
सौमित्रिमुजनिमुक्तैस्तैः पतङ्गिरितस्तत । श्लेच्छदेहा<sup>१</sup> -यद् यन्त द्रुमा परशुनिर्घा<sup>२</sup> ॥६२॥  
भग्न शरसैन्येऽस्मिन् बाणैर्निभिन्नवत्सल । केचिच्चिद्रथभुजप्राया निपतन्ति<sup>३</sup> सहस्रस्य ॥६३॥  
ततः परान्मुद्राभूता लोक्कण्डकवाहिना । तथापि लक्ष्मणस्तेपामनुधावति पृष्टत ॥६४॥  
अनिवार्यं समालोक्य तः सौमित्रि मृगाधिपम् । अपरे श्लेच्छशार्दूला समन्तात् क्षोभमगता ॥६५॥  
वृहद्वादित्रनिर्घापैः कुर्वाणा भैरव रवम् । चापासिचक्रत्रुहा वृत्सयातपद्कृत्य ॥६६॥  
रथवस्त्रशिरस्त्राणा केचिद्वर्यधारिण । असिधेनुकरा द्रुमा नानावर्णाङ्गधारिण ॥६७॥  
केचिन्निनाञ्जनचक्राया<sup>४</sup> शुक्रप्रविषोऽपरे । केचि कर्दमसकाशा केचित्ताम्रसमन्विप ॥६८॥  
कटिसूत्रमणिप्राया पत्रचावरधारिण । नानाधातुविलसाङ्गा मञ्जराकृतशेखरा ॥६९॥

दिया-धैर्य बंधाया जिस प्रकार कि जगत्के प्राणस्वरूप धर्मके द्वारा दुःखी प्राणीको आश्रयसंग दिया जाता है ॥५५॥ रामचन्द्र चञ्चल घोडोंसे जुते हुए रथ पर सवार थे, उनका शरीर कनकसे प्रकाशमान हो रहा था, हार और कुण्डल उनकी शोभा बढ़ा रहे थे ॥५६॥ वे एक हाथमें लम्बा धनुष और दूसरे हाथमें बाण लिये हुए थे । उनकी पञ्जामें सिंहका चिह्न था, शिर पर विशाल छत्र फिट रहा था तथा उनकी मन श्रुधिपीके समान धीर था ॥५७॥ जिनके साथ अनेक सुभट थे ऐसे लोकवत्सल राम, लीलापूर्वक विशाल सेनाके बीच प्रवेश करते हुए ऐसे मुशोभित हो रहे थे मानो किरणासे सहित सूर्य ही हो ॥५८॥ प्रसन्नतासे भरे रामने जनक और कनक दोना भाइयोंकी विधिपूर्वक रक्षा कर शत्रुसेनाको उस तरह नष्ट कर दिया जिस प्रकार कि हाथी फेलाके वनको नष्ट कर देता है ॥५९॥ जिस प्रकार वायुसे प्रेरित मेघ समुद्र पर जल वर्षा करता है उसी प्रकार लक्ष्मणने शत्रुदल पर कान तक टिंचे हुए बाण बरसाये ॥६०॥ वह अत्यन्त तीव्र चक्र, शक्ति, कनक, शूल, प्रकच और चक्रदण्ड आदि शस्त्रोंकी खूब वर्षा कर रहा था ॥६१॥ जिस प्रकार पडते हुए कुल्हाडासे वृक्ष कट जाते हैं उसी प्रकार लक्ष्मणकी भुजासे छूटकर जहाँ-तहाँ पडते हुए पूर्वोक्त शस्त्रासे श्लेच्छाके शरीर कट रहे थे ॥६२॥ श्लेच्छाकी इस सेनामें बाणासे कितने ही योद्धाआका वृक्ष स्थल छिन्न भिन्न हो गया था, और हजारों योद्धा भुजा तथा गरदन कट जानेसे नीचे गिर गये थे ॥६३॥ यद्यपि लोकके शत्रुआका वह सेना लक्ष्मणसे पराङ्मुख हो गई थी तो भी वह उनके पीछे दौड़ता ही गया ॥६४॥ जिसे कोई रोक नहीं सकता था ऐसे लक्ष्मणरूपी मृगराजको देवकर श्लेच्छरूपी तिनटुए सज ओरसे क्षोभको प्राप्त हो गये ॥६५॥ उस समय वे श्लेच्छ बड़े भारी बाज्रोंके शत्रुसे भयकर शब्द कर रहे थे, धनुष, कृपाण तथा चक्र आदि शस्त्र बहुलतासे लिये थे और भुण्डके भुण्ड बनाकर पहिंकरूपमें गड़े थे ॥६६॥ कितने ही श्लेच्छ लाल बस्रका साफा बोंबे हुए थे, कोई छुरी हाथमें लिये थे और नाना रङ्गके शरीर धारण कर रहे थे ॥६७॥ कोई मसले हुए अङ्गनके समान काले थे, कोई सूर्ये पत्ताके समान कान्ति वाले थे, कोई कीचबके समान थे और कोई लाल रङ्गके थे ॥६८॥ अधिकतर वे कटिसूत्रमें मणि बोंबे हुए थे, पत्ताके वस्त्र पहिने हुए थे, नाना धातुआसे उनके शरार लित थे, फूलकी

वराहभद्रशना विशालपिठरोदरा । विरेजु सैन्यमध्ये<sup>१</sup> तु कुञ्जा इव पुष्पिता ॥७०॥  
 अपरे शवरा रेजुभीपणायुधपाणय । पीनजह्वाभुजस्कन्धा असुरा इव दूषिता ॥७१॥  
 निर्दया पशुमासादो मूढा प्राणित्रयोद्यता । आरभ्य जन्मन पापा सहस्रारम्भकारिण ॥७२॥  
 वराहमहिपव्याघ्रवृककङ्कादिरेतेव । नानायानच्छुद्धच्छास्त्रस्वामन्ता मुभापणा ॥७३॥  
 नानायुद्धकृतध्वान्ता महावेगपदातय । सागरोमिनिभाश्रण्डा<sup>३</sup> नानाभोपणनिस्वना ॥७४॥  
 लक्ष्मणकमाधर वयु क्षुब्धा<sup>५</sup> शबरनारदा । निचसामन्तवातेन प्रेरिता पुररहस ॥७५॥  
 अधारह्लक्ष्मणस्तेषा निपाताय समुद्यत । यथानहुसमूहाना महावेगो गजाधिप ॥७६॥  
 मृद्यमाना निपेतुस्ते स्वरेव वसुधातले । विदुदुवुरसट्याश्च भ्रान्त्या विवृतमूर्तय<sup>६</sup> ॥७७॥  
 तत<sup>७</sup> साधारयन् सैन्यमान्तरद्गतमो गृप । सम सकलसैन्येन लक्ष्मणाभिमुख स्थित ॥७८॥  
 तेनभ्यागतमात्रेण प्रवृत्ते भेरेवे मृधे । लक्ष्मणस्य धनुर्दिग्न्न वाणै सततवर्षिभि ॥७९॥  
 कृपाण वावदात्ते लक्ष्मणो विरधाकृत । समारणजव तावत्पन्नो रथमचोदयत् ॥८०॥  
 लक्ष्मणस्योपनातश्च रथोज्य क्षेपवजित । अपारमदहत् सैन्य राम कश्चमिवावल ॥८१॥  
 कारिचञ्चिच्छेद वाणांघे काश्चिक्नकृतोमरै । चक्रै शिरासि वेपाचिकुञ्चितौष्ठान्यपातयत् ॥८२॥

मञ्जरियोंसे उन्होंने सेहरा बना रक्सा था ॥६६॥ कौडियोंके समान उनके दौत थे, बड़े मटफाके समान उनके पेट थे और सेनाके बीच वे फूले हुए कुटज वृक्षके समान सुशोभित हो रहे थे ॥७०॥ जिनके हाथोंमें भयकर शस्त्र थे, और जिनकी जोंपें, भुजाएँ और स्कन्ध अत्यन्त स्थूल थे ऐसे कितने ही श्लेच्छ गर्वाल्ले असुरोंके समान जान पड़ते थे ॥७१॥ वे अत्यन्त निर्दय थे, पशुओंका मांस खाने वाले थे, मूढ थे, पापी थे और सहसा अर्थात् बिना विचार किये काम करने वाले थे ॥७२॥ वराह, महिष, व्याघ्र, वृक और कङ्का आदिके चिह्न उनकी पताकाओंमें थे, उनके सामन्त भी अत्यन्त भयकर थे तथा नाना प्रकारके वाहन, चद्दर और द्धन आदिसे सहित थे ॥७३॥ नाना युद्धामें जिन्होंने अन्धकार उत्पन्न किया था, जो समुद्रकी लहरोंके समान प्रचण्ड थे, और नाना प्रकारका भयकर शब्द कर रहे थे ऐसे महावेगशाली पैदल योद्धा उनके साथ थे ॥७४॥ अपने सामन्तरूपी वायुसे प्रेरित होनेके कारण जिनका वेग बढ़ रहा था ऐसे उन क्षोभको प्राप्त हुए श्लेच्छरूपी मेघोंने लक्ष्मणरूपी पर्वतको घेर लिया ॥७५॥ जिस प्रकार बँलोंके समूहको नष्ट करनेके लिए महावेगशाली हाथी दौड़ता है उसीप्रकार उन सैन्यको नष्ट करनेके लिए उद्यत लक्ष्मण दौड़ा ॥७६॥ लक्ष्मणके दौड़ते ही उनमें भगदड़ मच गई जिससे वे अपने ही लोगोंसे कुचले जाकर पृथिवीपर गिर पड़े । तथा भयसे जिनके शरीर खण्डित हो रहे थे ऐसे अनेक योद्धा श्धर-उधर भाग गये ॥७७॥

तदनन्तर आन्तरद्गतम राजा सेनाको रोकता हुआ सब सेनाके साथ लक्ष्मणके सम्मुख खड़ा हुआ ॥७८॥ उसने आते ही भयकर युद्ध किया और निरन्तर बरसते हुए वाणोंसे लक्ष्मणका धनुष तोड़ डाला ॥७९॥ लक्ष्मण जब तक तलवार उठाता है तब तक उसने उसे रथरहित कर दिया अर्थात् उसका रथ तोड़ डाला । यह देख रामने वायुके समान वेगगाला अपना रथ आगे बढ़ाया ॥८०॥ लक्ष्मणके लिए शीघ्र ही दूसरा रथ लाया गया और जिस प्रकार अग्नि वनको जलाती है, उसी प्रकार रामने शत्रुका सेनाको जला दिया ॥८१॥ उन्होंने कितने ही लोगोंको वाणोंके समूहसे छेद डाला, कितने ही लोगोंको कनक और नौमर नामक शस्त्रोंसे

१. सैन्यमध्य म० । २. सहस्रारम्भकारिण म० । ३. चक्रा म० । ४. शरदनीरदा म० । ५. यथा नक्षत्रमूहाना म० । ६. विवृतमूर्तय म० । ७. साधारयन् म० । ८. आन्तरद्गतम एतनामा श्लेच्छरूप । ९. समीरणजवालावत् म० ।

ननाश भयपूर्णा च 'यथाशं म्लेच्छराहिनी । विभ्रन्तचामररुद्रप्रचरचानममाकुला ॥८३॥  
 निमिषान्तरमात्रेण रामेणकिलष्टकर्मणा । म्लेच्छा निराकृताः सर्वे कयाथा इव साधुना ॥८४॥  
 आगतौ यश्च मैन्येन निष्पारंशोदधिर्वया । भीतोऽर्ध्वदर्शभिः सोऽयं म्लेच्छराजो विनिःमृतः ॥८५॥  
 पराद्मुग्रोऽकृतैः कर्त्तव्यैः किमेभिर्निहतैरिति । मौमिनिगा ममं रामः कृतां निपट्टने सुगम् ॥८६॥  
 अर्मा भयाकुला म्लेच्छा विहाय विजिगीषुताम् । आश्रिप्य सद्यविन्ध्याद्रौनु समयेनावनन्धियरे ॥८७॥  
 कन्दमूलफलाहारास्त यन् रौद्रकर्मताम् । राघवाद् भयमापन्ना वनतेथादिबोरगाः ॥८८॥  
 ३सानुजः ४सानुजं पद्मो विप्रदे शान्तविप्रदः । विमर्यं जनक हृष्टं जनकाभिमुग्रेणामन् ॥८९॥  
 प्रजासपरमानन्दः १ रेमे विरिमतमानया । रराज पृथिवी सर्वं मूया कृतयुगे यथा ॥९०॥  
 धर्माथं काममंसक्तैः पुण्यैर्भूषितं जगन् । व्यतांतहिममरोधेनैश्चरैरन्धर यथा ॥९१॥  
 माहाम्यादमुतो राजन् दुहिता लोकमुन्दरी । जनकेन प्रसन्नेन राघवस्य प्रकल्पिता ॥९२॥

काट ढाला तथा जिनके आँठ टेढ़े हो रहे थे ऐसे कितने ही लोगोंके शिर चनरत्नसे नीचे गिरा दिये ॥८३॥ दूढ़े-कूढ़े चमर छत्र ध्वजा और धनुषोसे व्याप्त म्लेच्छोंकी वह सेना भयभीत होकर इन्द्रानुसार नष्ट हो गई—इधर-उधर भाग गई ॥८३॥ जिस प्रकार साधु कथायाँको क्षण भरमें नष्ट कर देते हैं उसी प्रकार क्लेशरहित कार्य करनेवाले रामने निमेष मात्रमें ही समस्त म्लेच्छोंको नष्ट कर दिया ॥८४॥ जो म्लेच्छ राजा समुद्रके समान अपार सेनाके साथ आया था वह भयभीत होकर केवल दश घोड़ोंके साथ बाहर निकला था ॥८५॥ इन विमुक्त नपुंसकोंको मारनेसे क्या प्रयोजन है ऐसा विचार कर कृतकृत्य राम लक्ष्मणके साथ सुग पुर्यक युद्धसे लौट गये ॥८६॥ भयसे घबड़ाये हुए म्लेच्छ विजयकी इच्छा छोड़ सन्धि कर सब और विन्ध्य पर्वतोंपर रहने लगे ॥८७॥ जिस प्रकार सोंप गरुड़से भयभीत रहते हैं उसी प्रकार म्लेच्छ भी रामसे भयभीत रहने लगे । वे कन्द मूल फल आदि खाकर अपना निर्वाह करने लगे तथा उन्होंने सब दुष्टता छोड़ दी ॥८८॥

तदनन्तर युद्धमें जिनका शरीर शान्त रहा था ऐसे सानुज अर्थात् छोटे भाई लक्ष्मणसहित राम, सानुज अर्थात् छोटे भाई जनकसहित हर्षित जनकको छोड़कर जनक अर्थात् पिताके सम्मुख चले गये ॥८९॥ तदनन्तर जिसे परम आनन्द उत्पन्न हुआ था और जिमका मन आश्चर्यसे विस्मित हो रहा था ऐसी समस्त प्रजा आनन्दसे क्रीड़ा करने लगी और समस्त पृथिवी कृतयुगके समान वैभवसे सुशोभित होने लगी ॥९०॥ जिस प्रकार हिमके आश्रयसे रहित नक्षत्रोंसे आकाश सुशोभित होता है उसी प्रकार धर्म अर्थ कामसे आसक्त पुण्यसे संसार सुशोभित होता है ॥९१॥ गौतमस्वामी श्रेणिकसे कहते हैं कि हे राजन् ! राजा जनकने इसी माहात्म्य से प्रसन्न होकर अपनी लोक-सुन्दरी पुत्री जानकी रामके लिए देना निश्चित की थी ॥९२॥

१. यथाशान्दम् यथासम्लेच्छम् ० । २. विनि मृत. म० । ३. सद्यन्तः । ४. अनुजनहित जनक सहितमिति यान् । ५. पद्मोऽनिप्रदः ४० । ६. निधिलाधिपन् । ७. विनिनिनुषम् । ८. रामविनिज म० ।

## उपजातिवृत्तम्

किं वात्र कृत्य बहुभाषितेन श्रीश्रेणिक स्व ननु कर्म दुसाम् ।  
 १समागमे गच्छति हेतुभाव वियोजने वा सुजनेन साकम् ॥६३॥  
 सोऽह महामा भुवने समस्ते गत प्रताप परम मुभाग्य ।  
 गुणैरनन्यप्रमितैरपेतो रविर्यथोद्गाति<sup>२</sup> परो मयूर्यै ॥६४॥

इत्यार्षे रविपेणाचार्यं प्रापते पद्मचरिते म्लेच्छपराजयसर्कार्तेन नाम  
 सप्तविंशतितमं पर्यं ॥२७॥



इस विषयमें बहुत कहनेसे क्या लाभ है ? हे श्रेणिक ! यह निश्चित बात है कि मनुष्योंका अपना किया कर्म ही उत्तम पुण्योंके साथ संयोग अथवा नियोग होनेमें कारणभावको प्राप्त होता है ॥६३॥ परम प्रतापको प्राप्त भाग्यशाली एव असाधारण गुणोंसे युक्त महात्मा रामचन्द्र समस्त ससारमें इस प्रकार सुशोभित हो रहे थे जिस प्रकार कि किरणोंसे युक्त सूर्य सुशोभित होता है ॥६४॥

इस प्रकार आर्षनामसे प्रसिद्ध रविपेणाचार्य द्वारा कथित पद्मचरितमें म्लेच्छाके पराजयका वर्णन करनेवाला सत्ताईसवाँ पर्यं समाप्त हुआ ॥२७॥



## अष्टाविंशतितमं पर्व

इदं पराक्रममावृष्टो नारदः पुरविस्मयः । छति न लभते कापि रामसंकथया विना ॥१॥  
 श्रुतश्च तेन वृत्तान्तो रामस्य किल मैथिली । पिता दानुमर्षीति प्रकटा मर्षविष्टो ॥२॥  
 अचिन्तयद्य परयामि कन्यां तामद्य कौटशांम् । शोभनेलंघनैर्येन रामस्य परिकल्पिता ॥३॥  
 पद्मगर्भदूलं यस्मिन् कृत्वा स्ननतटे रहः । भक्तान्या सरश नेदमिति बुद्ध्यावलोकने ॥४॥  
 समये नारदस्तस्मिन् सीतालोकनलालसः । विशुद्धहृदयः प्रापदास्तोह च तद्गृहम् ॥५॥  
 ततो दर्पणमन्त्रान्तं जटामुकुटभीषणम् । नारदाय वपुर्वीच्य कन्या प्राप्यममाकृत्वा ॥६॥  
 हा मातः कोऽयमप्रेति कृत्वा प्रसञ्जलिनस्वनम् । विशेष गर्भमवनं वेपमानशरीरिका ॥७॥  
 नारदोऽनुपदं तस्या विशलति कुहलः । नाराभिर्दारपालीभिः सावष्टममन्यथ ॥८॥  
 यावत्तस्य च तामां च कलहो वर्तते महान् । तावच्छुद्धेन सप्राप्तुरेताः स्वप्नपुत्रैः ॥९॥  
 गृहतां गृहतां कोऽयं कोऽयमि युद्धतस्वनाः । कुड्वितीष्टावरान् दृष्ट्वा सरशान् हन्तुमुद्यतान् ॥१०॥  
 नारदः परम निभङ्गयमुक्त्वेषधुः । ऊर्ध्वरोमा म्मुपय विश्रान्तोऽष्टापदावले ॥११॥  
 अचिन्तयद्य हा कष्टं प्राप्नोऽस्मि जनन पुनः । निष्प्रान्तोऽस्मि महादावान् पत्नी ज्वालाहतो यया ॥१२॥

अयानन्तर जो हम प्रकारके पराक्रमसे आकर्षित था तथा बहुत भारी आश्चर्यसे युक्त था ऐसा नारद युद्धकी चर्चाके दिना कहीं भी सन्तोषको प्राप्त नहीं होता था ॥१॥ उसने समाचार सुना कि समस्त संसारमें प्रसिद्ध अपनी सीता नामकी पुत्री उसके पिता राजा जनकने रामचन्द्रके लिए देनेकी इच्छा की है ॥२॥ समाचार सुनते ही उसने विचार किया कि उम कन्याको देखूँ तो सही कि वह शुभ लक्षणोंसे कौसी है जिससे रामचन्द्रके लिए उसका देना निश्चित किया गया है ॥३॥ ऐसा विचार कर नारद उस समय सीताके महलमें पहुँचा जब कि वह एकान्त स्थानमें पद्मगर्भ मणिका एक खण्ड अपने स्नन तटके समीप करके इस बुद्धिसे उसे देख रही थी कि यह मेरी कान्तिके समान है या नहीं ॥४॥ जिसे सीताके देखनेकी लालसा थी तथा जिसका हृदय अत्यन्त शुद्ध अर्थात् निर्विकार था ऐसा नारद उस समय सीताके महलमें ऊपर जा चढ़ा ॥५॥ तदनन्तर जिसका दर्पणमें प्रतिबिम्ब पड़ रहा था और जो जटारूपी मुकुटसे भीषण था ऐसा नारदका शरीर देखकर सीता भयसे व्याकुल हो गई ॥६॥ हा मातः ! यह यहाँ कौन आ रहा है ? इस प्रकार अर्थोच्चारित शब्द कर वह महलके भीतर घुस गई । उस समय उसका शरीर कम्पित हो रहा था ॥७॥ अत्यन्त कुहलसे भरा नारद भी उसीके पीछे महलमें भीतर प्रवेश करने लगा तो द्वारकी रक्षा करनेवाली स्त्रियोंने उसे बलपूर्वक रोक लिया ॥८॥ जब तक नारद तथा उन स्त्रियोंके बीच बड़ा कलह होता है तब तक उनका शब्द सुनकर तलवार और धनुषको धारण करनेवाले पुरुष वहाँ आ पहुँचे ॥९॥ वे पुष्प पकड़ो-पकड़ो कौन है ? कौन है ? इस प्रकारका जोरदार शब्द कर रहे थे । जो आँठ चाब रहे थे, शरोंसे युक्त थे तथा मारनेके लिए उद्यत थे ऐसे उन पुरुषोंको देखकर नारद अत्यन्त भयभीत हो उठा । उसके शरीरसे अत्यधिक कंप कँपी छूट रही थी, और रोमाञ्च खड़े हो गये थे । रीर, जिस किसी तरह वह आकाशमें उड़कर कैलास पर्वत पर पहुँचा और वहीं विश्राम करने लगा ॥१०-११॥ वह विचारने लगा कि हाय ! मैं बड़े कष्टमें पड़ गया था । बचकर क्या आया मानो दूसरा जन्म ही मैंने प्राप्त किया है । जिस प्रकार ज्वालाओंसे मुहता पत्नी किसी बड़े ढावानलसे बाहर निकलता

शनं शनस्तत कम्प तद्दिग्न्यस्तेक्षणोऽमुचत् । ममाजं च ललाटस्थान् स्वेद्विन्दन् स्थवावस ॥१३॥  
 समाद्धे स्खल पाणिर्जटाभार समाकुलम् । मुहु स्मृता च निश्वासा-मुमुचे दीर्घवेगिन ॥१४॥  
 तत स्वैर भवाद् भ्रष्टो दृष्यानेव प्रकोपवान् । निश्चलस्थितशोषाङ्गो मूर्धानं कम्पयन् मनाक् ॥१५॥  
 अदुष्टमानस पश्यन् यातो रूपदिदृक्षया । रामानुरागत प्रापमवस्था मृत्युगोचराम् ॥१६॥  
 अहो प्रीडकुमार्यास्तच्चेष्टित दुष्टविभ्रमम् । गृहातोऽस्मि नयेनैव कृतान्तसदृशैर्नरै ॥१७॥  
 क्व मे पापाधुना याति व्यसने पातयामि ताम् । नृ याम्यातोद्यमुक्तोऽपि किमुतातोयसयुत ॥१८॥  
 विचिन्तैव द्रुत गत्वा नगर रथनूपुरम् । सातारूप पटे न्यस्य प्रत्यक्षमिव सुन्दरम् ॥१९॥  
 चक्रारोपवने चन्द्रगते <sup>२</sup> प्रीडनसन्ननि । उत्सृज्य च यहिस्तस्थौ पुरस्याप्रकटात्मक ॥२०॥  
 अन्यदाथ तमुद्देश कुमारैर्बहुभि समम् । भामण्डलकुमारोऽसौ रममाण समाधयो ॥२१॥  
 तत्राज्ञानान् समालोक्य स्वसार चित्रगोचराम् । हाश्रुतिस्मृतिमुक्तात्मा द्राक् प्रभामण्डलोऽभवत् ॥२२॥  
 तत शोचति निश्वासान्मुञ्चतेऽयन्तमायतान् । शुष्यति क्षिपति स्रस्त गात्र यत्र क्वचिद् द्रुतम् ॥२३॥  
 न रात्रौ न दिवा निद्रा लभते ध्यानतत्पर । उपचारेण <sup>१</sup>कान्तेन न जातु सुखमरतुते ॥२४॥  
 पुष्पाणि गन्धमाहार द्वेष्टि चवैड <sup>४</sup> यथा भृशम् । करोति लोडन भूय सतापी जलकुट्टिमे ॥२५॥

है उसी प्रकार मैं भी उस कदरसे बाहर निकला हूँ ॥१२॥ उस समय भी उसके नेत्र उसी दिशामें लग रहे थे । तदनन्तर धीरे धीरे उसने शरीरको कँपकँपी छोड़ी ओर ललाटपर स्थित पसीनेकी घड़ी-बड़ी वूँद पोछी ॥१३॥ उसने कोंपते हुए हाथसे अपनी बिसरी हुई जटाएँ ठीक कीं । यह करते हुए जब उसे बार बार पिछली घटनाका स्मरण हो आता था तब वह लम्बी लम्बी साँसे छोड़ने लगता था ॥१४॥ तत्पश्चान् जब भय दूर हुआ तो क्रोधमें आकर वह इस प्रकार विचार करने लगा । विचार करते समय उसके समस्त अङ्ग निश्चित रूपसे स्थिर थे केवल वह मस्तकको कुछ-कुछ हिला रहा था ॥१५॥ वह विचारने लगा कि देखो मेरे मनमें कोई दोष नहीं था मैं केवल रामचन्द्रके अनुरागसे सीताका रूप देखनेकी इच्छासे ही वहाँ गया था परन्तु ऐसी दशाको प्राप्त हो गया जिसमें मृत्यु तककी आशाझा हो गई ॥१६॥ आश्चर्य है कि उस प्रीड कुमारीकी वह चेष्टा कितनी दुष्टतासे भरी थी कि जिसके कारण मैं यमराजकी समानता करनेवाले मनुष्योंके द्वारा पकड़ लिया गया ॥१७॥ वह पापिनी अब जावेगी कहाँ ? मैं उसे अवश्य ही सकटमें डालूँगा । मैं तो बाजेके बिना ही नाचता हूँ फिर यदि बाजे मिल जावे तो कहना ही क्या है ? ॥१८॥ ऐसा विचार कर उसने एक पटपर प्रत्यक्षके समान सीताका सुन्दर चित्र बनाया और उसे लेकर वह शीघ्र ही रथनूपुर नगर गया ॥१९॥ वहाँ जाकर उसने उपवनमें जो अत्यन्त उत्तम ब्रीडा भवन था उसमें वह चित्रपट रख दिया और स्वयं अप्रकट रहकर नगरके वाहर रहने लगा ॥२०॥

अथानन्तर किसी दिन अनेक कुमारोंके साथ ब्रीडा करता हुआ भामण्डल कुमार वहाँ आया ॥२१॥ सौ चित्रमें अङ्कित बहिन सीताको देखकर वह अज्ञानवश शीघ्र ही लज्जा, शास्त्र, ज्ञान तथा स्मृतिसे रहित हो गया अर्थात् सीताके चित्रको देखकर इतना कामाकुलित हुआ कि लज्जा, शास्त्र तथा स्मृति आदि सबको भूल गया ॥२२॥ वह निरन्तर शोक करने लगा, अत्यन्त लम्बे श्वासोच्छ्वास छोड़ने लगा, उसका शरीर सूख गया तथा शिथिल शरीरको वह चाहे जहाँ उपेक्षासे डालने लगा अर्थात् चाहे जहाँ उठने बैठने लगा ॥२३॥ उसे न रात्रिमें नींद आती थी न दिनमें चैन पडता था । वह रात दिन उसीके ध्यानमें निमग्न रहता था । सुन्दर उपचारोंसे उसे कभी भी सुख नहीं मिलता था ॥२४॥ वह पुष्प, सुगन्धित पदार्थ तथा आहारसे ऐसा द्वेष

१. निश्चितस्थित म० । २. चद्रगत ज० । ३. रम्येण । ४. विपनिर्मितम् ।

मीनसाचरति स्मिन्ना करोति च कथां मुहुः । महामोत्तिष्ठति स्वयं यानि भूयो निगमने ॥२१॥  
 ततो ब्रह्मगृहीतस्य महर्गाम्भैप्रिच्छेतिः । ज्ञानं तद्वापुरग्रस्य कारणं मनिगात्तिमिः ॥२०॥  
 जगदुर्ध्वमन्योभ्यं कन्येयं केन चिथिता । परोऽत्र निहितो गेहे श्याद् वा नारदचेष्टितम् ॥२०॥  
 ततः श्रुत्वा कुमारं समाकुलं स्नेन कर्मणा । नारदस्तस्य वन्धुतां विप्रन्धो दुर्गं दुर्गा ॥२१॥  
 आदरेण च तैः पृष्टः हृतपूजानमस्तृतिः । मुने कथय कन्येयं दृष्ट्वा क्व भवनेदानीं ॥२०॥  
 महोरगाहना किं स्याद् भवेत् किं वा विमानजा । मय्यलोकं समायाता स्वया दृष्ट्वा कथं वन ॥२१॥  
 'अनद्वारस्तनोऽनोचद् विनयं परमं बहन्' । भूयो भूयः स्वयं गच्छन् विम्वयं कम्पयन् शिरः ॥२२॥  
 अरुपत्र मिथिला नाम पुरी परमसुन्दरी । इन्द्रकेसोः सुतम्वत्र जनको नाम पाथिवः ॥२३॥  
 विद्वहेति प्रिया तस्य मनोबन्धनकारिणी । गोत्रसर्वम्बुधेय स्तोनेति दृष्टिता तयोः ॥२४॥  
 निरेषैवमसौ तेभ्यः कुमारं पुनरुक्तवान् । बाल मा याः विपादं स्व तरेयं सुलभैव हि ॥२५॥  
 रूपमात्रेण यातोऽनि किमस्या भावमादराम् । ये तस्या विभ्रमा भद्र कर्तान् वर्णयितु वमः ॥२६॥  
 तथा चित्तं समाकृष्टं तरेति किमिदं कृतम् । धर्मस्थाने इदं बद्ध मुनीनामपि मा हरेत् ॥२७॥  
 आकारमात्रमत्रैतत्तस्या म्यस्तं मया पटे । लावण्यं यत्तु तत्तत्त्वान्तस्थानेऽनन्तरोदराम् ॥२८॥  
 नववीवनसंभूतकान्तिसागरयोचिपु । सा तिष्ठति तरनीय मंमया स्तनकुम्भयोः ॥२९॥

करता था मानो उन्हें विपमय ही समझता हो। यह संतापसे युक्त होकर बार-बार जलमें मींचे हुए फरारपर लोटता था ॥२५॥ वह मीन बैठा रहता था, कभी हँसकर बार-बार चर्चा करने लगता था, कभी सहसा उठकर व्यर्थ ही चलने लगता था और फिर लौट आता था ॥२६॥ उसकी समस्त चेष्टाएँ ऐसी हो गईं मानो उसे भूत लग गया हो। तदनन्तर बुद्धिमान् पुरुषोंने उसकी आतुरताके कारणोंका पता लगाया ॥२७॥ वे परस्परमें इस प्रकार कहने लगे कि यह कन्या किसने चित्रित की है? इस महलमें यह चित्रपट किसने रक्खा है? जान पड़ता है कि यह सब नारदकी चेष्टा है ॥२८॥

तदनन्तर जब नारदने मुना कि हमारे कार्यसे मामण्डल कुमार अत्यन्त आकुल हो रहा है तब उसने निःशङ्क होकर उसके बन्धुओंके लिए दर्शन दिया ॥२९॥ उन सबने बड़े आदरसे नारदकी पूजा कर नमस्कार किया तथा पूछा कि हे मुने! कहां आपने यह ऐसी कन्या कहाँ देखी है? ॥३०॥ यह कोई नागकुमार देवकी अहना है या पृथिवी पर आई हुई किसी कल्पवासी देवकी स्त्री आपने किसी तरह देगी है? ॥३१॥ तदनन्तर परम विनयको धारण करता तथा स्वयं ही आश्चर्यको प्राप्त हो बार-बार शिर हिलाता हुआ नारद कहने लगा ॥३२॥ कि इसी मध्यमलोकमें अत्यन्त मनोहर मिथिला नामकी नगरी है उसमें इन्द्रकेतुसे प्रार्थनाको प्राप्त हुआ जनक नामका राजा रहता है ॥३३॥ उसके मनकी बँधने वाली विद्वहा नामकी प्रिया है। उन दोनोंकी ही यह सीता नामकी कन्या है। यह कन्या उन दोनोंके गोत्रका मानी सर्वम्ब ही है ॥३४॥ मामण्डलके भाई-बन्धुओंसे ऐसा कहकर उसने मामण्डलमें कहा कि हे बालक! तू विपादको प्राप्त मत हो। यह कन्या तुझे सुलभ ही है ॥३५॥ तू इसके रूपमात्रमें ही ऐसी अवस्थाको प्राप्त हो रहा है फिर इसके जो हाव-भाव विभ्रम हैं उनका वर्णन करनेके लिए कौन ममर्थ है? ॥३६॥ उसने तुम्हारा चित्त आकृष्ट कर लिया इसमें आश्चर्य ही क्या है? वह तो धर्मस्थान में सुन्दररूपसे निबद्ध मुनियोंके चित्तकी भी आकृष्ट कर सकती है ॥३७॥ मैंने चित्रपटमें उमना यह केवल आकारमात्र ही अङ्कित किया है। उमका जो लावण्य है वह तो उमीमें है अन्यत्र सुलभ नहीं है ॥३८॥ वह नव वीवनसे उत्पन्न कान्तिरूपी समुद्रकी तरङ्गोंमें ऐसी जान पड़ती

१. नारकः । अवधारः म० । २. महन् म० । ३. गच्छद्विगमं म० । ४. दृष्टन्तेः गृहः ॥४ ।

५. ता म० ।

तस्या श्रोणी वरारोहा कान्तसप्लाविताशुभा । वाञ्छितोन्मूलयेत्<sup>१</sup> स्वान्त समूलमपि योगिनाम् ॥४०॥  
 युवथा भवन्नमन्यस्य सेय कस्थोचिता भवेत् । यत्न वरनुनि कुर्वन्<sup>२</sup> जायता योग्यसगम<sup>३</sup> ॥४१॥  
 ह्ययुक्त्वा चरितार्थं सन्नारदोऽगान्मनीपितम् । दध्नीं भामण्डलोऽय्येव स्मरसायकताडित ॥४२॥  
 क्षेपिष्ठ प्रमशारत्न न लभेय वदीदृशम् । न जीवेय तदावरय स्मरकुण्डलितमानस ॥४३॥  
 धारयन्ती परा वान्तिमिव मे हृदयस्थिता । कथ न<sup>४</sup> कुरुते तापमग्निव्वालेव सुन्दरी ॥४४॥  
 दहति त्वचमेवाकीं बहिरन्तश्च मन्मथ । अन्तद्विररित सूर्यस्य मन्मथस्य न विद्यते ॥४५॥  
 द्वयमेव भुव मन्ये प्राप्तव्यमधुना मया । तथा वा सगम साक मरण वा स्मरेषुभि ॥४६॥  
 अनागन्तमिनि<sup>५</sup> ध्यायन्नशने शयने न च । न प्राप्तदि न चोद्याने धृतिं भामण्डलोऽगमन् ॥४७॥  
 क्षियोऽथ नारद भक्त्वा कुमारसुखकारणम् । ससश्रम समुद्दिग्ना<sup>६</sup> पितुरस्य न्यवेदयत्<sup>७</sup> ॥४८॥  
 नाथानर्थसमुद्गेन<sup>८</sup> नारदेनाहता पटे । चित्रीकृत्याङ्गना कापि<sup>९</sup> रूपातिशययोगिनी ॥४९॥  
 समालोक्य कुमारस्ता विह्वलाभूतमानस । धृतिं न लभते कापि त्रयथा दूरमुज्जित ॥५०॥  
 मुहुस्ताम्रीचते कन्या साताशब्द समुच्चरत् । करोति विविधा चेष्टा वायुनेव वशीकृत ॥५१॥  
 उपायश्चिन्वतामाशु तस्योत्पादयितु धृतिम् । यावन्न मुच्यते प्राणभोजनादिपराद्मुख ॥५२॥

हैं मानो स्तनरूपी कलशोंके सहारे तैर ही रही हो ॥३६॥ कान्तिसे बरुको तिरोहित करने वाले उसके नितम्ब यदि देखनेमें आ जायें तो निश्चित ही वह योगियोंके मनको भी समूल उखाड़ कर फेंक दे ॥४०॥ आपको छोड़कर और यह किसके योग्य हो सकता है ? इस कार्यमें यत्न करो जिससे योग्य समागम प्राप्त हो सके ॥४१॥ इतना कहकर नारद तो कृतकृत्य हो इच्छित स्थान पर चला गया पर इधर भामण्डल कामके वाणासे ताडित हो इस प्रकार ब्रिचार करने लगा कि ॥४२॥ चूँकि मेरा मन कामसे इतना आकुल हो रहा है कि यदि मैं शीघ्र ही इस खीरलको नहीं पाता हूँ तो अवश्य ही जीवित नहीं रह सकूँगा ॥४३॥ परम कान्तिको धारण करने वाली यह सुन्दरी प्रमदा मेरे हृदयमें स्थित है फिर अग्निकी ज्वालाके समान सन्ताप क्यों कर रही है ॥४४॥ सूर्य सिर्फ वाहरी चमड़ेको जलाता है पर काम भीतरी भागको जलाता है । इतने पर भी सूर्य अस्त हो जाता है पर काम कभी अस्त नहीं होता ॥४५॥ इस समय तो ऐसा जान पड़ता है कि मेरे द्वारा सो ही वस्तुएँ प्राप्त करने योग्य हैं । एक तो उस स्त्री रत्नके साथ समागम और दूसरा कामके वाणोंसे मारा जाना ॥४६॥ इस प्रकार निरन्तर उसीका ध्यान करता हुआ भामण्डल न भोजनमें, न शयनमें, न महलमें और न उद्यानमें—कहीं भी धैर्यको प्राप्त हो रहा था ॥४७॥

अथानन्तर जब स्त्रियोंको पता चला कि कुमारके दु खका कारण नारद है तब उन्होंने छद्मिन होकर शीघ्र ही कुमारके पितासे यह समाचार कहा ॥४८॥ कि इस समस्त अनर्थका पिटारा नारद ही है । वही कहींकी एक अत्यन्त सुन्दरी स्त्रीको चित्रपट पर अङ्कित करके लाया था ॥४९॥ उसे देखकर जिसका मन अत्यन्त विह्वल हो गया है ऐसा कुमार किसी भी वस्तुमें धैर्यको प्राप्त नहीं हो रहा है । लज्जाने उसे दूरसे ही छोड़ दिया है ॥५०॥ वह सीता शब्दका उच्चारण करता हुआ बार बार उसी कन्याको देखता रहता है तथा वायुके वशीभूत हुप के समान नाना प्रकारको चेष्टाएँ करता रहता है ॥५१॥ वह भोजनादि समस्त कार्योंसे विमुख हो गया है अर्थात् उसने खाना पीना सब छोड़ दिया है । इसलिए जब तक प्राण इसे नहीं छोड़ते हैं तब तक

१ न्मूलयेत् म० । २ पुमान् । ३ योग्यसमागमसहित । ४ शीघ्रम् । ५ हृदय स्थिता म०, ज० ।

६ च म० । ७. मतिव्यायन् म० । ८ समुद्दिग्ना म० । ९ न्यवेदयत् म० । १० तथानर्थसमुद्गेन म०, नार्थानर्थ व० । अनर्थसमुद्गेन = अनर्थकरणइनेन । ११ वापि म० ।



ततश्चन्द्रगतिं ध्रुवा वातामेता समाकुन् । आगत्य कान्तथा साक मुगमेरमभावन ॥२३॥  
 भव सर्वां त्रिया पुत्र सुचेता भोजनादिका । अय वृणोमि ता कन्या भवतो मनसि स्थितान् ॥२४॥  
 'परिस्तान्त्य सुत कान्तां रदधन्द्रायणोऽवदन् । प्रमादं च विपादं च विस्मयं च वहन्निदम् ॥२५॥  
 आर्ये विद्याभृता कन्या' सत्यज्य प्रतिमोऽम्भिता । भूगोचराभिमन्गन्थ कथममामु युज्यते ॥२६॥  
 च्मागोचरस्य निलय गन्तु वा युज्यते कथम् । यदा वा तेन नो दत्ता मुगच्छाया तदा तु का ॥२७॥  
 तस्मान् केनाप्युपायेन कन्याया पितर प्रियम् । इहैव नाययाम्याशु नान्य पन्था निरागते ॥२८॥  
 नाय युक्तमयुक्त वा तमेव ननु मन्थये । तथापि तावक वाक्य ममापि हृदयङ्गमम् ॥२९॥  
 ततश्चपलवेगाद्य श्रुयमाहूय सान्तरम् । कर्णपापेन विज्ञातवृत्तान्तमक्रोन्वृष ॥३०॥  
 आज्ञादानेन तुणोऽर्था मिथिला त्वरितो ययौ । हृष्टहृत्सुवाभोदन्मूचित्तामिव पद्मिनाम् ॥३१॥  
 अवतार्यांगराचारमोऽसिन्वेपमुपाश्रित । वित्रामयितुमुद्युक्तो गोमहिर्षैश्चवारणान् ॥३२॥  
 'शशाते यथा जात समाक्रन्दस्तदापर । शुश्राव च जननीयमो जनकस्तद्विचेष्टितम् ॥३३॥  
 निर्ययौ च पुरायुक्त प्रमोदोद्वेगकौतुकै । इंचाढके च त ससि नवर्यावनमगतम् ॥३४॥  
 'उदामान मनोवर्गं भाग्यप्रवरलक्षणम् । प्रदक्षिणमहावतं तनुवक्त्रोदर चलम्' ॥३५॥

उमके पहले ही इसे धैर्य उत्पन्न करानेके लिए कोई उपाय सोचा जाय ॥३२॥ तदनन्तर चन्द्र-  
 गति विद्याधर इस समाचारको सुनकर घबड़ाया हुआ स्त्रीके साथ आकर पुत्रसे इस प्रकार  
 बोला कि हे पुत्र ! स्वस्थचित होकर भोजनादि समस्त क्रियाएँ करा । मैं तुम्हारे मनमें स्थित  
 इस कन्याको बरता हूँ अर्थात् तेरे लिए स्वीकार करता हूँ ॥३३-३४॥ इस प्रकार पुत्रको  
 सान्त्वना देकर चन्द्रगति विद्याधर हर्ष, विपाद और विस्मयको धारण करता हुआ एकान्तमें  
 अपनी स्त्रीसे बोला कि ॥३५॥ हे आर्य ! विद्याधरोकी अनुपम कन्याएँ छोड़कर हम लोगोंका  
 भूमिगोचरियोंके साथ सम्बन्ध करना कैसे ठीक हो सकता है ? ॥३६॥ इसके सिवाय एव बात  
 यह है कि भूमिगोचरीके घर जाना कैसे ठीक हो सकता है ? याचना करने पर भी यदि उसने  
 कन्या नहीं दी तो उस समय मुझको क्या कान्ति होगी ? ॥३७॥ इसलिए कन्याके प्रिय पिताको  
 किसी उपायसे शीघ्र ही यहीं बुलाता हूँ । इस विषयमें कोई दूसरा मार्ग शोभा नहीं देता ॥३८॥  
 स्त्रीने उत्तर दिया कि हे नाथ ! उचित और अनुचित तो आप ही जानते हैं पर इतना अग्रय  
 कहती हूँ कि आपकी बात मुझे भी अच्छी लगती है ॥३९॥

तदनन्तर राचने चपलवेग नामक भृत्यको आदरपूर्णक बुलाकर उसके कानमें सत्र  
 वृत्तान्त सूचित कर दिया ॥४०॥ तत्परचान् रामीकी आज्ञासे सन्तुष्ट हुआ चपलवेग शीघ्र ही  
 उस प्रकार मिथिलाकी ओर चला जिस प्रकार कि हर्षसे भरा तरुण हंस मुगन्धिसे सूचित कम-  
 लिनीकी ओर चलता है ॥४१॥ उसने आकाशसे उतरकर सुन्दर घोड़ेका रूप बनाया और वह  
 गाय, भैंसा, अश्व तथा हाथी आदि पशुओंको भयभीत करनेके लिए उद्यत हुआ ॥४२॥ वह  
 जिस शैशवे घात करनेमें प्रवृत्त होता था उसी ओरसे रोनेका प्रबल शब्द लठ खडा होता था ।  
 राचा जनकने भी जनसमूहसे उस घोड़ेकी चेष्टाएँ सुनी ॥४३॥ सुनी ही नहीं, वह हर्ष, उद्वेग  
 और कौतुकसे युक्त हो उस घोड़ेकी चेष्टाएँ देखनेके लिए नगरसे बाहर भी आया और उसने  
 नव यौवनसे युक्त उस घोड़ेकी देखा ॥४४॥ वह घोडा अत्यन्त ऊँचा था, मनसो अपनी ओर  
 स्त्रीचनेवाला था, उसके शरीरमें अच्छे-अच्छे लक्षण देखीयमान हो रहे थे, दक्षिण अङ्गमें महान्

१ परिशान्त्य म० । २ चन्द्रगति । ३ नययाम्याशु म० । ४ मन्यत म० । ५ इयवपन् ।

६ महिषाश्व क०, ख० । ७ देशघाता ख० । ८ उदमान म० । उदमान व० । ९ मनयोग म० ।

१०. नन्म म०, ज० ।

सुशफाप्रैर्मुदङ्गानां कुर्वाणमिव ताडनम् । पृथग्जनैर्दुरारोह द्यतः<sup>१</sup> प्रोथवेपथुम् ॥६६॥  
 ततः<sup>२</sup> शुद्धप्रमोदः सन् जगाद् जनको सुहुः । ज्ञायतामपे कस्याश्वः प्राप्नो निर्दामतामिति ॥६७॥  
 ततो द्विजगणा ऊचुः प्रियोद्योद्यतचेतसः<sup>३</sup> । राजन्नस्य न<sup>४</sup> नाशेऽपि तुरङ्गो विद्यते समः ॥६८॥  
 कैव वार्ता पृथिव्यां नु<sup>५</sup> राज्ञामीदम् भवेदिति । अथवा किं न कालेन नृप दृष्टस्वयेयता ॥६९॥  
 रथे दिवाकरस्यापि श्रुतिविभ्रमगोचरः । विद्यते नेति जानीमः<sup>६</sup> स्थूरीपृष्ठोऽमुना समः ॥७०॥  
 नूनं भवन्तसुदिश्य कृतवन्त परं तपः । सृष्टोऽय विधिना सप्तिरतः स्वोक्तिर्यतां प्रभो ॥७१॥  
 ततोऽसौ<sup>७</sup> विनर्या निन्ये प्रग्रहद्वयसंयुतः । मन्दुरां कुङ्कुमाद्राङ्गः प्रवलच्चारुचामरः ॥७२॥  
 सवृत्तो मासमात्रोऽस्य ययो कालो गृहीतितः<sup>८</sup> । उपचारैरलयौग्यैः सेव्यमानस्य सन्ततम् ॥७३॥  
 पाशकोऽत्रान्तरे नत्वा जनकाय न्यवेदयत् । नाथ नागस्य<sup>९</sup> सदेशे ग्रहण दश्यतामिति ॥७४॥  
 ततोऽसौ मुदितस्त्रुङ्गमारुह्य वरवारणम् । उद्दिष्टपाद्विस्तेन विवेश सुमहद्वनम् ॥७५॥  
 दूरे च सरसो हुगैं स्थितं दृष्ट्वा वर द्विपम् । जगादानय तस्मिन् कचिदश्वं महाजवम् ॥७६॥  
 ङांकितश्च स मायाश्वः सद्यः स्फुरितविग्रहः । आरुरोह स तं यातश्चोत्पत्य तुरगो नभः ॥७७॥  
 हाहाकारं नृपाः कृत्वा वहन्तः शोकमुद्धतम् । निवृत्ताः सहसा भीता विस्मयव्याप्तमानसाः ॥७८॥

आवर्त थी, उसका मुख तथा उदर कृश था, वह अत्यन्त थलवान् था, टापोके अप्रभागसे वह पृथिवीको ताडित कर रहा था । उससे ऐसा जान पड़ता था मानो मृदङ्ग ही बजा रहा हो । साधारण व्यक्ति उसपर चढ़नेमें असमर्थ थे तथा उसका नथना कम्पित हो रहा था ॥६५-६६॥ तदनन्तर विशुद्ध हर्षको धारण करनेवाले राजा जनकने चार-बार उपस्थित लोगोंसे कहा कि मालूम किया जाय कि यह किसका घोड़ा बन्धनमुक्त हो गया है ? ॥६७॥ तत्पश्चात् प्रिय वचन कहनेमें जिनका चित्त उत्कण्ठित हो रहा था ऐसे ब्राह्मणोंने कहा कि हे राजन् ! इस घोड़ेके समान कोई दूसरा घोड़ा नहीं है ॥६८॥ यहाँ की बात जाने दीजिए समस्त पृथिवीमें जितने राजा हैं उनमें किसीके ऐसा घोड़ा नहीं होगा । अथवा हे राजन् ! आपने भी इतने समय तक क्या कभी ऐसा घोड़ा देखा ? ॥६९॥ हम तो समझते हैं कि सूर्यके रथमें भी इस घोड़ेकी समानता करनेवाला घोड़ा नहीं होगा ॥७०॥ ऐसा जान पड़ता है कि परम तपस्या करनेवाले आपको लक्ष्य कर ही विधाताने यह घोड़ा बनाया है सो हे प्रभो ! इसे आप स्वीकार करो ॥७१॥

तदनन्तर उस विनयवान् घोड़ेको दुहरी रस्तीसे बँधकर घुड़शालमें ले जाया गया । उस समय उसका शरीर केशरके विलेपनसे गीला हो रहा था और उसपर सुन्दर चमर हिल रहे थे ॥७२॥ घुड़शालमें निरन्तर योग्य उपचारोंसे इसकी सेवा होती थी । इस तरह जिस दिनसे घोड़ा पकड़कर लाया गया था उस दिनसे एक मासका समय व्यतीत हो गया ॥७३॥ इस बीचमें वनके एक कर्मचारीने नमस्कार कर राजा जनकसे निवेदन किया कि हे नाथ ! अपने देशमें हाथी कैसे पकड़ा जाता है यह देखिए ? ॥७४॥ तदनन्तर प्रसन्नतासे भरे राजा जनक उत्तुङ्ग गजराज पर सवार होकर चले । वनका कर्मचारी उन्हें मार्ग बताता जाता था । इस तरह राजा जनक किसी बड़े वनमें प्रविष्ट हुए ॥७५॥ वहाँ उन्होंने सरोवरके दूसरी ओर दुर्गम स्थानमें खड़े हुए उत्तम हाथीको देखकर सारथीसे कहा कि शीघ्र ही किसी वेगशाली घोड़ेको लाओ ॥७६॥ कहनेकी देर थी कि जिसका शरीर पकड़कर रहा था ऐसा वह मायामय घोड़ा लाकर राजा जनकके समीप खड़ा कर दिया गया । राजा जनक उसपर सवार हुए नहीं कि वह घोड़ा उन्हें लेकर आकाशमें उड़ गया ॥७७॥ यह देख जो सहसा भयभीत हो गये थे तथा जिनके चित्त आश्चर्यसे व्याप्त

१. प्रोथ म० । २. शुद्धः प्रमोदः ब०, म० । ३. प्रियभाषणपरमानताः । ४. न ना काऽपि म० । ५. तु म० । ६. अश्वः स्थूरीपृष्ठोऽ ब० । ७. विनर्यैनिन्ये च० । ८. मन्दुराकुङ्कुमाद्राङ्गप्रचलच्चारुचामरः म० । ९. सवृत्तो म० । १०. गृहीतितः च० । ११. सदेशे म०, क० । सदेशे ख० ।

ततो नदीगिरीन् देशानरण्यानि च भूरिश । प्रयाति लहयन् ससि मनोजदनिवारण ॥७६॥  
 नातिदूरे ततो दृष्ट्वा प्रासादं पुनमुज्ज्वलम् । हियमाण स शाखाया दद लग्नी महातरो ॥८०॥  
 अवतीर्य ततो वृष्टाद् विश्रम्य च सविस्मय । चरणाभ्यां परिक्रामन् प्रययौ स्तोत्रमन्तरम् ॥८१॥  
 ददर्श च महापुत्रं शाल चामाकरामरुम् । गोपुरं च सुरलेन तोरणेनातिशोभिनम् ॥८२॥  
 नानाजाताश्च वृक्षाणां लतानालक्ष्ययोगिनाम् । फलपुष्पसमृद्धानां नानाविहगरोभिनाम् ॥८३॥  
 सध्याभ्रच्छ मकराशान् प्रासादान् मण्डलस्थितान् । सेवा प्रासादात्प्रयत्नं कुर्वाणानि यं त पराम् ॥८४॥  
 ततोऽसौ यद्गमालस्य दक्षिणे दक्षिणे करे । केसरीवातिनि शङ्क प्रविशेश स गोपुरम् ॥८५॥  
 अपरयच्च परिस्पर्शिता पुष्पजातीर्बहुस्त्रिवर । मणिकान्ठनसोपाना वापीश्च स्फटिकाभस ॥८६॥  
 रमणाश्च महामोदान् विशालान् कुन्दमण्डपान् । चलपल्लवसघातान् कृतसगीतपद्पदान् ॥८७॥  
 ततश्च माधवीनुद्गनालकान्तरयोगिना । विस्फारितप्रसन्नेन चक्षुषा चारुकांतिना ॥८८॥  
 रनवातायनेयुक्तं मुक्ताचालकशोभितै । शातकौम्भमहास्तम्भसहस्रवृत्तधारणम् ॥८९॥  
 नानारूपममाकारं मेरुशृङ्गसमप्रभम् । वज्रप्रदं महापादं मद्राक्षाद् भवनं नृप ॥९०॥  
 अचिन्तयच्च किं न्वेतद्विमानं पतितं ततः । वासवस्य हतं किं वा दैत्यैः क्रीडागृहं भवेत् ॥९१॥

हो रहे थे ऐसे अन्य राजा लोग हाहाकार करके बहुत भारी शोकको धारण करते हुए वापिस लौट आये ॥७८॥

अबानन्तर मनके समान जिसका कोई निवारण नहीं कर सकता था ऐसा वह घोडा अनेक नदी, पहाड, देश और पर्वतोंको लँघता हुआ आगे बढ़ता गया ॥७६॥ तदनन्तर पास ही में एक ऊँचा उज्ज्वल भवन देखकर राजा जनक एक महावृक्षकी शाखासे मज्जूतीसे मूम गये ॥८०॥ तदनन्तर वृक्षसे नीचे उतरकर उन्होंने आश्चर्यचकित हो कुछ देर तक विश्राम किया फिर पुरासे पैदल चलते हुए कुछ दूर गये ॥८१॥ वहाँ उन्होंने अत्यन्त ऊँचा सुवर्णमयकोट और उत्तमोत्तम रत्नासे युक्त तोरणसे समुद्रासित गोपुर देखा ॥८२॥ लताआके समूहसे युक्त, फल और फूलसे समृद्ध, तथा नाना प्रकारके पक्षियोंसे सुशोभित वृक्षांकी नाना जातियोंके देवी ॥८३॥ जिनके शिरस्तर सध्याके बादलाके समान सुशोभित थे, जो गोलाकारम स्थित थे तथा जो भवनोके रात्ता अर्थान् राजभवनकी वडी तत्परतासे सेवा करते हुए के समान जान पडते थे ऐसे महलोंको भी उन्होंने देखा ॥८४॥ तदनन्तर अतिशय चतुर राजा जनकने दाहिने हाथमें तलवार लेकर सिंहके समान निशङ्क ही गोपुरमें प्रवेश किया ॥८५॥ वहाँ जाकर उन्होंने वहाँ चहाँ पैने हुए रङ्ग मिरङ्गे अनेक प्रकारके फूल देखे । चित्तकी सीटियों मणि और स्वर्णकी बनी हुई थी तथा जिनमें स्फटिकके समान स्वच्छ जल भरा था ऐसी वात्रडियों देवी ॥८६॥ जिन्हें देखकर आनन्द उत्पन्न होता था, जिनकी बहुत भारी सुगन्धि दूर दूर तक फैल रही थी, जिनने फलजाये समूह हिल रहे थे, और जहाँ ध्रमर सगीत कर रहे थे ऐसे कुन्द पुष्पोंके विशाल मण्डप भी उन्होंने देखे ॥८७॥ तदनन्तर राजा जनकने सुले हुए अत्यन्त सुन्दर स्वच्छ नेत्रसे माधवी लताआकी ऊँची जालीने बीच भँककर एक ऐसा सुन्दर मन्दिर देखा जो मौतियाकी जालीसे सुशोभित रत्नमय भरोयासे युक्त था, जो सुवर्णनिर्मित हजार। बडे बडे रत्नभे धारण कर रहा था, नाना प्रकारके रूपसे त्र्याप्त था, मेरुकी शिरस्तरके समान जिसकी प्रभा थी, और जिसकी महापीठ (भूमिना) वज्रनिर्द्वके समान अत्यन्त मज्जूत थी ॥८८-९०॥ उसे देखकर वे विचार करने लगे कि क्या यह आकाशसे गिरा हुआ विमान है अथवा दैत्योने द्वारा हरण किया हुआ

१. नदीगिरे'शान् म० । २. प्रसादं पुनमुज्ज्वलम् म० । ३. कुवाणामिन च० । ४. तत्परम् च०, न० । ५. वापी च म० । ६. पीत म० । ७. कित्वेतद्विमानं म० । ८. आकाशात् ।

पातालादुद्धृत किं वा नागेन्द्रस्यायमालय । कुतोऽपि कारणात् सूर्यमरीचिकृतखण्डन ॥६२॥  
 अहो मे ययुना<sup>१</sup> तेन भद्रेणोपकृत परम् । अदृष्टपूर्वमेतद् यत् साधु वैरमावलोकितम् ॥६३॥  
 विवेश चिन्तयश्चेव भवन तन्मनोहरम् । सम्कुह्ववदनाम्भोजो ददर्श च जिनाधिपम् ॥६४॥  
 हुताशनशिखागौर पूर्णचन्द्रविभाननम् । पद्मासनस्थित तुङ्ग<sup>२</sup> जटामुकुटधारिणम् ॥६५॥  
 प्रातिहार्यसमायुक्त हेमतामरसाचितम्<sup>३</sup> । चित्ररत्नकृतच्छाय तुङ्गसिंहासनस्थितम् ॥६६॥  
 ततोऽञ्जलिपु<sup>४</sup> मूर्ध्नि कृत्वा हृष्टतनूहह । प्रणाम प्रयत् कुर्वन् भक्त्या मूर्च्छामुपागत ॥६७॥  
 क्षणेन प्राप्य सञ्जा च स्तुति कृत्वा सुसंस्कृताम् । विस्म<sup>५</sup>ध जनकस्तस्थी विस्मय परमुद्ग्रहन् ॥६८॥  
 कृता चपलवगश्च माया सहस्य सत्वर । खड्गविधाधरो भूत्वा सप्राप रथनपुरम् ॥६९॥  
 स्वामिने चावदशवा तुष्टो जनकमाहृतम् । रम्यकाननसर्वोत्ते स्थापित जिनवेदमनि १००॥  
 आगत जनक ज्ञात्वा पर हर्षमुपागतम् । आसवर्गेण सयुक्तश्चन्द्रयात्रो महामना ॥१०१॥  
 गृही वा च परा पूजा नानावाहनसकुल । मनोरथरथारूढो ययौ जिनवरालयम् ॥१०२॥  
 दृष्ट्वा तनुमहत्सैन्यमागच्छत्परमोज्ज्वलम् । त्र्यंशङ्गमहानादमाविष्टो जनकोऽभवत् ॥१०३॥  
 ततो हरिगजद्वीपिनागहसाद्रिवाहिनाम् । पुरुषाणामिद मध्ये विमान स व्यलोकयत् ॥१०४॥

इन्द्रका क्रीडागृह है ? ॥६१॥ अथवा किसी कारणवशा सूर्यकी किरणोंसे जिसके खण्ड हो गये थे ऐसा पातालसे निकला हुआ नागेन्द्रका भवन है ? ॥६२॥ अहो ! उस भले घोड़ेने मेरा बड़ा उपकार किया जिससे मैं इस अदृष्टपूर्व सुन्दर मन्दिरको देख सका ॥६३॥ ऐसा विचार करते हुए राजा जनकने उस मनोहर मन्दिरमें प्रवेश किया और वहाँ जाकर जिनेन्द्रभगवान्के दर्शन किये । जिनदर्शनके प्रभावसे उनका मुखकमल खिल उठा था ॥६४॥ मन्दिरमें विराजमान जिनेन्द्रदेव अग्निको शिखाके समान गौर वर्ण थे, उनका मुख पूर्ण चन्द्रमाके समान था, वे पद्मासनसे विराजमान थे, बहुत ऊँचे थे, जटारूपी मुकुटको धारण किये हुए थे, आठ प्रातिहार्यों से युक्त थे, स्वर्ण कमलासे उनकी पूजा की गई थी, नाना प्रकारके रत्नोंसे उनकी कान्ति बढ़ रही थी, और वे ऊँचे सिंहासनपर विराजमान थे ॥६५-६६॥

तदनन्तर जिसके शरीरमें रोमाञ्च उठ रहे थे ऐसे राजा जनकने हाथ जोड़कर भक्तसे लगाये और बड़ी सावधानीसे जिनेन्द्रदेवको नमस्कार किया । नमस्कार करते करते उसकी भक्ति इतनी अधिक बढ़ी कि वह उसके अतिरेकसे मूर्च्छित हो गया ॥६७॥ क्षण भरके बाद पुन चेतना प्राप्त कर उसने सु दर सुसंस्कृत स्तुति की । तदनन्तर वह परम आश्चर्यको धारण करता हुआ नि शङ्क हो वहीं बैठ गया ॥६८॥

इधर चपलवेग नामका विद्याधर जो घोड़ेका रूप धरकर जनकको हर ले गया था अपने कार्यमें सफल हो बड़ा प्रसन्न हुआ तथा शीघ्रतासे सब माया समेटकर तथा खड्गधारी विद्याधर बनकर रथनपुर नगर पहुँचा ॥६९॥ उसने सतुष्ट होकर अपने स्वामीके लिये नमस्कार कर कहा कि राजा जनक यहाँ लाये जा चुके हैं तथा सुन्दर वनसे वेष्टित जिनमन्दिरमें उन्हें ठहरा दिया गया है ॥१००॥ राजा जनकको आवा जानकर चन्द्रगति परम हर्षको प्राप्त हुआ । तदनन्तर उदार चित्तको धारण करनेवाला एव नाना वाहनासे युक्त चन्द्रगति आसवर्गके साथ पूजाकी उत्तमोत्तम सामग्री लेकर मनोरथरूपी रथपर सवार हो जिनमन्दिर गया ॥१०१-१०२॥ जिसमें तुरही और शङ्गाका विशाल शब्द हो रहा था ऐसी उस देदीप्यमान बड़ी भारी सेनाको आती देख जनक बुद्ध भयभीत हुआ ॥१०३॥ तदनन्तर उसमें सिंह, हाथी, शार्दूल, नाग तथा हंस

१ अश्वेन । २ तुङ्गजग-३०, ४०, ५० । ३ सुवर्णकमलपूजितम् । ४ मनाहरोद्यानप्रेष्ठिते । ५ सुमहासैन्य २० ।

अग्निन्तयच्च ते नूनमेते विद्यान्तु<sup>१</sup> जना । विषयाद्द्विगिरेरुर्ध्वं ये वसन्ताति मे श्रुतम् ॥१०५॥  
<sup>२</sup>भष्येऽप्यमस्य सैन्यस्य स्वविमानकृतस्थिति । शोभते परमो द्राप्या कोऽपि विद्याधराग्रि ॥१०६॥  
 एव चिन्तापरे तस्मिन्नृपती दैयपुङ्गव । सप्रापञ्चैयभवन् सन्मदी<sup>३</sup> नतविग्रह ॥१०७॥  
 दृष्ट्वा दैव्याधिप प्राह भाममीम्यपरिग्रहम् । जनक स्मिपि ध्यायस्तस्थौ मिहासनान्तरे ॥१०८॥  
 भक्त्या शशाङ्कयानोऽपि हृत्वा पूजामनुत्तमाम् । प्रणम्य विधिना चक्रे जिनाना परमस्तुतिम् ॥१०९॥  
<sup>४</sup>विपञ्चां च विधायान्हे सुखरूपा प्रियामिव । महाभावनया युक्तो जगौ तिनगुणामरम् ॥११०॥

### चतुष्पदिकावृत्तम्

त्रिभुवनवरदमभिद्रुतमतिशयपूजाविधानविनिहितचित्तै ।  
 प्रणत सुरपुत्रभगणै प्रणमत नाथ त्रिनेन्द्रमत्तयसीरुधम् ॥१११॥  
 ऋषभ सतत परम वरद मनसा वचना शिरसा सुजना ।  
 भजत प्रवर विलय प्रगत विहित सकल दुरित भवति ॥११२॥  
 अतिशयपरम विनिहत दुरित परमगतिगत नमत तिनवरम् ।  
 सर्वसुरामुरयुजित पाद क्रोधमहारिपुनिर्मितमङ्गम् ॥११३॥  
 उत्तमलक्षणलक्षितदेह नामि त्रिनेन्द्रमह प्रपतासा ।  
 भक्त्या विनमितसर्वजनोंष नतिमात्रविनाशितभक्तभयम् ॥११४॥

आदि नाना वाहनोंपर स्थित पुरुपाके मध्यमे एक विमान देखा ॥१०४॥ उसे देखकर वह विचार करने लगा कि निश्चय ही वे विद्याधर हैं जो कि विजयाद्वै पर्वतपर वास करते हैं ॥१०५॥ इस सेनाने बीचमें अपने विमानमें बैठ आ हुआ जो कान्तिमान् पुरुष शोभित हो रहा है वह विद्याधरों का राजा है ॥१०६॥ राजा जनक इस प्रकारकी चिन्तामें तत्पर थे ही कि हृषिकेश भरा तथा नम्रीभूत शरीरको धारण करनेवाला वह चन्द्रगति जिनमन्दिरेमें आ पहुँचा ॥१०७॥ जिसका परिग्रह कुछ तो भीम अर्थात् भय उत्पन्न करनेवाला था और कुछ सौम्य अर्थात् शान्ति उत्पन्न करनेवाला ऐसे दैत्यराजको आया देखा कुछ ध्यान करता हुआ राजा जनक जिनराजने सिंहासन के नीचे बैठ गया ॥१०८॥ राजा चन्द्रगतिने भी भक्तिवश उत्तम पूजा कर तथा विधिपूर्वक प्रणाम कर जिनेन्द्रदेवकी उत्तम स्तुति की ॥१०९॥ और प्रियाके समान जिसका स्वर अत्यन्त सुखकारी था ऐसी वीणाको गोदमें रख बड़ी भावनासे युक्त हो जिनराजका गुणगान करने लगा ॥११०॥

गुणगान करते समय उसने कहा कि जो ताने लोकके लिए वर देनेवाले हैं, अतिशय पूर्ण पूजाके करनेमें चित्त धारण करनेवाले मनुष्य जिनकी सदा स्तुति करते हैं, इन्द्रादि श्रेष्ठ देव जिन्हें नमस्कार करते हैं, तथा जो अक्षय—अविनाशी सुखके धारक हैं, ऐसे त्रिनेन्द्रदेवको हे मन्त्र्यजन ! सदा प्रणाम करो ॥१११॥ हे सत्पुरुषो ! तुम उन ऋषभदेव भगवान्को मनसे, वचनसे शिर झुकाकर सदा नमस्कार करो जो कि उत्कृष्ट लक्ष्मीसे युक्त हैं, वर देनेवाले हैं, श्रेष्ठ हैं, अविनाशी हैं और उत्तम ज्ञानसे युक्त हैं तथा जिन्हें नमस्कार करनेसे समस्त पाप विनष्ट हो जाते हैं ॥११२॥ तुम उन जिनेन्द्रभगवान्को नमस्कार करो जो कि अतिशयोक्ते उत्कृष्ट हैं, जिन्होंने पापको नष्ट कर दिया है, जो परमगति—सिद्ध गतिको प्राप्त हो चुके हैं, समस्त सुर और असुर जिनके चरणोंकी पूजा करते हैं, तथा जिन्होंने क्रोधरूपी महाशत्रुको पराजित कर दिया है ॥११३॥ मैं भक्तिपूर्वक बड़ी सावधानीसे उन जिनेन्द्रभगवान्की स्तुति करता हूँ कि जिनका शरीर उत्तम लक्षणासे युक्त है, जिन्होंने समस्त मनुष्योंके समूहको नन्माभूत कर

अनुपमगुणधरमनुपमकाय विनिहनभवभयसकलकुचेष्टम् ।

कलिमलघनपटविनयनदक्ष प्रणमत जिनवरमतिशयपूतम् ॥११५॥

इति गायति दैवेन्द्रे जिनसिंहासनान्तरात् । निर्ययो भयमु सृज्य जनको नाम शोभन ॥११६॥

ततश्चन्द्रायणोऽशोचदीपचलितमानस । को भवान् विजने देशे वसयत्र जिनालये ॥११७॥

उरगाणा पति कि स्यात् कि वा विद्याधराधिप । सखे वदकृत प्राप्ते भवान् किं सज्जोऽपि वा ॥११८॥

मिथिलानगरातोऽह प्राप्ते जनकसज्जक । हतो मायातुरङ्गेण नभधरमहीपते ॥११९॥

इत्युक्ते जनकेनैतावन्योन्य २भातमानसो । इच्छाकाराङ्गलिं कृत्वा सुखासीनी बभूवतु ॥१२०॥

क्षण स्थि वा च वृत्तान्तैरन्योन्यविनिवेदितै । जनितान्यो-यसन्मानी तौ विश्रम्भ समीयतु ॥१२१॥

ततश्चन्द्रायणोऽशोचद्दामान् कृत्वा कथा-तरम् । पुण्यवानस्मि येन त्व मिथिलपतिरिति ॥१२२॥

अरित ते दुहिता राजन् लक्ष्णैरन्विता शुभै । कर्णगोचरमायाता मम नूरिजनाननात् ॥१२३॥

सा भामण्डलसञ्ज्ञाय मपुत्राय प्रदायताम् । स्वया विहितसम्बन्ध मन्ये स्व परमोदयम् ॥१२४॥

सोऽशोचत् सर्वमेतस्यात् कृत विद्याधराधिप । किन्तु दाशरथेर्बाला ज्येष्ठस्य परिकल्पिता ॥१२५॥

सुहृच्चन्द्रगतिरुचे सा कस्मात्तस्यकल्पिता । सोऽशोचत् प्रथतामस्ति भवता चेत् कुतूहलम् ॥१२६॥

दिया है और जिन्हे नमस्कार करने मात्रसे भक्ताका भय नष्ट हो जाता है ॥११४॥ हे भव्य जन ! तुम जन जिनेन्द्रदेवको प्रणाम करो कि जो अनुपम गुणोंको धारण करनेवाले हैं, जिनका शरीर उपमारहित है, जिन्होंने ससाररूपी समस्त कुचेष्टाओंको नष्ट कर दिया है, जो कलिकालके पापरूपी सघन पटको दूर करनेमें समर्थ हैं तथा जो अतिशयोक्ते पवित्र हैं अथवा अत्यन्त पवित्र हैं ॥११५॥

तदनंतर दैत्यराजके इस प्रकार गानेपर सुन्दर शरीरको धारण करनेवाला राजा जनक भय छोड़ जिनेन्द्रदेवके सिंहासनके नीचेसे बाहर निकल आया ॥११६॥ उसे देख जिसका मन कुछ विचलित हो गया था ऐसा चन्द्रगति बोला कि आप कौन हैं ? जो इस निर्जन स्थान में जिनालयके बीच रहते हैं ॥११७॥ आप नागकुमार देवाके स्वामी हैं ? या विद्याधराके अधिपति हैं ? अथवा किस नामको धारण करनेवाले हैं ? और यहाँ कहाँसे आये हैं ? हे मित्र ! यह सब मुझसे कहो ॥११८॥ इसके उत्तरमें राजाने कहा कि विद्याधरराज ! मैं मिथिला नगरीसे आया हूँ । जनक मेरा नाम है और एक मायामयी घोड़ा मुझे हरकर लाया है ॥११९॥ जनकके इतना कहनेपर दोनोंके हृदय परस्पर अत्यन्त प्रसन्न हुए और दोनों ही एक दूसरेके लिए हाथ जोड़कर मुझसे बैठ गये ॥१२०॥ क्षणभर टहकर दोनोंने एक दूसरेके लिए अपना वृत्तान्त सुनाया और परस्पर एक दूसरेका सम्मान किया । इस तरह वे परस्पर विश्वासको प्राप्त हुए ॥१२१॥ तदनन्तर बीचमें ही बात काटकर चन्द्रगतिये कहा कि अहो ! मैं बड़ा पुण्यवान् हूँ कि जिसने आप मिथिलाके राजाका दर्शन किया ॥१२२॥ हे राजन् ! मैंने अनेक लोगोंके मुखसे सुना है कि आपके शुभ लक्षणोंसे युक्त कन्या है ॥१२३॥ सो वह कन्या मेरे भामण्डल नामक पुत्रके लिए दीजिए । आपके साथ सम्बन्ध स्थापित कर मैं अपने-आपको परम भाग्यशाली समझूँगा ॥१२४॥ इसके उत्तरमें राजा जनकने कहा कि हे विद्याधरराज ! यह सब हो सकता था परन्तु वह कन्या राजा दशरथके ज्येष्ठ पुत्र रामके लिए निश्चित की जा चुकी है, अतः विवशता है ॥१२५॥ मित्र चन्द्रगतिये कहा कि वह कन्या रामके लिए किस कारण निश्चित की गई है ? इसके उत्तरमें जनकने कहा कि यदि आपको कौतूहल है तो सुनिए ॥१२६॥

१ नागशोभन ज० । २ प्रीतिमान्तौ ज० । प्रतिमानसी म० । ३ उल्लि कृत्वा म० । ४ दशरथ सुतस्य रामचन्द्रस्य ।

धनगौरनमपूर्णा मदाया मिथिलापुरी । अर्द्धवर्षैर्ग्लेच्छैस्त्वाप्यत सुदारुणै ॥१२७॥  
 अर्पाइयन्त प्रचा सर्वा स्वद्वियन्त धनो करा । धर्मयज्ञा न्यवर्तन्त भ्रावकाणा महामनाम् ॥१२८॥  
 ततो महाहवे जाते रक्षित्वा मा सद्मानुजम् । पद्मेन विजिता म्लेच्छा ये सुरैरपि दुर्नया ॥१२९॥  
 लक्ष्मणशत्रुपस्तस्य शत्रोपमपराक्रम । कुरते शान्तनय महाविनयमयुत ॥१३०॥  
 यदि नाम न तसैन्य ताम्या स्याद् विजित द्विषा । म्लेच्छलोकन सपूर्णा तत रथादखिला मही ॥१३१॥  
 विवेकरहितास्ते हि लोकपादामया इव । महोपाता इथायन्तभोपणा विपदारुणा ॥१३२॥  
 प्राप्य तौ गुणमपूर्णा सुपुत्रौ लोकावत्सली । इन्द्रवज्रवने राज्य मुख दशरथोऽभवत् ॥१३३॥  
 तस्य राज्येऽधुना जाते नयरीर्यत्रिलासिन । चातोऽपि नाहरत् किञ्चित् प्रनाना पुरमम्पदाम् ॥१३४॥  
 तत प्रयुपकार क करोमीति समाकुल । न रात्रौ न दिवा निद्रा सप्राप्तोऽस्मि विचिन्तयन् ॥१३५॥  
 रक्षिता येन मे प्राणास्तस्य रामस्य नो सम । कश्चित् प्रयुपकारोऽस्ति किमुताधिवयगोचर ॥१३६॥  
 हत महोपकारेण प्रताकारविचिन्तितम् । मन्ये नृगमिवामान भोगप्रीतिपराद्मुख ॥१३७॥  
 नवयौवनमपूर्णां दृष्ट्वा दुहितर शुभाम् । गता विरलता शोक शोकम्पानेऽपि मे तत ॥१३८॥  
 तया कल्पितया तस्य रामस्य पुस्तेनम । नावेव शोचन्लपेस्तारितोऽह मुजातया ॥१३९॥  
 ततो नमश्चरा ऊचुरन्वकाराकृतानना । अहो मानुपमाप्रस्य बुद्धिस्तप न शोभना ॥१४०॥

अर्ध-राक्षसोंके समान अत्यन्त दुष्ट म्लेच्छोंने मेरी धन, धान्य, गाय, भैंस तथा अनेक रत्ना-  
 से परिपूर्ण मिथिला नगरीको बाधा पहुँचाना शुरू किया ॥१२७॥ समस्त प्रजा पीडित होने लगी,  
 धन धान्यके समूह चुराये जाने लगे, और महानुभाव श्रावकाके धार्मिक पूजा विधान आदि  
 अनुष्ठान नष्ट किये जाने लगे ॥१२८॥ तदनन्तर उनके साथ मेरा महायुद्ध हुआ । सो उस महा-  
 युद्धमें रामने मेरी तथा मेरे छोटे भाईकी रक्षा कर देवासे भी दुर्नय उन समस्त म्लेच्छोंको  
 पराजित किया ॥१२९॥ रामका छोटा भाई लक्ष्मण भी इन्द्रके समान महापराक्रमी तथा महा  
 विनयसे सहित है । वह सदा रामकी आज्ञाका पालन करता है ॥१३०॥ यदि उन दोनों भाइयोंके  
 द्वारा म्लेच्छोंकी यह सेना नहीं जाती जाती तो निश्चित था कि यह समस्त पृथिवी म्लेच्छोंसे  
 भर जाती ॥१३१॥ ये म्लेच्छ विवेकसे रहित तथा लोगोंको पीडा पहुँचानेके लिए रोगोंके समान  
 थे अथवा महा उत्पातके समान अत्यन्त भयकर और निपके समान दारुण थे ॥१३२॥ गुणोंसे  
 सम्पूर्ण तथा लोगोंसे म्नेह करनेवाले उन दोनों पुत्रोंको पाकर राधा दशरथ अपने भवनमें इन्द्रके  
 समान राज्यमुपना उपभोग करते हैं ॥१३३॥ नय और शूरवीरतासे सुशोभित राधा दशरथके  
 राज्यमें इस समय हजा भी सम्पत्तिशाली प्रजाका कुछ हरण नहीं कर पाती है फिर अन्य  
 मनुष्योंकी तो बात ही क्या है ? ॥१३४॥ इस उपकारके बदले में उनका क्या उपकार करूँ  
 दूँगी बातची आहुलतासे चिन्ता नरते हुए मुझे न रातमें नीत्र आती है न दिनमें ही ॥१३५॥  
 रामने मेरे प्राणोंकी जो रक्षा की है उस समान भी कोई प्रत्युपकार नहीं है फिर अधिकका तो  
 चर्चा ही क्या है ? ॥१३६॥ जो महान् उपकारसे दना हुआ है तथा स्वयं कुछ भी प्रत्युपकार  
 करनेमें असमर्थ है, ऐसे अपने आपको मैं तृणके समान तुच्छ समझता हूँ । मैं केवल भोगोंके  
 भयमें पराङ्मुख हो रहा हूँ ॥१३७॥ तदनन्तर जब मेरी दृष्टि नवयौवनसे सम्पूर्ण अपनी शुभ  
 पुत्री पर पड़ी तब शोचने स्थानमें भी मेरा शोक विरलताको प्राप्त हो गया ॥१३८॥ मैंने  
 अतिशय प्रतापी रामचन्द्रजीसे लिए उसकी देना सकल्पित कर लिया और नाचकी भोंति इस  
 पुत्रीने मुझे शोचरूपी सागरमें पार कर दिया ॥१३९॥

तदनन्तर जिनने मुझपर अन्धकार छा रहा था ऐसे विशाधर बोले कि अहो ! तुम एक

म्लेच्छै किं ग्रहण क्षुद्रैर्यदि तेषां पराजये । प्रशसामि परां शक्तिं भूमिगोचरिणो<sup>१</sup> बुध ॥१४१॥  
 म्लेच्छनिर्घातान् स्तोत्रं त्वया पद्मस्य कुर्वता । कृता प्रत्युतानन्देयमहो हास्यमिदं परम् ॥१४२॥  
 शिशोविपफले प्रीतिर्नि स्वस्य<sup>२</sup> वदरादिषु । ध्वात्तस्य पादपे शुष्के स्वभावे खलु दुस्त्यज ॥१४३॥  
 कुसुम्य ध परिश्रय्य चित्तिगो<sup>३</sup>चरिणा मतम् । कुरु विद्याधरेन्द्रेण सम्बन्धमधुना सह ॥१४४॥  
 वव महासम्पदो देवैः सट्टो व्योमचारिण । वव भूमिगोचरा क्षुद्रा सर्वथैवातिदुःखिता ॥१४५॥  
 जनकोऽवोचदत्यन्तविपुलं "क्षारसागर । न तत्करोति यद्वाप्य स्तोत्रस्वातुपयोभृत ॥१४६॥  
 अन्यन्तघनवन्धेन तमसा भूयसापि किम् । अल्पेन तु प्रदीपेन जन्यते लोकचेष्टितम् ॥१४७॥  
 असख्या अपि मातङ्गा मदिन कुर्वन्ते न तत् । वैशरी यत्किशोर सख्यन्धनिर्मलवैसर ॥१४८॥  
 इयुन्ते "कोऽपि नोऽयर्थं समं कृतमहारवा । भूमिचेष्टा समारब्धा निन्दितु भगनायना<sup>४</sup> ॥१४९॥  
 विद्यामाहात्म्यनिर्मुक्ता नित्यं स्वैदसमन्विता । शौर्यसम्पत्परित्यक्ता शोचनीया धराचरा ॥१५०॥  
 वद तेषां पश्यन् च को भेदो जनक त्वया । दृष्टो येन त्रया त्यक्त्वा दुर्बुद्धिस्तान् विक्थ्यसे ॥१५१॥  
 उवाच जनको धीर हा कष्टं किं श्रुतमया । वसुधाराजराजानां निन्दितं पापकर्मणा ॥१५२॥  
 कथं त्रिभुवनस्थायतो वशो नाभेयमभव । कर्णगोचरमेतेषां न प्राप्तो लोकपावन ॥१५३॥

साधारण मनुष्य हो, तुम्हारी बुद्धि ठीक नहीं है ॥१४०॥ रामने म्लेच्छोंको पकड़ा है इससे क्या हुआ ? उनको परास्त वो जुद्ध मनुष्य भी कर सकते हैं फिर क्यों तुम बुद्धिमान् होकर भूमिगोचरियाकी परम शक्तिकी प्रशंसा कर रहे हो ॥१४१॥ म्लेच्छोंको निकालने मात्रसे ही तुम रामकी स्तुति कर रहे हो सो यह उनकी स्तुति नहीं किन्तु निन्दा है । अहो ! यह बड़ी हँसीकी बात है ॥१४२॥ बालककी विपफलमें, दरिद्रकी वैर आदि तुच्छ फलोंमें और कौएकी सूखे वृक्षमें प्रीति होती है । सो कहना पडता है कि प्राणीका स्वभावन कठिनाईसे छूटता है ॥१४३॥ इसलिए तुम भूमिगोचरियोंका खोटा सम्बन्ध छोड़कर इस समय विद्याधरोके राजाके साथ सम्बन्ध करो ॥१४४॥ महासम्पत्तिमान् तथा देवोंके समान आकाशमें चलनेवाले विद्याधर कहां ? और सर्वप्रकारसे अत्यन्त दुःखी जुद्ध भूमिगोचरी कहां ? ॥१४५॥

तदनन्तर जनकने उत्तर दिया कि अत्यन्त विस्तृत लवणसमुद्र वह काम नहीं करता जो कि थोड़ेसे मधुर जलका धारण करनेवाली वापिकाएँ कर लेती हैं ॥१४६॥ अत्यन्त सघन अन्धकार बहुत भारी होता है तो भी उससे क्या प्रयोजन सिद्ध होता है जब कि छोटेसे दीपकके द्वारा लोककी चेष्टा उत्पन्न होती है अर्थात् सब काम सिद्ध होते हैं ॥१४७॥ मद्रकी भ्रगनेवाले असुरय हाथी भी वह काम नहीं कर पाते जो कि चन्द्रविम्बके समान उज्ज्वल जटाओंको धारण करनेवाला सिंहका एक बच्चा कर लेता है ॥१४८॥ ऐसा कहनेपर कितने ही विद्याधर 'ऐसा नहीं है' इस प्रकार जोरसे एक साथ बड़ा शब्द करते हुए भूमिगोचरियोंकी निन्दा करने लगे ॥१४९॥ वे कहने लगे कि भूमिगोचरी विद्याके माहात्म्यसे रहित है, निरन्तर पर्सानासे युक्त रहते हैं, शूरवीरता और सम्पत्तिसे रहित हैं तथा अतिशय शोचनीय हैं ॥१५०॥ अरे जनक ! क्या तूने उनमें और पशुओंमें क्या भेद देखा है ? जिससे दुर्बुद्धि हो तथा लज्जा छोड़कर उनकी इस तरह प्रशंसा किये जा रहा है ? ॥१५१॥

तदनन्तर धीरवीर जनकने कहा कि हाय ! बड़े कष्टकी बात है कि मुझ पापीको भूमिगोचरी उत्तमोत्तम राजाओंकी निन्दा सुननी पडी ॥१५२॥ क्या त्रिजगत्में प्रसिद्ध तथा लोककी

१ प्रशंसाम् ० । २ गोचरिणोर्बुधम् ०, गोचरिणो बुधै ३० । ३ दरिद्रस्य । नि स्वस्य ० । ४, गोचरिणामत ० । ५ लवणसागर । ६, चन्द्रमण्डल ० । ७ केऽपि नोत्यर्थं (१) । ८ विद्याधरा ।



अहन्तस्त्रिजगत्पूज्याश्चक्रिणो हरयो बलाः । उत्पद्यन्ते नरा यस्यां सा कथं निन्दिता मर्हा ॥१५४॥  
 पञ्चदश्याणमग्राप्तिः पुंसां वदत खेचरा । स्वप्नेऽपि जातु किं दृष्टा भवद्भिः तेचराग्रनी ॥१५५॥  
 इक्ष्वाकुवंशसभूता गोप्पदीकृतप्रियाः । अनोक्षितपरच्छ्वा महारत्नमसृद्ध्य ॥१५६॥  
 सुरेन्द्रकीर्त्तितोदारकीर्त्तयो गुणमागरा । स्यतीता बहवो भूमौ कृतकृत्या नरोत्तमाः ॥१५७॥  
 पुष्योऽनरण्यराजस्य तत्र वशी महामनः । जातः सुमङ्गलाकुक्षीं नृपो दशरथोऽभवत् ॥१५८॥  
 यो लोकहितमुद्दिश्य विरहेदपि जीवितम् । मूर्ध्ना वहति यस्याज्ञां शोभागिन जनोऽग्नित् ॥१५९॥  
 घतस्यो यस्य सम्पन्नाः सर्वशोभागुणोज्ज्वलाः । आशा इव महादेव्यः सुभावाः सुप्रसाधिताः ॥१६०॥  
 शतानि चरनारीणां पत्र यस्य सुचेतसः । वक्ष्यन्निर्जितचन्द्राणां हरन्ति चरितैर्मनः ॥१६१॥  
 पद्मो नाम मुतो यस्य पद्मालिङ्गितविग्रहः । द्रोक्षिनिर्जिततिग्मायुः कीर्त्तिनिर्जितशीतगुः ॥१६२॥  
 स्थैर्यनिर्जितशैलेन्द्रः शोभाजितपुरन्दरः । शीर्येण यो महापद्मं जयेदपि सुविभ्रम ॥१६३॥  
 अनुजो लक्ष्मणो यस्य लक्ष्मीर्लक्ष्यविग्रहः । द्रवन्ति शत्रवो भीता दृष्ट्वा यस्य शरामनम् ॥१६४॥  
 वायसा अपि गच्छन्ति नभसा तेन किं भवेत् । गुणेष्वत्र मनः कृत्यमिन्द्रजालेन को गुणः ॥१६५॥  
 ग्रहण वा भवद्भिः किं यत्र देवाधिपा अपि । त्रियन्ते भूमिभूतैर्नमन्तः क्षितिमस्तकाः ॥१६६॥  
 इत्युक्ते रहसि स्थित्वा सन्मन्य गगनायनाः । ऊचुर्न वेत्सि वार्याणि ३जनकैकप्रमानया ॥१६७॥

पवित्र करनेवाला भगवान् ऋषभदेवका वंश इनके कर्णगोचर नहीं हुआ ॥१५३॥ त्रिजगन्के द्वारा पूजनीय तीर्थंकर चक्रवर्ती, नारायण और बलभद्र जैसे महापुरुष जिसमें उत्पन्न होते हैं वह भूमि निन्दनीय कैसे हो सकती है ? ॥१५४॥ हे विद्याधरो ! कहे, विद्याधरोकी भूमिमें पुरुषांको पञ्च कल्याणकांको प्राप्ति होना क्या कभी आप लोगोंने स्थानमें भी देसी है ? ॥१५५॥ जिनकी उत्पत्ति इक्ष्वाकु वंशमें हुई थी, जिन्होंने संसारको गोप्पदके समान तुच्छ कर दिखाया, जिन्होंने कभी दूसरेका छत्र नहीं देना, महारत्नोंकी समृद्धि जिनके पास थी, इन्द्र जिनको उदार कीर्त्तिका वर्णन करता था, और जो गुणोंके सागर थे ऐसे अनेक कृतकृत्य राजा पृथिवी पर हो चुके हैं ॥१५६-१५७॥ उसी इक्ष्वाकु वंशमें महानुभाव राजा अनरण्यकी सुमङ्गला रानीकी कुक्षिसे राजा दशरथ उत्पन्न हुए हैं ॥१५८॥ जो लोकहितके लिए अपना जीवन भी छोड़ सकते हैं, समस्त लोग जिनकी आज्ञाको गेपाक्षतके समान शिरसे धारण करते हैं ॥१५९॥ जिसके सर्व प्रकारकी शोभा और गुणोंसे उज्ज्वल, उत्तम अभिप्रायकी धारक तथा उत्तम अलङ्कारोंसे युक्त चार दिशाओंके समान चार महादेवियों हैं ॥१६०॥ यही नहीं, अपने मुखसे चन्द्रमा को जलनेवासी पंच सौ स्त्रियों और भी अपनी चेष्टाओंसे जिसके मनके हरती रहती हैं ॥१६१॥ जिसके पद्म ( राम ) नामका ऐसा पुत्र है कि लक्ष्मी जिसके शरीरका आलिङ्गन करती है, जिसने अपनी द्रोक्षिसे सूर्यकी, कीर्त्तिसे चन्द्रमाको, धीरतासे सुमेरुको और शोभासे इन्द्रको जीत लिया है, जो शूरवीरतासे महापद्म नामक चक्रवर्तीको भी जीत सकता है तथा उत्तम विभ्रमको धारण करनेवाला है ॥१६२-१६३॥ जिसका शरीर लक्ष्मीका निवासस्थल है और जिसके धनुषको देखकर शत्रु भयभीत होकर भाग जाते हैं ऐसा लक्ष्मण उस रामका छोटा भाई है ॥१६४॥ विद्याधर आकाशमें चलते हैं यह कहा सो आकाशमें तो कौए भी चलते हैं । इससे उनमें क्या विशेषता हो जाती है ? यहाँ गुणोंमें मन लगाना चाहिए अर्थात् गुणोंका विचार करना चाहिए । इन्द्रजालमें क्या सार है ? ॥१६५॥ अथवा आप लोगोंकी तो बात ही क्या है ? जबकि भूमिमें उत्पन्न हुए मनुष्य इन्द्रोंको भी नष्टीभूत कर देते हैं और नमस्कार करते समय उन्हें अपने मस्तक पृथिवीपर रगड़ने पडते हैं ॥१६६॥

अथानन्तर जनकके ऐसा कहनेपर विद्याधरोंने एकान्तमें बैठकर पहले सलाह की फिर

पद्मो लक्ष्मण इत्युच्चैर्गजित वहसे वृथा । अथ विप्रैस्त्य कश्चित्तोऽस्माद्गज निश्रयम् ॥१६८॥  
 समय शृणु भूनाथ वज्रावर्तमिदं धनु । इदं च सागरावर्तममरै कृतरक्षणम् ॥१६९॥  
 इमे वाणासने कर्तुमधिष्ठे यदि तौ क्षमौ । अनेनैव तयो शक्तिं ज्ञास्याम किं बहुदितै ॥१७०॥  
 वज्रावर्तं समारोप्य पद्मो गृह्णातु कन्यकाम् । अस्माभि प्रसभ पश्य तामानातामिहान्यथा ॥१७१॥  
 तत परममियुक्त्वा धनुषा वाच्यं दुर्महै । मनकाद् व्याकुलाभाव जनको मनसागमत् ॥१७२॥  
 तत कृपा जिनेन्द्राणा पूजा स्तोत्र तु भावत । गदासारादिसयुक्ते पूजा नाते शरसने ॥१७३॥  
 उपादाय च ते शूरा जनक च नभश्चरा । मिथिलाभिमुख जग्मुश्चन्द्रोऽपि रथनूपुरम् ॥१७४॥  
 तत कृतमहाशोभं समद्गलमहाजनम् । विवेश जनको वेशं परीलोकावलीकित ॥१७५॥  
 विद्याययुधशाला च समावृत्य नभश्चरा । वहन्त परम गर्वं नगरस्य बहि स्थिता ॥१७६॥  
 जनकस्तु सखेदाद् कृवा क्रिञ्चिस भोजनम् । चिन्तयाकुलितो भेजे तल्पमुसाहवर्जित ॥१७७॥  
 तत्र चोत्तमनाराभिविनाताभि सुविभ्रमम् । चन्द्राशुचयसकाशैश्वामरैरभिवीजित ॥१७८॥  
 उष्णदाघातिनि स्वासान् विमुञ्चन् विपमानलम् । दधत्या विविध भावमभाष्यत विदेहयौ ॥१७९॥  
 का क कामिस्त्वया दृष्ट्वा नारा यैतेन लक्षिता । तद्वियोगकथामेतामवस्थामसि सश्रित ॥१८०॥

कहा कि हे जनक ! तुम कार्य करना नहीं जानते, तुम्हारा मन सिर्फ एक ही ओर लग रहा है ॥१६७॥ 'राम और लक्ष्मण उल्टे हैं' इस गजनाको तुम व्यर्थ ही धारण कर रहे हो यदि मेरे इस कहनेमें कुछ सशय हो तो इससे उसको निश्चय कर लो ॥१६८॥ हे राजन् ! हमारी शर्त सुनो । यह वज्रावर्त नामका धनुष है, और यह सागरावर्त नामका धनुष है । देव लोग इन दोनों की रक्षा करते हैं ॥१६९॥ यदि राम और लक्ष्मण इन धनुषोंको डोरासहित करनेमें समर्थ हो जावेंगे तो इसीसे हम उनकी शक्ति जान लेंगे । अधिक कहनेसे क्या लाभ है ? ॥१७०॥ राम वज्रावर्त धनुषको चढाकर कन्या ग्रहण कर सकते हैं यदि वे उक्त धनुष नहीं चढा सकेगे तो आप देखना कि हम लोग उसे यहाँ जबरदस्ती ले आयेगे ॥१७१॥

तदनन्तर 'ठीक है' ऐसा कहकर जनकने विद्याधरोकी शर्त स्वीकार तो कर ला परन्तु उन दुर्माह्य धनुषोंको देखकर चित्तमें वह कुछ आकुलताको प्राप्त हुआ ॥१७२॥ तदनन्तर भाग पूर्वक जिनेन्द्र भगवान्की पूजा और स्तुति कर चुकनेके बाद गदा-हल आदि शस्त्रासे युक्त उन दोनों धनुषोंकी भी पूजा की गई ॥१७३॥ वे शूरवीर विद्याधर उन धनुषों तथा राजा जनकको लेकर मिथिलाकी ओर चल पडे और चन्द्रगति विद्याधर भी रथनूपुरकी ओर चल दिया ॥१७४॥ तदनन्तर जिसकी बहुत बड़ी सजावट की गई थी, और जिसमें महाजन लोग मङ्गलाचारसे सहित थे, ऐसे अपने भवनमें राजा जनकने प्रवेश किया । प्रवेश करते समय नागरिकजनोंने जनकके अन्ध्रा तरह दर्शन किये थे ॥१७५॥ बहुत भारी गर्वको धारण करनेवाले विद्याधर नगरके बाहर आयुधशाला बनाकर तथा उसीको घेरकर ठहर गये ॥१७६॥ जिसका शरीर खेद खिन्न था ऐसे जनकने कुछ थोडासा भोजन किया और इसके बाद वह चिन्तासे व्याकुल हो शय्यापर पड रहा । उसाह तो उसे था ही नहीं ॥१७७॥ यद्यपि वहाँ विनयसे भरी उत्तम स्त्रियों, हाव भाव दिसाती हुई, चन्द्रमाकी किरणके समान चमरोसे उसे हवा कर रही थीं तथापि वह अत्यन्त विपन्न, उष्ण और लम्बे-लम्बे अत्यधिक श्वास छोड रहा था । उसकी यह दशा देख विविध प्रकारके भावको धारण करती हुई रानी विदेहाने कहा ॥१७८-१७९॥ कि हे कामिन् ! आप कहाँ गये थे और वहाँ ऐसी कौन सी कामिनी आपने देखी है जिसके वियोगसे इस

प्राहता कापि सा नारी कामिनीगुगरिनिका । इति या स्मरस्यसत्<sup>२</sup> भवन्तं नानुक्त्वापने ॥१८१॥  
 नाथ वेद्य मे स्थानं येन तामानयामि ते । भवद्दुःखेन मे दुःख जनस्य सङ्करस्य वा ॥१८२॥  
 उदारे सति मांमाये कथमिष्टोऽमि नो तथा । प्रावमानमया येन धृति न लभते भृशम् ॥१८३॥  
 उत्थि भज नि शेषाः त्रिय्या राजजनेषिता । शरीरे सति कामिन्यो भविष्यन्ति मनीषिताः<sup>४</sup> ॥१८४॥  
 इत्युक्ते पाथिवोऽयोचत् कान्तां प्राणगरीयसीम् । अन्यथा मेदितस्यास्य क्रि मे चित्तस्य मेघने ॥१८५॥  
 श्यु देवि यतोऽवस्थामांशरीमहमागतः । अपरिज्ञातवृत्तान्ता किमर्थमिति भाषमे ॥१८६॥  
 तेन मायानुरङ्गेण नीतोऽहं विजयाचलम्<sup>५</sup> । समयेनामुना तत्र मुक्त्वा पया गगामिनम् ॥१८७॥  
 वज्रावर्तमधिष्य चेद्धनुः पद्मं करिष्यति । ततः स्यात्तस्य कन्येय तनयस्य ममान्यथा ॥१८८॥  
 कर्मावुभायतस्तच्च मया साध्वगतोऽपि वा । प्रतिपदमभाष्येन वन्धावस्थासुपेयुया ॥१८९॥  
 समुद्रान्तसंज्ञेन तच्छापेन समन्वितम् । आनीतं येचरन्प्रैरंहि स्थानस्य तिष्ठति ॥१९०॥  
 मन्ये तस्य सुरेशोऽपि न शक्तोऽधिष्यताकृतौ । वज्रवल्गुनुर्यस्य दुर्गिरिष्यस्य तेजसा ॥१९१॥  
 कृतान्तमेव निन्दुद्धमनाकृष्टमपि स्वन् । अनधिष्यमपि ह्यैर मीपम तिष्ठयनारतम् ॥१९२॥  
 अधिष्ये न कृते तस्मिन् पद्मेन मदिष्यं ध्रुवम् । हरिष्यते रगै कन्या मांमपेशीव जम्बुकान् ॥१९३॥  
 विशतिर्वासरागां च वस्तुन्यत्र कृतोऽवधिः । बलाहता वराहोय भूयोऽस्माभिः इ वीक्षिता ॥१९४॥

अवस्थाको प्राप्त हुए हो ॥१८०॥ जान पड़ता है कि वह कोई पामरी स्त्री है अथवा स्त्रीके योग्य गुणोंसे रिक्त है जो इस तरह कामसे संतप्त हुए आप पर दया नहीं करती है ॥१८१॥ हे नाथ ! आप वह स्थान बतलाइये जिससे मैं उसे ले आऊँ क्योंकि आपके दुःखसे मुझे तथा समस्त लोगोंको दुःख हो रहा है ॥१८२॥ उत्कृष्ट सौभाग्यके रहते हुए भी उस पापाण्डव्याने आपको क्यों नहीं चाहा है जिससे कि आप अत्यन्त अर्धांग हो रहे हैं ॥१८३॥ उठिए और राजाओंके योग्य समस्त क्रियाओंका सेवन कीजिए । यदि शरीर है तो अनेक इन्द्रियतत्वोंकी जावेंगी ॥१८४॥

विदेहाके ऐसा कहनेपर राजाने प्राणोंसे भी अधिक प्रिय वल्लभासे कहा कि मेरा चित्त दूसरे ही कारणसे स्थिर हो रहा है । उसे इस तरह खेद क्यों पहुँचा रहा हो ? ॥१८५॥ हे देवि ! मुझे, मैं जिस कारणसे ऐसी अवस्थाको प्राप्त हुआ हूँ । तुम वृत्तान्तको जाने बिना इस प्रकार क्यों बोल रही हो ? ॥१८६॥ मैं उस मायामय अश्वके द्वारा विजयार्थ पर्वतपर ले जाया गया था वहाँ विद्याधरके राजाने मुझे इस शर्तपर छोड़ा है कि यदि राम वज्रावर्त धनुषको डोरी-सहित कर देंगे तो यह कन्या उनकी होगी अन्यथा मेरे पुत्रकी होगी ॥१८७-१८८॥ कर्मके प्रभावसे समझे अथवा भयसे समझे बन्धन अवस्थाको प्राप्त हुए मुझ मन्दभाग्यने उसकी यह शर्त स्वीकार कर ली ॥१८९॥ समुद्रावर्त नामक दूसरे धनुषके साथ उस धनुषको उस विद्याधर ले आये हैं और वह नगरके बाहर स्थित है ॥१९०॥ वह धनुष वज्राग्निसे समान है तथा तेजके कारण उसकी ओर देखना भी कठिन है । इसलिए मैं तो समझता हूँ कि उसे डोरी-सहित करनेमें इन्द्र भी समर्थ नहीं हो सकेगा ॥१९१॥ वह ऐसा जान पड़ता है मानो अत्यन्त क्रुद्ध यमराज ही हो । बिना डोरीके भी वह शब्द करता है और बिना डोरीके भी वह अत्यन्त भयंकर है ॥१९२॥ यदि राम उस धनुषको डोरीसहित नहीं कर सके तो मेरी इस कन्याको विद्याधर लोग अवश्य ही उसी तरह हर कर ले जावेंगे जिस तरह कि पक्षी किसी शृगालके मुँहसे मांसकी हड्डीको हर ले जाते हैं ॥१९३॥ इस कार्यके लिए बीस दिनकी अवधि निश्चिन की

१. पामरी । २. स्मरस्यसत् म० । ३. पापाणनत्कडोरचेतता । ४. श्या । ५. विजयार्थगिरिम् ।

६. रामः । ७. स्वीकृतम् । ८. सख्येन म० । ९. दिग्गालानक ज०, ख०, क० । १०. कृतान्तायैव तन्दुद म०, ख० । ११. अधिष्येन ह्ये यस्मिन् म० । १२. मत् मत्तमयात् ।

एवमुक्तेऽखसपूर्णलोचना सहसाभवत् । विदेहापहृत बालस्मरच्च प्रसङ्गतः ॥१६५॥  
 अतीतागामिशोकान्ध्यामभित पीडितेव सा । चकार वारिनेत्राग्या कुररीव कृतस्वना ॥१६६॥  
 परिदेवन्मेव च चक्रे विह्वलमानसा । कुर्वती परिवर्गस्य द्वेषणं चेतसामलम् ॥१६७॥  
 कौटम्बाम मया नाथ दैवस्यापकृतं भवेत् । पुत्रेण यन्न सनुष्ट हतुं कन्यासमुद्यतम् ॥१६८॥  
 स्नेहालम्बनमेकैव बालिकेय सुचेष्टिता । मन ते बान्धवाना च प्रेमभावो जनस्य च ॥१६९॥  
 दुःखस्य यावदेकस्य<sup>१</sup> नान्तं गच्छामि पापिनी । द्वितीयं तावदेतन्मे<sup>२</sup> कृतसन्धिं वर्तते ॥२००॥  
 शोकावर्तनिमगनां ता कल्प रदतीमिति । नियम्याशु<sup>५</sup> भ्रियोबोचदतः शोकसमाकुलः ॥२०१॥  
 अल कान्ते रदित्वा ते ननु कर्माजित् पुरा । नर्तयत्यलिल लोकं नृत्ताचार्यो ह्यसौ परः ॥२०२॥  
 भयवा मयि विश्वस्ते हतो दुष्टेन बालक<sup>३</sup> । अग्रमत्तस्य बालां तु हतुं शक्तोऽस्मि को मम ॥२०३॥  
 भासप्रधारणन्यायमपरित्यजता मया । पृष्टामि दयिते वस्तु जानाम्येतत् सुखावहम् ॥२०४॥  
 सारैरेवविधैर्वार्यैः कान्तेन कृतसान्त्वना<sup>४</sup> । विदेहा विरलीकृत्य शोकं कृच्छ्रावस्थिता ॥२०५॥  
 ततो धनुर्गुहमन्ते विशाला रचितावति । स्वयंवरार्थमाहूता पापिवा सकला ब्रिता ॥२०६॥  
 प्रेषितः कोशलं दूतः<sup>६</sup> पद्माद्याः ममुपागताः । मातापित्रादिसयुक्ता जनकेनाभिपूजिताः ॥२०७॥

गई है । इसके बाद यह कन्या जबरदस्ती ले जाई जावेगी । फिर इस बेचारीको हम कहाँ दे सकेंगे ? ॥१६४॥

जनकके ऐसा कहते ही विदेहाके नेत्र सहसा आँसुओंसे भर गये और इस प्रसङ्गसे उन अपने अपहृत बालकका स्मरण हो आया ॥१६५॥ वह अतीत और आगामी शोकके द्वारा दोन ओरसे पीड़ित हो रही थी । इसलिए कुररीकी तरह शब्द करती हुई नेत्रोंसे जल बरसाने लगी ॥१६६॥ विह्वल चित्तकी धारक विदेहा परिजनोके चित्तको अत्यन्त द्रवीभूत करती हुई इस प्रकार विलाप करने लगी कि हे नाथ ! मैंने देवका कैसा उलटा अपकार किया होगा कि जिसका वह पुत्रके द्वारा सनुष्ट नहीं हुआ अब कन्याको हरनेके लिए उद्यत हुआ है ॥१६७-१६८॥ उक्त चेष्टाको धारण करनेवाली यही एक बालिका मेरे और आपके स्नेहका आलम्बन है तथा भावबान्धव एवं परिवारके लोगोका प्रेमभाजन है ॥१६९॥ मैं पापिनी जब तक एक दुष्टका अन् नहीं प्राप्त कर पाती हूँ तब तक दूसरा दुःख आकर उपस्थित हो जाता है ॥२००॥ राजा जन स्वयं शोकसे आकुल था पर जब उसने देखा कि विदेहा शोकरूपी आवर्तमें फँसकर कष्ट रोदन कर रही है तब उसने जिस किसी तरह अपने आँसू रोककर कहा कि हे प्रिये ! तुम्हारा रोना व्यर्थ है । निश्चयसे पूर्व जन्ममें अर्जित कर्म ही समस्त लोकको नचा रहा है । यही सब बड़ा नर्तकाचार्य है ॥२०१-२०२॥ अथवा मेरे निश्चित असावधान रहनेपर किसी दुष्टके द्वारा बालक हरा गया था पर अब तो मैं सावधान हूँ । देखो मेरी कन्याको हरनेके लिए कौन सम है ? ॥२०३॥ हे प्रिये ! 'आतजनोंके साथ कार्यका विचार करना चाहिए' इस न्यायको न छोड़ हुए ही मैंने तुममें पूछा था । मैं तो जानता हूँ कि यह वस्तु सुखको धारण करनेवाली ही हो ॥२०४॥ पतिके इस प्रकार सारपूर्ण वचनोंसे जिससे सान्त्वना दी गई थी ऐसी विदेहा बड़े बसे शोकको हलका कर चुप हो रही ॥२०५॥

तदनन्तर जहाँ धनुष रक्तरा था उसके समीप ही विशाल भूमि बनाई गई और उस स्वयंवरके लिए समस्त राजा बुलाये गये ॥२०६॥ अयोध्याको भी दूत भेजा गया जिससे राजा आदि चारों भाई माता पिता आदिके साथ आये और राजा जनकने उन सबका सम्मान कि

१. द्रविण म० । २. देतस्य म० । ३. तावदेवन्मे म० । ४. नियम्याशु म० । ५. सान्धवा च० । ६. उपागताः । ७. मातृपिता-ज०, क०, ख०, घ० ।

ततो हर्म्यतले कान्ते स्थिता परमसुन्दरा । कन्यासप्तशता-तस्था सीता शूरभयावृता ॥२०८॥  
 प्रान्तेषु सर्वसामन्ता वीरमनोऽस्यावतस्थिरे । कुर्वाणा विचित्रा लीला महाविभववन्ति ॥२०९॥  
 तत स्थित्वा पुरस्तस्य बन्धुकी सुबहुधृत । जगाद् दशरथश्रेण हेमवेप्रलताकर ॥२१०॥  
 राजपुत्रि पराचक्ष्व पद्मोऽसी पद्मलाचन । अयोध्याधिपतेराय पुत्रो दशरथश्रुते ॥२११॥  
 लक्ष्मीमान् लक्ष्मणश्यामनुजोऽस्थ महाद्यति । भरतोऽय महागद्गु शत्रुघ्नोऽय सुचेष्टित ॥२१२॥  
 सुतेर्दशरथोऽर्मीभिर्गुणसागरमानसै । धनुषा शक्ति निर्दग्धभयाङ्कुरसमुद्भवाम् ॥२१३॥  
 हरिवाहननामाय धामानेय धनप्रभ । अय चित्ररथ कान्तो दुर्मुखोऽय प्रभाववान् ॥२१४॥  
 श्रामचयो जयो भानु सुप्रभो मन्दरो ब्रुष । विशाल श्रीधरो वीरो बन्धुभद्रबल शिरो ॥२१५॥  
 ज्नेऽप्ये च महासत्त्वा महाशोभासमन्विता । विशुद्धवशसम्भूताश्चन्द्रनिर्मलकान्तय ॥२१६॥  
 कुमार परमोऽयाहा गुणभूषणराणि । महाविभवसम्पदा भूरिविज्ञानकोविदा ॥२१७॥  
 गनोऽयमन्य शैलान्तुराजोऽस्वायमुचत । रथोऽस्याव महाभोगो भगोऽस्याव कृताद्भुत ॥२१८॥  
 साकारयपुरनाथोऽयमय रन्ध्रपुराधिप । गनीधुमदधीशोऽयमय नन्दनिकाधिप ॥२१९॥  
 विभु सूरपुरस्यायमेप कुण्डपुराधिप । अय मगपराजेन्द्र काम्पिल्यविभुरेप च ॥२२०॥  
 अयमिच्छाङ्गमभूतो नृपोऽय हरिवंशज । अय कुरुकुलानन्दो भोचोऽय वसुधापति ॥२२१॥  
 इत्यादिवर्णनायुक्ता श्रयन्तेऽमी महागुणा । इद त्वदर्थमेतेषा समारब्ध परीक्षणम् ॥२२२॥

॥२०८॥ तदनन्तर परम सुन्दरी सीता सात सौ अन्य कन्याओंके साथ महलकी सुन्दर छतपर बैठी । शूरवीर योद्धा उसे घेरे हुए थे ॥२०८॥ उस महलके चारों ओर नाना प्रकारकी लीला को करते हुए समस्त सामन्त वडे ठाट नाटसे अवस्थित थे ॥२०९॥

तदनन्तर अनेक शास्त्रियों जाननेवाला तथा हाथमें सुवर्णकी छड़ी धारण करनेवाला बन्धुकी सीताके सामने खड़ा होकर उब ररसे बोला कि हे राजपुत्रि ! देखो यह कमल लोचन, अयोध्याके अधिपति राजा दशरथका आद्य पुत्र पद्म ( राम ) है ॥२१०-२११॥ यह लक्ष्मीवान् तथा विशाल कान्तिको धारण करनेवाला इसका छोटा भाई लक्ष्मण है । यह बड़ी पढी भुजाओं को धारण करनेवाला भरत है और यह सुन्दर चेष्टाभाकी धारण करनेवाला शत्रुघ्न है ॥२१२॥ जिनके हृदय गुणोंके सागर हैं ऐसे इन पुत्रोंके द्वारा राजा दशरथ पृथिवीका पालन करते हैं । इनकी पृथिवीमें भयने समस्त अङ्गुली उत्पत्ति भस्म कर दी गई है ॥२१३॥ यह अत्यधिक कान्तिको धारण करनेवाला सुद्धिमान् हरिवाहन है, यह सुन्दर चित्ररथ है, यह प्रभावशाली दुर्मुख है ॥२१४॥ यह श्रीसञ्जय है, यह जय है, यह भानु है, यह सुप्रभ है, यह मन्दर है, यह वृष है, यह विशाल है, यह श्रीधर है, यह वीर है, यह बन्धु है, यह भद्रबल है और यह गिरी अर्वाङ्ग मयूरकुमार है ॥२१५॥ ये तथा इनके सिवाय और भी राजकुमार यहाँ उपस्थित हैं । ये सभी महा पराक्रमी, महा शोभासे युक्त, विशुद्ध कुलमें उत्पन्न, चन्द्रमाके समान निर्मल कान्तिके धारक, परमोत्साही, गुणरूपी आभूषणोंके धारक, महा विभवसे सम्पन्न तथा अत्यधिक विज्ञानमें निपुण हैं ॥२१६-२१७॥ यह पर्वतके समान आभावाला इसका हाथी है, यह इसका ऊँचा घोड़ा है, यह इसका विस्तृत रथ है और यह आश्चर्यजनक कार्य करनेवाला इमरा सुभट—योद्धा है ॥२१८॥ यह माङ्गल्यपुरका स्वामी है, यह रन्ध्रपुरका अधिपति है यह गनीधुमद देशका अधीश है, यह नन्दनिकाका नाथ है ॥२१९॥ यह सूरपुरका विभु है । यह कुण्डपुरका अधिप है, यह मगप देशका राजा है, और काम्पिल्यपुरका स्वामी है ॥२२०॥ यह राजा इन्द्रनाटुशर्म उत्पन्न हुआ है, यह हरिवंशमें उद्भूत हुआ है, यह कुरुकुलका आनन्द दास है और यह राजा भोज है ॥२२१॥ ये सभी राजा इत्यादि वर्णनासे युक्त तथा महा

वज्रावर्तमिदं चापमारोपयति यो नर । कुमारि वरणीयोऽमो भवत्या पुरुषोत्तम ॥२२३॥  
 क्रमेण मानिनस्ते च कुर्वाणा स्वविक्रयणम् । वज्रावर्तधनुस्तेन दौकित्याध्याहविभ्रमा ॥२२४॥  
 आर्मात्रमु कुमारेषु धनुर्मुञ्चति पादकम् । विद्युमदासमाकारं निध्वंसद्दीपणोरगम् ॥२२५॥  
 चक्षुस्तत्र द्रुतं केचिद्धनुर्वालासमाहृतम् । प्रस्तां पिवाय पाणिभ्या पराचानत्त्वमाश्रिता ॥२२६॥  
 तस्थुर्वृतं पृथा ये दृष्ट्वा स्फुरितपद्मगान् । कम्पमानसमस्ताङ्गा निमालितविलोचना ॥२२७॥  
 'केचिद्भवाकुला पेनु चितावन्व्ये' गिराञ्जिता । द्रुतपलापिता केचिद्रेके मूर्च्छामुपागता ॥२२८॥  
 केचिपद्मगवातेन क्षिप्ता मर्मरपत्रवत् । अपरे स्तम्भमायाता स्थिता शान्तद्वयोऽपरे ॥२२९॥  
 केचिद्धनुर्वर्दि स्थान गमिष्यामो निज तत । जीवदानानि दास्यामश्चरगौ देहि देवते ॥२३०॥  
 'ञ्चुरन्येऽन्यनाराभि सेवा मानसवासिनः' । ध्रियमाणा करिष्यामो रूपिष्यापि क्रिमेतया ॥२३१॥  
 अन्ये जगुरिष्य नृत वेनापि क्रूरचेतसा । प्रयुक्ता परमा माया वधार्थं पृथिवार्जिताम् ॥२३२॥  
 अन्ये जगु क्रिमस्माक कामेनास्ति प्रयोजनम् । ब्रह्मचर्येण नेष्याम समय साधवो यथा ॥२३३॥  
 तत पद्म समुत्तम्यौ वरकामुं कलालस । हुड्डीके च 'महानागमन्थरा गतिमुद्बहन्' ॥२३४॥  
 आयादतिशुभे तरिमन् रूप भेत्त धनुर्निजम् । सुचारुपरम सांम्यमन्नेत्रासी' गुरादिव ॥२३५॥

गुणवान् सुने जाते हैं। तुम्हारे लिए इन सबका यह परीक्षण प्रारम्भ किया गया है ॥२२३॥ हे कुमारि ! जो पुत्र इस वज्रावर्त धनुषको चढा देगा वही पुरुषोत्तम तुम्हारे द्वारा बरा जाना है ॥२२३॥

तदनन्तर जो मानसे सहित थे, अपनी प्रशंसा अपनेआप कर रहे थे, और सुन्दर विलाससे सहित थे ऐसे उन सत्र राजाओंको वह कञ्चुकी वज्रावर्त धनुषके पास ले गया ॥२२४॥ जिसका आकार त्रिजलीकी छटाके समान था तथा जिसमें भयङ्कर साँप फुँकार रहे थे ऐसा वह धनुष राजकुमारोंके पास आते हा अग्नि छोड़ने लगा ॥२२५॥ कितने ही राजकुमार भयभीत हो धनुषकी ज्वालाओंसे ताडित चक्षुको दोनों हाथोंसे ढँककर शीघ्र ही वापिस लौट गये ॥२२६॥ जिनके समस्त अङ्ग कम्पित हो रहे थे तथा नेत्र बन्द हो गये थे ऐसे कितने ही लोग चलते हुए साँपोंको देखकर दूर ही खड़े रह गये थे ॥२२७॥ कितने ही लोग वरसे आकुल हो पृथ्वी पर गिर पड़े, कितने ही लोगोंकी बोलती मन्ड हो गई, कितने ही शीघ्र भाग गये और कितने ही मूर्च्छाको प्राप्त हो गये ॥२२८॥ कितने ही लोग साँपोंकी वायुसे सूखे पत्रके समान उड़ गये, कितने ही अन्ड गये और कितने ही लोगोंकी श्रद्धि शान्त हो गई अर्थात् वे शोभाहित हो गये ॥२२९॥ कितने ही लोग कहने लगे कि यदि हम अपने स्थानपर वापिस जा सकेंगे तो साँपोंको दान देवेंगे। हे देवते ! मुझे दो चरण दो अर्थात् वापिस भागनेकी पैरोंमें शक्ति प्रदान करो ॥२३॥ कितने ही लोग बोले कि यदि हम जीवित रहेंगे तो अन्य स्त्रियोंसे कामकी सेवा कर लेंगे। भले ही यह रूपवती हो पर इससे क्या प्रयोजन है ? ॥२३१॥ कुछ लोग कहने लगे कि निश्चित ही किसी दुष्ट चित्तने राजाओंके वधके लिए इस मायाका प्रयोग किया है ॥२३२॥ और कुछ लोग कहने लगे कि हमें कामसे क्या प्रयोजन ? हम तो साधुओंके समान ब्रह्मचर्यसे समय बिता देवेंगे ॥२३३॥

तदनन्तर जिन्हें उस उल्कृष्ट धनुषकी लालसा उत्पन्न हो रही थी ऐसे राम मदनोन्मत्त गजराजके समान मन्थर गतिकी धारण करते हुए उसके पास पहुँचे ॥२३४॥ पुण्यशाली रामके

१ चारुभिन्ना म० । २ शीघ्रम् । ३ परामुत्तमम् । ४. केचिद्भवाकुला म०, केचित्भवाकुला ज० । ५. वापसा रहिता । ६. देवि ज० । ७. ञ्चुरन्येन नापीभि म० । ८. कामस्य । ९. महागजमन्थरा । १०. द्याव ।

ततो विस्त्रयमादाय धनुर्दहेद्य चाशुकम् । समारोपयद्भ्युत्थैर्भनित विपुलप्रभम् ॥२३६॥  
 महाजलधरध्वानशङ्किमि शिखिभि कृतम् । मुक्केकारधैर्नृत्य यद्विस्तार्गमण्डलं ॥२३७॥  
 अलातचक्रमकाशे सजातो दिवसाधिप । सुवर्णरजमाच्छ्रया दृवायान् स्योमनाहव ॥२३८॥  
 साधु सात्विति वेदाना बभूव नमस्वि स्वन . । ननृतुष्यन्तरा केचिन्मुञ्चत पुण्यमदृता ॥२३९॥  
 ततोऽग्निचक्रद्वारविरीकृतविष्टपम् । आचक्रय धनुः पद्म सम्प्राप्त चरनाग्नि ॥२४०॥  
 विपलाभूतनिरशेषहृपाक सकलो जन । तदावर्तमिव प्राप्नो भ्राम्यति व्रस्तमानय ॥२४१॥  
 प्रवातनृगिताम्भोऽपलाशाधिककान्तिना । चक्षुषा स्मरचापेन सीता राम निरैवत ॥२४२॥  
 रोमाञ्छोषितसर्पाणा दधती परमध्वजम् । प्रीता राम लुडोके सा मोहाविनमितानना ॥२४३॥  
 पार्थस्थया तथा रेने स तथा सुन्दरो<sup>१</sup> यथा । यथायमिति दृष्टान्त यो भवेत् स गतत्रय ॥२४४॥  
 भवतारितमौर्वीक स कृष्या सायकासनम् । तस्यो विनयसम्पन्नं स्वामने सातया सह ॥२४५॥  
 सकम्पहृदय सती रामाननदिदृश्यत । भाव कमपि सम्प्राप्ता गजसङ्गमवाभ्यया ॥२४६॥  
 ध्रुववाक्पारनिस्वान सागरावर्तकामुङ्गम् । तावद्य लप्सगोऽधिगय कृवास्त्रालयदुदतम् ॥२४७॥  
 शरे निहितदृष्टि त समालोक्य नभश्चरा । वदन्तो देव मा मेति मुमुक्षु कुसुमोक्तरान् ॥२४८॥  
 आहृष्य कामुङ्ग क्रूर मौर्वीमिराद्वृणित<sup>२</sup> । अवसार्थं च प्रत्यस्य पार्थ सुनिनरत्सिपत ॥२४९॥

समीप आते ही धनुष अपने असली स्वरूपको उसांतरह प्राप्त हो गया जिस तरह कि गुरुके समीप आते ही विद्यार्थी अत्यन्त सुन्दर एवं सौभाग्यरूपको प्राप्त हो जाता है ॥२३६॥ तदनन्तर रामने वज्र ऊपर चढाकर नि शङ्क हो धनुष उठा लिया और उसे चढाकर जोरसे त्रिपुल गर्जना की ॥२३६॥ मयूर उस गर्जनाको मेघोंकी महागर्जना समझ हर्षसे केकाध्वनि छोड़ने लगे और अपनी पिच्छोंका मण्डल फैला कर नृत्य करने लगे ॥२३७॥ सूर्य अलातचक्रके समान हो गया और दिशाएँ सुपर्णकी परागसे ही मानो व्याप्त हो गई ॥२३८॥ आकाशमें 'साधु' 'साधु'—'ठीक-ठीक' इस प्रकार देवोंका शब्द होने लगा और फूलोंके समूहकी वर्षा करते हुए कितने ही व्यन्तर नृत्य करने लगे ॥२३९॥

तदनन्तर अटनीकी दृष्टारसे जिसने समस्त चिखको वहिरा कर दिया था तथा जो चक्राकारताको मानो व्याप्त हो रहा था ऐसे धनुषको रामने खींचा ॥२४०॥ जिनकी समस्त इन्द्रियों विकल हो गई थीं तथा मन भयभीत हो रहा था ऐसे सब लोग भँवरमें पड़े हुएके समान घूमने लगे ॥२४१॥ वायुसे हिलते हुए कमलदलसे भी अधिक जिसकी कान्ति थी, तथा जो कामदेवके धनुषके समान जान पड़ता था, ऐसे नेत्रसे सीताने रामको देखा ॥२४२॥ जिसका समस्त शरीर रोमाञ्छोंसे सुरोभित हो रहा था, जो उरुकुट माला धारण कर रही थी, तथा लज्जासे तिसका मुख नीचेकी ओर मुक रहा था ऐसी सीता प्रसन्न हो रामके समीप पहुँची ॥२४३॥ पासमें रखी सीतासे सुन्दर राम इस तरह सुरोभित हो रहे थे कि उनकी उपमामें 'वे इस तरह सुरोभित थे' ऐसा जो कहता था वह निर्लज्ज जान पड़ता था अर्थात् वे अनुपम थे ॥२४४॥

तदनन्तर धनुषकी डोरी उतारकर वे विनयवान् राम सीताके साथ अपने आसनपर बैठ गये ॥२४५॥ जो नव समागमके कारण भयभीत हो रही थी तथा जिसके हृदयमें कम्पन उत्पन्न हो रहा था ऐसी सीता रामका मुख देखनेकी इच्छासे किसी अद्भुत भावको प्राप्त हो रही थी ॥२४६॥ इतनेमें ही लुभित समुद्रके समान जिसका शब्द हो रहा था ऐसे सागरावर्त नामक धनुषको लक्ष्मणने प्रत्यञ्चासहित कर जोरसे उसकी दृष्टार छोड़ी ॥२४७॥ तदनन्तर वाणपर जड़ि लगाये हुए लक्ष्मणको देख 'हे देव नहीं, नहीं' ऐसा कहते हुए त्रिधाधरोंने फूलोंके समूह छोड़े अर्थात् पुष्प वर्षा की ॥२४८॥ तदनन्तर जिसकी डोरीसे विशाल शब्द हो रहा था ऐसे

१ शिवा । २. मुदय म० । ३. बलाग्न ।

विज्ञान्ताय तथा तस्मै विद्याभुवन्द्वर्धन । अष्टादश ददौ कन्या धियैवाप्रौढिका इति ॥२५०॥  
 विद्याधरै समागत्य परम भयूर्रिते । वृत्तान्ते कथिते तस्मिन्नध्वन्वन्तापर. स्थितः ॥२५१॥  
 वृत्तान्तमिममालोच्य भरत पुरुविस्मय । अशौचदेवमामान मनसा सम्प्रबुद्धवान् ॥२५२॥  
 कुलमेक पिताप्येक एतयोर्मम चेटशम् । प्राप्तमद्भुतमेताभ्या न मया मन्दकर्मणा ॥२५३॥  
 अथवा कि मनो व्यर्थ परलक्ष्म्याभितप्यसे । पुरा चारुणि कर्माणि न कृतानि भ्रुवं त्वया ॥२५४॥  
 पद्मगर्भदलच्छाया साक्षाद्भवामिबोज्ज्वला । ईदृशी पुरुषुण्यस्य पुनो भवति मामिनी ॥२५५॥  
 कलाहलापनिष्णाता विज्ञाना केक्या तत । विज्ञाय तनयाकृत कर्णे प्रियमभापत ॥२५६॥  
 भरतस्य मया नाथ शोकवह्नित मन । तथा कुरु यथा नाथ निर्वेद परमृच्छति ॥२५७॥  
 अस्यत्र कनको नाम जनकस्यानुनो नृप । सुप्रभाया ततो जाता सुकन्या लोकसुन्दरी ॥२५८॥  
 स्वयंवराभिध भूय समुद्रोपेय नियोज्यताम् । तथाय यात्रदायाति नान्य त भावनान्तरम् ॥२५९॥  
 तत परममियुक्त्वा वार्ता दशरथेन सा । कर्णगोचरमार्ताता कनकस्य सुचेतस ॥२६०॥  
 यदाज्ञापयतीत्युक्त्वा कनकेनान्यवासरे । समाहृता नृपा. क्षिप्र गता ये निलय निनम् ॥२६१॥  
 ततो यथोचितस्थानस्थितभूनाधमध्यगम् । नन्दनगणमध्यस्थशर्वरीवरविभ्रमम् ॥२६२॥  
 उपात्तनुमतोदामा कानकी कनकप्रभा । सुप्रभा भरत वने सुभद्रा भरत यथा ॥२६३॥

धनुषको खींचकर और फिर उतारकर बलवान् लक्ष्मण रामके समीप ही बड़ी विनयसे आ बैठा ॥२४६॥ उस प्रकार शूरवीरता दिखानेवाले लक्ष्मणके लिए चन्द्रवर्धन विद्याधरने अत्यन्त बुद्धि-मती अठारह कन्याएँ दीं ॥२४७॥ भयसे अतिशय भरे हुए विद्याधरोंने वापिस आकर जब यह समाचार कहा तब चन्द्रगति विद्याधर चिन्तामें निमग्न हो गया ॥२५१॥

अथानन्तर यह वृत्तान्त देरकर जिसे बड़ा आश्चर्य प्राप्त हो रहा था तथा जिसे मनमें प्रवोध उत्पन्न हुआ था ऐसा भरत अपने आपके विषयमें इस प्रकार शोक करने लगा ॥२५२॥ कि देखो हम दोनोंका एक कुल है, एक पिता हैं । पर इन दोनों अर्थात् राम लक्ष्मणने ऐसा आश्चर्य प्राप्त किया और पुण्यकी मन्दतासे मैं ऐसा आश्चर्य प्राप्त नहीं कर सका ॥२५३॥ अथवा दूसरेकी लक्ष्मीसे मनकी व्यर्थ ही क्यों संतप्त किया जाय ? निश्चित ही तूने पूर्वभवमें अच्छे कार्य नहीं किये ॥२५४॥ कमलके भीतरी दलके समान जिसकी कान्ति है ऐसी साक्षात् लक्ष्मीके समान उज्ज्वल स्त्री अत्यधिक पुण्यके धारक पुरुषको ही प्राप्त हो सकती है ॥२५५॥

तदनन्तर कलाओके समूहमें निष्णात एवं विशिष्ट ज्ञानको धारण करनेवाली केक्याने पुत्रकी चेष्टा जानकर कानमें हृदयबल्लभ राजा दशरथसे कहा कि हे नाथ । मुझे भरतका मन शोकयुक्त दिखाई देता है । इसलिए ऐसा करो कि जिससे यह वैराग्यको प्राप्त न हो जाय ॥२५६-२५७॥ यहाँ जनकका छोटा भाई कनक है उसकी सुप्रभा रानीसे उत्पन्न हुई लोकसुन्दरी नामा कन्या है ॥२५८॥ सौ स्वयंवर विधिकी पुन घोषणा कर उसे भरतके लिए उसी तरह स्वीकृत कराओ जिस तरह कि वह किसी दूसरी भावनाको प्राप्त नहीं हो सके ॥२५९॥ तदनन्तर 'बहुत ठीक है' ऐसा कहकर राजा दशरथने यह बात विचारवान् राजा कनकके कान तक पहुँचाई ॥२६०॥ राजा कनकने भी 'जो आज्ञा' कहकर दूसरे दिन जो राजा अपने घर चले गये थे उन्हें शीघ्र ही बुलाया ॥२६१॥

तदनन्तर जो यथायोग्य स्थानोंपर बैठे हुए राजाओंके मध्यमें स्थित था और नन्दनके समूहमें स्थित चन्द्रमाके समान सुशोभित हो रहा था ऐसे भरतकी पुष्पमाला धारण करनेवाली एवं मुण्डणके समान कान्तिसे सयुक्त, राजा कनककी पुत्री लोकसुन्दरीने उस तरह



अप्यन्तविपर्ययात् परय ध्रेणिक कर्मणाम् । यतोऽर्था मन्बुद्ध मन् कन्यया माहित पुन ॥२६५॥  
 विलम्बा पाथिवा सर्वे जन्मु स्थान यथावधम् । अस्तुश्च विख्याताया वापुर्वर्गनमागम ॥२६६॥  
 पादक्येन कृतं कर्म मुञ्चे तादृक् स तादृक्म् । ननुसन् कोद्रवान् कश्चिद्वरुने शक्तिमपदम् ॥२६७॥  
 केतुतारणमालाभिमण्डिताया महापुत्री । आगुल्लकुमुमापूर्णाविराण्यवर्त्मनि ॥२६७॥  
 सशस्त्रनृपनिस्वान्पूरिताभिलवेरमनि । मिथिलाया तयोरात्रौ विवाह परमोऽयम् ॥२६८॥

द्रविणेन तथा लोकः सकलो परिपूरितः ।  
 महाप्रलयमायान देहाति ध्वनित यथा ॥२६६॥  
 ये विवाहोऽयम् द्रष्टुं स्थिता भूया सुतेतम् ।  
 परम प्राप्य सन्मान ययुस्ते स्व स्वमालयम् ॥२७०॥

### द्रुतविलम्बितवृत्तम्

सकलविष्टपनिर्गतर्कतयं परमरूपवानिधित्वितं ।  
 पितृननाधितममद्रसम्पद परमरनविभूषितविमहा ॥२७१॥  
 विविधयानसमाकुल्यैनिका जलनिधिस्वननूर्यनिनादिता ।  
 विश्वेश्वरभ्युदयेन मुक्तोराला दशरथस्य मुता वपुके ३तथा ॥२७२॥  
 समत्रलोक्तिमुत्तमविप्रहे पुरि तदा वपुके सकलो जनः ।  
 रदितसामिहृतस्वमन क्रिय श्रयति शानपथ शृशमाकुल ॥२७३॥

घरा जिस तरह कि उत्तम कान्ति की धारण करनेवाली सुभद्राने पहले भरत चन्द्रवर्ती को परा था ॥२७२-२७३॥ गौतमस्यामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! कर्मो की अत्यन्त विपमता देखो कि प्रमोदको प्राप्त हुआ भरत कन्याके द्वारा पुन मोहित हो गया ॥२७४॥ सत्र रात्रा लोग लज्जित होते हुए यथायोग्य स्थानोंपर चले गये और अपने बन्धुवर्गके वाचमं निन्धा करते हुए रहने लगे ॥२७५॥ कितने ही कहने लगे कि जिस जीवने जैसा कार्य किया है वह वैसा ही फल भोगता है । क्योंकि जिसने कोटा घोचे है वह धान्य प्राप्त नहीं कर सकता ॥२७६॥

तदनन्तर जो पताका तोरण और मालाओंसे सजाई गई थी, जो महानान्तिकी धारण कर रही थी, जिसके वाचरके लन्घे-चौड़े मार्ग घुटना तरु फूलोंसे व्याप्त किये गये थे और जिसके समस्त घर शङ्ख एव तुरहीके मधुर शब्दोंसे भर रहे थे ऐसी मिथिला नगरीम दोनोंका बड़े उत्सवके साथ विवाह किया गया ॥२७७-२७८॥ उस समय धनसे सत्र लोक इस तरह भर दिया गया था कि जिससे 'देहि अर्थात् देओ' यह शब्द महाप्रलयको प्राप्त हो गया था अर्थात् विलकुल ही नष्ट हो गया था ॥२७६॥ उत्तम चित्तकी धारण करनेवाले जो रात्रा विवाहोत्सव देखनेके लिए रह गये थे वे परम सन्मानको प्राप्त हो अपने-अपने घर गये ॥२७७॥

अथानन्तर जिनकी कौर्त्ति समस्त सप्सरामें फैल रही थी, जो परम सौन्दर्यरूपी सागरमें निमग्न थे, जिन्होंने माता पिताके लिए हर्षरूप सम्पदा समर्पित का थी, जिनके शरीर उत्कृष्ट रत्नोंसे अलङ्कृत थे, जिनके सैनिक नाना प्रकारकी सवारियाँसे व्यग्र थे, और जिनके आगे समुद्रके समान विशाल शब्द करनेवाली तुरही बज रही थी ऐसे दशरथके पुत्रा तथा बहुओंने बड़े वैभवके साथ अयोध्यामें प्रवेश किया ॥२७९-२८०॥ उस समय उत्तम शरीरका धारण करनेवाली बहुओंको देखनेके लिए समस्त नगरवासी लोग अपना आधा किया कार्य छोड़ बड़ा

कृतसमस्तजनप्रतिमाननाः पुरगुणस्तवसन्नतमूर्तयः ।  
 स्वनिलयेषु महासुखभोगिनो दशरथस्य सुताः सुधियः स्थिताः ॥२७४॥  
 समवगम्य जनाः शुभकर्मणः फलमुदारमशोभनतोऽन्यथा ।  
 कुरुत कर्म बुधैरभिनन्दितं भवत येन रवेरधिकप्रभाः ॥२७५॥

इत्यापि रविपेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते रामलक्ष्मणरत्नमालाभिधानं  
 नामाष्टाविंशतितमं पर्व ॥२८॥



व्यग्रतासे राजमार्गमे आ गये ॥२७३॥ जिन्होंने सब लोगोंका सत्कार किया था तथा अपने विशाल गुणोंके स्तवनसे जिनका शरीर विनम्र हो रहा था अर्थात् लज्जाके भारसे झुक रहा था ऐसे दशरथके बुद्धिमान् पुत्र महासुख भोगते हुए अपने महलोंमें रहने लगे ॥२७४॥ गौतम-स्वामी कहते हैं कि हे भव्यजनो ! 'शुभ कर्मका फल अच्छा होता है और अशुभ कर्मका फल अशुभ होता है' ऐसा जानकर विद्वज्जनोंके द्वारा प्रशंसनीय वह कार्य करो जिससे कि सूर्यसे भी अधिक कान्तिके धारक होओ ॥२७५॥

इस प्रकार आर्पणामसे प्रसिद्ध रविपेणाचार्यके द्वारा कथित पद्मचरितमें रामलक्ष्मणको स्वयंवरमें रत्नमालाकी प्राप्ति होनेका वर्णन करनेवाला अष्टाईसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥२८॥



## एकोनत्रिंशत्तमं पर्व

आपादधवलाष्टम्या प्रभृ यथ नराधिप । महिमान् जिनेन्द्राणा प्रयत् कर्तुमुद्यत ॥१॥  
 सर्वो प्रियास्तदा तस्य तनया बान्धवस्तथा । विधातु विनत्रिभ्यानामिति कर्तव्यमुद्यता ॥२॥  
 पिनष्टि पञ्चवर्णाणि कश्चिच्छूर्णानि सादर । कश्चिद् ग्रथ्नाति महत्यानि १'एन्धवर्णं सुभक्तिषु ॥३॥  
 बासय युदक कश्चिद्रवयत्यपर चितिम् । पिनष्टि परमान् गन्धान् कश्चिद्बहुविधच्छुवीन् ॥४॥  
 द्वारशोभा करोत्यन्यो २'बामोभिरतिभासुरै । नानाधानुरसै कश्चिदुरते भित्तिमण्डनम् ॥५॥  
 एव जन परा भक्ति वहन् प्रमदपूरित । पिनपूजाममाधानात् पुण्यमार्गयदुत्तमम् ॥६॥  
 तत सर्वसमृद्धीना कृतसम्भारसन्धिधि । चकार स्तनपन राजा जिनाना तृथंनादितम् ॥७॥  
 अष्टाहोषोपित कृत्वामिपेक परम नृप । चकार महतीं पूजा पुष्पं सहजकृत्रिमै ॥८॥  
 यथा नन्दीश्वरे द्वीपे शत्रु सुरसमन्वित । जिनेन्द्रमहिमानन्द कुहते तद्वदेव स ॥९॥  
 तत- सदनयाताना महिषाणा नराधिप । ३'प्रजिघाय महापूज ४'शान्तिगन्धोदक कृती ॥१०॥  
 तिसृणा सहस्रोस्त्राभिर्निर्गत शान्त्युदक द्रुतम् । प्रतीता मस्तके चक्षुस्ततो दुरितनोदनम् ॥११॥  
 वृद्धकन्धुकिनौ हस्ते दत्त विनवरोदकम् । अप्राप्य सुप्रभा कौप शोक च परम गता ॥१२॥  
 अर्धितयश्च नो सार्धो बुद्धिरेव महोद्भूत । वदेता मानिता माह शान्तिवारिविसर्जनात् ॥१३॥

अथानन्तर आपाद शुक्ल अष्टमीसे आष्टाहिक महापर्व आया । सो राजा दशरथ जिनेन्द्र भगवान्की महिमा करनेके लिए उद्यत हुआ ॥१॥ उस समय उसकी समस्त स्त्रियों, पुत्र तथा बान्धवजन जिन-प्रतिमाओंके विषयमें निम्नाङ्कित कार्य करनेके लिए तत्पर हुए ॥२॥ कोई मण्डल बनानेके लिए बडे आदरसे पाँच रत्नके चूर्ण पीसने लगा, तो नाना प्रकारकी रचना करनेमें निपुण कोई मालाएँ गूँथने लगा ॥३॥ कोई जलको सुगन्धित करने लगा, कोई पृथिवाको सींचने लगा, कोई नाना प्रकारके उत्कृष्ट सुगन्धित पदार्थ पीसने लगा ॥४॥ कोई अत्यन्त सुन्दर वस्त्रासे जिनमन्दिरके द्वारकी शोभा करने लगा और कोई नाना धातुओंके रससे दीवारोंको अलकृत करने लगा ॥५॥ इस प्रकार उत्कृष्ट भक्तिको धारण करनेवाले एव आनन्दसे परिपूर्ण भक्तजनान जिनेन्द्रदेवकी पूजा कर उत्तम पुण्यका सचय किया ॥६॥

तदनन्तर सत्र प्रकारकी उत्तमोत्तम सामग्रियोंको एकत्र कर राजा दशरथने जिसमें तुरहीका विशाल शब्द हों रहा था ऐसा जिनेन्द्र भगवान्का अभिषेक किया ॥७॥ आठ दिनका उपवास कर उत्कृष्ट अभिषेक किया तथा सहज अर्थात् स्वाभाविक और कृत्रिम अर्थात् रत्न रजत आदिसे बनाये हुए पुष्पोंसे महापूजा की ॥८॥ जिस प्रकार इन्द्र देवोंके साथ नन्दीश्वर द्वीपमें जिनेन्द्रपूजा करता है उसी प्रकार राजा दशरथने भी सत्र परिवारके साथ जिनेन्द्रपूजा की ॥९॥ तदनन्तर जन रानियों घर पहुँच गईं तब बुद्धिमान राजा दशरथने सबके लिए महा पवित्र, शान्तिकारक गन्धोदक पहुँचाया ॥१०॥ सो तीन रानियोंके लिए वो वह गन्धोदक तरुण स्त्रियों ले गईं इसलिये जल्दी पहुँच गया और उन्होंने पापको नष्ट करनेवाला वह गन्धोदक शीघ्र ही बडी श्रद्धासे मस्तकपर धारण कर लिया ॥११॥ परन्तु सुप्रभाके लिए वृद्ध कञ्चुकीके हाथ भेजा था इसलिये उसे शौत्र नहीं मिला अत वह अत्यधिक क्रोध और शोकको प्राप्त हुई ॥१२॥ वह विचार करने लगी कि राजाकी यह बुद्धि ठीक नहीं है जिससे उन्होंने मुझे

को वात्र नृपतेर्दांप्र प्राय पुण्य पुरा मया । नाजित येन सम्प्राप्ता 'निकारमिदमीदृशम् ॥१४॥  
 पुण्यवत्य इमा श्लाघ्या महासौभाग्यसयुता । पूत यासा भिर्द्वान्त्रु प्रीत्या प्रहितमुत्तमम् ॥१५॥  
 अपमानेन दग्धस्य हृदयस्यास्य मेऽधुना । शरण मरण मन्ये ताप शान्तयति नान्यथा ॥१६॥  
 विशाप्तमज्रमाहूय भाण्डागरिकमेककम् । जगाद भद्र नाटयेय त्वयेद वस्तु कस्यचित् ॥१७॥  
 विपेणा यन्तपरम मम जात प्रयोजनम् । तदानय द्रुत भक्तिर्मयि चेत्तव विद्यते ॥१८॥  
 गत्वा स यावदन्विष्यश्रिययत्प्रतिशक्ति । तावत्तल्पगृह गत्वा सातिष्ठत् चरतगात्रिका ॥१९॥  
 नृपतिश्रागतो वीक्ष्य प्रियास्तित्पस्तया विना । समन्विष्यागमत्तस्या समीप त्वरितकाम ॥२०॥  
 अपश्यच्च मनश्चौरीमशुकच्छविप्रहाम् । अनादरेण सत्तल्पे शक्यष्टिभिव स्थिताम् ॥२१॥  
 गृहाण तदिदं देवि च्चेद्वमित्यवदच्च स । प्रेष्यो दशरथश्चैत देश प्राप्याश्लोणोद् ध्वनिम् ॥२२॥  
 हा देवि किमिदं मुग्धे प्रारब्धमिति च श्रुवन् । स निराकरोद्<sup>३</sup> भुजिष्यन्त तत्तल्पे चोपविष्टवान् ॥२३॥  
 राजानमागत ज्ञात्वा सहसा सप्रोथिता । चित्तावुपविचिन्तन्ती कान्तेनाङ्गे निवेशिता ॥२४॥  
 अवाचि च प्रिये कस्मात् कोप प्राप्ता त्वमीदृशम् । सर्वतो दयिते येन जीवितेऽप्यसि निस्पृहा ॥२५॥  
 सर्वतो मरण दु खमन्यस्मादुखत परम् । प्रतिकारस्तु यद्यस्य तद्दु ख वद कीदृशम् ॥२६॥  
 त्व मे हृदयसर्वस्व दयिते वद कारणम् । क्षणेनापनय<sup>४</sup> यस्य करिष्यामि वरानने ॥२७॥  
 श्रुत वेमि जिनेन्द्राणा सदसद्वगतिकारणम् । तथापि मतमीदृक् ते धिक्कोप ध्वान्तमुत्तमम् ॥२८॥

गन्धोदक भेजकर सम्मानित नहीं किया ॥१३॥ अथवा इसमें राजाका क्या दोष है ? प्राय -  
 कर में पूर्व भयमे पुण्यका सचय नहीं किया होगा जिससे मैं ऐसे तिरस्कारको प्राप्त हुई हूँ ॥१४॥  
 ये तीनों पुण्यवती तथा महा सौभाग्यसे सम्पन्न हैं जिनके लिए राजाने प्रेमपूर्वक पवित्र एव  
 उत्तम गन्धोदक भेजा है ॥१५॥ अपमानसे जले हुए मेरे इस हृदयके लिए इस समय मरण ही  
 शरण हो सकता है ऐसा मैं मानती हूँ । अन्य प्रकारसे मेरा सन्ताप शान्त नहीं हो  
 सकता ॥१६॥ यह विचार कर उसने विशाप्त नामक एक भाण्डारीसे कहा कि हे भद्र ! तुम यह  
 बात किसीसे कहना नहीं ॥१७॥ मुझे विपकी अत्यन्त आवश्यकता आ पड़ी है । इसलिए यदि  
 तेरी मुझमें भक्ति है तो शीघ्र ही ला दे ॥१८॥ विपके नामसे अत्यन्त शक्ति होता हुआ भाण्डारी  
 उसे रोजता हुआ जब तक कुछ विलम्ब करता है तबतक वह शयनगृहमें जाकर तथा शरीर  
 को शिथिल कर पड़ रही ॥१९॥ इतनेमें ही राजा आ गये और उसके बिना तीन प्रियाओंको  
 देखकर रोज करते हुए शीघ्र ही उसके समाप जा पहुँचे ॥२०॥ उन्होंने देखा कि मनको चुराने-  
 वाली सुप्रभा वस्त्रसे शरीर ढँककर शय्यापर अनादरसे इन्द्रधनुषके समान पड़ी है ॥२१॥  
 इसी समय उस भाण्डारीने आकर कहा कि हे देवि ! यह विप लो । भाण्डारीके इस शब्दको  
 वहाँ जाकर राजाने सुन लिया ॥२२॥ सुनते ही राजाने कहा कि हे देवि ! यह क्या है ? मूर्ख !  
 यह क्या प्रारम्भ कर रक्ता है ? ऐसा कहते हुए राजाने उस भाण्डारीको वहाँसे दूर हटाया  
 और स्वयं सुप्रभाकी शय्यापर बैठ गये ॥२३॥ राजाको आया जान वह लजाती हुई सहसा  
 उठी और पृथिवीपर बैठना चाहती थी कि उन्होंने उसे गोदमें बैठा लिया ॥२४॥ राजाने कहा  
 कि प्रिये ! तुम इस प्रकारके क्रोधको क्यों प्राप्त हुई हो जिससे कि सबसे अधिक प्रिय अपने  
 जीवनसे भी निस्पृह हो रही हो ॥२५॥ मरणका दुःख सन दुःखोंसे अधिक दुःख है । सो जिस  
 अन्य दुःखसे दुःखी होकर तुमने मरणको उसका प्रतिकार बनाया है वह दुःख कैसा है यह  
 तो बताओ ॥२६॥ हे दयिते ! तुम मेरे हृदयकी सर्वस्व हो, अत हे सुमुखि ! शीघ्र ही वह कारण  
 बताओ जिससे मैं उसका प्रतिकार कर सकूँ ॥२७॥ सुगति और दुर्गतिके कारणोंका निरूपण करने-

प्रसादं देवि कोऽद्यापि कोपस्यात्रम्वरन्तः । प्रसादं निपर्यन्तप्रकोपा हि महाश्रियः ॥२१॥  
 तथोक्तं नाथ कः कोपस्तत्रपि मे दुःखमादृशम् । स्मृपक्षं न यदाति शान्तिं पश्यन्त्या विना ॥३०॥  
 देवि तत्करन्ददुःखमिगुनैवममापत । शान्त्यग्नदानमन्यामां मम नेति कुतो पद ॥३१॥  
 एतेन केन कार्येण हीनाह विदिता त्वया । यदवशिनत्वारिम वशिता पण्डितानुना ॥३२॥  
 यावदेवं तद्व्येषा तावदायाति कञ्चुकी । देवि जैनाग्न नाथेन तुभ्य दत्तमिति मुग्ध ॥३३॥  
 अत्रान्तरे प्रियाः प्राप्ता इतरास्तामिदं जगुः । अथि सुग्धे प्रसादस्य स्थाने प्राप्तामि किं कथा ॥३४॥  
 परयास्माक जगुप्साभिदांसीभिर्जलमाहृतम् । वरिष्टेन पवित्रेण तव कञ्चुकिनामुना ॥३५॥  
 ईदृशी नाम नाथस्य सम्प्रीतिर्भवती प्रति । यतोऽय जनिता भेदः किमकाण्डे प्रकुप्यमि ॥३६॥  
 प्रसादं दयितस्यास्य एग्नस्यैव प्रयत्नतः । प्रणयादपराधेऽपि ननु सुश्रुति योपितः ॥३७॥  
 दयिते न्रियते यायः कोपो दारणमानमे । ताकम्पसारमौख्यस्य विघ्न जानीहि शोभने ॥३८॥  
 विपाद्यितुमस्माकमामानमुचितं भवु । किञ्चत्र जिनचन्द्रागां वारिणा नः प्रयोजनम् ॥३९॥  
 सपत्नीभिरपि प्रीतमिति सान्त्वितया तया । चक्रे शान्त्युदकं मूर्ति रोमाञ्चाश्रितगात्रया ॥४०॥  
 ततः प्रकुपितोऽवोचद् राजा कञ्चुकिन तन्म । व्याक्षेपः क्व नु ते जातो वदापमदं कञ्चुकिन् ॥४१॥  
 ततो भयाद्विशेषेण कम्पिताखिलविग्रहः । कञ्चुकी कथमन्यूचे चित्तिजानुशिराङ्गलिः ॥४२॥

वाले जिनशास्त्रको तुम जानती हो फिर भी तुम्हारी ऐसी बुद्धि क्यों हो गई ? इस प्रगाढ़ अन्यकारणरूप क्रोधको धिक्कार हो ॥२८॥ हे देवि ! प्रसन्न होओ । इस समय भी क्या तुम्हारे क्रोधका कोई अवसर है क्योंकि जो महाश्रियाँ होती हैं उनका क्रोध प्रसाद शब्द सुनने तक ही रहता है ॥२९॥

सुप्रभाने कहा कि हे नाथ ! आप पर मेरा क्या क्रोध हो सकता है ? पर मुझे ऐसा दुःख उत्पन्न हुआ है कि जो मरणके बिना शान्त नहीं हो सकता ॥३०॥ राजाने पूछा कि हे देवि ! वह कौन-सा दुःख है ? इसके उत्तरमें सुप्रभाने कहा कि आपने अन्य रानियोंके लिए तो गन्धोदक भेजा पर मुझे क्यों नहीं भेजा सो कहिए ? ॥३१॥ आपने ऐसा कौन-सा कार्य देखा है जिससे मुझे हीन समझ लिया है । हे सुविद्व ! जिसे पहले कभी धोखा नहीं दिया उसे आज क्यों धोखा दिया गया ? ॥३२॥ सुप्रभा जब तक यह सच कह रही थी कि तब तक वृद्ध कञ्चुकी आकर यह कहने लगा कि हे देवि ! राजाने तुम्हें यह गन्धोदक दिया है ॥३३॥ इसी बीचमें दूसरी रानियाँ आकर उससे कहने लगीं कि अरी भोली ! तू प्रसन्नताके स्थानको प्राप्त है फिर क्या कह रही है ? ॥३४॥ देव, हम लोगोंके लिए तो निन्दनीय दासियाँ गन्धोदक लाई हैं पर तेरे लिए यह श्रेष्ठ एवं पवित्र कञ्चुकी लाया है ॥३५॥ तेरे प्रति स्वामी की ऐसी उत्तम प्रीति है इसीसे यह भेद हुआ है फिर असमयमें क्यों कुपित हो रही है ? ॥३६॥ फिर स्वामी तेरे पीछे बड़े प्रयत्नसे लग रहे हैं । अतः इनपर प्रसन्न हो क्योंकि स्नेहके कारण स्त्रियाँ अपराध होनेपर भी सन्तुष्ट ही रहती हैं ॥३७॥ हे कठोरहृदये ! जब तक पतिपर क्रोध किया जाता है तब तक हे शोभने ! सांसारिक सुखमें विघ्न ही जानना चाहिए ॥३८॥ वास्तवमें तो हमलोगोंका मरना उचित था पर हमें तो गन्धोदकसे प्रयोजन था । इसलिए सच अपमान सहन कर लिया ॥३९॥ इस प्रकार सपत्नियोंने भी जब उसे सान्त्वना दी तब उसका शरीर रोमाञ्चसे सुशोभित हो गया और उसने गन्धोदक मस्तकपर धारण किया ॥४०॥

तदनन्तर राजाने कुपित होकर उस कञ्चुकीसे कहा कि हे नीच कञ्चुकी ! क्या तुम्हें यह विलम्ब कहाँ हुआ ? ॥४१॥ भयसे जिसका समस्त शरीर विगेषकर कोंपने लगा था ऐसा

१ हृदये स्थापिता वृद्धादानोता वज्रगोचरम् । ओष्ठे प्रणिहिता वर्णा व्यलीन्तेऽस्य भूरिश ॥४३॥  
 २ सखत्कार मुहु कुर्वन् स्फुरयन्नधरी<sup>३</sup> मुहु । हृदय सम्पृशन् कृच्छ्रादुपनीतेन पाणिना ॥४४॥  
 परचान्मस्तकभागस्थश्चन्द्राशुसितमूर्द्धज । मन्दवाताहतश्वेतचामरोपमकूर्चक ॥४५॥  
 मत्तिकाच्छुद्धनद्धातवशितरोहितकैकस । धवलभ्रूवलच्छ-नशोणप्रभनिरीक्षण ॥४६॥  
 अभिलक्ष्यशिराजालमधेष्टितचलत्तनु । असम्पूरितपुस्ताभ कृच्छ्रादासोऽपि धारयन् ॥४७॥  
 हिमाहत इवायर्थं कपोली कम्पयन् श्लथी । विवक्षया मुहुर्जिह्वा स्थानानि स्खलिता जयन् ॥४८॥  
 अप्येकाचरनिप्यत्ति मन्यमानो महोसवम् । वर्णान्तराभिसधानाद् वर्णमन्य समुचरन् ॥४९॥  
 सप्रानवर्जितान् वर्णान् परमध्रमकारिण । कण्टकानिव कृच्छ्रेण मुमोच परिजङ्गरान् ॥५०॥  
 जराधीनस्य मे नाथ किमागो भूत्यव सल । सम्प्राप्तोऽसि यत् कोप देव विज्ञानभूषण ॥५१॥  
 पुरा करिकराकारमुज कर्कशमुब्रतम् । पीनोतुङ्ग महोरस्कमालानमदशोऽरुक्म् ॥५२॥  
 आसान् मम वपु शैलराजकूटसमाकृति । कर्मणामिति चित्राणा कारण परमोदयम् ॥५३॥  
 अभूता वर्णने देव शक्तौ<sup>४</sup> हस्तिकपाण्यो । करौ पाण्डिप्रहारश्च पर्वतस्यापि भेदक ॥५४॥  
 उच्चावचा च्छिति वेगात् पुराह परिलघयन् । राजहंस इवावात् नाथ स्थानभर्माप्सितम् ॥५५॥  
 आसात् दृष्टेरवष्टभस्तादृशो मम पार्थिव । आमन्येऽपि चित्तेरीश यादृशेन तृणोपमम् ॥५६॥

कञ्जुकी पृथिवीपर घुटने और शिरपर अञ्जलि रखकर किसी तरह बोला ॥४२॥ उसके हृदय में जो अक्षर थे वे मुख तक बढ़ी कठिनाईसे आये और जो ओठोंपर रखे गये थे वे बार-बार वहीं के वहीं विलीन हो गये ॥४३॥ वह बार-बार स्कारता था, बार-बार आंठ चलाता था, और बड़ी कठिनाईसे उठाकर पास ले जाये गये हाथसे हृदयका स्पर्श करता था ॥४४॥ उसके मस्तकके पिछले भागमें चन्द्रमाकी किरणोंके समान सफेद बाल स्थित थे तथा सफेद चमरके समान उसकी दाढीके बाल मन्द मन्द वायुसे हिल रहे थे ॥४५॥ मन्खीके पङ्केके समान पतली त्वचासे उसकी हड्डियों ढँकी हुई थीं, उसके लाल-लाल नेत्र सफेद-सफेद भ्रुकुटियोंकी बलिसे आच्छादित थे ॥४६॥ उसका चञ्चल शरीर स्पष्ट दिखाई देनेवाली नसोंके समूहसे वेष्टित था, मिट्टीके अधयने खिलौनेके समान उसकी आभा थी। वह वस्त्र भी बड़ी कठिनाईसे धारण कर रहा था, हिमसे ताडित हुएके समान दोनों शिथिल कपोलोंको कम्पित कर रहा था, बोलनेकी इच्छासे लडखटाती जिह्वाको तालु आदि स्थानोंपर बड़ी कठिनाईसे ले जा रहा था, यदि एक अक्षरका भी उच्चारण कर लेता था तो उसे महान् उत्सव मानता था। कुछ वर्ण बोलना चाहता था पर उसके बदले कुछ दूसरे ही वर्ण बोल जाता था, जिनके बोलनेका विचार ही नहीं था ऐसे बहुत भारी श्रमको करनेवाले टूटे फूटे वर्णोंको वह जीर्ण शीर्ण कोंटेके समान बड़ी कठिनाईसे छोड़ता था अर्थात् उसका उच्चारण करता था ॥४७-४८॥ हे भृत्यवत्सल, स्वामिन् ! मुझ तुझेका क्या अपराध है ? जिससे कि विज्ञानरूपी आभूषणको धारण करनेवाले हे देव ! आप क्रोधको प्राप्त हुए हो ॥५१॥ पहले मेरे शरीरकी भुजाएँ हाथीकी सूँडके समान थीं, शरीर अत्यन्त कठोर और ऊँचा था। सीना विशाल था, जह्वाएँ आलान अर्थात् हाथी बोंधनेके खम्भेके समान थीं, मेरा यह शरीर सुमेरके शिरारके समान आकृति वाला था, तथा अनेक अद्भुत कार्योंका सशक्त कारण था ॥५२-५३॥ हे देव ! हमारे ये हाथ पहले सुन्दर किथाडोंके चूर्ण करनेमें समर्थ थे, हमारे पैरकी ठोकर पर्वतके भी टुकड़े कर डालती थीं, ऊँची-नीची भूमिको मैं वेगसे ढँच जाता था, हे स्वामिन् ! मैं राजहंस पक्षीके समान मन-चाहे स्थानको शीघ्र ही प्राप्त हो जाता था ॥५४-५५॥ हे राजन् ! मेरी दृष्टिमें इतना बल था कि

अङ्गनाल्लनदृष्टीनां मनसां च महासिपरम् । आशानमेतदामीन्मे शरीरं चाङ्गिभ्रमम् ॥५३॥  
 लालितं परमैर्ममैः प्रसादेन विनुस्ततः । निमंघटितमेतन्मे कुमिप्रमिय साम्प्रतम् ॥५४॥  
 अथतः यः पुरा शक्तिं रिपुदारणशक्तिणाम् । करेण यद्विमाङ्ग्यं तेन ग्राम्यामि साम्प्रतम् ॥५५॥  
 विजानन्तपुरापाङ्कटशरासनसममम् । पृष्ठास्थि स्थितमात्रान्मे मूर्ध्नि मृचोऽग्न्याङ्गिना ॥५६॥  
 दन्तस्थानभवा वर्णाश्चिन्वन्वापि यता मम । उष्मवर्गोष्मणा तापमशक्तः ह्य मेऽनुत्तम् ॥५७॥  
 आलम्ब्ये यदि नो यद्विमेतां प्राणगरीषसांम् । शितीं पतेत्तनः परत्रमिदं हतशरीररक्तम् ॥५८॥  
 वर्लाणां वनंते वृद्धिरन्माहस्य परिषयः । राजन् शक्तिमि देहेन यदेतेन तद्द्रुतम् ॥५९॥  
 'अदध्वानममु क्वाप ज्ञया जर्जरित्वम् । नाथ धनुं न शक्नोमि पाद्ये वस्तुनि का कथा ॥६०॥  
 नितान्तपटुतामात्रि ह्यगोकाणि पुरा मम । मप्रयुद्देशमात्रेण स्थितानि जडचेतसः ॥६१॥  
 पदमन्यत्र यच्छामि पतत्यन्यत्र दुर्घटम् । श्याममेवाश्लिष्य दृष्ट्वा परयामि धरणीतलम् ॥६२॥  
 गोत्रमसमायातमिदं राजकुल मम । यतः शक्नोमि न त्यक्तमपि प्राप्येदरीं दशाम् ॥६३॥  
 पत्र फल्मिवैतन्मे शरीरं वापि चानरे । नेत्र्याहातरतां मृचुर्ममैरुद्दण्डनोपमाम् ॥६४॥  
 न तयामन्नमृचोर्मै स्वामिन् मजायते भयम् । मन्त्रचरणमसेवाविरहाद् भाविनो यथा ॥६५॥  
 व्याक्षेपो मे कुतः कश्चिद्वपतस्तनुमीदृशीम् । भवदाज्ञा प्रतीक्ष्यैव यस्य जीवितकारणम् ॥६६॥

जिससे मैं राजाको भी तुणके समान तुच्छ समझना था ॥५३॥ अत्यन्त स्थिर और सुन्दर  
 खिलाससे युक्त मेरा यह शरीर स्त्रीजनोकी दृष्टि और मनको बांधनेके लिए आलानके समान था  
 ॥५४॥ आपके पिताके प्रसादसे मैंने इस शरीरका उत्तमोत्तम भोगोसे लाङ्ग्यार किया था पर इस  
 समय कुमिप्रके समान यह पिघट गया है ॥५५॥ मेरा जो हाथ पहले शत्रुगोकी विचारण करनेकी  
 शक्ति रखता था अब उसी हाथसे लाठी पकड़कर चलता हूँ ॥५६॥ मेरी पीठकी दृष्टी शूवीर मनुष्यके  
 द्वारा चींचे हुए धनुषके समान मुक गई हैं और मेरा शिर यमराजके पैरसे आशान्त हुएके समान  
 नष्ट हो गया है ॥५७॥ दोतांके स्थानसे उच्चरित होनेवाले मेरे वर्ण ( ल तयर्ग ल और स ) कहीं  
 चले गये हैं सो ऐसा जान पड़ता है मानो उष्मवर्णों ( श प स ह ) की उष्मा अर्थात् गर्मोसे  
 उत्पन्न सन्तापको सहनेमे असमर्थ होकर ही कहीं चले गये हैं ॥५८॥ यदि मैं प्रागोसे भी अधिक  
 प्यारी इस लाठीका सहारा न लेऊँ तो यह पका हुआ अधम शरीर पृथ्वीपर गिर जावे ॥५९॥  
 शरीरमे बलि अर्थात् सिद्धुङ्गोकी वृद्धि हो रही है और उस्ताहका हास हो रहा है । हे राजन् !  
 इस शरीरसे मैं सौस ले रहा हूँ यही आश्चर्यकी बात है ॥६०॥ हे नाथ ! आजकलमे नष्ट हो  
 जानेवाले इस जराजर्जरित शरीरको ही धारण करनेके लिए मैं समर्थ नहीं हूँ फिर दूसरी बात  
 वस्तुकी तो कथा ही क्या है ? ॥६१॥ पहले मेरी इन्द्रियो अत्यन्त सामर्थ्यको प्राप्त थीं पर इस  
 समय नाममात्रके ही स्थित हैं मेरा मन भी जडरूप हो गया है ॥६२॥ पर अन्य स्थानपर रखता  
 हूँ पर सम्भल नहीं सकनेके कारण अन्य स्थानपर जा पड़ता है । मैं समस्त पृथ्वीतलरो अपनी  
 दृष्टिसे कालाहीकाला देखता हूँ ॥६३॥ चूँकि यह राजकुल मेरी वंश परम्परासे चला आ रहा  
 है इसलिए ऐसी दशाको प्राप्त होकर भी इसे छोड़नेके लिए समर्थ नहीं हूँ ॥६४॥ मेरा यह शरीर  
 पके हुए फलके समान है सो यमराज सूत्रे पत्रके समान इसे अपना आहार बना लेगा ॥६५॥  
 हे स्वामिन् ! मुझे निकटवर्ती मृत्युसे वैसा भय नहीं उत्पन्न होता है जैसा कि भविष्यमे होनेवाली  
 आपके चरणोकी सेवाके अभावसे हो रहा है ॥६६॥ आपकी सम्माननीय आज्ञा ही जिसके  
 जीवित रहनेका कारण है ऐसे इस शरीरको धारण करते हुए मुझे तिलम्ब अथवा कार्यान्तरमे

स ख नाथ जराधीन मम ज्ञात्वा शरारकम् । कोपमर्हसि नो कतुं धीर धरस्व प्रसन्नताम् ॥७१॥  
 निशम्य तद्ब्रूवो राजा गण्ड कुण्डलमण्डितम् । वामे करतले स्थस्य चिन्तामेवमुपागन्त् ॥७२॥  
 अलङ्कुदनिस्सार कष्टमेतच्छरारकम् । सन्ध्याप्रकाशसकाश यौवन बहुविभ्रमम् ॥७३॥  
 सौद्रामिनावरस्यास्य कृते देहस्थ मानथा । आरम्भन्ते न किं कृत्य नितान्त दुःखसाधनम् ॥७४॥  
 अतिमत्तान्नापाङ्गभङ्गतुल्या प्रतारका । भोगिभोग्यमाभोगास्तापोपचयकारिण ॥७५॥  
 विपयेषु यदायत्त दुष्प्रायेषु विनाशिषु । दुःखनेतद्विमूढानां सुखनेनावभासते ॥७६॥  
 आपातरमणायानि सुखानि विपयादथ । किंपाकफल्तुल्यानि चित्र प्रार्थयते जन ॥७७॥  
 पुण्यवन्तो महोसाहा प्रबोध परम गता । विपवद् विपयान् दृष्ट्वा ये तपस्यन्ति सज्जना ॥७८॥  
 कदा नु विपयास्वयवचा निर्गत स्नेहचारकौत् । आचरिष्यामि जेनेन्द्र तपो निर्वृत्तिकारणम् ॥७९॥  
 सुखेन पालिता क्षोणा मुक्ता भोगा यथोचिता । विजान्ता जनिता पुत्रा किमद्यापि प्रतीक्ष्यते<sup>३</sup> ॥८०॥  
 अन्वयव्रतमस्माकामद यस्सुन्द्रे श्रियम् । दत्त्वा सवेगिनो धीरा प्रविशन्ति तपोवनम् ॥८१॥  
 चिन्तयित्वाप्यसाधेव राजा कर्मानुभावत । भोगेषु शिथिलासक्तिर्गृह एव रतिं यया ॥८२॥  
 यः प्राप्यते यदा येन यत्र यावद्यतोऽपि वा । तः प्राप्यते तदा तेन तत्र तावत्ततो ध्रुवम् ॥८३॥  
 क्रिय यपि ततोऽर्ताते काले मगधसुन्दर । पर्यटन् विधिना क्षोणीसङ्घेन महता वृत्त ॥८४॥

आसन्न कैसे हो सकता है ? ॥७०॥ इसलिए हे नाथ ! मेरे शरीरको जराके आधीन जानकर आप क्रोध करनेके योग्य नहीं हैं । हे धीर ! प्रसन्नताको धारण करो ॥७१॥

कञ्चुकीके वचन सुनकर राजा कुण्डलसे सुशोभित कपोलको वाम करतलपर रखकर इस प्रकार विचार करने लगे ॥७२॥ कि अहो बड़े कष्टकी बात है कि यह अधम शरीर पानीके बबूलेके समान निःसार है और अनेक विभ्रमों—विलासोंसे भरा यह यौवन सन्ध्याके प्रकाशके समान भङ्गुर है ॥७३॥ बिजलीके समान नष्ट हो जानेवाले इस शरीरके पीछें मनुष्य न जाने अत्यन्त दुःखके कारणभूत क्या-क्या कार्य प्रारम्भ नहीं करते हैं ? ॥७४॥ ये भोग अत्यन्त मत्त स्त्रियोंके वटाझोंके समान टगनेवाले हैं, सोंपके फनके समान भयङ्कर हैं और सन्तापकी वृद्धि करने वाले हैं ॥७५॥ कठिनाईसे प्राप्त होने योग्य विनाशी विषयोंमें जो दुःख प्राप्त होता है वह मूर्ख प्राणियोंके लिए सुख जान पड़ता है ॥७६॥ ये जो विषयात्मिक हैं वे प्रारम्भमें ही मनोहर सुख रूप जान पड़ते हैं फिर भी आश्चर्य है कि लोग किम्पाक फलके समान इन सुखोंकी चाह रखते हैं ॥७७॥ जो सज्जन इन विषयोंको विपके समान देखकर तपस्या करते हैं वे पुण्यात्मा महोत्साहवान् तथा परम प्रबोधको प्राप्त हैं ऐसा समझना चाहिए ॥७८॥ मैं कब इन विषयोंको छोड़ कर तथा स्नेह रूपी कारागृहसे छूटकर मोक्षके कारणभूत जिनेन्द्र प्रोक्त तपका आचरण करूँगा ॥७९॥ सुखसे पृथिवीका पालन किया, यथायोग्य भोग भोगे, और शूरवीर पुत्र उत्पन्न किये फिर अब किस बातकी प्रतीक्षा की जा रही है ॥८०॥ यह हमारा वंशपरम्परागत व्रत है कि हमारे धीर वीर वंशज विरक्त हो पुत्रके लिए राज्यलक्ष्मी सौंपकर तपोवनमें प्रवेश कर जाते हैं ॥८१॥ राजा दशरथने इस प्रकार निचार भी किया और भोगोंमें आसक्ति कुछ शिथिल भी हुई तो भी कर्मोंके प्रभावसे वे घरमें ही प्रीतिको प्राप्त होते रहे अर्थात् गृहत्याग करनेके लिए समर्थ नहीं हो सके ॥८२॥ सो ठीक ही है क्योंकि जिस समय जहाँ जिससे जो और जितना कार्य होना होता है उस समय वहाँ उससे वह और उतना ही कार्य प्राप्त होता है इसमें सशय नहीं है ॥८३॥

अथान्तर गौतमस्नानी कहते हैं कि हे मगध देशके आभूषण ! कितना ही काल

१ रागनारायणदात् । २ आवरिष्यामि म० । ३ प्रतीक्ष्यते म० ।



सर्वभूतहितो भाम सर्वभूतहितो मुनि । नगरीं ता समायासोन्मन पर्यपवेदक ॥८५॥  
 'सरस्वाश्च तटे काल श्रान्त सङ्घमतिष्ठित् । पितेव पालयन् न्यस्तकायवान्मानमत्रिय ॥८६॥  
 प्राग्भागेऽपि स्थिता केचिद् गुहास्त्यन्ये तपस्विन । केचिद् त्रिविक्रगेहेषु केचिर्जनेन्द्रवेरमसु ॥८७॥  
 नगाना कोपरेष्वन्ये यथाशक्तिमुद्यता । तपासि चतुराचार्यादधिगम्यानुमोदनाम् ॥८८॥  
 आचार्यस्तु त्रिविक्रैर्षी पुयां उत्तरपश्चिमात् । तप समुचितक्षेत्र विशालमसितुन्दरम् ॥८९॥  
 उद्यान सुमहावृक्ष समूह इव वारण । प्रविशेशामदशमो महेन्द्रोदयक्रीतनम् ॥९०॥  
 तस्मिन् शिलातले रम्ये विपुले निर्मले समे । पशुनामङ्गनाना च पण्डुकाणां च दुर्गमे ॥९१॥  
 द्वेपिनोऽकविमुक्तेऽसी मूढमप्राणिविचिते । दूरावष्टमिशालस्य स्थितो नागतरोरध ॥९२॥  
 मातङ्गमण्डलच्छाद्यो गम्भीर प्रियदर्शन । वर्षा क्षपयितु तस्यै कर्माणि च महामता ॥९३॥  
 सप्रसन्नस्य महाकाल प्रवासिनवनमैरव । प्रस्फुरद्विशुद्रुप्रोऽष्टवर्धाराधरत्नानि ॥९४॥  
 तत्रमन्त्रिभ्य लोकेभ्य हृतताप दिवाकरम् । मयात् पलायित कापि स्थूलधाराबन्धकारत ॥९५॥  
 जातमुर्वीतल सम्पक् कञ्चुकेन वृतावृत्ति । वर्द्धन्ते सुमहानद्यो वात्रिपातिवरोपस ॥९६॥  
 जायते प्राप्तकम्पाया चित्तोद्भ्रान्ति प्रवासिनाम् । अस्तिपाराव्रत जैनो जनोऽस्य च निपेवने ॥९७॥

व्यतीत होनेपर यडे भारी सघसे आवृत, सर्व प्राणियोंका हित करनेवाले, तथा मन पर्यय ज्ञानके धारक सर्वभूतहित नामा मुनि, त्रिधिपूर्वक पृथिवीमें विहार करते हुए अयोध्या नगरीमें आये ॥८४-८५॥ जिनके मन वचन कायकी चेष्टा समीचीन थी और जो पिताकी तरह संघका पालन करते थे ऐसे उन मुनिराजने अपने थके हुए संघको सरयू नदीके किनारे ठहराया ॥८६॥ सघके कितने ही मुनि, आचार्य महाराजकी आज्ञा प्राप्त कर बनके सघन प्रदेशोंमें, कितने ही गुफाओंमें, कितने ही शून्य गृहोंमें, कितने ही जिनमन्दिरोंमें और कितने ही वृक्षाकी कोटरोंमें ठहरकर यथाशक्ति तपश्चरण करने लगे ॥८७-८८॥ तथा आचार्य एकान्त स्थानके अभिलाषी थे इसलिये उन्होंने नगरीकी उत्तर पदिचम दिशा अर्थात् वायव्य कोणमें जो महेन्द्रोदय नामका उद्यान था उद्यमं यूथसहित गजराजके समान प्रवेश किया । उस महेन्द्रोदय नामा उद्यानमें तपके योग्य अनेक स्थान थे, तथा वह विशाल, अत्यन्त सुन्दर और अनेक वडे-बडे वृक्षोंसे सहित था । आचार्यके साथ अधिक भीड नहीं थी । अपने आपको मिलाकर कुल दश ही मुनिराज थे । वह उद्यान पशुओं, टिप्यों और नपुसकोंके लिए दुर्गम था, द्वेपी मनुष्योंसे रहित था तथा सूक्ष्म जन्तुओंसे शून्य था । ऐसे उस उद्यानमें जिसकी शाखाएँ दूर-दूर तक फैल रही थीं ऐसे एक नाग वृक्षके नीचे सुन्दर, विशाल, निर्मल एव समान शिलातल पर विराजमान हुए ॥८९-९०॥ आचार्य महाराज सूर्यनिम्बके समान देदीप्यमान, गम्भीर, प्रियदर्शन और उदारहृदय थे तथा कर्माका जय करनेके लिए वर्षायोग लेकर वहाँ विराजमान हुए थे ॥९३॥

तदनन्तर जो विदेशमें जाने वाले मनुष्योंको भय उत्पन्न करने वाला था, चमकती हुई त्रिजलीसे छत्र था तथा जिसमें आठों दिशाओंके मैचोंकी कठोर गर्जना हो रही थीं ऐसा वर्षाकाल आ पहुँचा । वह वर्षाकाल ऐसा जान पड़ता था मानो लोगोंको सताप पहुँचाने वाले सूर्यको दौंटे ही रहा हो और बड़ी मोटी धाराओंके अन्धकारसे भयभीत हो वहीं भाग गया हो ॥९४-९५॥ प्रथिवीतल ऐसा दिवाई देने लगा मानो उसने अच्छी तरह कञ्चुक ही धारण कर रक्ती ही । तरङ्गोंसे तटोंको गिरानेवाली बड़ो-बड़ो नदियों बढने लगीं ॥९६॥ और जिन्हें कँप-कँपी छूट रही थीं ऐसे प्रवामी मनुष्योंके चित्तमें भ्रान्ति उत्पन्न होने लगी । ऐसे वर्षाकालमें जैनों लोग निरन्तर

१ सरयूनद्या । सरस्वाक्ष म० । २ प्राग्भागेऽपि म० । ३ तप समुचित क्षेत्र म०, क० । ४ कीर्तित न० । ५ नपुसकानाम् । ६ मण्डलोच्छाया गभीरप्रिय त० । ७ दुर्गात् म० ।

भूरिशोऽवग्रहाश्चकुमुनय चितिगोचरा । ख्यानलब्धयश्चैते पान्तु त्वा मगधाधिप ॥६८॥  
 अथ भेरानिनादेन शङ्खमिस्वनशोभिना । दोषान्ते कोशलानाथो विबुद्धो<sup>२</sup> भास्फरो यथा ॥६९॥  
 ताम्रचूडा खर रेणुर्दम्पताना वियोजका । सारसाश्चन्द्रवाकारश्च सरसीपु नदीपु च ॥१००॥  
 भेरीपणवर्दीणाद्यैर्गौतैश्च सुमनोहरै । व्यावृत्तरचैत्यगोहेषु जायते विपुलो जन ॥१०१॥  
 विघूर्णमाननयन सकलारुणलोचन । विमुञ्चते जनो निद्रा प्रियामिव हियान्वित ॥१०२॥  
 प्रदीपा पाण्डुरा जाता शशाङ्कश्च गतप्रभ । विकास यान्ति पद्मानि कुमुदानि निर्मालनम् ॥१०३॥  
 ध्वस्ता प्रहादय सर्वे दिवाकरमराचिभि । जिनप्रवचनज्ञस्य वचनैर्वादिनो यथा ॥१०४॥  
 एव प्रभातसमये सपत्नेऽयन्तनिर्मले । कृत्वा प्रयत्नकर्माणि नमस्कृत्याचित जिनम् ॥१०५॥  
 आरुह्य वासिता भद्रा कुथापटविराजिताम् । शतैरवनिनाथाना सेव्यमानोऽमरत्रिपाम् ॥१०६॥  
 देशे देशे नमस्कृत्वा सुनीश्रैयालयास्तथा । महेंद्रोदयमुर्वीशो ययो ह्यत्रोपशोभित ॥१०७॥  
 विष्टपानन्दजननाविभूतिस्तस्य भूभृत । राजन् सबसरेणपि शक्य कथयितु न सा ॥१०८॥  
 मुनिरायातमात्र सन् गुणरत्नपयोनिधि । श्रोत्रयोगोचर तस्य सप्राप्तस्तत्र मण्डले ॥१०९॥  
 करेणोत्वतीयासौ राजामितपरिच्छुद । महाप्रमोदसपूर्णो विवेशोद्यानमेदिनाम् ॥११०॥  
 विन्यस्य भक्तिसम्पन्न पादयो कुसुमाञ्जलिम् । सर्वभूतहिताचार्य शिरसा स नमोऽकरोत्<sup>३</sup> ॥१११॥

खड्गधाराके समान कठोर व्रत धारण करते हैं ॥६७॥ जो पृथिवी पर विहार करते थे तथा जिन्हें आकाशमं चलनेकी शक्ति प्राप्त हुई थी ऐसे मुनिराज उस समय अनेक प्रकारके नियम धारण करते थे । गौतमस्वामी कहते हैं कि हे मगधेश्वर ! ये सत्र मुनिराज तुम्हारी रक्षा करें ॥६८॥

अथानन्तर प्रातः काल होने पर शङ्खके शब्दसे सुशोभित भेरीके नादसे राजा दशरथ सूर्यके समान जागृत हुए ॥६९॥ स्त्रीपुरणोका वियोग करने वाले मुर्गे तथा सरोवर और नादियोंमें विद्यमान सारस और चक्रवाक पक्षी जोर जोरसे शब्द करने लगे ॥१००॥ भेरी, पणत्र तथा वीणा आदिके मनोहर गीतोसे आकर्षित हो बहुतेसे मनुष्य जिनमन्दिरोंमें उपस्थित होने लगे ॥१०१॥ जिस प्रकार लज्जासे युक्त मनुष्य प्रियाको छोड़ता है इसी प्रकार जिसके नेत्र धूम रहे थे तथा समस्त नेत्र लाल लाल हो रहे थे ऐसा मनुष्य निद्राको छोड़ रहा था ॥१०२॥ दोषक पाण्डुवर्ण हो गये थे और चन्द्रमा फीका पड़ गया । कमल विकासको प्राप्त हुए और कुमुद निर्मालित हो गये ॥१०३॥ जिस प्रकार जिनशास्त्रके ज्ञाता मनुष्यसे वादी परास्त हो जाते हैं उसी प्रकार सूर्यकी किरणोंसे समस्त ग्रह परास्त हो गये अर्थात् छिप गये ॥१०४॥ इस प्रकार अत्यन्त निर्मल प्रभात काल होनेपर राजा दशरथने शरीर-सम्बन्धी कार्य कर पूजनीय जिनेंद्रभगवान्को नमस्कार किया । तदनन्तर मनोहर मूलसे सुशोभित हस्तिनीपर सवार हो वह मुनिराजकी बन्दनाके लिए चला । देवोंके समान कान्तिको धारण करनेवाले हजार राजा उसकी सेवा कर रहे थे ॥१०५-१०६॥ इस प्रकार ह्यत्रसे सुशोभित राजा दशरथ जगह-जगह मुनिया और जिनचैत्यालयोंको नमस्कार करता हुआ महेंद्रोदय नामा उद्यानमें पहुँचा ॥१०७॥ गौतमस्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! उस समय राजा दशरथकी लोककी आनन्दित करनेवाली जो विभूति थी वह एक वर्षमें भी नहीं कही जा सकती है ॥१०८॥ गुणरूपी रत्नाके सागर मुनिराज जब देशमें पधारे थे तभी उसके कानोंमें यह समाचार आ पहुँचा था ॥१०९॥ तदनन्तर हस्तिनीसे उतरकर अपरिमित वैभवके धारक एव महान् हर्षसे परिपूर्ण राजाने उद्यानकी भूमिमें प्रवेश किया ॥११०॥ तत्पश्चात् भक्तिसे युक्त हो चरणामें पुष्पाञ्जलि बिखेरकर उसने सर्वभूत आचार्यको शिरसे नमस्कार किया ॥१११॥

१ निशान्ते प्रभाते इत्यर्थ । २ विबुद्धो म० । ३. रण, रेणु, रेणु-शब्द चतु । ४. करिणीम् ।

५ नमस्करोत् (१) म० ।

ततः सिद्धान्तसंबद्धामशुणोद् गुरुतः कथाम् । अनुयोगान्यत्तोतानां भाविनां च महात्मनाम् ॥११२॥  
लोकं द्रव्यानुभावांश्च युगानि च यथाविधि । स्थिति कुलकराणां च वंशाश्च बहुधागतान् ॥११३॥  
पदार्यान् सर्वजीवादीन् पुराणानि च सादरम् । श्रुत्वा प्रणम्य संघेरां नगरं पार्थिवोऽविशत् ॥११४॥

मन्दाक्रान्ताच्छुन्दः

दत्त्वा स्थानं षण्मवनिशुम्भंघ्रिणां स चिर्तीशां  
कृत्वा जैनीं गुणगणकथां विस्मयेवातिपूर्णां ।  
अन्तर्गोहं प्रविशति तदा मज्जनादिक्रियाश्च  
प्रीतश्चक्रे विपुलविभवः स प्रजापत्यमित्ययः ॥११५॥  
सम्पूर्णानां परममहसा चन्द्रकान्ताननानां  
चक्षुश्चेतोहरणनिपुणैर्विभ्रमैर्मण्डितानाम् ।  
श्रोतुल्यानां परमविनयं विभ्रतीनां प्रियाणां  
पद्मालीनां रविरिव रतिं तत्र कुर्वन् स तस्थौ ॥११६॥

इत्यार्षे रविपेणाचार्यप्रोके पद्मचरिते दशरथवैराग्यसर्वभूतहितागमामिधानं  
नाम एकीनत्रिंशत्तमं पर्व ॥२६॥

सिद्धान्तसे सम्बन्ध रखनेवाली कथा सुनी, अतीत अनागत महापुरुषोंके चरित सुने, लोक, द्रव्य, युग, कुलकरोकी स्थिति, अनेक वंश, जीवादिक समस्त पदार्थ और पुराणोंको बड़े आदरसे सुना । तदनन्तर संघके स्वामी सर्वभूतहित आचार्यको नमस्कार कर राजाने नगरमें वापिस प्रवेश किया ॥११२-११४॥

तदनन्तर निकटवर्ती मन्त्रियों और राजाओंसे जिनराज सम्बन्धी गुणोंकी कथा कर तथा उन्हें विदाकर आश्चर्यसे भरे हुए राजाने अन्तःपुरमें प्रवेश किया । यहाँ विपुल वैभव तथा प्रजापतिकी शोभा धारण करनेवाले राजाने बड़ी प्रसन्नतासे स्नानादि क्रियाएँ कीं ॥११५॥ तदनन्तर जो उत्कृष्ट कान्तिसे युक्त थीं, चन्द्रमाके समान सुन्दर मुखोंको धारण कर रहीं थीं, नेत्र और हृदयको हरनेमें निपुण विभ्रमोंसे मुशोभित थीं, लक्ष्मीके तुल्य थीं और परम विनयको धारण कर रही थीं ऐसी विभ्रोंको, कमलिनियोंको सूर्यकी भँटि आजन्म उदकाता हुआ यह उसी अन्तःपुरमें ठहर गया ॥११६॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध रविपेणाचार्य द्वारा कथित पद्मचरितमें राजा दशरथके वैराग्य और सर्वभूत आचार्यके आगमनका वर्णन करनेवाला उन्तीमवां पर्व समाप्त हुआ ॥२६॥

## त्रिंशत्तमं पर्व

तत काला गत क्वापि घनौषडमरा नृप । प्रोद्यथो पुंकर धौतमण्डलाप्रसमप्रभम् ॥१॥  
 पद्मापलाद्रितलनपुष्पमुन्मादकृद् बभौ । साधूना हृदय यद्बद्ध बभूव विमल जलम् ॥२॥  
 शरत्काल परिप्राप्त प्रकट कुमुदैर्हसन् । नष्टमिन्द्रधनुर्जाता धरणा पक्वजिता ॥३॥  
 विधुत्सभावनायोग्यास्त्रुराशिसमविप । स्रग्मात्रमदरयन्त धौनलेशा क्वचिच्चित् ॥४॥  
 सन्ध्यालोकललामोष्टा ओत्सनातिविमलाम्बरा । निशानववधूर्भाति चन्द्रचूडामणिस्तदा ॥५॥  
 चक्रवाककृतच्छाया मत्तसारसनादिता । बाण्य पद्मवनम्राग्यद्रानहसैविराजिरे ॥६॥  
 भामण्डलकुमारस्य साठा चिन्तयतस्तु तत् । ननुनाचितमप्येव जातमग्निसम जगत् ॥७॥  
 अरयाकपिताद्गोऽसौ परित्यज्यान्यदा त्रपा । पितु पुर पर मित्र वसन्तध्वजमद्रवीत् ॥८॥  
 'दार्घ्यसूत्रो भवानेव परकार्येषु शातल' । 'गणरात्रमिदं तु ख तस्या मे गतचेतस' ॥९॥  
 उद्वेगविपुलावर्ते प्रयाशाचलधौ मम । निमर्जन सखे कस्मादायते नावलम्बनम् ॥१०॥  
 इत्यातंध्यानयुक्तस्य निशम्य गदित बुधा । सर्वे 'गतप्रभोभूता विपाद् परम ययु ॥११॥  
 तान् बाध्य शोकसन्तप्तान् वारणानिव श्यप्यत । आवजितशिराद्राडा स्रग् भामण्डलोगमत् ॥१२॥

अथानन्तर मेघोंके आडम्बरसे युक्त वर्षाकाल कहीं चला गया और आकाश मँजे हुए  
 कृपाणके समान निर्मल प्रभाका धारक हो गया ॥१॥ कमल उत्पल आदि जलमे उत्पन्न होनेवाले  
 पुष्प कामाजनाको उन्माद करते हुए सुशोभित होने लगे तथा जल साधुओंके हृदयके समान  
 निर्मल हो गया ॥२॥ कुमुदोंके सफेद पुष्पासे प्रकट रूपसे हसता हुआ शरदकाल आ पहुँचा,  
 इन्द्रधनुष नष्ट हो गया और पृथ्वी कीचडसे रहित हो गई ॥३॥ जिनमे मिजली चमकनेकी  
 सम्भावना नहीं थी और जो रुईके समूहके समान सफेद कान्तिके धारक थे ऐसे मेघोंके रण्ड  
 कहीं-कहीं दिखाई देने लगे ॥४॥ सन्ध्याका लाल-लाल प्रकाश जिसका सुन्दर आँठ था, चोँदनी  
 ही जिसका अत्यन्त उज्ज्वल वस्त्र था और चन्द्रमा ही जिसका चूडामणि था, ऐसी रात्रिरूपी नव  
 वधू उस समय अत्यधिक सुशोभित हो रही थी ॥५॥ चक्रवाक पक्षी जिनकी शोभा बढा रहे थे,  
 और मदोन्मत्त सारस जहाँ शब्द कर रहे थे ऐसी वापिकाएँ कमलजनमे घूमते हुए रात्रहसीसे  
 सुशोभित हो रही थी ॥६॥ इस तरह यह जगत् यद्यपि शरदऋतुसे सुशोभित था तो भी सीताकी  
 चिन्ता करनेवाले भामण्डलके लिए अग्निके समान जान पडता था ॥७॥

अथानन्तर अरतिसे जिसका शरीर आकर्षित हो रहा था ऐसा भामण्डल एक दिन लज्जा  
 झोड पिताके आगे अपने परममित्र वसन्तध्वजसे इस प्रकार बोला कि ॥८॥ आप बड़े दीर्घसूत्री  
 हैं—देरसे काम करनेवाले हैं और दूसरेके कार्य करनेमे अत्यन्त मन्द हैं । उस सीतामे जिसका  
 चित्त लग रहा है ऐसे मुझे दुःख उठाते हुए अनेक रात्रियों व्यतीत हो गई । फिर भी तुम्हे चिन्ता  
 नहीं है ॥९॥ जिसमे उद्वेगरूपी बडी-बडी भँवरें उठ रही हैं ऐसे आशारूपी समुद्रमे मैं डूब रहा  
 हूँ । सो हे मित्र ! मुझे सहारा क्या नहीं दिया जा रहा है ॥१०॥ इस प्रकार आर्तध्यानसे युक्त  
 भामण्डलके वचन सुनकर सभी त्रिद्वान् हतप्रभ होते हुए परम विपादको प्राप्त हुए ॥११॥ तद-  
 नन्तर उन सबको शोकसे सन्तप्त तथा हाथियाके समान सूखते हुए देस भामण्डल शिर नीचा

१. नृप म० । २ उज्ज्वलकृपाणतुल्यप्रभम् । ३ मेघलेशा, घनलेश्या म०, ख० व० । ४ विल  
 म्वेन कार्यभाती । ५ मन् । ६ बहूना रात्राणा समूह । ७ गतगेत म० । ८ निसर्गत म० । ९ गतप्रभा  
 भूता म० ।

वृद्धेऽनुस्तनोऽगोचत् क्रिमताप्युपगुहने । निरेततां कुमारस्य निराशो येन जायते ॥१३॥  
 ततस्ते कथयाद्भ्रमुन्ममै सत्रं यथाविधि । चन्द्रयानं पुरस्कृत्य कथमापुन्मिताश्रयाः ॥१४॥  
 जनरो याल कन्यायां इहैवास्माभिराहृतः । याचितश्चातिथ्यनेन पत्रस्योपे प्रकृतिप्रताप ॥१५॥  
 उक्तप्रयुक्तमालाभिरस्माभिस्तेन निजितैः । धनूरनाथविश्वेशे कृतमन्मन्प्रणैः क्रिन् ॥१६॥  
 धनूरनलता तस्य रामस्याहिएकमंगः । गार्दूलस्य क्षुधानस्य मांमपेशी यथार्निता ॥१७॥  
 कन्या स्वयंवरा माध्वी कथा हृदयहारिणी । नवयौवनशाय्यपरिपूरितविग्रहा ॥१८॥  
 भयालेन्दुमुखा बाला मद्नेन समन्विता । वैदेहीं रामदेवस्य श्याममा यनितामवन् ॥१९॥  
 न चापे साम्प्रतं जाते गदासीरादिसंयुते । अमराधिष्ठिने नापि कन्या त्रैलोक्यसुन्दरी ॥२०॥  
 अवि द्रष्टुं न ये शक्ये सुपर्णोदगदानवैः । रामलक्ष्मणवाराश्यामामाहृष्टे ते शरात्मने ॥२१॥  
 प्रमद्व साधुना इतुमशक्या त्रिदशैरपि । क्रिमुताप्यन्तमस्माभिर्निस्वारैर्धनुषां विना ॥२२॥  
 पूर्वमेव हता कम्माद्येति चेन्मन्यते शिशो । यज्ञामाना दशाम्यस्य जनकरस्य सुतन्मपुः ॥२३॥  
 अयगम्य कुमारैवं विनीतः स्वस्थतां भज । शक्नोति न सुरेन्द्रोऽपि विधातुं विधिमन्यथा ॥२४॥

कर चूणभरके लिए लज्जाको प्राप्त हुआ ॥१२॥ तब बृहत्केतु नामा विद्याधर बोला कि अवनत इस वातकी क्यों छिपाया जाता है प्रकट कर देना चाहिए जिससे कि कुमार इस विषयमें निराश हो जावे ॥१३॥

तदनन्तर उन सबने चन्द्रयानको आगे कर लड़कड़ाते अश्वरामे सब समाचार भामण्डलसे कह दिया ॥१४॥ उन्होंने कहा कि हे कुमार ! हमलोग कन्याके पिताको यहाँ ही ले आये थे और उससे यत्रपूर्वक कन्याकी याचना भी की थी पर उसने कहा था कि मैं उस कन्याको रामके लिए देना सङ्कल्पित कर चुका हूँ ॥१५॥ उत्तर-प्रत्युत्तरसे जब उसने हम सबको पराजित कर दिया तब हमने मन्त्रणा कर धनुपरब्रकी अवधि निश्चित की अर्थात् राम और भामण्डलमेंसे जो भी धनुपरब्रको चढ़ा देगा वही कन्याका स्वामी होगा ॥१६॥ हम लोगोंने धनुपकी शर्त इसलिये रक्की थी कि राम उसे चढ़ा नहीं सकेगा अतः अगत्या तुम्हें ही कन्याकी प्राप्ति होगी परन्तु वह धनुपरब्ररूपी लता पुण्याधिकारी रामके लिए ऐसी हुई जैसे भूपसे पीड़ित सिंहके लिए मांसको ढली अर्पित की गई हो अर्थात् रामने धनुप चढ़ा दिया जिससे वह साध्वी कन्या स्वयंवरमें रामकी स्त्री हो गई । वह कन्या अपने वचनोंसे हृदयकी हरनेवाली थी, नवयौवनसे उत्पन्न लावण्यसे उसका शरीर भर रहा था, तरुण चन्द्रके समान उसका मुख था, लक्ष्मीकी तुलना करनेवाली थी और कामसे सहित थी ॥१७-१६॥ वे सागरावर्त और वज्रावर्त नामा धनुष आजकलके धनुप नहीं थे किन्तु बहुत प्राचीन थे, गदा, हल आदि शस्त्रोंसे सहित थे, देवोंसे अधिष्ठित थे तथा सुपर्ण और उरग जातिके दैत्योंके कारण उनकी ओर देवना भी सम्भव नहीं था । फिर भी राम लक्ष्मणने उन्हें चढ़ा दिया और रामने वह त्रिलोकसुन्दरी कन्या प्राप्त कर ली ॥२०-२१॥ इस समय वह कन्या देवोंके द्वारा भी जयदस्ता नहीं हरी जा सकती है फिर जो उन धनुषोंके निकल जानेसे अत्यन्त सारहीन हो गये हैं ऐसे हम लोगोंकी तो वात ही क्या है ॥२२॥ हे कुमार ! यदि यह कहो कि रामके स्वयंवरके पहले ही उसे क्यों नहीं हर लिया तो उसका उत्तर यह है कि रावणका जमाई राजा मधु जनकका मित्र है सो उसके रहते हम कैसे हर सकते थे ? ॥२३॥ इसलिए यह सब जानकर हे कुमार ! स्वस्थताको प्राप्त होओ, तुम तो अत्यन्त विनीत हो, जो कार्य जैसा होना होता है उसे इन्द्र भी अन्यथा नहीं कर सकता ॥२४॥

तत रयवरोदन्त श्रुत्वा भामण्डलो द्विया । विपादेन च सम्पूर्णं कृच्छ्रं चिन्तातर गत ॥२५॥  
 निरर्थं नमिदं ज म विद्याधरतया समम् । यत प्राकृतवत् कश्चिन्न सम्प्राप्तोऽस्मि ता प्रियाम् ॥२६॥  
 इर्ष्यां च परातश्च सभामाह हसन्नसौ<sup>१</sup> । का व खेचरता भाविं भनता भूमिगोचरात् ॥२७॥  
 आनयाम्यप सक्त्या स्वय निजिंथ भूचरान् । न्यासापहारिणा कुर्वे यद्यागा च विनिग्रहम् ॥२८॥  
 इत्युत्तमो<sup>२</sup> सुसन्नश्च विमाना वियदुद्रत । पुरकाननसम्पूर्णं पृथिवातलमैवत ॥२९॥  
 तता दृष्टिगंता तस्य विदग्धविषये श्रमात् । महाप्रसक्तये रम्ये नगरे चामसेविते ॥३०॥  
 दृष्ट मया कदाप्यतदिति चिन्तामुपागत । जानिस्मरत्वमासाद्य समवाप्य स मूर्च्छनम् ॥३१॥  
 पितुरत तता नात सचिवैराकलामकै । चन्दनद्रवसिन्धाद्ग प्रमदाभि प्रबोधित ॥३२॥  
 अयाय दक्षनेत्र च हसिवा तानिरोचयत । कुमार युक्तमेतत्ते कातर वमनुत्तमम् ॥३३॥  
 अट्टावनिधायार्थं निरशपरहितव्रतं<sup>३</sup> । गुरुगामप्रतो मोह यप्राप्तोऽसि विचक्षणं<sup>४</sup> ॥३४॥  
 भजे नेचरनायाना कन्या देव्यधिकप्रभा । जनजल्पनक व्यर्थं वृत्त सुन्दर मा कृष्या ॥३५॥  
 ततोऽमाप्रवादेय प्राडाशोकनतानन । धिग्मया घनमोहेन विरुद्ध चिन्तित महत् ॥३६॥  
 नाचानामपि नायन्तमादश कर्म युज्यते । अहो कर्मभिर यथंमशुभैरभिचेष्टित ॥३७॥  
 एकस्मिन्पुषित कुक्षौ वापि सार्धमह तथा । दुष्कर्मविगमाऽज्ञाता कथञ्चित् साधुना मया ॥३८॥  
 ततस्त शोकभारेण पादित चन्द्रविक्रम । अङ्कमारोप्य चुम्बिवा पप्रच्छ पुहविस्मय ॥३९॥

तदनन्तर रयवराका वृत्तान्त सुनकर भामण्डल लज्जा और विपादसे युक्त होता हुआ दुःखके साथ यह विचार करने लगा कि ॥२५॥ अहो ! मेरा यह विद्याधरका जन्म निरर्थक है कि जिससे मैं साधारण मनुष्यकी तरह उस प्रियाको प्राप्त नहीं कर सका ॥२६॥ ईर्ष्या और क्रोध से युक्त होकर उसने हँसते हुए सभासे कहा कि जब आप लोग भूमिगोचरीसे भी भय रखते हो तब आपका विद्याधर होना किस कामका ? ॥२७॥ मैं भूमिगोचरियोंको जीतकर रयव ही उस उत्तम कन्याको ले आता हूँ तथा धनुषरूपी धरोहरका अपहरण करनेवाले यज्ञाका निग्रह करता हूँ ॥२८॥ ऐमा कहकर वह तैयार हो विमानमें बैठकर आकाशमें जा उड़ा । वहाँसे उसने पुर और वनसे भरा प्रयोत्तल देखा ॥२९॥ तदनन्तर उसकी दृष्टि अनेक पर्वतासे युक्त विदग्धनामन देशमें अपने पूर्वभवके मनोहर नगर पर पड़ी ॥३०॥ यह नगर मैंने कभी देखा है । इस प्रकार चिन्ता करता हुआ वह जातिस्मरणको प्राप्त होकर मूर्च्छित हो गया ॥३१॥ तदनन्तर घबड़ाये हुए मन्त्री उसे पिताके समीप ले आये । वहाँ स्त्रियाने चन्दनके द्रवसे उसका शरीर मीचकर उसे सचेत किया ॥३२॥ स्त्रियाने परस्पर नेत्रका इशारा कर तथा हँसकर उससे कहा कि हे कुमार ! तुम्हारी यह कातरता अच्छी नहीं ॥३३॥ जो तुम बुद्धिमान् होकर भी भूचर्याका ममरत प्रयोजन जिना देये ही गुरुजनोंके आगे इस तरह मोहको प्राप्त हुए हो ॥३४॥ देवियोंसे भी अधिक काचित्तो धारण करनेवाली विद्याधर राजाआकी अनेक कन्याएँ हैं सो उन्हें तुम प्राप्त दोआ । हे सुन्दर ! इस तरह व्यर्थ ही लोकापवाद मत करो ॥३५॥

तदनन्तर लज्जा और शोकसे जिसका मुख नीचा हो रहा था ऐसे भामण्डलने इस प्रकार कहा कि मुझे धिक्कार दो, जो मैंने तीव्र मोहमें पड़कर इस प्रकार विरुद्ध चिन्तन किया ॥३६॥ ऐमा कार्य ता अत्यन्त नीच कुलवालोंको भा करना उचित नहीं है । अहो, मेरे अत्यन्त अशुभ कर्मात्तमा चेपा दिग्माई ? ॥३७॥ मैंने अपने साथ एक हा टरमें शयन किया है । आन पाप परमेश्वर नन्द्य मन्द्य हुआ इमल्लिण किसी तरह उमे जान सका हूँ ॥३८॥ तदनन्तर शोकके भारसे पादित भामण्डलका मोहमें रग्यकर बहुत भारी आश्चर्यसे भरा चन्द्रगति चुम्बन कर पृथ्वीने लगा

१ गत भेराता (१) म० । २ तयता न्या । ३ रतिा नय म० । ४ निरव्यग म० ।

यद् युयुक्त्वा किञ्चिदशीत्यः भाषितं तया । सोऽश्रीपत्तान वक्ष्य चरितं शृणु मामकम् ॥४०॥  
 पूर्वेऽन्मनि यान्येऽन्मिन् विदग्धे नगरे नृपः । अभूत् परराष्ट्राणां प्रसक्तो मण्डितप्रतिः ॥४१॥  
 सर्वस्यामायनां रथात् सतत निप्रद्विश्यः । पालको निजलोकर्य महाविभवायुतः ॥४२॥  
 हता तत्र मया जाया निप्रन्याशुभकर्मणा । माययाऽपारुतश्चानी गतः धान्यतिदु गितः ॥४३॥  
 ततोऽनरण्यमेनान्या गमितस्तनुशेषताम् । पर्येन् धरणीं वापि प्राप्सोऽग्नि मुनिमश्रयम् ॥४४॥  
 यत्र त्रिलोक्युज्यानां सर्वज्ञानां महामनाम् । मन भगवतां प्राप्तमहंतां पावन मया ॥४५॥  
 तत्र बान्धवभूतस्य गुरोः शामनतां मया । अनामिषं व्रत शुद्धं गृहीत क्षुद्रशक्तिना ॥४६॥  
 शामनस्य जिनैन्द्राणामहो माहात्म्यमुत्तमम् । तथापि यन्महापापो नावतीर्षोऽस्मि दुर्गतिम् ॥४७॥  
 अनन्यशरणवेन व्रतेन नियमेन च । स्वमन्येन जीनेन विदेहाकुविभागमतः ॥४८॥  
 मुनेन च प्रसूता सा कन्यया सहितं तुकम् । केनाप्यपहतत्रयाय गृभेण विशितं मया ॥४९॥  
 नष्टप्रगोचरतीतं तेन नीतोऽस्मि पुष्करम् । अस्मी नून म यन्मया हता जाया मया पुरा ॥५०॥  
 मारथार्माति तेनोक्त्वा भूयः कृतानुकम्पनम् । शनैरग्नि त्रिमुक्तः ग्वान् कुण्डलान्यामन्दहृतम् ॥५१॥  
 पतन् वीक्ष्य तदा राज्ञापुत्राने परमे तथा । गृहीत्वा तत दत्तोऽग्नि जायायै कर्मायना ॥५२॥  
 सोऽहं भवप्रसादेन तदङ्गे वृद्धिमागतः । पर विद्याधरत्व च हृतदुर्लभितक्रियः ॥५३॥  
 ह्युक्त्वा विरामार्सां विस्मय च जनो गतः । हाकारयहुलं शब्द कुर्वन् कम्पितमस्तकः ॥५४॥

॥३६॥ कि हे पुत्र ! कहे, तुने ऐसा कथन किमलिए किया ? इसके उत्तरमें उसने कहा कि हे तात ! मेरा कहने योग्य चरित सुनिष् ॥४०॥

पूर्व जन्ममें मैं इसी देशके विदग्ध नगरमें दूसरे देशको छूटनेवाला, समस्त पृथिवीमें प्रसिद्ध, युद्धका प्रेमी, अपनी प्रजाकी रक्षा करनेवाला तथा महाविभवसे संयुक्त कुण्डलमण्डित नामका राजा था ॥४१-४२॥ वहाँ मैंने अशुभ कर्मके उदयसे एक ब्राह्मणकी स्त्री हरी और ब्राह्मणकी मायापूर्वक तिरस्कृत किया जिससे वह अत्यन्त दुःखी होकर कहीं चला गया ॥४३॥ तदनन्तर राजा अनरण्यके सेनापतिने मेरी सत्र सम्पत्ति हरकर मेरे पास केवल मेरा शरीर ही रहने दिया । अन्तमें अनन्त दरिद्र हो पृथिवी पर भटकता हुआ मैं कहीं मुनियोंके आश्रममें पहुँचा ॥४४॥ वहाँ मैंने तीनो लोकसे पूज्य, सब पदार्थोंको जाननेवाले तथा महान् आत्माके धारक अरहन्त भगवान्का पवित्र धर्म प्राप्त किया ॥४५॥ और समस्त जीवोंके बान्धवभूत श्री गुरुके उपदेशसे निरतिचार भोक्तृत्वात् व्रत धारण किया । मैं अत्यन्त क्षुद्र शक्तिका धारक था इसलिए अधिक व्रत धारण नहीं कर सका ॥४६॥ अहो जिन शासनका बड़ा माहात्म्य है जो मैं महापापी होकर भी दुर्गतिको प्राप्त नहीं हुआ ॥४७॥ श्री जिनधर्मकी शरण होनेसे तथा व्रत और नियमके प्रभावसे मेरा जीव किसी अन्य जीवके साथ राजा जनककी विदेहा रानीके उदरमें पहुँचा ॥४८॥ रानी विदेहाने सुपपूर्वक कन्याके साथ एक पुत्र उत्पन्न किया सो जिस प्रकार गीध मांसके टुकड़ेको हर लेता है उसी प्रकार किसीने उस पुत्रको हर लिया ॥४९॥ वह व्यक्ति उस बालकको नक्षत्रोंसे भी अधिक ऊँचे आकाशमें ले गया । यथार्थमें व्यक्ति वही था जिसकी स्त्री पहले मैंने हरी थी ॥५०॥ पहले तो उसने कहा कि मैं इसे मारता हूँ परन्तु फिर दया कर उसने कुण्डलो-से अलंघित कर धीरेसे आकाशसे छोड़ दिया ॥५१॥ उस समय तुम परम उपवनमें विद्यमान थे सो रात्रिमें पड़ता देख तुमने मुझे ऊपरसे ही पकड़ लिया और दयापु होकर अपनी रानीके लिए सौंपा ॥५२॥ आपके प्रसादसे रानीको गोदमें वृद्धि प्राप्त हुआ, उत्कृष्ट विद्याओका धारक हुआ और बहुत ही लाड़ प्यारसे मेरा पालन हुआ ॥५३॥ यह कहकर भामण्डल चुप हो रहा तथा उपस्थित

इमं चन्द्रगतिः ध्रुत्वा वृत्तान्तमतिचित्रितम् । लोकधर्मतरुं<sup>१</sup> वन्द्यं विदित्वा भवबन्धनम् ॥५५॥  
 भूतमात्रमति त्यक्त्वा सुनिश्चित्यामकर्मणाम् । परं प्रबोधमायातः संवेगं च सुदुर्लभम् ॥५६॥  
 आर्मायं राज्यमाधाय तत्र पुत्रे यथाविधि । सर्वभूतहितस्यागात् पादमूल स्वरान्वितः ॥५७॥  
 भगवान् स हि सर्वत्र विष्टपे प्रथितात्मकः । गुणरश्मिसमूहेन भव्यानन्दविधायिना ॥५८॥  
 महेंद्रोदययौत तमभ्यर्च्यं प्रणिप्य च । स्तुत्वा च भावतोऽवादीदेवं मूर्धाहिताञ्जलिः ॥५९॥  
 भगवंस्त्र्यम्सरादेन सप्राप्य जिनदीक्षणम् । तपोविधातुमिच्छामि निर्विण्णो गृह्णामसतः ॥६०॥  
 एवमस्त्विति तेनोक्ते<sup>२</sup> तार भैर्यः<sup>३</sup> समाहिताः । भामण्डलः पर चक्रे महिमानं च भावतः ॥६१॥  
 कलं प्रवरनारीभिर्गीनं वंशस्वनानुर्गम् । जगजं तूर्यसद्भातः करतालसमन्वितः ॥६२॥  
 श्रीमान् जनकराजस्य तनयो जयतीति च । ह्यस्यैर्वन्दितानां नादः सजज्ञे प्रतिनादवान् ॥६३॥  
 तेनोद्यानसमुपेन नादेन श्रोत्रहारिणा । नक्त कृतो विनीतायां कृतनिद्रोऽखिलो जनः ॥६४॥  
 ऋषिसम्बन्धमुद्भूतान् श्रुत्वा जैनाः प्रमोदिनः । जाता जना विषण्णाश्च मिथ्यादर्शनपूरिताः ॥६५॥  
 रोमाञ्चाचितसर्वाङ्गा विस्फुरद्गामलोचना । सीता सिन्धामृतेनेव वसुधे ध्वनिनामुना ॥६६॥  
 अचिन्तयच्च को न्वेव जनको यस्य नन्दनः । जयतीति मुहुर्नादः श्रूयतेऽयन्तमुन्नतः ॥६७॥  
 वनकस्याप्रजो राजा ममापि जनकः पिता । जातमात्रश्च मे भ्राता हतो यः किं न्वसो भवेत् ॥६८॥

समस्त लोग हाहाकार करते तथा मस्तक हिलाते हुए आश्चर्यको प्राप्त हुए ॥५४॥ राजा चन्द्र-  
 गति यह अत्यन्त आश्चर्यकारी वृत्तान्त सुनकर परम प्रबोध तथा अत्यन्त दुर्लभ संवेगको प्राप्त  
 हुआ । उसने लोक-धर्म अर्थान् स्त्री-सेवनरूपी वृत्तको सुखरूपी फलसे रहित तथा संसारका  
 बन्धन जाना, इन्द्रियोंके विषयोंमें जो बुद्धि लग रही थी उसका परित्याग किया, आत्म-कर्तव्यका  
 ठीक-ठीक निश्चय किया, पुत्रके लिए विधिपूर्वक अपना राज्य दिया और बड़ी शीघ्रतासे  
 सर्वभूतहित नामक मुनिराजके चरणमूलमें प्रस्थान किया ॥५५-५७॥ भगवान् सर्वभूतहित  
 भव्य जीवोंको आनन्द देनेवाले गुणरूपी किरणोंके समूहमें समस्त संसारमें प्रसिद्ध थे ॥५८॥  
 महेंद्रोदय नामा उद्यानमें स्थित उन सर्वभूतहित मुनिराजकी पूजा कर नमस्कार कर तथा भाव-  
 पूर्वक स्तुति कर हाथ जोड़ मस्तकसे लगाकर राजा चन्द्रगतिने इस प्रकार कहा कि हे भगवन् !  
 मैं गृह्णामसे विरक्त हो चुका हूँ इसलिए आपके प्रसादसे जिनदीक्षा प्राप्त कर तपश्चरण करना  
 चाहता हूँ ॥५९-६०॥ 'एवमस्तु' ऐसा कहने पर भामण्डलने भावपूर्वक परम प्रभावना की ।  
 जोर-जोरसे भेरियों वजने लगीं, उत्तम रित्रियोंने वीसुरीकी ध्वनिके साथ मनोहर गीत गाया,  
 करतालके साथ-साथ अनेक वाद्योंके समूह गर्जना करने लगे । 'राजा जनकका लक्ष्मीशास्त्री  
 पुत्र जयवन्त हो रहा है' वन्दीजनोंका यह जोरदार शब्द प्रतिध्वनि करता हुआ गूँजने लगा  
 ॥६१-६३॥ उद्यानसे उठे हुए इस श्रोत्रहारी शब्दने रात्रिके समय अयोध्यावासी समस्त लोगोंको  
 निद्राग्रहित कर दिया ॥६४॥ ऋषियोंसे सम्बन्ध रखनेवाली इस हर्षध्वनिकी सुनकर जैन लोग  
 परम हर्षको प्राप्त हुए और मिथ्यादृष्टि लोग विषादसे युक्त हो गये ॥६५॥ उस शब्दको सुनकर  
 सीता भी इस प्रकार जाग उठी मानो अमृतसे ही सींची गई हो, उसके समस्त अङ्ग रोमाञ्चसे  
 व्याप्त हो गये तथा उसका घोंघा नेत्र फड़कने लगा ॥६६॥ वह विचारने लगी कि यह जनक  
 क्यों है जिमका कि पुत्र जयवन्त हो रहा है । यह अत्यन्त उन्नत शब्द धार-धार सुनाई दे रहा  
 है ॥६७॥ राजा जनक वनकरा बड़ा भाई और मेरा पिता है । मेरा भाई उत्पन्न होते ही हरा

१. वप्यं म० । वप्या क० । २. भूतमात्रमति म० । ३. यावन्त प० । ४. उचैः । ५. नारंभे स०,  
 म० दुन्दुभयः । ६. पशुमनानुर्गं म० । ७. रित्रप्राथ म० ।



प्राचेति सोदरस्नेहसुसप्लावितमानसा । मुक्तकण्ठ हरोदासौ परिदेवनकारिणा ॥६६॥  
 ततो रामोऽभिरामाङ्ग भोवाच मधुराक्षरम् । कस्माद् रोदिपि वैदेहि भ्रान्तशोभेन क्वरिता ॥७०॥  
 भवत्या यद्यसौ भ्राता श्वो ज्ञातास्मो न सशय । अथगान्य क्वचित् कोऽपि पण्डिते शोचितेन क्रिम् ॥७१॥  
 कारण यदतिक्रान्त मृतमिदं च बान्धवम् । हत विनिर्गत नष्ट न शोचन्ति विचक्षण ॥७२॥  
 कातरस्य विपादोऽस्ति दयिते प्राकृतस्य च । न कदाचिद्विपादोऽस्ति विक्रान्तस्य बुधस्य च ॥७३॥  
 एव तयो समालाप दम्पत्यो कुर्वतो क्षपा । कृपर्यैव गता शीघ्र जातमङ्गलनिस्वना ॥७४॥  
 ततो दशरथ कृत्वा प्रत्यङ्ग वस्तु म्यादर । नगरातो विनिष्क्रान्त ससुत साङ्गनाजन ॥७५॥  
 इतश्चेतश्च विस्तीर्णां परयन् खेचरवाहिनीम् । ययौ स विस्मयापन्न सामन्तशतपूरित ॥७६॥  
 इषाचक्रे च देवेन्द्रपुरतुष्य विनिमित्तम् । क्षणाद्विद्याधरै स्थान तुङ्गप्राकारगोपुरम् ॥७७॥  
 पताकातोरणैश्चित्र रत्नैश्च कृतमण्डनम् । प्रविशेश तदुद्यान सायुलोकसमाकुलम् ॥७८॥  
 नत्वा स्तुवा च तत्रातो गुरु गुणगुर नृप । ददृशोर्दयने भागेश्चन्द्रयानस्य दोक्षणम् ॥७९॥  
 नमश्चरै सम पूजा कृत्वा सुमहती गुरो । पृक्पार्श्वे निविष्टोऽसौ सर्वबान्धवमहत् ॥८०॥  
 श्रीप्रभामण्डलोऽप्येक पार्श्वमाश्रित्य खेचरै । समस्तै सहितस्तस्थौ किञ्चिद्योऽकमिवोद्बहन् ॥८१॥  
 खेचरा भूचराश्चैते मुनयश्चान्तिक स्थिता । शुश्रुतुर्गुरुतो धर्ममनगार तथेतरम् ॥८२॥  
 चरित निरगाराणा शूराणा शान्तमीहितम् । शिव सुदुर्लभ सिद्ध सार धृदभयावहम् ॥८३॥

गया था सो यह वही तो नहीं है ? ॥६८॥ ऐसा विचार कर भाईके रनेहसे जिसका मन व्याप्त हो रहा था ऐसी सीता विलाप करती हुई गला फाड़कर रोने लगी ॥६६॥

तदनन्तर सुन्दर शरीरके धारी रामने मधुर अक्षरोंमें कहा कि हे वैदेहि ! भाईके शोकसे त्रिंश हो क्यों रही हो ॥७०॥ यदि यह तुम्हारा भाई है तो कल मालूम करोगे इसमें सशय नहीं है और यदि कहीं कोई दूसरा है तो हे पण्डिते ! शोक करनेसे क्या लाभ है ? ॥७१॥ क्योंकि जो चतुर जन हैं वे बीते हुए, मरे हुए, हरे हुए, गये हुए अथवा गुमे हुए इष्टजनका शोक नहीं करते हैं ॥७२॥ हे बल्लभे ! विपाद उसका किया जाता है जो कातर होता है अथवा बुद्धिहीन होता है । इसके विपरीत जो शूरवीर बुद्धिमान् होता है उसका विपाद नहीं किया जाता ॥७३॥ इस प्रकार दम्पतीके वार्तालाप करते-करते रात्रि धीत गई सो मानो वयासे ही शीघ्र चली गई और प्रातःकाल सम्पन्धी मङ्गलमय शब्द होने लगे ॥७४॥

तदनन्तर राजा दशरथ अङ्गसन्ध्या कार्य कर आदरसहित पुत्रों और स्त्रीजनोंके साथ नगरीसे बाहर निकले ॥७५॥ सैकड़ों सामन्त उनके साथ थे । वे जहाँ-तहाँ फैली हुई विद्याधरोंकी सेनाको देखते हुए आश्चर्यचकित होते जा रहे थे ॥७६॥ उन्होंने क्षणभरमें ही विद्याधरके द्वारा निर्मित ऊँचे कोट और गोपुरोंसे सहित इन्द्रपुरीके समान स्थान देखा ॥७७॥ तदनन्तर उन्होंने पताकाओं और तोरणोंसे चित्रित, रत्नोंसे अलङ्कृत एव मुनिजनोंसे व्याप्त उस महेन्द्रोदय नामा उद्यानमें प्रवेश किया ॥७८॥ वहाँ जाकर राजा दशरथने गुणोंसे श्रेष्ठ सर्वभूतहितनामा गुरुको नमस्कार कर तथा उनकी स्तुति कर सूर्योदयके समय राजा चन्द्रगतिका दीक्षामहीत्सव देखा ॥७९॥ उन्होंने विद्याधरोंके साथ गुरुकी बहुत बड़ी पूजा की और उसके बाद वे समस्त भाई बन्धुओंके साथ एक ओर बैठ गये ॥८०॥ कुछ शोकको धारण करता हुआ भामण्डल भी समस्त विद्याधरोंके साथ एक ओर आकर बैठ गया ॥८१॥ विद्याधर और भूमिगोचरी गृहस्थ तथा मुनिराज सभी लोग पास-पास बैठकर गुरुदेवसे मुनि तथा गृहस्थ धर्मका व्याख्यान सुन रहे थे ॥८२॥ गुरुदेव कह रहे थे कि मुनियाका धर्म शूरवीरोंका धर्म है, अत्यन्त शान्त दशारूप है,

भयनांवा यमासाद्य लभन्ते सशयोज्जितम् । सम्यग्दर्शनसम्पन्ना गांवाग्निन्द्रसुख महत् ॥२४॥  
 क्वचित् केवलमासाद्य लोकालोकप्रकाशनम् । लोकाभ्यन्तरेण महत् भजन्ते नैर्दुत<sup>१</sup> सुखम् ॥२५॥  
 तिर्यग्नरकटु म्प्राग्ज्वालामि परिपूरित । रुसारो मुच्यते येन त पन्थान महोत्तमम् ॥२६॥  
 सर्वप्राणिहितोऽजोचन्मन्दर्गनितनिस्वन । प्रह्लाद सर्वचिन्तानां जनयन्विदितारिण ॥२७॥  
 सन्देहताविष्यद्दि तद्द्रव्यो मुनीन्द्रजम् । कर्णाञ्जलिपुटं पात प्राणिभिः प्रीतमानसै ॥२८॥  
 तदा दशरथोऽपृच्छत् सजाते वचनान्तर । चन्द्रकीर्ते रणेन्द्रस्य वैराग्य नाथ किंकृतम् ॥२९॥  
 साता तत्र विशुद्धात्वा ज्ञातुमिच्छु सहोदरम् । शुश्रूषया मनश्चक्रे विनीतात्यन्तनिश्चलम् ॥३०॥  
 शुद्धामा भगवान्मुचे शृणु राजन् विचित्रताम् । जावाना निमित्तामेता<sup>२</sup> कर्मभि स्वयमजितै ॥३१॥  
 संसारे सुचिर भ्रान्त्वा जाबोऽयमतिदु पित । कर्मानिलेरित प्राप्तश्चन्द्रेण<sup>३</sup> ष्टुतिमण्डल ॥३२॥  
 अपित पुष्पवयै च स्त्रीचिन्ताकुलहारक । स्वसार च समालोक्य गाढाकल्पकमागत ॥३३॥  
 जनक कृत्रिमारेण हतश्चापस्वयवरा । जाता विदेहजा चिन्ता परा भामण्डलोगमत् ॥३४॥  
 अस्मरच्च भव पूर्णं मूर्च्छित पुनरश्वसात् । पृष्टश्चन्द्रेण चाबोचदिति पूर्णभवक्रियाम् ॥३५॥  
 भरताथे विदग्धाद्ये पुरे कुण्डलमण्डित । अधामिकोऽहरत् कान्ता पिङ्गलस्य मन प्रियाम् ॥३६॥

मद्गलरूप है, अत्यन्त दुर्लभ है, सिद्ध है, साररूप है और लुट्टजनको भय उत्पन्न करनेवाला है ॥२४॥ इस मुनिधर्मको पाकर सम्यग्दृष्टि भयजीव नि सन्देह स्वर्गका महासुख प्राप्त करते हैं ॥२५॥ और कितने ही लोक अलोकको प्रकाशित करनेवाले केवलज्ञानको प्राप्त कर लोकके अप्रभाग पर आरूढ़ हो मोक्षका सुख प्राप्त करते हैं ॥२६॥ तिर्यञ्च और नरक गतिके दुःखरूपी अग्निही ज्वालाओंसे भरा हुआ यह ससार जिससे दूरता है वही मार्ग सर्वोत्तम है ॥२६॥ ऐसे मार्गका वधन उन मुनिराजने किया था । वे मुनिराज समस्त प्राणियोंका हित करनेवाले थे, गम्भीर गर्जनाके समान स्वरकी धारण करनेवाले थे, समस्त जीवोंके चित्तमें आह्लाद उत्पन्न करनेवाले थे तथा समस्त पदार्थोंको जाननेवाले थे ॥२७॥ जिनके चित्त प्रसन्नतासे भर रहे थे ऐसे समस्त लोगोंने सन्देहरूपी सन्तापको नष्ट करनेवाले मुनिराजके वचनरूपी जलका अपने अपने वर्णरूपी अञ्जलिपुटसे खून पान किया ॥२८॥

तदनन्तर जब वचनोंमें अन्तराल पडा तब राजा दशरथने पूछा कि हे नाथ । विद्याधरोंके राजा चन्द्रगतिका वैराग्य किस कारण हुआ है ? ॥२९॥ वहीं पासमें बैठी निर्मल दृष्टिकी धारक सीता अपने भाईको जानना चाहती थी इसलिए श्रवण करनेकी इच्छासे नष्ट हो उसने मनको अत्यन्त निश्चल कर लिया ॥३०॥ तब विशुद्ध आत्मके धारक भगवान् सर्वभूतहित मुनिराज बोले कि हे राजन् ! अपने द्वारा अर्जित कर्मोंके द्वारा निमित्त जोवोंकी इस विचित्रताको मुनी ॥३१॥ कर्मरूपी वायुसे प्रेरित हुआ यह भामण्डलका जीव दीर्घकाल तक ससारमें भ्रमण कर अत्यन्त दुःखी हुआ है । अन्तमें जब भामण्डल पैदा हुआ तब वह राजा चन्द्रगतिको प्राप्त हुआ । चन्द्रगतिके फलनपोषण करनेके लिए अपनी पुष्पवती भार्याको सौंपा । जब यह तम्रण होकर स्त्रीविषयक चिन्ताको प्राप्त हुआ तब अपनी वहिन सीताका चित्रपट देकर अत्यन्त व्यथकों प्राप्त हुआ ॥३२-३३॥ सीताकी मँगनी करनेके लिए मायामयी अश्वके द्वारा राजा जनकका हरण हुआ अन्तमें सीताका धनुषस्वयवर हुआ और उमने स्वयवरमें राजा दशरथके पुत्र रामकी चर लिया । इस पटनासे भामण्डल परम चिन्ताही प्राप्त हुआ ॥३४॥ अकस्मात् इसे पूर्ण भयका स्मरण हुआ जिससे यह मूर्च्छित हो गया । सचेत होनेपर राजा चन्द्रगतिके इसका कारण पूछा तब यह अपने पूर्ण भयकी वार्ता हम प्रकार कहने लगा ॥३५॥ कि मैं भरत क्षेत्रने विदग्धनामा

बालेन्दुहृतसर्परो विपयात् स निराकृत । धमणाश्रममासाद्य प्राप व्रतमनामिपम् ॥६७॥  
 धर्मध्यानगत कृत्वा काल कलुषवर्जित । जनस्य विदेहाया ससहायस्तनु धित ॥६८॥  
 अरण्यात् पिङ्गल प्राप्नो दृष्ट्वा शून्यकुंगिरकम् । कोटरानलजाणांगदाहदु रस समाप्तवान् ॥६९॥  
 १यदर्शं दु खितोऽप्राचीन्नेत्राम्बुकृतदुदिन । दृष्ट्वा स्यात् पुण्डरीकाक्षा २मेलेत्युन्मत्तत्रिधम ॥७०॥  
 हा कान्त इति ३कृत्रश्च विलापमकरोदिति । प्रभावती सवित्री ता तात चक्रध्वज च तम् ॥७१॥  
 विभूतिमतिदुग्धा च बान्धवारच ४सुमानसान् । परित्यज्य मयि प्रात्या विदेशमसि ५ सद्रता ॥७२॥  
 रूचाहारकुचस्त्रय मदर्थं सेवित स्वया । मामुत्सृज्य ध यातासि सर्वावयवसुन्दरि ॥७३॥  
 खिन्नोऽसौ धरणा दु ख भ्रान्त्वा सगिरिकाननाम् । त्रियोगवह्निना दग्ध सो कण्ठस्तपसि स्थित ॥७४॥  
 ततो देव वमासाद्य चिन्तामेवमुपागमत् । तिर्यग्योनि किमेता सा कान्ता मग्यवव्रजिता ॥७५॥  
 स्वभावात्रैवसम्पन्ना भूयो वा मानुषी भवेत् । जावितान्ते जिन स्मृत्वा कि वा देवत्वमागता ॥७६॥  
 इति ध्यायन् विनिश्चि य स्तच्छषष्टि प्रकोषवान् । वासो शत्रुदुरामेति ज्ञात्वा कुचित्तमाधितम् ॥७७॥  
 प्रमूतमेकक कृत्वा शान्त कर्मनियोगत । बाल मुमोच जावेहि वदन् विद्यालघूकृतम् ॥७८॥

नगरमे कुण्डलमण्डित नामका राजा था, मैं बडा अधर्मी था इसलिए मैंने उसी नगरमे रहनेवाले पिङ्गलनामक ब्राह्मणकी मनोहर स्त्रीका हरण किया था ॥६६॥ मैं राजा अनरण्यके राज्यमे उपद्रव किया करता था इसलिए उसके सेनापति बालचन्द्रने मेरी सर्व सम्पदा छीनकर मुझे देशसे निकाल दिया । अन्तमे मैं भटकता हुआ मुनियोंके आश्रममे पहुँचा और वहाँ मैंने अनामिप अर्थात् मास त्यागका व्रत धारण किया ॥६७॥ उसके फलस्वरूप धर्मध्यानसे सहित हो तथा कलुषतासे रहित होकर मैंने मरण किया और मरकर राजा जनककी रानी विदेहाके गर्भमे जन्म धारण किया । जिस स्त्रीका मैंने हरण किया था भाग्यकी बात कि वह भी उसी विदेहाके गर्भमे उसी समय आकर उत्पन्न हुई ॥६८॥

पिङ्गलने जब जङ्गलसे लौटकर बुटिया सुनी देखी तो उसे इतना तीव्र दुःख हुआ कि मानो उसका शरीर कोटरकी अग्निसे मुलस ही गया हो ॥६९॥ वह उसके बिना पागल जैसा हो गया, उसके नेत्रोसे लगातार दुर्दिनकी भौंति आँसुआँकी वर्षा होने लगी तथा दुःखी होकर वह जो भी दिखता था उसीसे पूछता था क्या तुमने मेरी कमललोचना प्रिया देखी है ? ॥७०॥ वह हा कान्ते ! इस प्रकार चिल्लाता हुआ विलाप करने लगा तथा कहने लगा कि तुम मुझमे प्रीति होनेके कारण प्रभावती माता, चक्रध्वज पिता, विशाल विभूति और प्रेमसे भरे भाइयाकी छोड़कर विदेशमे आई थीं ॥७१-७२॥ तुमने मेरे पीछे रुखा सूखा भोजन और अशोभनीय घस्र ग्रहण किये हैं फिर भी हे सर्वावयवसुन्दरि ! मुझे छोड़कर तुम कहाँ चली गई हो ? ॥७३॥ रेतस्त्रिन् तथा वियोगरूपी अग्निसे जला हुआ पिङ्गल पहाड़ों और वनोंसे सहित प्रथिवीमे दुःखी होकर चिरकाल तक भटकता रहा । अन्तमे तप करने लगा परन्तु उस समय भा उसे स्त्रीकी उत्कण्ठा सताती रहती थी ॥७४॥

तदनन्तर देवपर्यायको पाकर वह इस प्रकार चिन्ता करने लगा कि क्या मेरी वह प्रिया सग्यक्त्रसे रहित होकर तिर्यञ्चयोनिकी प्राप्त हुई है ॥७५॥ अथवा स्वभावसे सरल होनेके कारण पुन मानुषी हुई है या आयुके अन्त समयमे जिनेन्द्रवेवका स्मरण कर देव पर्यायकी प्राप्त हुई है ? ॥७६॥ ऐसा विचार कर तथा सत्र निश्चय कर उसने अपनी दृष्टि स्थिर की तथा कुपित होकर यह विचार किया कि इसे अपहरण करनेवाला दृष्ट शत्रु कहाँ है ? कुछ समयके विचारके बाद उसे मालूम हो गया कि वह शत्रु भी इसीके साथ विदेहा रानीकी कुत्सिमे ही विद्यमान है ॥७७॥ रानी विदेहाने बालक और बालिकाको जन्म दिया सो वैरका बदला लेनेके

ज्योऽस्माकृतादृहासाया राजौ प्राप्त पतस्वया । तदा स्मरसि किं नेद पुष्पव धै समपित ॥१०६॥  
 प्राप्तो भवप्रसादेन त्रिचारविधिर्मया । नून माता विदेहा मे सा च साता सहोदरा ॥११०॥  
 द्युक्ते विस्मय प्राप्ता सर्वा वैवाधरी सभा । चन्द्रायणश्च सविन्नी न्यस्य भामण्डले धियम् ॥१११॥  
 माता पिता च ते व स दु ख शोकेन तिष्ठति । तयोर्नेत्रो सव यच्छेयेवमुखा समागत ॥११२॥  
 जातस्य नियतो मृत्युस्ततो गर्भस्थिति पुन । इति मीतो भवादेव चन्द्र प्राप्स्यमासवान् ॥११३॥  
 अत्रान्तरे विदेहाज १ सशय परिपृच्छति । स्नेहश्चन्द्रायणादाना मयि कस्मात् पर प्रभो ॥११४॥  
 तत सर्वहितोऽवोचक्षिबोध द्युतिमण्डल । यथा पिता च माता च तव पूर्वभवे स्थिता ॥११५॥  
 दाहग्राम तु विप्रोऽभूद् विमुञ्चितस्य भामिना । अनुकोशातिभूतिश्च तनय सरसा स्तुपा ॥११६॥  
 उर्या माता सहप्राप्त कयानाख्योऽ यदा द्विज । अहरत् सरसा सार धनमन्तर्गतं च यत् ॥११७॥  
 अतिभूतिश्च तद्धेतो शोका बभ्राम मेदिनाम् । ततो निष्पुरुषे गेह शेष स्वमपि लुण्ठितम् ॥११८॥  
 विमुचिर्दक्षिणाकाशा देशान्तरगत पुरा । श्रवा कुलकुम्भन निवृत्तस्वरयान्वित ॥११९॥  
 जार्णवस्त्रावशेषान्नामनुकोशा सुविह्वलाम् । सान्त्वयिष्या तया सार्धंमुर्गा चावेष्टमुद्यत ॥१२०॥  
 प्रजाभि पृथिवापृष्ट कथ्यमान मम-तत । अवत्रिज्ञानकरणैर्जगद् येनावभासितम् ॥१२१॥

लिए वह देव बालकको उठा ले गया परन्तु कर्मादियसे उसके परिणाम शान्त हो गये जिससे उसने उस बालकको लघुपर्णा विद्यासे लघु कर 'जीते रहो इन शब्दाका उच्चारण कर आकाशसे छोडा ॥१०८॥ जिसम चौदनी अदृहास कर रही थी ऐसी रात्रिम आकाशसे पडते हुए उस बालकको आपने पकडा था ओर अपनी रानी पुष्पवताके लिए सौंपा था । क्या यह आपको स्मरण नहीं है ? ॥१०६॥ मैंने आपके प्रसादसे विद्याधरपना प्राप्त किया । यथार्थमे विदेहा मेरी माता है वह सीता मेरी बहिन है ॥११०॥ भामण्डलके ऐसा कहनेपर विद्याधरका समस्त सभा आश्चर्यको प्राप्त हुई तथा चन्द्रगति ससारसे भयभीत हो भामण्डलके लिए राज्यलक्ष्मी सौंपकर तथा यह कहकर यहाँ चला आया कि हे वत्स ! तेरे मातापिता शोकके कारण दुःखसे रह रहे हैं सो उनके नेत्रोंको आनन्द प्रदान कर ॥१११-११२॥

तदनंतर जो उत्पन्न होता है उसका मरण अवश्य होता है और जिसका मरण होता है यह गर्भम स्थित होता है, ऐसा विचार कर चन्द्रगति ससारसे भयभीत हो वैराग्यको प्राप्त हुआ ॥११३॥ इसी बीचम भामण्डलने सर्वभूतहित मुनिराजसे पूछा कि हे प्रभो ! चन्द्रगति आदिका मुग्धपर बहुत भारी स्नेह किस कारण था ॥११४॥ इसके उत्तरमे मुनिराजने कहा कि हे भामण्डल ! तेरे मातापिता पूर्व भयम जिस प्रकार थे सो कहता हूँ सुन ॥११५॥

दाहग्रामम एक विमुञ्चि नामका ब्राह्मण था उसकी स्त्रीका नाम अनुकोशा था और पुत्रका नाम अतिभूति था । अतिभूतिकी स्त्रीका नाम सरसा था ॥११६॥ किसी समय उसके घर अपनी उरी नामक माताके साथ कयान नामका एक ब्राह्मण आया सो उसने अतिभूतिकी स्त्री सरसा तथा घरके भातरका सारभूत धन दोनाका हरण किया अर्थात् सरसा और धनको लेकर कहीं भाग गया ॥११७॥ इस निमित्तसे अतिभूति बहुत दुःखी हुआ और स्त्रीको खोजमे प्रथिवापर भ्रमण करने लगा । इधर उसके चले जानेसे घर पुरस्परहित हो गया सो बाकी बचा धन भी चोर ले गये ॥११८॥ विमुञ्चि ब्राह्मण दक्षिणाकी इच्छा करता हुआ पहले ही देशान्तर चला गया था । वहाँ जब उसने सुना कि हमारा कुल परम्परासे चला आया घर नष्ट हो गया है तब वह शीघ्र ही लौटकर वापिस आया ॥११९॥ आकर उसने देखा कि उसका स्त्री अनुकोशा अत्यन्त विह्वल हो रहा है और उसके शरीरपर जीर्ण शीर्ण फटे चिथडे ही शेष रह गये हैं । तब उसने उसे सात्वयना दा और कयानको माता करीके साथ पुत्रको ढूँढनेके लिए गया ॥१२०॥ उसने पृथिवी

तमाचार्यं परिप्राप्तः पुरे सर्वारिनामनि । प्रपुत्र किल महाशोरो नष्टचित्तस्तुषामजः ॥१२२॥  
 दृष्ट्वा गणेश्वरीमृद्धिं श्रुत्वा च विविधां स्थितम् । तानं सनेगमायाच विमुचिर्मुनितां गतः ॥१२३॥  
 पार्वे कर्मलकान्ताया आर्याया सुसमाहिता । सममूर्त्यानुकोशापि प्रमथ्य तपसि स्थिता ॥१२४॥  
 त्रयोऽपि ते शुभस्थानाः कृत्वाकालमलोलुपाः । टीकाण्ठिक गता लोक नियालोकमनाकुलम् ॥१२५॥  
 अतिभूतिप्रभृतयो हिंसावादस्य शंसकाः । द्वेषताः सयतानां च कुप्याना दुर्गतिं गता ॥१२६॥  
 मृगीन्वं सरसा प्राप्ता वलाहकनगोरसि । ध्यात्प्रमाता च्युता यूथान्मुता दावानलाहता ॥१२७॥  
 जाता मनस्विनीदेव्याः सुता चित्तोत्सवाह्वया । दुःखदानप्रयोगस्य प्रशम्भान् पापकर्मण ॥१२८॥  
 कथानः क्रमशो भूत्वा पारसीकः क्रमेलकः । मृत्वा पिङ्गलनामामृद्भूमकेशस्य मन्दनः ॥१२९॥  
 ह्यस्ताराचमरसि सोऽतिभूतिः प्रमादभूत् । स्वैरैर्विलुप्तसर्वाङ्गैश्चैत्यस्य पतितोऽन्तके ॥१३०॥  
 अध्याप्यमात्र गुरुणा यशोमित्र पुनः पुनः । अश्रीपादहर्तां स्तोत्र मुक्त्वाणय जावितम् ॥१३१॥  
 दशवर्षसहस्रायुः किन्नरोऽमृत्सगोत्तरे । विदग्धनगरे च्युत्वा जातः कुण्डलमण्डितः ॥१३२॥  
 अहरत् पिङ्गलः कन्या तथा कुण्डलमण्डितः । यद्वाप्य पुरावृत्तः सम्बन्धः परिकीर्तितः ॥१३३॥  
 योऽप्ये विमुचिरित्यामीन् मोऽय चन्द्रगतिर्दृष्टः । अनुकोशा तु जायास्य जाता पुष्पवती पुनः ॥१३४॥  
 कथानोऽय सुरो हर्ता सरसा हृद्योत्सवा । उती जाता विदेहा तु सोऽतिभूतिः प्रमाह्वयः ॥१३५॥

तलपर भ्रमण करते हुए लोगोंसे सुना कि सर्वारिपुर नामा नगरमें एक आचार्य है जिन्होंने अपने अवधिज्ञानसे इस जगत्को प्रकाशित कर रखा है सो वह उनसे पुत्रको वार्ता पूछनेके उद्देश्यसे उनके पास गया । विमुचि महाशोकसे भरा था और पुत्र तथा पुत्रवधूका पता न लगनेसे अत्यन्त दुःखी था ॥१२१-१२२॥ वह आचार्य महाराजकी तप श्रद्धि देखकर तथा संसारकी नाना प्रकारकी स्थिति सुनकर तीव्र वैराग्यको प्राप्त हुआ और उन्हींके पास दीक्षा लेकर मुनि हो गया ॥१२३॥ विमुचिकी स्त्री अनुकोशा और कथानकी माता उती इन दोनों ब्राह्मणियोंने भी कमलकान्ता नामक आर्थिकाके पास दीक्षा लेकर तप धारण कर लिया ॥१२४॥ विमुचि, अनुकोशा और उती ये तीनों प्राणी महानि गृह, धर्म ध्यानसे मरकर निरन्तर प्रकाशसे युक्त तथा आहुलतारहित ब्रह्मलोक नामक स्वर्गमें उत्पन्न हुए ॥१२५॥ अतिभूति तथा कथान दोनों ही हिंसा धर्मके समर्थक तथा मुनियोंसे द्वेष रखनेवाले थे । इसलिए छोटे ध्यानसे मरकर दुर्गतिमें गये ॥१२६॥ अतिभूतिकी स्त्री सरसा वलाहक नामक पर्वतकी तलहटीमें मृगी हुई सो व्याघ्रसे भयभीत हो मृगोंके मुण्डसे बिलुङ्ककर दावानलमें जल मरी ॥१२७॥ तदनन्तर दुःख देनेमें प्रवीण पाप कर्मके शान्त होनेसे मनस्विनी देवीके चित्तोत्सवा हुई ॥१२८॥ और कथान मरकर क्रमसे घोड़ा तथा उँट हुआ । फिर मरकर धूम्रकेशका पुत्र पिङ्गल हुआ ॥१२९॥ अतिभूति भव भ्रमण कर क्रमसे ताराक्ष नामक सरोवरके तीरपर हंस हुआ सो किसी समय श्येन अर्थात् बाज पक्षियोंने इसका समस्त शरीर नाच डाला जिससे घायल होकर जिनमन्दिरके समीप पड़ा ॥१३०॥ वहाँ गुरु यशोमित्र नामक शिष्यको बार-बार अर्हन्तभगवान्का स्तोत्र पढ़ा रहे थे सो सुनकर हंसने प्राण छोड़े ॥१३१॥ उसके फलस्वरूप वह नगोत्तर नामक पर्वतपर दश हजार वर्षको आयुवाला किन्नर देव हुआ और वहाँसे च्युत होकर विदग्धनगरमें राजा कुण्डलमण्डित हुआ ॥१३२॥ पूर्वभवके संस्कारसे चित्तोत्सवा कन्याका पिङ्गलने अपहरण किया और उसके पाससे कुण्डलमण्डित राजाने अपहरण किया । इन सबका जो पूर्व भवका सम्बन्ध था वह पहले कहा जा चुका है ॥१३३॥ इनमें जो विमुचि ब्राह्मण था वह चन्द्रगति राजा हुआ, उसकी अनुकोशा नामकी जो स्त्री थी वही पुष्पवती नामकी फिरसे स्त्री हुई ॥१३४॥ कथान अपहरण करनेवाला देव हुआ, सरसा चित्तोत्सवा हुई, उती विदेहा हुई और अतिभूति भामण्डल हुआ ॥१३५॥

ततो दशरथ श्रुत्वा त वृत्तान्तमशेषत । भामण्डल समाश्लिष्य वाष्पपूर्णनिरीक्षण ॥१३६॥  
 अद्भुतैर्जितमूर्धानो जातरोमोद्गमा भृशम् । आनन्दवाष्पलोलाक्षा सभायामभवज्जना ॥१३७॥  
 उद्गर्णमानननैव प्रीत्या त वीक्ष्य सोदरम् । मृगीव रुदता स्नेहादधवावोदृष्टतबाहुका ॥१३८॥  
 हा भ्रात प्रथम दृष्टे मयाद्यामीतिशब्दिनी । तमाश्लिष्य चिर सीता रुदित्वा पृथिमागता ॥१३९॥  
 सभापित स रामेण सभ्रमालिङ्गितश्रिरम् । लक्ष्मणेन तथान्येन बन्धुलोकेन सादरम् ॥१४०॥  
 नमस्कृत्य मुनि श्रेष्ठ तत खेचरभूचरा । उद्यानात् प्रमदापूर्णा निरीयु सुविराजिता ॥१४१॥  
 भामण्डलेन समन्य द्रुत दशरथो ददौ । लेख जनकराजस्य नात गगनयायिना ॥१४२॥  
 प्रेषित भानुमार्गेण तस्य हसपृन वरम् । यान विद्याधरैर्वीरैर्भूरिभि परिवारितम् ॥१४३॥  
 प्रभामण्डलमादाय ततो भूत्यातिकान्तया । तुष्टो दशरथोऽथोऽथा सुत्रामसरशोऽविशत् ॥१४४॥  
 अद्यानसर्वकोशोमावुपचार पर नृप । प्रीतो भामण्डले चके सर्वलोकसमन्वित ॥१४५॥  
 रम्ये सुविपुले तुगे वाप्युद्यानविभूषिते । गृहे दशरथोद्विष्टे तस्यो भामण्डल सुखम् ॥१४६॥  
 दारिद्र्याभोचितो लोक परमोत्सवजन्मना । दानेन वाञ्छिताधिदय प्राप्तेन धरणीतले ॥१४७॥  
 गत्वा पवनवेगेन जनको लेखहारिणा । सहसा वद्वितो दिष्ट्या पुत्रागमनजन्मना ॥१४८॥  
 प्रवाच्य चापित लेख सुदृढप्रत्यय परम् । प्रमोद जनक प्राप रोमाञ्चाचितविग्रह ॥१४९॥  
 भद्र किं किमय स्वप्न स्याज्जाग्रप्रत्ययोऽथवा । एहि ढीकस्व ढोकस्व तौवस्वाद्य परिष्वजे ॥१५०॥

तदनन्तर इस समस्त वृत्तान्तको सुनकर जिनके नेत्र ऑसुओंसे भर गये थे ऐसे राजा दशरथने भामण्डलका आलिङ्गन किया ॥१३६॥ उस समय सभामे जितने लोग बैठे थे सभीके मस्तक आश्चर्यसे चकित रह गये, सभीके शरीरमे बहुत भारी रोमाञ्च निकल आये और सभीके नेत्र आनन्दके ऑसुओंसे चञ्चल हो उठे ॥१३७॥ मुखकी आकृति ही जिसे प्रकट कर रही थी ऐसे भाईको बड़े प्रेमसे देखकर सीता स्नेहवशा मृगीकी तरह रोती हुई, भुजाएँ ऊपर उठा दौड़ी और हे भाई ! मैं तुम्हे आज पहले ही पहल देख रही हूँ, यह कहकर उससे लिपट गई और चिरकाल तक रुदन कर धैर्यको प्राप्त हुई ॥१३८-३९॥ राम, लक्ष्मण तथा अन्य बन्धुओंने भी सहसा उठकर भामण्डलका आलिङ्गन किया तथा आदरसहित उससे वार्तालाप किया ॥१४०॥

तदनन्तर उन श्रेष्ठ मुनिराजको नमस्कार कर सब विद्याधर और भूमिगोचरी मनुष्य उप-वनसे बाहर निकले । उस समय वे हर्षसे परिपूर्ण थे तथा अत्यन्त सुशोभित हो रहे थे ॥१४१॥ भामण्डलके साथ सलाह कर राजा दशरथने शीघ्र ही आकाशगामी विद्याधरके हाथ राजा जनकके पास पत्र भेजा ॥१४२॥ भामण्डलका उत्तम विमान आकाश मार्गसे आ रहा था, हसोंके द्वारा धारण किया गया था तथा बहुतसे विद्याधर वीर उसे घेरे हुए थे ॥१४३॥ तदनन्तर भामण्डलको लेकर राजा दशरथने इन्द्रके समान बड़ी विभूतिसे अयोध्यामें प्रवेश किया ॥१४४॥ अक्षीण कोशके धनी राजा दशरथने भामण्डलके आनेपर प्रसन्न हो सब लोगोंके साथ मिलकर बड़ा उत्सव किया ॥१४५॥ भामण्डल राजा दशरथके द्वारा बताया हुआ रमणीय, विशाल, ऊँचे तथा चापी और बगीचासे सुशोभित महलमे सुखसे ठहरा ॥१४६॥ उस परमोत्सवके समय राजा दशरथने इतना अधिक दान दिया कि पृथ्वीतलके दरिद्र मनुष्य इच्छासे अधिक धन पाकर दरिद्रतासे मुक्त हो गये ॥१४७॥ उधर पवनके समान शीघ्रगामी पत्रवाहक विद्याधरने पुत्रके आगमनका समाचार सुनाकर राजा जनकको सहसा हर्षित कर दिया ॥१४८॥ राजा जनक दिये हुए पत्रकी रीचकर तथा उसकी सत्यताका ऋद्ध विश्वास कर परम प्रमोदको प्राप्त हुए । उनका सारा शरीर हर्षसे रोमाञ्चित हो गया ॥१४९॥ वे उस विद्याधरसे पूछने लगे कि हे भद्र ! क्या

इत्युक्तवानन्दवाप्येग तरत्तारकलोचन । साचा पुत्रमिव प्राप्त लेखहार स सत्पत्रे ॥१५१॥  
 नम्रतापरिहारेण देहस्य वस्त्रभूषणम् । ससम्भ्रम ददौ तस्मै मुदा नृत्तमिवाचरन् ॥१५२॥  
 समेति बन्धुलोकोऽस्य यावद्विध्याभिवर्द्धक । तावत्तद्दानमायात् द्वादशद्रगान रुचा ॥१५३॥  
 अष्टच्छतस्य वृत्तान्तमनूत्तश्च पुन पुन । उक्त विद्याधरैस्तस्य यथावदतिविस्तरम् ॥१५४॥  
 ततो यान समारह्य समस्तैर्वन्धुभि समम् । निमेषेण परिप्राप्तो विनीतां तूर्यनोदिताम् ॥१५५॥  
 भवतार्याम्बरादाशु पुत्रमर्गल्यम् निर्भरम् । सुखमीलितनेत्रोऽसौ क्षण्य मूर्च्छामुपागत ॥१५६॥  
 प्रवृष्य च विशालेन चक्षुषा वाष्पवारिणा । आसेचनकर्मैश्चिष्ट तनय पाणिना स्पृशन् ॥१५७॥  
 माता त मूर्च्छिता दृष्ट्वा परिष्वज्य प्रबोधिना । आचक्रन्द सुकाहण्य तिरश्चामपि तुर्वता ॥१५८॥  
 परिदेवनमेव च चक्रे पुत्रक हा कथम् । हृतोऽसि जातमात्रस्व केनाप्युत्तमवैरिणा ॥१५९॥  
 खदाचाचिन्तया देहो दग्धोऽय वद्विगुल्यया । भवद्दर्शनतोयेन विराशिवोपितोऽय मे ॥१६०॥  
 धन्या पुष्पवता सुखी या तैःशान्ति शैशवे । क्रौढता धूमराण्यके निहितानि सुसुम्बितम् ॥१६१॥  
 चन्द्रनेन विलितस्य कुङ्कुमस्थासकाञ्चितम् । दधत शैशव दृष्ट कौमार ते तया वपु ॥१६२॥  
 नेत्राभ्यामस्रगुण्ठय्य स्तनाभ्या च पयस्विचरम् । सुपुत्रसङ्गमानन्द विदेहा परम गता ॥१६३॥

यह सपत्र है ? अथवा जागृत दशमे होनेवाला प्रत्यक्ष ज्ञान है ! आओ, आओ मैं तुम्हारा आलिङ्गन करूँ ॥१५०॥ इतना कहकर आनन्दके आँसुओंसे जिनके नेत्रोंकी पुतलियाँ चञ्चल हो रही थीं ऐसे राजा जनकने उस पत्रवाहक विद्याधरका ऐसा आलिङ्गन किया मानो साक्षात् पुत्र ही आ गया हो ॥१५१॥ उन्होंने इस हृषीसे नृत्य करते हुए की तरह उस विद्याधरके लिए अपने शरीरपर स्थित समस्त वस्त्राभूषण दे दिये । शरीरपर केवल उतने ही वस्त्र रोप रहने दिये जिससे कि वे नग्न न दिरें ॥१५२॥ हृषीकी वृद्धि करनेवाले राजा जनकके बन्धुवर्ग जन तक इकट्ठे होते हैं तब तक अपनी कान्तिसे आकाशको आच्छादित करता हुआ भामण्डलका विमान वहाँ आ पहुँचा ॥१५३॥ राजा जनकने अष्टम हो बार बार भामण्डलका वृत्तान्त पूछा और विद्याधरोंने सब वृत्तान्त ज्यौकान्त्यां बडे विस्तारसे कहा ॥१५४॥

तदनन्तर राजा जनक समस्त भाई बन्धुओंके साथ विमानपर आरूढ हो निमेषमात्रमे अयोध्या जा पहुँचे । उस समय अयोध्या तुरहीके मधुर शब्दसे शब्दायमान हो रही थी ॥१५५॥ आकाशसे शीघ्र ही उतरकर उन्होंने पुत्रका गाढ आलिङ्गन किया । आलिङ्गनजन्य मुरासे उनके नेत्र निमीलित हो गये और क्षण भरके लिए वे मूर्च्छाको प्राप्त हो गये ॥१५६॥ सचेत होनेपर उन्होंने जिनसे अश्रु-जल भर रहा था ऐसे त्रिशाल लोचनोसे वृत्तिकर पुत्रका अवलोकन किया तथा हाथसे उसका स्पर्श किया ॥१५७॥ माता विदेहा भी पुत्रको देखकर तथा आलिङ्गन कर हृषीतिरेकसे मूर्च्छित हो गईं और सचेत होनेपर ऐसा रुदन करने लगी कि जिससे तिर्यञ्चाकी भी दया उत्पन्न हो रही थी ॥१५८॥ वह घिलाप करने लगी कि हाय पुत्र ! तू उत्पन्न होते ही किसी विकट वैरीके द्वारा क्यों अपहृत हो गया था ? ॥१५९॥ मेरा यह शरीर अग्निके समान तेरे देखनेकी चिन्तासे अब तक जलता रहा है । आज चिरकालके बाद तेरे दर्शनरूपी जलसे शान्त हुआ है ॥१६०॥ पुष्पवती बड़ी ही धन्य और भाग्यशालिनी उत्तम स्त्री है जिसने कि बाल्य अवस्थामे क्रीड़ासे धूलधूसरित तेरे अङ्ग अपनी गोदमे रक्ते हैं तथा चन्द्रनसे लिप्त और केशरके तिलकसे सुरोभित तेरे मुखका चुम्बन किया है एव शैशव अवस्थाकी धारण करनेवाले तेरे धुमारकालीन शरीरको देखा है ॥१६१-१६२॥ माता विदेहाके नेत्रोंसे आँसू और स्तनोंसे चिरकाल तक दूध निकलता रहा । वह उत्तम पुत्रका सङ्ग पाकर परम आनन्दको प्राप्त हुई ॥१६३॥

१. वृत्तमिवा म० । २. यावद्विद्याभिवर्द्धक म० । ३. तूर्यनोदिता ख० । ४. 'तथासेचनक वृते वासुधन्तो यस्य दर्शनात्' ।

अहंच्छासनदेवीव जृम्भेरावतनामनि । सा तत्र लोचने कृत्वा तस्यो मत्ता सुखाम्बुधी ॥१६४॥  
 मासमात्रमुपि वातो बन्धुमद्गमोदिना । पद्मो भामण्डलेनोचे विनय विभ्रता<sup>१</sup> परम् ॥१६५॥  
 वैदेह्या शरण देव त्वमेवोत्तमवान्धव । छन्देऽस्या वर्ततां येन नो घातुद्वेगमेपका ॥१६६॥  
 स्वसार च समालिङ्ग्य स्नेहादेना<sup>२</sup> सुचष्टिताम् । उपादिशदसो भूयो भूय प्रवरमानस ॥१६७॥  
 मातालिङ्ग्यागदत् सीता सुते श्वसुरयो प्रिये । परिवर्गे च तत्कुर्वी श्लाघ्यता येन गच्छसि ॥१६८॥  
 सर्वानामन्य विन्यस्य कनके मिथिलेशिताम् । गृहात्वा पितरौ यात स्थान भामण्डलो निजम् ॥१६९॥

### इन्द्रचज्रा

वीक्षस्व माहात्म्यमिदं कृतस्य धर्मस्य पूर्वं मगधाधिराज ।  
 विद्याधरेन्द्रो यद्वापि बन्धु साता च परता गुणरूपपूर्णा ॥१७०॥

### उपजाति

अधिष्ठते देवगणैश्च चापे सककटे सारगदादियुक्ते ।  
 लब्धे सुरैरप्यतिदुर्लभे ये पद्मेन लक्ष्मानिलयश्च भृत्य ॥१७१॥

### उपेन्द्रचज्रा

इदं जनो य सुविशुद्धचेता शृणोति भामण्डलबन्धुयोगम् ।  
 अभाष्टयोगानरुज्जश्चिराय रविप्रभोऽसौ लभते शुभामा ॥१७२॥

इत्यापे रविपेशाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते भामण्डलसमागमामिधानं नाम त्रिशत्तमं पर्वं ॥३०॥

जिस प्रकार ऐरावत क्षेत्रमें जृम्भा नामकी जिनशासनकी सेवक देवी रहती हैं उसी प्रकार वह भामण्डलपर दृष्टि लगाकर अर्थात् उसे देखती हुई मुखरूपी सागरमें निमग्न होकर रहने लगी ॥१६४॥ तदनन्तर एक मास तक अयोध्यामें रहनेके बाद भाई बन्धुओंके समागमसे प्रसन्न एव परम विनयको धारण करनेवाले भामण्डलने श्रीरामसे कहा कि ॥१६५॥ हे देव । सीताके आप ही शरण हो और आप ही इसके सर्वोत्तम वान्धव हो । आप इसके हृदयमें इस प्रकार विद्यमान रहे कि जिससे यह उद्वेगको प्राप्त न हो ॥१६६॥ उत्कृष्ट हृदयके धारक भामण्डलने उत्तम चेष्टाओंसे सुरोभित बहिनका स्नेहशर आलिङ्गन कर उसे बार बार उपदेश दिया ॥१६७॥ माता विदेहाने भी सीताका आलिङ्गन कर कहा कि हे बेटा । तू अपने सास ससुरको प्रिय हो, तथा परिजनके साथ ऐसा व्यवहार कर कि जिससे प्रशंसाको प्राप्त हो ॥१६८॥ तदनन्तर भामण्डल सब लोगोंसे पूछकर तथा मिथिलाका राज्य कनकके लिए सौंपकर माता पिताको साथ ले अपने स्थानपर चला गया ॥१६९॥

गौतमस्वामी राजा श्रेणिक्रुसे कहते हैं कि हे मगधेश्वर । पूर्व भवमें किये हुए धर्मका यह माहात्म्य देखो । धर्मके माहात्म्यसे ही रामने विद्याधरोंका राजा भामण्डल जैसा बन्धु प्राप्त किया, गुण तथा रूपसे परिपूर्ण सीता जैसी पत्नी प्राप्त की तथा देवोंके समूहसे अधिष्ठित कवच, हल, गदा आदिसे युक्त एव देवोंके द्वारा दुर्लभ धनुष प्राप्त किये । लक्ष्मीका भाण्डार लक्ष्मण जैसा सेवक प्राप्त किया ॥१७०-१७१॥ जो मनुष्य अत्यन्त विशुद्ध हृदयसे भामण्डलके इस इष्ट समागमको सुनता है सूर्यके समान प्रभाको धारण करनेवाला वह शुभात्मा मनुष्य चिरकाल तक इष्ट जनोंके साथ समागम और आरोग्यको प्राप्त होता है ॥१७२॥

इस प्रकार आर्षनामते प्रसिद्ध रविपेशाचार्य द्वारा कथित पद्मचरितमें भामण्डलके समागमका वर्णन करनेवाला तीसवां पर्व समाप्त हुआ ॥३०॥



## एकत्रिंशत्तमं पर्व

उवाच श्रेणिको भूपः सबन्धुरनररुण्यजः । इमां विभूतिं सम्प्राप्य चक्रे किं गणनायक ॥१॥  
पुरातनं च वृत्तान्तं रामलक्ष्मणयोस्तयोः । तथैव विदितं सर्वं तन्नो बृहद् महायशः ॥२॥  
इति पृष्टो महातेजा जगाद् मुनिपुङ्गवः । निरवधं तथा तत्त्वं यथा सर्वज्ञमापितम् ॥३॥  
स्वसंशयमशेषज्ञं राजा दशरथोऽन्यदा । प्रणम्य साधुमप्राचीत् सर्वभूतहितं हितम् ॥४॥  
गया जम्मानि भूरोणि परिप्राप्तानि यानि तु । वेद्यैकमपि नो तेषां तत्सर्वं विदितं त्वया ॥५॥  
तान्वहं ज्ञातुमिच्छामि भगवन्पुण्यतामिति । भवत्यसादतो मोहं निराकृतुमर्हं यजे ॥६॥  
श्रोतुं समुद्यतस्यैवं<sup>१</sup> भवान्<sup>२</sup> दशरथस्य तु । सर्वभूतहितः सागुरिदं<sup>३</sup> वचनमत्रवारं ॥७॥  
शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि यन्मां पृच्छसि सन्मते । त्वया पर्थैव संसारे मतिरासादिता यथा ॥८॥  
न त्वयैकेन संसारे भ्रान्तोऽन्यैरपि संमृतः<sup>४</sup> । चिन्वानैः कर्मभिः कर्मदुःखसजननो महान् ॥९॥  
अस्मिन् जगत्त्रये राजन् जन्तूनां स्वहितैषिणाम् । स्थितयस्तिल उद्दिष्टा उत्तमाधममध्यमा<sup>५</sup> ॥१०॥  
<sup>६</sup>अमायी च तथा<sup>७</sup> भान्यी सैदी<sup>८</sup> च गतिपूत्तमा । पुनरावृत्तिनिमुक्ता कल्याणी जिनदेयिता ॥११॥  
सेयं सिद्धगतिः शुद्धा सनातनसुखावहा । इन्द्रियव्रणरोगार्तमोहेनान्धैर्न दृश्यते ॥१२॥

अथानन्तर राजा श्रेणिकने गौतमस्वामीसे पूछा कि हे गणनायक ! इष्टजनसे सहित, राजा अनरुण्यके पुत्र राजा दशरथने इस विभूतिको पाकर क्या किया ? ॥१॥ हे महायशके धारक ! राम और लक्ष्मणका पुरातन वृत्तान्त आपको ही विदित है इसलिए वह सब वृत्तान्त मुझसे कहिए ॥२॥ इस प्रकार पूछे गये महातेजस्वी मुनिराजने कहा कि हे राजन् ! इनका जैसा वृत्तान्त सर्वज्ञदेवने कहा है वैसा कहता हूँ तुमन ॥३॥ वे कहने लगे कि किसी समय राजा दशरथने समस्त पदार्थको जाननेवाले सर्वभूतहित नामक हितकारी मुनिराजको प्रणाम कर उनसे अपना संशय पूछा ॥४॥ उन्होंने कहा कि हे स्वामिन् ! मैंने बहुतसे जन्म धारण किये हैं पर मैं उनमेंसे एक भी भयको नहीं जानता जब कि आपके द्वारा सब विदित हैं ॥५॥ हे भगवन् ! मैं उन्हें जानना चाहता हूँ सो कहिए । आपके प्रसादसे मोह नष्ट करनेके लिए मैं आपकी पूजा करता हूँ ॥६॥ इस प्रकार भवान्तर मुननेके लिए उद्यत राजा दशरथसे सर्वभूतहित मुनि निम्नाङ्कित वचन कहने लगे ॥७॥

उन्होंने कहा कि हे राजन् ! तुमने हे सद्बुद्धिके धारक ! तुमने जो पूछा है वह सब मैं कहूँगा । तुमने इस संसारमें समन्तात् भ्रमण कर जिस प्रकार सद्बुद्धि प्राप्त की है वह सब मैं निवेदन करूँगा ॥८॥ दुःख देनेवाले इस महान् संसारमें केवल तुमने ही भ्रमण नहीं किया है किन्तु कर्माका संचय करनेवाले अन्य लोगोंने भी कर्माद्वयसे इसमें भ्रमण किया है ॥९॥ हे राजन् ! इस जगत्त्रयमें अपना हित चाहनेवाले प्राणियोंकी दशाएं उत्तम मध्यम और जघन्यके भेदसे तीन प्रकारकी धर्णित की गई हैं ॥१०॥ उनमेंसे अभव्य जीवकी दशा जघन्य है, भव्यकी मध्यम है और सिद्धाकी उत्तम है । जिनेंद्रभगवान्ने सिद्धगतिको पुनरागमनसे रहित तथा कल्याणकारिणी बतलाया है ॥११॥ यह सिद्धगति शुद्ध है तथा सनातन सुखको देनेवाली है ।

१. दशरथः । २. विदित म० । ३. समुद्यतस्यैव म० । ४. पूर्वपयायात् । ५. संसरणविप्रपीकृत । ६. अभव्यस्यैव अमायी । ७. भव्यस्यैव भाव्यी । ८. सिद्धानामिय सैदी ।

श्रद्धासवेगक्षानाना हिंसादिष्वनिवृत्तिनाम् । चतुर्गतिकसवर्ता गतिरुप्रतमोरजा ॥१३॥  
 अभव्याना गति क्लिष्टा विनाशपरिवर्जिता । भव्याना तु परिज्ञेया गतिनिवृत्तिभाविनी ॥१४॥  
 धर्मादिद्रव्यपर्यन्त लोकालोकमशेषत । पृथिवीप्रभृतां कायानाश्रिताश्रेतनाभृत ॥१५॥  
 जीवराशिरनन्तोऽप्य विद्यते नास्य सद्य । दृष्टान्त सिकताकाशचन्द्रादिव्यकरादिक ॥१६॥  
 'भनाद्यमन्तनिमुक्तं त्रैलोक्य सचराचरम् । स्वकर्मनिचयोपेत नानायोनिकृतात्मनम् ॥१७॥  
 सिद्धा सिद्धयन्ति सेव्यन्ति कालेऽन्तपरिवर्जिते । जिनदृष्टेन धर्मेण नैवान्येन कथञ्चन ॥१८॥  
 य सन्देहकलङ्गेन निचित पापकर्मणा । 'अभादितस्य धर्मेण का तस्य श्रद्धावता ॥१९॥  
 नुत श्रद्धाविमुक्तस्य धर्मो धर्मफलानि च । अत्यन्तदु खमज्ञान' सम्यक्खरहितात्मनाम् ॥२०॥  
 अत्युप्रकर्मनिर्माके<sup>१</sup> वैदिताना सन्नन्तत । मिथ्याधर्मानुरक्ताना स्वाहिताद्दूर'वर्तिनाम् ॥२१॥  
 सेनापुरेऽप्य दीपिन्या उपास्तितानाम् 'भावन । सा च मिथ्याभिमानेन परिपूर्णा निरगलम् ॥२२॥  
 'अश्रद्धावता सरभन्सरस्वेडधारिणी । दुर्भावा सतत साधुनिन्दनासक्तशब्दिका ॥२३॥  
 प्रयच्छन्ति स्वय नात् यच्छन्त नानुमन्यते । निवारयति यत्नेन त्रिचमान सुभूर्वापि ॥२४॥

इन्द्रियरूपी ब्रणरोगसे पीडित तथा मोहसे अन्धे मनुष्य इसे नहीं देख सकते हैं ॥१२॥ जो मनुष्य श्रद्धा और सवेगसे रहित हैं तथा हिंसादि पाँच पापोंसे निवृत्त नहीं हैं उनकी चतुर्गतिमें भ्रमण करनेवाली गति अर्थात् वशा होती है । उनकी यह गति अत्यन्त उग्र तमोगुण और रजोगुणसे युक्त रहती है ॥१३॥ अभव्य जीवोंकी गति अतिशय दुःखपूर्ण तथा विनाशसे रहित है और भव्य जीवोंकी गति मोक्ष प्राप्त करनेवाली है अर्थात् अभव्य जीव सदा चतुर्गतिमें ही भ्रमण करते हैं और भव्य जीवोंमें किन्हींका निर्वाण भी हो जाता है ॥१४॥ जहाँ तक धर्माधर्मादि द्रव्य पाये जाते हैं उसे लोक कहते हैं और बाकी समस्त आकाश अलोक कहलाता है । ससारके समस्त प्राणी पृथिवी आदि पट्टकायको धारण करनेवाले हैं ॥१५॥ यह जीवराशि अनन्त है । इसका क्षय नहीं होता है । इसके लिए बालूके कण, आकाश अथवा चन्द्रमा सूर्य आदिकी किरणें दृष्टान्त हैं अर्थात् जिस प्रकार बालूके कणोंका अन्त नहीं है, आकाशका अन्त नहीं है और चन्द्र तथा सूर्यकी किरणोंका अन्त नहीं है उसी प्रकार जीवराशिका भी अन्त नहीं है ॥१६॥ चर अचर पदार्थों अर्थात् त्रस म्थावर जीवोंसे सहित ये तीनों लोक अनादि अनन्त हैं, रजकीय कर्मोंके समूहसे सहित हैं तथा नाना योनियोंके जीव इनमें भ्रमण करते रहते हैं ॥१७॥ आज तक जितने सिद्ध हुए हैं, जो वर्तमानमें सिद्ध हो रहे हैं और जो अनन्त काल तक सिद्ध होंगे वे जिनेन्द्रदेवके द्वारा देखे हुए धर्मके द्वारा ही होंगे अन्य किमी प्रकारसे नहीं ॥१८॥ जो पाप कर्मके कारण सशयरूपी कलङ्कसे व्याप्त है तथा धर्मकी भावना अर्थात् संस्कारसे रहित है उसके सम्यग्दर्शन कैसे हो सकता है ? ॥१९॥ जो मनुष्य श्रद्धासे रहित हैं उसके धर्म और धर्मके फल कहींसे प्राप्त हो सकते हैं ? जिनकी आत्मा सम्यग्दर्शनसे रहित है, जो अत्यन्त उग्र कर्मरूपी काँचलीसे सब ओरसे वेष्टित है, जो मिथ्या धर्ममें अनुरक्त हैं और जो आत्महितसे दूर रहते हैं उन प्राणियोंको अत्यन्त दुःख देनेवाला अज्ञान ही प्राप्त होता है ॥२०-२१॥

अथानन्तर हस्तिनापुर नगरमें एक उपास्ति नामका गृहस्थ था । उसको दीपिनो नामकी स्त्री थी । वह दीपिनो मिथ्या अभिमानसे पूर्ण थी, श्रद्धासे रहित थी, क्रोध तथा मात्सर्यरूपी विषको धारण करनेवाली थी, दुष्ट भावोंसे युक्त थी, उसके शब्द सदा साधुओंकी निन्दा करनेमें तत्पर रहते थे । वह न कभी स्वयं किसीको आहार देती थी और न देते हुए किसी दूसरेको

१ अनादिमन्द म० । २ असंख्यतस्य धर्मभावनारहितस्येति यावत् । ३ विज्ञान म० । ४. निर्माके वैदिताना म० । ५. दुःखवर्तिना । ६. गृहस्थ इति । ७. अश्रद्धावता म० ।

एवमादिमहादोषा कुर्वीर्थपरिभाविता । कालमेत्याभ्रमद्भोमे निष्पारे भवसागरे ॥२५॥  
 उपास्तित्देहि देहीति समभ्यस्याचरद्वयम् । पुण्यकर्मानुभावेन पुरेऽन्द्रकपुराह्वये ॥२६॥  
 सुतोऽन्द्र भद्रधारिण्योभोग्यवान् बहुद्वान्धव । धारणो नामतस्तस्य पत्नी नयनसुन्दरी ॥२७॥  
 देशकालप्रपञ्चेभ्य साधुभ्य शुद्धभावात् । दत्वासी धारणा समयकाले सत्यज्य विग्रहम् ॥२८॥  
 विदेहे घातकीखण्डे मेरोरत्तरत कुरी । भुक्त्वा पत्यत्रय भोग समारूढस्त्रिविधम् ॥२९॥  
 च्युतोऽत पुष्कलावया नगर्यां नन्दिघोषत । वसुधाया समुपचो नामतो नन्दिवर्धन ॥३०॥  
 नन्दिघोषोऽन्यदा धर्मं श्रुत्वोद्यान प्रबुद्धवान् । नन्दिवर्धनमाधाय पृथिवीपरिपालने ॥३१॥  
 यरोधरमुने पार्ष्णे प्रमज्य सुमहत्तप । कृत्वा स्वर्गं समारूढस्तनु त्यक्त्वा यथाविधि ॥३२॥  
 गृह्णिमंसमासक्तो नमस्कारपरायण । पूर्वकीर्ती महाभोगान् भुक्त्वा धीनन्दिवर्धन ॥३३॥  
 सन्यासेन तनु त्यक्त्वा प्रयात पद्म दिवम् । ततश्च्युतो विदेहेऽस्मिन् गिरिराजस्य पश्चिमे ॥३४॥  
 ख्याते शशिपुरे स्थाने विजयाद्भनगोत्तमे । सूर्यज्योऽभवद् विद्युल्लताया रत्नमालिन ॥३५॥  
 अन्यदा सिंहनगर रत्नमाली महाबल । प्रस्थितो विग्रह कर्तुं यत्रासी वज्रलोचन ॥३६॥  
 रथे प्रभास्वरैर्दिव्यै पदातिगजवाजिभि । नानाशस्त्रहृतध्वान्तै सामन्तै सुमहाबलै ॥३७॥

अनुमोदना करती थी । यदि कोई दानादि सत्कार्योंमें प्रवृत्त होता था तो उसे वह प्रयत्नपूर्वक मना करती थी । इत्यादि अनेक महादोषोंसे युक्त थी और कुतीर्थकी भावनासे युक्त थी । इस प्रकार समय व्यतीत कर वह भयङ्कर तथा पाररहित सप्ताह सागरमें भ्रमण करने लगी ॥२२-२५॥ इसके विपरीत उपास्तित् 'देहि' 'देहि' अर्थात् 'देओ' 'देओ' इन दो अक्षरोंका अच्छी तरह अभ्यास कर—अत्यधिक दान देकर पुण्य कर्मके प्रभावसे अन्द्रकपुरनामा नगरमें मद्रनामा गृहस्थ और उसकी धारिणीनामा स्त्रीके धारण नामका भाग्यशाली एव अनेक वन्धुजनोंसे युक्त पुत्र हुआ । उसकी नयनसुन्दरी नामकी स्त्री थी ॥२६-२७॥ वह योग्य देश तथा कालमें प्राप्त हुए साधुओंके लिए शुद्धभावासे आहार देता था । जिसके फलस्वरूप अन्तमें समाधिपूर्वक शरीर का त्यागकर घातकीखण्डद्वीप सम्बन्धी विदेह क्षेत्रमें मेरु पर्वतकी उत्तर दिशामें विद्यमान पुच्छेत्रमें आर्य हुआ । वहाँ तीन पत्य तक भोग भोगकर स्वर्गमें उत्पन्न हुआ ॥२८-२९॥ वहाँसे च्युत होकर पुष्कलावती नगरमें राजा नन्दिघोष और वसुधा रानीके नन्दिवर्धन नामका पुत्र हुआ ॥३०॥ एक दिन राजा नन्दिघोष उल्लूक धर्म श्रवण कर प्रबोधको प्राप्त हुआ और नन्दि-वर्धनको पृथिवी-पालनका भार सौंप यरोधर मुनिराजके समीप दीक्षा लेकर महातप करने लगा । तथा अन्तमें विधिपूर्वक शरीर त्यागकर स्वर्गमें उत्पन्न हुआ ॥३१-३२॥

इधर नन्दिवर्धन गृहस्थका धर्म धारण करनेमें लीन एव पञ्च-नमस्कार मन्त्रकी आराधना करनेमें तत्पर था । वह एन करोड पूर्वतक महाभोगोंको भोगकर तथा सन्याससे शरीर छोड़कर पञ्चम रत्नमें गया । वहाँसे च्युत होकर इसी विदेह क्षेत्रमें सुमेरु पर्वतके पश्चिमकी ओर विजयार्थ पर्वतपर स्थित शशिपुरनामा नगरमें राजा रत्नमाली और रानी विद्युल्लताके सूर्यजय नामका पुत्र हुआ ॥३३-३५॥

अथानन्तर एक समय महा बलवान् राजा रत्नमाली युद्ध करनेके लिए उस सिंहपुर नगर की ओर चला जहाँ कि राजा वज्रलोचन रहता था ॥३६॥ वह देदीप्यमान सुन्दर रथ, पैदल सेना, हाथी, घोड़े तथा नाना प्रकारके शस्त्रोंसे अन्धकार उत्पन्न करनेवाले अत्यन्त बलवान्

१ चन्द्रपुगह्वये म० । २ मद्रनामा पुरुष, तस्य धारिणी नाम्नी स्त्री तयो । ३ प्रयत्नेभ्यो म० । ४ रत्नम् । ५ प्रयत्नारत्या ज० । ६ सुमेरो ।

त दशोष्ट धनु पाणि क्वचानृतविग्रहम् । <sup>१</sup>दग्धुकाममरिस्थान क्रोधादानेयविद्यया ॥३८॥  
 रयाप्राह्लडमायान्त वेगिन भीषणाकृतिम् । नभस्थ सहसा कश्चिदमरोऽभिद्रवोविति ॥३९॥  
 रत्नमालिन् किमारब्धामिद सरभमुसृज । विवृष्यस्व वदाम्येव वृत्तान्तं तव पूर्वकम् ॥४०॥  
 इहासीद् भारते वास्ये मांसाद्रोऽग्रमकर्मकृत् । गान्धारायां भूतिस्वींष्टुपमन्युः पुरोहितः ॥४१॥  
 साधो. कमलगर्भस्य ध्रुत्वा <sup>२</sup>व्याकरण च सः । नाचरामि पुनः पापमिति व्रतमुपाददे ॥४२॥  
 पञ्चपत्न्योपम स्वर्गं तेनायु समुपाजितम् । उपमन्यूपदेशेन <sup>३</sup>भस्मसाक्षावमाहृतम् ॥४३॥  
 मुञ्चते मुकृत चासाववस्कन्देन चारिभिः । प्रपन्य हिसितः साकमुपमन्युः पुरोधसा ॥४४॥  
 पुरोहितो गजो जातो युद्धेऽसी जर्जरकृतः । सग्राप्य <sup>४</sup>जाप्यमप्राप्तमितरैर्दुःखभाजनैः ॥४५॥  
 पुनस्तत्रैव गान्धारायां भूतिपुत्रस्य धीमतः । देव्यां योजनगन्धायां पुत्रोऽभूदरिसूदनः ॥४६॥  
 दृष्ट्वा कमलगर्भं च पूर्वं जन्म समस्मरत् । प्रमदयासीं ततो मृत्वा <sup>५</sup>शतरेऽह सुरोऽभवम् ॥४७॥  
 स त्व “भूतिमृगो जातो मन्दारण्ये दुराकृतिः । अकामनिर्जरा तस्य दावदग्धस्य <sup>६</sup>भूकुना” ॥४८॥  
 कर्मोपेन सताकारि यवया कर्म दाहगम् । <sup>७</sup>क्लिञ्जात्येन मृतस्वासांश्चर्करानरकं गतः ॥४९॥  
<sup>१२</sup>मया स्नेहानुवन्धेन ततस्त्व सम्प्रबोधितः । भयमुद्वृत्य जातोऽसि रत्नमाली खगेश्वरः ॥५०॥

सामन्तोसे सहित था ॥३७॥ जो क्रोधके कारण ओठ डस रहा था, जिसके हाथमें धनुष था, जिसका शरीर क्वचसे आच्छादित था, जो आग्नेयविद्यासे शत्रुका स्थान जलाना चाहता था, जो रथके अग्रभागपर आरूढ़ था, जो वेगशाली था एवं भयङ्कर आकारका धारक था । ऐसे उस रत्नमालीको आकाशमें स्थित देख सहसा किसी देवने इस प्रकार कहा ॥३८-३९॥ कि हे रत्नमालिन् ! तूने यह क्या आरम्भ कर रक्सा है ? क्रोधको छोड़ और स्मरण कर, मैं तेरा पूर्व वृत्तान्त कहता हूँ ॥४०॥

‘इसी भरत क्षेत्रकी गान्धारीनामा नगरीमें एक भूति नामका राजा था । उपमन्यु उसके पुरोहितका नाम था । राजा और पुरोहित दोनों ही मासभोजी तथा नीचकार्य करनेवाले थे ॥४१॥ एक बार कमलगर्भनामा मुनिका व्याख्यान सुनकर राजा भूतिने व्रत लिया कि अब मैं ऐसे पापका आचरण फिर कभी नहीं करूँगा ॥४२॥ इस व्रतके प्रभावसे उसने इतने पुण्यका सञ्चय किया कि उससे स्वर्गकी पाँच पत्न्य प्रमाण आयुका बन्ध हो सकता था, परन्तु उपमन्यु पुरोहितके उपदेशसे उसका यह सब पुण्य भस्म-भावको प्राप्त हो गया अर्थात् नष्ट हो गया । उसने उस पुण्यभावको छोड़ दिया । उसी समय शत्रुओंने आक्रमण कर पुरोहितके साथ-साथ उसे मार डाला ॥४३-४४॥ पुरोहितका जीव मरकर हाथी हुआ सो युद्धमें घायल हो अन्य दुःखी जीवोंको जिसका मिलना दुर्लभ था ऐसे पञ्च नभस्कार मन्त्रको पाकर उसी गान्धारीके राजा भूतिके बुद्धिमान पुत्रकी योजनगन्धा नामा स्त्रीके अरिसूदन नामका पुत्र हुआ ॥४५-४६॥ कमलगर्भ मुनिराजके दर्शन कर अरिसूदनको पूर्व जन्मका स्मरण हो आया जिससे विरक्त होकर उसने दीक्षा ले ली और मरकर शतार नामक ग्यारहवें स्वर्ग में देव हुआ । इस तरह मैं वही पुरोहितका जीव देव हूँ और तू राजा भूतिका जीव मरकर मन्दारण्यनामा वनमें मृग हुआ सो वहाँ दावानलमें जलकर उसने अकामनिर्जरा की उसके फलस्वरूप वह क्लिञ्ज नामका नीच पुरुष हुआ । उस पर्यायमें तूने जो दारण कार्य किये—तीघ्र पाप किये । उनके फलस्वरूप तू शर्कराप्रभा नामक दूसरे नरक गया ॥४७-४८॥ तदनन्तर स्नेहके संस्कारसे मैंने वहाँ

१ दग्धु काम ‘तु काममनसोरपि’ इति मलोप. दग्धुकामम् । २ जगद् । ३ व्याख्यानम् । ४ उपमन्यूपदेशेन व्रत त्यक्तम् । ५ उपमन्यु पुरोधसा म० । ६ जप्य म० । ७ शतारस्वर्गं । ८ भूतिनाम रूपः । ९ दावदग्धस्य म०, प० । १० नीचपुरुषेण । ११ क्लिञ्जात्ये वने मृतः सन् शर्करयानामनरक प्रातः । १२ मदा म० ।

पर्याप्तानि न किं तानि दुःप्रानोत्पुदितरच सः । सूर्यज्ञयसुनं राज्ये निधाय कुलनन्दनम् ॥५१॥  
 वृत्तान्तश्रवणात्तस्मात्पर निषेदमीयुषा । सूर्यज्ञयेन सहित सन्कर्मोदयचेतसा ॥५२॥  
 रत्नमाली पुनर्नानादुर्गतितरस्तमानसः । ययी शरणाभाचार्यं सौम्य तिलरुमुन्दरम् ॥५३॥  
 सूर्यज्ञयस्तपः कृत्वा महाशुक्रमुपागमन् । व्युत्तोऽनरण्यराजर्षेः सुतो दशरथोऽभवत् ॥५४॥  
 स्वल्पेन सुहृतेन त्वमुपास्तिप्रमुखैर्भवेः । न्यग्रोधयीजवद्वृद्धि सम्प्राप्तोऽसि शुभोदयात् ॥५५॥  
 नन्दिर्वर्धनकाले ते नन्दिघोषविता च यः । सोऽह भवेयकाद् भ्रष्टः सर्वभूतहितोऽभवम् ॥५६॥  
 यो भूतिरपमन्युश्च तावेतो तद्गशानुमी । जनको कनकश्चेति जाती सुहृत्चेतसा ॥५७॥  
 संसारे न परः कश्चिन्नारमीयः कश्चिदज्ञसा । सैषा शुभाशुभैर्ज्ञन्तोर्द्वर्तपरिवर्तना ॥५८॥  
 उदाहृतमिदं श्रुत्वा विनीतो वीतसंशयः । अनरण्यसुतो जातः प्रबुद्धः संयमोन्मुखः ॥५९॥  
 सर्वांतरसमेतश्च सम्पूज्य चरणौ गुरोः । प्रगम्य च विशुद्धात्मा प्रविश मुकोशलम् ॥६०॥  
 एवं च मानमे चक्रे सार्वभूमोश्चर पदम् । पद्मय सुधिये दत्त्वा माधवीया श्रये गतिम् ॥६१॥  
 धर्मात्मा सुस्थिरो रामस्त्रिसमुद्रं वसुन्धरात् । धनुपालयितु शक्नो भ्रातृभिः परिवारितः ॥६२॥  
 विन्तयत्येवमेवास्मिन् राज्यमोहपराह्मुपे । मुन्यर्थोहितचेतस्के श्रीमद्दशरथे नृपे ॥६३॥  
 तिरोधान गता वापि स्वच्छन्द्योस्तनपटा शरत् । चन्द्रास्याहिमर्मातेव सरोरहनिराक्षणा ॥६४॥  
 प्राप्तः प्रालेयसपातं विच्छायांकृतनारजः । हेमन्तो जडवातेन व्याकुलीकृतविष्टपः ॥६५॥

जाकर तुम्हें सम्बोधा जिसके प्रभावसे निकल कर तू यह रत्नमाली विद्याधर हुआ है ॥५०॥  
 तूने क्या वे दुःख नहीं पाये हैं ? इस प्रकार देवके कहते ही रत्नमालीका मन नाना दुर्गतियोंसे  
 भयभीत हो गया । इस वृत्तान्तके सुननेसे रत्नमालीका पुत्र सूर्यजय भी परम वैराग्यको प्राप्त हो  
 गया इसलिए उस पुण्यात्माके साथ ही साथ राजा रत्नमाली, सूर्यजयके पुत्र कुलनन्दको राज्य  
 देकर तिलरुमुन्दरनामा प्रशान्त आचार्यकी शरणमें पहुँचा ॥५१-५३॥ तदनन्तर सूर्यजय तप कर  
 महाशुक्र स्वर्गमें गया और चहाँसे च्युत होकर राजर्षि अनरण्यके दशरथ नामका पुत्र हुआ ॥५४॥  
 सर्वभूतहित मुनि कहते हैं कि तू थोड़े ही पुण्यके द्वारा उपास्ति आदि भयोंमें बटवीजकी तरह  
 शुभोदयसे वृद्धिको प्राप्त हुआ है ॥५५ तू राजा दशरथ उपास्तिका जीव है और नन्दिर्वर्धनकी  
 पर्यायमें जो तेरा पिता नन्दिघोष था वह तपकर भवेयक गया और चहाँसे च्युत होकर मैं सर्वभूत-  
 हित हुआ हूँ ॥५६॥ तथा उसके अनुकूल रहनेवाले जो भूति और अपमन्युके जीव थे वे पुण्यके  
 प्रभावसे क्रमशः राजा जनक एवं कनक हुए हैं ॥५७॥ वास्तवमें इस संसारमें न तो कोई पर है  
 और न अपना है । शुभाशुभ कर्मोंके कारण जीवका यह जन्म-मरणरूप परिवर्तन होता रहता  
 है ॥५८॥ इस प्रकार पूर्व भवका वृत्तान्त सुन अनरण्यका पुत्र राजा दशरथ प्रतिबोधको प्राप्त  
 हुआ तथा सत्र प्रकारका संशय छोड़ विनीत हो संयम धारण करनेके सन्मुख हुआ ॥५९॥  
 सम्पूर्ण आदरके साथ उसने गुरुके चरणोंकी पूजा की, उन्हें प्रणाम किया और तदनन्तर निर्मल  
 हृदय हो नगरमें प्रवेश किया ॥६०॥ उसने मनमें विचार किया कि यह महामण्डलेश्वरका पद  
 बुद्धिमान् रामके लिए देकर मैं मुनिव्रत धारण करूँ ॥६१॥ धर्मात्मा तथा स्थिर चित्तका धारक  
 राम अपने भाइयोंके साथ जिसके पूर्व, पश्चिम तथा दक्षिणमें तीन समुद्र हैं ऐसी इस भरत  
 क्षेत्रकी पृथ्वीका पालन करनेमें समर्थ है ॥६२॥ इस प्रकार राज्यके मोहसे विमुक्त और मुक्तिके  
 लिए चित्त धारण करनेवाले राजा दशरथ ऐसा विचार कर रहे थे कि उसी समय निर्मल चाँदनी  
 ही जिसका वर था, चन्द्रमा ही जिसका मुख था और कमल ही जिसके नेत्र थे ऐसी शरद्-  
 ऋतुरूपी स्त्री हिमसे ढरकर ही मानो कहीं जा छिपी ॥६३॥-६४॥ और लगातार हिमके पड़नेसे

स्फुटिताधरपादान्ता पृष्टम्यस्तपदचरा । दन्तवाणाकृतस्त्राना रुच्यव्याकुलमूर्धजा ॥६६॥  
 तित्तिरच्छदनच्छायक्रोडजद्वा विभावसो । सततासेवनाव कुक्षिपूरणाद्यूनचेतस ॥६७॥  
 शरीरच्छायया तुल्या प्रपन्नप्रपुपवच । दुर्गेहिनीवच शस्त्रैरत्यन्त १ तटमानसा ॥६८॥  
 २ काष्ठाघानपनासका दिवाभास्करतापिता । कुदारादिधरा स्त्रयो दधाना क्रियकर्मशी ॥६९॥  
 शाकाम्बलकाद्यन्तपरिपूरितकुक्षय । दुःख नयन्ति तत्काल ३ दुष्कृतीषु धनोज्ज्वला ॥७०॥  
 वरप्रासादयातास्तु शीतसन्नमहारिभि । सर्वाताङ्गा वरेर्वसैधूपामोद्गानुबन्धिभि ॥७१॥  
 पद्मस स्वादुसम्पन्न हैमरवनादिपात्रगम् । भुञ्जाना सुरमिस्त्रिभन्नाहार निजलीलया ॥७२॥  
 कुङ्कुमप्रविलिप्ताङ्गा भसितागुरुधूपिता । अक्षीणधननिश्चिन्ता गवाक्षकृतवीक्षण ॥७३॥  
 शीतवृत्त्यादिसम्प्राप्ता विनोद परम सदा । माल्यभूषणसम्पन्ना सुभाषितकपोचता ॥७४॥  
 विनीताभि कलाज्ञाभि मुरूपाभि सम नरा । क्रीडन्ति वरनारोभि तदा पुण्यानुभाषत ॥७५॥  
 पुण्येव लयते सौख्यमपुण्येन च दु खिता ४ । कर्मणामुचित लोक सर्व फलमुपादनुते ॥७६॥  
 तदा दशरथो भीमो मृश ससारवासत । ५ निर्वैत्यालिङ्गनकिर्षा विरक्तो भोगवस्तुत ६ ॥७७॥  
 द्वा स्पमाज्ञापयद्भिमिन्पस्तजानुकर द्रुतम् । भद्राह्वय स्वसामन्तान् मन्त्रिभि सहितादिति ॥७८॥  
 नियुज्यात्मसम द्वारे शासन तेन तद्भुतम् । आगतास्ते नमस्कृत यथास्थानभवस्थिता ॥७९॥

जिसने कमलोंको कान्तिरहित कर दिया था तथा शीतल वायुसे जिसने समस्त संसारको व्याकुल बना दिया था ऐसा हेमन्त काल आ पहुँचा ॥१५॥ जिनके आठ तथा पैरोंके किनारे फट गये थे, जो पीठपर पुराने चिथड़े धारण किये हुए थे, जिनके दन्त वीणाके समान शब्द कर रहे थे, जिनके मस्तकके बाल रूखे तथा त्रिररे हुए थे, निरन्तर अग्निके तापनेसे जिनकी गोष्ठ तथा जौँके तीतरके पङ्क्तके समान मटमैली हो गई थीं, जिनका चित्त पेट भरनेकी चिन्तासे दुःखी रहता था, जो शरीरकी कान्तिसे पके हुए त्रपुपफलके बल्कलके समान श्यामवर्ण थे, दुष्ट भायोंके वचनरूपी शस्त्रोंसे जिनका हृदय छिल गया था, जो लकड़ी आदिके लानेमें लगे रहते थे, जो दिनभर सूर्यके द्वारा तपाये जाते थे, जो कुल्हाड़ी आदि हथियारोंको धारण करते थे तथा जो धृष्ट पठ जानेसे कठोर कन्धोंको धारण करते थे तथा जो शाकभाजों आदिसे पेट भरते थे, ऐसे निर्धन मनुष्य जीर्ण शीर्ण कुटियोंमें उस हेमन्तकालको घड़े कष्टसे व्यतीत करते थे ॥६६-७०॥ और इनसे विपरीत जो अक्षीण धनके कारण निश्चिन्त थे वे उत्तमोत्तम महलोंमें रहते थे, शीतके समागमको हरनेवाले तथा धूपकी सुगन्धिसे सुवासित उच्छुष्ट वस्त्रोंसे उनके शरीर ढके रहते थे, स्वर्ण तथा चौद्री आदिके पात्रमें रखे हुए, छद्म रखके स्वादिष्ट, सुगन्धित तथा स्निग्ध आहारको लीलापूर्वक ग्रहण करते थे, उनके शरीर केशरसे लिप्त तथा कालागुरुकी धूपसे सुवासित रहते थे, उनके नेत्र मरौलोंकी ओर भौंका करते थे, वे गीत, नृत्य आदि परम विनोदकी प्राप्ति होते रहते थे, माला तथा आभूषणोंसे युक्त रहते थे, सुभाषितोंके कहनेमें तत्पर रहते थे और विनीत, कलानिपुण तथा सुन्दर रूपकी धारक उत्तम स्त्रियोंके साथ पुण्योद्भयसे क्रीडा करते थे ॥७१-७३॥ आचार्य कहते हैं कि इस संसारमें पुण्यसे सुख प्राप्त होता है और पापसे दुःख मिलता है । प्राणी अपने कर्मोंके अनुरूप ही सन प्रकारका फल प्राप्त करते हैं ॥७६॥

तदनन्तर उस समय ससारवाससे अत्यन्त भयभीत राजा दशरथ, मुक्तिरूपी स्त्रीके आलिङ्गनकी आकांक्षा करते हुए भोगवस्तुओंसे विरक्त हो गये ॥७७॥ जिसने पृथिवीपर घुटने और हस्त टेककर नमस्कार किया था ऐसे द्वारपालको उन्होंने तत्काल आज्ञा दी कि हे भद्र ! मन्त्रियोंसे सहित अपने सामन्तोंको बुला लाओ ॥७८॥ द्वारपालने द्वारपर अपने ही समान

१. नष्ट-० । २ वाञ्छदानपताशकया म० । ३ तत्काल म० । ४ दु खिनी भावा दु खिता ।

५ मुक्तिवात्पार्लेपगामिणी । ६. भागवस्तुन तः, जः, मः ।

नायाज्ञापय किं कृयमिति श्लोकेन भुभृता । विनीता जगदे<sup>१</sup> संसन् प्रयत्नामीति निश्चितम् ॥८०॥  
 ततस्तन्मन्त्रिणोऽशोचन् गण्यमानाश्च पार्थिवाः । नाथ किं कारणं जातं मतावस्थां तवाधुना ॥८१॥  
 जगादासी समग्रं भो नन्वेतत्सकल जगन् । शुष्कं तुणमिवाजलं दहते मृत्युवह्निना ॥८२॥  
 अप्राज्ञं यद्भवयानां भयानां प्रहणोचितम् । सुरासुरनमस्कार्यं प्रशस्यं शिवसौख्यदम् ॥८३॥  
 त्रिलोके प्रकटं सूक्ष्मं विशुद्धमुपमोग्निमतम् । श्रुतं नम्युनिवो जैनं श्रुतमद्य मयाचिरात् ॥८४॥  
 परमं सर्वभावानां सम्यक्चमतिनिर्मलम् । गुरुपादप्रसादेन प्राप्तोऽहं वर्त्म निवृत्ते ॥८५॥  
 नानाजन्ममहावतां मोहपङ्कममाकुलाम् । कुतर्कप्राहसगूर्णां महादुःखोमिसन्तताम् ॥८६॥  
 मृत्युकुहोलसंयुक्तां कुट्टिजलनिभराम् । समाक्रन्दमहारावां विधर्मजववादिनीम् ॥८७॥  
 भवापगां मम स्तुत्वा नरकाम्बोधियासिर्निर्वा । परयताज्ञानि कल्पन्ते विप्रस्तेन समन्ततः ॥८८॥  
 वृथावोचत मा<sup>३</sup> किंकिदात्मानं मोहिता नृशम् । तमसः प्रकटे देशे कुतः स्थान रवी सति ॥८९॥  
 अभिप्रियत मे पुत्रं प्रथमं राज्यपालने । त्वरितं येन निर्विघ्नं प्रविशामि तपोवनम् ॥९०॥  
 द्वायुक्ते निश्चितं ज्ञात्वा महाराजस्य मन्त्रिणः । सामन्ताश्च परं शोकं प्राप्ता विनतमस्तकाः ॥९१॥  
 लिखन्तो भूमिमङ्गल्या वाष्पाकुलनिर्वाणनाः । षण्णेन निधर्मभाभूतास्तस्थुर्मानं समाश्रिताः ॥९२॥  
 प्राणेश निश्चितं श्रुत्वा<sup>४</sup> निघ्नन्ध्रतसंश्रयम् । एकीभूतं शुचं प्राप्तं सर्वमन्तःपुरं परम् ॥९३॥

दूसरे पुरुषको नियुक्त कर राजाज्ञाका पालन किया । सामन्त और मन्त्रीगण आकर तथा नम  
 स्कार कर यथास्थान बैठ गये ॥७६॥ उन्होंने राजासे कहा कि हे नाथ ! आज्ञा दीजिए, क्या  
 कार्य है ? तब राजाने विनयसे भरी सभासे कहा कि मैंने निश्चय किया है कि 'दीक्षा धारण  
 करूँ' ॥८०॥ तदनन्तर मन्त्रियों तथा गण्यमान-श्रेष्ठ राजाओंने कहा कि हे नाथ ! इस समय  
 आपकी ऐसी बुद्धिके उत्पन्न होनेमें क्या कारण है ? ॥८१॥ तब राजाने कहा कि अये ! यह  
 समस्त संसार सृष्टे वृणके समान निरन्तर मृत्युरूपी अग्निसे जल रहा है इस बातको आप  
 प्रत्यक्ष देख रहे हैं ॥८२॥ आज मैंने अभी-अभी मुनिराजके मुखसे जिनेन्द्रप्रणीत उस  
 शास्त्रका श्रवण किया है कि जिसे अव्यय जीव ग्रहण नहीं कर सकते, जो भव्य जीवोंके ग्रहण  
 करनेके योग्य है, सुर और असुर जिसे नमस्कार करते हैं, जो प्रशस्त है, मोक्षसुखको देनेवाला  
 है, तीन लोकोमें प्रकट है, सूक्ष्म है । विशुद्ध है तथा उपमासे रहित है ॥८३-८४॥ समस्त भावों  
 में मम्यत्त्व भाव ही उत्कृष्ट तथा निर्मल भाव है, यही मुक्तिका मार्ग है । गुरु चरणोंके प्रसादसे  
 आज मैंने उसे प्राप्त किया है ॥८५॥ जिसमें नाना जन्मरूपी बड़े-बड़े भँवर उठ रहे हैं, जो  
 मोहरूपी कोचइसे भरी है, कुतर्करूपी मगरमच्छोंसे व्याप्त है, महादुःखरूपी तरङ्गोंसे  
 युक्त है, मृत्युरूपी कल्लोहोंसे सहित है, मिथ्यात्वरूपी जलसे भरी है, जिसमें रुदनरूपी भय-  
 द्धर शब्द ही रहा है, जो विधर्म अर्थात् मिथ्याधर्मरूपी वेगसे बह रही है तथा नरकरूपी  
 समुद्रके पास जा रही है, ऐसी संसाररूपी नदीका स्मरण कर देखो । भयसे मेरे अङ्ग सब ओरसे  
 कम्पित हो रहे हैं ॥८६-८८॥ आप लोग मोहके चशीभूत हो व्यर्थ ही बुद्ध मत कहिए अर्थात्  
 मुझे रोकिए नहीं क्योंकि प्रकट स्थानमें सूर्यके विद्यमान रहते अन्धकारका निवास कैसे हो  
 सकता है ? ॥८९॥ आप लोग मेरे प्रथम पुत्रका शीघ्र ही राज्याभिषेक कीजिए जिससे मैं  
 निर्विघ्न हो तपोवन में प्रवेश कर सकूँ ॥९०॥ ऐसा कहनेपर महाराजका हृदय निश्चय जानकर  
 मन्त्री तथा सामन्तवर्ग परम शोकको प्राप्त हुए । सभीके मस्तक नीचे हो रहे ॥९१॥ वे अङ्गुली  
 से भूमिकी रोदने लगे, उनके नेत्र आसुओंसे व्याप्त हो गये और सभी क्षणभरमें प्रभाहीन हो  
 चुपचाप बैठ रहे ॥९२॥ 'प्राणनाथ निश्चिनरूपसे निघ्नन्ध्रतको धारण करनेवाले हैं' यह सुनकर

वनोदान् प्रस्तुतान्मुखा वाष्पप्रितलोचनाः । भूषणस्वनभूषिष्ठ हृद्दुः प्रमदङ्गिनाः ॥६४॥  
 पितर तादृश इष्टा भरतः प्रतिबुद्धवान् । अचिन्तयद्दहो कष्ट दुरवेष्टं स्नेहबन्धनम् ॥६५॥  
 अव्यापारेण तातस्य किमेतेन प्रबोधिनः । चिन्ता राग्यगता कास्य प्रमथ्यां कर्तुमिच्छतः ॥६६॥  
 आपृच्छया न मे किञ्चि कार्यमाशु विशाम्यहम् । तपोवनं महादुःखसंसारक्षयकारणम् ॥६७॥  
 देहेनापि किमेतेन न्यायिणेहेन नाशिता । बान्धवेषु तु कावस्था स्वकर्मफलभोगिषु ॥६८॥  
 जन्तुरेकक एवायं भवपादपसङ्कुले । मोहान्धो दुःखविपिने कुस्ते परिवर्तनम् ॥६९॥  
 ततः कलाकलापज्ञा भरतस्पेक्षितादिभिः । केकया चिन्तितं ज्ञात्वा दधाना शोकमुत्तमम् ॥७०॥  
 कथं मे न भवेन्नर्त्ता न च पुत्रो गुणालयः । एतयोर्वारणे कुर्वे कमुपायं सुनिश्चितम् ॥७१॥  
 एव चिन्तामुपेतायाः परम व्याकुला मनः । तस्या वरोऽभवत्चित्ते गन्वा च त्वरितं ततः ॥७२॥  
 भ्रात्या परमया इष्टा सावष्टंभं नराधिपम् । जगादार्थसिने स्थित्वा तेजसा पुरुषान्विता ॥७३॥  
 सर्वेषां भूभृतां नाथ पत्नीनां च पुरस्वया । मनीषितं ददामीति यदुक्ताहं प्रसादिना ॥७४॥  
 वर सम्प्रति तं यच्छ मया सत्यसमुज्ज्वला । दानेन तेऽखिल लोकं कीर्तिभ्रमति निर्मला ॥७५॥  
 ततो दशरथोऽबोचद् ब्रूहि त्व दक्षिणां प्रिये । प्रार्थयस्व यदिदं ते यच्छाम्ये वराशये ॥७६॥

समस्त अन्तःपुर एकत्रिन ही परम शोकको प्राप्त हुआ ॥६३॥ स्त्रियोने जो विनोद प्रारम्भ कर रग्ये थे उन्हें छोड़कर आँसुओंसे नेत्र भर लिये तथा आभूषणोंका अत्यधिक शब्द करती हुई वे रुदन करने लगी ॥६४॥

पिताको विरक्त देख भरत भी प्रतिबोधको प्राप्त हुआ । वह विचार करने लगा कि अहो ! यह स्नेहका बन्धन बड़ा कष्टकारी तथा दुःखसे छेदने योग्य है ॥६५॥ वह सोचने लगा कि सम्पद्धानको प्राप्त हुए पिताको इस अव्यापार अर्थान् नहीं करने योग्य चिन्तासे क्या प्रयोजन है ? जय ये दीक्षा ही लेना चाहते हैं तब इन्हें राज्यको चिन्ता क्यों होनी चाहिए ? ॥६६॥ मुझे किसीसे पूछनेकी कोई आवश्यकता नहीं है, मैं तो तोत्र दुःखसे भरे संसारके क्षयका कारण जो तपोवन है उसमें शीघ्र ही प्रवेश करता हूँ ॥६७॥ रोगोंके घरस्वरूप इस नरवर शरीरसे भी मुझे क्या प्रयोजन है ? फिर भाई-बन्धु जो अपने-अपने कर्मका फल भोग रहे हैं उनसे क्या प्रयोजन हो सकता है ? ॥६८॥ मोहसे अन्धा हुआ यह प्राणी अकेला ही जन्मरूपी वृक्षांसे व्याप्त इस दुःखदायी अटवीमें भ्रमण करता रहता है ॥६९॥

तदनन्तर कलाओंके कलापको जाननेवाली केकयी चेष्टाओंसे भरतका अभिप्राय ज्ञानकर अत्यधिक शोक करने लगी ॥७०॥ वह सोचने लगी कि भर्ता और गुणी पुत्र दोनों ही भेरे नहीं हो रहे हैं अर्थात् दोनों ही दीक्षा धारण करनेके लिए उद्यत हैं । इन दोनोंको रोकनेके लिए मैं किस निश्चित उपायका अवलम्बन करूँ ? ॥७१॥ इस प्रकार चिन्ताको प्राप्त तथा अत्यन्त व्याकुल हृदयको धारण करनेवाली केकयाके मनमें शीघ्र ही स्वीकृत वर माँगनेकी बात याद आ गई ॥७२॥ वह अपने विचारोंमें दृढ़ राजा दशरथके पास बड़ी प्रसन्नतासे गई और बहुत भारी तेजके साथ अर्द्धासनपर बैठकर बोली कि हे नाथ ! आपने उस समय प्रसन्न होकर समस्त राजाओं और पत्नियोंके सामने कहा था कि 'जो तू चाहेगी दूँगा' । सो हे नाथ ! इस समय वह वर मुझे दीजिए । सत्यधर्मके कारण उज्ज्वल तथा निर्मल जो आपकी कीर्ति है, वह दानके प्रभावसे समस्त संसारमें फैल रही है ॥७३-७५॥ तदनन्तर राजा दशरथने कहा कि हे प्रिये ! तू अपना अभिप्राय बता । हे उत्कृष्ट अभिप्रायको धारण करनेवाली प्रिये ! जो तुम्हें इष्ट हो सो



इयुने मुबती वाष्पमवोचञ्जातनिश्चया । कथ नाथ त्वया चेत कृत निष्पुरमीदृशम् ॥१०७॥  
 वद किं कृतमस्माभिर्वेनासि त्यक्नुमुद्यत । ननु जावितमायत्तमस्माक त्वयि पाथिव ॥१०८॥  
 अत्यन्त दुर्षरोद्दिष्टा प्रव्रज्या जिनसत्तमै । कथमाश्रयितु बुद्धिस्तामथ भवता कृता ॥१०९॥  
 देवेन्द्रसद्योभैरिद ते खलित वपु । कथ वक्ष्यति<sup>२</sup> जावेश भ्रामण्य विविध परम् ॥११०॥  
 एवमुक्तो जगादासी कान्ते सत्वरथ को भर । चान्द्रित वद कर्तव्य स्वय यास्वामि साम्प्रतम् ॥१११॥  
 इयुक्ता लिखती क्षोणीं प्रदेशिन्या नतानना । जगाद् नाथ पुत्राय मम राज्य प्रदायताम् ॥११२॥  
 ततो दशरथोऽवोचप्रिये कास्मिन्नपत्रपा । न्यामस्त्वया मयि न्यस्त साम्प्रत गृह्यतामसौ ॥११३॥  
 एवमस्तु शुच मुञ्च निर्कणोऽह त्वया कृत । किं वा कदाचिदुक्त ते मया जनितमन्यथा ॥११४॥  
 पद्म लक्ष्मणसयुक्तमाहूय च कृतानतिम् । ऊचे विनयसम्पत् किञ्चिद्दिगतमानस ॥११५॥  
 वत्स पूर्वं रणे घोरे कलापारगयानया । कृत केकपथा साधु सारथ्य मम दक्षया ॥११६॥  
 तदा तुष्टेन पत्नीना भूश्रुता च पुरो मया । मनापित प्रतिज्ञात नात न्यास वमेतया ॥११७॥  
 देहि पुत्रस्य मे राज्यमिति त याचतेऽपुना । किमप्याकृतमापन्ना निरपेक्षा मनस्विना ॥११८॥  
 प्रतिज्ञाय तदेदानीं ददाम्यस्यै न चेन्मतम् । प्रव्रज्यो भरत कुर्यात् ससारात्मन्यनोष्कित ॥११९॥  
 इय च पुत्रशोकेन कुर्यात् प्राणविवर्जनम् । भ्रमेच्च मम लोकेस्मिन्कीतिवितथोद्भवा ॥१२०॥

मोंग अभी देता हूँ ॥१२०६॥ राजाके इस प्रकार कहनेपर जिसने उसका निश्चय जान लिया था ऐसी केकयी ओसू डालती हुई बोली कि हे नाथ ! आपने ऐसा कठोर चित्त किस कारण किया है ? वताइए, हमलोगाने ऐसा कौन सा अपराध किया है कि जिससे आप हमलोगाको छोड़नेके लिए उद्यत हुए हैं । हे राजन् ! आप तो यह जानते ही हैं कि हमारा जीवन आपके आर्धान है ॥१०७-१०८॥ जिनेन्द्रभगवान्के द्वारा कही हुई दौक्षा अत्यन्त कठिन है उसे धारण करनेकी आज आपने बुद्धि क्यों की ? ॥१०९॥ हे प्राणवल्लभ ! आपका यह शरीर इन्द्रके समान भोंगासे पालित हुआ है सो अत्यन्त कठिन नाना प्रकारका मुनिपना कैसे धारण करेगा ? ॥११०॥

केकयीके इस प्रकार कहनेपर राजा दशरथने कहा कि प्रिये ! समर्थके लिए क्या भार है ? तू तो केवल अपना मनोरथ वता । जो मुझे करना है उसे मैं अथ अवश्य ही प्राप्त होऊँगा ॥१११॥ पतिके इस प्रकार कहनेपर प्रवेशिणीनामा अङ्गुलिसे पृथिवीको खोदती हुई केकयीने मुख नीचा कर कहा कि हे नाथ ! मेरे पुत्रके लिए राज्य प्रदान कीजिए ॥११२॥ तत्र दशरथने कहा कि हे प्रिये ! इसमें लज्जाकी क्या बात है ? तुमने अपनी धरोहर मेरे पास रख छोड़ी थी सो इस समय जैसा तुम चाहती हो वैसा ही हो । शोक छोड़ो, आज तुमने मुझे ऋण मुक्त कर दिया । क्या कभी मैंने तुम्हारा कहा अन्यथा किया है ? ॥११३-११४॥ उसी समय उन्होंने उत्तम लक्ष्मणसे युक्त नमस्कार करते हुए विनयी रामको बुलाकर कुछ खिन्न चित्तसे कहा ॥११५॥ कि हे वत्स ! कलाकी पारगामिनी इस चतुर केकयीने पहले भयकर युद्धमें अच्छी तरह मेरे सारथिका काम किया था ॥११६॥ उस समय सतुष्ट होकर मैंने पत्निया तथा राजाआके सामने प्रतिज्ञा की थी 'जो यह चाहे सो दूँ' । परन्तु उस समय इसने यह वर मेरे पास न्यासरूपमें रख छोड़ा था ॥११७॥ अब किसीकी अपेक्षा नहीं रखनेवाली यह तेजस्विनी किसी ग्रास अभिप्रायसे उस घरको इस प्रकार मोंग रही है कि 'मेरे पुत्रके लिए राज्य दाजिये' ॥११८॥ उस समय प्रतिज्ञा कर इस समय यदि इसके लिए इसकी इच्छानुरूप वर नहीं देता हूँ तो ससारके आलम्बनसे उन्मुक्त होकर भरत दौचा ले लेगा ॥११९॥ और यह पुत्रके शोकसे प्राण छोड़ देगी तथा असत्य व्यवहारके कारण उत्पन्न हुई मेरी अपकीर्ति इस ससारमें सर्वत्र

इयुक्ते मुञ्चती वाष्पमवोषज्ञातनिश्चया । कथ नाथ त्वया चेत कृत निष्पुरमादशम् ॥१००॥  
 चद्र किं कृतमस्माभिर्वेनासि त्वन्तुमुद्यत । ननु जावितमाद्यत्तमस्माक त्वयि पार्थिव ॥१०१॥  
 अत्यन्त दुर्धरोद्विष्टा प्रमज्या जिनसत्तमै । कथमाश्रयितु बुद्धिस्तामच भवता कृता ॥१०२॥  
 देवेन्द्रसदशौभगैरिद ते खलित वपु । कथ वक्ष्यति जावेश धामप्य विविध परम् ॥१०३॥  
 एवमुक्ते जगादासी कान्ते सत्त्वस्य को भर । वाञ्छित वद कर्तव्य स्वय मास्यामि साम्प्रतम् ॥१०४॥  
 इयुक्ता लिखतीं शोणीं प्रदेशिन्या नतानना । जगाद् नाथ पुत्राय मम राज्य प्रदीयताम् ॥१०५॥  
 ततो दशरथोऽत्रोचत्प्रिये कास्मिन्नपत्रपा । न्यासस्त्वया मयि न्यस्त साम्प्रत गृह्यतामसी ॥१०६॥  
 एवमस्तु शुच मुञ्च निरुणोऽह त्वया कृत । किं वा कदाचिदुक्त ते मया जनितमन्यथा ॥१०७॥  
 पद्म लक्ष्मणसयुक्तमाहूय च कृतानतिम् । ऊचे विनयसम्पन्न किञ्चिद्विगतमानस ॥१०८॥  
 वत्स पूर्व रणे घोरे कल्पापारगयानया । कृत कैकयया सधु सारथ्य मम दक्षया ॥१०९॥  
 तदा तुष्टेन पलाणा भूयता च पुरो मया । मनीषित प्रतिज्ञाय तात न्यास वमेतया ॥११०॥  
 देहि पुत्रस्य मे राज्यमिति त याचतेऽपुना । किमप्याकृतमाप-ना निरपेक्षा मनस्विना ॥१११॥  
 प्रतिज्ञाय तद्देवानीं ददाग्यस्यै न चेन्मतम् । प्रवज्यां भरत कुर्यात् ससारात्मनोऽङ्कित ॥११२॥  
 इय च पुत्रशोकेन कुर्यात् प्राणविवर्जनम् । अमेव च मम लोकेस्मि-नर्कीतिवितथोद्भव ॥११३॥

मोंग अभी देता हूँ ॥१०६॥ राजाके इस प्रकार कहनेपर जिसने उसका निश्चय जान लिया था ऐसी बेकथी ऑसू डालती हुई बोली कि हे नाथ ! आपने ऐसा कठोर चित्त किस कारण किया है ? बताइए, हमलोगाने ऐसा कौन सा अपराध किया है कि जिससे आप हमलोगाको छोड़नेके लिए उद्यत हुए हैं । हे राजन् ! आप तो यह जानते ही हैं कि हमारा जीवन आपके आधीन है ॥१०७-१०८॥ जिनेन्द्रभगवान्के द्वारा कही हुई दीक्षा अत्यन्त कठिन है उसे धारण करनेकी आज आपने बुद्धि क्यों की ? ॥१०९॥ हे प्राणवल्लभ ! आपका यह शरीर इन्द्रके समान भोगासे पालित हुआ है सो अत्यन्त कठिन नाना प्रकारका मुनिपना कैसे धारण करेगा ? ॥११०॥

कैकयीके इस प्रकार कहनेपर राजा दशरथने कहा कि प्रिये ! समर्थके लिए क्या मार है ? तू तो केवल अपना मनोरथ बता । जो मुझे करता है उसे मैं अब अवश्य ही प्राप्त होऊँगा ॥१११॥ पतिके इस प्रकार कहनेपर प्रदेशिनीनामा अङ्गुलिसे पृथिवीको रोंदती हुई कैकयीने मुरा नीचा कर कहा कि हे नाथ ! मेरे पुत्रके लिए राज्य प्रदान कीजिए ॥११२॥ तब दशरथने कहा कि हे प्रिये ! इसमें लज्जाकी क्या बात है ? तुमने अपनी धरोहर मेरे पास रख छोड़ी थी सो इस समय जैसा तुम चाहती हो वैसा ही हो । शोक छोड़ो, आज तुमने मुझे श्रृणु मुक्त कर दिया । क्या कभी मैंने तुम्हारा कहा अन्यथा किया है ? ॥११३-११४॥ उसी समय उन्होंने उत्तम लक्ष्मणासे युक्त नमस्कार करते हुए विनयी रामको बुलाकर कुछ रिक्त चित्तसे कहा ॥११५॥ कि हे वत्स ! कलाकी पारगामिनी इस चतुर कैकयीने पहले भयकर युद्धमें अच्छी तरह मेरे सारथिका काम किया था ॥११६॥ उस समय सतुष्ट होकर मैंने पत्निया तथा राजाआके सामने प्रतिज्ञा की थी 'जो यह चाहे सो दूँ' । परन्तु उस समय इसने यह वर मेरे पास न्यासरूपमें रख छोड़ा था ॥११७॥ अब किसोकी अपेक्षा नहीं रखनेवाली यह तेजस्विनी किसी खास अभिप्रायसे उस वरको इस प्रकार मोंग रही है कि 'मेरे पुत्रके लिए राज्य दाजिये' ॥११८॥ उस समय प्रतिज्ञा कर इस समय यदि इसके लिए इसकी इच्छानुरूप वर नहीं देता हूँ तो ससारके आलम्बनसे उ-मुक्त होकर भरत दीक्षा ले लेगा ॥११९॥ और यह पुत्रके शोकसे प्राण छोड़ देगी तथा असत्य व्यवहारके कारण उत्पन्न हुई मेरी अपकीर्ति इस ससारमें सर्वत्र

वनोदान् प्रस्तुताभ्युक्त्वा वाष्पपूरितलोचना । भूषणस्वनभूयिष्ठ करुदुः प्रमदाङ्गनाः ॥६५॥  
 वितर तादृश दृष्टा भरतः प्रतिवृद्धवान् । अचिन्तयद्दहो कष्ट दुःखैर्यं स्नेहवन्धनम् ॥६५॥  
 सव्यापारेण तातस्य किमेतेन प्रबोधिनः । चिन्ता राज्यगता कास्य प्रप्रययो कर्तुमिच्छतः ॥६६॥  
 जाष्टृक्षया न मे किञ्चिकार्यमाशु विशाम्यहम् । तपोवनं महादुःखसंसारक्षयकारणम् ॥६७॥  
 देहेनापि किमेतेन व्याधिगेहेन नाशिता । वान्धवेषु तु कावस्था स्वकर्मफलभोगेषु ॥६८॥  
 जन्मुरेकैक एवायं भवपादपसङ्कुले । मोहान्धो दुःखविपिने कुरुते परिवर्तनम् ॥६९॥  
 ततः कल्याणलापज्ञा भरतस्येद्विवादिभिः । केकया चिन्तित ज्ञावा दधाना शोकमुत्तमम् ॥७०॥  
 कथ मे न भवेन्नतां न च पुत्रो गुणालयः । एतयोर्वारणे कुर्वे कमुपाय मुनिश्चितम् ॥७१॥  
 एव चिन्तामुपेतायाः परम व्याकुला मनः । तस्या वरोऽभवच्चित्ते गवा च त्वरित ततः ॥७२॥  
 प्रीत्या परमया दृष्टा सावष्टम नराधिपम् । जगादार्थासने स्थिवा तेजसा पुह्णान्विता ॥७३॥  
 सर्वेषा भूभृतां नाथ पत्नीना च पुरस्वया । मर्मापितं ददामीति यदुक्ताहं प्रसादिना ॥७४॥  
 वर सम्प्रति त यच्छ मया सत्यममुञ्ज्वला । दानेन तेऽखिल लोक कर्तिभ्रमति निर्मला ॥७५॥  
 ततो दशरथोऽबोधद् ब्रूहि त्व दक्षिणां प्रिये । प्रार्थयस्व यदिष्ट ते यच्छाम्येव वराशये ॥७६॥

समस्त अन्तःपुर एकत्रित हो परम शोकको प्राप्त हुआ ॥६३॥ स्त्रियोने जो विनोद प्रारम्भ कर  
 रफो थे उन्हे छोड़कर औसुआसे नेत्र भर लिये तथा आभूषणाका अत्यधिक शब्द करती हुई वे  
 रदन करने लगीं ॥६४॥

पिताको विरक्त देख भरत भी प्रतिबोधको प्राप्त हुआ । वह विचार करने लगा कि  
 अहो ! यह स्नेहका बन्धन बड़ा कष्टकारी तथा दुःस्वप्ने छेदने योग्य है ॥६५॥ वह सोचने लगा  
 कि सम्यग्ज्ञानको प्राप्त हुए पिताको इस अव्यापार अर्थात् नहीं करने योग्य चिन्तासे क्या प्रयोजन  
 है ? जब ये दीक्षा ही लेना चाहते हैं तब इन्हें राज्याका चिन्ता क्यों होनी चाहिए ? ॥६६॥  
 मुझे किसीसे पूछनेकी कोई आवश्यकता नहीं है, मैं तो तीव्र दुःखसे भरे संसारके क्षयका कारण  
 जो तपोवन है उसमें शीघ्र ही प्रवेश करता हूँ ॥६७॥ रोगाके घरस्वरूप इस नरवर शरीरसे  
 भी मुझे क्या प्रयोजन है ? फिर भाई-बन्धु जो अपने-अपने कर्मका फल भोग रहे हैं उनसे क्या  
 प्रयोजन हो सकता है ? ॥६८॥ मोहसे अन्या हुआ यह प्राणी अकेला ही जन्मरूपी वृष्टांसे  
 व्याप्त इस दुःखदायी अटवीमें भ्रमण करता रहता है ॥६९॥

तदन्तर कलाओंके कलापको जाननेवाली केकयी चेष्टाओंसे भरतका अभिप्राय जानकर  
 अत्यधिक शोक करने लगी ॥७०॥ वह सोचने लगी कि भर्ता और गुणी पुत्र दोनों ही मेरे  
 नहीं हो रहे हैं अर्थात् दोनों ही दीक्षा धारण करनेके लिए उत्तम हैं । इन दोनोंको रोकनेके लिए  
 मैं किस निश्चित उपायका अवलम्बन करूँ ? ॥७१॥ इस प्रकार चिन्ताको प्राप्त तथा अत्यन्त  
 व्याकुल हृदयको धारण करनेवाली केकयाके मनमें शीघ्र ही स्वीकृत वर मोगनेकी बात याद  
 आ गई ॥७२॥ वह अपने विचारोंमें हठ राजा दशरथके पास बड़ी प्रसन्नतासे गई और बहुत  
 भारी तेजके साथ अर्द्धासनपर बैठकर बोली कि हे नाथ ! आपने उस समय प्रसन्न होकर समस्त  
 राजाओं और पत्नियोंके सामने कहा था कि 'जो तू चाहेगी दूँगा' । सो हे नाथ ! इस समय  
 वह वर मुझे दीजिए । सत्यधर्मके कारण उज्ज्वल तथा निर्मल जो आपकी कीर्ति है, वह दानके  
 प्रभावसे समस्त संसारमें फैल रही है ॥७३-७५॥ तदनन्तर राजा दशरथने कहा कि हे प्रिये !  
 तू अपना अभिप्राय बता । हे उच्छ्रित अभिप्रायको धारण करनेवाली प्रिये ! जो तुझे इष्ट हो सो

इशुने मुञ्चती वाष्पमयोचजातनिश्चया । कथ नाथ त्वया चेत् कृत निन्दुरमीदृशम् ॥१००॥  
 वद किं कृतमन्मामिषैनासि त्यन्तुमुद्यत । ननु जावितमायत्तैर्ममाक त्वयि पार्थिव ॥१००॥  
 अत्यन्त दुर्घरोहिण प्रमज्या जिनसत्तमै । कथमाश्रयितु बुद्धिस्तामथ भवता कृता ॥१०१॥  
 देवेन्द्रसदसौमंगिरिद ते लालित वपु । कथ वक्ष्यति जावेरा धामण्य विविध परम् ॥११०॥  
 एवमुक्ती जगादासी कान्ते सत्त्वत्य को भर । वाञ्छित वद कर्तव्य स्वय यास्यामि सप्तप्रतम् ॥१११॥  
 इयुक्ता लिखती शोणीं प्रदेक्षिष्या नतानना । जगाद् नाथ पुत्राय मम राज्य प्रदीयताम् ॥११२॥  
 ततो दशरथोऽज्ञोचद्विषये कास्मिन्नपप्रपा । न्यासस्त्वया मयि न्यस्त मान्प्रत गृह्यतामसौ ॥११३॥  
 एवमन्तु शुच मुञ्च निर्कणोऽह त्वया कृत । किं वा कदाचिदुक्त ते मया जनितमन्यया ॥११४॥  
 पद्म लक्षणसयुक्ताहूय च कृतानतिम् । ऊचे विनयसम्पन्न किञ्चिद्विगतमानस ॥११५॥  
 वत्स पूर्वं रणे घोरे कलापासगयानया । कृत वैरुषया साऽनु सारप्य मम दक्षया ॥११६॥  
 तदा तुष्टेन पत्न्या भूश्रुता च पुरो मया । मनीषित प्रतिज्ञात नात् न्यासवमेतया ॥११७॥  
 देहि पुत्रस्य मे राज्यमिति त याऽन्तेऽधुना । किमप्याकृतमापन्ता निरपेक्षा मनस्विना ॥११८॥  
 प्रतिज्ञाय तदेदानीं ददाम्यस्यै न चेन्मतम् । प्रवज्या भरत कुर्यात् ससारात्मनोऽभिक्त ॥११९॥  
 इय च पुत्रोऽकेन कुर्यात् प्राणविउर्जनम् । भ्रमेच मम लोकेस्मिन्कीर्तिर्वितयोद्धवा ॥१२०॥

मोंग अभी देता हूँ ॥१०६॥ राजाके इस प्रकार कहनेपर जिसने उसका निश्चय जान लिया था ऐसी केकयी औसू डालती हुई बोली कि हे नाथ ! आपने ऐसा कठोर चित्त किस कारण किया है ? वताइए, हमलोगाने ऐसा कौन सा अपराध किया है कि जिससे आप हमलोगाका छाड़नेके लिए इच्छत हुए हैं । हे राजन् ! आप तो यह जानते ही हैं कि हमारा जीवन आपके आधीन है ॥१०५-१०८॥ जिनेन्द्रभगवान्के द्वारा कही हुई दीक्षा अत्यन्त कठिन है उसे धारण करनेकी आज आपने बुद्धि क्यों की ? ॥१०६॥ हे प्राणवल्लभ ! आपका यह शरीर इन्द्रके समान भोगासे पालित हुआ है सो अत्यन्त कठिन नाना प्रकारका मुनिपना कैसे धारण करेगा ? ॥११०॥

केकयीके इस प्रकार कहनेपर राजा दशरथने कहा कि प्रिये ! समर्थके लिए क्या भार है ? तू तो केवल अपना मनोरथ वता । जो मुझे करना है उसे मैं अत्र अवश्य ही प्राप्त होऊँगा ॥१११॥ पतिके इस प्रकार कहनेपर प्रवेशिनीनामा अङ्गुलिसे पृथिवीको रोंदती हुई केकयीने मुख नीचा कर कहा कि हे नाथ ! मेरे पुत्रके लिए राज्य प्रदान कीजिए ॥११२॥ तत्र दशरथने कहा कि हे प्रिये ! इसमें लज्जाकी क्या बात है ? तुमने अपनी धरोहर मेरे पास रख छोडी थी सो इस समय जैसा तुम चाहती हो वैसा ही हो । शोक छोडो, आज तुमने मुझे ऋण मुक्त कर दिया । क्या कभी मैंने तुम्हारा कहा अन्यथा किया है ? ॥११३-११४॥ उसी समय उन्होंने उत्तम लक्षणोसे युक्त नमस्कार करते हुए विनयी रामको बुलाकर बुद्ध रिपन्न चित्तसे कहा ॥११५॥ कि हे वत्स ! कलाकी पापागामिनी इस चतुर केकयाने पहले भयकर युद्धमें अच्युती तरह मेरे सारथिका काम किया था ॥११६॥ उस समय सनुष्ट्र होकर मैंने पत्निया तथा राजाआके सामने प्रतिज्ञा की थी 'जो यह चाहे सो दूँ' । परन्तु उस समय इसने वह वर मेरे पास न्यासरूपमें रख छोडा था ॥११७॥ अत्र किसीकी अपेक्षा नहीं रखनेवाली यह तेजस्विनी किसी पास अभिप्रायसे उस वरको इस प्रकार माँग रही है कि 'मेरे पुत्रके लिए राज्य दानिये' ॥११८॥ उस समय प्रतिज्ञा कर इस समय यदि इसके लिए इसकी इच्छानुरूप वर नहीं देता हूँ तो ससारके आलम्बनसे उन्मुक्त होकर भरत दीक्षा ले लेगा ॥११९॥ और यह पुत्रके शोकसे प्राण छोड देगी तथा असत्य व्यवहारके कारण उत्पन्न हुई मेरी अपकीर्ति इस ससारमें सर्वत्र

मर्षादा न च नामेय यद्विहापाप्रज क्षमम् । राज्यलक्ष्मोवधूमङ्गं कर्नोयान् प्राप्स्यते सुतः ॥१२३॥  
 भरतस्यागिले राज्ये दत्ते स त्व मलक्ष्मणः । ऋ गच्छेत्परम तेजो दधानः पुत्रगोचरम् ॥१२४॥  
 तदह वत्स नो वेदि किं करोमीति पण्डित । अर्घ्यतदुत्सवेगोरुचिन्तावातान्तरस्थितः ॥१२५॥  
 ततः पद्मो जगादैव विभ्रद्विनयमुत्तमम् । सज्जावर्षातिचेतस्कः पादन्यस्तनिर्वाहणः ॥१२६॥  
 तात रक्षामनः सय त्वज्जानन्यरिचिन्तनम् । शक्रम्यापि धिया किं मे त्वय्यक्रीडिमुपागते ॥१२७॥  
 जानेन ननु पुत्रेण तन्मन्त्रं गृह्णिष्यामि । येन तौ पितरौ शोकं कनिष्ठमपि गच्छतः ॥१२८॥  
 पुनाति प्रायते चायं पितरं येन शोकतः । एतत्पुत्रस्य पुत्रव प्रवदन्ति मनीषिणः ॥१२९॥  
 सभानुराजनीं यावन्कथये वनेते तयोः । तावद्भव निहन्मीति<sup>३</sup> कटोरोकृतमानसः ॥१३०॥  
 सीधाद्वतरन्वेगाहोः कहाकारनादितः । निरदो भरतः पित्रा स्नेहविवलवचेतसा ॥१३१॥  
 उपविश्यागृह्णामि परिष्वज्य सचुम्बितम् । इति चाभिदुषे भूमौ तिष्ठामुर्वशगः पितुः ॥१३२॥  
 राज्यपाल्य वत्स त्वमहं यामि तपोवनम् । स जगौ न भजे राज्यं प्राप्नोष्य तु करोम्यहम् ॥१३३॥  
 भजे तावत्पुत्र पुत्र सार मनुजजन्मनः । नवेन वयमा कान्तः वृद्धः सम्प्रयोजिष्यसि ॥१३४॥  
 इत्युभेऽभिदधे तात किं मोहयसि मां वृथा । मृत्युः प्रतीक्षते नैव बाल तरुणमेव वा ॥१३५॥  
 गृहाश्रमे महाबलं ध्रुयते धर्मसञ्चयः । अशययः कुनरैः कर्तुं कुरुते राज्यसगतः ॥१३६॥

फैल जावेगी ॥१२०॥ साथ ही यह मर्षादा भी नहीं है कि समर्थ वड़े पुत्रको छोड़कर छोटे पुत्रको राज्यलक्ष्मोर्हर्षी खीका समागम प्राप्त कराया जाय ॥१२१॥ जब भरतके लिए समस्त राज्य दे दिया जायगा तब क्षत्रिय-सम्बन्धी परम तेजको धारण करनेवाले तुम लक्ष्मणके साथ कहाँ जाओगे ? यह मैं नहीं जानता हूँ । तुम पण्डित-निपुण पुरुष हो । अतः वताओ कि इस दुःसपूर्ण बहुत भारी चिन्ताको वातके मध्यमें स्थित रहनेवाला मैं क्या करूँ ? ॥१२२-१२३॥

तदनन्तर उत्तम अभिप्रायके कारण जिनका चित्त अतिशय प्रसन्न था और जो अपनी दृष्टि परों पर लगाये हुए थे ऐसे रामने उत्तम विनयको धारण करते हुए इस प्रकार कहा कि हे पिता जी ! आप अपने सत्य-व्रतकी रक्षा कीजिए और मेरी चिन्ता छोड़िए । यदि आप अपकीर्तिको प्राप्त होते हैं तो मुझे इन्द्रकी लक्ष्मीसे भी क्या प्रयोजन है ? ॥१२४-१२५॥ निश्चयसे उत्सन्न हुए तथा घरकी इच्छा रखनेवाले पुत्रको वही कार्य करना चाहिए कि जिससे माता-पिता किञ्चित् भी शोकको प्राप्त न हो ॥१२६॥ जो पिताको पवित्र करे अथवा शोकसे उमरी रक्षा करे वही पुत्रका पुत्रपना है, ऐसा विद्वान् लोग कहते हैं ॥१२७॥

इधर जब तक पिता-पुत्रके बीच सभाको अनुरक्त करनेवाली यह कथा चल रही थी तब तक मैं संसारको नष्ट करूँ ऐसा हृद्गनिश्चयकर भरत महलसे नीचे उतर पड़ा । यह देव लोग हाहाकार करने लगे । पिताने स्नेहसे दुःखी चित्त होकर उसे रोका । वह पिताने आज्ञाकारी था अतः रुककर मामने पृथिवीपर गड़ा होना चाहता था; परन्तु पिताने उसे गोदमें बैठकर उमका आलिङ्गन किया, चुम्बन किया और इस प्रकार कहा कि 'हे पुत्र ! तू राज्यका पालन कर । मैं तपोवनके लिए जा रहा हूँ । इसके उत्तरमें भरतने कहा कि मैं राज्यकी सेवा नहीं करूँगा, मैं तो शोक धारण कर रहा हूँ ॥१२८-१२९॥ यह सुनकर पिताने कहा कि हे पुत्र ! अभी तू नर्षान वयसे सुन्दर है अतः मनुष्य-जन्मका सारभूत जो सुख है उसकी उपासना कर । पीछे वृद्ध होनेपर दीक्षा धारण करना ॥१३०॥ पिताके इस प्रकार कहने पर भरतने कहा कि हे पिता जी ! मुझे व्यर्थ ही क्यों मोहित कर रहे हो । मृत्यु बालक अथवा तरुणकी प्रतीक्षा नहीं करती ॥१३१॥ इसके उत्तरमें पिताने कहा कि हे पुत्र ! गृहस्थाश्रममें भी तो धर्मका संचय सुना

इत्युक्तेऽभिदधे तात हृषीकेशवर्तिनः । कामक्रोधादिपूर्णस्य का मुक्तिर्गृहमेविनः ॥१३५॥  
 मुनीनां वक्ष्ये केषाञ्चिद्भवेनेतेन जायते । नैव मुक्तिस्ततो धर्मं कुरु स्वधन्यवद्विधनः ॥१३६॥  
 इत्युक्तेऽभिदधे तात यद्यप्येवं तथापि किम् । गृहधर्मं तस्मिन् हि मुख्यमात्रः सुनिश्चितः ॥१३७॥  
 अपि चानुक्रमान्मुक्तिर्न ममान्यस्य सोचिता । गरुडः किं पतद्गानां वेगेन सदशो भवेत् ॥१३८॥  
 कामार्थिणा पर दाहं मज्जन्तः कुम्भिता नराः । जिह्वाधमाङ्गकायाणि कुर्वन्ते न च निर्तृतिः ॥१३९॥  
 निश्चिप्यते हि कामाग्नी भोगसर्विधं यथा । नितरां बुद्धिमायाति तापवृत्स तथा तथा ॥१४०॥  
 भुक्त्वा भोगान् दुरुपादान् दुरत्नान् क्षणभंगिनः । नियतं दुर्गतिं याति पापात् परमदुःखदम् ॥१४१॥  
 अनुमन्यस्व मां तात नितान्तं जन्मभारकम् । करोमि विविनारण्ये तपोनिर्तृतिकारणम् ॥१४२॥  
 अथ गेहेऽपि लभ्येत श्रेयो जनक निर्तृतम् । एतमेव कुर्ये कस्मादस्य त्यागं महामते ॥१४३॥  
 तार्यते दुःखतो यस्मात्तपश्चाम्यनुमोदते । एतत्तातस्य तातत्वं प्रवदन्ति विचक्षणा ॥१४४॥  
 जीवित वनितामिष्टं पितर मातरं धनम् । भ्रातर च परित्यज्य याति जावोऽप्यमेकरुः ॥१४५॥  
 सुखि र देवभोगेऽपि यो न तृप्तो हताशकः । स कथं तृप्तिमागच्छेन्मनुष्यभवंभोगकैः ॥१४६॥  
 पिता तद्गर्भं श्रुत्वा हृष्टरोमा प्रमोदतः । जगाद् वस धन्योऽस्ति विबुद्धो भव्यकेसरी ॥१४७॥

जाता है । यद्यपि बुद्ध मनुष्य इसे नहीं कर सकते हैं पर जो उत्तम पुरुष हैं वे तो राज्य पाकर भी करते ही हैं ॥१३४॥ पिताके इस प्रकार कहने पर भरतने कहा कि हे पिता जी ! जो इन्द्रियोंके वशीभूत है तथा काम क्रोधादिसे परिपूर्ण है ऐसे गृहसेवी मनुष्यकी मुक्ति कैसे हो सकती है ? ॥१३५॥ इसके उत्तरमें पिताने कहा कि हे वत्स ! एक भवमं मुक्ति किन्हीं विरले ही मुनियोंको प्राप्त होती है । अधिकांश मुनियोंको मुक्ति नहीं मिलती । इसलिए धरम रहकर ही धर्म धारण करो ॥१३६॥ पिताके इस प्रकार कहनेपर भरतने कहा कि हे पिता जी ! यद्यपि ऐसा है तथापि गृहस्थाश्रमसे क्या प्रयोजन है ? क्योंकि उससे मुक्तिकी प्राप्ति नहीं होती यह बिलकुल निश्चित है ॥१३७॥ और दूसरी बात यह है कि मेरी मुक्ति अनुक्रमसे नहीं होगी । मैं तो इसी भवसे प्राप्त करूँगा । अनुक्रमसे होनेवाली मुक्ति दूसरे हीके योग्य है । क्या गरुड वेगसे अन्य पक्षियोंके समान होता है ? ॥१३८॥ बुद्ध मनुष्य कामरूपी ज्वालासे परम दाहको प्राप्त होने टुण जिह्वा और स्पर्शन इन्द्रिय-सम्बन्धी कार्य करते हैं पर उनसे उन्हें सन्तोष प्राप्त नहीं होता ॥१३९॥ कामरूपी अग्निमें ज्यो-ज्यो भोगरूपी घी डाला जाता है त्यों-त्यों वह अत्यन्त बुद्धिकी प्राप्त होती है और सन्तापको उत्पन्न करती है ॥१४०॥ प्रथम तो ये भोग बड़ी कठिनाईसे प्राप्त होते हैं फिर इनकी रक्षा करना कठिन है । ये देखते-देखते क्षण भरमें नष्ट हो जाते हैं और इनको भोगनेवाला व्यक्ति पापके कारण नियमसे परम दुःख देनेवाली दुर्गतिको प्राप्त होता है ॥१४१॥ हे पिता जी ! मैं संसारसे अत्यन्त भयभीत हो चुका हूँ इसलिए मुझे अनुमति दीजिए । जिससे मैं वनमें जाकर विधिपूर्वक मोक्षका कारण जो तप है उसे कर सकूँ ॥१४२॥ हे पिता जी ! यदि मोक्ष-सम्बन्धी सुख धरमे भी मिल सकता है तो फिर आप ही इसका त्याग क्यों कर रहे हैं ? आप तो महा बुद्धिमान् हैं ॥१४३॥ जो पुत्रको दुःखसे तारे और तपकी अनुमोदना करे यही तातका वातपता है ऐसा विद्वान् लोग कहते हैं ॥१४४॥ यह जीव आयु, स्त्री, मित्रादि इष्टजन, पिता, माता, धन और भाई आदिको छोड़कर अकेला ही जाता है ॥१४५॥ जो अभागा चिरकाल तक देवोंके भोग भोगने पर भी सन्तुष्ट नहीं हो सका वह मनुष्य भवके तुच्छ भोगोंसे किस प्रकार सन्तोष प्राप्त करेगा ? ॥१४६॥

पिता दशरथ भरतके उक्त वचन सुनकर गद्गद हो गये । हर्षसे उनके शरीरमें रोमाञ्च

तथापि धीर नो भङ्गः कदाचिप्रणयस्य मे । स्वया कृतो विनोतानां भवान् हि शिरसि स्थितः ॥१४८॥  
 शृगु सारव्यनुष्टेन मयाजी<sup>१</sup> जीवसशये । प्रतिज्ञात जनन्यास्ते वाञ्छित नृपसाक्षिकम् ॥१४९॥  
 ऋणता तच्चिर नांतमद्याह<sup>२</sup> 'यचितोऽनया । राज्य प्रयच्छ पुत्रस्य ममेति बहुमानत' ॥१५०॥  
 स त्व निष्कण्टकं तात राज्य शक्नोपम कुरु । असत्यसर्धा<sup>३</sup> कीर्तिर्मे माध्रमीक्षिखिलं जगत् ॥१५१॥  
 इय च तत्र शोकेन परमेणाभितापिता । माता श्रियेत सांख्येन सततं लालिताङ्गिका ॥१५२॥  
 न करोति यत पात पिप्रो शोकमहोदधो । अपत्यत्वमपत्यस्य तद्ददन्ति सुमेघसः ॥१५३॥  
 तत पद्मोऽपि तन्पाणी गृह्णा<sup>४</sup> न्वैवमभापत । प्रेमनिर्भरया परयन् दृष्ट्वा मधुरनिस्वन ॥१५४॥  
 तानेन भ्रातरक्त यत्कोऽन्यस्तद्गदितु क्षमः । नहि सागररत्नानामुपपत्तिः सरसो भवेत् ॥१५५॥  
 वयस्तपोऽधिकारे ते जायतेऽद्यापि नोचितम् । कुरु राज्य पितुः कीर्तिरद्यातु शशिनिर्मल ॥१५६॥  
 इय च शोऽरुताङ्गा माता यथाति पञ्चताम् । न तद्युक्त नहाभोगे नन्दने स्वादरो सति ॥१५७॥  
 पितु पालयितु सत्य व्यजामोऽपि वय तनुम् । कथ त्व तु कृत प्राज्ञ श्रिय न प्रतिपद्यसे ॥१५८॥  
 नद्या गिरावरण्ये वा तत्र वास करोम्यहम् । तत्र कश्चिन्न जानाति कुरु राज्य यथेप्सितम् ॥१५९॥  
 भाग सर्वं परित्यज्य न्यन्यामपि सश्रित<sup>५</sup> । न करोमि पृथिव्या ते काञ्चिपोडा गुणालय ॥१६०॥  
 माश्वमीर्दीर्घमुष्ण च सुञ्च तावद्वाद्वायम् । कुरु वाक्य पितुः क्षोणीं रञ्ज न्यायपरायण ॥१६१॥

निकल आये । वे बोले कि हे वत्स ! तू धन्य है, सचमुच ही तू प्रतिवोधको प्राप्त हुआ है और तू उत्तम भव्य है ॥१४८॥ फिर भी हे धीर ! तूने कभी भी मेरे स्नेहका भंग नहीं किया । तू विनयी मनुष्योंमें सर्वश्रेष्ठ है ॥१४९॥ सुन, एकवार युद्धमें मेरे प्राणोंका संशय उपस्थित हुआ था । उस समय तेरी माताने सारथिका कार्य कर मेरी रक्षा की थी । उससे सन्तुष्ट होकर मैंने अनेक राजाओंके समक्ष प्रतिज्ञा की थी कि 'यह जो कुछ चाहेगी वह दूँगा' ॥१४९॥ मेरे ऊपर इसका यह बहुत पुराना ऋण था सो इसने आज मुझसे माँगा है । इसने बड़े सम्मानके साथ कहा है कि मेरे पुत्रके लिए राज्य दीजिए ॥१५०॥ इसलिए हे पुत्र ! तू इन्द्रके समान यह निष्कण्टक राज्य कर जिससे असत्य प्रतिज्ञाके कारण मेरी अकीर्ति समस्त संसारमें भ्रमण नहीं करे ॥१५१॥ और जिसका शरीर मुरसे निरन्तर पालित हुआ है ऐसी यह तेरी माता इस महाशोकसे दुःखी होकर प्राण छोड़ देगी ॥१५२॥ अपत्य अर्थात् पुत्रका अपत्यपना यही है कि जो माता-पिताको शोकरूपी महासागरमें नहीं गिरने देता है ऐसा विद्वज्जन कहते हैं ॥१५३॥

तदनन्तर प्रेमपूर्ण दृष्टिसे देखते हुए रामने भी उसका हाथ पकड़कर मधुर शब्दोंमें हम प्रकार कहा कि हे भाई ! पिताजीने जो कहा है वह दूसरा कौन कह सकता है ? सो ठीक ही है क्योंकि समुद्रके रत्नोंकी उत्पत्ति सरोवरसे नहीं हो सकती ॥१५४-१५५॥ अभी तेरी अवस्था तप करनेके योग्य नहीं है । इसलिए राज्य कर जिससे पिताकी चन्द्रमाके समान निर्मल कीर्ति फैले ॥१५६॥ जिसका शरीर शोकसे सन्तप्त हो रहा है ऐसी यह तेरी माता तेरे समान भाग्यशाली पुत्रके रहते हुए यदि मरणको प्राप्त होती है तो यह ठीक नहीं होगा ॥१५७॥ पिताके सत्यकी रक्षा करनेके लिए हम शरीरको भी छोड़ सकते हैं । फिर तू बुद्धिमान् होकर भी लक्ष्मीको क्यों नहीं प्राप्त हो रहा है ? ॥१५८॥ मैं किसी नदीके किनारे पर्वत, अथवा धनमें वहाँ निवास करूँगा जहाँ कोई जान नहीं सकेगा इसलिए तू इन्द्रानुसार राज्य कर ॥१५९॥ हे गुणोने आलय ! मैं अपना सप भाग छोड़ माँगका ही आश्रय ले रहा हूँ । मैं पृथ्वी पर तुम्हें बुद्ध भी पीड़ा नहीं पहुँचाऊँगा ॥१६०॥ इसलिए लम्बी और गरम सांस मत ले, संसारका भय छोड़, पिताकी बात

१. युद्धे, मयाजी म० । २. प्राविनोऽनया म० । ३. अत्यमघान म० । ४. मद्रामेगं ए० । ५. भोग म० ।

इच्चाट्णा कुल श्रामद्भूपयामलत्रिभ्रमम् । अत्यन्तविपुल भ्रात शशा प्रहकुल यथा ॥१६२॥  
 भ्राजते प्रायमान सन् वावय त्विपुकस्य यत् । लब्धवर्णैरिदं भ्रातुभ्रात्र परिक्रातितम् ॥१६३॥  
 इयुक्त्वा भावत पादो शिरसा भूतलस्पृशा । पितु प्रणम्य तत्पारवर्णिर्गौतो लक्ष्मणान्वित ॥१६४॥  
 अत्रान्तरे नृपो मूर्छां सम्प्राप्ताऽपि न कनचिन् । ज्ञात स्तम्भसमायुक्तवपु पुस्तसमाकृति ॥१६५॥  
 स नृणं धनुरादाय गवा न वा च मातरम् । आपृच्छुय ता च गज्यामि तावदन्यमहीमिति ॥१६६॥  
 सखी व मूर्छया तस्या दुःखज्ञाननिवारणात् । क्षण कृत परिप्राप्तसज्ञा चास्त्राकुलेक्षणा ॥१६७॥  
 ऊचेऽपराजिता हा ख व म क प्रस्थितोऽसि माम् । कस्मात्स्यजनि सचेष्टं क्षिप्त्वा शोकमहोदधी ॥१६८॥  
 मनोरथशतै पुत्र ख प्राप्तो दुर्लभो मया । प्रारोह इव शाखाया मातुरालम्बन सुत ॥१६९॥  
 परिदेवममेव ता कुर्वन्ती हृदयङ्गमम् । जगाद् प्रणत पत्नी मातृभक्तिपरायण ॥१७०॥  
 अत्र मा गाद् विपाद त्व दक्षिणस्थामह दिशि । निरूप्य सश्रय योग्य नेष्यामि त्वा विसशयम् ॥१७१॥  
 तातेन पृथिवी दत्ता जननावरदानत । भरतायेति ते कर्णजाह नृममुपागतम् ॥१७२॥  
 अन्ते तस्या महारण्ये विन्ध्याद्री मलयेष्ववा । अन्यस्मिन् चाणवस्यान्ते परय मात कृत पदम् ॥१७३॥  
 मयि स्थिते समापेऽस्मिन् लोके भास्करसभते । आर्क्षधर्मयो कान्तिभरतेन्दोर्न जायते ॥१७४॥  
 सत प्ररदता माता जगादात्यन्तदुःखिता । पुत्र विनतमास्त्रिप्य स्नेहकातरलोचना ॥१७५॥

मान और न्यायमे तत्पर रहकर पृथ्वीकी रक्षा कर ॥१६१॥ हे भाई ! जिस प्रकार चन्द्रमा प्रह्लाके समूहको अलकृत करता है उसी प्रकार तू इच्चातुआके इस लक्ष्मीसम्पन्न, निर्मल एव अत्यन्त विशाल कुलको अलकृत कर ॥१६२॥ जो पिताके यत्नकी रक्षा करता हुआ देदीप्यमान होता है वही भाईका भाईपन है ऐसा विद्वानोंने कहा है ॥१६३॥ इतना कहकर राम पृथ्वीतलका स्पर्श करनेवाले शिरसे भात्रपूर्वक पिताके चरणामे प्रणाम कर लक्ष्मणके साथ उनके पाससे चले गये ॥१६४॥ इसी बीचमे यद्यपि राजा दशरथ मूर्छाको प्राप्त हो गये तो भी किसीको इसका पता नहीं चला क्याकि वे जिस रम्भासे टिककर बैठे हुए थे मूर्छाके समय भी पुतलेके समान उसी रम्भासे टिके बैठे रहे ॥१६५॥ राम शीघ्र ही धनुष उठा कर माताके पास गये और प्रणाम कर पूछने लगे कि मैं अन्य पृथ्वी अर्थात् देशान्तरको जाता हूँ ॥१६६॥ रामकी बात सुनकर माताकी मूर्च्छा आ गई सो मानो दुःखका ज्ञान रोककर उसने सखीका कार्य किया । तदनन्तर क्षणभरके बाद जब मूर्च्छा दूर हुई तथा चैतन्य प्राप्त हुआ तब आँखामे आँसु भरकर माता अपराजिता ( कौसल्या ) बोली कि हाय वत्स ! तू कहीं जा रहा है ? हे उत्तम चेष्टाके धारक पुत्र ! तू मुझे शोकरूपी महासागरमे डालकर क्यों छोड़ रहा है ? ॥१६७-१६८॥ हे पुत्र ! तू बड़ा दुर्लभ है, सैकड़ो मनोरथोंके घाद मैंने तुम्हे पाया है । जिस प्रकार शाखाका आलम्बन प्रारोह अर्थात् पाया होता है उसी प्रकार माताका आलम्बन पुत्र होता है ॥१६९॥ इस प्रकार हृदयमे चुभनेवाला विलाप करती हुई माताको प्रणाम कर मातृभक्तिमे तत्पर रहनेवाले रामने कहा कि माता ! तुम विपादको प्राप्त मत होओ । मैं दक्षिण दिशामे योग्य स्थान देखकर तुम्हें ले जाऊँगा । इसमें कुछ भी सशय नहीं है ॥१७०-१७१॥ 'पिताने, वे कथी माताको वरदान देनेके कारण पृथ्वी भरतके लिए दे दी है' यह समाचार निश्चित ही आपके कर्णमूल तक आ गया होगा ॥१७२॥ अब यह पृथिवी जहाँ समाप्त होती है उसके अन्तमे किसी महाअटवीमे, विन्ध्याचलमे, मलयपर्वतपर अथवा समुद्रके निकट किसी अन्य देशमे हे माता ! अपना स्थान बनाऊँगा ॥१७३॥ सूर्यके समान जब तक मैं इस देशके समीप ही रहूँगा तब तक भरतरूपी चन्द्रमाकी आज्ञा ऐश्वर्यसे सम्पन्न नहीं हो सकेगी ॥१७४॥

तदनन्तर जो अत्यन्त दुःखी थी और जिसके नेत्र स्नेहसे कातर हो उठे थे ऐसी माता



तनयाद्यैव मे गन्तुमुचितं भवतां समम् । कथं त्वाहमपश्यन्ता प्राणान् धारयितुं क्षमाम् ॥१७६॥  
 पिता नाथोऽथवा पुत्र कुलस्त्राणां प्रथी गति । पितातिशान्तकालो मे नाथो दीक्षासमुत्सव ॥१७७॥  
 जीवितस्य स्वमेवैव सांप्रत मेऽवलम्बनम् । स्वयापि रहिता माह वद गच्छामि का गतिम् ॥१७८॥  
 सोऽश्रोचदुर्लभं चित्तिरयन्तककंशा । भवत्या विपमा पद्मया गतु सा शक्यते कथम् ॥१७९॥  
 तस्माद्देवक एवाह विधाय सुखमाश्रयम् । यानेन केनचित्नेप्ये भवन्तीत्यजन कुत ॥१८०॥  
 यथा दृश्यामि ते मात पादाब्जे तथा ध्रुवम् । आगमित्यामि नेतु त्वा मुञ्च कार्यविचक्षणो ॥१८१॥  
 एवमुक्ते विमुक्त सन् परिसान्ध्य सुभाषितै । पुनश्च पितर प्राप्तप्रबोध प्रणिपत्य स ॥१८२॥  
 शप मातृजनं तन्वा परिसान्ध्य सुभाषितै । अविपण्णमहाचेता सर्वन्यायविचक्षण ॥१८३॥  
 भ्रातृन्परिष्वङ्गं कृत्वा सम्भाषण तथा । साताया सद्गुण प्राप्त प्रेमनिर्भरमानस ॥१८४॥  
 प्रिये स्व तिष्ठ चाग्रैव गच्छाम्यहं पुरान्तरम् । ततो जगद् साध्वी सा यत्र त्व तत्र चाप्यहम् ॥१८५॥  
 मन्त्रिणो नृपतां नु सर्वां परिवर्गं च सादरम् । आट्टच्छब्देकत्रैगैःसि भाषणाह्लापताकुल ॥१८६॥  
 प्रीत्या स्वर्धित भूय कृतालिङ्गनमादृतम् । मित्रवर्गं सवाण्यान पुनरुक्तं न्यवर्तयत् ॥१८७॥  
 स्त्रियेन चतुषा पश्यन् प्रधानान्वाजिवारणान् । निरगच्छपितुर्गोहान्मन्दरस्थिरमानस ॥१८८॥

रोती हुई, नम्राभूत पुत्रका आलिङ्गनकर बोली कि हे पुत्र ! मेरा आज ही तेरे साथ चला जाना उचित है क्योंकि तुझे निना देगे में प्राण धारण करनेके लिए कैसे समर्थ हो सकूंगी ? ॥१७७-१७६॥ पिता, पति अथवा पुत्र ये तीन ही कुलवती स्त्रियोंके आधार हैं । इनमें मेरे पिता तो अपना समय पूरा कर चुके हैं और पति शीघ्र लेनेके लिए उत्सुक हैं इस प्रकार इस समय मेरे जीवनका आधार एक तू ही है सो यदि तू भी मुझे छोड़ रहा है तो बता मैं किस दशाको प्राप्त होऊँ ॥१७७-१७८॥ यह सुन रामने कहा कि हे माता ! पृथ्वी पत्थरोंसे अत्यन्त कठोर है आप इस ऊँची-नीची पृथ्वीपर पैरोंसे किस प्रकार चल सकोगी ? ॥१७६॥ इसलिए मैं अभी अकेला ही जाता हूँ फिर मुखकारी कोई स्थान ठीककर किसी यानके द्वारा आपको वहाँ ले जाऊँगा अतः आपका ह्वाडा कैसे हुआ ? ॥१८०॥ हे माता ! मैं आपके चरणोंका स्पर्श कर कहता हूँ कि मैं आपका ले जानेके लिए अवश्य ही आऊँगा । हे कार्यके समझनेमें निपुण माता ! इस समय मुझे छोड़ दे ॥१८१॥ रामके ऐसा कहनेपर माताने उन्हें छोड़ दिया और अनेक हितकारी वचन कहकर उन्हें सान्त्वना दी । अतः तब पिता दशरथ प्रबोधको प्राप्त हो चुके थे इसलिए रामने पुनः पास जाकर उन्हें प्रणाम किया ॥१८२॥ अपराजितताके सिवाय अन्य माताओंको नमस्कार कर अनेक मधुर वचनोंसे उन्हें सान्त्वना दी, भाई उन्मुओंका आलिङ्गन कर उनके साथ मधुर सम्भाषण किया और तदनन्तर जिनका उद्गार हृदय निपादसे रहित था, तथा जो सर्व प्रकारके न्यायमें निपुण थे ऐसे राम हृदयको प्रेमसे भरकर सीताके महलमें पहुँचे ॥१८३-१८४॥ राम बोले—'कि हे प्रिये ! तुम यहीं पर रहो मैं दूसरे नगरको जाता हूँ' । तदनन्तर उक्त पतिव्रताने एक ही उद्गार दिया कि 'जहाँ आप रहेंगे वहीं मैं भी रहूँगी' ॥१८५॥

इसके पश्चात् रामने समस्त मन्त्रियोंसे, राजाओंसे तथा परिवारके अन्य लोगोंसे बड़े आदरके साथ पूछा । नगरमें जो बुद्धिमान् मनुष्य थे उनसे साथ बड़ी तत्परतासे वार्तालाप किया ॥१८६॥ इस समय प्रीतिवश बहुतसे मित्र इकट्ठे हो गये थे जो बार-बार आलिङ्गन कर रहे थे, आदरसे भरे हुए थे तथा जिनके नेत्र आँसुओंसे व्याप्त थे । रामने अनेक बार कहकर उन्हें वापिस लौटाया ॥१८७॥ तदनन्तर जिनका मन मेरे पर्यन्तके समान स्थिर था ऐसे राम,

१. त्व म० । २. परिगन्ता म० । ३. गता म०, गता ५०, ५० । ४. जानकीयन्त्रिस्तारिला चन्द्रभयाना म०, ब०, ६०, ५० एतु पुस्तकेषु इतमे 'प्रिये एव तिष्ठ' इत्यादिश्लोका नाम्नेन । ५. उद्गारोऽपि म० । ६. भयान्तर म० । ७. मान म० ।

आहुर्दीकन् द्रुत<sup>१</sup> चारु<sup>२</sup> सामन्ता वानिवारणम् । पद्मेन न गृहीतास्ते परमन्यायवेदिना ॥१८६॥  
 विदेशगमनोद्युक्तं दृष्ट्वा त जानकी भृशम् । श्रीमदशुक्मर्चिता रिद्धमपन्नलोचना ॥१९०॥  
 प्रणम्य श्वसुर श्वरूपावृच्छय च सुहृज्जनम् । निर्नीतानुययौ नाथ पौलोमाव मुराधिपम् ॥१९१॥  
 दृष्ट्वा ज्ञमुद्यत गन्तु स्नेहविभ्रतमानम् । लक्ष्मणोऽपिन्तयन् क्रोध बहुक्षयनलक्ष्मन्<sup>३</sup> ॥१९२॥  
 अन्यायमोदश कर्तुं कथं सानेन वादितम् । स्वार्थससक्तनिःयाश शिक् स्त्रैणमनपेक्षितम् ॥१९३॥  
 अहा महानुभावोऽयं ज्यायान् पुत्रपत्तम । मुनेरपादश स्वान्तं दुष्करं जातु जायते ॥१९४॥  
 किमद्यैव करोम्यन्या सृष्टिसुसृज्य दुर्नान्<sup>४</sup> । भरतस्य बलादाहा करोमि विमुग्धा श्रियम् ॥१९५॥  
 त्रिधानुरय<sup>५</sup> सामर्थ्यं भनतिमि चिरमूजितम् । निरुद्धं पादयोग्येष्टं करोमि श्रीसमुमुक्तम् ॥१९६॥  
 न युक्तमयथा चित्तं जातमोघानुगत्य मे । क्रोधं कराति मोहान्धनपि दीक्षाभुषाश्रितम् ॥१९७॥  
 किमनेन विचारेण कृतेनानुचिनेन मे । ज्येष्ठस्तातश्च जानाति साम्प्रतासाम्प्रतं बहु ॥१९८॥  
 मितकौर्तिसमुपत्तिविज्ञातन्या हि न पितु । तूष्णामेवानुगच्छामि ज्यायान्म साभुकारिणम् ॥१९९॥  
 प्रशमय्य स्वयं क्रोधमियादाय शरासनम् ।<sup>६</sup> प्रणम्यावृच्छय चारीषं जनं गुरुपुरस्सरम् ॥२००॥  
 महाचिन्तयमग्नौ मार्गधाम्यहृताकृति<sup>७</sup> । लक्ष्मीनिलवचस्कं पन्नस्वानुपदं ययौ ॥२०१॥  
 पितरौ परिवर्गेण सहितौ तनयान्वितौ । वर्षेव कुर्वाणौ तौ धाराभिर्नयनाम्भसा ॥२०२॥

मुख्य-मुरय घोडा तथा हाथियोंको स्नेह पूर्ण दृष्टिसे देखते हुए पिताके घरसे बाहर निकल पडे ॥१८६॥ यद्यपि सामन्त लोग शीघ्र ही सुन्दर घोडे और हाथी ले आये परन्तु परम न्यायके जाननेवाले रामने उन्हें ग्रहण नहीं किया ॥१८८॥ पतिको विदेश गमनके लिए उद्यत देख, जिसके शरीरपर सुन्दर बरुका आवरण था जिसके नेत्र फूले हुए कमलके समान थे ऐसी सीता भा, सास श्वसुरको प्रणामकर तथा मित्र जनांसे पूछकर, जिस प्रकार इन्द्राणी इन्द्रके पीछे चलती है उसी प्रकार रामके पीछे चलने लगी ॥१९०-१९१॥

तदनन्तर जिसका चित्त स्नेहसे भरा हुआ था ऐसे लक्ष्मणने जन रामको जाते हुए देखा तो नेत्रोंमें छलकते हुए क्रोधको धारण करता हुआ वह चिन्ता करने लगा कि अहो ! पिताजी ऐसा अन्याय क्यों करना चाहते हैं ? जिसमें निरन्तर स्वार्थ साधनकी ही आशा लगी रहती है तथा जिसमें दूसरेकी कुछ भी अपेक्षा नहीं की जाती ऐसे स्त्री स्वभानको विचार हो ॥१९२-१९३॥ अहो ! बड़े भाई राम महानुभाव हैं तथा पुरुषामें अत्यन्त श्रेष्ठ हैं । इनके समान दुर्लभ हृदय तो मुनिके भी जन्म कभी ही होता है ॥१९४॥ क्या दर्जनाको छोड़कर आज ही दसूरी सृष्टि रच डालें या बलपूर्वक लक्ष्मीको भरतसे विमुक्त कर दें ? ॥१९५॥ मैं आज विधाताकी बलवती सामर्थ्यको नष्ट करता हूँ और चरणामें पड़कर बडे भाईको लक्ष्मीमें उत्सुक करता हूँ ॥१९६॥ अथवा क्रोधके वशीभूत हो मुझे ऐसा विचार करना उचित नहीं है क्योंकि क्रोध दीक्षा धारण करनेवाले मुनिको भी मोहसे अन्धा बना देता है ॥१९७॥ मुझे इस अनुचित विचार करनेसे क्या प्रयोजन है ? क्योंकि बडे भाई राम तथा पिता ही 'यह कार्य उचित है अथवा अनुचित' यह अच्छी तरह जानते हैं ॥१९८॥ हमें पिताकी उज्ज्वल कीर्ति ही उत्पन्न करनी चाहिए अतः मैं चुपचाप उत्तम कार्य करनेवाले बडे भाईके ही साथ जाता हूँ ॥१९९॥ इस प्रकार लक्ष्मण स्वयं ही क्रोध शान्तकर, धनुष लेकर तथा पिता आदि समस्त जनोंसे पूछकर भी रामके पीछे चलने लगा । उस समय लक्ष्मण महा विनयसे सम्पन्न था, मार्गके योग्य उसकी चप भूया थी, तथा उसका वक्षस्थल लक्ष्मीका घर था ॥२००-२०१॥ उस समयका दृश्य बडा ही कर्मण्य था । सीताके साथ राम लक्ष्मण आगे बडे जाते थे और माता पिता परिवार तथा

१. चारुन् म० । २. सामन्तान् म० । ३. नवनक्षत्रणम् म० । ४. दुर्नानात् म० । ५. मथ म० । ६. प्रणम्य म० ।

परिसान्त्वयन्सृष्टिभ्या प्राप्ताभ्या निश्चय परम् । कृच्छ्राग्निवर्तितौ ताभ्या प्रणिपत्य पुन पुन ॥२०३॥  
 निवर्षमानवभूनां समूहेनान्यताविमौ । राजगेहाद्विनिष्क्रान्तो देवाविष सुरालयात् ॥२०४॥  
 वर्तते किमिदं मात वस्येदं मतमोदशम् । अभागेयं पुरी कष्टमथवा सकला महा ॥२०५॥  
 यामाप्तेन सम दुःखमेताभ्या सह गम्यते । महाशक्तविमौ कृच्छ्राद्धरणीधरगह्वरात् ॥२०६॥  
 पश्य शीता वध याति नान्धेनैरानुमोदिता । अस्या सुविहितं सर्वं पतिभ्राता करिष्यति ॥२०७॥  
 अहो परमधन्येयं जातका रूपशालिता । त्रिनयाशुकसवाता भर्तारं यानुगच्छति ॥२०८॥  
 अस्माकमपि नारीणामेवैव भवताद् गति । उदाहरणभूतेयं भर्तृदेवतयोपिताम् ॥२०९॥  
 पश्य मातरमुष्मिन्वा नेत्रामुष्णविताननाम् । एष लक्ष्म्यापरो गन्तुमुद्युक्तो ज्यायसा समम् ॥२१०॥  
 अहो प्रातिरहो भक्तिरहो शक्तिरहो क्षमा । अहो त्रिनयसम्भारं श्रीमताऽस्य विराजते ॥२११॥  
 भरतस्य किमाकृतं कृतं दशरथेन किम् । रामलक्ष्मणयोरेषा का मनोपा व्यवस्थिता ॥२१२॥  
 कालं कर्मेश्वरो देव स्वभाव पुरुष क्रिया । नियतिर्वा करोत्येव त्रिविधं क समाहितम् ॥२१३॥  
 वर्ततेऽनुचितं वाह कं गता स्थानदेवता । एवमादिस्तदा जज्ञे ध्वनिर्निसमूहत् ॥२१४॥  
 इमारभ्या सम गन्तुमुद्युक्ते सकले तने । पुरीं शून्यगृहा जाता नष्टाशेषसमुत्सवा ॥२१५॥  
 पुण्यप्रकरमपूर्णां समस्ता द्वारभूमय । पिच्छत्पद्व समातीता शोकपूर्णजनाश्रुभि ॥२१६॥

शेष दो पुत्राके साथ धारा प्रवाह ओसुओसे मानो वर्षा कर रहे थे ॥२०२॥ परन्तु दोनों भाई दृढ़ निश्चयको प्राप्त थे और सात्वना देनेमें अत्यन्त निपुण थे इसलिए उन्होंने बार-बार चरणोंमें गिरकर माता पिताको बड़ी कठिनाईसे बापिस किया ॥२०३॥ उन्होंने भाई-बन्धुओको बहुत लौटाया फिर भी वे लौटे नहीं । अन्तमें जिस प्रकार स्वर्गसे देव बाहर निकलते हैं उसी प्रकार दोनों भाई राजमहलसे बाहर निकले ॥२०४॥ 'हे माता ! यह क्या हो रहा है ? यह ऐसा किसका मत था ? अर्थात् किसके कहनेसे यह सब हुआ है ? यह नगरी बड़ी अभागिन है अथवा नगरी ही क्यों समस्त पृथिवी अभागिन है ॥२०५॥ अब हम इनके साथ ही चलेंगे, इनके साथ रहनेसे सब दुःख दूर हो जायगा । ये दोनों ही दुःख रूपी पर्वतकी गुहासे उद्धार करनेमें अत्यन्त समर्थ हैं ॥२०६॥ देखो, यह सीता वैंसी जा रही है ? पतिने इसे साथ चलने की अनुमति दे दी है । देवर इसका सन काम ठीक कर देगा ॥२०७॥ अहो ! जो त्रिनय रूपी वस्त्रसे आवृत होकर पतिके पीछे पीछे जा रही है ऐसी यह रूपवती जानकी अत्यन्त धन्य है—यही भाग्यवती है ॥२०८॥ हमारी स्त्रियोंकी भी ऐसी ही गति हो । यह पतिव्रता स्त्रियोंके लिए उदाहरण स्वरूप है ॥२०९॥ अहो ! देखो, जिसका मुरर ओंसुओसे भीग रहा है ऐसी माताको छोड़कर यह लक्ष्मण बड़े भाईके साथ जानेके लिए उद्यत हुआ है ॥२१०॥ अहो ! इस लक्ष्मण की प्रीति धन्य है, भक्ति धन्य है, शक्ति धन्य है, क्षमा धन्य है और त्रिनयका समूह धन्य है ॥२११॥ भरतका क्या अभिप्राय था ? और राजा दशरथने यह क्या कर दिया ? राम लक्ष्मण के भी यह कौन-सी बुद्धि उत्पन्न हुई है ? ॥२१२॥ यह सन काल, कर्म, ईश्वर, देव, स्वभाव, पुरुष, क्रिया अथवा नियति ही पर सकती है । ऐसी विचित्र चेष्टाको और दूसरा कौन कर सकता है ? ॥२१३॥ यह सन बड़ा अनुचित हो रहा है । इस स्थानके देवता कहाँ गये ? उस समय लोगारी भाइसे इस प्रकारके शब्द निकल रहे थे ॥२१४॥

उस समय समस्त लोग रामलक्ष्मणके साथ जानेके लिए उन्मुख हो रहे थे इसलिए नगरीके समस्त घर सूने हो गये थे तथा नगरीका समस्त उत्सव नष्ट हो गया था ॥२१५॥ समस्त घरके दरवाजाका जो भूमिथो पहले पृथ्वीसे व्याप रहता था वे उस समय शोकसे भरे

जनस्योत्सावमाणस्य चरुषिन्धो नरोत्तमैः । वांचये सागरस्वेत्र त्रिधाभ्यन्ते महाजिलै ॥२१७॥  
 भक्तिभिः पूज्यमानोऽपि सम्भाणसमुद्यतः । दाक्षिण्यपरम पद्मो मेने विषं पदे पदे ॥२१८॥  
 अम्यक्त इव त द्रष्टुमसमक्षप्रमादशम् । मन्दं मन्दांशुसहातो ररिरस्तमुपागमन् ॥२१९॥  
 रविणा दिव्रमस्थान्ते त्यक्ताः सर्वमरीचयः । २ ज्येष्ठचक्रधरेण सगपद्मो मुनिमिच्युता ॥२२०॥  
 दधाना परमं रागमुचिताम्रयोगिनी । अन्वियाय रवि सन्ध्या सीता दानरथि यथा ॥२२१॥  
 ततो विशेषज्ञानविध्वंसनविधायिना । रामप्रयोद्धवेनैव तमसा व्याततं जगन् ॥२२२॥  
 भनुप्रयानुकागस्य कनुं लोकरय वज्रनम् । ससीती तावरेशस्य स्थान प्राप्ती क्षपामुने ॥२२३॥  
 भवान्तकस्य भवनं नित्यालङ्कृतपूजितम् । चन्दनाम्भोऽनुलिप्तमर्धं धिद्वारं तुङ्गतोरणम् ॥२२४॥  
 दर्पणादिनिभूषं तत्ससीती सप्रदाक्षिणम् । प्रत्रिष्टानपेषो ती यथाविधि विशारदौ ॥२२५॥  
 तृतीये तु जनो द्वारे प्रतिहारेण रथ्यते । कर्मणा मोहनीयेन शिवमिच्छन् कुदष्टिगन् ॥२२६॥  
 स्थापयित्वा धनुर्वर्मं पुण्डरीकनिभेषणी । जिनेन्द्रचदन दृष्ट्वा ती वरां पतिमागतौ ॥२२७॥  
 मणिपीठस्थितं सौम्यं प्रलभितभुजद्वयम् । श्रावण्यमानुरोरस्कं व्यनभिरशोपलक्षणम् ॥२२८॥

मनुष्योंके आँसुओंसे पड़िहल अर्थान् कर्दम युक्त हो गई थीं ॥२१६॥ जिस प्रकार महापवनसे समुद्रकी लहरें चोभको प्राप्त होती हैं उसी प्रकार उत्तम मनुष्योंके द्वारा दूर हटाये गये लोगोंको पड़िक्त्यौ चोभको प्राप्त हो रही थीं ॥२१७॥ लोग पद-पदपर भक्तिवश रामकी पूजा करते थे और भक्तिवश उनके साथ वार्तालाप करनेके लिए उद्यत होते थे सो अत्यन्त सरल प्रकृतिके धारक राम उसे विभ्र मानते थे ॥२१८॥

तदनन्तर धीरे-धीरे जिसकी किरणें मन्द पड़ गई थीं ऐसा सूर्य अस्त हो गया सो ऐसा जान पड़ता था मानो वह इस अनुचित कार्यको देखनेके लिए असमर्थ होनेसे ही अस्त हो गया था ॥२१९॥ जिस प्रकार गुक्तिकी इच्छा करनेवाले प्रथम चक्रवर्ती भरतने सब सम्पत्तियाँ छोड़ दी थीं उसी प्रकार दिनके अन्तमें सूर्यने सब किरणें छोड़ दीं ॥२२०॥ जिस प्रकार परम राग अर्थात् उत्कृष्ट प्रेमको धारण करनेवाली तथा उचित-अम्र अर्थात् योग्य वस्त्रसे सुशोभित सीता रामके पीछे जा रही थी उसी प्रकार परम राग अर्थात् उत्कृष्ट लालिमा और उचित-अम्र अर्थात् अभ्यस्त आकाशके समागमको प्राप्त सन्ध्या सूर्यके पीछे जा रही थी ॥२२१॥ तदनन्तर वस्तुओंके विशेष ज्ञानको नष्ट करनेवाले अन्धकारसे समस्त जगत् व्याप्त हो गया सो ऐसा जान पड़ता था मानो रामके जानेसे उत्पन्न शोकसे ही व्याप्त हो गया हो ॥२२२॥ तत्पश्चान् पीछे चलनेके लिए उत्सुक मनुष्योंको घोरता देनेके लिए सीता सहित वे दोनों हुमार सार्वकालके समय अरहनाथ भगवान्के मन्दिरमें पहुँचे ॥२२३॥ संसारको नष्ट करनेवाले जिनेन्द्र भगवान्का वह मन्दिर सदा अलङ्कृत रहता था, लोग उसकी निरन्तर पूजा करते थे, चन्दनके जलसे वहाँकी भूमि लिप्त रहती थी, उसमें तीन दरवाजे थे, ऊँचा तोरण था और दर्पणादि मङ्गल द्रव्योंसे वह विभूषित रहता था । सो अतिशय युद्धिमान तथा अन्यकी अपेक्षासे गहित राम-लक्ष्मणने सीताके साथ प्रदक्षिणा देकर उस मन्दिरमें विधिपूर्वक प्रवेश किया ॥२२४-२२५॥ दो दरवाजे तक तो सब मनुष्य चले गये परन्तु तीसरे दरवाजे पर द्वारपालने उन्हें उस प्रकार रोक दिया जिस प्रकार की मोक्षकी इच्छा करनेवाले मिथ्यादृष्टिको मोहनीय कर्म रोक देता है ॥२२६॥ कमलके समान नेत्रोंको धारण करनेवाले राम-लक्ष्मण, अपने धनुष तथा कवच एक ओर रख भगवान्के दर्शन कर परम सन्तोषको प्राप्त हुए ॥२२७॥ तदनन्तर जो मणिमयी चौकीपर निराजमान थे, सौम्य थे, जिनकी दोनों भुजाएँ मोक्षकी ओर लटक रही थीं, जिनका वक्षस्थल धीवत्सके चिह्नसे

३. पट्टकयः । त्रिरुषिन्धो म० । २. प्रथमचक्रवर्तिना भरतेन । ३. ती + अरेशस्य = अरनाथस्य स्थान मन्दिरम् । ४. चन्दनाम्भोजलितम्

सम्पूर्णचन्द्रवदन विबुद्धकमलेक्षणम् । अस्मर्यमणिनिर्माणविश्वमष्टादश जिनम् ॥२२६॥  
 प्रणम्य सर्वभावेन समभ्यर्च्य च सादरौ । स्थितो तत्र विभात्रयां चिन्तयन्तो सुहृज्जनम् ॥२३०॥  
 तत्र तावुपितौ ज्ञावा मातर. पुत्रवत्सलो । एव चाप्याकुलाः स्नेहात् परिश्वस्य पुनः पुनः ॥२३१॥  
 पुत्राभ्यां सह सम्मन्य दर्शने वृत्तिवर्जिता । दोलारूढसमात्मानो<sup>१</sup> जग्मुदशरथं पुनः ॥२३२॥  
 सर्वात्सामेव शुद्धीनां मन शुद्धिः प्रशस्यते । अन्यथालिङ्ग्यतेऽपत्यमन्यथालिङ्ग्यते पतिः ॥२३३॥  
 ततस्ता गुणलावण्यरूपवेपमहोदया । जग्मुर्मधुरवादिन्य प्रिय मन्दरनिश्चयम् ॥२३४॥  
 कुलपोत निमज्जन्त प्रिय शोऽरुमहाणवे । सधारय ससौमित्रि विनिवर्तय राघवम् ॥२३५॥  
 सोऽगोचर ममायत्त जगद्वात्र विकारिकम् । प्रमाण चेन्मदीयेच्छा सुखमेवास्तु जन्तुषु ॥२३६॥  
 जन्ममुत्तुरान्याधैर्मास्म कश्चिद्विवाधयताम् । नाना कर्मस्थितौ त्वस्यां को नु शोचति कोविदः ॥२३७॥  
 पर्याप्तिर्नास्ति मृष्टानामिष्टाना दर्शनेषु वा । बान्धवाना सुखाना च जांवितास्य धनस्य च ॥२३८॥  
 असमासेन्द्रियसुख कदाचिन्स्थितिसत्तये । पत्नी वृत्तमिव त्यक्त्वा देह जन्तुर्गन्तिपति ॥२३९॥  
<sup>२</sup>पुत्रवत्यो भवत्योऽत्र निवर्तयत सन्तुतौ । <sup>३</sup>उपभुङ्क्ष्व सुविश्रब्धा पुत्रभोगोदयद्युतिम् ॥२४०॥  
 त्यक्त्वाऽप्यधिकारोऽह निवृत्त पापचेष्टितात् । भवादुग्र भय प्राप्त करोमि चरित मुनेः ॥२४१॥

सुशोभित था, जिनके समस्त लक्षण स्पष्ट दिखाई देते थे, जिनका मुख पूर्ण चन्द्रमाके समान था, जिनके नेत्र विकसित कमलके समान थे, और जिनके प्रतिविम्बकी रचना भुलाई नहीं जा सकती थी। ऐसे अठारहवें अरनाथ जिनेन्द्रको सर्व भाव अर्थात् मन वचन कायसे प्रणाम कर तथा उनकी पूजा कर आदरसे भरे हुए राम-लक्ष्मण मित्रजनोकी चिन्ता करते हुए रात्रिके समय उसी मन्दिरमें स्थित रहे ॥२२८-२३०॥ पुत्र वत्सल माताओंको जत्र पता चला कि राम-लक्ष्मण अर-जिनेन्द्रके मन्दिरमें ठहरे हैं तब वे तत्काल दौड़ी आईं। उस समय उनके नेत्र ओंसुआसे व्याप्त थे। उन्होंने बार-बार पुत्रोंका आलिङ्गन किया और बार-बार उनके साथ मन्त्रणा-सलाह की। उन्हें पुत्रोंको देखते-देखते वृत्ति ही नहीं होती थी और संकल्प-विकल्पके कारण उनकी आत्मा हिंडोले पर चढ़ी हुईके समान चञ्चल हो रही थी। अन्तमें वे पुनः राजा दशरथके पास चली गईं ॥२३१-२३२॥ आचार्य कहते हैं कि सब शुद्धियोंमें मनकी शुद्धि ही सबसे प्रशस्त है। श्री पुत्र और पति दोनोंका आलिङ्गन करती है परन्तु परिणाम जुदे-जुदे रहते हैं ॥२३३॥

तदनन्तर गुण लावण्यरूप वेप आदि महा अभ्युदयको धारण करनेवाली चारों मिष्टवादिनी रानियाँ मेरके समान निश्चल पतिके पास गईं और बोलीं कि हे बल्लभ ! शीकरूपी समुद्रमें डूबते हुए इस कुलरूपी जहाजको रोको और लक्ष्मण सहित रामको वापिस बुलाओ ॥२३४-२३५॥ इसके उत्तरमें राजा दशरथने कहा कि यह विकार रूप जगत् मेरे आधीन नहीं। मेरी इच्छानुसार यदि काम हो तो मैं तो चाहता हूँ कि समस्त प्राणियोंमें सदा सुख ही रहे ॥२३६॥ जन्म जरा और मरणरूपी व्याघ्रोंके द्वारा किसीका घात नहीं हो परन्तु कर्मोंकी स्थिति नाना प्रकारकी है अतः कौन विवेकी शोक करे ॥२३७॥ बान्धवादि क इष्ट पदार्थोंके देखनेमें किसीको वृत्ति नहीं है सांसारिक सुख, धन और जीवनके विषयमें भी किसीको सन्तोष नहीं है ॥२३८॥ कदाचित् इन्द्रिय सुखकी पूर्णता न हो और आयु समाप्त हो जावे तो यह प्राणी जिस प्रकार पक्षी एक वृत्तकी छोड़कर दूसरे वृत्तपर चला जाता है उसी प्रकार एक शरीरको छोड़कर दूसरे शरीरको प्राप्त हो जाता है ॥२३९॥ आप लोग पुत्रवाली हैं अर्थात् आपके पुत्र हैं इसलिए गुणी पुत्रोंको छोटा छो और निश्चिन्त होकर पुत्र भोगका अभ्युदय भोगो ॥२४०॥ मैं तो राज्यका अधिकार छोड़ चुका हूँ, इस पाप पूर्ण चेष्टासे निवृत्त हो गया हूँ और संसारसे तीव्र भय प्राप्त कर चुका

आर्याच्छुन्दः

एवं निश्चितचित्तो दशरथनृपतिस्समग्रमीदासोन्यम् ।  
भेजे रविसमतेजाः सखलकुम्भावाभिलाषदोषविमुक्तः ॥२४२॥

इत्यापे रविपेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते दशरथप्रव्रज्याभिधानं  
नामैकत्रिंशत्तमं पर्व ॥३१॥



हूँ इसलिए मुनिव्रत धारण करूँगा ॥२४१॥ इस प्रकार जिन्होंने अपने चित्तमें दृढ़ निश्चय कर लिया था, जो सूर्यके समान तेजस्वी थे और जो समस्त मिथ्याभावोंकी अभिलाषारूपी दोषसे रहित थे ऐसे राजा दशरथने सब प्रकारकी उदासीनता धारण कर ली ॥२४०॥

इस प्रकार आर्पणनामसे प्रसिद्ध रविपेणाचार्यके द्वारा कथित  
पद्मचरितमें राजा दशरथके वैराग्यका वर्णन करनेवाला  
इकतीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥३१॥

## द्वात्रिंशत्तमं पर्व

अथ तत्र क्षण नीत्वा निद्रान्तौ धृतकङ्कटो । अर्धरात्रे महाध्वान्ते निशब्दे शान्त्वमानये ॥१॥  
विधाय जानकी मध्ये जिन नत्वा सारुमुको । सुषेपो प्रस्थितौ दांपिः पश्यन्ताविव<sup>१</sup> कामिनः ॥२॥  
कश्चित् सुरतखिलाद्गो बाहुपञ्जरवर्तिनीम् । कृत्वा प्राणसमो निद्रामतिगाढा निषेवते ॥३॥  
<sup>२</sup>कृत्वापराधकः पूर्वं कौपिनो कश्चिद्गनाम् । प्रत्याययत्यलीकेन शपथेन पुनः पुनः ॥४॥  
अपरो मानमुत्सृज्य कान्तया स्मरतस्तया । कृतक कोपमायात सुवाग्भि परिस्ताव्यते ॥५॥  
सुरतायासखिलाद्गा देहे वस्यचिदङ्गना । लीला तत्त्वमिव प्राप्ता गाढा निद्रा निषेवते ॥६॥  
नवसङ्गमना कश्चिन्नाया विमुञ्जतिनीम् । कृच्छ्वात् प्रस्तावमानीय सम्भाषयति संमदी ॥७॥  
कस्मैचिन्पूर्वैगुण्य कथयत्यङ्गनाखिलम् । अपरो वेदयत्यस्मै विस्त्रय, कृतमाननः ॥८॥  
कश्चिन् परगृहं प्राप्ते धूर्तं सङ्कुचितान्गक । उद्भासयति मार्जारं वातायनकृतस्थितिम् ॥९॥  
अपर कृतसकेता मून्पदेवकुलान्तरे । कुलटामाकुलीभूतो मुहुस्तथाय वीक्षते ॥१०॥  
चिरादुपगत कश्चिद् घनरोपाभिसारिका । ताडयत्युत्तरीयेण बध्ना मेखलया खलम् ॥११॥  
अभिसारिकया सारुमन्य प्राप्य समागमम् । शुनोऽपि पदशब्देन याति प्रासमनुत्तमम् ॥१२॥

अथानन्तर राम लक्ष्मण, उस मन्दिरमें कहीं क्षण एक निद्रा लेकर अर्ध रात्रिके समय जब घोर अन्धकार फैल रहा था, लोगोका शब्द मिट गया था, और मनुष्य शान्त थे तब जिनेन्द्र भगवान्को नमस्कार कर कवच धारण कर तथा धनुष उठाकर चले । वे सीताको धीचमे करके चल रहे थे । दोनों ही उत्तम वेपके धारक थे तथा दीपक हाथमें लिये थे जिससे ऐसे जान पड़ते थे मानो मण्डपाडि स्थानोंमें कामी जनोंको देख ही रहे थे ॥१-२॥ उन्होंने देखा कि जिसका शरीर संभोगसे खिन्न हो रहा है ऐसा कोई पुरुष अपनी प्राणवल्लभाको भुजारूप पञ्जरके मध्य रखकर अत्यन्त गाढ निद्राका सेवन कर रहा है ॥३॥ अपराध करनेवाले किसी पुरुषने पहले तो अपनी स्त्रीको कुपित कर दिया और पीछे बार-बार मूठी शपथके द्वारा उसे विरवास दिला रहा है ॥४॥ कोई एक पुरुष कृत्रिम कोपकर जुदा बैठा है और उसको स्त्री कामसे संतप्त हो उसे प्रपुत्र च्यवनासे शान्त कर रही है ॥५॥ सुरतके अफसे जिसका शरीर खिन्न हो रहा था ऐसी कोई स्त्री पतिके शरीरमें इस तरह लीन होकर गाढ निद्रा ले रही है जिस तरह कि मानो वह पतिके साथ अभेदको ही प्राप्त हो चुकी हो ॥६॥ कोई एक पुरुष लज्जाके कारण विमुख बैठे नवोढा पत्नीको बड़ी कठिनाईसे अनुजल कर हर्ष पूर्वक उसके साथ वार्तालाप कर रहा है ॥७॥ कोई एक स्त्री अपने पतिके लिए उसके द्वारा पहले किये हुए सब अपराध बता रही है और वह उसे मनाकर निश्चिन्ततासे उसका समाधान कर रहा है ॥८॥ कोई एक धूर्त पुरुष अपने शरीरको संकुचित कर दूसरेके घर पहुँचा है और वहाँ भररोपमें बैठे खिलायको वहाँसे हटा रहा है ॥९॥ किसी पुरुषने अपनी कुलटा प्रेमिकाको सूते मठमें आनेका संकेत दिया था पर उसने आनेमें विलम्ब किया इसलिये वह व्याकुल हो बार-बार उठकर उसे देख रहा है ॥१०॥ किसी अभिसारिकाको प्रेमी देरसे आया था इसलिये वह अत्यन्त कुपित हो उसे मेखलासे धोंधकर उत्तरीय धरनेसे पीट रही है ॥११॥ और कोई एक मनुष्य अभिसारिकाके साथ समागम प्राप्तकर कुत्तेके

इति<sup>१</sup> नियुहदेशेषु मण्डपेषु च कामिनाम् । शृण्वन्ती<sup>२</sup> वीक्ष्यमाणी च<sup>३</sup> वृत्तान्तां जग्मतु शनैः ॥१३॥  
 अवहारेण<sup>४</sup> निर्गम्य पुरीतः पश्चिमेन तौ । आश्रितौ मार्गयोगेन दक्षिणीं दक्षिणां दिशम् ॥१४॥  
 त्रियामान्ते ततोऽप्यष्टे सामन्ता वेगवाहिनः । राघवेण सम गन्तुमुत्सुका भक्तिनिर्भराः ॥१५॥  
 यथाश्रुति परिज्ञाय बन्धुवञ्जनकारिणः । समोप रामदेवस्य प्रापुर्मन्थरगामिनः ॥१६॥  
 ते चक्षुर्गोचरीकृत्य समेतौ रामलक्ष्मणौ । महाविनयसम्पत्ताः पद्भ्यामेव कुटीरिरे ॥१७॥  
 प्रणिपत्य च भावेन सत्रम सत्रभापिरे । यावत्तापन्महासैन्यं तद्गवेपथ्यमाययौ ॥१८॥  
 प्रशशसुश्च ते सीतामिति निर्मलचेतसः । वयमस्याः प्रसादेन राजपुत्रौ समागताः ॥१९॥  
 भयास्पृष्टादि नैताभ्यां सममेपा सुमन्थरा । ततः कथमिव प्राप्यामेतौ पवनरहस्यौ ॥२०॥  
 इय नः सुसर्ता माता परमप्रियकारिणी । पृतस्याः सदशी नान्या प्रशस्तास्ति चिताविद् ॥२१॥  
 तौ सीतागतिचिन्तन्वान्मन्दमन्दं नरोत्तमौ । गन्वृतिमात्रमध्वान सुखयोगेन जन्मतुः ॥२२॥  
 सस्वाणि बहुरूपाणि पश्यन्ती चित्तिमण्डले । सरांसि कञ्जरम्याणि तस्त्रंशु गगनदृशः ॥२३॥  
 आपूर्यमाणपर्यन्तौ वेगवह्निराधिपे<sup>५</sup> । पनागमे नदीगङ्गाकालिन्दीप्रवहाविष ॥२४॥  
 प्रामत्वेदमट्टमेषु घोषेषु नगरेषु च । लोकेन पूजितौ वीरौ भोजनादिभिरुत्तमौ ॥२५॥  
 केचिद्रथ्वजलेदेन सामन्ता व्रजतोस्तयोः । पश्चाद्गङ्गापियन्वैव विवृत्ता ज्ञातनिश्चयाः ॥२६॥

भी पैरकी आहूट सुनकर अत्यधिक भयको प्राप्त हो रहा है ॥१२॥ इस प्रकार बाह्य भरोखों और मण्डपोंमें कामीजनोंको देखते तथा उनके वृत्तान्तको सुनते हुए राम और लक्ष्मण धीरे-धीरे जा रहे थे ॥१३॥ वे अतिशय सरल थे और वे नगरीके पश्चिम द्वारसे बाहर निकलकर आगे मिलनेवाले मार्गसे दक्षिण दिशाकी ओर चले गये ॥१४॥

इधर जब भक्तिसे भरे तथा रामके साथ जानेके लिए उत्सुक सामन्तोंको कानोंकान यह पता चला कि राम तो बन्धुजनोंको घोरता देकर चले गये हैं तब वे प्रातःकाल होनेके पूर्व जब कुछ-कुछ अँधेरा था वेगसे घोड़े दौड़ाकर मन्थर गतिसे चलनेवाले रामके पास जा पहुँचे ॥१५-१६॥ जब उन्हें साथ-साथ चलनेवाले राम-लक्ष्मण नेत्रोंसे दिखने लगे तब वे महाविनयसे युक्त ही पैदल ही चलने लगे ॥१७॥ सामन्त लोग भावपूर्वक प्रणामकर जब तक उनके साथ यथा क्रमसे यार्तालाप करते हैं तब तक उन्हें खोजनेके लिए बड़ी भारी सेना वहाँ आ पहुँची ॥१८॥ अत्यन्त निर्मल चित्तके धारक सामन्त लोग सीताकी इस प्रकार स्तुति करने लगे कि *एष, न्येण, दस्ये, पसादस्ये, ह्य, राजपुत्रोको, प्राप्त, कर, सके, है, ॥१९॥* यदि यह इनके साथ धीरे-धीरे नहीं चलती तो हम पवनके समान वेगशाली राजपुत्रोंको किस तरह प्राप्त कर सकते ? ॥२०॥ यह माता अत्यन्त सती तथा हम सबका बहुत भारी भला करनेवाली है । इस पृथिवीपर इसके समान दूसरी पवित्र स्त्री नहीं है ॥२१॥ मनुष्योंमें उत्तम रामलक्ष्मण सीताकी गतिकी ध्यानकर गन्वृति प्रमाण मार्गकी ही सुरसे तय कर पाते थे ॥२२॥ वे पृथिवीमण्डलपर नाना प्रकारके धान, कमलोंसे सुरोभित तालाब और गगनचुम्बी वृक्षोंको देखते हुए जा रहे थे ॥२३॥ जिस प्रकार वर्षा ऋतुमें गङ्गा और यमुनाके प्रवाह अनेक नदियोंसे मिलते रहते हैं वसी प्रकार राम-लक्ष्मणके पर्यन्त भाग भी अनेक वेगशाली राजाओंसे मिलते रहते थे ॥२४॥ प्राम, सेट, मंटव, घोष तथा नगरोंमें लोग उन उत्तम धीरोंका भोजनादि सामग्रियोंके द्वारा सत्कार करते थे ॥२५॥ दोनों ही भाई आगे बढ़ रहे थे, और सामन्त लोग मार्गके खेदसे दुःखी हो रहे थे । जब उन्हें इस बातका दृढ़ ज्ञान हो गया कि राम लक्ष्मण लीटनेवाले नहीं हैं तब वे उनसे कहे

१. गराद्प्रदेशेषु । २. वीक्ष्यमाणी म० । ३. वृत्तान्ती म० । ४. लघुनाद्वारेण, अवहारेण (?) म० । ५. वेगवह्निराधिपेः म० । ६. पनागमेनदी गंगा म० ।



अपरे प्रपया वैचित्र्यायान्ये भक्तितत्परः । अद्यज्ञं विनयात् पद्मयां दत्त्वा दुःखस्य मानसम् ॥२७॥  
 ततो हरिगजमातसङ्गुलारावभैरवाम् । <sup>१</sup>परियात्राटवीं प्राप्नो लीलया रामलक्ष्मणौ ॥२८॥  
 तस्यां बहुलशर्षयां तुल्यध्वान्तां महानगैः । निम्नज्ञां शर्वरीमेतौ शबराश्रितरोधसाम् ॥२९॥  
 तस्या रोधसि विश्रम्य नानास्वादुफलोचिते । <sup>२</sup>काश्चिन्मधवतयद्भूपान् पद्मः सुप्रतिबोधनः ॥३०॥  
 महतापि प्रयत्नेन निवृत्ता नापरे नृपाः । पद्मेन सहितं गन्तुं किल सञ्जातनिश्रयाः ॥३१॥  
 ततस्ते निम्नज्ञां दृष्ट्वा महानीलावभासिनीम् । चण्डेगोमिसघातनिमित्तोदरनिश्रिताम् ॥३२॥  
 उन्मग्नप्रबलप्राहकृतकल्योलसङ्गुलाम् । वीचीमालासमाघातनिपतन्मृदुरोधसम् ॥३३॥  
<sup>३</sup>महाद्रिकन्दरास्फालप्रतिसूक्तारनादिनीम् । उद्धर्तमानमीनांगस्फुरन्नास्करोचिपम् ॥३४॥  
 उद्धृतनमस्फूकारजातदूरगशीकराम् । उद्धृयमाननिश्चेषभयपूर्णपतत्रज्ञाम् ॥३५॥  
 सन्प्रासकम्पमानाज्ञा जगू राम सलक्ष्मणम् । समुत्तारय नायात्मानापि पद्मप्रसादवान् ॥३६॥  
 भृग्यानां भक्तिपूर्णां प्रसादं कुरु लक्ष्मण । देवि ते कुरुते वाक्यं जानकिं ब्रूहि लक्ष्मणम् ॥३७॥  
 पृथमादिगदन्तस्ते कृपणा बहु तां नदीम् । हुडौकिरे प्रसस्रुश्च नानाचेष्टाविधायिनः ॥३८॥  
 ततस्तान् राधशोभोवद्विश्रम्यो रोधसि स्थितः । अधुना विनिवर्तष्व भद्रा भीममिदं वनम् ॥३९॥  
 अस्माभिः सह युष्माकमियावैषैः सङ्गमः । एषा नद्यवधिर्जाता भवतीत्युक्त्यवर्जिता ॥४०॥

विना ही लौट गये ॥२६॥ भक्तिमें तत्पर रहनेवाले कितने ही सामान्त लज्जासे और कितने ही भयसे अपने मनको दुःखी कर धिनय पूर्वक उनके साथ पैदल चल रहे थे ॥२७॥

तदनन्तर रामलक्ष्मण लीला पूर्वक परियात्रा नामकी उस अटवीमें पहुँचे जो कि सिंह और हस्तिसमूहके उच शब्दोंसे भयंकर हो रही थी ॥२८॥ उस अटवीमें बड़े-बड़े वृक्षांसे कृष्ण-पत्तकी निशांके समान घोर अन्धकार व्याप्त था । वहाँ, जिसके किनारे अनेक शबर अर्थात् भील रहते थे ऐसी एक शर्वरी नामकी नदी थी । रामलक्ष्मण वहाँ पहुँचे ॥२९॥ नाना प्रकारके मयुर फलोंसे युक्त उस नदीके तटपर विश्रामकर रामने समझा-बुझाकर कितने ही राजाओंको तो घापिस लौटा दिया ॥३०॥ पर जिन्होंने रामके साथ जानेका निश्चय ही कर लिया था ऐसे अन्य अनेक राजा बहुत भारी प्रयत्न करनेपर भी नहीं लौटे ॥३१॥

तदनन्तर जो नदी महानील मणिके समान सुशोभित हो रही थी, अत्यन्त बेगशाली लहरोंके समूहसे जिसका मध्य भाग व्याप्त था, जो उपरते हुए बलवान् मगरमच्छोंकी टकरासे उत्पन्न होनेवाली तरङ्गोंसे व्याप्त थी, लहरोंके समूहका आघातपर जिसके कोमल किनारे उसीमें टूट-टूटकर गिर रहे थे, बड़े-बड़े पर्वतोंकी गुफाओंमें टकरानेसे जिसमें 'सू'सू' शब्द हो रहा था, जिसमें ऊपर तेरनेवाली मझलियोंके शरीरमें सूर्यकी किरणें प्रतिबिम्बित हो रहीं थी, जिसमें उदास करनेवाले नाकोंकी सूक्तारसे जलके छींटे दूर-दूर तक उड़ रहे थे, और जिसके पाससे समस्त पक्षी भयभीत होकर उड़ गये थे ऐसी उस नदीको देखकर सब सामन्तोंके शरीर भयसे फौंपने लगे । ये लक्ष्मण सहित रामसे बोले कि 'हे नाथ ! हम लोगोंको भी नदीसे पार उतारो । हे पद्म ! प्रसन्न होओ, हे लक्ष्मण ! भक्तिसे भरे हुए हम सेवकोंपर प्रसन्नता करो । हे देवि ! लक्ष्मण तुम्हारी यात मानते हैं इसलिए इनसे कह दो' ॥३२-३७॥ इत्यादि अनेक शब्दोंका उच्चारण करते हुए वे दोन सामन्त उस नदीमें धूढ़ पड़े तथा नाना प्रकारको चेष्टाएँ करते हुए मरने लगे ॥३८॥ तब किनारेपर निश्चिन्ततासे रुड़े हुए रामने उन सभसे कहा कि हे भले पुरुषों ! अब तुम लौट जाओ । यह वन बहुत भयङ्कर है ॥३९॥ हमलोगोंके साथ तुम्हारा

१. एषजामाटवी । २. काश्चिन्प्रातयद् म० । ३. मदीन्द्र म० । ४. [मान्ते सुत्कार म० ।  
 ५. निगनेषैव म० ।

तततेन भरतः स्वामी सर्वेषां वो निवेदितः । विसाध्नस्तासामावृत्य तिष्ठत क्षितिपालिनः ॥४१॥  
 तनस्ते पुनरिभूनुनीयास्माक भवान् गतिः । प्रसाद् कुरु मा त्वाचीरस्मान् कारुण्यकोविद् ॥४२॥  
 निराश्रयाकुलीभूता त्वयेव रहिता प्रजा । वद क शरण यातु सरशः कस्तवापरः ॥४३॥  
 व्याघ्रसिंहगर्जद्रादिव्यालब्रालममाकुले । वयामो भवता साधर्मरूप्ये न विना दिवि ॥४४॥  
 न नो निवर्तते चित्त प्रतियामः कथं व्रथम् । सहत्तरत्वमेतेन हृषीकेशचित्त ननु ॥४५॥  
 कि नो गृहेण कि भोगे, किं दारिः किं तु बन्धुभिः । भवता नररत्नेन मुक्तानां पापकर्मणाम् ॥४६॥  
 क्रीडास्वपि त्वया देव वञ्चिता स्मो न जानुचिन् । सम्मानेनाधुना क्रमाद्भ्राताऽस्यत्यन्तनिष्टुरः ॥४७॥  
 कोऽपराधो वदास्माक भवच्चरणरेणुना । परमां वृद्धिमेतानां भक्तानां भृत्यवत्सल ॥४८॥  
 अहो जानकि लक्ष्मीश रचितोऽय शिरोऽञ्जलिः । प्रसादयतमोश नः प्रसादो भवतोरयम् ॥४९॥  
 मीना लक्ष्मीधरश्रैवमुच्यमानौ सुदक्षिणी । तस्थुतु पद्मपादाप्रमथस्तनेत्री निरङ्गरो ॥५०॥  
 ततः पद्मो जगाद्देव भयतामुत्तरं स्फुटम् । निवर्तध्वमप भद्रा यातोऽस्मि सुखमाप्स्यताम् ॥५१॥  
 इयुव वा निरपेक्षी तौ परमोऽम्बाहमङ्गती । अत्रनेरतुरत्यन्तगम्भीरा तौ महापताम् ॥५२॥  
 उत्तार्णं सरित पद्मो जानकी विकचेक्षणाम् । करेण सुखमादाय पश्चिनीमिव दिग्गजः ॥५३॥  
 अम्भोविहारविजानबुधयो सा तयोधुनी । नाभिदध्नी बभूवोर्द्धा क्रीडामाचरतोश्चिरम् ॥५४॥

इतना ही समागम था । अब हमारे और तुम्हारे बीचमें यह नदी सीमा बन गई है इसलिए उत्सुकतासे रहित होओ ॥४०॥ पितामहे तुम सबके लिए भरतको राजा बनाया है सो तुम सब निर्भय होकर उसीके शरणमें रहो ॥४१॥

तदनन्तर उन्होंने फिर कहा कि हे नाथ ! हमारी गति तो आप ही हैं इसलिए हे दयानिपुण ! प्रसाद करो और हमलोगोंको नहीं छोड़ो ॥४२॥ तुम्हारे बिना यह प्रजा निराधार होकर व्याकुल हो रही है आप ही कहो किसकी शरणमें जावे ? आपके समान दूसरा हे ही कौन ? ॥४३॥ हम आपके साथ व्याघ्र, सिंह, गजेन्द्र आदि दुष्ट जीवोंके समूहसे भरे हुए वनमें रह सकते हैं पर आपके बिना स्वर्गमें भी नहीं रहना चाहते ॥४४॥ हमारा चित्त ही नहीं लीटता है फिर हम कैसे लौटें ? यह चित्त ही तो इन्द्रियोंमें प्रधान है ॥४५॥ जर आप जैसे नर-रत्न हमें छोड़ रहे हैं तब हम पापी जीवोंको घरसे क्या प्रयोजन है ? भोगोंसे क्या मतलब है ? स्त्रियोंसे क्या अर्थ है ? और बन्धुओंकी क्या आवश्यकता है ? ॥४६॥ हे देव ! क्रीडाओंमें भी कभी आपने हम लोगोंको सम्मानसे वञ्चित नहीं किया फिर इस समय अत्यन्त निष्टुर क्यों हो रहे हो ? ॥४७॥ हे भृत्यवत्सल ! हमलोग आपके चरणोंकी धूलसे ही परम वृद्धिको प्राप्त हुए हैं । बताइये, हमारा क्या अपराध है ? ॥४८॥ रामसे इतना कहकर उन्होंने सीता और लक्ष्मणको भी संबोधित करते हुए कहा कि हे जानकि ! हे लक्ष्मण ! मैं आप दोनोंके लिए हाथ जोड़कर मस्तकपर लगता हूँ आप हमारे विषयमें स्वामीको प्रसन्न कीजिए क्योंकि ये आप दोनोंपर प्रसन्न हैं—आपकी बात मानते हैं ॥४९॥ लोग सीता तथा लक्ष्मणसे इस प्रकार कह रहे थे और अत्यन्त सरल प्रकृतिके धारक वे दोनों रामके चरणकमलोंके आगे दृष्टि लगाये हुए चुपचाप पड़े थे—‘क्या उत्तर दिया जाय’ यह उन्हें सूझ नहीं पड़ता था ॥५०॥

तदनन्तर रामने कहा कि हे भद्रपुरुषो ! आप लोगोंके लिए यही एक स्पष्ट उत्तर है कि अब आप यहाँसे लौट जाइये, मैं जाता हूँ, आप लोग अपने घर सुखसे रहें ॥५१॥ इतना कहकर किसीकी अपेक्षा नहीं करनेवाले दोनों भाई बड़े भारी उत्साहसे उस अतिशय गहरी महा नदीमें उतर पड़े ॥५२॥ जिस प्रकार दिग्गज अपने कर (सूँड़) में कमलिनीको लेकर तैरता है उसी प्रकार राम विकसित नेत्रोंवाली सीताको हाथमें लेकर नदीकी पार कर रहे थे ॥५३॥ दोनों ही

तदातिशोभते सीता पद्महस्तवलक्षिता । सुर्धारा धीरिवोचुर्नखतपत्रगृहस्थिता ॥५५॥  
 पारगः सीतया सार्धं लक्ष्मणेन च स जगत् । वृक्षैरन्तर्धिमायातश्चेतस्तंभनविग्रहः ॥५६॥  
 विप्रलापं ततः कृत्वा महान्त साश्रुलोचनाः । भवनाभिमुत्तीभूताः केचित्कृच्छ्रेण भूभुतः ॥५७॥  
 तदाशान्धस्तनेप्रास्तु केचिपुंस्तमया इव । तस्थुः प्राच्यापरे मूर्त्ता निपेयुर्धर्यातले ॥५८॥  
 त्रियोध्य केचिद्रोचुर्द्विक् संसारमसारकम् । धिग्भोगान्भोगीर्भोगानान् भङ्गुरान्भक्तिभाविनः ॥५९॥  
 ईदृशामपि दूरानां यथावस्थेयमीदृशी । तत्र ग्रहणमस्त्रासु किमेरण्डप्रकम्पु ॥६०॥  
 विभोगमरणव्याधिनराभ्यसनभाननम् । अलबुद्बुद्दानरसारं कृतघ्नं चिक् शरीरकम् ॥६१॥  
 भाग्यवन्तो महासत्त्वास्ते नराः श्लाघ्यचेष्टिताः । कपिभ्रूभङ्गुरां लक्ष्मीं ये तिरस्कृत्य दीक्षिताः ॥६२॥  
 इति निर्वेदमापन्ना यहवो नरसत्तमाः । प्रमत्तयाभिमुत्तीभूता पद्मसुस्तत्र रोषिता ॥६३॥  
 अथेन्द्राक्षरिरे तुवं विशालं शुभमालयम् । परिवीतमतिरयाममहागोकहमालया ॥६४॥  
 अनुसल्युश्च तं नानापुत्रजातिसमाकुलम् । मकरन्दरसास्वादगुञ्जसम्भ्रान्तपदूपदम् ॥६५॥  
 द्रशुश्च विधिकेपुं देशेषु समवस्थिताम् । साधून् स्वाध्यायसंभक्तमानसान् पुरुतेजसः ॥६६॥  
 भ्रमेण तासामस्यन्तः शनैर्मस्तकपाणयः । विविशुजिननाथस्य भवतं भृशमुञ्जलम् ॥६७॥  
 रम्येष्वदिनितगेषु काननेषु सरित्सु च । तत्र काले मदी प्रायो भूपितासीजिनालयैः ॥६८॥

जल-श्रीडाके ज्ञानमें मिपुग थे अतः चिरकाल तक उत्तम श्रीडा करते हुए जा रहे थे । उनके लिए वह नदी नाभि प्रमाण गहरी हो गई थी ॥५२॥ उस समय रामकी हृद्येलीपर स्थित धैर्यशालिनी सीता ऐसी सुशोभित हो रही थी मानो ऊँचे उठे हुए कमलरूपी घरमें स्थित लक्ष्मी ही हो ॥५५॥ इस प्रकार जिनका शरीर चित्तको रोकनेवाला था ऐसे राम सीता और लक्ष्मणके साथ नदीको पारकर जगभरमें वृक्षांसे अन्वर्हित हो गये ॥५६॥

तदनन्तर जिनके नेत्रांसे आँसू भर रहे थे ऐसे कितने ही राजा बहुत भारी विलाप कर अपने भवनकी ओर उन्मुख हुए ॥५७॥ कितने ही लोग उसी दिशामें नेत्र लगाये हुए मिट्टी आदि के पुतलोंके समान खड़े रहे । कितने ही मूर्च्छित होकर पृथिवीपर गिर पड़े ॥५८॥ और कितने ही प्रबोधकी प्राप्त होकर कहने लगे कि इस असार संसारको धिक्कार है तथा सोंपके शरीरके समान भय उत्पन्न करनेवाले नरवर भोगोंको धिक्कार है ॥५९॥ जहाँ इन जैसे शूर वीरोंकी भी यह अवस्था है वहाँ परण्डके समान निःसार हमलोगोंकी तो गिनती ही क्या है ? ॥६०॥ वियोग, मरण, व्याधि और जरा आदि अनेक कष्टोंके पात्र तथा जलके बबूलेके समान निःसार इस कृतघ्न शरीरको धिक्कार है ॥६१॥ उत्तम चेष्टाके धारक जो मनुष्य वानरकी भाँड़ेके समान पद्मल लक्ष्मीको छोड़कर दीक्षित हो गये हैं वे महाशक्तिके धारक भाग्यवान् हैं ॥६२॥ इस प्रकार वैराग्यको प्राप्त हुए अनेक उत्तम मनुष्य दीक्षा लेनेके सन्मुख हो नदीके उभी तटपर घूमने लगे ॥६३॥

तदनन्तर उन्होंने दूरे भरे वृक्षांकी पट्टितसे घिरा हुआ एक ऊँचा, विशाल तथा शुभ मन्दिर देखा ॥६४॥ मन्दिरका यह स्थान नाना प्रकारके पुष्पोंकी जातियोंसे व्याप्त था तथा मकरन्द रसके आस्वादासे गूँजते हुए भ्रमर वहाँ धमण कर रहे थे ॥६५॥ उन लोगोंने वहाँ एकान्त स्थानोंमें बैठे हुए, स्वाध्यायमें लीन तथा विशाल तेजके धारक मुनियोंकी देखा ॥६६॥ मलकपर अञ्जलि दायकर सब लोगोंने उन्हें धीरे-धीरे यथा क्रमसे नमस्कार किया । तदनन्तर अत्यन्त उज्ज्वल जिनमन्दिरमें प्रवेश किया ॥६७॥ उस समय भूमि प्रायः कर पर्वतोंके मुन्दर नितम्बोंपर, यनोंमें तथा नदियोंके तटोंपर बने हुए जिनमन्दिरोंसे विभूषित थी ॥६८॥

तत्र कृत्वा नमस्कारं जिनानां शुभ्रभावनाः । रत्नसम्भवगम्भीर सत्यतेन्द्रं हुर्वाकिरे ॥६४॥  
 प्रणम्य शिरसा तस्य सनेगभरवाहिनः<sup>२</sup> । नाघोत्तारय सत्सारदस्मादिति यथापिरे ॥७०॥  
 सत्यकेतुगर्णाशेन तथास्त्विति कृतध्वनौ । जग्मुस्ते परम तोषं निर्गताः स्मो भवादिति ॥७१॥  
<sup>३</sup>विदग्धो विजयो मेरुः क्रूरः संप्रामलोलुपः । श्रीनागदमनो धीरः शठः शत्रुदमो धरः ॥७२॥  
 विनोदः कण्टकः सत्यः कठोरः प्रियवर्धनः । एवमगदा नृपा धर्मं नैर्प्रन्वयं समशिक्षियन् ॥७३॥  
 साधनानि भटास्तेषां गृहीत्वा नगरां गताः । द्रुतमर्पयितुं दीनाः पुत्रादीनां त्रपान्विताः<sup>४</sup> ॥७४॥  
 अणुत्रतानि सगुह्यं केचित्प्रियमधारिणः । आराधयितुमुद्युक्ता बोधिवुद्धिविभूषणा ॥७५॥  
 सम्यग्दर्शनमात्रेण सन्तोषमपरे गताः । श्रुत्वातिथिमलं धर्मं जिनानां जितजन्मनाम् ॥७६॥  
 सामन्तैर्बहुभिर्गं वा भरताथ निवेदितः । वृत्तान्तो सुस्थितश्चायं ध्यायन् किमपि दु खितः ॥७७॥  
 अधानरण्यराजस्य<sup>५</sup> तनयः सुप्रबोधनः । राज्याभिरिद्वनं कृत्वा भरतस्य सुचेतसः ॥७८॥  
 किञ्चिदपत्रवियोगेन सन्तप्तं चित्तमुद्रहन् । शोकाग्मोदितिमग्नेन परिवर्गेण वीक्षितः ॥७९॥  
 कृतमानवतमप्युच्चैर्विलपस समाकुप्यम् । अन्तःपुरं परित्यज्य नगरीतो विनिर्गतः ॥८०॥  
 गुरुपूजां परां कृत्वा द्वासप्ततिनृपान्वितः । सर्वभूतहितस्यान्ते शिष्ये धमणश्रिया ॥८१॥  
 अधान्येकविहारस्य शुभ ध्यानमभीप्सतः । मानसं पुत्रशोकैर्न कल्प तस्य जन्यते ॥८२॥  
 अन्यदा योगमाश्रित्य दध्यावेवं विचक्षणः । धिक् स्नेहं भवदुःखानां मूलं वन्धमिम मम ॥८३॥

वहाँ लज्जल भायनाको धारण करनेवाले सब लोग जिनेन्द्र भगवान्को नमस्कारकर समुद्रके समान गम्भीर मुनिराजके पास गये ॥६४॥ वहाँ जाकर वैराग्यको धारण करनेवाले सब लोगोंने शिर मुकाकर मुनिराजको नमस्कार किया और तदनन्तर यह कहा कि हे नाथ ! हम लोगोंको इस संसार-सागरसे पार कीजिये ॥७०॥ इसके उत्तरमें मुनियोंके अधिपति सत्यकेतु आचार्यने ज्योही 'तथाम्नु' यह शब्द कहा त्योंही 'अब तो हम संसारसे पार हो गये' यह कहते हुए सब लोग परम सन्तोषको प्राप्त हुए ॥७१॥ विदग्ध, विजय, मेरु, क्रूर, संप्रामलोलुप, श्रीनागदमन, धीर, शठ, शत्रुदम, धर, विनोद, कण्टक, सत्य, कठोर और प्रियवर्धन आदि अनेक राजाओंने दिग्म्वर दीक्षा धारण की ॥७२-७३॥ इनके जो सेवक थे वे हाथी घोड़ा आदि सेनाको लेकर उनके पुत्रोंको सौंपनेके लिए शीघ्र ही नगरकी ओर गये । उस समय वे सेवक अत्यन्त दीन तथा लज्जासे युक्त हो रहे थे ॥७४॥ सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानरूपी आभूषणोंको धारण करनेवाले कितने ही लोग अणुत्रत ग्रहणकर निर्प्रन्थमुद्राके धारकोंकी सेवा करनेके लिए उद्यत हुए ॥७५॥ तथा कितने ही लोग संसारको जीतनेवाले जिनेन्द्र भगवान्का अत्यन्त निर्मल धर्म श्रयणकर मात्र सम्यग्दर्शन से ही सन्तोषको प्राप्त हुए ॥७६॥ अनेक सामन्तोंने जाकर यह समाचार भरतके लिए सुनाया सो भरत कुछ ध्यान करता हुआ सुनसे बैठा था परन्तु यह समाचार सुन दुःखी हुआ ॥७७॥

अथानन्तर सम्यक् प्रबोधको प्राप्त हुए राजा दशरथ स्वस्थ चित्तको धारण करनेवाले भरतका राज्याभिषेक कर रामके वियोगसे कुछ सन्तप्त चित्तको धारण करते हुए, सान्त्वना देने पर भी जो अत्यन्त विलाप कर रहा था ऐसे व्याकुल अन्तःपुरको छोड़ नगरीसे बाहर निकले । उस समय शोकरूपी सागरमें डूबे हुए परिजन उनकी ओर निहार रहे थे ॥७८-८०॥ नगरीसे निकलकर वे सर्वभूतहित नामक गुम्फके समीप गये और वहाँ बहुत भारी गुरु पूजाकर बहत्तर राजाओंके साथ दीक्षित हो गये ॥८१॥ यद्यपि मुनिराज दशरथ एकाकी विहार करते हुए सदा शुभ ध्यानकी इच्छा रखते थे तथापि पुत्र शोकके कारण उनका मन कल्पित हो जाता था ॥८२॥ एक दिन योगारूढ होकर बुद्धिमान् दशरथ विचार करने लगे कि संसार सम्बन्धी दुःखों

१. सागर इत गम्भीरस्तम् । २. वादिनः म० । ३. निर्दग्धो म० । निर्दग्धो क०, ख० ।

४. त्रपान्विताः म० । ५. दशरथः ।

अन्यजन्मसु ये दारा पितृभ्रातृमुतादय । व्र गतास्ते ममानादो ससारे गणनोक्तिता ॥८४॥  
 अनेकशो मया प्राप्त विविधा विषया दिवि । नरकानलदाहाश्च सप्राप्ता भोगहेतवः ॥८५॥  
 अन्धोन्धभङ्गणादीनि तिर्यक्प्रे च चिर मया । प्राप्तानि दु खशल्यानि बहुरूपासु योनिषु ॥८६॥  
 श्रुता सन्नतनिस्त्वाना वशर्वाणानुगामिनः<sup>१</sup> । भूयश्च परमात्रन्द्राश्चित्तदारणकारिण ॥८७॥  
 स्तनेष्वप्यन्तरसां पाणिर्लालितो नेत्रहारिषु । पुनः कुठारघातेन दुर्घृत्तेन पृथक्कृतिः ॥८८॥  
 आस्वादित महावीर्यमन्नं सुरभि पङ्कसम् । त्रपुसीसादिकलल पुनश्च नरकारणौ ॥८९॥  
 वाञ्छित परम रूप मनोद्वेषणकारणम् । पुनश्चात्यन्तवित्रासकारणं दत्तवेषधु ॥९०॥  
 आघ्रातः स चिरामोदो गन्धो मुदितपट्पदः । पुनश्च पूतिरत्यन्तमुद्गासितमहाजनः ॥९१॥  
 आलिङ्गिता मनश्चोर्षो नार्यो लीलाविभूषणाः । पुनश्च वृटशाल्मल्यः तीक्ष्णकण्ठकसङ्घटाः ॥९२॥  
 किं न स्मृष्टं न किं दृष्टं किं प्राप्तं न किं श्रतम् । मुदुरास्वादित किं न भवे दासेन कर्मणाम् ॥९३॥  
 न सा क्षितिर्न ततोय नासौ वह्निर्न सोऽग्निः । देहतां यो न मे प्राप्नो भवे संक्रामतश्चिरम् ॥९४॥  
 त्रैलोक्ये स न जीवोऽस्ति यो न प्राप्नोः सहस्रशः । पितादितां मम स्थानं न तद्यत्रोपितोऽस्मि न ॥९५॥  
 अध्रुव देहभोगादिशरण नास्ति विद्यते । ससारोऽयं क्षतुस्थान एकोऽह दुःखमुक्तिषु ॥९६॥

का मूल कारण तथा मुझे बन्धनमे डालनेवाले स्नेहको धिक्कार है ॥८३॥ अन्य जन्मोंमे जो मेरे स्त्री, पिता, भाई तथा पुत्र आदि सम्बन्धी थे वे सब कहाँ गये ? यथार्थमे इस अनादि संसारमे सभी सम्बन्धी इतने हो चुके हैं कि उनकी गणना नहीं की जा सकती ॥८४॥ मैंने अनेकों धार स्वर्गमे नाना प्रकारके विषय प्राप्त किये हैं और भोगोंके निमित्त नरकाग्निके सन्ताप भी सहन किये हैं ॥८५॥ तिर्यक्ष्च पर्यायमे मैंने चिरकाल तक परस्पर एक दूसरेका खाया जाना आदि दुःख उठाये हैं । इस प्रकार नाना योनियोंमे मैंने दुःख रूपी अनेक शल्य प्राप्त किये हैं ॥८६॥ मैंने बौंसुरी चीणा आदि मधुर बाजांका अनुगमन करनेवाले सन्नतके शब्द सुने हैं और हृदयको विदारण करनेवाले तीव्र रदनके शब्द भी अनेक बार श्रवण किये हैं ॥८७॥ मैंने अपना हाथ अप्सराओंके सुन्दर स्तनोपर लड़ाया है और कभी कुठारकी तीक्ष्ण धारासे उसके टुकड़े-टुकड़े भी किये हैं ॥८८॥ मैंने महाशक्ति वर्धक, सुगन्धित बहरसोंसे युक्त आहार ग्रहण किया है और नरककी भूमिमे राँगा सीसा आदिका कलल भी बार-बार पिया है ॥८९॥ मनको द्रवीभूत करनेवाला अत्यन्त सुन्दर रूप देखा है और अत्यन्त भयका कारण तथा कम्पन उत्पन्न करनेवाला घृणित रूप भी अनेक बार देखा है ॥९०॥ जिसकी सुवास चिरकाल तक स्थित रहती है ऐसा भ्रमरोंको आनन्दित करनेवाला मनोहर गन्ध सूँघा है और जिसे देखते ही महाजन दूर हट जाते हैं ऐसा तीव्र दुर्गन्ध उत्पन्न करनेवाला सड़ा कलेवर भी बार-बार सूँघा है ॥९१॥ मनको चुरानेवाली तथा लीला रूपी आभूषणोंसे सुशोभित स्त्रियोंका आलिङ्गन किया है और तीक्ष्ण फाँटोंसे व्याप्त सेमरके मायामयी वृद्धोंका भी बार-बार आलिङ्गन किया है ॥९२॥ कर्मोंका दास बनकर मैंने इस संसारमे क्या नहीं किया है ? क्या नहीं देखा है ? क्या नहीं सूँघा है ? क्या नहीं सुना है ? और धार-धार क्या नहीं खाया है ? ॥९३॥ न वह पृथिवी है, न वह जल है, न वह अग्नि है और न वह वायु है जो चिर कालसे संसारमे भ्रमण करते हुए मेरी शरीर-दशा को प्राप्त नहीं हुआ है ॥९४॥ तोना लोकोमे वह जीव नहीं है जो हजारों धार मेरा पिता आदि नहीं हुआ हो और वह स्थान भी नहीं है जहाँ मैंने निवास नहीं किया हो ॥९५॥ शरीर भोग आदि अनित्य है, कोई किसीका शरण नहीं है, यह संसार चतुर्गति रूप है, मैं अकेला ही दुःख भोगता हूँ, यह शरीर अशुचि है तथा उससे मैं जुदा हूँ, इन्द्रियों कर्मोंके आनेका द्वार है,

अशुभे वायव्योऽयं द्वारमशुभं कर्मणाम् । यत्र वायव्ये ते वा विदेशे जायते यत्र ॥२०॥  
 लोको विचित्ररूपोऽयं दुर्लभा बोधिस्तथा । स्वास्थानोऽयं निर्धर्मः कृष्टेणापिगमो मया ॥२१॥  
 ध्यानेन मुनिदृष्टेन विशुद्धेनैवमादिना । आर्जुनध्यानमयी धारं क्रमेण निरमानशम् ॥२२॥  
 येषु चिद्रूपमित्युक्तो वरस्तस्मैरमाश्रितः । महानिपुणं परानिपुणं शत्रुनयन्तमुद्रितान् ॥३००॥  
 विपसानधिकुर्वाणं परीपहगगान् भृशम् । शान्तस्तेऽत्रैव दशंसु निर्धर्म्यो विचहार यः ॥३०१॥  
 गाथे तथा स्थिते तस्मिन् विदेशे च गतेऽद्भजे । परं मुमित्रया सत्रां शोकं भेजेऽपरानिता ॥३०२॥  
 ते दृष्ट्वा तु श्रिते वाङ्मन्त्रवाच्युत्तरं चने । भरताभा श्रियं मेने भरतां विपद्भाग्याम् ॥३०३॥  
 अर्धपत्रं तु क्षमापत्रं भृशं ते वीक्ष्य कैत्रया । पश्चादुल्लसत्कल्पयान् पुत्रमेवमभाषत ॥३०४॥  
 पुत्रं राज्यं स्वयां लब्धं प्रणतापिरहरावकम् । पत्रलक्ष्मणनिर्मुक्तमलमेवञ्च शोभते ॥३०५॥  
 जिना तान्धा निर्नातान्धा किं राज्यं का सुप्रासिका । का वा जनपदे शोभा तत्र का वा सुवृत्ता ॥३०६॥  
 राजपुत्र्या समं चार्जुनं कं ती याता सुयैरितो । विमुक्तवाहनीं मार्गं पापागादिभिराकुञ्चे ॥३०७॥  
 मातरं तु खिते घ्ने तयोर्गुणसमुद्रयोः । विरहे मापतां शृणुमन्मपरिदेवने ॥३०८॥  
 तस्मादागत्य तीक्ष्णं समं तान्धा महासुखं । सुचिरं पालयं चोगामेव सत्रं विराजत ॥३०९॥  
 व्रजं तावत्त्वमाह्वयं नुराजं जातरहसम् । आत्रताम्यहमभ्येषां मुपुत्रानुपदं तत्र ॥३१०॥  
 इत्युक्तो धृतिमासाद्य साधेवमिति सखिन । सम्भ्रान्तोऽश्वत्थमो भरतस्तपथं ध्रितः ॥३११॥

कर्मोको रोक देना मरर है, संजके बाद कर्मोकी निर्वाग होकी है, यह लोक विचित्र रूप है, उत्तम रत्नत्रयकी प्राप्ति होना दुर्लभ है, और जिनेन्द्र भगवान्के द्वारा कहा हुआ यह धर्म मैन बड़े कष्टसे पाया है ॥६६-६८॥ इस प्रकार मुनिवाके द्वारा अनुभूत विशुद्ध ध्यानमे धीरवीर दशरथ मुनिने क्रमसे पूर्णक आर्जुनको नष्ट कर दिया ॥६६॥ जिनके ऊपर सफेद छत्र फिर रहा था तथा जो उत्तम हाथीपर सवार थे ऐसे राजा दशरथने पहले जिन देशामें महायुद्धोंने बीच अत्यन्त उद्धत शत्रुओंको जीता था उन उन्हीं देशामें वे अत्यन्त शांत निर्धर्म्य मुनि होकर विपम परिपहोको सहते हुए विहार कर रहे थे ॥१००-१०१॥

तदनन्तर पतिके मुनि हो जाने और पुत्रके विदेश चले जानेपर अपराजिता ( कौशाया ) मुमित्राके साथ परम शोकको प्राप्त हुई ॥१०२॥ जिनके नेत्रोंसे निरन्तर अधुं भरते रहते थे पत्नी दोनों जिमाताओंको दुःखी देखकर भरत, भरत चक्रवर्तीको लक्ष्मीने समान विगाल राज्यलक्ष्मी को विपने समान वाग्ण मानता था ॥१०३॥ अथानन्तर इस तरह उन्हे अत्यन्त दुःखी देख कैत्रयीके मनमे दया उत्पन्न हुई जिससे प्रेरित होकर उसने अपने पुत्र भरतसे इस प्रकाग कहा कि हे पुत्र ! यद्यपि तूने जिसमें समस्त राजा नम्रोभूत है ऐसा राज्य प्राप्त किया है तथापि यह राम और लक्ष्मणके जिना शोभा नहीं देता है ॥१०४-१०५॥ नियमसे भरे हुए उन दोनों भाइयोंके जिना राज्य क्या है ? देशकी शोभा क्या है ? और तेरी धर्मव्रता क्या है ? ॥१०६॥ सुख पूर्वक वृद्धिको प्राप्त हुए दोनों बालक, जिना किसी वाहनके पापाण आदि विपम मार्गमें राजकुमारी सीताके साथ कहाँ भटकते होंगे ? ॥१०७॥ गुणोंने सागर स्वरूप उन दोनोंकी वे माताएँ अत्यन्त दुःखी हैं, निरन्तर विलाप करती रहती हैं सो उनके निरहंम मृत्युको प्राप्त न हो जायें ॥१०८॥ इसलिए तू शीघ्र ही उन दोनोंको वापिस ले आ । उन्हींके साथ सुखपूर्वक चिरकाल तक पृथिवीका पालन कर । ऐसा करनेसे ही सबकी शोभा होगी ॥१०९॥ हे सुपुत्र ! तू वेगशाली घोड़ेपर सवार होकर जा और मैं भी तेरे पीछे ही आती हूँ ॥११०॥

माताके इस प्रकार कहनेपर भरत बहुत प्रसन्न हुआ वह 'साधु-साधु ठीक ठीक' इस

१. -मन्त्रवाच्युत्तरं चने म० । २. भरताभिश्चिय म० । ३. नापता ज० ।

कृत्वा पुरस्सरान् पद्मपार्श्वान् प्रयागनाम्बरान् । पवनाश्वसमारूढ स धयी भृशमुसुक ॥११२॥  
 प्रातश्च तामरण्यानीमनेकपङ्कलाकुलाम् । नानावृक्षावृतादित्या गिरिगङ्गरभीषणाम् ॥११३॥  
 दन्धयिचा महावृक्षैरुदुपाना<sup>२</sup> सुसहती<sup>३</sup> । तं<sup>४</sup> धुनीमुत्ततारासौ क्षणेन सहवाहन ॥११४॥  
 इतो दृष्टवितो दृष्टौ पुर्यौ सह योषिता । इति पृच्छन्स शृण्वश्च जगामानन्यमानस ॥११५॥  
 अथ तौ परमारण्ये विश्रान्तौ सरसस्ते । ससीतौ भरतोऽपरयत् पार्श्वन्यस्तशरससौ ॥११६॥  
 प्रभूतदिवसप्राप्त ताभ्या सीता<sup>५</sup> येषेक्षया । पद्मभिदिनैस्तमुद्देश भरत प्रतिपन्नवान् ॥११७॥  
 अवतीर्य तुरङ्गाच्च मार्गं लोचनगोचरम् । गत्वा पद्म्या<sup>६</sup> समाश्लिष्य पादौ<sup>७</sup> पद्मस्य मूर्द्धितः ॥११८॥  
 तता त्रियोऽप्रितस्तेन कृत्वा सम्भाषण क्रमान् । मूर्द्धां त्रलिपंगादैव पद्म विनतविग्रह ॥११९॥  
 विडम्बनमिदं कस्मान्नाथ मे भवता कृतम् । पर राज्यापदेशेन न्यायसर्वस्व कोविद ॥१२०॥  
 आस्ता तावदिदं राज्य जावितेनापि किं मम । भवता विप्रयुक्तस्य गुरुचेष्टितकारिणा ॥१२१॥  
 उत्तिष्ठ स्वपुरीं याम प्रसादं कुरु मे प्रभो । राज्यं पालय निरशेषं यच्छ मेऽतिसुखासिकाम् ॥१२२॥  
 भवामि द्वापरारस्ते शशुभ्रमराश्रित । लक्ष्मण परमो मन्त्री सर्वं सुविहितं ननु ॥१२३॥  
 पश्चात्तापानलेनाल सन्तप्ता जनना मम । तत्र लक्ष्मीघरस्यापि वर्तते शोककारिणी ॥१२४॥  
 व्रतीं येषमसौ यावत्क्रेक्या तावदागता । वेगेन रथामारुह्य सामन्तशतमध्यगा ॥१२५॥

प्रकारके शब्द कहने लगा तथा शीघ्र ही एक हजार घोडोंसे युक्त हो रामके मार्गमें चल पड़ा ॥१११॥ वह रामके पाससे लौटकर आये हुए लोगोंकी आगेकर बड़ी उत्कण्ठासे पवनके समान शीघ्रगामी घोड़ेपर सवार होकर चला ॥११२॥ तथा कुछ ही समयमें उस महाअटवीमें जा पहुँचा जो हाथियोंके समूहसे व्याप्त थी, नाना वृक्षोंसे जहाँ सूर्यका प्रवेश रुक गया था तथा जो पर्वत और गर्तोंसे अत्यन्त भयंकर थी ॥११३॥ सामने भयंकर नदी थी सो वृक्षोंके बड़े-बड़े लट्टोंसे नाओंके समूहको बाँधकर उनका पुल बना बाहनोंके साथ साथ क्षण भरमें पार कर गया ॥११४॥ यह मार्गमें मिलनेवाले लोगोंसे पूछता जाता था कि क्या यहाँ आप लोगोंने एक स्त्रीके साथ दो पुरुष देखे हैं और उनके उत्तरको एकाग्र मनसे सुनता हुआ आगे बढ़ता जाता था ॥११५॥

अधानन्तर जो सप्तम वनमें एक सरोवरके तीरपर विश्राम कर रहे थे तथा जिनके पास ही धनुष रखे हुए थे ऐसे सीता सहित रामलक्ष्मणको भरतने देखा ॥११६॥ रामलक्ष्मण, सीताके कारण जिस स्थानपर बहुत दिनमें पहुँच पाये थे भरत उस स्थानपर छह दिनमें ही पहुँच गया ॥११७॥ वह घोड़ेसे उतर पड़ा और जहाँसे राम दिस रहे थे उतने मार्गमें पैदल ही चलकर उनके समीप पहुँचा तथा उनके चरणोंका आश्लिष्य कर मूर्च्छित हो गया ॥११८॥ तदनन्तर रामने सचेत किया सो क्रमसे वार्तालाप कर नम्रोभूत हो हाथ जोड़ शिरसे लगाकर इस प्रकार कहने लगा कि हे नाथ ! राज्य देकर आपने मेरी यह क्या विडम्बना की है ? आप ही न्यायके जाननेवाले अतिशय निपुण हो ॥११९-१२०॥ उत्तम चेष्टाओंके धारण करनेवाले आपसे पृथक् रहकर मुझे यह राज्य तो दूर रहे जीवनसे भी क्या प्रयोजन है ? ॥१२१॥ हे प्रभो ! उठो, अपनी नगरीमें चलो, मुझपर प्रसन्नता करो, समस्त राज्यका पालन करो और मुझे सुखकी अवस्था देओ ॥१२२॥ मैं आपका द्वापर धारक होऊँगा, शत्रु चमर डोलेगा और लक्ष्मण उत्कृष्ट मन्त्री होगा, मेसा करनेसे हा सप्त ठीक होगा ॥१२३॥ मेरी माता पश्चात्तापरूपी अग्निसे अत्यन्त सतप्त हो रही है तथा आपको और लक्ष्मणकी माता भी निरन्तर शोक कर रही हैं ॥१२४॥ जब तब भरत इस प्रकार कह रहा था तब तब सैकड़ों सामन्तोंके मध्य गमन करने-

दृष्ट्वा परमशोकेन निर्भरीकृतमानसा । हाकारमुपराः चेताशङ्कित्य न्दिता चिरम् ॥१२०६॥  
 ततोऽधमरित्तरद्वेदे विप्रलापेऽतिम्येदिता । क्षमायम्मापगं कृत्वा केरुयैरमभापन ॥१२०७॥  
 पुत्रोत्पिष्ट पुरीं धामः कुः राज्यं महानुजः । ननु त्वया विहीनं मे मद्यन्त्रं विप्रिनायने ॥१२०८॥  
 भरतः शिष्यायोऽयं तवाप्यन्तमनोपिगः । शैगेन नष्टपुत्रेयं धमत्त दुरनुष्ठितम् ॥१२०९॥  
 ततः पद्मो जगादयं किं न वेत्ति रवमिन्द्रे । क्षत्रिया ननु कुर्वन्ति मङ्गलकार्यमन्यथा ॥१२१०॥  
 उक्तं तातेन यत्सत्त्वं तच्छर्त्तव्यं मया त्वया । भरतेन च दुष्कृतिर्माभूदस्य जगत्प्रये ॥१२११॥  
 पुनश्चोवाच भरतं भ्रान्तमां गा विचिन्तनाम् २ । शङ्कये यथाचारान्नाय मनुनुमोदनात् ॥१२१२॥  
 इत्युक्त्वा पुनरप्यस्य पद्मो राज्याभिषेचनम् । चकार कानने रम्ये समञ्च सर्वभूतनाम् ॥१२१३॥  
 प्रगम्य केकयीं साम्प्रं सम्मान्य च पुनः पुनः । भ्रातरं च परिहृय्य प्राहिणोत् सोऽनितृच्छृतः ॥१२१४॥  
 तौ त्रिधाय यथायोग्यमुपचारं समीतयोः । रामलक्ष्मणयोर्वीर्यां मातापुत्रीं यथागतम् ॥१२१५॥  
 परिप्यस्ताम्बिलद्वेषं सर्वप्रकृतिर्मोक्षयदम् । चकार भरतो राज्यं प्रजापु जनकोपमः ॥१२१६॥  
 राज्ये तथाविधेष्वप्यस्य धृतिर्नाभूदपि षण्णम् । दुस्मह दधमानस्य शोश्शतं मनश्चिनः ॥१२१७॥  
 त्रिकालमरनाथस्य वन्दारमोगमन्दरीः । ययां श्रोतुं च मद्ममं वै-यमन्येयतां धृतिः ॥१२१८॥

वाली केकयी वेगशाली रथपर सवार हो वहाँ आ पहुँची ॥१२२५॥ राम लक्ष्मणको देखकर उमका हृदय बहुत भारी शोकसे भर गया । हा हा कार करती हुई वह दोनोंका आलिङ्गन कर चिर काल तक रोती रही ॥१२२६॥

तदनन्तर जो विलाप करती-करती अत्यन्त रिक्त हो गई थी ऐसी केकयी अश्रुरूपी नदीकी धारा दृष्टनेपर क्रमसे धार्तालाप कर इस प्रकार बोली कि हे पुत्र ! उठो, नगरीको चले, छोड़ो भाइयोके साथ राज्य करो, तुम्हारे बिना मुझे यह सब राज्य बनके समान जान पड़ता है ॥१२२७-१२२८॥ तुम अतिशय बुद्धिमान हो, यह भरत तुम्हारी शिक्षाके योग्य है अर्थात् उसे शिना देकर ठीक करो, खोपनाके कारण मेरी बुद्धि नष्ट हो गई थी अतः मेरे इस दुःखको क्षमा करो ॥१२२६॥ तदनन्तर रामने कहा कि हे माता ! क्या तुम यह नहीं जानती हो कि क्षत्रिय स्वोक्तव कार्यको कभी अन्यथा नहीं करते हैं—एक बार कार्यको जिस प्रकार स्वोक्त कर लेते हैं उसी प्रकार उसे पूर्ण करते हैं ॥१२२७॥ पिताने जो सत्य वचन कहा था उसको पूर्ण मुझे तुम्हें तथा भरत-सभीको करना चाहिये । 'पिताकी अपकीर्ति जगत्त्रयमे न फैले' इस वाक्यका ध्यान रखना आवश्यक है ॥१२२९॥ केकयीसे इतना कड़कर इन्होंने भरतसे कहा कि हे भाई ! तू धैर्य अर्थात् द्विविधाकी प्राप्त मत हो । यदि तू अनाचारसे डरता है तो यह अनाचार नहीं है क्योंकि मैं स्वयं इस कार्यकी तुम्हें अनुमति दे रहा हूँ ॥१२३२॥ इतना कड़कर रामने मनोहर वनमें सप्त राजाओंके समक्ष भरतका पुनः राज्याभिषेक किया ॥१२३३॥ तदनन्तर केकयीको प्रणामकर सान्त्वना देते हुए पार-पार संभाषण कर और भाईका आलिङ्गन कर बड़े कष्टसे सबको वापिस विदा किया ॥१२३४॥ इस प्रकार माता और पुत्र अर्थात् केकयी और भरत, सीता सहित रामलक्ष्मणका यथा योग्य उपचार कर जैसे आये थे वैसे लौट गये ॥१२३५॥

अथानन्तर भरत, पिताके समान, प्रजापर राज्य करने लगा । उमका राज्य समस्त शत्रुओंसे रहित तथा समस्त प्रजाकी सुख देनेवाला था ॥१२३६॥ तेजस्वी भरतने अपने मनमें असहनीय शोकरूपी शल्यको धारण कर रहा था इसलिए ऐसे व्यवस्थित राज्यमें भी उसे क्षणभरके लिए संतोष नहीं होता था ॥१२३७॥ वह तीनों काल अरनाथ भगवान्की वन्दना करता था भोगोंसे सदा उदास रहता था और समीचीन धर्मका श्रवण करनेके लिए मन्दिर जाता था

१. निविनमिवाचरति । २. विचिन्तता म० । ३. 'सकास्य पनापतीत्रावं मनुनुमोदनात्' व० ।



तत्राचार्यो द्युतिर्नाम स्वपरागमपारग । महता साधुसधेन सतत कृतसेवन ॥१३६॥  
 अग्रतोऽग्रहै तस्य चकार भरत सुधा । पद्मदर्शनमात्रेण करिष्ये मुनितामिति ॥१४०॥  
 कृतावग्रहमेव तमुवाच भगवान् धति । कुर्वन् मयूरचन्द्राना नर्तन धीरया गिरा ॥१४१॥  
 भव्य भो यावदायाति पद्म पञ्चनिराक्षण । तावद्गृहस्थधर्मेण भवात्परिकर्मक ॥१४२॥  
 अत्यन्तदुस्सहा चेष्टा निर्ग्रन्थाना महा मनाम् । परिकर्म त्रिशुद्धस्य जायते सुखसाधना ॥१४३॥  
 उपरिष्ठान् करिष्यामि काले तप इति ब्रुवन् । अनेको मृत्युमाधाति नरोतिजडमानस ॥१४४॥  
 अनर्घ्यरत्नसदृश तपो दिग्वाससामिति । एवमप्यक्षम वक्त्रु परस्तस्योपमा कुत ॥१४५॥  
 वनायास्तस्य धर्मोऽयमुक्तोऽय गृहिणा जिनै । अप्रमादा भजे रश्मिञ्जितो बोधदायिनि ॥१४६॥  
 यथा रत्नाकरद्वीप मानव कश्चिदागत । रत्न यकिञ्चिदादत्ते यान्यस्य तदनर्घताम् ॥१४७॥  
 तथास्मिन्त्रियमद्वीपे शम्भवे धर्मचरिणाम् । य एव नियम कश्चिद् प्रार्थतो या यनर्घताम् ॥१४८॥  
 अहिमारनमादाय विपुल यो जिनात्रिपम् । भव्यार्चय यसौ नार्के परमा वृद्धिमरतुने ॥१४९॥  
 मरुतधर क्षमिभयं करोति जिनाचनम् । भव्य यादेयवाक्योऽसौ सर्कोतिव्याप्तत्रिप ॥१५०॥  
 अदत्तादाननिर्मुक्तो जिनेन्द्रान् यो नमस्यति । जायते रत्नपूर्णा ना निधीना स त्रिभुर्नर ॥१५१॥  
 यो रति परनारापु न करोति जिनाश्रित । सोऽथ गच्छति सौभाग्य सर्वनेत्रमस्त्रिभु ॥१५२॥  
 जिनाचर्चति यो भक्त्या कृतावधिपरिग्रह । एभतेऽसावतिस्फातान् लाभान् लोवस्य पूजित ॥१५३॥

यही इसका नियम था ॥१३८॥ वहाँ रत्न और पर शास्त्राके पारगामी तथा अनेक मुनियोंका सय जिनकी निरन्तर सेवा करता था ऐसे द्युति नामके आचार्य रहते थे ॥१३६॥ उनके आगे बुद्धिमान भरतने प्रतिज्ञा की कि मैं रामके दर्शन मात्रसे मुनित्रय धारण करूँगा ॥१४०॥ तदनन्तर अपनी गम्भार वाणीसे मयूर समूहको वृत्य कराते हुए भगवान् द्युति भट्टारक इस प्रकारकी प्रतिज्ञा करनेवाले भरतसे बोले ॥१४१॥ कि हे भव्य ! कमलके समान नेत्रोंके धारक राम जब तक आते तब तक तू गृहस्थ धर्मके द्वारा अभ्यास कर ले ॥१४२॥ महात्मा निर्ग्रन्थ मुनियोंकी चेष्टा अत्यन्त कठिन है पर जो अभ्यासके द्वारा परिपक्व होते हैं उन्हें उसका साधन करना सरल हो जाता है ॥१४३॥ 'मैं आगे तप करूँगा' ऐसा कहनेवाले अनेक जडबुद्धि मनुष्य मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं पर तप नहीं कर पाते हैं ॥१४४॥ निर्ग्रन्थ मुनियोंका तप अमूल्य रत्नके समान है' ऐसा कहना भी अशक्य है फिर उसकी अन्य उपमा तो ही क्या सकती है ? ॥१४५॥ गृहस्थोंने धर्मको जिनेन्द्र भगवान्ने मुनिधर्मका छोटा भाई कहा है सो बोधिकी प्रदान करनेवाले इस धर्ममें भी प्रमाद रहित होकर लीन रहना चाहिये ॥१४६॥ जैसे कोई मनुष्य रत्नद्वीप में गया वहाँ वह जिस किसी भी रत्नको उठाता है वही उसके लिए अमूल्यताको प्राप्त हो जाता है इसी प्रकार धर्मचक्रकी प्रवृत्ति करनेवाले जिनेन्द्र भगवान्के शासनमें जो कोई इस नियमरूपी द्वीपमें आकर जिस किसी नियमको ग्रहण करता है वही उसके लिए अमूल्य हो जाता है ॥१४७-१४८॥ जो अत्यन्त श्रेष्ठ अहिसारूपी रत्नको लेकर भक्तिपूर्वक जिनेन्द्रदेवकी पूजा करता है वह स्वर्गमें परम वृद्धिको प्राप्त होता है ॥१४९॥ जो सत्य व्रतका धारी होकर मालाभा से भगवान्की अर्चा करता है उसके वचनोंको सत्य ग्रहण करते हैं तथा उज्ज्वल कीर्तिसे वह समस्त मसारको व्याप्त करता है ॥१५०॥ जो अदत्तादान अर्थात् चोरीसे दूर रहकर जिनेन्द्र भगवान्की पूजा करता है वह रत्नसे परिपूर्ण निधियोंका स्वामी होता है ॥१५१॥ जो जिनेन्द्र भगवान्की सेवा करता हुआ परस्त्रियामें प्रेम नहीं करता है वह सपने नेत्रोंको हरण करनेवाला परम सौभाग्यको प्राप्त होता है ॥१५२॥ जो परिग्रहकी सीमा नियतकर भक्तिपूर्वक जिनेन्द्र

१ स्वकापारकीयशस्त्रपारगामो । २ प्रतिज्ञाम् । ३ प्राप्ताभ्यास । ४ स्वर्ग । ५ नगीना म० (१) । ६ मर्जजनम ६१ ।

आहारद्वान्गुण्येन जायते भोगनिर्भरः । विदेशमपि यातस्य सुखिता तस्य सर्वदा ॥१५३॥  
 भभीतिदानपुण्येन जायते भयवर्जितः । महासङ्कटयातोऽपि निर्यद्रवविग्रहः ॥१५५॥  
 जायते ज्ञानदानेन विशालसुखभाजनम् । कलाणवामृतं चामी गण्डुर्षं कुरते नरः ॥१५६॥  
 यः करोति विभावयामाहारपरिवर्जनम् । सर्वारम्भप्रवृत्तोऽपि याल्यसी सुखदां गतिम् ॥१५७॥  
 वन्दन यो जिनेन्द्राणां त्रिकालं कुरुते नरः । तस्य भावविशुद्धस्य सर्वं नश्यति दुष्कृतम् ॥१५८॥  
 सामोदैर्भुजलोद्भूतैः पुष्पर्यो जिनमर्चति । विमानं पुष्पकं प्राप्य स क्रीडति यथेप्सितम् ॥१५९॥  
 भावपुष्पजिनं यस्तु पूजयत्यतिनिर्मलैः । लोकस्य पूजनीयोऽसौ जायतेऽयन्तमुन्दरः ॥१६०॥  
 धूपं यश्चन्दनाशुभ्राणुर्वादिप्रभव सुधीः । जिनानां दौक्यत्येव जायते सुरभिः सुरः ॥१६१॥  
 यो जिनेन्द्रालये दीपं ददाति शुभभावतः । स्वयम्प्रभशरारोऽसौ जायते सुरसञ्जितः ॥१६२॥  
 छत्रचामरलम्बुपताकादर्पणादिभिः । भूपयित्वा जिनस्थानं याति विस्मयिनीं श्रियम् ॥१६३॥  
 समालम्ब्य जिनान् गन्धैः सौरभप्रव्याप्तदिग्मुषैः । सुरभिः<sup>२</sup> प्रमदानन्दो जायते दयितः पुमान् ॥१६४॥  
 अभिपेकं जिनेन्द्राणां कृत्वा सुरभिवारिणा । अभिपेकमवाप्नोति यत्र यत्रोपजायते ॥१६५॥  
 अभिपेपं जिनेन्द्राणां विषायं चरिष्यते । विमाने चरिष्यते परमद्युतिः ॥१६६॥  
 दधिवुन्मैजिनेन्द्राणां यः करोत्यभिपेचनम् । दध्याभङ्गदमे स्वर्गं जायते स सुरोत्तमः ॥१६७॥  
 सर्पिषा जिननाथानां कुरुते योऽभिपेचनम् । कान्तिद्युतिप्रभावान्यो विमानेशः स जायते ॥१६८॥

जिनेन्द्र भगवान्की अर्चा करता है वह अतिशय विस्तृत लाभोक्ते प्राप्त होता है तथा लोग उसकी पूजा करते हैं ॥१५३॥ आहार-दानके पुण्यसे यह जीव भोग-निर्भर होता है अर्थात् सय प्रकारके भोग इसे प्राप्त होते हैं । यदि यह परदेश भी जाता है तो वहाँ भी उसे सदा सुख ही प्राप्त होता है ॥१५४॥ अभयदानके पुण्यसे यह जीव निर्भय होता है और बहुत भारी संकटमें पड़कर भी उसका शरीर उपद्रवसे शून्य रहता है ॥१५५॥ ज्ञानदानसे यह जीव विशाल सुखों का पात्र होता है और कलारूपी सागरसे निकले हुए अमृतके कुल्ले करता है ॥१५६॥ जो मनुष्य रात्रिमें आहारका त्याग करता है वह सब प्रकारके आरम्भमें प्रवृत्त रहनेपर भी सुखदायी गतिको प्राप्त होता है ॥१५७॥ जो मनुष्य तीनों कालमें जिनेन्द्रभगवान्की वन्दना करता है उसके भाव सदा शुद्ध रहते हैं तथा उसका सब पाप नष्ट हो जाता है ॥१५८॥ जो पृथिवी तथा जलमें उत्पन्न होनेवाले सुगन्धित फूलोंसे जिनेन्द्रभगवान्की अर्चा करता है वह पुष्पक विमानको पाकर इच्छानुसार क्रीड़ा करता है ॥१५९॥ जो अतिशय निर्मल भावरूपी फूलोंसे जिनेन्द्रदेवकी पूजा करता है वह लोगोंके द्वारा पूजनीय तथा अत्यन्त सुन्दर होता है ॥१६०॥ जो बुद्धिमान् चन्दन तथा कालागुरु आदिसे उत्पन्न धूप जिनेन्द्रभगवान्के लिए चढ़ाता है वह मनोज्ञ देव होता है ॥१६१॥ जो जिनमन्दिरमें शुभ भावसे दीपदान करता है वह स्वर्गमें देदीप्यमान शरीरका धारक होता है ॥१६२॥ जो मनुष्य छत्र, चमर, फन्नुस, पताका तथा दर्पण आदिके द्वारा जिनमन्दिरको विभूषित करता है वह आश्चर्यकारक लक्ष्मीको प्राप्त होता है ॥१६३॥ जो मनुष्य सुगन्धिसे दिशाओंको व्याप्त करनेवाली गन्धसे जिनेन्द्रभगवान्का लेपन करता है वह सुगन्धिसे युक्त, स्त्रियोंको आनन्द देनेवाला प्रिय पुरुष होता है ॥१६४॥ जो मनुष्य सुगन्धित जलसे जिनेन्द्रभगवान्का अभिपेक करता है वह जहाँ-जहाँ उत्पन्न होता है वहाँ अभिपेक को प्राप्त होता है ॥१६५॥ जो दूधकी धारासे जिनेन्द्रभगवान्का अभिपेक करता है वह दूधके समान धवल विमानमें उत्तमकान्तिका धारक होता है ॥१६६॥ जो दहीके कलशांसे जिनेन्द्र-भगवान्का अभिपेक करता है वह दहीके समान फर्सवाले स्वर्गमें उत्तम देव होता है ॥१६७॥ जो घीसे जिनदेवका अभिपेक करता है वह कान्ति द्युति और प्रभावसे युक्त विमानका स्वामी

अभिपेक्षप्रभावेण ध्रुयन्ते बहवो बुधा । पुराणेऽनन्तवीर्यायां शुभ्रमूल्याभिपेक्षणा ॥१६६॥  
 भक्त्या बह्वपहार य कुर्वते तिनमग्रनि । सम्प्राप्नाति परा भूतिमाराय स मुमानसः ॥१७०॥  
 गाननर्तनवादिद्वयं करोति महोत्सवम् । तिनमग्रन्यस्यै स्वर्गे लभते परमोत्सवम् ॥१७१॥  
 भवन यन्तु जैनेन्द्र निर्मापयति मानव । तस्य भागोऽस्य शक्य केन वक्तु मुचेतसः ॥१७२॥  
 प्रतिमा यो तिनैन्द्राणां कारयत्यचिरादसौ । सुरानुरोत्तमसुखं प्राप्य याति पर पदम् ॥१७३॥  
 वनज्ञाननपदानैर्यानुपात्तानि दहिन । सर्वैस्त्रिष्वपि कालेषु पुण्यानि मुचनत्रये ॥१७४॥  
 पृथग्मादपि जैनेन्द्रविम्बाद् भावेन कारितात् । यपुण्यं जायते तस्य न सम्मान्यतिमात्रत ॥१७५॥  
 फलं यदेतदुद्दिष्टं स्वर्गं सम्प्राप्य जन्तव । चक्रवर्त्यादिता लब्ध्वा तन्मर्यादेषु भुञ्जते ॥१७६॥  
 धर्ममेव विधानेन य कश्चिप्राप्य मानव । ससाराणवमुत्तार्य त्रिलोकाग्नेःत्रितृष्टे ॥१७७॥  
 फलं ध्यानाद्यैरुत्थं यदृष्टस्योद्यानमात्रत । अष्टमस्य तदारभ्ये गमने दशमस्य तु ॥१७८॥  
 द्वादशस्य तत्र किञ्चिन्मये पञ्चापवाप्तम् । फलं मामोपवासस्य लभते चैश्वर्यंनान्तम् ॥१७९॥  
 चैषाद्भग्न समाप्त्य याति पाग्यामिकं फलम् । फलं वर्षोपवासस्य प्रविरय द्वारमरनुते ॥१८०॥  
 फलं प्रदक्षिणाहृयं भुक्ते वर्षशतस्य तु । द्रुपा तिनस्यमाप्नोति फलं वर्षसहस्रतम् ॥१८१॥  
 अनन्तफलमाप्नोति स्तुतिं कुर्वन् स्वभावतः । नहि भक्तेत्रिनेन्द्राणां विद्यते परमुत्तमम् ॥१८२॥  
 कर्म भक्त्या तिनैन्द्राणां च य भवति गच्छति । ज्ञानकर्मा पदं याति यस्मिन्ननुपम सुखम् ॥१८३॥

देव होता है ॥१६८॥ पुरागम सुना जाता है कि अभिपेक्षके प्रभावसे अनन्तवीर्य आदि अनेक विद्वज्जन, स्वर्गकी भूमिमें अभिपेक्षको प्राप्त हुए हैं ॥१६६॥ जो मनुष्य भक्तिपूर्वक जिनमन्दिरमें रङ्गावलि आदि का उपहार चढ़ाता है वह उत्तम इन्द्रयज्ञा धारक होकर परम विभूति और आरोग्यको प्राप्त होता है ॥१७०॥ जो जिनमन्दिरमें गीत, नृत्य तथा वाद्योंसे महोत्सव करता है वह स्वर्गमें परम उत्सवको प्राप्त होता है ॥१७१॥ जो मनुष्य जिनमन्दिर वनवाता है उस मुचेताके भागोत्सवका वर्णन कौन कर सकता है ? ॥१७२॥ जो मनुष्य जिनैन्द्र भगवानकी प्रतिमा बनवाता है वह शीघ्र ही सुर तथा असुरोंके उत्तम सुख प्राप्तकर परम पदको प्राप्त होता है ॥१७३॥ तीनों कालों और तीनों लोकोंमें व्रत, ज्ञान, तप और दानके द्वारा मनुष्यके जो पुण्य-कर्म मचित होते हैं वे भावपूर्वक एक प्रतिमाके बनवानेसे उपन्न हुए पुण्यको बग़रही नहीं कर सकते ॥१७४-१७५॥ इस वहे हुए फलको जीव स्वर्गमें प्राप्तकर जप मनुष्य पर्यायमें उत्पन्न होते हैं तप चक्रवर्ती आदिका पद पाकर वहाँ भी उसका उपभोग करते हैं ॥१७६॥ जो कोई मनुष्य हम त्रिपिसे धर्मका सेवन करता है वह ससार-सागरसे पार होकर तीन लोकके शिखरपर विराजमान हाता है ॥१७७॥ जो मनुष्य तिनप्रतिमाके दर्शनका चिन्तन करता है वह वेलाका, जो उद्यमका अभिलाषी होता है वह तेलका, जो जानेका आरम्भ करता है वह चौलाका, जो जाने लगता है वह पाँच उपवासका, जो कुछ दूर पहुँच जाता है वारह उपवासका, जो वीचमें पहुँच जाता है वह पन्द्रह उपवासका, जो मन्दिरके दर्शन करता है वह मासोपवासका, जो मन्दिरके आँगनमें प्रवेश करता है वह छहमासके उपवासका, जो द्वारमें प्रवेश करता है वह वर्षोपवासका, जो प्रदक्षिणा देता है वह सौ वर्षके उपवासका, जो जिनैन्द्रदेवके सुखका दर्शन करता है वह हजार वर्षके उपवासका और जो स्वभावसे स्तुति करता है वह अनन्त उपवासके फलको प्राप्त करता है। यथार्थमें जिनभक्तिसे बढ़कर उत्तम पुण्य नहीं है ॥१७८-१८०॥ आपार्यं श्रुति कहते हैं कि हे भवन ! तिनैन्द्रदेवको भक्तिसे कर्म ज्ञानको प्राप्त हो जाते हैं और जिसके कर्म क्षीण हो जाते हैं वह अनुपम सुखसे सम्पन्न परम पदको प्राप्त होता

द्व्युक्तेऽनन्तसद्भक्तिं प्रणम्य चरणीं गुरो । जप्राह भरतो धर्मं सागार सुविधानत ॥१८४॥  
 बहुश्रुतोऽतिधर्मज्ञो विनीत श्रद्धयान्वित । विशेषतो ददा दान स साधुषु यथोचितम् ॥१८५॥  
 सम्यग्दर्शनरत स हृदयेन सदा वहन् । चकार विपुल राज्य साधुषेष्टापरायण ॥१८६॥  
 प्रतापशानुरागश्च समस्ता तस्य मेदिनाम् । वभ्राम प्रतिघातेन रहिता गुणवारिषे ॥१८७॥  
 अप्यद्धं तस्य पत्नीनां शतं देवीसमन्विषाम् । न तत्रासक्तिमायाति शतपत्र यथात्मसि ॥१८८॥

उपजातिः

चिन्तास्य निःशय मगधाधिपासात् कदा नु लप्स्ये निरगारदांशाम् ।  
 तप करिष्यामि कदा नु घोर सरीविमुक्तो बिहरन् पृथिव्याम् ॥१८९॥

इन्द्रयज्ञा

धन्या मनुष्या धरणीतले ते ये सर्वसङ्गान् परिवर्ज्य धीरा ।  
 दग्ध्वाग्निं कर्म तपोवलेन प्राप्ता पदं निर्वृत्तिसौख्यसारम् ॥१९०॥

उपजाति

विष्टामि पापो भवदुःखमग्नं पर्यन्नपीदं क्षणिकं समस्तम् ।  
 पूर्वाह्नदशोऽत्र जनोऽपराह्णे न दृश्यते कश्चिद्दहोऽस्मि मूढ ॥१९१॥

इन्द्रयज्ञा

व्यालाज्जलाद् वा विषतोऽनलाद् वा वज्राद् विमुक्तादहितेन शब्दात् ।  
 ग्लाद् धराद् वा मरणं जनोऽयं प्राप्नोति दीनाननवधुमप्ये ॥१९२॥

है ॥१८३॥ ऐसा कहनेपर अत्यन्त समीचीन भक्तिसे युक्त भरतने गुरुके चरणाको नमस्कार कर  
 त्रिधिपूर्वक गृहस्थ धर्म प्रहृण किया ॥१८४॥ अनेक शास्त्रोंका ज्ञाता, धर्मके मर्मको जाननेवाला,  
 विनयवान् और श्रद्धा गुणसे युक्त भरत अत्र साधुओंके लिए विशेष रूपसे यथायोग्य दान देने  
 लगा ॥१८५॥ उत्तम आचरणके पालनमें तत्पर रहनेवाला भरत हृदयमें सम्यग्दर्शनरूपी रत्नको  
 धारण करता हुआ विराल राज्यका पालन करता था ॥१८६॥ गुणोंके सागररूप भरतका  
 प्रताप और अनुराग दोनों ही विना किसी रुकावटके समस्त पृथिवीमें भ्रमण करते थे ॥१८७॥  
 हमने त्रेत्रियोंके समान कान्तिको धारण करनेवाली डेढ सौ स्त्रियों थीं फिर भी वह उनमें  
 आमत्तिको प्राप्त नहीं होता था । जिस प्रकार कमल जलमें रहकर भी उसमें आसक्त नहीं होता  
 है वसी प्रकार यह उन स्त्रियोंके बीच रहता हुआ भी उनमें आसक्त नहीं था ॥१८८॥

गौतमरामाजी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! भरतके मनमें सदा यही चिन्ता विद्यमान रहती  
 थी कि मैं निर्मन्थ दीक्षा कब धारण करूँगा और परिग्रहसे रहित हो पृथिवीपर विहार करता  
 हुआ घोर तप कब करूँगा ? ॥१८९॥ पृथिवीतलपर वे धीर धीर मनुष्य धन्य हैं जो सर्व  
 परिग्रहका त्यागकर तथा तपोत्रयसे समस्त कर्मोंको भ्रम कर सन्तोषरूपी सुत्रसे श्रेष्ठ मोक्ष पदको  
 प्राप्त हो चुके हैं ॥१९०॥ एक मैं पापी हूँ जो समस्त जगत्को सृजन्महुर देरता हुआ भा सत्सारेके  
 दुःखमें मग्न हूँ । इस सत्सारे जो मनुष्य पूर्वोक्त कालमें देरता गया है वही अपराह कालमें नहीं  
 दिखाई देता फिर भी आश्चर्य है कि मैं मूढ बना हूँ ॥१९१॥ दीन हीन सुखको धारण करनेवाले  
 बन्धुजनाके धोचमं चैठा हुआ यह प्राणो सर्पसे, जलसे, विपसे, अग्निसे, वज्रसे, शत्रुके

## उपजातिः

बहुप्रकारैर्मरणैर्जनोऽयं प्रतर्क्यते दुःखसहस्रभागी ।  
 'क्षाराणवस्येव तटे प्रसुप्तो मत्तोऽतिवेगप्रसूतोमिंजालिः ॥११३॥  
 विधाय राज्यं घनपापदिग्धो हा क प्रपत्ये नरकं तु घोरम्<sup>१</sup> ।  
 शरासिचक्रागतगान्धकारं किं वा नु तिर्यक्त्वमनेकयोनिम् ॥११४॥  
 लब्ध्वापि जैन समयं यवेत्तन्मनो मदीयं<sup>२</sup> दुरितानुबद्धम् ।  
 करोति नो विस्पृहतामुपेयं विमुक्तिदत्तं निरगार्यमम् ॥११५॥  
 एव च चिन्तां सततं प्रपन्नो दुष्कर्मविध्वंसनहेतुभूताम् ।  
 पुराणनिर्ग्रन्थकथाप्रसक्तो ददर्श राजा न रविं न चन्द्रम् ॥११६॥

इत्यार्षे रविपेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते दशरथरामभरतानां प्रव्रज्यावनप्रस्थानराज्याभिधानं  
 नाम द्वात्रिंशत्तमं पर्वं ॥३२॥

द्वारा छोड़े हुए शस्त्रसे, अथवा तीक्ष्ण शूलसे मरणको प्राप्त हो जाता है ॥११३॥ यह प्राणी अनेक प्रकारके मरणोंसे हजारों प्रकारके दुःख भोगता हुआ भी निश्चिन्त बैठता है सो ऐसा जान पड़ता है मानो कोई मत्त मनुष्य वेगसे फैलनेवाली लहरोंके समूहसे निर्भय हो लवणसमुद्रके तटपर सोया है ॥११४॥ हाय हाय, मैं राज्य कर तीव्र पापसे लिप्त होता हुआ जहाँ बाण, सङ्ग, चक्र आदि शस्त्र, तथा शालमली आदि वृक्षां और पहाड़ोंके कारण घोर अन्धकार व्याप्त है ऐसे किस भयंकर नरकमें पड़ूँगा अथवा अनेक योनियोंसे युक्त तिर्यञ्च पर्यायको प्राप्त होऊँगा ? ॥११५॥ मेरा यह मन जैनधर्मको पाकर भी पापोंसे लिप्त हो रहा है तथा निःस्पृहताको प्राप्त कर मोक्ष प्राप्त करानेमें समर्थ मुनिधर्मको धारण नहीं कर रहा है ॥११६॥ इस प्रकार जो पापकर्मके नाशमें कारणभूत चिन्ताको निरन्तर प्राप्त था तथा जो प्राचीन मुनियोंकी कथामें सदा लीन रहता था ऐसा राजा भरत न सूर्यकी ओर देखता था न चन्द्रमाकी ओर ॥११६॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविपेणाचार्य विरचित पद्मचरितमें राजा दशरथकी दीक्षा, रामका वनगमन, और भरतके राज्यभित्तिवृत्त, अर्थात्, करनेवाला चत्तीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥३२॥

ततो जनोपभोग्याना प्रदेशाना समीपत । रमणीयान् परिप्राप पद्मस्तापससश्रयान् ॥१॥  
 तापसा जटिलास्तत्र नानावल्कलधारिण । सुस्वादुफलसम्पूर्णा पादपा ह्रव भूरय ॥२॥  
 विशालपत्रसन्दृग्ना मन्का सविततिका । पलाशोदुम्बरीधाना प्लिकाभियुक्ता वृत्तिन् ॥३॥  
 अश्रुपत्रच्यवानेन शुष्यता पूरिताङ्गणा । वर्तयन्नि सुविभ्रष्टै रोमन्थ रानिता मृगी ॥४॥  
 सन्नेर्बहुभिमुक्ता रटन्नि सतत पटु । ललितोच्छ्रितपुष्पदण तार्णकेन कृतानिरा ॥५॥  
 पटन्निविशद् युक्ता शारिकाशुककौशिके । वारुधा पुष्परम्याणा द्यायामु समवस्थितै ॥६॥  
 कन्याभिर्घट्टै स्वादु धारिणा भ्रातृतेजितै । पूर्णालमालकैर्वालेस्तर्हभि कृतराजना ॥७॥  
 फलैर्बहुविधै पुष्पैर्वासितै स्वादुवारिभि । सादरै स्वागतस्वानै सार्धदानैस्तथाशनै ॥८॥  
 सम्भाषणै कुर्गदानै शयनैर्मुदुपल्लवै । तापमैहपचारैस्ते पूजिता भ्रमहारिभि ॥९॥  
 भातिथेया स्वभावेन ते हि सर्वत्र तापसा । रूपेष्वेव प्रकारेषु विशयेण मुमुक्षु ॥१०॥  
 उपिवा गच्छता तेया ययुर्माणेण तापसा । पापाणामपि तद्रूप द्रवाकुयात् किमन्यकै ॥११॥  
 शुष्कपत्राशिनस्तत्र तापसा वायुपायिन । सातारूपद्वहत्स्वान्ता धृति दूरेण तत्पुत्रु ॥१२॥

अथानन्तर राम मनुष्योंके उपभोगके योग्य स्थानोंसे हटकर तपस्विन्याके सुन्दर आश्रममें पहुँचे । वहाँ वृक्षोंके समान जटिल अर्थात् जटाधारी ( पद्ममें जड़ोंसे युक्त ), नाना प्रकारके वल्कलोंको धारण करनेवाले और खादिष्ट फलासे युक्त बहुतसे तापस रहते थे ॥१-१॥ उस आश्रममें अनेक मठ बने हुए थे जो विशाल पत्तोंसे ढाये थे । उनके आगे बैठनेके लिए चतूतरे थे, जो एक ओर कहीं रखी हुई पलाश तथा ऊमरकी लकड़ियोंकी गड़ियोंसे सहित थे ॥२॥ त्रिना जोसे बोये अपने आप उत्पन्न होनेवाले धान उनके आँगनोंमें सूख रहे थे तथा निरन्तरतासे रोमन्थ करते हुए हरिणासे वे सुशोभित थे ॥३॥ निरन्तर जोर-जोरसे रटनेवाले जटाधारी वालकोंसे युक्त गायकों वधुड़े अपनी सुन्दर पूँछ ऊपर उठाकर उन मठाके आँगनोंमें चीकड़ियों भर रहे थे ॥४॥ फलोंसे सुन्दर लताआकी छायामें बैठकर स्पष्ट उच्चारण करनेवाले तोता मैना तथा चल्क आदि पक्षियोंसे वे मठ सहित थे ॥५॥ कन्याओंने भाई सम्म कर घडा द्वारा मधुर जलसे जिनकी क्यारियों भर दी थीं ऐसे छोटे-छोटे वृक्ष उन मठोंकी शोभा बढा रहे थे ॥६॥ उन तपस्वियोंने नाना प्रकारके मधुर फल, सुगन्धित पुष्प, मीठा जल, आदरसे भरे स्वागतके शब्द, अर्घके साथ दिये गये भोजन, मधुर सभाषण, कुटोका दान और कोमल पत्ताकी शय्या आदि थकावटको दूर करनेवाले उपचारसे उनका बहुत सम्मान किया ॥७-९॥ तापस लोग स्वभाजसे ही सर्वत्र अतिथि-सत्कार करनेमें निपुण थे फिर इस प्रकारके सुन्दर पुरणोंके मिलनेपर ता उनका वह गुण और भी अधिक प्रकट हो गया था ॥१०॥ रामलक्ष्मण वहाँ बसकर जत्र आगे जाने लगे तत्र वे तापस उनमें मार्गमें आ गये सो ठीक हा हैं क्योंकि उनका रूप पापाणोंको भी द्रवीभूत कर देता था फिर औरोंकी तो बात ही क्या थी ? ॥११॥ उस आश्रममें जो तापस रहते थे उन्होंने सुन्दर रूप कहीं देखा था ? वे सूखे पत्ते खाकर तथा वायुका पानकर जीवन निताते थे इसलिए सीताका रूप देखते ही उनका चित्त हरा गया जिससे उन्होंने धारजको

तानुबुस्तापसा वृद्धाः सान्त्ववाचा पुनः पुनः । तिष्ठतं यदि नास्माकमाश्रमे शृणुतं ततः ॥१३॥

सर्वातिथ्यसमेतास्त्वप्यष्टायो विचक्षणौ । विभ्रमं जानु मा गातां नारीष्विव नदीष्विव ॥१४॥

तापसप्रमदा दृष्ट्वा पत्र पत्रनिर्माणम् । लक्ष्मण च जहुः सर्वं कर्तव्यं शून्यविग्रहाः ॥१५॥

काश्रिद्रुःकण्ठया युक्तास्तन्मार्गाहितलोचनाः । व्रजन्यन्यापदेशेन सुदूरं विह्वलात्मिकाः ॥१६॥

मधुरं भुवते काश्रिद्रुवन्तोऽस्माकमाश्रमे । किं न तिष्ठन्तु सर्वं नः करिष्यामो यथोचितम् ॥१७॥

अतीत्य त्रीनितः कोशानरंभ्यानां जनोत्क्रिता । महानोकहसन्नुच्चा हरिशार्दूलसङ्कुला ॥१८॥

समित्कलप्रसूनार्थं तापसा अपि तां भुवम् । न व्रजन्ति महाभोमां दुर्भसूचोभिराचिताम् ॥१९॥

चित्रकूट, सुदुर्लभ, प्रविशालो महीधरः । भवद्भिः किं न विज्ञातः प्रकोपं येन गच्छतः ॥२०॥

तापस्योऽवरयमस्माभिर्गन्तव्यमिति चोदिताः । कृच्छ्रेण तां न्यवर्तन्त कुर्वाणास्तत्कार्यो चिरम् ॥२१॥

तवस्ते भूमहीभ्राप्रवाव्रातसुवर्कशम् । महातरुनमारूढवह्नीजालसमाकुलम् ॥२२॥

धुदतिक्रुद्धशार्दूलनखविचक्षणतापसम् । सिंहाहतद्विपोद्गोर्परकर्मोक्तिरुपिच्छुलम् ॥२३॥

उन्मत्तवारणस्कन्धतर्हस्कन्धमहातरुम् । देसरिध्वनिविभ्रस्तसमुःकोर्णवुरङ्गकम् ॥२४॥

सुमाजगरनिश्वासावायुपूरितगद्गरम् । वराहयूथपीताप्रविपर्माकृतपत्त्वलम् ॥२५॥

महामहिषश्याप्रभग्नवल्लोकसानुकम् । ऊर्ध्वीकृतमहाभोगसञ्चरज्ञोभिर्माणम् ॥२६॥

दूर छोड़ दिया ॥१२॥ वृद्ध तपस्वियोंने शान्त वचनोसे उनसे बार-बार कहा कि यदि आप लोग हमारे आश्रममें नहीं ठहरते हैं तो भी हमारे वचन सुनिये ॥१३॥ यद्यपि ये अटवियाँ सर्व प्रकारके आतिथ्य-सत्कारसे सहित हैं तो भी नारियों और नदियोंके समान इनका विरवास नहीं कीजिये। आप स्वयं बुद्धिमान हैं ॥१४॥ तपस्वियोंकी स्त्रियोंने कमलके समान नेत्रोंवाले राम और लक्ष्मणको देखकर अपने सब काम छोड़ दिये। उनका सर्व शरीर शून्य पड़ गया ॥१५॥ उक्कण्ठासे भरी कितनी ही विह्वल स्त्रियाँ उनके मार्गमें नेत्र लगाकर किसी अन्य कार्यके बहाने बहुत दूर तक चली गई ॥१६॥ कोई स्त्रियाँ मधुर शब्दोंमें कह रही थी कि आप लोग हमारे आश्रममें क्यों नहीं रहते हैं? हम आपका सब कार्य यथा योग्य रीतिसे कर देगी ॥१७॥ यहाँसे तीन कोश आगे चलकर मनुष्योंके संचारसे रहित, बड़े-बड़े वृक्षोंसे भरी तथा सिंह, व्याघ्र आदि जन्तुओंसे व्याप्त एक महाभटवो है ॥१८॥ वह अत्यन्त भयंकर है तथा ढाभकी सूचियोंसे व्याप्त है। ईंधन तथा फल-फूल लानेके लिए तपस्वी लोग भी वहाँ नहीं जाते हैं ॥१९॥ आगे अत्यन्त दुर्लभ, तथा बहुत भारी चित्रकूट नामका पर्वत है सो क्या आप जानते नहीं हैं जिससे क्रोधको प्राप्त हो रहे है ॥२०॥ इसके उत्तरमें राम-लक्ष्मणने कहा कि हे तपस्वियो! हम लोगोंको अवश्य ही जाना है। इस प्रकार कहने पर वे बड़ी कठिनाईसे लौटीं और लौटती हुई भी चिरकाल तक उन्हींकी कथा करती रही ॥२१॥

अथानन्तर उन्होंने ऐसे महावनमें प्रवेश किया कि जो पृथिवी और पर्वतोंके अग्रभाग के चट्टानोंके समूहसे अत्यन्त कर्कश था तथा बड़े-बड़े वृक्षोंपर चढ़ी हुई लताओंके समूहसे जो व्याप्त था ॥२२॥ जहाँ भूखसे अत्यन्त क्रुद्ध हुए व्याघ्र नखांसे वृक्षोंको क्षत-विक्षत कर रहे थे। जो सिंहोंके द्वारा मारे गये हाथियोंके गण्डस्थलसे निकले रुधिर तथा मोतियोंकी कीच से युक्त था ॥२३॥ जहाँ उन्नत हाथियोंने अपने स्कन्धोंसे बड़े बड़े वृक्षोंके स्कन्ध छील दिये थे। जहाँ सिंहोंको गर्जनासे भयभीत हुए मृग श्मशर-उधर दौड़ रहे थे ॥२४॥ जहाँ सोये हुए अजगरोंकी श्वासोच्छ्वास वायुसे गुच्छाएँ भरी हुई थीं। तथा सूकर समूहके मुखके अग्रभागके आघात से छोटे-छोटे जलशाय ऊँचे-नीचे हो रहे थे ॥२५॥ बड़े-बड़े भैंसाओंके सींगोंके अग्रभागसे जहाँ

तरधुत्तमारङ्गरिप्रभ्रान्तमलिकम् । कण्ठशयसपुच्छामप्रतम्पधमरीगणम् ॥२७॥  
 दर्पमगूरितधाविन्मुक्तमूवाविचित्रितम् । विपपुष्परजोव्राणवृगितानेकजन्तुम् ॥२८॥  
 गङ्गिहससमुत्तीदतरस्कन्धच्युतद्रवम् । उद्भ्रान्तगणयमातमग्नपल्लवजात्रम् ॥२९॥  
 नानापक्षिबुलकूरुजितप्रतिनादिनम् । शायामृगहृलान्तचलप्राम्भारपादपम् ॥३०॥  
 तीव्रवेगगिरिध्रोत शतनिर्दारितर्क्षमम् । वृक्षाप्रविस्फुरत्स्फीतदिवाकरकरोत्वरम् ॥३१॥  
 नानापुष्पकलाक्रीणं विचित्रामोदवासितम् । विविधोपधिसम्पूर्णं वनमस्यसमाकुलम् ॥३२॥  
 कचिन्नोश्च कचिपीत कचिद्रक्त हरिस्त्रवचिन् । पित्रारक्षायमन्यत्र विविशुर्विपिन महत् ॥३३॥  
 तत्र ते चित्रवृटस्य निर्कर्तव्यतिचार्यु । क्राडन्तो दशयन्तश्च सद्रस्त्रुनि परस्परम् ॥३४॥ (द्रादशभि)  
 फलानि स्वादुहारीणि स्वदमाना पदे पदे । गायन्तो मधुर हारि किन्नरोगा त्रपात्रम् ॥३५॥  
 पुष्पैर्जलस्थलोद्भूतैर्भूयन्तः परस्परम् । सुगन्धिभिर्द्रवैरङ्ग लिम्पन्तस्तरमम्बवै ॥३६॥  
 उद्यानमिव निर्घाता विक्रमकान्तिलोचना । स्वच्छन्दकृतमस्कारा सखलोचनतस्करा ॥३७॥  
 लतागृहेषु विश्रान्ता मुहुर्नयनहारिषु । कृतनानाकथापद्म किञ्चिन्नर्मविधायिन ॥३८॥  
 मजन्तो लीलया सुना निसर्गादतिरम्यया । पर्यटन्तो वन चाप त्रिदशा इव नन्दनम् ॥३९॥  
 पचोनै पञ्चभिर्मासैस्तमुद्देशमताय ते । जनै र्मनाकुल प्रापुद्देशमन्यन्तमुन्दरम् ॥४०॥

वामियोंके शिरपर खुद गये थे तथा जो वडे-गडे फण उंचे उठाकर चलनेवाले सोंपासे भयङ्कर था ॥२६॥ जहाँ भेड़ियोंके द्वारा मारे गये मृगोंके रुधिरपर मन्त्रियों भिन्न भिन्ना रहीं थीं और पट्टीली भाङ्गियोंमें पूँड़के बाल उलझ जानेसे जहाँ चमरी मृगोंके भ्रुण्ड बँचेन हो रहे थे ॥२७॥ जो अहङ्कारसे भरी सेहियोंके द्वारा छोड़ी हुई सूचियोंसे चित्रविचित्र था तथा विपपुष्पोंकी परागके सँवनेसे जहाँ अनेक जन्तु इधर-उधर घूम रहे थे ॥२८॥ जहाँ गंडा हाथियोंके गण्ड-स्थलोंके आघातसे खण्डित हुए वृत्तोंके तनोसे पानी भर रहा था तथा इधर-उधर दौडते हुए गणय-समूहने जहाँ वृत्तोंके पल्लव तोड़ डाले थे ॥२९॥ जहाँ नाना पक्षियोंके समूहकी मूर्ध्नि गूँज रही थी तथा वानर समूहके आक्रमणसे जहाँ वृत्तोंके उर्ध्वभाग हिल रहे थे ॥३०॥ तीव्र वेग से बहनेवाले सैकड़ों पहाड़ी भरनोसे जहाँ पृथिवी विदोषण हो गई थी तथा वृत्तोंके अग्रभागपर जहाँ सूर्यकी किरणोंका समूह देवीप्यमान होता था ॥३१॥ जो नाना प्रकारके फूलों और फलोंसे व्याप्त था, विचित्र प्रकारकी सुगन्धसे सुगन्धित था, नाना ओपधियोंसे परिपूर्ण था, और जहङ्गीर धान्योंसे युक्त था ॥३२॥ जो वहाँ नीला था, कहीं पीला था, कहीं लाल था, कहीं हरा था, और कहीं पिङ्गल वर्ण था ॥३३॥ वे तीनों महानुभाव वहाँ चित्रवृटके सुन्दर निर्भरोम क्रीडा करते, सुन्दर वस्तुएँ परस्पर एक दूसरेको दिखाते, स्यादिष्ट मनोहर फल खाते, पद पत्रपर किन्नरियोंको लज्जित करनेवाला हृदयहारी मधुर गान गाते, जल तथा स्थलमें उत्पन्न हुए पुष्पों से परस्पर एक दूसरेकी भूषित करते और वृत्तोंसे निकले हुए सुगन्धित द्रवसे शरीरको लिप्त करते हुए इस प्रकार भ्रमणकर रहे थे मानो उद्यानकी सैर करनेके लिए ही निकले हों । उनके सुन्दर नेत्र विकसित हो रहे थे, वे इन्द्रानुसार शरीरकी सजावट करते थे तथा प्राणियोंके नेत्रों का अपहरण करते थे ॥३४-३७॥ वे वार-वार नेत्रोंको हरण करनेवाले निपुणोंमें विश्राम करते थे, नाना प्रकारकी कथावार्ता करते थे और तरह तरहकी क्रीडाएँ करते थे ॥३८॥ स्वभावसे ही अत्यन्त सुन्दर लीलाके साथ गमन करते हुए वे उस सुन्दर वनमें इस प्रकार भ्रमण कर रहे थे जिस प्रकार कि नन्दन वनमें देव । ॥३९॥ इस प्रकार एक पक्ष कम पाँच मासमें वे उस स्थान को पारकर मनुष्योंसे भरे हुए अत्यन्त सुन्दर अवन्ती देशमें पहुँचे । वह देश गायोंकी गरवन्तो



गोघण्टारवसम्पूर्णं नानासस्योपशोभितम् । अवन्तांविषय स्फीतं ग्रामपत्तनसङ्कुलम् ॥४१॥  
 मार्गं तत्र कियन्त चिदतिक्रम्य जनोष्कृतम् । विषयैकान्तमापुस्ते पृथुं स्वाकारधारिणः ॥४२॥  
 , जायां न्यग्रोधजां श्रित्वा विश्रान्तास्ते परस्परम् । जगुः कस्माद्यं देशो दृश्यते जनवर्जितः ॥४३॥  
 सस्यानि कृष्टपच्यानि दृश्यन्तेऽत्रातिभूरिशः । उद्यानपादपाश्र्वेत्ये फलैः पुष्पैश्च शोभिताः ॥४४॥  
 पुण्ड्रेक्षुवाटसम्पन्ना ग्रामास्तुत्तावनिस्तियताः । सरांस्यच्छिन्नपद्मानि युक्तानि विविधैः खगैः ॥४५॥  
 अध्वाय घटकैर्भर्नैः शकटैश्च त्रिसङ्कटः । करण्डैः कुण्डकैर्दण्डैः कुण्डिकाभिः कटासनैः ॥४६॥  
 विकीर्णास्तण्डुला मापा मुद्गाः सूर्पाद्यस्तथा । वृद्धोच्चोयं मृतो जागर्गोप्यस्योपरि तिष्ठति ॥४७॥  
 देशोऽयमतिविस्तारणः शोभने न जनोष्कृतः । अत्यन्तविषयासन्नो यथा दीक्षासमाश्रितः ॥४८॥  
 ततोऽयन्तमृदुस्पर्शं निषण्ण रत्नकम्बले । देशोद्वासकृतालाप राम पार्श्वस्थक्रामुकम् ॥४९॥  
 पद्मगर्भं द्वाभ्यां पाणिभ्यां पूजितेहिता । द्वाग्विभ्रमयितुं सक्ता सीता प्रेमाम्बुदीर्घिका ॥५०॥  
 उत्सार्यं चोहलप्रां तां सादरक्रमकोविदः । सबाह्वितुमासक्तो लक्ष्मणो ज्यायसोदितः ॥५१॥  
 निरूपय ब्रचित्वावद् ग्राम नगरमेव वा । घोष वा लक्ष्मण क्षिप्रं श्रान्तेय हि प्रजावती ॥५२॥  
 ततोऽन्यस्यातितुङ्गस्य वृक्षस्योर्ध्वसमाश्रितः । दृश्यते किञ्चिदत्रैति पद्मोनेच्यत लक्ष्मणः ॥५३॥  
 सोवोचदेव परयामि रूपपर्वतसन्निभान् । शारदाभ्रसमुत्तुङ्गैः शृङ्गजालैर्विराजितान् ॥५४॥

मे वेंचे घण्टाओंके शब्दसे परिपूर्ण था, नाना प्रकारके धान्यके सुशोभित था, विस्तृत था और ग्राम तथा नगरोंसे व्याप्त था ॥४०-४१॥

तदनन्तर सुन्दर आकारको धारण करनेवाले वे तीनों, कितना ही मार्ग उल्लंघकर एक अतिशय विस्तृत ऐसे स्थानमें पहुँचे जिसे मनुष्य छोड़कर भाग गये थे ॥४२॥ एक घट वृक्षकी छायामें बैठकर विश्राम करते हुए वे परस्पर कहने लगे कि यह मनुष्योंसे रहित क्यों दिखाई देता है ? ॥४३॥ यहाँ अनेको धानके पके खेत दिखाई दे रहे हैं, बगीचोंके ये वृक्ष फलों और फूलोंसे सुशोभित हैं ॥४४॥ ऊँची भूमिपर बसे गाँव पाँडा और ईसोके वागोंसे युक्त है, जिनके कमलोंको किसीने तोड़ा नहीं है ऐसे सरोवर नाना प्रकारके पक्षियोंसे युक्त हैं ॥४५॥ यह मार्ग फूटे घड़ों, गाड़ियों, पिटारों, फूँडों, कुण्डिकाओं और चटाई आदि आसनोंसे व्याप्त है ॥४६॥ यहाँ चावल, उड़द, मूँग तथा सूप आदि बिखरे हुए हैं और इधर यह बूढ़ा बैल मरा पड़ा है तथा इसके ऊपर फटी पुरानी गोन लदी हुई है ॥४७॥ यह इतना बड़ा देश मनुष्योंसे रहित हुआ ठीक उस तरह शोभित नहीं होता जिस प्रकार कि कोई दीक्षा लेनेवाला साधु विषयोंकी आसक्तिमें पड़कर शोभित नहीं होता ॥४८॥

तदनन्तर देशके ऊँड़ होनेकी चर्चा करते हुए राम अत्यन्त कोमल स्पर्शवाले रत्नकम्बल पर बैठ गये और पास ही उन्होंने अपना धनुष रख लिया ॥४९॥ जो प्रशस्त चेष्टाकी धारक और प्रेमरूपी जलकी मानो वापिका ही थी ऐसी सीता कमलके भीतरी दलके समान कोमल हाथोंसे शीघ्र ही रामको विश्राम दिलाने अर्थात् उनके पाद मर्दन करनेके लिए तैयार हुई ॥५०॥ तब आदरपूर्ण क्रमको जाननेवाला लक्ष्मण, बड़े भाईकी आज्ञा प्राप्त कर जाँघोंसे लगी सीताको अलग कर स्वयं पादमर्दन करने लगा ॥५१॥ रामने लक्ष्मणसे कहा कि हे भाई ! तेरी यह भावज बहुत थक गई है इसलिए शीघ्र ही किसी गाँव, नगर अथवा अहीरोंकी बस्तीको देखो ॥५२॥ तब लक्ष्मण एक बड़े वृक्षकी शिखरपर चढ़ा रामने उससे पूछा कि क्या यहाँ कुछ दिखाई देता है ? ॥५३॥ लक्ष्मणने कहा कि हे देव ! जो चोंदीके पर्वतके समान हैं, शरद ऋतुके

प्राग्भारसिंहकर्णस्थजिननिम्बोपलक्षितान् । प्रामादान् परमाद्यानान् प्रचलद्बलध्वजान् ॥५५॥  
 प्रामांश्रायतवापीभिः सस्यैश्च कृतप्रेषणान् । नगराणि च गन्धर्वैरुपैर्विभ्रन्ति तुह्ययनाम् ॥५६॥  
 षट्पिण्डोचरमात्रे तु सन्नियेसाः सुभूरयः । दरयन्ते न पुनः कश्चिद्विक्रान्त्यालोचयते जनः ॥५७॥  
 ममं किं परिवर्गेण विनष्टाः स्युरिह प्रजाः । उपानांताः किमु म्लेच्छैर्द्विद्विंशं क्रूररामैः ॥५८॥  
 एकस्तु पुरुषाकारो दरयते चातिदूरतः । स्थाणुर्न पुरुषो य तु ननु वैप चलाकृतिः ॥५९॥  
 यात्रेप किमुतायाति परशाम्यागच्छतीत्ययम् । तावदायातु मार्गेण जानाम्येनं विशेषतः ॥६०॥  
 अयं मृग इवोद्विग्नो द्रुतमायाति मानवः । रूपोद्धर्मध्वजो दीनो मलोपहतविग्रहः ॥६१॥  
 पूर्वोच्छ्वादितवचस्को वसानश्चौरपण्डकम् । स्फुटिताग्निः स्रवस्त्रेदो दशोयन् पूर्वदुष्कृतम् ॥६२॥  
 धानयेममितः क्षिप्रमिति पत्रेन भाषितः । अवतीर्य गतस्तस्य सत्रिसमय इवान्तिकम् ॥६३॥  
 दृष्ट्वा तं पुरुषो हृष्टरोमा विस्मयपूरितः । निलग्नितगतितः किञ्चिदकरोदिति मानसे ॥६४॥  
 समाकम्पितबुद्धोऽप्यमवतीर्य समागतः । किमिन्द्रो बहुरो दैव्यः किं त्वगः किन्नरो नरः ॥६५॥  
 वैवस्वतः शशाङ्को नु बह्विवंश्रवणो नु किम् । भास्करो नु भुव प्रातः कोऽयमुत्तमविग्रहः ॥६६॥  
 इति ध्यायन् महाभीत्या मुकुलोक्त्य लोचने । निश्चेष्टावयवो भूमौ पपाताव्यकचेतनः ॥६७॥  
 उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्र त्वं मा भैपीरिति भाषितः । प्रत्यागतशक्तिर्नितो लक्ष्मणेनान्तिकं गुरोः ॥६८॥

वाङ्मोके समान ऊँचे शिखरोंसे सुरोभिमत हैं, जो उपरितन अन्न भागपर जिन-प्रतिमाओंसे सहित हैं, उत्तमोत्तम वगीचोंसे युक्त हैं तथा जिनपर सफेद ध्वजाएँ फहरा रही हैं ऐसे जिनमन्दिरों को देख रहा हूँ ॥५४-५५॥ लम्बी-चौड़ी वापिकाओं तथा धानके हरे-भरे खेतोंसे घिरे गाँव और गन्धर्वनगरोंकी तुलना धारण करनेवाले नगर भी दिखाई दे रहे हैं। इस प्रकार बहुत भारी वसतिकाएँ दिखाई दे रही हैं परन्तु उनमें आठमी एक भी नहीं दिखाई देता ॥५६-५७॥ क्या यहाँकी प्रजा अपने समस्त परिवारके साथ नष्ट हो गई है अथवा क्रूर कर्म करनेवाले म्लेच्छोंने उसे बन्दी बना लिया है ? ॥५८॥ बहुत दूर, एक पुरुष जैसा आकार दिखाई देता है जो ठूँठ नहीं है पुरुष ही मालूम होता है क्योंकि उसकी प्रकृति चञ्चल है ॥५९॥ परन्तु यह जा रहा है या आ रहा है इसका पता नहीं चलता। कुछ देर तक गौरसे बरसनेके बाद लक्ष्मणने कहा कि 'यह आ रहा है' यही जान पड़ता है, अच्छा, मार्गपर आने दो तभी इसे विशेषतासे जान सकूँगा ॥६०॥ लक्ष्मणने फिर देखकर कहा कि यह पुरुष मृगके समान भयभीत होकर शीघ्र ही आ रहा है, इसके शिरके बाल रुखे तथा पड़े हैं, दीन है, इसका शरीर मँलसे दूषित है, लम्बी दाढ़ीसे इसका वक्षःस्थल ढक रहा है, यह फटे चिथड़े पहिने है, इसके पैर फटे हुए हैं, पसीना भर रहा है और पूर्वोपार्जित पाप कर्मको दिखा रहा है ॥६१-६२॥ रामने लक्ष्मणसे कहा कि इसे शीघ्र ही यहाँ बुलाओ। तब लक्ष्मण नीचे उतरकर आश्वर्यके साथ उसके पास गया ॥६३॥ लक्ष्मणको देखकर उस पुरुषको रोमाञ्च उठ आये। वह आश्चर्यसे भर गया और अपनी गति कुछ धीमी कर मनमें इस प्रकार विचार करने लगा ॥६४॥ कि यह जो वृद्धको कम्पित करनेवाला नीचे उतरकर आया है सो क्या इन्द्र है ? या वरुण है ? या दैत्य है ? या नाग है ? या किन्नर है ? या मनुष्य है ? या यम है ? या चन्द्रमा है ? या अग्नि है ? या कुबेर है ? या पृथिवी पर आया सूर्य है ? अथवा उत्तम शरीरका धारी कौन है ? ॥६५-६६॥ इस प्रकार विचार करते-करते उसके नेत्र महाभयसे बन्द हो गये, शरीर निश्चेष्ट पड़ गया और वह मूर्च्छित होकर पृथिवीपर गिर पड़ा ॥६७॥ यह देखा लक्ष्मणने कहा कि भद्र ! उठ-उठ डर मत। कुछ देर बाद जब चैतन्य हुआ तब लक्ष्मण उसे रामके पास ले गया ॥६८॥

ततः सौम्याननं राममभिराम समन्ततः । दृष्ट्वा कान्तिसमुद्रस्थं चक्षुरुत्सववारिणम् ॥६६॥  
 सीतयां शोभित पार्श्ववर्तिन्यातिविनांतया । मुमोच पुरुषः सद्यः क्षुधादित्रपरिभ्रमम् ॥७०॥  
 ननाम चाञ्जलिं कृत्वा शिरसा स्पृष्टभूतलः । द्वायायां भव विश्वस्त इति चोक्त उपाविशत् ॥७१॥  
 अष्टवृक्षत ततः पद्मः चरन्निव गिरामृतम् । आगतोऽसि कुतो भद्र को वा किंज्ञकोऽपि वा ७२॥  
 सोऽवोचद् दूरतः स्थानाङ्घ्रारगुप्तिः<sup>१</sup> कुटुम्बिकः । देशोऽयं विजयनः कस्मादिति पृष्टोऽददत् पुनः ॥७३॥  
 सिंहोदर इति ख्यातो देवोऽस्युज्जयिनीपतिः । प्रतापप्रणतोदारसामन्तः सुरसन्निभः ॥७४॥  
 दशाङ्गपुरनाथोऽस्य वज्रकर्णध्रुनिर्महान् । अत्यन्तदयितो भृत्यः कृतानेकाद्भुतक्रियः ॥७५॥  
 मुञ्च वा त्रिभुवनार्धांशं भगवन्त जिनाधिपम् । निर्ग्रन्थांश्च नमस्कारं न करोत्यपरस्य सः ॥७६॥  
 साधुप्रसादतस्तस्य सम्यग्दर्शनमुत्तमम् । पृथिव्यां स्वातिमायातं देवेन किमु न श्रुतम् ॥७७॥  
 प्रसादः साधुना तस्य कृतः कथमतीरतः । लक्ष्मीपरकुमारेण पद्माभिप्रायसूरिणा ॥७८॥  
 उवाच पथिको देव समासात् कथयाम्यहम् । प्रसादः साधुना तस्य यथायमुपपादितः ॥७९॥  
 अन्यदा वज्रकर्णोऽयं दशारण्यसमाश्रिताम् । प्राविशत् सत्वसम्पूर्णमिदं वै भृगुयवतः ॥८०॥  
 जन्मनः प्रभृति मूरः स्वातोऽयं निष्टपेऽखिले । हृषीकेशशगो मूढः सदाचारपराङ्मुखः ॥८१॥  
 लोभसंज्ञासमासक्तः सूक्ष्मतत्त्वान्धचेतनः<sup>२</sup> । भोगोद्भवमहागर्वपिशाचप्रहृदयितः ॥८२॥  
 तेन च भ्रमता तत्र कर्णिकारवानन्तरे । दृष्टः शिलातले साधुर्दानः शममुत्तमम् ॥८३॥  
 परित्यक्त्वावृत्तिर्ग्रामे समाप्तनियमस्थितिः । विहङ्ग इव निरशङ्कः वैसरीव भयोऽज्जितः ॥८४॥

तदनन्तर जिनका मुख सौम्य था, जो सर्व प्रकारसे सुन्दर थे, मानो कान्तिके समुद्रमें ही स्थित थे, नेत्रोंको उत्सव प्रदान करनेवाले थे, और पासमें बैठी हुई अतिशय नम्र सीतासे सुशोभित थे ऐसे रामको देखकर उस पुरुषने क्षुधा आदिसे उत्पन्न हुए भ्रमको शीघ्र ही छोड़ दिया ॥६६-७०॥ उसने हाथ जोड़ भक्त रूपसे भूमिका स्पर्श करते हुए नमस्कार किया तथा 'द्वायामें विश्रामकर' इस प्रकार कहे जाने पर वह बैठ गया ॥७१॥ तदनन्तर रामने धाणीसे मानो अमृत भ्राते हुए उससे पूछा कि हे भद्र ! तू कहाँसे आ रहा है और तेरा क्या नाम है ? ॥७२॥ उसने कहा कि मैं बहुत दूरसे आ रहा हूँ और सौरमुनि मेरा नाम है । 'यह देश मनुष्योंसे रहित क्यों है ?' इस प्रकार रामके पूछनेपर वह पुनः कहने लगा ॥७३॥ कि जिसने अपने प्रतापसे बड़े-बड़े सामन्तोंको नग्रीभूत कर दिया है तथा जो देवोंके समान जान पड़ता है ऐसा सिंहोदर नामसे प्रसिद्ध उज्जयिनी नगरीका राजा है ॥७४॥ दशाङ्गपुरका राजा वज्रकर्ण जिसने कि अनेक आश्चर्यजनक कार्य किये हैं इसका अत्यन्त प्रिय सेवक है ॥७५॥ वह तीन लोकके अधिपति जिनेन्द्रभगवान् और निर्ग्रन्थ मुनियोंकी छोड़कर किसी अन्यको नमस्कार नहीं करता है ॥७६॥ 'साधुके प्रसादसे उसका उत्तम सम्यग्दर्शन पृथिवीमें प्रसिद्धिको प्राप्त हुआ है' यह क्या आपने नहीं सुना ? ॥७७॥ इसी बीचमें रामका अभिप्राय जाननेवाले लक्ष्मणने उससे पूछा कि हे भाई ! साधुने इस पर किसी तरह प्रसाद किया है ? सो तो बत ॥७८॥ इसके उत्तरमें उस पथिकने कहा कि हे देव ! साधुने जिस तरह इसपर प्रसाद किया यह मैं संक्षेपसे कहता हूँ ॥७९॥

एक समय शिकार खेलनेके लिए उद्यत हुआ वज्रकर्ण दशारण्यपुरके सर्मापमें स्थित जीवोंसे भरी अटवीमें प्रविष्ट हुआ ॥८०॥ यह वज्रकर्ण जन्मसे ही लेकर समस्त संसारमें अत्यन्त क्रूर प्रसिद्ध था, इन्द्रियोंका वशागामी था, मूर्ख था, सदाचारसे विमुक्त था, लोभ अर्थात् परिग्रह संज्ञामें आसक्त था, सूक्ष्म तत्त्वके विचारसे शून्य था, और भोगोंसे उत्पन्न महागर्वरूपी पिशाच प्रहसे दूषित था ॥८१-८२॥ उस अटवीमें घूमते हुए उसने कनेर वनके बीचमें शिलापर विद्यमान उत्तम शान्तिके धारक एक साधु देखे ॥८३॥ उन साधुके ऊपर कोई प्रकारका

स प्रावभिः करिर्भानोरतितसः समन्ततः । अग्न्याख्यांशतैस्तौर्वैदुर्जनस्यैव सज्जनः ॥८५॥  
 अथारूढः स त इष्ट्वा कृतान्तममदर्शनं । रत्नप्रमत्तगम्भीरं परमार्थनिवेशनम् ॥८६॥  
 पापघातकर सर्वभूतकारुण्यमद्गतम् । कुन्तपाणिरुवाचैव भूषित श्रमगन्धिया ॥८७॥  
 अत्र किं स्थिते साधो सोऽसौचद्वितमामनः । अनाचरितरूपं धम्मन्मान्तरगतैष्वपि ॥८८॥  
 जगद् विहसन् भूच्छन्दनया सखवस्थया । न किञ्चिदपि ते सौख्यं कीदृशं हितमामनः ॥८९॥  
 सुनलावण्यरूपस्य कामार्थरहितस्य च । अचेत्स्यासहायन्य कीदृशं हितमामनः ॥९०॥  
 स्नानालङ्काररहितैः परपिण्डोपजोविभिः । भवाद्यशैर्नरेः कीदृक् स्थिते हितमामनः ॥९१॥  
 इष्ट्वा तं कामभोगार्तं दयावान् संयतोऽनृत् । हितं प्रच्छसि किं त्व मां द्विजारापाशजन्मम् ॥९२॥  
 इन्द्रियैर्विद्वितान् प्रच्छ हितोपायगहिष्कृतान् । मोहेनायन्तवृद्धेन आम्यन्ते ये भवाभुवौ ॥९३॥  
 हन्ता सखसहस्राणामामानर्थपरायणः । यास्येव नरक घोरमवश्यं नष्टचेतनः ॥९४॥  
 नूनं त्वया न विज्ञाता घोरा नरकभूमयः । उत्थायोन्याय पापेषु<sup>३</sup> यपरा कुरपे रतिम् ॥९५॥  
 पृथिव्यः सति सप्तयो नरकाणां सुद्राहणाः । सुदुर्गन्था सुदुष्पेचाः सुदुस्तरां सुदुस्तराः ॥९६॥  
 तीक्ष्णायस्कीलसङ्कीर्णानां नानायन्त्रसमाकुल्याः । क्षुरगाराद्रिसयुक्तास्तसलोद्दतलाधिकाः ॥९७॥  
 रौरवाद्यवदान्मता महाध्वान्ता महाभया<sup>४</sup> । असिपत्रवन्नच्छत्रा महाहारनदीयुताः ॥९८॥

आवरण नहीं था, वे धाममे बैठकर अपना नियम पूर्ण कर रहे थे, पत्नीके समान निःशब्द और सिंहके समान निर्भय थे ॥८५॥ जिस प्रकार दुर्जनके अत्यन्त तीखे सैकड़ों कुबचनोसे सज्जन सन्तप्त होता है उसी प्रकार वे साधु भी नीचे पत्थरों और ऊपरसे सूर्यकी किरणोंके द्वारा सब ओरसे सन्तप्त हो रहे थे ॥८६॥ जो यमराजके समान दिखाई देता था ऐसे बज्रकर्णने घोड़ेपर चढ़े-चढ़े, समुद्रके समान गम्भीर, परमार्थके ज्ञाता, पापोंका विनाश करनेवाले, समस्त प्राणियों की दयासे युक्त एवं श्रमण लक्ष्मीसे विभूषित साधुसे भाला हाथमें लेकर कहा ॥८६-८७॥ कि हे साधो ! यह क्या कर रहे हो ? साधुने उत्तर दिया कि जो पिछले सैकड़ों जन्मोंमे भी नहीं किया जा सका ऐसा आत्माका हित करता हूँ ॥८८॥ राजा बज्रकर्णने हँसते हुए कहा कि इस अवस्थामे तो तुम्हें कुछ भी सुख नहीं है फिर आत्माका हित कैसा ? ॥८९॥ जिसका लावण्य और रूप नष्ट हो गया है, जो काम और अर्थसे रहित है, जिसके शरीरपर एक भी वस्त्र नहीं है तथा जिसका कोई भी सहायक नहीं उसका आत्महित कैसा ? ॥९०॥ स्नान तथा अलङ्कारसे रहित एवं परके द्वारा प्रदत्त भोजनपर निर्भर रहनेवाले आप जैसे लोगोंके द्वारा आत्महित किस प्रकार किया जाता है ? ॥९१॥ कामभोगसे पीडित राजा बज्रकर्णको देखकर दयालु मुनिराज बोले कि तू आशापाशरूपी बन्धनको तोड़नेवाले मुझसे हित क्या पूछ रहा है ? उनसे पूछ कि जो इन्द्रियोंके द्वारा ठगे गये हैं, हितके उपायोसे दूर है और अत्यन्त बढ़े हुए मोहसे जो संसार-सागरमे भ्रमण कर रहे हैं ॥९२-९३॥ यह जो तू हजारों प्राणियोंका घात करने वाले, आत्माके अनर्थ करनेमे तत्पर एवं सद्-असद्के विचारसे रहित है सो अवश्य ही भयङ्कर नरकमे पड़ेगा ॥९४॥ जो तू उठ-उठकर पापोंमे परम प्रीति कर रहा है सो जान पड़ता है कि तूने भयङ्कर नरककी पृथिवियोंको अब तक जाना नहीं है ॥९५॥ इस पृथिवीके नीचे नरकोकी सात पृथिवियों हैं जो अत्यन्त भयङ्कर हैं, अत्यन्त दुर्गन्धसे युक्त हैं, जिनका देखना अत्यन्त कठिन है, जिनका स्पर्श करना अत्यन्त दुःखदायी है, जिनका पार करना अत्यन्त दुःखकारक है ॥९६॥ लोहेके तीक्ष्ण काँटोंसे व्याप्त हैं, नाना प्रकारके यन्त्रोंसे युक्त हैं, क्षुराकी धाराके समान पीने पर्यन्तसे युक्त हैं, जिनका तल भाग तपे हुए लोहेसे भी अधिक दुःखदायी है ॥९७॥ जो रौरव आदि विलोसे युक्त हैं, महाअन्धकारसे भरी हैं, महा भय उत्पन्न करनेवाली हैं, असिपत्र-

पापकर्मपरिक्रष्टैर्गैरिव निरङ्कुशैः । तत्र दुःखसहस्राणि प्राप्यन्ते पुरुषार्थमे ॥१६६॥  
 भवन्तमेव पृच्छामि त्वाद्दशैर्विपयानुरैः । क्रियते पापससत्तैः कादश हितमामन ॥१००॥  
 इन्द्रियप्रभव सौत्प किम्पाकसदश कथम् । अहन्यहन्युपादाय मन्यते हितमामन ॥१०१॥  
 हित करोत्यसौ स्वस्य भूताना यो दयापरः । दीक्षितो गृहघातो वा बुधो निर्मलमानस ॥१०२॥  
 कृत तैरामन श्रेयो ये महादत्ततपराः । अधवाणुप्रतैर्युक्ता शेषा दुःखस्य भाजनम् ॥१०३॥  
 परलोकादिहैतस्त्व कृत्वा सुकृतमुत्तमम् । इहलाज्जेषुना पाप कृत्वा यास्यसि दुर्गतिम् ॥१०४॥  
 अमा निरामस क्षुद्रा वराका क्षितिशायिनः । अनथा लोलनयना निचोद्विग्ना वने मृगा ॥१०५॥  
 आरण्यनृणपानायकृतविग्रहधारिणः । अनेकदुःखसङ्घना पूर्वदुष्कृतभोगिनः ॥१०६॥  
 रात्रावपि न विन्दन्ति निद्रा चकितचेतसः । साध्वचारैर्न युक्त ते कुलजैर्हिसितु नरैः ॥१०७॥  
 अतो ध्रुवामि राजस्त्वा यदाच्छस्यामनो हितम् । त्रिधा हिंसा परित्यज्य कुर्वहिंसा प्रयत्नत ॥१०८॥  
 उद्वैरियुपदेशोद्यैर्यदासौ प्रतिबोधितः । तदा प्रणतिमायात फलैरिव महारहः ॥१०९॥  
 उत्तार्य प्रसूत संसेनानुपाडितभूतलः । प्रणनामोत्तमाङ्गेन सुसाधु रचिताञ्जलि ॥११०॥  
 निराच्य सौम्यया इन्द्र्या तमेव चाभ्यनन्दयत् । श्लाघ्योऽय वाञ्छित सिद्धो मुनिस्त्यक्तपरिग्रहः ॥१११॥  
 शकुन्तयो मृगाश्चामा धन्या वननिवासिनः । शिलातलनिषण्ण ये पर्यन्ताम समाहितम् ॥११२॥  
 अतिधन्याऽहमप्यथ मुक्त पापेन कर्मणा । यदेत त्रिजगद्द्वेष प्राप्त साधुसमागमम् ॥११३॥

वनसे आच्छादित हैं और अत्यन्त खारे जलसे भरी नदियासे युक्त हैं ॥६८॥ जो पाप कार्योंसे सक्लेशको प्राप्त होते रहते हैं तथा जो हाथियाके समान निरङ्कुरा अर्थात् स्वच्छन्द रहते हैं ऐसे नीच पुरुष उन पृथिवियोंमें हजारों दुःख प्राप्त करते हैं ॥६९॥ मैं आपसे ही पूछता हूँ कि तुम्हारे समान विपयोसे पीडित तथा पापीम लीन मनुष्य आत्माका केसा हित करते हैं ? ॥१००॥ किंपाक फलके समान जो इन्द्रियजय सुख है उसे प्रतिदिन प्राप्त कर तू आत्माका हित मान रहा है ॥१०१॥ अरे ! आत्माका हित तो वह करता है जो प्राणियोंपर दया करनेमें तत्पर रहता हो, विवेकी हो, निर्मल अभिप्रायका धारक हो, मुनि हो अथवा गृहस्थ हो ॥१०२॥ आत्माका कल्याण तो उन्होंने किया है जो महाव्रत धारण करनेमें तत्पर रहते हैं अथवा जो अणुव्रतासे युक्त होते हैं, शेष मनुष्य तो दुःखके ही पात्र है ॥१०३॥ तू परलोकमें उत्तम पुण्य कर यहाँ आया है और अब इस लोकमें पाप कर दुर्गतिको जायगा ॥१०४॥ ये वनके निरपराधी, क्षुद्र, दयनीय मृग जो अनाथ हैं, चञ्चल नेत्राके धारक हैं, निरन्तर उद्विग्न रहते हैं, जङ्गलके तृण और पाना से बने शरीरको धारण करते हैं, अनेक दुःखोंसे व्याप्त हैं, पूर्व भवसे किये पापको भोग रहे हैं और भयभीत होनेके कारण जो रात्रिमें भी निद्राको नहीं प्राप्त होते हैं, उत्तम आचारके धारक कुलीन मनुष्योंके द्वारा मारे जानेके योग्य नहीं हैं ॥१०५-१०७॥ इसलिये हे राजन् ! मैं तुम्हसे कहता हूँ कि यदि तू अपना हित चाहता है तो मन वचन कायसे हिंसा छोड़कर प्रयत्नपूर्वक अहिंसाका पालन कर ॥१०८॥ इस प्रकार हितकारी उपदेशात्मक वचनोंसे जब राजा सम्बोधित गया तब वह फलासे वृत्तके समान नम्रताको प्राप्त हो गया ॥१०९॥ वह घोड़ेसे उतरकर पैदल चलने लगा तथा पृथिवीपर घुटने टेक, हाथ जोड़ शिर झुकाकर उसने उन उत्तम मुनिराजको नमस्कार किया ॥११०॥ सौम्य दृष्टिसे दर्शन कर उनका इस प्रकार अभिनन्दन किया कि अहो ! आज मैंने परिग्रहहित प्रशसनीय तपस्वी मुनिराजके दर्शन किये ॥१११॥ वनमें निवास करने वाले ये पत्नी तथा हरिण धन्य हैं जो शिलातलपर विराजमान इन ध्यानस्थ मुनिका दर्शन करते हैं ॥११२॥ आज जो मैं त्रिभुवनके द्वारा वन्दनीय इस साधु समागमको प्राप्त हुआ हूँ सो धन्य

बन्धुस्नेहमय बन्ध द्विधा ज्ञाननर्पेरयम् । केसराव विनिःक्रान्त प्रभु ससारपत्रारात् ॥११४॥  
 अनेन साधुना परय वर्षाहुतमनोरिपुम् । नाम्नापकारयोगेन शीलस्थान प्रपालयते ॥११५॥  
 अह पुनरत्साग्ना तावदस्मिन् गृहाधमे । अणुवत्विर्था रम्ये करोमि परमा धृतिम् ॥११६॥  
 इति सच्चिन्म्य जग्राह तस्मात्साधुंहरिपतिम् । चकारावब्रह्मै चैव भावप्लावितमानग ॥११७॥  
 देवदेव चिन मुक्त्वा परमानाममस्थुतम् । निर्प्रन्यारथ महासागाश्च तमाम्पपरानिति ॥११८॥  
 प्रातिवर्धनमज्ञस्य मुनेस्तस्य महादर । चकार महतीं पूजामुपवाप ममाहित ॥११९॥  
 उपासानस्य चाष्टपात परम साधुना हितम् । यन्ममाराप्य मुच्यन्ते ससाराद् भन्यदेहिन ॥१२०॥  
 सागार निरगार च द्विधा चारित्रमुत्तमम् । सावलम्ब गृहस्थाना निरपेक्ष स्वाममाम् ॥१२१॥  
 दर्शनस्य विशुद्धिश्च तपोज्ञानममन्विता । प्रथमाद्यनुयोगाश्च प्रसिद्धा चिनशाम्ने ॥१२२॥  
 सुदुष्कर विगोहाना चारित्रमवधार्य म । पुन पुनर्मति चक्रेऽणुप्रतेवेव पाथिव ॥१२३॥  
 निधानमध्वनेनेव प्राष्ठ त्रिभद्रनुत्तमम् । धर्म्यध्यानमसौ बुद्ध्वा परमा धृतिमागत ॥१२४॥  
 नितान्तवृक्कर्मण्यमुपशान्तो महोपति । इति प्रमोदमायात सयतोऽपि विशपन ॥१२५॥  
 गते साधौ तपोयोग्य स्थान सुहृत्वयप्रणि । विभुया परया युक् सुलाभ सुखतपित ॥१२६॥  
 विहितानियमन्मानोऽपरेषु हृतधारण । प्रणम्य चरणौ माधो स्वस्थानमविशन्नुप ॥१२७॥

हो गया हूँ, पाप कर्मसे छूट गया हूँ ॥११३॥ ये प्रभु सिंहके समान ज्ञानरूपी नरपाके द्वारा जन्धुओंके स्नेहरूपी बन्धनको छोड़कर संसाररूपी पिंजड़ेसे बाहर निकले हैं ॥११४॥ देवो, उन साधुके द्वारा मनरूपी शत्रुको बशकर नग्नताके उपकारसे शील स्थानकी किस प्रकार रक्षा की जा रही है ? ॥११५॥ किन्तु मेरी आत्मा अभी एत नहीं हुई है । अत मैं इस गृहस्थाश्रममें रहकर रमणीय अणुप्रतके पालनमें ही सन्तोष धारण करता हूँ ॥११६॥

इस प्रकार विचार कर उसने उन मुनिराजसे गृहस्थ धर्म अङ्गीकार किया और भावसे प्लावित मन होकर इस प्रकार प्रतिज्ञा की कि मैं देवाधिदेव तथा गुणोंसे अच्युत परमात्मा जिननेन्द्रिय और उदार अभिप्रायके धारक निर्प्रन्य मुनियोंको छोड़कर अन्य किमीको नमस्कार नहीं करूँगा ॥११७-११८॥ इस प्रकार उसने जडे आदरसे उन प्रीतिवर्धन मुनिराजकी बड़ी भारी पूजा की और गिरचित्त होकर उस दिनका उपवास किया ॥११९॥ समीपम बैठे हुए राजा ब्रह्मर्षको मुनिराजने उस परम हिनका उपदेश दिया कि जिसकी आराधना कर भव्य प्राणी ससारसे मुक्त हो जाते हैं ॥१२०॥ उन्होंने कहा कि उत्तम चरित्रके दो भेद हैं एक सागार और दूसरा अनागार । इनमेंसे पहला चारित्र बाह्य वस्तुओंके आलम्बनमें सहित है तथा गृहस्थोंके होता है और दूसरा चारित्र बाह्य वस्तुओंकी अपेक्षासे रहित है तथा आकाशरूपी बस्त्रके धारक मुनियोंके ही होता है ॥१२१॥ उन्होंने यह भी बताया कि तप तथा ज्ञानके सयागसे दर्शनमें विशुद्धता उत्पन्न होता है । साथ ही साथ उन्होंने जिनशासनमें प्रसिद्ध प्रथमानुयोग आठिका वर्णन भी किया ॥१२२॥ यह सत्र सुननेके बाद भी राजाने निर्प्रन्य मुनियोंका चरित्र अत्यन्त कठिन समझकर अणुप्रत धारण करनेका ही बार-बार विचार किया ॥१२३॥ यह जानकर राजा परम मतोपको प्राप्त हुआ कि मुझे उत्कृष्ट धर्म ध्यान क्या प्राप्त हुआ मानो किता निर्धनको उत्तम गजाना ही मिल गया ॥१२४॥ अत्यन्त श्रु कर कार्य करनेवाला यह राजा शान्त हो गया है यह नेत्र मुनिराज भी बहुत हर्षको प्राप्त हुए ॥१२५॥ तदनन्तर पुण्यरूपी यन्के धारक मुनिराज तपके योग्य दूसरे स्थान पर चले गये और राजा परम विभूतिसे युक्त हो वहीं रहा आया । उसे उत्तम लाभकी प्राप्ति हुई थी इसलिए मुझसे सवृत्त था ॥१२६॥ दूसरे दिन अतिधिका

वहन् परमभावेन वज्रकर्णं सदा गुरुम् । बभूव वातसन्देहश्चिन्तामेवमुपागत ॥१२८॥  
 भूयो भूवा विपुण्योऽहं सिहोदरमहाभृत । अकृवा विनय भोगान् कथं सेवे 'निकारिण ॥१२९॥  
 इति चिन्तयतस्तस्य प्रसन्नोऽन्तरात्मना । विधिना प्रेर्यमाणस्य मतिरेव समुद्रगता ॥१३०॥  
 कारवायूमिका स्वार्णीं सुमतस्वामिविम्बिताम् । दधामि दक्षिणाङ्गुष्ठे ता नमस्कारभागिनीम् ॥१३१॥  
 घटिता सा ततस्तेन पाणिभानुरपीठिका । पिनद्धा चातिहृष्टेन नयप्रवणचेतसा ॥१३२॥  
 स्थि वा सिंहोदरस्याग्रे कृवाङ्गुष्ठं पुरं कृती । प्रतिमा ता महाभागो नमस्यति स सन्ततम् ॥१३३॥  
 रन्प्रविन्द्यस्तचित्तेन वैरिणा कथितेऽ यदा । वृत्तान्तेऽत्र परं कोप पाप सिंहोदरोऽगमत् ॥१३४॥  
 माययाह्वयञ्चैनं दशाङ्गनगरस्थितम् । वधार्थमुद्यतो मानो मत्तो विक्रमसम्पदा ॥१३५॥  
 वृहद्गतितनूजसु प्रगुणेनैव चेतसा । प्रवृत्तोऽधतेनास्य विनोतो गन्तुमन्तिकम् ॥१३६॥  
 दण्डपाणिस्त्वाचैक पावरोदारविग्रह । कुङ्कुमस्थामकोद्गासां तमागन्धैवमुत्तवान् ॥१३७॥  
 यदि भोगशराराभ्यां मुनिर्विण्णोऽसि पाथिव । तत उज्जयिनीं गच्छ नोचेसो गन्तुमर्हसि ॥१३८॥  
 क्रुद्ध सिंहोदरो यत्ते वधं कर्तुं समुद्यत । भनमस्कारदोषेण कुरु राज्ञस्तमाप्सितम् ॥१३९॥  
 एव स गदिता दध्यौ केनाप्येव दुरामना । मासर्पहृतचित्तेन भेदं कर्तुंमर्भाप्सित ॥१४०॥  
 त विसर्पमदामाद किञ्चित्खेदमुपागतम् । सोऽपृच्छ कोऽसि किनामा कुतो वासि समागत ॥१४१॥

सत्कार कर उसने पारणा का और फिर मुनिराजके चरणोको प्रणाम कर अपने नगरमे प्रवेश किया ॥१२७॥

अथान-तर जो परम भक्ति भावसे गुरको सदा हृदयमे धारण करता था तथा जिसे किसा प्रकारका सन्देह नहीं था ऐसा राजा वज्रकर्ण इस प्रकार चिन्ता करने लगा ॥१२८॥ कि मैं पुण्यहीन, राजा सिंहोदरका सेवक होकर यदि उसको विनय नहीं करता हूँ तो वह दमन करेगा—दण्ड देवेगा तब इस दशामे भोगोका सेवन किस प्रकार करूँगा ॥१२९॥ इस प्रकार चिन्ता करते-करते भाग्यसे प्रेरित राजा वज्रकर्णको अपनी स्वच्छ अन्तरात्मासे यह बुद्धि उत्पन्न हुई ॥१३०॥ कि मैं मुनिसुव्रत भगवान्की प्रतिमासे युक्त एक स्वर्णकी अगूठी बनवा कर दाहिने हाथके अगूठामे धारण करूँ तो मेरा नमस्कार उसीको कहलावेगा ॥१३१॥ इस प्रकार विचारकर उस नातिनिपुण राजाने, जिसको पीठिका हाथमे सुशोभित थी ऐसी अगूठी बनवाई और अत्यन्त हर्षित होकर धारण की ॥१३२॥ अब वह बुद्धिमान्, राजा सिंहोदरके आगे खडा होकर तथा अगूठेको आगे कर सदा उस प्रतिमाको नमस्कार करने लगा ॥१३३॥ किसी एक दिन लिङ्गान्वेपी वैरीने यह समाचार सिंहोदरसे कह दिया जिससे वह पापी परम कोपको प्राप्त हुआ ॥१३४॥ तदनन्तर पराक्रमरूपी सम्पदासे मत्त मानो सिंहोदर उसका वध करनेके लिए उद्यत हो गया और उसने दशागपुरमे रहनेवाले वज्रकर्णको छलसे अपने यहाँ बुलाया ॥१३५॥ वृहद्गतिका पुत्र वज्रकर्ण सरल चित्त था इसलिए वह सौ घुडसवार साथ ले उसके पास जानेके लिए तैयार हो गया । उसी समय जिसके हाथम लाठा थी, जिसका मोटा तथा ऊँचा शरीर था और जो केशरके तिलकसे सुशोभित हो रहा था ऐसा एक पुरुष आकर उससे इस प्रकार बोला ॥१३६-१३७॥ कि हे राजन् ! यदि तुम भोग और शरारसे उदासीन हो चुके हो तो तुम उज्जयिनी जाओ अन्यथा जाना योग्य नहीं है ॥१३८॥ हे राजन् ! तुम सिंहोदरको नमस्कार नहीं करते हो इस अपराधसे वह क्रुद्ध होकर तुम्हारा वध करनेके लिए तैयार हुआ है । अत जैसी आपकी इच्छा हो वैसा करो ॥१३९॥ उस पुरुषके ऐसा कहने पर वज्रकर्णने विचार किया कि किसी ईर्ष्यालु दुष्ट मनुष्यने भेद करना चाहा है अर्थात् मुझमे और सिंहोदरमे फूट डालनेका उद्योग किया है । इस प्रकार

कथं वा तव मन्त्रोऽयं विदितोऽत्यन्तदुर्गमः । एतन्नद्र समाचक्ष्व ज्ञानुमिच्छाम्यशेषत ॥१४३॥  
 सोऽब्रुवच्चत् कुन्दनगरे वणिग्धनपरायणः । समुद्रसङ्गमो नामा यमुना तस्य भामिना ॥१४३॥  
 विद्युज्ज्वालाकुले काले प्रसूता जननी च माम् । बन्धुभिर्विद्युद्गङ्गास्या मयि तेन नियोजिता ॥१४४॥  
 क्रमाद्य यौवनं निभद्रवन्तानगरीमिमाम् । आगतोऽन्यथंलाभाय युक्तो वणिग्बन्धुदया ॥१४५॥  
 वेदया कामलता दृष्ट्वा कामवाणेन ताडितः । न रात्रौ न निद्रा यामि निर्वृतिं परमाकुल ॥१४६॥  
 एका रात्रिं बसामासि तथा कृतसमागमः । प्राया दृढतरं यद्वो यथा वागुरया मृग ॥१४७॥  
 जननेन ममासत्यैर्यद्वैरजित धनम् । तन्मयास्य सुपुत्रेण पङ्क्तिर्भामिनिनाशितम् ॥१४८॥  
 पद्मे द्विरेकवत् सप्त कामतद्ग्रातमानसः । साहसं कुरुते किं न मानवो योपिता कृते ॥१४९॥  
 अन्यदा सा पुरं सख्या निन्दन्ती कुण्डल निचम् । श्रुता मयेति भारेण किं कर्णस्यामुना मम ॥१५०॥  
 धन्या सा श्रीधरा देवा महामीभायर्भोगिनी । यस्यास्तद्राजते कर्णे मनोज्ञं रत्नकुण्डलम् ॥१५१॥  
 चिन्तितं च मया तच्चेदपहृष्य सकुण्डलम् । आशा न पूरयाम्यस्यस्तदा किं जीवितेन मे ॥१५२॥  
 ततो जिह्वोर्षया तस्य दयितं प्रोद्ध जीवितम् । गतोऽहं भवनं राज्ञो रजन्या तमसावृत ॥१५३॥  
 पृच्छन्ती श्रीधरा तस्य मया सिंहोदर श्रुता । निद्रा न लभमे कस्मान्नाथोद्विग्न इवाधुना ॥१५४॥  
 सोऽब्रुवद्वैवि निद्रा मे कुतो ध्याकुलचेतसः । न मारितो रिपुर्वाचलमस्कारपरास्त्रुज ॥१५५॥

विचार कर उसने जिसे अत्यधिक हर्ष हो रहा था तथा जो किञ्चित् गेदको प्राप्त था ऐसे उस दूतसे पूछा कि तू कौन है? कहाँसे आया है? ॥१४०-१४१॥ और इस अत्यन्त दुर्गम मन्त्रका तुम्हें कैसे पता चला है? हे भद्र! यह कह मैं सब जानना चाहता हूँ ॥१४२॥

वह बोला कि कुन्दनगरमें धनसञ्चय करनेमें तत्पर एक समुद्रसङ्गम नामक वैश्य रहता था। उसकी स्त्रीका नाम यमुना था। मैं उन्हींका पुत्र हूँ। चूँकि मेरी माताने मुझे उस समय जन्म दिया जो निजलीकी ज्वालाभोसे व्याप्त रहता है इसलिए बन्धुजनाने मेरा विद्युद्गङ्गा नाम रक्खा ॥१४३-१४४॥ क्रमसे यौवनकी धारण करता हुआ मैं व्यापारकी विद्यासे युक्त हो धनोपार्जन करनेके लिए इस उज्जयिनी नगरीमें आया था ॥१४५॥ सो यहाँ कामलता नामक वेश्याको देख कर कामराजसे ताडित हुआ जिससे व्याकुल होकर न दिनमें चैनको पाता हूँ और न रात्रिमें ॥१४६॥ मैं एक रात उसके साथ समागम कर रह लें' इस प्रीतिने मुझे इस प्रकार अत्यन्त मजबूत बंध रक्खा जिस प्रकार कि जाल किसी हरिणको बंध रखता है ॥१४७॥ मेरे पिताने अनेक वर्षोंमें जो धन सञ्चित किया था मुझ सुपुत्र ने उसे केवल छह माहमें नष्ट कर दिया ॥१४८॥ जिस प्रकार भ्रमर कमलमें आसक्त रहता है उसी प्रकार मेरा मन कामसे दुःखी हो उस वेश्यामें आसक्त रहता था सो ठीक ही है क्योंकि यह पुरुष स्त्रियाँके लिए कौन-सा साहस नहीं करता है? ॥१४९॥ एक दिन मैंने सुना कि वह वेश्या सखीके सामने अपने कुण्डलकी निन्दा करती हुई कह रही है कि कानोंके भाररूप इस कुण्डलसे मुझे क्या प्रयोजन है? वह महा सौभाग्यवता उपभोग करनेवाली श्रीधरा रानी धन्य है जिसने कानमें वह रत्नमयी मनोहर कुण्डल शोभित होता है ॥१५०-१५१॥ मैंने सुनकर विचार किया कि यदि मैं उस उत्तम कुण्डलकी चुरा कर इसकी आशा पूर्ण नहीं करता हूँ तो मेरा जीवन किस काम का? ॥१५२॥ तदनन्तर उन कुण्डलकी अपहरण करनेकी इच्छासे मैं अपने प्रिय जीवनकी उपेक्षा कर रात्रिके समय अन्यकारसे आवृत्त होकर राजाके घर गया ॥१५३॥ वहाँ मैंने रानी श्रीधराकी सिंहोदरसे यह पृच्छा की हुई सुना कि हे नाथ! आज नींदको क्यों नहीं प्राप्त हो रहे हो तथा उद्विग्नसे क्यों मालूम होते हो? ॥१५४॥ उसने कहा कि हे देवि! जब तक मैं नमस्कारसे त्रिमुख रहनेवाले



अपमानेन द्रवस्य व्याकुलस्यार्णोचिन्तया<sup>१</sup> । अजितप्रत्यनीकस्य विद्याज्ञान्तावलस्य च ॥१५६॥  
 मशक्यस्य दरिद्रस्य भीरोश्च<sup>२</sup> भवदुखत । निद्रा कृपापरितेव सुद्रेण पलायते ॥१५७॥  
 निहन्तास्मि न चेदेन नमस्कारपराङ्मुखम् । वज्रकर्णं ततः किं मे जीवितेन हतोऽजसः ॥१५८॥  
 ततोऽहं कुलिशेनैव हृदये कृतताडनम् । रहस्यरत्नमादाय त्यक्त्वा कुण्डलशोभुर्मा<sup>३</sup> ॥१५९॥  
 धर्मोद्यतमानस्कस्य सततं साधुमेविषम् । भवतोऽन्तिकमायातो ज्ञात्वा कुरु निवर्तनम् ॥१६०॥  
 नामैरञ्जनशैलाभैः प्रचरद्गण्डभिन्तिभिः । ससिभिश्च महावेगैर्भटैश्च कवचावृत्तैः ॥१६१॥  
 तदाज्ञापनया मार्गो निरुद्धोऽप्यपुरोऽखिलः । सामन्तैः परमक्रूरैर्भवन्तं हन्तुमुद्यतैः ॥१६२॥  
 प्रसादं कुरु गच्छाशु प्रतीप धर्मवत्सल । पताभि पादयोरेष तव मद्रुचनं कुरु ॥१६३॥  
 अर्थं प्रत्येपि नो राजन् ततः पर्येतदागतम् । धूलीपटलसच्छस्य परचक्र महारवम् ॥१६४॥  
 तावत्परागत दृष्ट्वा साधन कुलिशधर्वाः । समेतो विद्युदङ्ग्रेण निवृत्तो वेगिवाहनः ॥१६५॥  
 प्रविश्य च पुरं दुर्गं सुगौरः प्रत्यवस्थितः । विषाय वञ्चितारोधं नामन्ताश्चावतस्थिरे ॥१६६॥  
 प्रविष्टं नगरं ध्रुत्वा वज्रकर्णं रूपां ज्वलन् । सिंहोदरः समायात सर्वसाधनसयुतः ॥१६७॥  
 पुरस्यात्यन्तदुर्गंवात् साधनक्षयकातरः । न स तद्ग्रहणे बुद्धिं चकार सहसा नृपः ॥१६८॥  
 समावास्य समीपे च त्वरितं प्राहिणोन्नरम् । वज्रकर्णं स गच्छेत्ति बभागात्यन्तनिष्ठुरम् ॥१६९॥

शत्रु वज्रकर्णको नहीं मारता हूँ तब तक मेरा चित्त व्याकुल है अतः निद्रा कैसे आ सकती है ? ॥१५५॥ जो अपमानसे जल रहा हो, जो शृण्णकी चिन्तासे व्याकुल हो, जो शत्रुको नहीं जीत सका हो, जिसकी स्त्री विटपुरुषके चक्रमें पड़ गई हो, जो शत्रुसे सहित दरिद्र हो तथा जो संसारके दुःखसे भयभीत हो ऐसे मनुष्यसे दयायुक्त होकर ही मानो निद्रा दूर भाग जाती है ॥१५६-१५७॥ यदि मैं नमस्कारसे विमुख रहनेवाले इस वज्रकर्णको नहीं मारता हूँ तो मुझ निस्तेजको जीवनसे क्या प्रयोजन है ? ॥१५८॥

तदनन्तर यह सुनकर जिसके हृदयमें मानो वज्रकी ही चोट लगी थी ऐसा मैं इस रहस्यरूपी रत्नको लेकर और कुण्डलकी भावना छोड़कर आपके पास आया हूँ क्योंकि आपका मन सदा धर्ममें तत्पर रहता है तथा आप सदा साधुओंकी सेवा करते हैं । हे नाथ ! यह जान कर आप लौट जाइए उल्लैन मत जाइए ॥१५९-१६०॥ उसकी आज्ञा पाकर नगरका यह समस्त मार्ग, जिनके गण्डस्थलसे मद भर रहा है ऐसे अञ्जनगिरिके समान आभावाले हाथियों, महावेगशाली घोड़ों, कवचोंसे आवृत योद्धाओं तथा आपको मारनेके लिए उद्यत क्रूर सामन्तोंसे विरा हुआ है ॥१६१-१६२॥ अतः हे धर्मवत्सल ! प्रसन्न होओ, शीघ्र ही उलटा वापिस जाओ, मैं आपके चरणोंमें पड़ता हूँ आप मेरा वचन मानो ॥१६३॥ हे राजन् ! यदि आपको विश्वास नहीं हो तो देखो, धूलिके समूहसे व्याप्त तथा महा कल-कल शब्द करता हुआ यह शत्रुका दल आ पहुँचा है ॥१६४॥ इतनेमें शत्रुदलको आया देख वज्रकर्ण विद्युदङ्ग्रेके साथ वेगशाली घोड़ेसे वापिस लौटा ॥१६५॥ और अपने दुर्गमें नगरमें प्रवेश कर धीरताके साथ युद्धकी तैयारी करता हुआ स्थित हो गया । बड़े-बड़े सामन्त गोपुरोंको रोक कर खड़े हो गये ॥१६६॥

तदनन्तर वज्रकर्णको नगरमें प्रविष्ट सुन, क्रोधसे जलता हुआ सिंहोदर अपनी सर्व सेनाके साथ वहाँ आया ॥१६७॥ वज्रकर्णका नगर अत्यन्त दुर्गम था । इसलिए सेनाके क्षयसे भयभीत हो राजा सिंहोदरने उसपर तत्काल ही आक्रमण करनेकी इच्छा नहीं की ॥१६८॥ किन्तु सेनाको समीप ही ठहराकर शीघ्र ही एक दूत भेजा । वह दूत वज्रकर्णके पास जाकर बड़ी

१. ऋणसम्बन्धिचिन्तया । २. भवदुखितः म० । ३. विश्वास नो करोपि । ४. वज्रकर्णः म० । ५. समरस्थितः म० । ६. प्रतोलीरोध ।

निनशासनवर्गेण सदावष्टभमानस । ऐश्वर्यकण्ठस्य मे जात सद्भाववजित ॥१७०॥  
 कुटुम्बभेदने दत्तै धर्मणैर्दुर्विचेष्टितै । प्रोसाहितो गतोऽप्येतामवस्था नयवर्जित ॥१७१॥  
 भुक्षे देश मया दत्तमहन्त च नमस्यति । अहो ते परमा माया जतोय दुष्टचेतस ॥१७२॥  
 भागच्छाशु ममाग्याश प्रणाम कुरु सन्मति । अन्यथा पर्य्यं वातोऽसि मृत्युना सह सद्गतम् ॥१७३॥  
 ततस्तद्वचनाद्गवा दूतोऽवददित् पुन । एव वज्रैर्भ्रुतिर्नाथं ब्रवीति कृतनिश्चय ॥१७४॥  
 नगर साधन कोय गृहाण विषय त्रिमो । धर्मद्वार सभायस्थं यच्छ मे केवलस्य वा ॥१७५॥  
 हता मया प्रतिज्ञेय मुञ्जाम्येन मृतोऽपि न । द्विविगस्य भगवान् स्वामा शरारस्य तु नो मम ॥१७६॥  
 इत्युक्तोऽन्यपरिव्यक्तक्रोध सिंहोदर पुर । कृवा रोधमिम देशमुदवात्सयदुःखलम् ॥१७७॥  
 इद ते कथित देव देशोद्वासनकारणम् । गच्छामि सांप्रत शून्यग्रामघानमितोऽन्तिकम् ॥१७८॥  
 तस्मिन् विमानतुल्येयु दक्षमानेयु सप्रभु । मदाया दुष्कुण दुष्वा तुमकाष्टविनिर्मिता ॥१७९॥  
 तत्र गोपायित सूर्पं घट पिडरमेव च । आनयामि कुगेहिन्त्या प्रेरित क्रूवात्सयया ॥१८०॥  
 गृहोपकरण भूरि शून्यग्रामेयु लभ्यते । आनयस्व स्वमेवेति सा तु मा भापते मुहु ॥१८१॥  
 व्यवायन्तमेवेद तथा मे जनिह हितम् । देव कोऽपि भवान् दृष्टो मया येन सुकर्मणा ॥१८२॥  
 इयुक्ते करणाङ्घ्रि पथिक वीषय दु खितम् । पत्रोऽस्मै रत्नसयुगं ददौ काञ्चनसूत्रकम् ॥१८३॥  
 प्रतीत प्रणिपत्यासौ तत्रादाय त्वरान्वितम् । प्रतिघातो निज धाम बभूव च नृपोऽपम ॥१८४॥

निन्दुरतासे बोला ॥१६६॥ कि जिन शासनके वर्गसे जिसका मन सदा अहङ्कार पूर्ण रहता है तथा जो समीचीन भावोंसे रहित है ऐसा तू मेरे ऐश्वर्यका कण्ठक धन रहा है ॥१७०॥ कुटुम्ब के भेदन करनेमें चतुर, तथा खोटी चेष्टाओंसे युक्त मुनियोंके द्वारा प्रोत्साहित होकर तू इस अग्रस्थाको प्राप्त हुआ है, स्वयं नीतिसे रहित है ॥१७१॥ मेरे द्वारा प्रदत्त देशका उपभोग करता है और अरहन्तको नमस्कार करता है । अहो, तुम दुष्ट हृदयकी यह बड़ी माया ॥१७२॥ तू सुबुद्धि है अतः शीघ्र ही मेरे पास आकर प्रणामकर अन्यथा देख, अभी मृत्युके साथ समागम को प्राप्त होता है ॥१७३॥

तदनन्तर वज्रकर्णका उत्तर ले दूतने वापिस जाकर सिंहोदरसे कहा कि हे नाथ ! निश्चय को धारण करनेवाला वज्रकर्ण इस प्रकार कहता है कि हे विभो ! नगर, सेना, राजाना और देश सब कुछ ले लो पर भार्या सहित केवल मुझे धर्मका द्वार प्रदान कीजिए अर्थात् मेरी धर्माग्रजन्तमं काया नहीं डालिए ॥१७४-१७५॥ मैंने जो यह प्रतिज्ञा की है कि मैं अग्रहन्त देव और निर्भन्ध गुरुको छोड़ अन्य किसीको नमस्कार नहीं करूँगा सो भरते-भरते इस प्रतिज्ञाको नहीं टाडूँगा । आप मेरे धनके स्वामी हैं शरीरके नहीं ॥१७६॥ इतना कहनेपर भी सिंहोदरने क्रोध नहीं छोड़ा और नगरपर घेरा डालकर तथा आग लगाकर इस देशको उजाड़ दिया ॥१७७॥ इस प्रकार हे देव ! मैंने आपसे इस देशके ऊजड़ होनेका कारण कहा है अब यहाँ पास ही अपने उनड़े गाँवको जाता हूँ ॥१७८॥ उस गाँवमें विमानके तुल्य जो अच्छे अच्छे महल थे वे जल गये और उनके साथ वृण तथा काष्ठसे निर्मित मेरी टूटी फूटी कूटिया भी जल गई ॥१७९॥ उस कूटियांमें एक जगह सूपा घट तथा भटका छिपाकर रसे थे सो दुष्ट पचन बोलनेवाली स्त्री से प्रेरित हो उन्हें लेने जा रहा हूँ ॥१८०॥ 'सूने गाँवोंमें घर गृहस्थीके बहुतसे उपकरण मिल जाते हैं इसलिए तू भी उन्हें ले आ' इस प्रकार यह वार-वार मुझसे कहती रहती है ॥१८१॥ अथवा उसने मेरा यह बहुत भारी हित क्रिया है कि हे देव ! पुण्योदयसे मैं आपके दर्शन कर सका हूँ ॥१८२॥ इस प्रकार उस पथिकको दुःखी देव दयासे स्वयं दुःखी होते हुए रामने उसके लिए अपना रत्नजटित स्पर्णरत्न दे दिया ॥१८३॥ वह पथिक उसे लेकर तथा विश्वास पूर्वक

१. पर्य जातामि मृत्युना महत्गत ज०, प० । २ वज्रकर्ण । ३ जनरहितमकोत् ।

अथावोचततः पद्मो लक्ष्मणाय दिवाकरः । नैदाघो यावद् यन्तं दुस्महत्वं न गच्छति ॥१८५॥  
 तावदुत्तिष्ठ गच्छावः पुरस्यास्यान्तिके भुवम् । जानकीय तृपाश्रान्ता कुर्वाहारविधिं द्रुतम् ॥१८६॥  
 एवमि युदिते याता<sup>१</sup> दशाङ्गनगरस्थ ते । समीपे चन्द्रभास्व चै याउयमनुत्तमम् ॥१८७॥  
 तस्मिन् सजानकं रामः प्रणम्यावस्थितः सुखम् । तदाहारोपलभाय लक्ष्मणः सधनुर्गतः ॥१८८॥  
 विशन् मिहोदरस्यासी शिविर रचितमानवैः<sup>२</sup> । निरुद्धः कृतनिस्वानैः समीरण इवाद्रिभिः ॥१८९॥  
 'इमं दुष्कुलोत्पन्नैः किं विरोधेन मे समम् । इति सञ्चित्य यातोऽसी नगरं तेन पण्डितः ॥१९०॥  
 गोपुरं च समासीददनेकभट्टरक्षितम् । यन्मोपरि स्थितः साक्षाद्भ्रूणकर्मः प्रयत्नवान् ॥१९१॥  
 ऊचिरे तस्य श्रुत्वास्त कचमेतः कृतोऽपि वा । किमर्थं वेति मोऽवोचद्दूरात्प्राप्तोऽन्नलिप्सया ॥१९२॥  
 ततस्त बालक कान्तं दृष्ट्वा विस्मयसङ्गतः । आगच्छ प्रविश त्तिप्रमिति वज्रश्रवा जगौ ॥१९३॥  
 ततरुष्टः प्रयातोऽसी समीपं कुलियाश्रुतेः । विनीतवेपसम्पन्नो बोधित सादर नरैः ॥१९४॥  
 जगाद वज्ररथंश्च नरमात्मय द्रुतम् । अन्न प्रसाधितं मद्यं भोजयतां रचितादरः ॥१९५॥  
 सोऽवोचन्नय भुञ्जेऽहमिति मे गुह्यन्तिके । तमादी भोजयात्प्रयत्न नयायस्याहमन्तिकम् ॥१९६॥  
 एवमस्त्विति सम्भाष्य शृणोऽन्नमतिपुष्कलम् । अर्थादपद् वरं तस्मै चाहव्यञ्जनपानकम् ॥१९७॥  
 लक्ष्माधरस्तदादाय गतो दिगुणरंहसा । भुक्त च तैः क्रमेणैतच्छक्ति च परमां गताः ॥१९८॥

उन्हें प्रणामकर अपने घर वापिस लौट गया और राजाके समान सम्पन्न हो गया ॥१८४॥

अथानन्तर रामने कहा कि हे लक्ष्मण ! यह भ्रूमकालका सूर्य जय-तक अत्यन्त दुःसह अवस्थाको प्राप्त नहीं हो जाता है तब-तक उठो इस नगरके समीपवर्ती प्रदेशमें चलें । यह जानकी प्याससे पीड़ित है इसलिए शीघ्र ही आहारकी विधि मिलाओ ॥१८५-१८६॥ इस प्रकार कहनेपर ये तीनों दशाङ्गनगरके समीप चन्द्रप्रभ भगवानके उत्तम चैत्यालयमें पहुँचे ॥१८७॥ वहाँ जिनेन्द्र-देवको नमस्कार कर सीता सहित राम तो उसी चैत्यालयमें सुपसे ठहर गये और लक्ष्मण धनुष लेकर आहार प्राप्तिके लिए निकला ॥१८८॥ जब वह राजा सिहोदरकी छावनीमें प्रवेश करने लगा तब रक्त पुरुषोंने जोरसे ललकार कर उसे उस तरह रोका जिस तरह कि पर्वत वायुकी रोक लेते हैं ॥१८९॥ 'इन नीच कुली लोगोंके साथ विरोध करनेसे मुझे क्या प्रयोजन है' ऐसा विचार कर वह बुद्धिमान लक्ष्मण नगरकी ओर गया ॥१९०॥ जब वह अनेक योद्धाओंके द्वारा सुरक्षित उस गोपुर द्वार पर पहुँचा जिसपर कि साक्षात् वज्ररुण वड़े प्रयत्नसे बैठा था ॥१९१॥ तब उसके श्रुत्याने कहा कि तुम कौन हो ? कहाँसे आये हो ? और किसलिए आये हो ? इसके उत्तरमें लक्ष्मणने कहा कि मैं बहुत दूरसे अन्न प्राप्त करनेकी इच्छासे आया हूँ ॥१९२॥ तदनन्तर उस बालकको सुन्दर देस आश्चर्यचकित हो वज्रकर्णने कहा कि आओ, शीघ्र प्रवेश करो ॥१९३॥ तत्पश्चान् सन्तुष्ट होकर लक्ष्मण विनीत वेपमें वज्ररुणके पास गया । वहाँ सब लोगोंने उसे बड़े आदरसे देखा ॥१९४॥ वज्ररुणने एक आन्न पुरुषसे कहा कि जो अन्न मेरे लिए तैयार किया गया है वह इसे शीघ्र ही आदरके साथ मिलाओ ॥१९५॥ यह सुन लक्ष्मणने कहा कि मैं यहाँ भोजन नहीं करूँगा । पास ही मे मेरे गुरु अन्न ठहरे हुए हैं पहले उन्हें भोजन कराऊँगा इसलिए मैं यह अन्न उनके पास ले जाता हूँ ॥१९६॥ 'एवमन्तु-ऐसा ही हो' कहकर राजाने उसे उत्तमोत्तम व्यञ्जन और पेय पदार्थोंसे युक्त बहुत भारी अन्न दिला दिया ॥१९७॥ लक्ष्मण उसे लेकर दूने वेगसे रामके पास गया । सबने उसे यथा क्रमसे गायी और खाकर परम कृतिकी प्राप्त हुए ॥१९८॥

१. लक्ष्मणोत्पन्नं म० । २. शान्ता म० । ३. रक्षमानमै. म० । ४. निरुद्धाद्रिनिस्वानैः म० ।

५. इमैः म० ।

ततस्तुष्टोऽद्दत् पद्य परय लक्ष्मण भद्रताम् । वज्रकर्णम्य येनेद् वृत्त परिचयाद् त्रिना ॥१६६॥  
जामात्रेऽपि सुसम्पन्नमोदगन्ध न दीयते । पानकानामहो शैव्य व्यञ्जनाना च मृष्टता ॥२००॥  
अनेनामृतकल्पेन मुक्तेनान्नेन मार्गन । नैदाघोऽपहत सद्य ध्रमोऽस्माक समन्तत ॥२०१॥  
चन्द्रविग्रमिवाचूर्ण्य शालयोऽमा विनिमिता । धवलत्रेन विभ्रागा मार्दवं भिन्नसिन्धुका ॥२०२॥  
दुग्धैव दीधितारिन्द्रो कृतमेतच्च पानकम् । नितान्तमच्छतायुक्त सोरभाकृष्टपद्मम् ॥२०३॥  
पूतचौरमिदं जातं कल्पधेनुस्तनादिव । रसनामीदृशा व्यक्तियन्नेषु सुदुस्तरा ॥२०४॥  
अणुवतधर साधुर्वणिता पथिकेन स । अतिथीनां करोयन्त्य सविभाग क ईदृशम् ॥२०५॥  
शुद्धामा ध्रूयते सोऽयमनन्यप्रणति सुधी । भवातिमयन नाथ जिनेन्द्र यो नमस्यति ॥२०६॥  
दृक्शालगुणोपेतो यक्षोपोऽस्माकमप्रत । सिद्धचरानिना रक्षस्ततो नो जीवित वृथा ॥२०७॥  
अपराधविशुद्धस्य साधुसेवापितात्मन । समस्ताश्चास्य सामन्ता एकनाथाविरोधिना ॥२०८॥  
तोद्यमानमिमं नूनं सिद्धोदरकुभृन्मता । भरतोऽपि न शक्नोति रक्षितुं नूतनेशत ॥२०९॥  
तरमादन्यपरित्राणरहितस्यास्य सन्मते । क्षिप्रं कुरु परित्राणं वनं सिद्धोदर वद ॥२१०॥  
इदं वाच्यमिदं वाच्यमिति किं शिष्यते भवान् । उत्पन्नं प्रज्ञया साकं प्रभयेव महामणि ॥२११॥  
गुणाचारणसर्वाद् वृत्ता शिरसि शासनम् । यथाज्ञापयसी युक्त्वा प्रणम्य प्रमदान्वित ॥२१२॥

तदनन्तर रामने सन्तुष्ट होकर कहा कि हे लक्ष्मण ! वज्रकर्णकी भद्रता देखो जो इसने परिचयके त्रिना ही यह किया है ॥१६६॥ ऐसा सुन्दर भोजन तो जमाईके लिए भी नहीं दिया जाता है । अहो ! पेय पदार्थोंकी शीतलता और व्यञ्जनोंकी मधुरता तो मर्त्या आश्चर्य उत्पन्न करनेवाली है ॥२००॥ इस अमृत तृप्तय अन्नके पानसे हमारा मार्गसे उत्पन्न हुआ गर्मीका समस्त श्रम एक साथ नष्ट हो गया है ॥२०१॥ जो कोमलताको धारण कर रहे हैं, जिनका एक-एक सीत अलग-अलग है, और जो सफेदीके कारण ऐसे जान पड़ते हैं मानो चन्द्रमाके त्रिम्बको चूर्ण कर हो बनाये गये हैं ऐसे ये धानके चावल हैं ॥२०२॥ जो अत्यन्त रसच्छतासे युक्त हैं तथा जो अपनी सुगन्धिसे भ्रमरोंको आकृष्ट कर रहा है ऐसा यह पानक, जान पड़ता है चन्द्रमानी किरणोंको दुहकर ही बनाया गया है ॥२०३॥ वह घी और दूध तो मानो कामधेनुके स्तनसे ही उत्पन्न हुआ है अथवा व्यञ्जनोमे रसोंको ऐसी व्यक्तता कठिन ही है ॥२०४॥ पथिकने यह ठीक ही कहा था कि वह सत्यरूप अणुत्रतोंका धारी है अन्यथा अतिथियोंका ऐसा सत्कार दूसरा कौन करता है ? ॥२०५॥ जो ससारकी पीडाको नष्ट करनेवाले जिनेन्द्र भगवान्को नमस्कार करता है उनके सिवाय किसी दूसरेको नमस्कार नहीं करता ऐसा वह बुद्धिमान् शुद्ध आत्माका धारक मुना जाता है ॥२०६॥ ऐसे शील और गुणोंसे सहित होने पर भी यदि यह हम लोगोंके आगे शत्रुसे घिरा रहता है तो हमारा जीवन व्यर्थ है ॥२०७॥ यह अपराधसे रहित है, अपने आपको सदा साधुओंकी सेवामें तत्पर रखता है तथा इसके समस्त सामन्त अपने इम अद्वितीय स्वामीके अनुकूल हैं ॥२०८॥ दुष्ट राजा सिद्धोदरके द्वारा पीडित हुए इस वज्रकर्णकी रक्षा करनेके लिए भरत भी समर्थ नहीं है क्योंकि वह अभी नवीन राजा है ॥२०९॥ इमलिए अन्य रत्नोंसे रहित इस बुद्धिमान्की रक्षा शीघ्र ही करो, जाओ और सिद्धोदरसे कहो ॥२१०॥ 'यह कहना, यह कहना' यह तुम्हें क्या शिक्षा दी जाय क्योंकि जिस प्रकार महामणि प्रभाके साथ उत्पन्न होता है उसी प्रकार तुम भी प्रजाके साथ ही उत्पन्न हुए हो ॥२११॥

अयानन्तर अपने गुणोंकी प्रशंसा सुन जिसे लज्जा उत्पन्न हो रही थी ऐसा लक्ष्मण रामकी

विनीत धारयन् वेपननुपादाय कार्मुकम् । प्रयातो रयसम्पन्नो लक्ष्मण कम्पितक्षिति ॥२१३॥  
 इष्टा सरसश्चै पृष्ट क्तरस्य पुमान् भवान् । सोऽबोचद् भरतस्याहमेतो दूतस्य कर्मणा ॥२१४॥  
 क्रमेणातीरय शिविर भूरि प्राप्नो नृपास्पदम् । अविशद्वेदितो द्वा स्थै सद सिहोदरस्य स ॥२१५॥  
 प्रस्पष्टमिति शोवाच मन्यमानस्त्वनृपम् । ज्येष्ठभ्रातृवचोवाह सिहोदर निबोध माम् ॥२१६॥  
 आज्ञापयत्यसौ देवो भवन्तमिति सदगुण । यथा किल किमेतेन विरोधेन विहेतुना ॥२१७॥  
 तत सिहोदरोऽवादीन्मन कर्कशमुद्बहन् । दूत मृता विनीतेशमिति मद्बचनाद् भवान् ॥२१८॥  
 यथा क्रियाविनीताना भृशाना विनयाहृतौ । कुर्वन्ति स्वामिनो यत्न विरोध कोऽत्र दृश्यते ॥२१९॥  
 वज्रकर्णो दुरात्माय मानी नैकृत्तिक<sup>१</sup> पर । पिशुन क्रोधन क्षुद्र सुहृन्निन्दापरायण ॥२२०॥  
 आलस्योपहतो मूढो वायुप्रहृष्टहृत्तर्था । विनयाचारनिर्मुक्तो दुविद्यग्यो दुरीहित ॥२२१॥  
 एन मुग्रन्त्वमो दोग्य दमेन मरणेन वा । तमुपाय करोम्यस्य स्वैरमत्रास्यता त्वया ॥२२२॥  
 ततो लक्ष्मोधरोऽबोचत् किमत्र<sup>३</sup> प्रत्युरोत्तरी । कुरुतेऽयं हित यस्मात् सन्मया सर्वमस्य तत् ॥२२३॥  
 इत्युक्त्वा प्रकृत्योऽसन्धिदूरपराञ्छ्रुत् । सिहोदरोऽवदत्तार वीक्ष्य सामन्तसहतिम् ॥२२४॥  
 न देवलमसौ मानी हतात्मा वज्रकर्णक । तत्कार्यवान्द्वया प्राप्नो भवानपि तथाविध ॥२२५॥  
 पापाणैर्नैव ते गात्रमिदं दूत विनिमित्तम् । न<sup>४</sup> नामर्मापदप्येति दुभृत्य कोशलापते ॥२२६॥

आज्ञा शिरोधार्य कर 'जैसी आपकी आज्ञा' यह कहकर तथा प्रणाम कर हर्षित होता हुआ चला । वह उस समय विनीत वेपको धारण कर रहा था, धनुष साथमें नहीं ले गया था, वेगसे सम्पन्न था और पृथ्वीको कँपाता हुआ जा रहा था ॥२१२-२१३॥ रत्नक पुरुषाने देवकर उससे पूछा कि आप किसके आदमी हैं ? इसके उत्तरमें लक्ष्मणने कहा कि मैं राजा भरतका आदमी हूँ और दूतके कार्यसे आया हूँ ॥२१४॥ क्रम-क्रमसे बहुत बड़ी छ्वायनीको उल्लंघन कर वह राजाके निवास स्थानमें पहुँचा और द्वारपालोंके द्वारा रखर देकर राजा सिहोदरकी सभामें प्रविष्ट हुआ ॥२१५॥ वहाँ जाकर राजाको लृणके समान तुच्छ समझते हुए उसने स्पष्ट शब्दोंमें इस प्रकार कहा कि हे सिहोदर ! तू मुझे बड़े भाईका सन्देशवाहक समझ ॥२१६॥ उत्तमगुणाको धारण करनेवाले राजा भरत आपको इस प्रकार आज्ञा देते हैं कि इस निष्कारण वैरसे क्या लाभ है ? ॥२१७॥

तदनन्तर कठोर मनको धारण करनेवाला सिहोदर बोला कि हे दूत ! तू मेरी ओरसे अयोध्याके राजा भरतसे इस प्रकार कहो कि अविनीत सेवकोंको विनयमें लानेके लिए स्वामी प्रयत्न करते हैं इसमें क्या विरोध दिखाई देता है ? ॥२१८-२१९॥ यह वज्रकर्ण दुष्ट है, मानी है, मायावी है, अत्यन्त नोच है, क्रोधी है, क्षुद्र है, मित्रको निन्दा करनेमें तत्पर है, आलस्यसे युक्त है, मूढ है, वायु अथवा किसी पिशाचने इसकी बुद्धि हर ली है, यह विनयाचारसे रहित है, पण्डितमन्य है, और दुष्ट चेष्टाओंसे युक्त है । ये दोष इसे या तो दमनसे छोड़ सकते हैं या मरणसे, इसलिए इसका उपाय करता हूँ इस विषयमें आप चुप बैठिये ॥२२०-२२१॥ तदनन्तर लक्ष्मणने कहा कि इस विषयमें उत्तर प्रत्युत्तरोंसे क्या प्रयोजन है ? चूँकि यह सबका हित करता है अतः इसका यह सब अपराध क्षमा कर दिया जाय ॥२२३॥ लक्ष्मणके इस प्रकार कहते ही जिसका क्रोध थल पड़ा था, और जो सन्धिसे विमुक्त था ऐसा सिहोदर अपने सामन्तोंकी ओर देव गरजकर बोला कि न केवल यह दुष्ट वयकर्ण ही मानी है किन्तु उसके पार्ष्ण्य इन्द्रासे आया हुआ यह दूत भी वैसा ही मानी है ॥२२५॥ अरे दूत ! जान पड़ता है तब यह शरीर पापाणसे ही बना है अयोध्यापतिका यह दुष्ट भृत्य, रथ मात्र भी नप्रतारों

तत्र देशे नरा नून सर्वे एव भवद्विधाः । स्थानीयुलकाक्रमेण परोक्ष ज्ञायते ननु ॥२२७॥  
 इत्युक्ते कोपमायात. किञ्चिन्नक्ष्माधरोऽवदन् । साम्यहेतोरहं प्राप्ते न ते कर्तुं नमस्कृत्सिम् ॥२२८॥  
 बहुनात्र किमुक्तेन हरे सक्षेपतः शृणु । प्रतीच्छ सन्धिमतैव मरण वा समाश्रय ॥२२९॥  
 इत्युक्ते परिपुसर्वा परं लोभमुपागता । नानाप्रकारदुर्वाक्या नानाचेष्टाविधायिनी ॥२३०॥  
 आश्रयं तुरिकां केचिन्निस्त्रिंशत्तमपरे भद्राः । वधार्थमुद्यतारतस्व कोपकस्मिपतमूर्खेव ॥२३१॥  
 वेगनिमुक्तदुद्धारः । परस्परसमाकुलाः । ते त समन्ततो प्रद्रुमंशका इव पर्वतम् ॥२३२॥  
 भद्रासामनेव धीरोऽर्था त्रियालाघवपण्डितः । चित्ते चरणवातातैर्दूरं तान् विद्वलान् समम् ॥२३३॥  
 जघान जानुना कांश्चिदूर्ध्वेणापरान् ध्रुमन् । कांश्चिन्मुष्टिप्रहारेण चकार शतशकंरान् ॥२३४॥  
 कक्षेषु कांश्चिदाकृष्य निपात्य धरणांतले । पात्रेनावृणोयत् कांश्चिदंसवातेरपातयत् ॥२३५॥  
 कांश्चिदभ्योन्यापातेन परिचृणितमस्तक्रान् । चकार जघया कांश्चिदरं प्राप्तविमूर्धनान् ॥२३६॥  
 एवमेकाकिना तेन परिपुसा तथाविधा । महाबलेन विध्वम नाता भयसमाकुला ॥२३७॥  
 एवं विध्वसयन् यावन्निकाशान्तो भवनाजिरम् । तावद्योधशनैरन्यैः लक्ष्मणः परिवेष्टितः ॥२३८॥  
 सामन्तैरथ सन्नद्धैर्वारिणैः सतिभी रथैः । परस्परविमर्द्धेन बभूवाकुलता परा ॥२३९॥  
 नानाराक्षकस्त्रेषु लक्ष्म्यालिङ्गितविप्रहः । चकार चेष्टित वीर. श्रमालेष्टिव बेंसरी ॥२४०॥

प्राप्त नहीं है—अर्थात् इसने विलकुल भी नमस्कार नहीं किया ॥२२६॥ सचमुच ही उस देशके सन लोग तेरे ही जैसे हैं जिम प्रकार वटलोईके दो चार सीध जाननेसे सब सीधोंका ज्ञान हो जाता है उसी प्रकार तेरे द्वारा वहाँके सन लोगोंका परोक्ष ज्ञान हो रहा है ॥२२७॥

सिंहोदरके इस प्रकार कहने पर बुद्ध क्रोधको प्राप्त हुआ लक्ष्मण बोला कि मैं साम्यभाव स्थापित करनेके लिए यहाँ आया हूँ तुमके नमस्कार करनेके लिए नहीं ॥२२८॥ सिंहोदर ! इस विषयमें बहुत कहनेसे क्या ? संक्षेपसे सुन, या तो तू सन्धि कर या आज ही मरणका आश्रय ले ॥२२९॥ यह कहते ही समस्त सभा परम लोभको प्राप्त हो गई, नाना प्रकारके दुर्बचन बोलने लगी तथा नाना प्रकारकी चेष्टाएँ करने लगी ॥२३०॥ जिनके शरीर क्रोधसे कोंप रहे थे ऐसे कितने ही योधा लुगी सींचकर और कितने ही योधा तलवारों निकालकर उसका वध करनेके लिए उद्यत हो गये ॥२३१॥ जो वेगसे हुंकार छोड़ रहे थे तथा जो परस्पर अत्यन्त व्याकुल थे ऐसे उन योद्धाओंने लक्ष्मणको चारों ओरसे उस प्रकार घेर लिया जिस प्रकार कि मच्छर किसी पर्वतको घेर लेते हैं ॥२३२॥ शीघ्रतासे कार्य करनेमें निपुण धीर-वीर लक्ष्मणने जो पासमें नहीं आ पाये थे ऐसे उन योद्धाओंको चरणोंकी चपेटसे विद्वल कर एक साथ दूर फेंक दिया ॥२३३॥ शीघ्रतासे धूमते हुए लक्ष्मणने कितने ही लोगोंको पुटनासे, कितने ही लोगोंको कोहनौसे, और कितने ही लोगोंको मुष्टियोंके प्रहारसे शतपण्ड कर दिया अर्थात् एक-एकके सी-सी टुकड़े कर दिये ॥२३४॥ कितने ही लोगोंके बाल सींचकर तथा पृथिवी पर पटक कर उन्हें पीरोसे चूर्ण कर डाला और कितने ही लोगोंको कन्धेके प्रहारसे गिरा दिया ॥२३५॥ कितने ही लोगोंको परस्पर भिड़ाकर उनके शिर एक दूसरेके शिरकी चोटसे चूर्ण कर डाले और कितने ही लोगोंको जहाने प्रहारसे मूर्च्छित कर दिया ॥२३६॥ इस प्रकार महाबलवान् एक लक्ष्मणने सिंहोदरकी उस सभाको भयभीत कर विध्वस्त कर दिया ॥२३७॥

इस प्रकार सभाको विध्वस्त करता हुआ लक्ष्मण जब भयनसे बाहर आङ्गणमें निकला तब सैन्योंने अन्य योद्धाओंने उसे घेर लिया ॥२३८॥ तदनन्तर बुद्धके लिए तैयार रखे हुए सामन्तों, हाथियों, घोड़ों और रथोंके द्वारा ढपत्र परस्परकी धक्काधूमोंसे बहुत भारी आउलता ढपत्र हो गई ॥२३९॥ हाथोंमें नाना प्रकारके शस्त्र धारण करनेवाले उन सामन्तोंके साथ वीर

ततोऽनेकपमारुह्य प्रावृषेण्यघनाकृतिम् । स्वयं सिंहोदरो रोदधु लक्ष्मिणिलयमुद्यत ॥२४१॥  
 तरिमन् रणशिरोयाते किञ्चिद्वैर्यमुपागता । दूरगा पुनराजम्भु सामन्ता लक्ष्मण प्रति ॥२४२॥  
 घनानामिव सहास्ते यद्रुस्त शशिन यथा । वागूल इव तानेप तूलराशीनिवाकिरन् ॥२४३॥  
 उदारभृङ्गकामिन्यो गण्डविन्ध्यस्तपाणय । जगुराकुलताभाज प्रविलोलविलोचना ॥२४४॥  
 पर्यतैन महाभीम सत्त्व पुरगमेकरुम् । वेष्टित बहुभि क्रूरैरसाम्प्रतमिद परम् ॥२४५॥  
 भन्यास्तत्रोचुरे कोऽपि केनाय परिभूयते । पर्यतानेन विकान्ता बहवो विह्वलीकृता ॥२४६॥  
 आस्तृणानमथो दृष्ट्वा लक्ष्मणोऽभिमुख बलम् । विहस्य वारणस्तभ महान्तमुदमूलयत् ॥२४७॥  
 तत सरभसस्तत्र सान्द्रद्विद्वारभाषण । जन्मभे लक्ष्मण कक्षे यथोच्चैराशुशुचिणि ॥२४८॥  
 विस्मितो गोपुरामस्थो दशाङ्गनगराधिप । पार्श्ववर्तिभित्तिव्यूचे सामन्तैर्विकचेक्षणै ॥२४९॥  
 कोऽप्येव पुरुयो नाथ पर्य सिंहोदर बलम् । भग्नध्वजस्थच्छत्र करोति परमद्यति ॥२५०॥  
 एष एतन्ननुच्छायमभ्यवर्ती सुविह्वल । आवर्त इव निक्षिप्तो भ्राम्यतीर्भाहितोदर ॥२५१॥  
 इतश्चेतश्च विस्तारणमेतसैन्य पलायते । एतस्मात्त्रासमागय सिंहाज् मृगकुल यथा ॥२५२॥  
 वदन्यन्योन्यमत्रैते सामन्ता दूरवतिन । अवतारय सन्नाह मण्डलाप्रो विमुच्यताम् ॥२५३॥

लक्ष्मण ऐसी चेष्टा करने लगा जैसी कि शृगालोंके साथ सिंह करता है ॥२५०॥ तदनन्तर वर्षा ऋतुके मेघके समान आकारको धारण करनेवाले हाथीपर सवार होकर सिंहोदर स्वयं लक्ष्मणको रोकनेके लिए उद्यत हुआ ॥२५१॥ जो सामन्त पहले दूर भाग गये थे वे सिंहोदरके रणाग्रमें आते ही कुछ-कुछ धैर्य धारणकर फिरसे वापिस आ गये ॥२५२॥ जिस प्रकार मेघोंके झुण्ड चन्द्रमाको घेरते हैं उसी प्रकार उन सामन्तोंने लक्ष्मणको घेरा परन्तु जिस प्रकार तीत्र वायु रईके ढेरको उड़ा देती है उसी प्रकार उसने उन सामन्तोंको उड़ा दिया—दूर भगा दिया ॥२५३॥ जिन्होंने गालापर हाथ लगा रकते थे, जो अत्यन्त आकुलताको प्राप्त थीं, तथा जिनके नेत्र भयसे चञ्चल हो रहे थे ऐसी उत्तम योद्धाओंकी बिर्यो परस्परमें कह रही थी कि हे सखियों ! इस महा-भयङ्कर पुरुषको देखो । इस एकको बहुतसे क्रूर सामन्तोंने घेर रक्खा है यह अत्यन्त अनुचित बात है ॥२५४-२५५॥ उन्हींमें कुछ बिर्यो इस प्रकार कह रहीं थीं कि यद्यपि यह अकेला है फिर भी इसे कौन परिभूत कर सकता है ? देखो, इसने अनेक योद्धाओंको चपेटकर विह्वल कर दिया है ॥२५६॥

अथानन्तर सामने सेनाको इकट्ठी होती देख लक्ष्मणने हँसकर हाथी बंधनेका एक वडा रम्भा उठाया ॥२५७॥ और जिस प्रकार धनमे जोरदार अग्नि वृद्धिज्ञत होती है उसी प्रकार सघन हुकारोंसे भयङ्करताको प्राप्त करता हुआ लक्ष्मण उस सेनापर वेगसे टूट पड़ा ॥२५८॥ दशाङ्गपुरका राजा यज्ञकर्ण गोपुरके अग्रभाग पर बैठा बैठा इस दृश्यको देख आश्चर्यसे चकित हो गया । जिनके नेत्र हर्षसे विस्मित हो रहे थे ऐसे समीपवर्ती सामन्तोंने उससे कहा कि हे नाथ ! देखो, परम तेजको धारण करनेवाला यह कोई पुरुष सिंहोदरकी सेनाको नष्ट कर रहा है । उसने हमका सेनाके ध्वज, रथ तथा छत्र आदि सभी तोड़ डाले हैं ॥२५९-२६०॥ तलवारों और धनुषोंकी दायारे बीच मड़ा हुआ यह सिंहोदर, अत्यन्त विह्वल हो भँवरमें पड़े हुए के समान इधर-उधर घूम रहा है ॥२६१॥ जिस प्रकार सिंहसे भयभीत होकर मृग समूह इधर-उधर भागता फिरता है उसी प्रकार सिंहोदरकी सेना इससे भयभीत होकर इधर-उधर भागती फिरती है ॥२६२॥ ये दूर रूढ़े हुए सामन्त परस्पर कर रहे हैं कि क्यच उतार दो, तलवार छोड़

कामुंरु चिप गुटारन वारणादवतायताम् । गदा निरस्य गतायां माकार्शवमुक्षणम् ॥२५४॥  
 आलोस्य शस्त्रमहात ध्रुवा वा रभमान्त्रित । काप्येय पुण्याऽस्मात्प्रमातेदग्निदाहज ॥२५५॥  
 'अपसर्पामुता देशादेहि मार्गमहो भू । वारण सारयैतस्मात्किमत्र स्तमित्ताऽपि ते ॥२५६॥  
 भय प्राप्तेऽप्यमायातो दु मृत स्य'द्वन स्यज । तुरहाश्चादय चिप घानिता स्मो न मशयम् ॥२५७॥  
 एवमाद्रिकृतालापा वचिभसङ्गमागता । परित्यग्य भंगकरवमेते पण्डितवन् स्थिता ॥२५८॥  
 क्रिमैर रमते युद्धे कोऽपि त्रिदशयम्भव । विद्यारौ नु वा वस्य कस्येय शक्तिरा दशा ॥२५९॥  
 कालो नाम यमो वायु कोऽपि लोने प्रकायते । मोऽप्य किमु भवेद्यद्दो विद्युद्गुणज्ज्वल ॥२६०॥  
 कृतेर्दमीदश सैन्य पुनरेव करिष्यति । क्रिमियेव मनोऽस्मान् नाय शङ्कामुपागतम् ॥२६१॥  
 'निराश्रयैवमुपय सप्रामे रोमहर्षणे । सिहोदर समाहृत्य विह्वल वरवारणान् ॥२६२॥  
 गले तद्गुनेनैव प्राध्वकृत्य सुविस्मित । एव याति पुर दृवा' वलावदं यथा वशम् ॥२६३॥  
 एवमुत् स तैरुचे स्वस्था भवत मानना । देवा शान्ति करिष्यन्ति किमत्र बहुचिन्तया ॥२६४॥  
 स्थिता 'मूर्द्धसु ह्य्याणा दशगङ्गनगराङ्गना । पर विस्तयमापन्ना चगुरेन परस्परम् ॥२६५॥  
 सन्नि परयास्य वारस्य चछित परमाद्भुतम् । येनैकेन अरेन्द्रोऽप्यमानात्ताऽप्युक्तय'जनम् ॥२६६॥  
 अहो वान्तिरमुष्येय श्रुतिश्चातिशतान्विता । अहो शक्तिरिय कोऽप्य मनेन पुरुषमत्तम् ॥२६७॥  
 भूतोऽप्य भविता वापि पुण्यवत्या सुयोपित । पति कस्या प्रशस्ताया समस्तजगत्सारवर ॥२६८॥  
 सिहोदरमहिव्योऽथ वृद्धवाल्समन्विता । रुद्रस्य पादयो पेतुर्धमणस्यातिविह्वला ॥२६९॥

दो, धनुष फेंक दो, घोडा छोड दो, हाथीमे नीचे उतर जाओ, गद्दा गड्डेम गिरा दो, ऊँचा शब्द मत करो, शस्त्रोका समूह देरकर यह अतिशय भयङ्कर पुरुष वेगसे वही हमारे उपर न आ पड़े, इस स्थानसे हट जाओ, अरे भट । रास्ता दे, हाथीको यहाँसे दूर हटा, चुपचाप क्यों गड्ढा है ? अरे दुष्ट सारथि । देस, यह आया, यह आया, गध छोड, घोडे जल्दी बढा, मारे गये इतमे सशय नहीं, इत्यादि वार्तालाप करते हुए, सकटमे पडे कितने ही योद्धा, योद्धाआका वेप छोड कर नपुसकोके समान एक ओर स्थित हैं ॥२५३-२५८॥ क्या युद्धमे यह कोई देव वीडा कर रहा है अथवा विद्याधर, वायु नामका कोई व्यक्ति ससारमे प्रसिद्ध है सो क्या यह वही है ? यह अन्यन्त तीक्ष्ण और निजलीके समान चञ्चल है ॥२५९-२६०॥ सेनाओ इस प्रकार नष्ट भ्रष्ट करके अब यह आगे क्या करेगा ? हे नाथ ! इस प्रकार हमारा मन शङ्काको प्राप्त हो रहा है ॥२६१॥ देसो, रोमाञ्चकारी युद्धमे उद्वलकर भयभीत सिहोदरको हाथीसे रीचकर उसीके वस्त्रसे गलेमे बाँध लिया है और यह बैलकी तरह वशकर उसे आगे कर आश्रयसे चकित होता हुआ आ रहा है ॥२६२-२६३॥ इस प्रकार सामन्ताके कहनेपर वञ्चकर्णने कहा कि हे मानओ ! परस्य होओ, देव शान्ति करेंगे, इस त्रिपयमे बहुत चिन्ता करनेसे क्या लाभ है ? ॥२६४॥ महलके शिखरों पर बैठे दशाङ्गनगरका स्त्रियों परम आश्रयको प्राप्त हो परस्य इस प्रकार कह रही थी ॥२६५॥ कि हे साथी ! इस वीरकी परम अद्भुत चेष्टा देसो जिसने अकेले हा इस राताको वस्त्रसे बाँध लिया ॥२६६॥ धन्य इसकी कान्ति, धन्य इसका अतिशय पूर्ण तेज, और धन्य इसकी शक्ति । अहो ! यह उत्तम पुरुष कौन होगा ? ॥२६७॥ यह किस भाग्यशालिनी गुणवती स्त्रिका पति है ? अथवा आगे होगा ? यह समस्त पृथिवीका स्वामा है ॥२६८॥

अथानन्तर वृद्ध और बालकोंसे सहित सिहोदरकी रानियों भयसे अत्यन्त विह्वल हो रीती

१ मा पतदतिदारुण म० । २ अयसत्या म० । ३ योपवेपम् । ४ नपुसकवन् रियता । ५ भवेन्द्रो (१) म० । ६ स्वयेद म० । ७ निरीहस्व + एनम् । ८. वद्वा । ९. पर कृता ज०, स्त० । १० वञ्चर्ण । ११ ह्य्याणा प्रामादाना मूर्द्धसु प्रप्रेषु ।



ऊचुश्च देव सुव्रतं भर्तृभिन्ना प्रयच्छ न । अथ प्रभृतिभृत्योऽप्य तवाज्ञाकरणोद्यत ॥२७०॥  
 सोऽवोचत् परयतोदार द्रुमखण्डमिमं पुर । अत्र नीत्वा दुराचारेमेतमुल्लङ्घयाम्यहम् ॥२७१॥  
 करणं बहु कुर्वन्त्य पुन साङ्गल्योऽवदन् । रुष्टोऽसि यदि देवाम्भान् जहि निर्धायतामयम् ॥२७२॥  
 प्रसादं वरु मा दु ख इशंय प्रियसम्भवम् । ननु योपितु कारण्यं कुर्वन्ति पुरपोत्तमा ॥२७३॥  
 पुरो मादयामि सेवष्व स्वस्थतामियसी वदन् । ययौ चैत्यालयं यत्र ससीतो राघव स्थित ॥२७४॥  
 अवोचत्तन्मम पद्म सोऽप्य वदन्नश्रतेरि । आनीतोऽस्याधुना देव कृत्यं वदतु यम्मया ॥२७५॥  
 तत सिंहोदरो मूर्ध्नां करकुड्मलयोगिना । पपात वेपमानाद्गं पद्मस्य क्रमपद्मयो ॥२७६॥  
 जगाद् च न त्वेव ध्या नेभि कोऽस्माति कान्तिमान् । परेण तेजसा युक्तो महोद्भ्रपतिसन्निभ ॥२७७॥  
 मानवो भव देवो वा ताम्भोरपुरुषोत्तम । अत्र किं बहुमि प्रोक्तैरहमाज्ञाकरस्तव ॥२७८॥  
 गृह्णातु रचितस्तुभ्यं राज्यमिन्द्रायुधश्रुति । अहं तु पादशुश्रूषां करोमि सतत तव ॥२७९॥  
 ३ध्वभिन्ना प्रयच्छेति योपितोऽप्यस्य पादयो । रदत्यं प्रणिपत्योचु कुर्वन्त्यं करणं बहु ॥२८०॥  
 देवि स्त्रीणास्वमस्माकं कारण्यं कुरु शोभने । ह्यल्युदित्वा च सीताया पतितास्ता क्रमान्जयो ॥२८१॥  
 सत सिंहोदरं पद्मो जगाद् विनताननम् । कुर्वन् वार्षीयु हसाना मेघनादोद्भव भयम् ॥२८२॥  
 शक्रायुधश्रुतिर्यत्ते ब्रवीति कुरु तत्सुधी । एव ते जीवितं मन्ये प्रकारोऽप्यो न विद्यते ॥२८३॥  
 आहूतोऽथ हितै पुमिभ कृतदृष्ट्यादिवर्षणं । वज्रकर्णं परिवारसहितश्रैःसामगमम् ॥२८४॥  
 स त्रि प्रदक्षिणीकृत्य मूर्धपाणिजिनालयम् । स्तुत्वा ननाम चन्द्राभ भक्तिदृष्टस्तनूरुह ॥२८५॥

हुई लक्ष्मणके चरणामे आ पड़ी ॥२६६॥ वे बोलीं कि हे देव । इसे छोड़ो, हमारे लिए पतिकी भिन्ना देओ, आजसे यह आपका आज्ञाकारी भृत्य है ॥२७०॥ लक्ष्मणने कहा कि देवो यह सामने उँचा धृत्तराज है वहाँ ले जाकर इस दुराचारीको उसपर लटककाँगा ॥२७१॥ तदनन्तर बहुत करुण रुदन करती तथा बार-बार हाथ जोड़ती हुई बोलीं कि हे देव । यदि रष्ट हो तो हम लोगोंको मारो और इसे छोड़ दो ॥२७२॥ प्रसन्नता करो, हम लोगोंको पतिका दुख न दिग्गमो उत्तम पुरुष त्रियों पर दया करते ही हैं ॥२७३॥ तब लक्ष्मणने कहा कि अन्धा आगे चलकर छोड़ देंगे आप लोग स्वस्थताको प्राप्त होओ । इस प्रकार कहता हुआ लक्ष्मण उस चैत्यालयमें गया जहाँ कि सीता सहित राम ठहरे हुए थे ॥२७४॥ वहाँ जाकर लक्ष्मणने रामसे कहा कि यह वज्रकर्णना शत्रु है इसे मैं ले आया हूँ । अब हे देव । जो करना हो सो आज्ञा करो ॥२७५॥ तब जिसका शरीर कोप रहा था ऐसा सिंहोदर हाथ जोड़ भस्तकसे लगा रामके चरणकमलोंमें गिरा ॥२७६॥ और बोला कि हे देव । आप कौन हैं ? यह मैं नहीं जानता । आप कान्तिमान् हैं उरुष्ट तेजसे युक्त हैं और सुमेरुके समान स्थिर हैं ॥२७७॥ हे गम्भीर पुत्रोत्तम । आप मनुष्य रहो चाहे देव । इस विषयमें बहुत कहनेसे क्या ? मैं आपका आज्ञाकारी सेवक हूँ ॥२७८॥ वज्रकर्ण आपको रुचता है सो यह यद् राज्य ग्रहण करे मैं तो सदा आपके चरणोंकी शुश्रूषा ही करता रहूँगा ॥२७९॥ सिंहोदरकी त्रियों भी अत्यन्त करुण विलाप करती हुई, रामके चरणों में प्रणाम कर बोली कि हमारे लिए पतिकी भिन्ना दीजिए ॥२८०॥ 'हे देवि । तुम तो स्त्री हो अत हे शोभने । हम पर दया करो' इस प्रकार कहकर वे सीताके चरणकमलोंमें भी पड़ी ॥२८१॥

तदनंतर वापिकाओंमें स्थित हँसोयो मेघध्वनिसे होनेवाला भय उत्पन्न करते हुए रामने नीचा मुग्धकर बैठे हुए सिंहोदरसे कहा ॥२८२॥ कि हे सुधी । तुम्हें वज्रकर्ण जो बड़े सो कर । इसी तरह तेरा जीवन रह सकगा है और दूसरा उपाय नहीं है ॥२८३॥ तदनन्तर जिमकी भाग्य वृद्धि हो रही थी वेसा वज्रकर्ण हितकारी पुरुषाके द्वारा बुलाया गया जो परिवार सहित उस चैत्यालयमें आया ॥२८४॥ उसने हाथ जोड़ भक्तके लगा जिनालयकी तान प्रदक्षिणाएँ दीं

ततश्च पितर्या गन्वा स्तुत्वा ती धातरौ ब्रह्मान् । अष्टवद् वपुरारोग्यं मीमां च त्रिचक्रोत्तिः ॥२८१॥  
 भद्र ते कुशलेनाद्य कुशलं नः समन्ततः । इति नं राघवोऽवोचन्नितान्तं मधुरप्यनिः ॥२८२॥  
 मद्ध्येयं तपोपांबद् वर्तते शुभलोत्थयोः । चाग्नेयोऽथ सैन्येन त्रिचुद्रङ्गः समागतः ॥२८३॥  
 स तपोः प्रगति कृत्वा स्तुत्वा च ब्रह्मपण्डितः । समीपे वज्रकर्णस्य मन्त्रिनिष्ठः प्रतापवान् ॥२८४॥  
 विद्युद्गङ्गः सुर्धा सोऽयं वज्रकर्णमुद्गरपरः । इति शब्दः ममुत्तस्थौ तदा मद्रमि मांमलः ॥२८५॥  
 पुनश्च राघवोऽवोचत् कृत्वा स्मिन्मिन् मुन्वम् । वज्रकर्ण ! समीचीना तव वृष्टिरिय परा ॥२८६॥  
 कुमनस्तव धीरेषा मनागपि न कश्चिपता । उपातवातमहातैः मन्दरस्येव वृष्टिः ॥२८७॥  
 ममापि सहसा दृष्ट्वा न ते मूर्धायमानतः । अहो परमिदं चाग तव शान्तं विचेष्टितम् ॥२८८॥  
 अथवा शुद्धतरवस्य किमु पुंसोऽस्ति दुस्तरम् । धर्मानुरागचित्तस्य सग्यरष्टेविंशोपतः ॥२८९॥  
 प्रगम्य त्रिजगद्द्वन्द्वं जिनेन्द्रं परमं शिवम् । तुङ्गेन शिरसा तेन कथमन्यः प्रणम्यते ॥२९०॥  
 मकरन्दरसास्वादलम्बध्वर्णो मधुवतः<sup>३</sup> । राममस्य पदं पुच्छे प्रमत्तोऽपि करोति किम् ॥२९१॥  
 बुद्धिमानसि धन्वोऽसि दधास्यामन्नमन्यताम् । चन्द्रादपि मिता कीर्तिन्तव आगम्यनि विष्टे ॥२९२॥  
 विद्युद्गङ्गोऽप्ययं मित्रं परं ते विदितं मया । भव्योऽयमपि यः सेनां तव कर्तुं ममुपगतः ॥२९३॥  
 सद्गतगुणमन्कीर्तरेष लज्जामुपागतः । किञ्चिन्नताननोऽवोचत्तुनाशरीरायुषध्रवाः ॥२९४॥  
 अत्रावसादतो देव प्राप्तस्य व्यसनं महत् । सञ्ज्ञानोऽसि महाभाग त्व मे<sup>४</sup> परमवान्धवः ॥३००॥

फिर भक्तिसे रोमाञ्चित हो चन्द्रप्रभ भगवान्को नमस्कार किया ॥२८१॥ तत्पश्चात् विधि-  
 विधानके जानकार वज्रकर्णने विनयपूर्वक जाकर राम लक्ष्मण दोनों भाइयोंकी क्रमसे मुनि की  
 और सीतासे शरीर-सम्बन्धी आरोग्य पूछा ॥२८२॥ तदनन्तर रामने अत्यन्त मधुर ध्वनिमें  
 उससे कहा कि हे भद्र ! आज तो तेरी कुशलसे ही हम सबकी कुशल है ॥२८३॥ इस प्रकार  
 शुभलोलाके धारक राम और वज्रकर्णके बीच जब-तक यह वार्तालाप चलता है तब-तक सुन्दर  
 वेपका धारक विद्युद्गङ्ग सेनाके साथ वहाँ आ पहुँचा ॥२८४॥ क्रमके जाननेमें पण्डित प्रतापी  
 विद्युद्गङ्ग राम लक्ष्मणको प्रणाम कर वज्रकर्णके पास आ बैठा ॥२८५॥ उसी समय सभामें यह  
 जोरदार शब्द गूँजने लगा कि यह बुद्धिमान् विद्युद्गङ्ग वज्रकर्णका परम मित्र है ॥२८६॥

तदनन्तर रामने मन्द हास्यसे मुनको धवल कर वज्रकर्णसे कहा कि हे वज्रकर्ण ! तेरी यह  
 दृष्टि अत्यन्त श्रेष्ठ है ॥२८७॥ जिस प्रकार मेरुपर्वतकी चूलिका, प्रलयनालकी वायुके आघातसे  
 कम्पित नहीं होती, उसी प्रकार तेरी यह बुद्धि मित्र्या मतोंसे रहस्यमय भी कम्पित नहीं हुई  
 ॥२८८॥ मुझे देखकर भी तेरा यह मस्तरु नम्रीभूत नहीं हुआ सो तेरी यह चेष्टा अत्यन्त मनोहर  
 तथा शान्त है ॥२८९॥ अथवा शुद्ध तरवके जानकार पुनपकी क्या कठिन है ? सासकर धर्मा-  
 नुरागी सम्यग्दृष्टिके मनुष्य को ॥२९०॥ जिस उन्नत शिरसे तीन लोकरुके द्वारा बन्दीय परम  
 कल्याणस्वरूप जिनेन्द्रभगवान्को नमस्कार किया जाता है उसी शिरसे दूसरे लोगोंकी कैसे  
 प्रणाम किया जाय ? ॥२९१॥ मकरन्द रसके आस्वादनमें निपुण भौरा उन्मत्त होने पर भी क्या  
 गधेके पूँजपर अपना स्थान जमावा है ? ॥२९२॥ तुम बुद्धिमान् हो, धन्य हो, निकट भव्यपना  
 धारण कर रहे हो और चन्द्रमासे भी अधिक धवल तुम्हारी कीर्ति संसारमें भ्रमण कर रही है  
 ॥२९३॥ मुझे मालूम है कि यह विद्युद्गङ्ग भी तुम्हारा मित्र है । सो यह भी भव्य है जो कि  
 तुम्हारी सेवा करनेके लिये उद्यत रहता है ॥२९४॥

अथानन्तर यथार्थ गुणोंके कथनसे जो लज्जाको प्राप्त था तथा जिसका मुख कुछ नीचेकी  
 ओर मुक रहा था ऐसा वज्रकर्ण बोला कि हे देव ! यद्यपि आपको यहाँ रहते बहुत कष्ट हुआ है

नियमव्यवसादेन ममाय जावतोऽधुना । पालितो मम भाग्येन<sup>१</sup> त्वमानीतो नरोत्तम ॥३०१॥  
 वदन्नेवममा ऊचे लक्ष्मणेन विचक्षण । वद<sup>२</sup>भिरुचित यत्ते क्षिप्र सम्पादयाम्यहम् ॥३०२॥  
 साऽत्राचन् सुहृद् प्राप्य भव-तमनिदुर्लभम् । न किञ्चिदस्ति लोकैऽस्मिन्निदं तु प्रवदाम्यहम् ॥३०३॥  
 तृणस्यापि न वाञ्छामि पाडा जिनमताश्रित । अतो विमुच्यतामेप मम सिहोदरप्रभु ॥३०४॥  
 इयुक्ते लाकववप्रेभ्य सायुक्कार समुद्ययौ । प्राप्तद्वेषेऽपि पश्याय मर्ति धत्ते शुभामिति ॥३०५॥  
 अपकारिणि कारण्य य करोति स सन्नन । मभ्यो कृतोपकारे वा प्रीति कस्य न जायते ॥३०६॥  
 एवमस्त्विति भाषित्वा लक्ष्मणेन तयो कृता । हस्तग्रहणसम्पन्ना प्रीति समयपूर्विका ॥३०७॥  
 उज्जयिन्या द्वादविधं वज्रकर्णाय शुद्धया । सिहोदरो ह्यन पूर्वं विपयोद्वासने च यत् ॥३०८॥  
 चतुरङ्गस्य देशस्य गणिकाणा धनस्य च । विभाग समभागेन निजदयाव्यपरोदसौ ॥३०९॥  
 वार्हद्गतप्रसादेन ता वेश्या तच्च कुण्डलम् । लभे सेनाधिपय च विद्युदङ्ग सुविभ्रुत<sup>४</sup> ॥३१०॥  
 वज्रकर्णस्तत कृत्वा रामलक्ष्मणयो पराम् । पूजामानाययत्क्षिप्रमष्टौ दुहितरो वरा ॥३११॥  
 "सत्राया दृश्यते यथायानिति तास्तेन दंकिता । लक्ष्माधर कृतादारविभूपाविनयान्विता ॥३१२॥  
 नृपा सिहोदरावाश्च ददु परमकन्यका । एव सन्निहित तस्य कुमाराणा शतत्रयम् ॥३१३॥  
 दंकि वा वज्रकर्णस्ता सम सिहोदरादिभि । जगाद् लक्ष्मण देव तवैता वनिता इति ॥३१४॥

तो भी हे महाभाग । आप मेरे परम दान्धव हुए हैं ॥३०१॥ इस समय मेरे जीवित रहते हुए मेरे इस नियमका पालन आपके ही प्रसादसे हुआ है और मेरे भाग्यसे ही आप पुत्रपोत्तम यहाँ पधारे हैं ॥३०२॥ इस प्रकार कहते हुए बुद्धिमान् वज्रकर्णसे लक्ष्मणने कहा कि जो तेरी अभिलाषा हो वह कह मैं शीघ्र ही पूर्ण कर दूँ ॥३०३॥ यह सुनकर वज्रकर्णने कहा कि आप जैसे अत्यन्त दुर्लभ मित्रको पाकर इस ससारमें कुछ भी दुर्लभ नहीं है । अत मैं यह प्रार्थना करता हूँ कि मैं जिनमतका धारक होनेसे यह नहीं चाहता हूँ कि तृणको भी पीडा हो । इसलिए यह मेरा स्वामी राजा सिहोदर छोड़ दिया जाय ॥३०४-३०४॥ वज्रकर्णके इतना कहते ही लोकोके मुखसे 'धन्य धन्य' शब्द निकल पडा । देखो यह भद्र पुरुष शत्रुके ऊपर भी शुभ बुद्धि धारण कर रहा है ॥३०५॥ अपकारके ऊपर जो दया करता है वही सज्जन है । वैसे मध्यस्थ अथवा उपकार करनेवाले पर किसे प्रेम उत्पन्न नहीं होता ॥३०६॥

तदनन्तर 'एवमस्तु' कह लक्ष्मणने हाथ मिलाकर तथा कभी शत्रुता नहीं करेंगे, इस प्रकार शपथ दिलवाकर दोनोंको मित्रता करा दी ॥३०७॥ निर्मल बुद्धिके धारक सिहोदरने उज्जयिनिका आधा भाग तथा देशको उजाड़ करते समय जो कुछ पहले हरा था वह सब वज्रकर्णके लिए दे दिया ॥३०८॥ अपनी चतुरङ्ग सेना, देश, गणिका तथा धनका भी उसने बराबर-बराबर आधा भाग कर दिया ॥३०९॥ जिनभक्तिके प्रसादसे अतिशय प्रसिद्ध विद्युदङ्गने भी वह वेश्या, वह रत्नमयी कुण्डल और सेनापतिका पद प्राप्त किया ॥३१०॥ तदनन्तर वज्रकर्णने राम-लक्ष्मणकी परम पूजा कर शीघ्र ही अपना आठ पुत्रिया बुलवाई ॥३११॥ चूँकि वड़े भाई राम वहाँसे सहित दिग्गई गते थे इसलिए उसने उत्तम आभूषणाको धारण करनेवाली तथा विनयसे युक्त अपनी पुत्रियों लक्ष्मणको व्याह दी ॥३१२॥ इनके सिवाय सिहोदर आदि राजाआने भी उत्तमात्तम कन्याएँ दी । इस तरह सब मिलाकर लक्ष्मणको तीन सौ कन्याएँ प्राप्त हुई ॥३१३॥ उन सबको पडा कर वज्रकर्णने सिहोदर आदि राजाआके साथ लक्ष्मणसे कहा कि हे देव । ये आपकी मित्रियों हैं ॥३१४॥

१. जीविनाधुना क०, स्व०, ज० । २. पालिता क० । ३ भागन म० । ४. सुविभ्रुत म० ।  
 ५. 'तत्र ग्यापान् उपष्टा भ्राता राम सत्राया सल्लभया दृश्यते अत्यन्तमपि सत्राया मय' इति निर्दिश्य तेन वा दुहितेऽ लक्ष्मण प्रापिता इति भाव ।

एषमीधरस्ततोऽजोचद् दारसन्नं करोम्यहम् । न तावन्न कृतं यावत् पदं भुजगप्याजितम् ॥३१५॥  
 पद्मश्च तानुनाचैव नास्माक वसति- क्वचिन् । भरतस्याधिराज्येऽस्मिन् देरो स्वर्गंतलोपमे ॥३१६॥  
 देशान् सर्वान् समुत्सृज्य कश्चिप्याग्यालयं ततः । आश्रित्य चन्दनगिरिं दक्षिणाण्वमेव वा ॥३१७॥  
 एकां वेलाभिह ततो जनन्यौ नेतुमुसुक्ते । आगन्तव्य मयावश्यं द्रागयोध्यामनेन वा ॥३१८॥  
 काले तत्रैव नेत्यन्ते कन्यका अपि भो नृपाः । अज्ञातनिलयस्यास्य कीदृशो दारसप्रहः ॥३१९॥  
 एवमुक्ते कुमारीणा तद्वृन्दं शुशुभे न च । आकुल पङ्कजवनं हिमवाताहत यथा ॥३२०॥  
 प्रियस्य विरहे प्राणान् त्यक्त्यामो यदि तत्पुनः । अवाप्त्यार्म कुतोऽनेन समागमरसायनम् ॥३२१॥  
 प्राणांश्च धारयन्तीनां कैतव मन्यते जनः । दृष्टते च समिद्धेन मनो विरहवद्विना ॥३२२॥  
 सुमहान् शृगुरेभ्य व्यघ्नोऽप्यत्रातिदारण- । अहो कष्ट कमाधार व्रजामोऽप्यन्तदुस्सहा ॥३२३॥  
 अथवा विरहव्याघ्र सङ्गमाशयविद्यया । संस्तंभ्य धारयिष्यामः शरीरमिति साम्प्रतम् ॥३२४॥  
 एवं त्रिचिन्तयन्तीभिः मार्घं तामिर्महीभृत- । गता ययागत कृत्वा रामादीना ययोचितम् ॥३२५॥  
 सन्चेष्टाः पृथ्यमानास्ताः पितृवर्गेण कन्यकाः । नानाविनोदनामन्नास्तस्थुस्तद्रतमानसा ॥३२६॥  
 आनायितः पिता भूत्या सवन्धुर्देशमाननः । विद्युद्गनेन चक्रे च परम- सङ्गमोत्सवः ॥३२७॥  
 परमेऽथ निशोभे से नत्वा चैत्यालयात्ततः । शनैर्निर्गय पादाभ्यां स्वेच्छया मुथियो ययु ॥३२८॥  
 चैत्यालय प्रभाते त दृष्ट्वा शून्य जनोऽम्बिलः । रहितारोपकतैव्यो वित्तानहृदयस्थितः ॥३२९॥

तदनन्तर उसके उत्तरमें मे लक्ष्मणने कहा कि मैं जब तक अपने बाहुबलसे अर्जित स्थान प्राप्त नहीं कर लेता हूँ तब तक स्त्री समागम नहीं करूँगा ॥३१५॥ रामने भी उनसे इसी प्रकार कहा कि अभी हमारा कहीं निश्चित निवास नहीं है। स्वर्गके समान भरतके राज्यमें जो देश है उन सबको पार कर हम मलयगिरि अथवा दक्षिण समुद्रके आस-पास अपना घर बनावेगे। वहाँ उत्कण्ठासे भरी अपनी माताओंको ले जानेके लिए एक वार हम अथवा लक्ष्मण अवश्य ही अयोध्या आवेगे। हे राजाओं! उसी समय आपकी इन कन्याओंको ले जावेगे। तुम्हीं कहो जिसके रहनेका ठिकाना नहीं उसका स्त्री-संग्रह कैसा? ॥३१६-३१९॥ इस प्रकार कहने पर वह कन्याओंका समूह तुपार वायुसे आहत कमलवनके समान आतुल होता हुआ शोभित नहीं हुआ ॥३२०॥ कन्याएँ विचार करने लगी कि यदि हम पतिके विरहमें प्राण छोड़ देवेंगी तो फिर इसके साथ समागमरूपी रसायनको कैसे प्राप्त कर सकेंगी? ॥३२१॥ और यदि प्राण धारण करती हैं तो लोग कपट मानते हैं तथा देहाप्यमान विरहानलसे मन जलता है ॥३२२॥ अहो! एक ओर तो बड़ी भारी ढालू चट्टान है और दूसरी ओर अत्यन्त निर्दय व्याघ्र है। अतः अत्यन्त दुःखसे भरी हुई हम किस आधारको प्राप्त हों? ॥३२३॥ अथवा इस समय हम समागमकी अभिलाषारूपी विद्यासे विरहरूपी व्याघ्रको कोलकर शरीर धारण करेंगी ॥३२४॥ इस प्रकार विचार करती हुई उन कन्याओंके साथ राजा लोग राम आदिका यथोचित सत्कार कर जेम्मे आये थे वैसे चले गये ॥३२५॥ जिनकी उत्तम चेष्टा थी, पितृवर्ग जिनका निरन्तर सत्कार करना था और जो नाना प्रकारके विनोदमें आसक्त थीं ऐसी कन्याएँ लक्ष्मणमें मन लगा कर रह गई ॥३२६॥ तदनन्तर विद्युद्गने भाई-बान्धवोंसे सहित पिताकी बड़े ठाट-बाटसे अपने देशमें घुलाया और पहुँचनेपर उनके समागमका बहुत भारो उत्सव किया ॥३२७॥

अथानन्तर बुद्धिमान् राम-लक्ष्मण सीताके साथ-साथ घनघोर आघो रातके समय भगवानको नमस्कार कर चुपके-चुपके चैत्यालयसे निकलकर इच्छानुसार पैदल चले गये ॥३२८॥ प्रभात होनेपर चैत्यालयमें शून्य देख सारलोग अपना-अपना कर्तव्य भूलकर शून्य हृदय हो

सम कुलिशकर्णेन जाता प्रीतिरनुत्तरा । सिंहोदरस्य सन्मानगत्यागमनवधिता ॥३३०॥

### मन्दाक्रान्तावृत्तम्

स्वैर स्वैर जनकतनया तौ च सञ्चारयन्तो स्थाय स्थाय विकटसरसा काननाना तलेषु ।

पाय पाय रसमभिमत स्वाद्रुभाजा फलाना क्रीड क्रीड सुरसवचन चारुचेष्टासमेतम् ॥२३१॥

प्राप्ती नानारचनभवनोत्तुङ्गशृङ्गाभिराम रम्योद्यानावततधसुध चैत्यसङ्घातपूतम् ।

नाकच्छाय सततजनितान्युसवोदारपौर श्रीमस्त्वान रविसमरुचिर्ध्यातिमक्कूवराख्यम् ॥२३२॥

इत्यार्षे रविपेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते वज्रकर्णोपाख्यान नाम त्रयस्त्रिंशत्तम पर्व ॥३३॥

गये ॥३२६॥ सिंहोदरकी वज्रकर्णके साथ जो उत्तम प्रीति उत्पन्न हुई थी वह पारस्परिक सम्मान तथा आने-जानेसे वृद्धिको प्राप्त हुई ॥३३०॥ गौतमस्वामी कहते हैं कि राम लक्ष्मण सीताको धीरे धीरे उसकी इच्छानुसार चलाते हुए, विशाल सरोवरोसे युक्त वनोंके मध्यमें ठहरते हुए, स्वादिष्ट फलोंका इच्छित रस पीते हुए, तथा उत्तम वचन और सुन्दर चेष्टाओके साथ क्रीडा करते हुए कूबरनामक उस देशमें पहुँचे जो नाना प्रकारके भवनोंके ऊँचे ऊँचे शिखरोसे सुन्दर था, जिसकी वसुधा मनोहर उद्यानोंसे व्याप्त थी, जो मन्दिरोंके समूहसे पवित्र था, स्वर्गके समान कान्तिवाला था, जहाँके नगरवासी लोग निरन्तर होनेवाले उत्सवोंसे उत्कृष्ट थे, श्रीमानोंके शब्दसे युक्त था तथा सूर्यके समान कान्ति और प्रसिद्धिसे युक्त था ॥३३१-३३२॥

इस प्रकार आर्पणनामसे प्रसिद्ध रविपेणाचार्य रचित पद्मचरितमें  
वज्रकर्णका वर्णन करनेवाला तैत्तिरीयों पर्व समाप्त हुआ ॥३३॥

## चतुस्त्रिंशत्तमं पर्व

परमं सुन्दरे तत्र फलपुष्पभरानते । गुञ्जध्रमरमहाते मत्तकोकिलनादिते ॥१॥  
 कानने सीतया साकमप्रज्ञेन्मा स्थित. सुगम् । अन्तिकं मल्लिार्थी तु लक्ष्मण सरसीं गत ॥२॥  
 अत्रान्तरे सुरूपारुषो नेत्रतस्करविभ्रम. । एकोऽपि सर्वलोचस्य हृदयेषु सम वसन् ॥३॥  
 महाविनयसम्पन्न कान्तिलिर्करपर्वतः । वरवारणमालारुद्धरचात्पादात्तमध्यग ॥४॥  
 तामेव सरसीं रम्यां क्रीडनाहितमानसः । प्राप्त कल्याणमालाएवो जनस्तन्नगराधिप ॥५॥  
 महत्. सरसस्तस्य दृष्ट्वा<sup>१</sup> त तारवर्तिनम् । नीलोपलचयश्याम लक्ष्मण चारुलक्षणम् ॥६॥  
 ताडितः कामवाणेन स जनोऽत्यन्तमाकुल<sup>२</sup> । मनुष्यमजर्वादेकमयमानोयतामिति ॥७॥  
 गरवा कृवाञ्जलीदृष<sup>३</sup> स तमेवममापत । पृथ्वय राजपुत्रस्ते प्रसादात् सङ्गमिच्छति ॥८॥  
 को दोष इति सञ्चिन्त्य दधान कौतुक परम् । जगाम लीलया चाभ्यां समीप तस्य लक्ष्मण ॥९॥  
 उत्तरीयं स जनो नागात् पद्मत्रुल्येन पाणिना । करे लक्ष्मणमालम्ब्य प्राविशद् गृहमाग्नरम् ॥१०॥  
 एकासने च तेनातिप्रतीत सहित<sup>४</sup> स्थितः । अपृच्छच्च सखे कस्त्व कुनो वा समुपागत ॥११॥  
 सोऽञ्जोचद् विप्रयोगान्मे ज्येष्ठो दु खेन तिष्ठति । तावन्नयामि तस्यान्न कथयिष्यामि ते तत ॥१२॥  
 ततः शाख्योदन. सूप उपदर्शनव घृतम् । अप्पा घनबन्धानि व्यञ्जानानि पयो दधि ॥१३॥

अथानन्तर जो फल और फूलोंके भारसे नत हो रहा था, जहाँ भ्रमरोंके समूह गुँज रहे थे और जहाँ मत्त कोकिलाएँ शब्द कर रही थीं ऐसे अत्यन्त सुन्दर वनमे राम तो सुनसे विराजमान थे और लक्ष्मण पानी लेनेके लिए समीपवर्ती सरोवरमे गये ॥१-२॥ इसी अवसरमे जो अत्यन्त सुन्दर रूपसे सहित था, जिसके विभ्रम नेत्रोंको चुरानेवाले थे, जो एक होनेपर भी सर्व लोगोंके हृदयमे एक साथ निवास करता था, महाविनय सम्पन्न था । कान्तिलरूपी निर्भरके उत्पन्न होनेके लिए पर्वतस्वरूप था, उत्तम हाथीपर सवार था । मनोहर पैदल सैनिकोंके बीच चल रहा था, जिसका मन क्रीडा करनेमे लीन था । जिसका कल्याणमाला नाम था तथा जो उस नगरका स्वामी था, ऐसा एक पुरुष उसी सरोवरमे क्रीडा करनेके लिए आया ॥३-५॥ सो उस महासरोवरके तटपर विद्यमान, नील कमलके समूहके समान श्याम और सुन्दर लक्षणोंसे युक्त लक्ष्मणको देख वह मनुष्य कामवाणसे ताडित होकर अत्यन्त आकुल हो गया । फलस्वरूप उसने अपने एक आदमीसे कहा कि इस पुरुषको ले आओ ॥६-७॥ वह चतुर मनुष्य जाकर तथा हाथ जोड़कर लक्ष्मणसे इस प्रकार बोला कि 'आइये, यह राजकुमार प्रसन्नतासे आपके साथ मिलना चाहता है' ॥८॥ 'क्या दोष है' इस प्रकार विचारकर परम कौतुकको धारण करते हुए लक्ष्मण सुन्दर लीलासे उसके पास गये ॥९॥ तदनन्तर वह राजकुमार हाथीसे उतरकर तथा कमलके समान क्रोमल हाथसे लक्ष्मणको पकड़ अपने वस्त्र निर्मित तन्मूमे भीतर चला गया ॥१०॥ वहाँ अत्यन्त विश्वस्त हो पकड़ ही आसनपर लक्ष्मणके साथ सुनसे बैठा । कुछ समय बाद उसने लक्ष्मणसे पूछा कि हे सखे ! तुम कौन हो ? और कहाँसे आये हो ? ॥११॥ लक्ष्मणने कहा कि मेरे वियोगसे मेरे बड़े भाई दुःखी होंगे इसलिए मैं पहले उनके पास भोजन ले जाता हूँ पश्चात् तुम्हारे लिए सब समाचार कहूँगा ॥१२॥

अथानन्तर शालिके चावलका भात, दाल, ताजा घृत, पुष्प, घेवर, नानाप्रकारके व्यञ्जन, दूध, दही, अनेक प्रकारके पानक, शाकर और खोंडके लड्डू, पूडियाँ, कचीडियाँ, साधारण पूडियाँ,

पानकानि विचित्राणि शर्कराप्त्रण्टमोदकाः<sup>१</sup> । शङ्खुत्वयो घृतपूर्णानि पूरिका गुडपूणिकाः ॥१४॥  
 वस्त्रालङ्कारमाह्वयानि लेपनप्रभृतौनि च । अमत्राणि च चित्राणि हस्तमार्जनकानि च ॥१५॥  
 सर्वमेतत् समासन्नपुरुषैः सुमहाजपैः<sup>२</sup> । भाविनानाश्रितं तेन जनेनान्तिस्मत्मानमनः ॥१६॥  
 अन्तरङ्गं प्रतीहरो जनस्य वचनात् ततः । गन्वा सीतान्वितं प्रपन्नं प्रणम्यैवमनापन ॥१७॥  
 भगुप्तिन् वस्त्रभवेन भ्राना ते देव तिष्ठति । एतन्नगरनाथश्च विज्ञापयति सादरः ॥१८॥  
 प्रसादं कुरु तच्छ्रया शीतलेय मनोहरा । तस्मादिद्यन्तमध्वान स्वच्छ्रया गन्तुमर्हथ ॥१९॥  
 इत्युक्ते सीतया सार्धं ज्योःस्नयेन निशाकरः । पद्मः समाययां बिभ्रन् मत्तद्विरद्विभ्रमन् ॥२०॥  
 दूरादेव समालोक्य लक्ष्मणेन सम ततः । अभ्युत्थान चकारास्य जनः प्रत्युद्गतिं तथा ॥२१॥  
 सीतया सहितस्तस्थौ पद्मोऽद्यन्तवरासने । अर्घदानादिसन्मान प्राप्तश्च जनकल्पितम् ॥२२॥  
 ततः कर्मणि निर्वृत्ते स्वैर स्नानाशनादिके । समुत्सार्थाखिलं लोकमामा नांतस्तुरीयताम् ॥२३॥  
 दूतः पितुः सकाशान्मे प्राप्त इत्युपदेशनः<sup>३</sup> । प्रथमपरमं कर्त्वा प्रविश्यान्नन्यगोचराम् ॥२४॥  
 नानाप्रहरणान् वीरान् नियुज्य द्वारि भूयसः । प्रविष्टो योऽत्र<sup>४</sup> बध्योऽसौ ममेति कृतभाषणः ॥२५॥  
 सद्भावजापने लज्जां दूरीकृत्य सुमानसः । व्यपात्यदसौ तेषां समञ्च कञ्चुकं जनः ॥२६॥  
 स्वर्गादिव ततोऽपसत् काऽप्यसौ वरकन्यका । उपयातेव पातालात् किञ्चिद्भ्रज्जानतानना ॥२७॥  
 तत्कान्त्यां भवनं लिप्तं लग्नानिलमिवाभवत् । उद्योतमिव चन्द्रेण लज्जास्मितलतांशुभिः ॥२८॥

गुड़मिश्रित पूड़ियों, वस्त्र, अलंकार, मालाएँ, लेपन आदि की सामग्री, नानाप्रकारके बर्तन और हाथ धोनेका सामान, यह सब सामग्री निकटवर्ती शीघ्रगामी पुरुष भेजकर उसने अपने पास मंगवा ली ॥१३-१६॥ तदनन्तर उसकी आज्ञा पाकर अन्तरङ्ग द्वारपाल वहाँ गया जहाँ सीता सहित राम विराजमान थे, सो उहे प्रणाम कर वह इस प्रकार बोला ॥१७॥ कि हे देव ! उस तन्मूमे आपके भाई विराजमान हैं वहीं इस नगरका राजा भी विद्यमान है सो वह आदरके साथ प्रार्थना करता है कि चूँकि इस तन्मूकी छाया शीतल तथा मनको हरण करनेवाली है इसलिए प्रसन्न होइए और इतना मार्ग स्वच्छासे चलकर आप यहाँ पधारिये ॥१८-१९॥ प्रतिहारीके इतना कहने पर मत्त हाथीकी शोभाको धारण करते हुए रामचन्द्र सीताके साथ चल पड़े उस समय वे ऐसे जान पड़ते थे मानो चोडनीके सहित चन्द्रमा ही हो ॥२०॥ रामको दूरसे ही आते देख राजकुमारने लक्ष्मणके साथ पड़े होकर तथा कुछ आगे जाकर उनका स्वागत किया ॥२१॥ राम सीताके साथ अत्यन्त उत्कृष्ट आसन पर विराजमान हुए तथा राजकुमारके द्वारा प्रदत्त अर्घदान आदि सन्मानको प्राप्त हुए ॥२२॥ तदनन्तर इच्छानुसार स्नान, भोजन आदि समस्त कार्य समाप्त होने पर राजकुमारने अन्य सब लोगोंको दूर कर दिया । वहाँ राम, लक्ष्मण, सीता तीन और चौथा राजकुमार ये ही चार व्यक्ति रह गये ॥२३॥ 'मेरे पिताके पाससे दूत आया है' ऐसा कहता हुआ वह राजकुमार प्रयत्नपूर्वक सजाये हुए एक दूसरे कमरेमे गया । वहाँ उसने नाना-प्रकारके शस्त्र धारण करनेवाले अनेक योद्धाओंको द्वार पर नियुक्त कर यह आदेश दिया कि यहाँ जो कोई प्रवेश करेगा वह मेरे द्वारा वध्य होगा ॥२४-२५॥

तदनन्तर यथार्थ भावके प्रकट करनेमें जो लज्जा थी उसे दूर कर उस सुचेताने राम लक्ष्मण और सीताके सामने बीचका आवरण फाड़ डाला ॥२६॥ तत्पश्चात् आवरणके दूर होते ही ऐसा लगने लगा मानो स्वर्गसे ही कोई उत्तम कन्या नीचे आकर पड़ी है । अथवा पातालसे ही निकली है । उस कन्याका मुख लज्जाके कारण कुछ-कुछ नम्रीभूत हो रहा था ॥२७॥ उसकी

१. मोदकान् म० । २. पापाणि । ३. समासन्नपुरुषैः क०, ए० । ४. समहाजपैः म० । ५. इत्यु-  
 पदेशतः क०, ए०, प्रसन्नः परमो-म० । ६. मध्योऽसौ ममेति म०, ए० ।

वैकहमाश्विर प्रनाश्रुयो समभूकुचन् । लक्ष्मरिष म्थिता मानान् श्रीरिवाग्मितपद्भ्या ॥२१॥  
 गृह प्र।त्रिनुमारधामिव लावण्यवारिधौ । उकार्णामिव रत्नाना रजसा काञ्चनस्य वा ॥३०॥  
 कल्लोला ह्य निर्जग्मु स्तनाभ्या कान्तिप्रारिण । तरङ्गा इव सञ्जाता मध्ये त्रिप्रलिराजित ॥३१॥  
 'चण्डातक समुद्रिष्य जघनस्य घन मह । निर्नगामापर छात जामूत शगिनो यथा ॥३२॥  
 सुत्रिष प्रथित लाक 'चञ्चल'चाद्यशोमलम् । गृहर्त्तामृतवनिन्या निर्धौनिमिर त्रिमुता ॥३३॥  
 अयन्तस्निग्धया तन्या' रामराज्या विराजिता । नितम्बाजानया ह्रैमान् महानात्रिपया यथा ॥३४॥  
 ततोऽर्मा सहसामुत्तररूपा मुलाचना । दौञ्जिता जानका तेन 'रतिश्रीरिव लक्ष्या ॥३५॥  
 अन्ते लक्ष्मणस्तत्र परिष्वक्तो मनाभुवा । अग्रया कामपि प्रावृत्तलम्बधरलोचन ॥३६॥  
 तता विशुद्धया बुद्धया पद्मस्तामियभापत । दधाना विविध वेप का त्व प्रादन्नि वन्यक ॥३७॥  
 तताऽशुभेन सवाय गात्र प्रवरभाषिणा । जगाद् देव ! वृत्तान्त शृणु सद्भाववेदिनम् ॥३८॥  
 बालिपितृव्य इति रथात पुरस्याभ्य पनि सुधी । सदाचारपरो निय मुनिपहाव्य मत् ॥३९॥  
 पृथिवानि प्रिया तस्य गर्भावानमुपागता । श्लेष्ठाप्रिपतिना चार्मा गृहीत सयुगे वृष ॥४०॥

कान्तिसे लिंग हुआ कपडेका तन्मू ऐसा दीपने लगा मानो उसमें आग ही लग गई हो तथा लज्जासे युक्त मन्द मुसमानकी किरणासे लिंग होने पर ऐसा जान पड़ने लगा मानो उसमें चन्द्रमा का ही प्रकाश फैल गया हो ॥२८॥ उसे देख, चतुर हंसने चिरकाल तक भयभीत हो अपने नेत्र संकुचित कर लिये । वह कन्या ऐसी जान पड़ती थी मानो कमलको छोड़कर साक्षात् लक्ष्मी हा वहाँ आ बैठी हो ॥२९॥ उसकी कान्तिसे वह घर ऐसा मालूम होता था मानो सौन्दर्यके सागरमें उसने तैरना ही शुरू किया हो अथवा रत्ना और स्पर्णकी परागसे माना आन्दूहित हो किया गया हो ॥३०॥ उसके स्तनासे ऐसा जान पड़ता था मानो कान्तिरूपी जलके कल्लोल ही निकल रहे हो और त्रिलिसे शोभित मध्यभागमें ऐसा लगता था मानो तरङ्ग ही उठ रही हो ॥३१॥ जिस प्रकार मेघके पतले आवरणको लोप कर चन्द्रमाका प्रकाश बाहर फूट पड़ता है उसी प्रकार लक्ष्मीको भेदकर उसके नितम्बस्थलका सवन तेज बाहर फूट पड़ा था ॥३२॥ वह घर, एक मेघके समान जान पड़ता था और उसमें बैठी हुई वह कन्या त्रिजलीके समान प्रतिभासित होती थी । ऐसा लगता था कि लोकमें चञ्चलताके कारण त्रिजलीके यशमें जो मल चिरकालसे लगा हुआ था उसने उसे त्रिलज्ज ही धो डाला था ॥३३॥ वह स्पर्णनिमित्त की तरह देवीयमान नितम्बस्थलसे उत्पन्न महानोलम्बिके समान श्याम, अत्यन्त चिकनी एक पतली रोमराजिसे सुरोभित थी ॥३४॥

तदनन्तर निसने सहसा पुरुषका वेप छोड़ दिया था तथा जिसके नेत्र अत्यन्त सुन्दर थे, ऐसी वह कन्या सीताके पास आ बैठी जिससे वह उस प्रकार सुरोभित होने लगी जिस प्रकारकी लज्जासे रतिकी श्री सुरोभित होती है ॥३५॥ लक्ष्मण उसके पास ही बैठे थे, सो कामसे युक्त हो किसी अनिर्घचनाय अत्रस्थाको प्राप्त हुए । उस समय उनके चञ्चल नेत्र धीरे धीरे चल रहे थे ॥३६॥ तदनन्तर निर्मल बुद्धिसे युक्त रामने उससे इस प्रकार कहा कि हे कन्ये ! त्रिष वेपको धारण करनेवाली तू कौन है ? जो इस तरह ब्रीडा करती है ? ॥३७॥ इसके उत्तरमें मधुर भाषण करनेवाली कन्याने वस्त्रसे शरीर ढँक कर कहा कि हे देव ! सद्भावकी सूचित करनेवाला मेरा वृत्तान्त सुनिये ॥३८॥

इस नगरका राजा 'बालिसिलय' इस नामसे प्रसिद्ध है जो अतिशय बुद्धिमान, मुनियोंके समान निरन्तर सदाचारका पालन करनेवाला और लोगोंके साथ स्नेह करने वाला है ॥३९॥ उसकी

१ 'लङ्गा' इति प्रसिद्ध स्त्रीश्लम् । २. चञ्चल'चाद्यमाल (१) म० । ३. कन्या म० । ४. रति श्रीरिव म० ।



उक्त च स्वामिना तस्य सिंहोदरमहोभृता । पुत्ररचेद् भविता गर्भे कर्ता राज्यमसाविति ॥४१॥  
 ततोऽह पापिना जाता मन्त्रिणा वसुधुद्धिना<sup>१</sup> । सिंहोदराय पौंस्नेन कथिता राज्यकाक्षया ॥४२॥  
 नीता कल्याणमालास्या जनन्या रहिताधिकाम्<sup>२</sup> । प्रायो<sup>३</sup> माङ्गलिके लोको व्यवहारे प्रवर्तते ॥४३॥  
 मन्त्रा माता च मे वेत्ति कल्पेयमिति नापर । इयन्त कालमधुना भवन्त पुण्यवीक्षिता ॥४४॥  
 दु ख तिष्ठति मे तात प्राप्तश्चारकवासिताम् । सिंहोदरोऽपि नो सन्नस्तस्य वस्तुं विमोचनम् ॥४५॥  
 यद्द्र द्विषिण किञ्चिद्देशे समुपजायते । तन्म्लेच्छस्वामिने सर्वं प्रेष्यते दुर्गामातुषे ॥४६॥  
 वियोगवह्निनायन्त तप्यमाना ममाग्निवका । जाता कलावशेषेव चन्द्रमूर्तिर्गतप्रभा ॥४७॥  
 इत्युक्त्वा दु खभारेण पाडिताशेषमात्रिका । सद्यो विच्छाद्यता प्राप्ता मुक्तकण्ठ रुद सा ॥४८॥  
 अयन्तमधुरैर्वान्यै पद्मेनारवासिता तत । सात्तया च निधायाङ्गे कुर्वन्त्या सुखधावनम् ॥४९॥  
 मुमित्रापुनुना चोत्ता शुच विसृज सुन्दरि । उरु राज्यमनेनैव वेपेणोचितकारिणी ॥५०॥  
 शुभे काश्चिप्रताहस्य दिवसान् धैर्यैसङ्गतान् । म्लेच्छेनग्रहण किं मे पितर परय मोचितम् ॥५१॥  
 इयुक्ते परम तोप ताते मुक्त इवागता । समुत्सितसर्वाङ्गा कन्यका द्युतिपूरिता ॥५२॥  
 तत्र ते कानने रम्ये विचित्रालापविभ्रम । देवा इव सुख तस्य स्वच्छन्दा दिवसत्रयम् ॥५३॥  
 तत "सुप्तजने काले रजन्या रामलक्ष्मणौ । ससातौ रन्ध्रमाश्रित्य तिष्कान्तौ काननालयात् ॥५४॥

प्रियाका नाम पृथिवी है । जिस समय पृथिवी गर्भाधानको प्राप्त हुई उसी समय राजा बालखिल्य का म्लेच्छ राजाके साथ युद्ध हुआ, सो युद्धमे म्लेच्छ राजाने उसे पकड़ लिया ॥४०॥ राजा सिंहोदर बालखिल्यके स्वामी है सो उन्होंने कहा कि बालखिल्यकी रानी गर्भवती है यदि उसके गर्भमे पुत्र होगा तो वह राज्य करेगा ॥४१॥ तदनन्तर दुर्भाग्यसे पुत्र न होकर मैं पापिनी पुत्री उत्पन्न हुई परन्तु वसुधुद्धि मन्त्रीने राज्यको आकाक्षासे सिंहोदरके लिए पुत्र उत्पन्न होनेकी खबर दी ॥४२॥ माताने मेरा कल्याणमाला यह अर्थहीन नाम रक्खा, सो ठीक ही है क्योंकि लोग प्राय मङ्गलमय व्यवहारमे ही प्रवृत्त होते हैं ॥४३॥ अब तक मन्त्री और मेरी माता ही जानती है कि यह कन्या है दूसरा नहीं । आज पुण्योदयसे आप लोगाके दर्शन हुए ॥४४॥ बन्दीगृहके निवास को प्राप्त हुए हमारे पिता बहुत कष्टमें हैं । सिंहोदर भी उन्हें छुडानेके लिए समर्थ नहीं है ॥४५॥ इस देशमें जो कुछ धन उत्पन्न होता है वह सब दुर्गकी रक्षा करनेवाले म्लेच्छ राजाके लिए भेज दिया जाता है ॥४६॥ वियोगरूपी अग्निसे अत्यन्त सन्तापको प्राप्त हुई मेरी माता सूखकर कला मात्रसे अवशिष्ट चन्द्रमाके समान कान्तिहीन हो गई है ॥४७॥ इतना कहकर दु खके सभान भावसे जिसका समस्त शरीर पाडित हो रहा था ऐसी वह कल्याणमाला शीघ्र ही कान्तिरहित हो गई तथा गला फाडकर रोने लगी ॥४८॥

तदनन्तर रामने अत्यन्त मधुर शब्दोंमे उसे सान्त्वना दी, सीताने गोदमें बैठाकर उसका मुँह धोया और लक्ष्मणने कहा कि हे सुन्दरि । शोक छोडो, इसी वेपसे राज्य करो, तुम उचित कार्य कर रही हो ॥४९-५०॥ हे शुभे । हे कल्याणरूपिणि । धैर्यके साथ कुछ दिन तक प्रतीक्षा करो । मेरे लिए म्लेच्छराजका पकड़ना कौनसा बात है ? तुम शीघ्र ही अपने पिताको छूटा देखोगी ॥५१॥ इस प्रकार कहने पर उसे इतना सन्तोष हुआ मानो पिता छूट ही गया हो । उस क याके समस्त अङ्ग हर्षसे उल्लसित हो उठे और वह कान्तिसे भर गई ॥५२॥ तदनन्तर उस मनोहर वनमे नाना प्रकारका वार्तालाप करते हुए वे सब तीन दिन तक देवाके समान स्वतन्त्र हो सुखसे रहे ॥५३॥ तत्पश्चात् रात्रिके समय जब सब लोग सो गये तब सीता सहित

१ सुबुद्धिना म० । च सुबुद्धिना क०, ल० । २ रहिताधिकाम् म० । ३ प्रातौ म० । ४ प्रेष्यते म० ।  
 ५ सुप्तजने म० ।

विबुद्धा तानपरयन्तो कन्या व्याकुलमानसा । हाकारमुत्तरा शोक परमं समुपागता ॥५५॥  
 महापुरुषयुक्तं ते स्तेनयित्वा मनो मम । गन्तुं निद्रासमेताया निर्वृणोति मनस्विनी ॥५६॥  
 कृत्रुत्वियम्य शोकं च वरवारणप्रतिनी । प्रविश्य कूरं तस्यी पूर्ववहीनमानसा ॥५७॥  
 ततः कन्याणमालाया रूपेण विनयेन च । हृतचिगाः क्रमेणैते प्रापुर्मङ्गलनिद्रगाम् ॥५८॥  
 उत्तरीयं विहितक्रीडास्तं सुपेन मनोहरान् । बहून् देशानतिगम्य प्राप्ता विन्ध्यमहादर्वीम् ॥५९॥  
 स्कन्धावारमहामार्थपरिधुण्णेम<sup>१</sup> वरमना । प्रयान्तः पथिकैर्गोपि कानाशैर्ष्र निवारिताः ॥६०॥  
 क्वचिसालादिमिर्चुल्लंतालिङ्गितमूर्तिभिः । तद्वन शोभतेऽयन्तं स्वामोद नन्दन यया ॥६१॥  
 क्वचिद्वापेन<sup>२</sup> निर्दग्धप्रान्तस्थितमहोरुहम् । न शोभते यथा गोत्र दुष्टुप्रेण कण्ठकृतम् ॥६२॥  
 अथावोचत् ततः सीता कर्णिकारवगान्तरे । वामतोऽयं स्थितो ध्वाङ्घो मूर्ध्नि कण्ठकिनस्तरोः ॥६३॥  
<sup>३</sup>वायमानो मुहुः क्रूर कलह कथयन्वरम् । अन्योऽपि क्षीरवृक्षस्य जय शनति वायसः ॥६४॥  
 तस्मान् तावत् प्रतीक्षेतां मुहुतं कलहात् परम् । जयोऽपि नैव मे चित्ते प्रतिभायतिसुन्दरः ॥६५॥  
 ततः क्षण विलम्बयैती प्रयाती पुनरुद्यती । तदेव च पुनर्जात निमित्त निकटेऽन्तरे ॥६६॥  
 श्रुत्वया अपि सीताया अवकर्ण्य वचस्ततः । प्रवृत्ती गन्तुमग्रे च म्लेच्छानां सैन्यमुद्गतम् ॥६७॥  
 ती निरीष्यैव निर्भतावायान्ती वरकामुकी । क्षणेनैवेन तत्सैन्य कान्दिशोकं पलायितम् ॥६८॥

राम, लक्ष्मण, छिद्र पाकर वनके उस तन्वसे बाहर निकल गये ॥५४॥ जागने पर जब कन्याने उन्हें नहीं देखा तब उसका मन बहुत ही व्याकुल हुआ। वह हाहाकार करती हुई परम शोककी प्राप्त हुई ॥५५॥ वह मनस्विनी मन ही मन यह कह रही थी कि हे महापुरुष ! मेरा मन चुराकर तथा मुझे सोती छोड़ क्या तुम्हें जाना उचित था ? तुम बड़े निर्दय हो ॥५६॥ अन्तमें वड़े दुःखसे शोकको रोककर तथा उत्तम हाथीपर सवार हो उसने कूर नगरमें प्रवेश किया और वहाँ पहलेके समान दीन हृदयसे वह निवास करने लगी ॥५७॥

अथानन्तर कल्याणमालाके रूप और विनयसे जिनके चित्त हरे हो गये थे ऐसे राम, सीता तथा लक्ष्मण क्रम-क्रमसे नर्मदा नदीको प्राप्त हुए ॥५८॥ व्रीडा करते हुए उस नदीको पारकर तथा अनेक सुन्दर देशोंको उल्लंघन कर वे विन्ध्याचलकी महाअटवीमें पहुँचे ॥५९॥ वे बड़ी भारी सेनाके संचारसे खुदे हुए मार्गसे जा रहे थे, इसलिए मार्गमें चलनेवाले ग्वालों तथा हलबाहकोने उन्हें गोफा कि इस मार्गसे आगे न जाओ पर वे रके नहीं ॥६०॥ बहुत भारी सुगन्धिसे भरा हुआ यह वन कहीं तो लताओंसे आन्डिङ्गित सागीन आदिके वृक्षोंसे नन्दनवनके समान अत्यन्त सुशोभित है और कहीं दावानलके कारण समीप स्थित वृक्षोंके जल जानेसे कुपुत्रके द्वारा कलंकित गोत्रके समान सुशोभित नहीं है, इस प्रकार कहते हुए वे आगे बढ़ रहे थे ॥६१-६२॥ तदनन्तर कुछ आगे बढ़नेपर सीताने कहा कि देखो, फनेर वनके बीचमें वाई ओर फटीले वृक्षकी चौटीपर बैठा कौआ बार-बार क्रूर शब्द कर रहा है सो 'शीघ्र ही कलह होनेवाली है' यह कह रहा है और इधर क्षीर वृक्षपर बैठा दूसरा कौआ 'हम लोगोंकी विजय होगी' यह सूचित कर रहा है ॥६३-६४॥ इसलिए आपलोग मुहूर्तमात्र प्रतीक्षा कर लें क्योंकि कलहान्तर जब प्राप्त करना भी मेरे मनमें बहुत अच्छा नहीं जँचता ॥६५॥ तदनन्तर क्षण भर विलम्ब कर वे पुनः आगे गये तो कुछ ही अन्तर पर वही निमित्त फिर हुआ ॥६६॥ यद्यपि सीता कह रही थी फिर भी उसका कहा अनुसुना कर राम लक्ष्मण आगे बढ़ते गये । कुछ दूरी पर उन्हें म्लेच्छोंकी सेना मिली, सो उत्तम धनुषके धारक तथा निर्भय राम-लक्ष्मणको आते देख वह सेना भयभीत हो

१. निद्रा समेताया म० । २. नर्मदा । ३. परिक्षणेन (?) म० । ४. हलिभिः । ५. निर्दग्ध प्रान्त म० । ६. कण्ठकितस्तरी म० । ७. शब्द कुर्वन् । ८. परः म० ।

अवगत्य ततस्तस्मात् सन्नहान्ये समागताः । प्राट्टुमेधसमानेन तेऽपि हासेन निर्जिताः ॥६६॥  
 ततस्तेऽघन्तविश्रस्ताः म्लेच्छाः पतितकामुंकाः । कुर्वन्तः परम राव गत्वा पत्ये न्यवेदयन् ॥७०॥  
 ततोऽसौ परम क्रोध वहश्चाप च दारुणम् । निर्जंगाम महासैन्यः शस्त्रसन्तमसावृतः ॥७१॥  
 काकोनदा इति ख्याता म्लेच्छास्ते धरणीतले । दारुणाः सर्वमांसादो दुर्जयाः पार्थिवैरपि ॥७२॥  
 तैरावृता दिश प्रेष्य पुरो धनकुलासितैः । धनुरारोपयन् कोप किञ्चिन्नमीधरो भजन् ॥७३॥  
 तथा आस्फालित सर्ववनमाकम्पित यथा । उरश्च वनसत्वाना जज्ञे प्रकट्वेपथुः ॥७४॥  
 सन्दधान शर धीष्य लक्ष्मण प्रस्तचेतसः । यभ्रमुश्रक्तो प्राप्ता म्लेच्छा निश्चक्षुषो यथा ॥७५॥  
 ततः साध्वससम्पूर्णो म्लेच्छानामधिपो भृशम् । अवतीर्य रथादेतौ प्रणम्य रचिताञ्जलिः ॥७६॥  
 अन्नवीदस्ति कौशाम्बी नगरी प्रथिता प्रसुः । आदित्ताग्निद्विजस्तत्र नाम्ना विश्वानलः शुचिः ॥७७॥  
 प्रतिसन्ध्येनि तत्राया जातोऽह तनयत्तयोः । रौद्रभूतिरिति ख्यातः शस्त्रयूतकलान्वितः ॥७८॥  
 बाल्यात् प्रभृति दुष्कर्मनियानुष्ठानकोविदः । प्राप्तश्चौर्यै कदाचिच्च शूले भेत्तुमभोप्सितः ॥७९॥  
 धनिनैकेन तत्राह भ्रूधानेन साधुना । मोचितो वेपमानाह्नः त्यक्त्वा देशमिहागतः ॥८०॥  
 प्राप्तं वर्मानुभावेन काकोनदजनैश्चतस्रम् । अष्टस्तिष्ठामि सद्वृत्तात् पशुभिः समतां गतः ॥८१॥  
 ह्यन्त यस्य मे काल सैन्याद्या अपि पार्थिवाः । चक्षुषी गोचरीभावमासन् शक्ता न सेवितुम् ॥८२॥  
 सोऽह दर्शनमात्रेण कृतो देवेन विबलव । धन्योऽस्मि धीक्षितो येन भवन्ती पुरुषोत्तमो ॥८३॥

ज्ञानभरमे भाग गई ॥६७-६८॥ तदनन्तर भागती सेभासे समाचार जानकर दूसरे म्लेच्छ तैयार हो सामने आये परन्तु वर्षाकालीन मेघके समान श्याम लक्ष्मणने उन्हें हँसते-हँसते पराजित कर दिया ॥६९॥ तदनन्तर जो अत्यन्त भयभीत थे, जिन्होंने धनुष छोड़ दिये थे और जो जोरसे चिल्ला रहे थे ऐसे उन म्लेच्छोंने जाकर अपने स्वामीसे निवेदन किया ॥७०॥ तब परम क्रोध और भयंकर धनुषको धारण करता हुआ म्लेच्छोंका स्वामी निकला । बड़ी भारी सेना उसके साथ थी और वह शस्त्ररूपी अन्धकारसे आच्छादित था ॥७१॥ वे म्लेच्छ पृथिवीपर 'काकोनद' इस नामसे प्रसिद्ध थे, अत्यन्त भयंकर थे, सब जन्तुओंका मांस खाने वाले थे और राजाओंके द्वारा भी दुर्जेय थे ॥७२॥ जब लक्ष्मणने देखा कि आगेकी दिशा मेघसमूहके समान श्यामवर्ण म्लेच्छोंसे आच्छादित हो रही है तब उन्होंने कुछ कुपित हो धनुषकी डोरी चढ़ा ली ॥७३॥ और उस प्रकारसे उसका आस्फालन किया कि समस्त वन काँप उठा तथा जंगली जानवरोंको कँपकँपी उत्पन्न करनेवाला उर उर हो गया ॥७४॥ लक्ष्मणको डोरीपर बाण चढ़ाते देख जिनका चित्त भयभीत हो गया था ऐसे वे म्लेच्छ नेत्रहीनके समान चक्राकार घूमने लगे ॥७५॥ तदनन्तर अत्यन्त भयसे भगा म्लेच्छोंका स्वामी रथसे उतर कर हाथ जोड़ता हुआ इनके पास आया और प्रणाम कर बोला कि एक कौशाम्बी नामकी प्रसिद्ध नगरी है निरन्तर अग्निमें होम करने वाला विश्वानल नामका पवित्र ब्राह्मण उसका स्वामी है । विश्वानलकी स्त्रीका नाम प्रतिसंध्या है । मैं उन्हीं दोनोंका पुत्र हूँ, रौद्रभूति नामसे प्रसिद्ध हूँ, शस्त्र तथा जुएके कलाका पारगामी हूँ ॥७६-७८॥ मैं बाल्य अवस्थासे ही निरन्तर छोटे कार्य करनेमें निपुण था । किसी समय चोरीके अपराधमें पकड़ा गया और मुझे शूलीपर चढ़ानेका निश्चय किया गया ॥७९॥ शूलीका नाम मुनते ही मेरा शरीर काँप उठा तब विश्वास रखनेवाले एक भले धनिकने जमानत देकर मुझे छुड़वा दिया । तदनन्तर देश छोड़कर मैं यहाँ आ गया ॥८०॥ कर्मोंके प्रभावसे इन काकोनद म्लेच्छोंकी स्वामिताको प्राप्त हो गया हूँ तथा सदाचारसे भ्रष्ट हो पशुओंके समान यहाँ रहता हूँ ॥८१॥ इतने समय तक बड़ी-बड़ी सेनाओंसे युक्त राजा भी जिसके दृष्टिगोचर होनेके लिए समर्थ नहीं हो सके उस मुझको आपने दृष्टिमात्रसे ही दीन कर दिया । मैं धन्य हूँ जिससे

शासन यच्छ्रुता नाथी किं करामि यथोचितम् । शिरसा पादुके किं वा वहे पावनपण्डिते ॥८४॥  
 विन्ध्योऽप्य निधिमि पूर्णो वरयोपिच्छ्रुतैस्तथा । भुविष्यमिच्छ्रुता देवौ मामतो निमृत्न परम् ॥८५॥  
 इयुक्त्वा प्रणति कुर्वन् पुनरातिं परा गत । पपात विह्वले भूमौ दिग्गमूलस्तर्ह्यथा ॥८६॥  
 कष्टावस्था तत प्राप्त तमेव राघवोऽनदत् । कृपालनापरिष्वक्त्वा रक्त्वमहातरु ॥८७॥  
 उत्तिष्ठोत्तिष्ठ सा भैषीर्वालिखिल्य विवन्त्रनम् । कृवाऽऽनय द्रुत प्राप्य सन्मान परम सुधी ॥८८॥  
 तस्यैवाभिमता भूवा सचिव सज्जनान्वित । विहाय सद्गति म्लेच्छैर्विषयस्य हितोऽभवन् ॥८९॥  
 एतत् चेत् कुरपे सर्वमन्यथा च निवञ्जितम् । ततस्ते विद्यते शान्तिरसौ न त्रियसेऽन्यथा ॥९०॥  
 एव प्रभो करोमीति कृत्वा प्रणतिमादत् । महारथमुत् गत्वा मुमोच विनयान्वित ॥९१॥  
 अभ्यङ्गोद्भव्यं मुस्तात भोजनविधा स्वल्कुकृतम् । आरोप्य स्यन्दने नेतुमारभे त तदन्तिकम् ॥९२॥  
 स द्रुष्यो नोयमान सन् विस्मय परम गत । इतोऽपि गहनावस्था प्रायो मेऽष्ट भविष्यति ॥९३॥  
 काय म्लेच्छो महाशयु कुक्कर्म यन्तनिर्दय । ऋषायमतिस्नमानो न मन्येऽद्यानुधारणम् ॥९४॥  
 इति दानमना गच्छन् सहसा पद्मलक्ष्मणी । दृष्ट्वा परा र्थिं प्राप्ताऽवर्तार्य सनमच्छति ॥९५॥  
 अत्रशीत् तौ युवा नाथावागतावतिसुन्दरी । मम पुण्यानुभावेन मुक्तो येनास्मि बन्धनात् ॥९६॥  
 गच्छ चित्र निच धाम लभस्वामीष्टमद्गमम् । तत्र नौ ज्ञास्यसीं युक्ते वालिखिल्य सुधीर्गतं ॥९७॥

पुरुषोंमें उत्तम आप महानुभावोंके दर्शन किये ॥८०-८३॥ हे नाथ । आज्ञा दीजिए मैं क्या योग्य सेवा करूँ ? क्या पवित्र करनेमें निपुण आपकी पादुकाएँ शिर पर धारण करूँ ? ॥८४॥ यह विन्ध्याचल निधियाँ तथा उत्तमात्तम सैकड़ों स्त्रियोंसे परिपूर्ण है इसलिए हे देव । मुमसे किसी अच्छे भारी राजस्त्रका इच्छा प्रकट करो ॥८५॥ इनना कहकर प्रणाम करता हुआ वह पुन परम पीडाको प्राप्त हुआ और विह्वल हो कटे वृत्तके समान भूमि पर गिर पडा ॥८६॥

तदनन्तर जो वीरजनोंके लिए दयारूपी लतासे आलिङ्गित कल्पवृत्तके समान थे ऐसे राम दु समय अनस्थाको प्राप्त हुए म्लेच्छ राजासे इस प्रकार बोले कि हे सुमुद्रि । उठ-उठ, डर मत, वालिखिल्यको बन्धन रहित कर तथा उत्तम सन्मानको प्राप्त करा कर शीघ्र ही यहाँ ला ॥८७-८८॥ उसीका इष्ट मन्त्री ही सज्जनोंकी सगति कर और म्लेच्छाकी सगति छोड़, देशका हितकारी हो ॥८९॥ यदि तू यह सत्र काम ठीक ठीक करता है तो उससे तुम्हे शान्ति प्राप्त होगी अन्यथा आज ही मारा जायगा ॥९०॥ 'हे प्रभो ! ऐसा ही करता हूँ' इस प्रकार कहकर उसने वडे आदरसे रामको प्रणाम किया और विनयके साथ जाकर महारथके पुत्र बालखिल्यको छोड़ दिया ॥९१॥

तदनन्तर जिसे तेल उगटन लगाकर अच्छी तरह स्नान कराया गया था और भोजन कराकर जिसे अलकारोंसे अलङ्कृत किया गया था । ऐसे बालखिल्यको रथपर बैठाकर वह रामने पास ले जानेके लिए उद्यत हुआ ॥९२॥ जो इस तरह आदरके साथ लाया जा रहा था ऐसा बालखिल्य परम आश्चर्यको प्राप्त हुआ और मन ही मन सोचता जाता था कि प्रायः अब मेरी अवस्था इससे भी गहन होगी ॥९३॥ वहाँ तो यह कुक्कर्म करनेवाला अत्यन्त निर्दय महावीरो म्लेच्छ ? और वहाँ यह भारी सम्मान ? जान पड़ता है कि आज प्राण नहीं बचेंगे ॥९४॥ इस प्रकार बालखिल्य दीन चित्त होकर जा रहा था कि सहसा राम लक्ष्मणको देखकर वह परम सन्तोषको प्राप्त हुआ । उसने रथसे उतरकर नमस्कार करते हुए कहा कि हे नाथ ! मेरे पुण्योदयसे अतिशय सुन्दर रूपको धारण करनेवाले आप दोनों महानुभाव पधारते हैं इसीलिए मैं बन्धनसे मुक्त हुआ हूँ ॥ ९५-९६॥ राम लक्ष्मणने उससे कहा कि शीघ्र ही अपने घर जाओ और इष्टजनाके साथ

कृत्वा सुनिभृत भृत्य तस्य विश्वानलाङ्गजम् । यातौ सातान्वितौ श्वेष्ट कृत्तिनौ रामलक्ष्मणौ ॥६८॥  
 बालिखिल्यस्तु सम्प्राप्त सम रोद्रविभूतिना । स्त्रपुरस्यान्तिका षोणी स्मरन् चान्धवचेष्टितम् ॥६९॥  
 प्रत्यासन्न तत कृत्वा विभूया परयान्वितम् । पितर निरगात्तुष्टा पुरात् कल्याणमालिनी ॥७०॥  
 प्रतीता सन्नमस्कारा तां समाग्राय मस्तके । निजयाने पुन कृत्वा प्रविष्ट कूबर नृप ॥७१॥  
 पृथिवी महिषी तोपसङ्गातपुलका क्षणात् । पुरातनी तनु भेजे कान्तिसागरवर्तिनीम् ॥७२॥  
 सिहोदरप्रभृतयो नृपा प्रभृतयोऽखिला । गुणै कल्याणमालाया परम विस्मय गता ॥७३॥

### उपजातिवृत्तम्

यद्रीद्रभूति सुचिर विचित्र समाज्यच्चौर्यपरायण स्वम् ।  
 अनेकदेशप्रभव विशाल तद्बालिखिल्यस्य गृह विवेश ॥७४॥  
 जातेऽस्य वाग्मतिनि रौद्रभूती वशीकृत म्लेच्छसुदुर्गमूमौ ।  
 सिहोदरोऽपि प्रतिपन्नरङ्ग स्नेह ससम्मानमलञ्चकार ॥७५॥  
 सोऽय समासाद्य परा विभूतिं प्रसादतो राघवसत्तमस्य ।  
 महारथी प्राणसमासमेतो रविवर्धैव शरदा रराज ॥७६॥

इत्यार्षे रविप्रेषाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते बालिखिल्योपाल्यायान नाम चतुर्विंशत्तम पर्व ॥३४॥

समागम प्राप्त करो । वहाँ पहुँचने पर तुम हम लोगोको जान सकोगे' । इस प्रकार कहनेपर बुद्धि-  
 मान् बालिखिल्य अपने घर चला गया ॥६७॥

तदनन्तर विश्वानलके पुत्र रौद्रभूतिको बालिखिल्यका निश्चल मित्र बनाकर अतिशय  
 कुशल राम-लक्ष्मण सीताके साथ अपने इष्ट स्थानको चले गये ॥६८॥ बान्धवजनोंकी चेष्टाका  
 स्मरण करता हुआ बालिखिल्य, रौद्रभूतिके साथ जब अपने नगरकी समीपवर्ती भूमिमें पहुँचा  
 तत्र निकटवर्ती पिताको परम विभूतिसे युक्तकर पुत्री कल्याणमालिनी सन्तुष्ट हो उसका सत्कार  
 करनेके लिए नगरसे बाहर निकली ॥६९-१००॥ तदनन्तर नमस्कार करती हुई पुत्रोको पहिचान  
 कर राजा बालिखिल्यने उसका मस्तक सूँघा फिर अपने रथपर बैठकर कूबर नगरमें प्रवेश किया  
 ॥१०१॥ बालिखिल्यकी रानी पृथिवीके शरीरमें हर्षातिरेकसे रोमाञ्च निकल आये और वह  
 कान्तिरूपी सागरमें वर्तमान अपने पुराने शरीरको क्षण भरमें पुन प्राप्त हो गई ॥१०२॥  
 सिहोदर आदि समस्त राजा कल्याणमालाके गुणोंसे परम आश्चर्यको प्राप्त हुए ॥१०३॥ रौद्रभूतिने  
 चिरकाल तक चोरीमें तत्पर रहकर नाना देशोंमें उत्पन्न जो विविध प्रकारका विशाल धन  
 इकट्ठा किया था वह सब बालिखिल्यके घरमें प्रविष्ट हुआ ॥१०४॥ जब म्लेच्छोंकी सुदुर्गम  
 भूमिको वश करनेवाला रौद्रभूति बालिखिल्यका आज्ञाकारी हो गया तत्र शङ्काकी प्राप्त हुआ  
 सिहोदर भी सम्मान सहित उसके साथ बहुत स्नेह करने लगा ॥१०५॥ इस प्रकार महारथी बालि-  
 खिल्य राम लक्ष्मणके प्रसादसे परम विभूतिको पाकर अपनी प्राण प्रियासे इस तरह सुशोभित  
 होने लगा जिस तरह कि शरद्ऋतुसे सूर्य सुशोभित होता है ॥१०६॥

इस प्रकार आर्षे नामसे प्रसिद्ध रविप्रेषाचार्य विरचित पद्मचरितम बालिखिल्यका वर्णन  
 करनेवाला चौतीसवों पर्व समाप्त हुआ ॥३४॥

## पञ्चत्रिंशत्तमं पर्व

अथ ते त्रिदशाभिष्टयाः काननं नन्दनोपमम् । विहरन्त्याः सुगमं प्राप्ता देशमप्यन्तमुज्ज्वलम् ॥१॥  
 मध्ये यस्य नदी भाति प्रसिद्धजलप्राहिनी । सार्पाति विभ्रुता नानापचिरगानुनादिता ॥२॥  
 अरण्ये तत्र निस्तोये मितोऽप्यन्तध्रमान्विता । जगाद् राघव नाथ कण्टशोषो ममोत्तमः ॥३॥  
 यथा भवशतैः विभ्रो भव्यो दर्शनमहंतः । घान्छुयेवमह तीव्रगुणयाऽऽकुलिता जलम् ॥४॥  
 इत्युक्त्वा वार्यमाणापि निपण्णा सुतरोरधः । रामेण जगदे देवि विपादं मागमः शुभे ॥५॥  
 आसन्नोऽय महाप्राप्तो हरयते विरूटालयः । उत्तिष्ठाशु प्रयामोऽय शिशिरं वारि पास्यति ॥६॥  
 एवमुक्ते तथा स्वैरं स्वैरं प्रस्थितया समम् । प्राप्ती तानरुणप्राप्तं महाधनकुटुम्बिकम् ॥७॥  
 आदिताभिर्द्विजस्तत्र कपिलो नाम विभ्रुतः । गेहे तस्यावतीर्गां ती यथाक्रममुपागते ॥८॥  
 अत्राग्निहोत्रशालापामपनीय ध्रमं षण्णम् । तद्ब्राह्मण्या जलं दूष पयो सीता सुरागतलम् ॥९॥  
 यावत् तिष्ठन्ति ते तत्र द्विजस्तावदरण्यतः । विद्याधरपथलशोभोभारवाही समागतः ॥१०॥  
 दावानलसमं यस्य मानसं नित्यशोपिनः । कालकूटविष वाक्यमुत्कृष्टमदशं सुगम् ॥११॥  
 कमण्डलुशिखामूवंचालसूत्रादिभिः परम् । त्रिभ्राजः कुटिल वेपमुच्छृत्ति भवन् किल ॥१२॥  
 इष्ट्वा तान् कुपितोऽप्यन्तध्रुकुट्टिकुटिलाननः । उवाच ब्राह्मणी वाचा तच्छ्रित्वा सुतापगया ॥१३॥

अथानन्तर देवोंके समान शोभाको धारण करनेवाले वे तीनों, नन्दन वनके समान सुन्दर वनमें सुखसे विहार करते हुए एक ऐसे अत्यन्त उज्वल देशमें पहुँचे, जिसके मध्यमें प्रसिद्ध जलको बहानेवाली, पत्नी समूहसे शब्दायमान तापी नामकी प्रसिद्ध नदी सुरागमित है ॥१-७॥ वहाँके निर्जल वनमें जब सीता अत्यन्त थक गई तब रामसे बोली कि नाथ ! मेरा कण्ठ थिलकुल सूख गया है ॥१॥ जिस प्रकार सैकड़ों जन्म धारण करनेसे खेदको प्राप्त हुआ भव्य, अरहन्त भगवान्के दर्शन चाहता है उसी प्रकार तीव्र विपासासे आकुलित हुई मैं जल चाहती हूँ ॥१॥ इतना कहकर वह रोकनेपर भी एक उत्तम वृक्षके नीचे बैठ गई । रामने कहा कि हे देवि ! हे शुभे ! विपादको प्राप्त मत होओ ॥१॥ यह पास ही बड़े-बड़े महलोंसे युक्त बड़ा भारी ग्राम दिखाई दे रहा है, उठो, शीघ्र ही चलो, वही शीतल पानी पीना ॥१॥ इस प्रकार कहने पर धीरे-धीरे चलती हुई सीताके साथ चलकर वे दोनों, जहाँ अनेक धनिक कुटुम्ब रहने थे, ऐसे अरुण ग्राममें पहुँचे ॥७॥ वहाँ प्रतिदिन होम करनेवाला एक कपिल नामका ब्राह्मण रहता था सो वे दोनों यथा क्रमसे प्राप्त हुए, उसीके घर उतरे ॥८॥ यहाँ यज्ञ-शालामें जण भर विश्राम कर सीताने उसकी ब्राह्मणीके द्वारा दिया शीतल जल पिया ॥९॥ वे सब वहाँ ठहर ही रहे थे कि इतनेमें बेल, पोपल और पलाशकी लकड़ियोंका भार लिये ब्राह्मण जङ्गलसे वापिस आ पहुँचा ॥१०॥ निरन्तर क्रोध करनेवाले उस ब्राह्मणका मन दावानलके समान था, वचन कालकूटके समान थे, और मुख उल्लूके सदृश था ॥११॥ वह हाथमें कमण्डलु लिये था, उसने शिर पर बड़ी चौटी रख छोड़ी थी, गुग्गुलु पर लम्बी चौड़ी दाढ़ी बढ़ा ली थी और कन्धेपर यज्ञोपवीतका सूत्र धारण किया था, इन सब चीजोंसे वह अत्यन्त कुटिल वेपको धारण कर रहा था तथा उल्लू वृत्तसे अपनी जीविका चलाता था ॥१२॥ उन्हें देखते ही उसका क्रोध उमड़ पड़ा, उसका मुख भौंहासे अत्यन्त कुटिल हो गया और वह ब्राह्मणीसे इस प्रकार बोला, मानो तीव्र वचनोंसे

अपि पापे किमित्येयामिह दत्त प्रवेशनम् । प्रयच्छाम्यद्य ते दुष्टे बन्ध गोरपि दुस्सहम् ॥१५॥  
 परयेमे निरुपा घृष्टा केषपि पाशुलपाण्डुका । अग्निहोत्रकुटी पापा कुर्वन्त्युपहृता मम ॥१५॥  
 तत साताऽश्ववीत् पद्ममार्ग्यपुत्र हुकर्मण । अस्येदमास्पद दग्ध परमाक्रोशकारिण ॥१६॥  
 वर पुपफलच्छन्दनै पादपैरुपशामिते । सरोमिश्रातिविमलै पद्मादिपिहृतैर्वने ॥१७॥  
 सारङ्गैरुपित सार्धं क्रीडन्निजयेच्छ्रया । श्रूयते नेदश तत्र नितान्त परुष वच ॥१८॥  
 अस्मिन् राघव नाकाभे देशे धनसमुज्ज्वले । समस्तो निष्ठुरो लोको ग्रामवासी विशेषत ॥१९॥  
 विप्रस्य रूक्षया वाचा क्षोभितोऽसौ ततोऽखिल । ग्राम समागतो दृष्ट्वा तेषा रूप सुरोपमम् ॥२०॥  
 अत्रवीद् ब्राह्मणैकान्तै पथिकैः क्षणमेककम् । तिष्ठन्तु किमिमे दोष कुर्वन्ति विनयान्विता ॥२१॥  
 ततो निर्भयैः सकल त लोक कोपलोहित । बभापे तौ द्विज प्राप सारमेयो गजाविव ॥२२॥  
 निष्कामत पर गेहान्मदायादपवित्रको । एवमादिवचोघातैर्लक्ष्मामान् कुपितस्तत ॥२३॥  
 ऊर्ध्वपादमधोम्रीव कृचा त ब्राह्मणाधमम् । अग्रहृत्प्रय प्रवृजन्त शोणितारणलोचनम् ॥२४॥  
 भ्रमयिचा क्षितौ यावदास्फलयितुमुद्यत । रामेण वारितस्तावदिति काहृण्यधारिणा ॥२५॥  
 सौमित्रे किमिद् क्वाभे प्रारब्ध भवतेदृशम् । मारितेन किमेतेन जावत्प्रतेन ते ननु ॥२६॥  
 मुञ्चैन त्वरित क्षुद्र थाचप्राणैर्न मुच्यते । अयश परमेतस्मिन्मृत्युते केवल मृते ॥२७॥  
 भ्रमणा ब्राह्मणा गाव पशुस्त्राबालवृद्धका । सदोपा अपि शूराणा नैते वध्या किलोदिता ॥२८॥

उसे झील ही रहा हो ॥१३॥ उसने कहा कि हे पापिनि ! तूने इन्हे यहाँ प्रवेश क्यों दिया है ? अरी दुष्टे ! मैं आज तुमसे पशुसे भी अधिक दुःसह बन्धनमें डालता हूँ ॥१४॥ देख, जिनका शरीर धूलसे धूसर हो रहा है, ऐसे ये निर्लज्ज, पापी, दीठ व्यक्ति मेरी यज्ञ शालाको दूषित कर रहे हैं ॥१५॥

तदनन्तर सीताने रामसे कहा कि हे आर्यपुत्र ! इस कुकर्मा तथा अतिशय अपराध कहनेवाले इस ब्राह्मणका यह अधम स्थान छोड़ो ॥१६॥ फूलों और फलोंसे आच्छादित वृक्षों तथा कमल आदिसे युक्त अत्यन्त निर्मल सरोवरोंसे सुशोभित वनमें स्वेच्छासे साथ-साथ क्रीडा करनेवाले हरिणोंके साथ निवास करना अच्छा, जहाँ इस प्रकारके अत्यन्त कठोर शब्द सुनाई नहीं पडते ॥१७-१८॥ हे राघव ! स्वर्गके समान आभावाले इस अतिशय सुन्दर देशमें समस्त लोग निष्ठुर हैं और खासकर ग्रामवासी तो अत्यन्त निष्ठुर हैं ही ॥१९॥ ब्राह्मणके रूक्ष वचनोंसे क्षोभको प्राप्त हुआ समस्त गाँव उनका देवतुल्य रूप देखकर बहों आ गया ॥२०॥ गाँवके लोगोंने कहा कि हे ब्राह्मण ! यदि ये पथिक तेरे मकानमें एक ओर क्षण भरके लिए ठहर जाते हैं तो क्या दोष उत्पन्न कर देंगे ? ये सब बड़े विनयी जान पडते हैं ॥२१॥ उसने क्रोधसे लाल होकर सब लोगोंको डोँटते हुए, राम लक्ष्मणसे कहा कि तुम लोग अपवित्र हो, अत मेरे घरसे निकलो । ब्राह्मणका राम लक्ष्मणके प्रति रोष दिखाना ऐसा ही था जैसा कि कोई एक कुत्ता दो हाथियोंके प्रति रोष दिखाता है—उन्हे देखकर भौंकता है । तदनन्तर उसके इस प्रकारके वचन सम्यन्धी आघातसे लक्ष्मणको क्रोध आ गया, वे रुधिरके समान लाल लाल नेत्रोंके धारक तथा अमाङ्गलिक अपराध बकनेवाले उस नीच ब्राह्मणको ऊर्ध्वपाद और अधोम्रीव कर घुमाकर ज्यों ही पृथिवी पर पलाडनेके लिए उद्यत हुए त्यों ही कर्णका धारी रामने उन्हे यह कहते हुए रोका ॥२०-२५॥ कि हे लक्ष्मण ! तुम इस वेचारे दीन प्राणी पर यह क्या करने जा रहे हो ? यह तो जीवित रहते हुए भी मृतकके समान है, इसके मारनेसे क्या लाभ है ? ॥२६॥ जब तक यह निष्प्राण नहीं होता है तब तक इस क्षुद्रको शीघ्र ही छोड़ दो । इसके मरने पर केवल अपयश ही प्राप्त होगा ॥२७॥ मुनि, ब्राह्मण, गाय, पशु, स्त्री, बालक और वृद्ध ये सदोष होने पर

इत्युक्त्वा मोक्षविद्यां तं कृत्वा लक्ष्मणमग्रतः । मीनयाऽनुगतो राम कुटीरान्निर्गतात् ॥२६॥  
 त्रिम् त्रिम् नाथस्यमामह दुर्बल धृतिकारणम् । मनोविहारकरण महापुरुषवर्जितम् ॥३०॥  
 वर तदन्ते शीते दुर्गमे विनिने स्थितम् । परित्यज्यान्ति प्रथं विद्वन् सुरते वरम् ॥३१॥  
 वरमाहारमुत्स्य मरण सेविषु सुखम् । अन्धानेन नामव्यय गृहे वगमिषि स्थितम् ॥३२॥  
 कृतेषु सखितामत्रे कुचिन्वन्तहारिषु । स्थान्यामी न पुनर्भूय प्रवेक्ष्यामः श्लाघ्यम् ॥३३॥  
 निन्द्येव स्यात्सङ्गमिमान पर बहन् । निर्गन्ध प्राप्तत पद्मो वनरव पद्वी श्रित ॥३४॥  
 पनकान्तत प्राप्ते नीलवक्षसिल नभ । पद्मवर्जितगन्तानप्रतिनादितगदह ॥३५॥  
 ग्रहनक्षत्रपटलमुपगुह्य समन्तत । मरानयिषुदुषोत जहाप्येव नभःपुण्ड्रम् ॥३६॥  
 प्रोम्पदाभरक घोर समुन्मार्थं पापावन । जगन् विधुदहृत्वा प्रोविनानिव तत्रैवन् ॥३७॥  
 नमोऽन्यकारित कुर्वन् धाराभिर्नीलतोवद । अभियेरतु समारंभे माता गज इव श्रियम् ॥३८॥  
 तिमन्तम्ने ततोऽन्वर्णं द्रुम्यप्रापपादवम् । उपसत्य पुरो गेहममानरङ्गजुव्रगम् ॥३९॥  
 इमकर्णो गगस्तेषामभिभूताश्रयं तेजसा । गन्वा स्वामिनमिषुवे नाना विन्ध्यवनाश्रितम् ॥४०॥  
 आगत्य भाकत केऽपि मदाये नाथ सप्रति । स्थिता यैन्नेत्रैर्वाह तन्मानुद्वाभित्वा दुतम् ॥४१॥  
 श्रुत्वा तद्वचन स्मिन्वा विनावकवति समम् । वधूमि प्रस्थितो गन्तु न्यप्राप घरान्या ॥४२॥

भी शूर वीरोंके द्वारा बध्द नहीं हैं, ऐसा कहा गया है ॥२८॥ इतना कहकर रामने उभे छुड़ाया और लक्ष्मणको आगेकर वे सीता सहित उस ब्राह्मणकी कुटियासे बाहर निकल आये ॥२६॥ 'जो दुर्बल सुननेका कारण है, मनमें विकार उत्पन्न करनेवाला है और महापुरुष विभे दूरमें ही छोड़ देते हैं ऐसी नीच मनुष्योंकी संगतिको धिक्कार है ॥३०॥ शीत ऋतुके समय दुर्गम वनमें बुझने नीचे बैठ रहना अच्छा है, समस्त परिग्रह छोड़कर ससारमें भ्रमण करते रहना अच्छा है और आहार छोड़कर सुप्त पूर्वक मर जाना अच्छा है परन्तु तिरस्कारके साथ दूरसे घरमें एक क्षण भी रहना अच्छा नहीं है ॥३१-३२॥ 'हम नदियाँके तटों और परतोंका अतिशय मनोहर गुणाओंमें रहेंगे परन्तु अत्र फिर दुर्जनोके घरमें प्रवेश नहीं करेंगे' इस प्रकार दुर्जन ससर्गका निन्दा करते तथा परम अभिमानका धारण करते हुए रामने गाँवसे निकलकर वनका मार्ग लिया ॥३३-३४॥

तदनन्तर समस्त आकाशको नीला करता और तीव्र गर्तनाके समूहसे गुणाओंको प्रतिध्वनित करता हुआ वर्षा काल आया ॥३५॥ उस समय ग्रह और नक्षत्रोंके पटलमें सप्त ओरसे छिपाकर कडकती हुई विजलीके प्रकाशके वहाने आकाश ऐसा जान पड़ता था मानो हँस ही रहा हो ॥३६॥ प्रोम्प कालके भयकर विस्तारको दूर हटाकर मेघ गरज रहा था और विजली रूपी अगुलीने द्वारा ऐसा जान पड़ता था मानो प्रजासी मनुष्योंको डँट ही दिया रहा हो ॥३७॥ धाराओंने द्वारा आकाशको अन्धकार युक्त करता हुआ श्यामल मेघ, सीताका अभिषेक करनेके लिए उस तरह तैयार हुआ जिस तरह हाथी लक्ष्मीका अभिषेक करनेके लिए तैयार होता है ॥३८॥ तदनन्तर वे भीगते हुए एक निकटवर्ती ऐसे विशाल वटवृक्षने नीचे पहुँचे कि जिसका स्कन्ध घरके समान सुरक्षित था तथा जो अत्यन्त ऊँचा था ॥३९॥

अथानन्तर उनके तेजसे अभिभूत हुआ इमकर्ण नामका वृक्ष, विन्ध्याचलके वनमें रहनेवाले अपने स्वामीके पास जाकर तथा नमस्कार कर इस प्रकार बोला कि हे नाथ ! स्वर्गसे आकर कोई ऐसे तीन महानुभाव मेरे घरमें ठहरे हैं जिन्होंने अपने तेजसे अभिभूत कर मुझे शीघ्र ही घरके बाहर कर दिया है ॥४०-४१॥ इमकर्णने वचन सुनकर मन्दाहारन करता हुआ

१. सीते म०, २०। २. भावे च, विहरणमित्यर्थ। ३. नेत्रिने म०। ४. निन्द्येव म०। ५. प्रेक्षि मिर म०। ६. इमकर्णनामपेयो वृक्ष। ७. भूतोऽपि व०, म०। ८. विन्ध्यवनाश्रितम्।



अर्वाश्वर स यज्ञाणा महाविभवसङ्गतः । रम्यकाननससक्तः क्रीडन्पूतनसंज्ञकः ॥४३॥  
 दूरादेव च तौ दृष्ट्वा महारुर्गौ गगाधिपः । प्रयुज्यावद्विमञ्जासीद् बलनारायणाविति ॥४४॥  
 ततस्तद्भुभावेन वात्सल्येन च भूयसा । ज्ञेनेन नगरी तेषां तेन रम्या विनिर्मिता ॥४५॥  
 ततस्ते सुप्रसम्पन्न सुप्ताः किल सुचाहणा । प्रभाते गीतशब्देन प्रबोध समुपागताः ॥४६॥  
 तल्पेऽप्रस्थितमानमानमपश्यन् रत्नराजिते । प्रासाद च महारम्य बहुभूमिदमुज्ज्वलम् ॥४७॥  
 देहोपकारणव्यग्र परिवर्गं च सादरम् । नगरं च महाशब्दशालगोपुरशोभितम् ॥४८॥  
 तेषां महानुभावानां दृष्टेऽस्मिन् सहसा पुरे । न मनो विस्मयं प्राप तद्धि क्षुब्धविचेष्टितम् ॥४९॥  
 अशेषवस्तुसम्पत्तास्तत्र ते चारुचेष्टिताः । अवस्थानं मुखं चक्रुरमरा इव भोगिनः ॥५०॥  
 यथाधिपेन रामस्य पुरी यस्मात् प्रकल्पिता । ततो महीतले स्थार्ति गता रामपुरीति सा ॥५१॥  
 प्रतीहारा भटाः शूरा अमात्याः ससथो गज्याः । पौराश्च विविधास्तस्यामयोध्यायामिवाभवन् ॥५२॥  
 कुशाग्रनगरोऽप्य गणिन पृष्ठवानिति । तयोर्नाथ तथाभूतो स द्विजः किमु चेष्टितः ॥५३॥  
 उवाच च गणस्वामी शृणु श्रेणिक स द्विजः । प्रयातः प्रातरुत्थाय दात्रहस्तो वनस्थलीम् ॥५४॥  
 भ्रमश्च समिदाद्यर्थमकस्मादूर्ध्वलोचनः । नातिदूरे पुरीं पृथ्वीमपश्यद् विस्मिताननः ॥५५॥  
 असिताभिः सिताभिश्च पताकाभिर्विराजिताम् । शरन्मेघसमानैश्च भवनैरतिभासुरैः ॥५६॥

यत्नराज, अपनी स्त्रियोंके साथ लीलापूर्वक उस बटवृत्तके पास जानेके लिए चला ॥४२॥ यत्नोका वह अधिपति महावैभवसे युक्त था, रम्य वनोमे क्रीड़ा करता आ रहा था और 'पूतन' नामसे सहित था ॥४३॥ यत्नराजने अत्यन्त सुन्दर रूपके धारक राम-लक्ष्मणको दूरसे ही देख अवधि ज्ञान जोड़कर जान लिया कि ये बलभद्र और नारायण हैं ॥४४॥ तदनन्तर उनके प्रभाव एवं बहुत भारी वात्सल्यसे उसने उनके लिए क्षण भरमे एक सुन्दर नगरीकी रचना कर दी ॥४५॥ तत्पश्चान् वे वहाँ सुखसे सोये और प्रातःकाल अतिशय मनोहर संगीतके शब्दसे प्रबोधको प्राप्त हुए ॥४६॥ उन्होंने अपने आपको रत्नोंसे सुशोभित शय्यापर अवस्थित देखा, अनेक ण्डका अत्यन्त रमणीय उज्ज्वल महल देखा, आदरके साथ शरीरकी सेवा करनेमें व्यग्र सेवकोंका समूह देखा और महाशब्द प्राकार तथा गोपुरोंसे शोभित नगर देखा ॥४७-४८॥ सहसा इस नगरको दीखने पर उन महानुभावोंका मन आश्चर्यको प्राप्त नहीं हुआ सो ठीक ही है क्योंकि यह सब चमत्कार बुद्ध चेष्टा थी ॥४९॥ सुन्दर चेष्टाओंको धारण करनेवाले राम सीता और लक्ष्मण समस्त वस्तुओंसे युक्त हो देवोंके समान भोग भोगते हुए उस नगरीमें सुखसे रहने लगे ॥५०॥ चूँकि वह नगरी यत्नराजने रामके लिए बनाई थी इसलिए महीतल पर रामपुरी इसी नामसे प्रसिद्धिको प्राप्त हुई ॥५१॥ द्वारपाल, भट, शूरी, मन्त्री, घोड़े, हाथी तथा नाना प्रकारके नगरवासी जिस प्रकार अयोध्यामें थे उसी प्रकार इस रामपुरीमें भी थे ॥५२॥ तदनन्तर राजा श्रेणिकने गीतम स्वामीसे पूछा कि हे नाथ ! राम लक्ष्मणके साथ उस प्रकारका व्यवहार करनेवाले उस कपिल ब्राह्मणका क्या हाल हुआ ? सो कहिये ॥५३॥ तब गीतम स्वामी बोले कि हे श्रेणिक ! सुन, वह ब्राह्मण प्रभात काल उठकर तथा हँसिया हाथमें लेकर वनकी ओर चला ॥५४॥ वह इन्धन आदिको प्रातिके लिए इधर-उधर घूम रहा था कि अकस्मात् ही दृष्टि ऊपर उठाने पर उसने एक विशाल नगरी देखी । देखकर उसका मुख आश्चर्यसे चकित हो गया ॥५५॥ वह नगरी सफेद तथा अन्य रङ्गोंकी अनेक पताकाओं और शरद् ऋतुके मेघोंके समाप्त अतिशय देनीयमान भवनोंसे सुशोभित थी ॥५६॥ नगरीके मध्यमे सफेद कमल रूपी छत्रसे सहित एक बड़ा भवन था जो ऐसा जान पड़ता था मानो कैलासका वचा ही हो ॥५७॥ यह सब देख,

पुण्डरीकातपत्रेण मध्ये समुपलक्षितम् । महाप्रासादमेकं च कैलासस्यैव शाश्वतम् ॥५७॥  
 अचिन्तयद्यद्यं धीरेषा अटप्यामीन्द्रमाश्रिता । यस्यां समिन्तुशशाद्यं दुग्धं पर्यटितं सदा ॥५८॥  
 भक्त्यन्तः सेवमुत्तुङ्गद्वन्द्वमालोपगोमितैः । रत्नपर्वतसंनारीर्विराजति पुरी गृहैः ॥५९॥  
 सरांस्यमूनि रम्याणि पद्मादिपिहितानि च । हर्यन्ते यानि भो पूर्वं मया दृष्टानि जातुचिन् ॥६०॥  
 उद्यानानि सुरम्याणि मेवितानि जनैर्भृङ्गम् । हर्यन्ते देवपामानि लक्षितानि महाप्यत्रैः ॥६१॥  
 धारणैः सतिभिर्गोभिर्महिषीभिश्च सङ्घटा । अस्थोपकण्ठधरणी घण्टादिस्वनपूरिता ॥६२॥  
 किमेषा नगरी नाकाद्वतोर्णा भवेद्रिह । पातालादुद्गताहोधिन् कस्यापि शुभकर्मणः ॥६३॥  
 स्वप्नमेवं नु परयामि मायेयं वत कस्यचिन् । किमु गन्धर्वनगरं पित्तव्याकुलितोऽस्मि किम् ॥६४॥  
 'उपालिङ्गमिदं किं स्यात् प्रायेगास्थानिकस्य मे । इति सञ्जितयन् प्रातो त्रिवारं परम दिजः ॥६५॥  
 दृष्ट्वा च प्रमदमेकां नानालङ्कारपरिणीम् । अष्टद्वन्द्वपदस्येयं भद्रे कस्य पुरीण्यमी ॥६६॥  
 सा जगौ जातु पद्मस्य पुरीयं किं न ते श्रुता । यस्य लक्ष्मीधरो भ्राता सीता च प्राणवह्मभ ॥६७॥  
 पृतत् परयसि यद् विप्र पुयां मध्ये महागृहम् । शरद्भ्रसमच्छायमत्रासी पुरपोत्तमः ॥६८॥  
 लोको दुर्लभदर्शनं सर्वेभिरातिदुर्विधः । यच्छ्रुता वाञ्छितं द्रव्यं जनितः पाधिबोधमः ॥६९॥  
 विप्रोऽब्रुवच्चदुपायेन केन परयामि सुन्दरि । पद्म सद्भावतः दृष्ट्वा निवेद्यितुमर्हसि ॥७०॥  
 इत्युत्वा समिधाभारं निचिन्व भुवि साञ्जलिः । पपात पादपोस्तस्याः सा कस्य न मनोहरा ॥७१॥

यह ब्राह्मण विचार करने लगा कि क्या यह स्वर्ग है ? अथवा मृगांसे सेवित यही अटयी है ? जिसमें मैं इन्धन तथा कुशा आदिके लिए निरन्तर दुःख पूर्वक भटकता रहता था ॥५८॥ यह नगरी ऊँचे-ऊँचे शिखरोंकी मालासे शोभायमान, तथा रत्नमयी पर्वतोंके समान दीरखनेवाले भवनोसे अकस्मात् ही सुरोभित हो रही है ॥५९॥ यहाँ कमल आदिसे आच्छादित जो ये मनोहर सरोवर दिखाई दे रहे हैं वे मैंने पहले कभी नहीं देखे ॥६०॥ यहाँ मनुष्योंके द्वारा सेवित सुरम्य उद्यान और बड़ी-बड़ी ध्वजाओंसे युक्त मन्दिर दिखाई पड़ते हैं ॥६१॥ इस नगरकी निकटवर्ती भूमि, हाथियों, घोड़ों, गायाँ और भैंसोंसे संकीर्ण तथा घण्टा आदिके शब्दोंसे पूर्ण है ॥६२॥ क्या यह नगरी यहाँ स्वर्गसे अवतीर्ण हुई है ? अथवा किसी पुण्यात्माने प्रभावसे पातालसे निकली है ॥६३॥ क्या मैं ऐसा स्वप्न देख रहा हूँ ? अथवा यह किसीकी माया है ? या गन्धर्वका नगर है ? अथवा मैं स्वयं पित्तसे व्याकुलित हो गया हूँ ? ॥६४॥ अथवा क्या मेरा निकट कालमें मरण होनेवाला है सो उसका चिह्न प्रकट हुआ है ? इस प्रकार विचार करता हुआ वह ब्राह्मण अत्यधिक विचारको प्राप्त हुआ ॥६५॥ उसी समय उसे नाना अलंकार धारण करनेवाली एक स्त्री दिखी सो उसके पास जाकर उसने पूछा कि हे भद्रे ! यह किसकी नगरी है ? ॥६६॥ उसने कहा कि यह रामकी नगरी है, क्या तुमने कभी सुना नहीं ? उन रामकी कि लक्ष्मण जिनके भाई हैं और सीता जिनकी प्राणप्रिया है ॥६७॥ हे ब्राह्मण ! नगरीके बीचमें जो यह शरद् श्रुतके मेयके समान कान्तिवाला बड़ा भवन देख रहे हो इसीमें वे मनुष्योत्तम रहते हैं ॥६८॥ जिनका दर्शन अत्यन्त दुर्लभ है, ऐसे इन पुरुषोत्तमने मन वाञ्छित द्रव्य देकर सभी दरिद्र मनुष्योंको राजाके समान बना दिया है ॥६९॥ ब्राह्मणने कहा कि हे सुन्दरि ! मैं किस उपायसे रामके दर्शन कर सकता हूँ ? मैं तुमसे सद्भावसे पूछ रहा हूँ अतः वतलानेके योग्य हो ॥७०॥ इतना कहकर उस ब्राह्मणने इन्धनका भार पृथिवी पर रख दिया और स्वयं हाथ जोड़कर उस स्त्रीके चरणोंमें गिर पड़ा, मोठीक ही है क्योंकि वह स्त्री किसका मन नहीं हरती थी ? ॥७१॥

ततोऽसौ कृपयाऽऽकृष्टा सुमाया नाम यज्ञिणी । जगाद विप्रं परम त्वयेदं साहर्मं कृतम् ॥७२॥  
 अस्याः पुरः समासन्नां कथं त्वं भुवमागतः । आसक्तैरलं चोरैर्नूनं नरयति वोक्षितः ॥७३॥  
 अस्या द्वारत्रयं पुण्याः दुष्प्रवेशं सुरैरपि । अशून्यं सर्वदा वारैः रत्नैः सुनियामकैः ॥७४॥  
 सिंहवारणशादूँलतुल्यवक्त्रैर्महोऽज्वलैः । एभिर्विभीषिता मृत्युं मानुषा धान्यसंशयम् ॥७५॥  
 पूर्वद्वारमदो यत् तस्य पश्यन्मि यान् बहिः । प्रासादानन्तिकान्तेतान् बलाकाच्छादयच्छुरीन् ॥७६॥  
 मणितोरणरम्येषु विविधध्वजराजिषु । अर्हतामिन्द्रवन्धानाममीषु प्रतिघातनाः ॥७७॥  
 सामायिकं पुरस्कृत्य तासां यस्तवन नरः । नमोऽर्हसिद्धमिस्वानपूर्वं पठति भावतः ॥७८॥  
 गुरूपदेश्युकोऽसौ सम्यग्दर्शनरक्षितः । विशतीन्द्रककुब्जद्वारं हन्यते त्वनमस्कृतिः ॥७९॥  
 अणुव्रतधरो यो ना गुणशीलविभूषितः । त रामः परया प्रीत्या वाञ्छितेन समर्चति ॥८०॥  
 ततस्तस्या वचः श्रुत्वा द्विजोऽसावमृतोपमम् । जगाम परमं हर्षं लब्ध्वोपायं धनागमे ॥८१॥  
 नमस्कारं च कृत्वाऽस्या भूयो भूयस्तुतिं तथा । रोमाञ्चाञ्चितसर्वाङ्गैः परमाद्भुतभाविनः ॥८२॥  
 मुनेश्चारिष्वशूरस्य गत्वासन्न कृताञ्जलिः । प्रणम्य शिरसाऽपृच्छदणुव्रतधरक्रियाम् ॥८३॥  
 ततस्तेन समुद्दिष्टं धर्मं सन्ननिवासिनाम् । स जग्राहानुयोगाञ्च शुश्राव चतुरः सुवीः ॥८४॥  
 धनलोभाभिभूतस्य धर्मं सुभ्रूपतोऽस्य सः । ग्रहणे परमार्थस्य परिणाममुपागतः ॥८५॥  
 अवगम्य ततो धर्मं द्विजोऽवीचत् सुमानसः । नाथ तेऽप्योपदेशेन चक्षुस्मन्मिलित मम ॥८६॥

तदनन्तर दयासे आकृष्ट हुई उस सुमाया नामकी यज्ञीने ब्राह्मणसे कहा कि तूने यह बड़ा साहस किया है ॥७२॥ तू इस नगरीकी समीपवर्ती भूमिमें कैसे आ गया ? यदि भयंकर पहरेदार तुम्हें देख लेते तो तू अवश्य ही नष्ट हो जाता ॥७३॥ इस नगरीके तीन द्वारोंमें तो देवोंकी भी प्रवेश करना कठिन है क्योंकि वे सदा सिंह, हाथी और शार्दूलके समान मुखवाले तेजस्वी, वीर तथा कठोर नियन्त्रण रखनेवाले रत्नकोसे अशून्य रहते हैं। इन रत्नकोके द्वारा डरवाये हुए मनुष्य निःसन्देह मरणको प्राप्त हो जाते हैं ॥७४-७५॥ इनके सिवाय जो वह पूर्व द्वार तथा उसके बाहर समीप ही बने हुए बगलाके पङ्क्तके समान कान्तिवाले सफेद-सफेद भवन तू देख रहा है वे मणिमय तोरणोंसे रमणीय तथा नाना ध्वजाओंकी पङ्क्तिसे सुशोभित जिन-मन्दिर हैं। उनमें इन्द्रोंके द्वारा वन्दनीय अरहन्त भगवान्की प्रतिमाएँ हैं जो मनुष्य सामायिक कर तथा 'अर्हत् सिद्धेभ्यो नमः' अर्थात् 'अरहन्त तथा सिद्धोंको नमस्कार हो' इस प्रकार कहता हुआ भाव पूर्वक उन प्रतिमाओंका स्तवन पढ़ता है तथा निर्ग्रन्थ गृहका उपदेश पाकर सम्यग्दर्शन धारण करता है वही उस पूर्वद्वारमें प्रवेश करता है। इसके विपरीत जो मनुष्य प्रतिमाओंको नमस्कार नहीं करता है वह मारा जाता है ॥७६-७९॥ जो मनुष्य अणुव्रतका धारी तथा गुण और शीलसे अलंकृत होता है, राम उसे बड़ी प्रसन्नतासे इच्छित वस्तु देकर संतुष्ट करते हैं ॥८०॥

तदनन्तर उसके अमृत तुल्य वचन सुनकर तथा धन प्रातिका उपाय प्राप्तकर वह ब्राह्मण परम हर्षको प्राप्त हुआ ॥८१॥ उसका समस्त शरीर रोमाञ्चोंसे सुशोभित हो गया तथा उसका हृदय अत्यन्त अद्भुत भावोंसे युक्त हो गया। वह उस स्त्रीको नमस्कार कर तथा वाग्-वार उसकी स्तुति कर चारित्र्य पालन करनेमें शूर-वीर मुनिराजके पास गया और अञ्जलि बौध शिरसे प्रणाम कर उसने उनसे अणुव्रत धारण करनेवालोंकी क्रिया पूछी ॥८२-८३॥ तदनन्तर उस चतुर बुद्धिमान् ब्राह्मणने मुनिराजके द्वारा उपदिष्ट गृहस्थ धर्म अङ्गीकृत किया तथा अनुयोगोका स्वरूप सुना ॥८४॥ पहले तो वह ब्राह्मण धनके लोभसे अभिभूत होकर धर्म श्रयण करना चाहता था पर अब वास्तविक धर्म ग्रहण करनेके भावको प्राप्त हो गया ॥८५॥ मुनिराजसे धर्मका स्वरूप

वृषार्णेनेत्र सत्तोयं ह्यायेवाश्रयकाचिणा । धुषार्णेनेत्र मिष्टाह्न रोमिगेत्र मुभेयत्रम् ॥८७॥  
 दुष्पथप्रतिपन्नं वभैरेपितदेशगम् । यानपाप्रभिराम्भोर्षी स्यात्कुलेन निमज्जताम् ॥८८॥  
 मपेद शासनं जैन सर्वदुःखविनाशनम् । लब्धं भयप्रवादेन दुर्लभं पुरुषार्थम् ॥८९॥  
 प्रैलोचयेऽपि न मे करिष्यन्नरता रिपते सप्त । येनापमांस्त्रो मार्गो नोपितो जिनदेशान् ॥९०॥  
 ह्युत्तमा शिरसा चाद्री वन्दित्वाऽञ्जलियोगिना । गुण प्रदक्षिर्गृह्य द्विजः स भवन गतः ॥९१॥  
 जगाद् वाऽतिदृष्टस्तां प्रमद्विक्रयेषुगः । दयिते परमाश्रयं गुरोरथ मया श्रुतम् ॥९२॥  
 श्रुतं तव न तपिष्या जनकेताप वा पितुः । किं वाऽत्र बहुभिः प्रोक्तैर्गोत्रेणापि न ते श्रुतम् ॥९३॥  
 दृष्ट ब्राह्मणि यातेन यदरण्य मयाद्भुतम् । तद्गुरोरुपदेशेन नेदानीं विस्मयाप मे ॥९४॥  
 किं किं मो ब्राह्मण ब्रूहि दृष्ट किंवा स्वया श्रुतम् । उक्तोऽगोत्रत शरणोमि ह्यर्षकथयितु प्रिये ॥९५॥  
 आदरेणानुयुक्त्य कौतुकिन्या पुनः पुनः । निर्रोऽप्योचत शृण्वार्यं यन्मया श्रुतमद्भुतम् ॥९६॥  
 समिदर्थं प्रयातेन वन तस्य समापत । दृष्टा पुरी मया रम्या यशार्माद् गहनं वनम् ॥९७॥  
 तदास्नने मया चैका दृष्टा नारी विभूषिता । नून सा देवता कापि मनोहरणभाषिता ॥९८॥  
 पृष्टा च सा मयाएवात तया रामपुरीति च । ददाति श्रावक्रेभ्योऽत्र किं रामो महद्भुतम् ॥९९॥

जानकर जिसका हृदय अत्यन्त शुद्ध हो गया था, ऐसा वह ब्राह्मण बोला कि हे नाथ ! आज आपके उपदेशसे तो मेरे नेत्र खुल गये हैं ॥८६॥ जिस प्रकार प्याससे पीड़ित मनुष्यको उत्तम जल मिल जाय, आश्रयकी इच्छा करनेवाले पुरुषको छाया मिल जाय, भूखसे पीड़ित मनुष्यको मिष्ठान्न मिल जाय, रोगीके लिए उत्तम औषधि मिल जाय, दुर्भागमें भटके हुएको इच्छित स्थान पर भेजनेवाला मार्ग मिल जाय, और बड़ा व्याकुलतासे समुद्रमें डूबनेवालोंको जहाज मिल जाय, उसी प्रकार आपके प्रसादसे सर्व दुःखोंको नष्ट करनेवाला यह जैन शासन मुझे प्राप्त हुआ है । यह जैन शासन नीच मनुष्योंके लिए सर्वथा दुर्लभ है ॥८७-८८॥ चूँकि आपने यह ऐसा जिन-प्रदर्शित मार्ग मुझे दिखलाया है इसलिए तीन लोकमें भी आपके समान मेरा हितकारी नहीं है ॥८९॥ इस प्रकार कहकर तथा अञ्जलिबद्ध शिरसे मुनिराजके चरणोंमें नमस्कार कर प्रदक्षिणा देता हुआ वह ब्राह्मण अपने घर चला गया ॥९१॥

तदनन्तर जिसके नेत्र कमलके समान विकसित हो रहे थे तथा जो अत्यन्त हर्षसे युक्त था ऐसा वह ब्राह्मण घर जाकर अपनी स्त्रीसे बोला कि हे प्रिये ! आज मैंने गुप्तसे परम आश्चर्य सुना है ॥९२॥ ऐसा परम आश्चर्य कि जिसे तेरे पिताने, पिताके पिताने अथवा बहुत कहनेसे क्या तेरे गोत्र भरने नहीं सुना होगा ॥९३॥ हे ब्राह्मणि ! यन्में जाकर जो अद्भुत बात मैंने देखी थी अब वह गुप्तके उपदेशसे आश्चर्य करनेवाली नहीं रही ॥९४॥ ब्राह्मणोंने कहा कि हे ब्राह्मण ! तुमने क्या-क्या देखा है और क्या-क्या सुना है ? सो कहो । ब्राह्मणोंके इस प्रकार कहने पर ब्राह्मण बोला कि हे प्रिये ! मैं हर्षके कारण कहनेके लिए समर्थ नहीं हूँ ९५॥ तदनन्तर कौतुकसे भरी ब्राह्मणोंने जब आदरके साथ बार-बार पूछा तब वह त्रिष बोला कि हे आर्य ! जो आश्चर्य मैंने सुना है वह सुन ॥९६॥

मैं लक्ष्मियों लानेके लिए जङ्गल गया था सो उसके समीप ही जहाँ सज्जन वन था वहाँ एक मनोहर नगरी दिखी ॥९७॥ मैंने उम नगरीके पास एक आभूषणसे विभूषित स्त्री देखी । जान पड़ता है कि मनोहर भाषण करनेवाली वह कोई देवी होगी ॥९८॥ मैंने उससे पूछा तो उसने कहा कि यह रामपुरी नामकी नगरी है, यहाँ राजा रामचन्द्र ध्यानकोके लिए बहुत भारी

ततोऽसौ कृपयाऽऽकृष्टा सुमाया नाम यच्चिगो । जनाद् विप्र परम त्वयेदं साहसं कृतम् ॥७२॥  
 अस्याः पुरः समासन्ना कथं च भुवमागत । आरषकैरलं घोरैर्नृणं नरयति बोधितः ॥७३॥  
 अस्या द्वारत्रयं पुर्यां दुष्प्रवेशं सुरैरपि । अग्रन्य सर्वदा वारैः रक्षकैः मुनियामकैः ॥७४॥  
 सिंहवारणशार्दूलतुल्यवक्त्रैर्महोद्भवैः । पृभिर्विभीषिता मृत्यु मानुषा यान्त्यसंशयम् ॥७५॥  
 पूर्वद्वारमदो यस्तु तस्य पर्यसि यान् बहिः । प्रासादानन्तिकानेतान् बलाकाऽद्वादनच्छरीन् ॥७६॥  
 मणितोरणरग्येषु विविधध्वजराजिषु । अर्हतामिन्द्रवन्दनानामोषु प्रथितायनाः ॥७७॥  
 सामायिकं पुरस्कृत्य तामां यस्तवन नरः । नमोऽर्हसिन्द्विस्वानपूर्वं पठति भावतः ॥७८॥  
 गुरुपदेशयुक्तोऽसौ सम्यग्दर्शनरक्षितः । विशर्तान्द्रककुब्जद्वारं हन्यते स्वनमस्कृतिः ॥७९॥  
 अणुव्रतधरो यो ना गुणशीलविभूषितः । त शमः परया प्रीत्या वाञ्छितेन समर्चति ॥८०॥  
 ततस्तस्या वचः श्रुत्वा द्विजोऽसावमृतोपमम् । जगाम परम हर्षं लब्धोपाय धनागमे ॥८१॥  
 नमस्कारं च कृत्वाऽस्या भूयो भूयस्तुतिं तथा । रोमाञ्चाचितसर्वाङ्गः परमाद्भुतभावितः ॥८२॥  
 मुनेश्चारिचरुस्य गत्वायत्र कृताञ्जलिः । प्रणम्य शिरसाऽऽस्त्यद्गणुव्रतधरक्रियाम् ॥८३॥  
 तनस्तेन समुद्दिष्टं धर्मं सप्रतिवासिनाम् । स जग्राहानुयोगांश्च शुभ्राव चतुरः सुवीः ॥८४॥  
 धनलोभाभिमूलस्य धर्मं सुधूपतोऽस्य स । ग्रहणे परमार्थस्य परिणाममुपागतः ॥८५॥  
 अवगम्य ततो धर्मं द्विजोऽवोचत् सुमानसः । नाथ तेऽद्योपदेशेन चक्षुस्सर्माहित मम ॥८६॥

तदनन्तर दयासे आकृष्ट हुई उस सुमाया नामकी यक्षीने ब्राह्मणसे कहा कि तूने यह बड़ा साहस किया है ॥७२॥ तू इस नगरीकी समीपवर्ती भूमिमें कैसे आ गया ? यदि भयंकर पहरेदार तुझे देख लेते तो तू अवश्य ही नष्ट हो जाता ॥७३॥ इस नगरीके तीन द्वारोंमें तो देवोंको भी प्रवेश करना कठिन है क्योंकि वे सदा सिंह, हाथी और शार्दूलके समान मुखवाले तेजस्वी, धीर तथा कठोर नियन्त्रण रखनेवाले रक्षकोंसे अशून्य रहते हैं । इन रक्षकोंके द्वारा डरवाये हुए मनुष्य निःसन्देह मरणको प्राप्त हो जाते हैं ॥७४-७५॥ इनके सिवाय जो वह पूर्व द्वार तथा उसके बाहर समीप ही बने हुए बगलाले पङ्क्तके समान कान्तिवाले सफेद-सफेद भवन तू देख रहा है वे मणिमय तोरणोंसे रमणीय तथा नाना ध्वजाओंकी पङ्क्तसे सुशोभित जिन-मन्दिर हैं । उनमें इन्द्रोंके द्वारा वन्दनीय अरहन्त भगवान्की प्रतिमाएँ हैं जो मनुष्य सामायिक कर तथा 'अर्हत् सिद्धेभ्यो नमः' अर्थात् 'अरहन्त तथा सिद्धोंको नमस्कार हो' इस प्रकार कहता हुआ भाव पूर्वक उन प्रतिमाओंका स्तवन पढ़ता है तथा निर्प्र-थ गुरुका उपदेश पाकर सम्यग्दर्शन धारण करता है वही उस पूर्वद्वारमें प्रवेश करता है । इसके विपरीत जो मनुष्य प्रतिमाओंको नमस्कार नहीं करता है वह मारा जाता है ॥७६-७८॥ जो मनुष्य अणुव्रतका धारी तथा गुण और शीलसे अलङ्कृत होता है, राम उसे बड़ी प्रसन्नतासे इच्छित वस्तु देकर संतुष्ट करते हैं ॥८०॥

तदनन्तर उसके अमृत तुल्य वचन सुनकर तथा धन प्राप्तिका उपाय प्राप्तकर वह ब्राह्मण परम हर्षको प्राप्त हुआ ॥८१॥ उसका समस्त शरीर रोमाञ्छोंसे सुशोभित हो गया तथा उसका हृदय अत्यन्त अद्भुत भावोंसे युक्त हो गया । वह उस स्त्रीको नमस्कार कर तथा वाग्-वार उसकी स्तुति कर चारित्र्य पालन करनेमें शूर-वीर मुनिराजके पास गया और अञ्जलि बाँध शिरसे प्रणाम कर उसने उनसे अणुव्रत धारण करनेवालोंकी क्रिया पूछी ॥८२-८३॥ तदनन्तर उस चतुर बुद्धिमान् ब्राह्मणने मुनिराजके द्वारा उपदिष्ट गृहस्थ धर्म अङ्गीकृत किया तथा अनुयोगोंका स्वरूप सुना ॥८४॥ पहले तो वह ब्राह्मण धनके लोभसे अभिभूत होकर धर्म श्रवण करना चाहता था पर अब वास्तविक धर्म ग्रहण करनेके भावको प्राप्त हो गया ॥८५॥ मुनिराजसे धर्मका स्वरूप

मृषानेनेय सत्तोयं छायेयाश्रयकांदिगा । क्षुधानेनेय मिष्टान्न रोगिणेश्च मुनेष्वमम् ॥८७॥  
 दुष्पथप्रतिपन्नेन वमैत्रेयिनतदेशगम् । यानपात्रमिरामभोर्थां ध्यात्कुलेन निमलनाम् ॥८८॥  
 मयेयं शाननं जैतं सर्वदुःखविनाशनम् । लब्धं भवप्रसादेन दुर्लभं सुखायामैः ॥८९॥  
 प्रैलोचयेऽपि न मे करिष्यन्नवत । विघ्ने समः । येनायमीदृशो मार्गो मोचितो जितदेशतः ॥९०॥  
 ह्युपुत्रवा शिरसा पादौ बन्दिवाऽऽत्रलियोगिना । युग प्रदक्षिणीकृत्य द्विजः स भवनं गतः ॥९१॥  
 जगाद् वाऽतिद्वष्टरानां प्रसन्नविकषेणतः । दयिते परमाश्रये गुरोरद्य मया श्रुतम् ॥९२॥  
 श्रुतं तत्र न तल्पिता जनकेनाथ वा पित्रुः । किं वाऽत्र बहुभिः प्रोक्तैर्गोत्रिणापि न मे श्रुतम् ॥९३॥  
 दृष्ट ब्राह्मणि यानेन यदरण्य मयाकृतम् । तद्गुरोःकृपदेशेन नेदानो विस्मयाय मे ॥९४॥  
 किं किं भो ब्राह्मण ब्रूहि दृष्ट क्रिया रजया श्रुतम् । उष्णोष्णोच्यन्न शक्नोमि हर्षोऽययित्यु प्रिये ॥९५॥  
 आदरेणानुपुत्रश्च कौतुकिन्या पुनः पुनः । विमोऽप्योषत शृण्वार्थं यन्मया श्रुतमकृतम् ॥९६॥  
 समिदर्थं प्रयानेन धनं तस्य समीपतः । दृष्टा पुरी मया तस्या यत्रामाद् गहनं धनम् ॥९७॥  
 तदात्सने मया वैका दृष्टा नरार्थं विभूषिता । नूनं सा देवता कैपि मनोहरगभाषिता ॥९८॥  
 दृष्टा च सा मयाप्यात तया रामपुरीति च । ददाति श्रावकेभ्योऽत्र किल रामो महद्भनम् ॥९९॥

जानकर जिसका हृदय अत्यन्त शुद्ध हो गया था, ऐसा वह ब्राह्मण बोला कि हे नाथ ! आज आपके उपदेशसे तो मेरे नेत्र खुल गये हैं ॥८६॥ जिस प्रकार प्याससे पीड़ित मनुष्यको उत्तम जल मिल जाय, आश्रयकी इच्छा करनेवाले पुरुषको छाया मिल जाय, भूगर्भसे पीड़ित मनुष्यको मिष्टान्न मिल जाय, रोगीके लिए उत्तम औषधि मिल जाय, कुमार्गमें भटके हुएको इच्छित स्थान पर भेजनेवाला मार्ग मिल जाय, और बड़ी व्याकुलतासे समुद्रमें डूबनेवालोंको जहाज मिल जाय, उसी प्रकार आपके प्रसादसे सर्व दुर्गन्धोंको नष्ट करनेवाला यह जैन शासन मुझे प्राप्त हुआ है । यह जैन शासन नीच मनुष्योंके लिए सर्वथा दुर्लभ है ॥८७-८८॥ चूंकि आपने यह ऐसा जिन-श्रद्धित मार्ग मुझे दिखाया है इसलिए तीन लोकमें भी आपके समान मेरा हितकारी नहीं है ॥८९॥ इस प्रकार कहकर तथा अञ्जलिबद्ध शिरसे मुनिराजके चरणोंमें नमस्कार कर प्रदक्षिणा देता हुआ वह ब्राह्मण अपने घर चला गया ॥९०॥

तदनन्तर जिसके नेत्र कमलके समान विकसित हो रहे थे तथा जो अत्यन्त हर्षसे युक्त था ऐसा वह ब्राह्मण घर जाकर अपनी स्त्रीसे बोला कि हे प्रिये ! आज मैंने गुरुसे परम आश्चर्य सुना है ॥९१॥ ऐसा परम आश्चर्य कि जिसे तेरे पिताने, पिताके पिताने अथवा बहुत कहनेसे क्या तेरे गोत्र भरने नहीं सुना होगा ॥९२॥ हे ब्राह्मणि ! वनमें जाकर जो अद्भुत बात मैंने देखी थी अब वह गुरुके उपदेशसे आश्चर्य करनेवाली नहीं रही ॥९३॥ ब्राह्मणोंने कहा कि हे ब्राह्मण ! तुमने क्या-क्या देखा है और क्या-क्या सुना है ? सो कहो । ब्राह्मणोंके इस प्रकार कहने पर ब्राह्मण बोला कि हे प्रिये ! मैं हर्षने कारण कहनेके लिए समर्थ नहीं हूँ ९४॥ तदनन्तर कौतुकसे भरी ब्राह्मणोंने जब आदरके साथ बार-बार पूछा तब वह विप्र बोला कि हे आर्य ! जो आश्चर्य मैंने सुना है वह सुन ॥९५॥

मैं लक्ष्मणियों लानेके लिए उद्भूल गया था सो उसके समीप ही जहाँ सचन वन था वहाँ एक मनोहर नगरी दिखी ॥९६॥ मैंने उम नगरीके पास एक आभूषणोंसे विभूषित स्त्री देरी । जान पड़ता है कि मनोहर भाषण करनेवाली वह कोई देवी होगी ॥९७॥ मैंने उससे पूछा तो उसने कहा कि यह रामपुरी नामकी नगरी है, यहाँ राजा रामचन्द्र श्रावकोंके लिए बहुत भारी

ततोऽसौ कृपयाऽऽकृष्टा सुमाया नाम यक्षिणी । जगद् विप्रं परम त्वयेदं साहसं कृतम् ॥७२॥  
 अस्याः पुरः समासत्रां कथं त्वं भुवमागतः । आरक्षकैरलं घोरैर्नूनं नश्यति धीक्षितः ॥७३॥  
 अस्याः द्वारत्रयं पुण्याः दुष्प्रवेशं सुरैरपि । अद्भुतं सर्वदा वारैः रक्षकैः सुनियामकैः ॥७४॥  
 सिंहवाणशार्दूलतुल्यवक्त्रैर्महोऽज्वलैः । एभिर्विभीषिता मृत्युं मालुपा यान्त्यसशयम् ॥७५॥  
 पूर्वद्वारमदो यस्तु तस्य पश्यसि यान् यहिः । प्रासादानन्तिकानेतान् वलाकाद्वादनच्छरीन् ॥७६॥  
 मणितोरणमप्येषु विविधध्वजराजिषु । अर्हतामिन्द्रवन्दनानामपीषु प्रतियातनाः ॥७७॥  
 सामायिकं पुरस्कृत्य तामा यस्तवन नरः । नमोऽर्हन्सिद्धनिस्वानपूर्वं पठति भावतः ॥७८॥  
 गुरुपदेशयुक्तोऽसौ सम्यग्दर्शनरक्षितः । विशतीन्द्रककुब्जद्वारं हन्यते खनमस्कृतिः ॥७९॥  
 अणुव्रतधरो यो ना गुणशीलविभूषितः । तं रामः परया प्रीत्या वाञ्छितेन समर्चति ॥८०॥  
 ततस्तस्या वचः श्रुत्वा द्विजोऽसावमृतोपमम् । जगाम परम हर्षं लब्धोपाय धनागमे ॥८१॥  
 नमस्कारं च कृत्वाऽस्या भूयो भूयस्तुतिं तथा । रोमाञ्छोषितसर्वाङ्गः परमाद्भुतभावितः ॥८२॥  
 मुनेश्चारिन्द्ररस्य गन्वासक्तं कृताञ्जलिः । प्रणम्य शिरसाऽऽष्टच्छृद्दणुव्रतधरक्रियाम् ॥८३॥  
 ततस्तेन समुद्दिष्टं धर्मं सप्रतिवासिनाम् । स जप्राहानुयोगांश्च शुभ्राव चतुरः सुर्याः ॥८४॥  
 धनलोभाभिभूतस्य धर्मं सुभ्रूपतोऽस्य सः । प्रहणे परमार्यस्य परिणाममुपागतः ॥८५॥  
 अवगम्य ततो धर्मं द्विजोऽशोचत् सुमानसः । नाथ तेऽद्योपदेशेन चक्षुरन्मीलित मम ॥८६॥

तदनन्तर दयासे आकृष्ट हुई उस सुमाया नामकी यक्षिणीने ब्राह्मणसे कहा कि तूने यह साहस किया है ॥७२॥ तू इस नगरीकी समीपवर्ती भूमिमें कैसे आ गया ? यदि भयंकर पहें तुझे देख लेते तो तू अवश्य ही नष्ट हो जाता ॥७३॥ इस नगरीके तीन द्वारोंमें तो देवोंके प्रवेश करना कठिन है क्योंकि वे सदा सिंह, हाथी और शार्दूलके समान मुखवाले तेजस्वी, तथा कटोर नियन्त्रण रखनेवाले रक्तकोंसे अशून्य रहते हैं । इन रक्तकोंके द्वारा डरवाये मनुष्य निःसन्देह मरणको प्राप्त हो जाते हैं ॥७४-७५॥ इनके सिवाय जो वह पूर्व द्वार उसके बाहर समीप ही घने हुए बगलके पङ्क्तके समान कान्तिवाले सफेद-सफेद भवन त् रहा है वे मणिमय तोरणोंसे रमणीय तथा नाना ध्वजाओंकी पङ्क्तिसे सुशोभित जिन-म है । उनमें इन्द्रोंके द्वारा वन्दनीय अरहन्त भगवान्की प्रतिमाएँ हैं जो मनुष्य सामायिक कर 'अर्हत् सिद्धेभ्यो नमः' अर्थात् 'अरहन्त तथा सिद्धोंको नमस्कार हो' इस प्रकार कहता हुआ पूर्वके उन प्रतिमाओंका स्तवन पढ़ता है तथा निर्बन्ध-गुरुका उपदेश पाकर सम्यग्दर्शन करता है वही उस पूर्वद्वारमें प्रवेश करता है । इसके विपरीत जो मनुष्य प्रतिमाओंको नम नहीं करता है वह मारा जाता है ॥७६-७९॥ जो मनुष्य अणुव्रतका धारी तथा गुण और शं अलंकृत होता है, राम उसे बड़ी प्रसन्नतासे इच्छित वस्तु देकर संतुष्ट करते हैं ॥८०॥

तदनन्तर उसके अमृत तुल्य वचन सुनकर तथा धन प्राप्तिका उपाय प्राप्तकर वह परम हर्षको प्राप्त हुआ ॥८१॥ उसका समस्त शरीर रोमाञ्छोंसे सुशोभित हो गया तथा, हृदय अत्यन्त अद्भुत भावोंसे युक्त हो गया । यह उस स्त्रीको नमस्कार कर तथा वाग्-वार-स्तुति कर चारित्र्य पालन करनेमें शूर-वीर मुनिराजके पास गया और अञ्जलि बौध शिरसे कर उसने उनसे अणुव्रत धारण करनेवालोंकी क्रिया पूछी ॥८२-८३॥ तदनन्तर उसे बुद्धिमान् ब्राह्मणने मुनिराजके द्वारा उपदिष्ट गृहस्थ धर्म अङ्गीकृत किया तथा मुना ॥८४॥ पहले तो वह ब्राह्मण धनके लोभसे अभिभूत होकर धर्म श्रवण करना पर अब वास्तविक धर्म प्रहण करनेके भावको प्राप्त हो गया ॥८५॥ मुनिराजसे

स्वशरीरेऽपि निस्समा ये लुम्पन्ति न जानुचिन् । ते त्रिपरिग्रहा ज्ञेया मुक्तिरुच्यमृषिता ॥११५॥  
 परमुद्गतमद्दृष्टिं कुदृष्टिमलपरिता । सुरार्मां शुशुभे पर्या भरणाव बुधे परम् ॥११६॥  
 पादमुक्ते ततो नीग्या गुरोस्तस्यैव सादरम् । अणुजतानि मामोदा ब्राह्मणां तेन लम्बिता ॥११७॥  
 विज्ञाय कपिल रक्ष परम जिनशामने । कुलान्याशात्रिषोप्राणि विप्राणा भेजिरे गमम् ॥११८॥  
 मुनिमुपतनापस्य सम्प्राप्य सुदृढ मतम् । बभूवु धावकाम्ताया ऊचुर्यैव मुमुदय ॥११९॥  
 कर्मभारगुरुभूता मानोत्तानितमस्तका । स्तोत्रेन नरक घोरे न याता स्म प्रमादिन ॥१२०॥  
 अज्ञातमिदमप्राप्त जन्मान्तरशतेष्वपि । निनेद्गन्धामन बह्व वृष्ट्या प्रप्त मुनिर्मलम् ॥१२१॥  
 ध्यानाशुशुचिणाविदे मनकविद्वन्माहिता । स्वकर्मममिधो भावमपिवा तुहुमोऽनुना ॥१२२॥  
 इति केचिन् समाधाय मन मवेगनिभंरा । विरक्षा सर्वसंगेभ्यो बभूवु धमनोत्तमा ॥१२३॥  
 सागारधर्मरक्तसु कपिल परमक्रिय । कदाचिद् ब्राह्मणामूचे मदभिप्रायवतिनाम् ॥१२४॥  
 कान्ते रामपुरी किं नो ज्ञानोऽथ तमूजितम् । विशुद्धचेष्टिन् द्रष्टु राम शत्रावलोचनम् ॥१२५॥  
 आशापरापण नित्यमुपायगतमानमम् । दारिद्र्यवारिधौ मग्नमायुन्<sup>३</sup> बुद्धिगुणे ॥१२६॥  
 जनमुत्तारयत्येव किल भग्यानुकम्पक । इति कर्तिभ्रमन्वस्य निर्मलासहादकारिणी ॥१२७॥  
 अतिष्टैव गृहाणैव प्रिये पुण्यकरण्डकम् । करोम्यहमपि स्कन्धे सुकुमारनिम किशुम् ॥१२८॥

भोजन है न जो अपने पास परिग्रह रखते हैं तथा जो हस्तरूपी पात्रमें भोजन करते हैं ऐसे निर्मन्थ साधु ही ससार समुद्रसे पार करते हैं ॥११४॥ जो अपने शरीरमें भी निगूढ़ हैं तथा जो कभी बाह्य विषयोंमें नहीं लुभाते और मुक्तिके लक्षण अर्थात् चिह्न स्वरूप दिग्गम्बर मुद्रासे विभूषित रहते हैं उन्हें निर्मन्थ जानना चाहिये ॥११५॥ इस प्रकार जिसे सम्यग्दर्शन उपन्न हुआ था तथा जो मित्या दर्शनरूपी मलसे रहित थी ऐसी सुरार्मा नामकी ब्राह्मणी पतिके साथ बुध ग्रहके साथ भरणी नक्षत्रके समान सुरोभिन्त हो रही थी ॥११६॥

तदनन्तर उस ब्राह्मणने हृषीसे ब्राह्मणको उन्हीं गुणके पात्रमूलमें ले जाकर तथा आदर सहित नमस्कार कर अणुजत ग्रहण कराये ॥११७॥ जो पहले आशीर्विप साँपने समान अन्यन्त रूप थे ऐसे ब्राह्मणके कुल, कपिलनी जिनशासनने अनुरक्त जान कर शान्तिभाजनको प्राप्त हो गये ॥११८॥ उनमें जो मुमुद्विधे थे मुनिमुजत भगवान्का अत्यन्त सुदृढ मत प्राप्त कर श्रावक हो गये तथा इस प्रकार बोले कि हम लोग कर्मके भारसे वजनदार थे, अहङ्कारसे हमारे मस्तक ऊपर उठ रहे थे और हम निरन्तर प्रमादसे युक्त रहते थे परन्तु अत्र तिनधर्मके प्रसादसे भयङ्कर नरकमें नहीं जायेंगे ॥११९-१२०॥ इस जिनशासनको हमने सैकड़ा जन्मोंमें भी नहीं जाना, न प्राप्त किया किन्तु आज अतिशय निर्मल यह जिनशासन रूपी ब्रह्म बड़े कष्टसे प्राप्त किया है ॥१२१॥ अत्र हम मनरूपा होवाके साथ मिलकर भाज रूपी धाँके साथ अपनी कर्मरूपा समिधाओंकी ध्यानरूपी देदीप्यमान अग्निमें होमनेगे ॥१२२॥ इस प्रकार मनको स्थिर कर सर्वेगसे भरे हुए कितने ही ब्राह्मण सर्वपरिग्रहसे विरक्त हो उत्तम मुनि हो गये ॥१२३॥ परन्तु कपिल श्रावकधर्ममें आसक्त रहकर ही उत्तम आचरण करता था । एक दिन वह उत्तम अभिप्राय रखनेवाली ब्राह्मणी से बोला ॥१२४॥ कि हे प्रिये ! आन हम लोग, अतिशय बलवान्, विशुद्ध चेष्टाके धारक तथा कमलके समान नेत्रोंसे युक्त उन श्रीरामके दर्शन करनेके लिए रामपुरी क्यों नहीं चलें ? ॥१२५॥ वे भय्य जीवोपर अनुकम्पा करनेवाले हैं तथा जो निरन्तर आशामें तत्पर रहता है, जिसका मन निरन्तर धनोपार्जनके उपाय जुटानेमें ही लगा रहता है, जो दरिद्रतारूपी मनुद्रमं मन है, और पैत भरना भी जिसे कठिन है ऐसे दरिद्र मनुष्यका वे उद्धार करते हैं, इस प्रकार आनन्ददायिनी नामकी निर्मल कीर्ति सर्वत्र फैल रही है ॥१२६-१२७॥ हे प्रिये ! उठो, यह फूलका पिटारा तुम ले



ततो गत्वा मया साधोजिनेन्द्रवचने श्रुतम् । आत्मा मे तर्पितस्तेन कुट्टिपरितापितः ॥१००॥  
 मुनयो यं समाश्रित्य तप्यन्ते सुधियस्तपः । स्युस्त्वा परिग्रहं सर्वं मुक्यालङ्घनलालसाः ॥१०१॥  
 सोऽर्हदमो मया लब्धस्त्रैलोक्यैकमहानिधिः । अमी यतो बहिर्भूताः किलरयन्ते त्वग्न्यवादिनः ॥१०२॥  
 यथाभूतो मुनेर्धर्मः श्रुतो धर्मेण तादृशः । ब्राह्मण्यै कथितः सर्वो मलवर्जितचेतसा ॥१०३॥  
 ब्राह्मणो विनिश्चयैतं सुशर्मा वाक्यमग्रवीत् । मयापि त्वत्प्रसादेन लब्धो धर्मो जिनेदितः ॥१०४॥  
 विधेः परय मया योग मोहाद् विपफलार्थिना । वीच्छेनापि त्वया लब्धमर्हन्मरसायनम् ॥१०५॥  
 मयासीन्मन्दर्षाभाजा मणिर्हस्तगतो यथा । निजाङ्गणगतः साधुरपमानमुपाहृतः ॥१०६॥  
 उपवासपरिश्रान्तश्रमणं तं निरम्बरम् । निराकृत्याश्रवेलायां मार्गोऽन्यस्यैव वीक्षितः ॥१०७॥  
 अर्हन्तं समतिक्रम्य पाकशासनवन्दितम् । उमोतिष्कण्यन्तरादीनां शिरसा प्रणतिः कृता ॥१०८॥  
 अहिसानिर्मल सारमर्हदमरसायनम् । अज्ञानात् समतिक्रम्य विपमं भक्षितं विपम् ॥१०९॥  
 मानुषद्वीपमासाद्य त्वन्वा साधुपरीक्षितम् । धर्मरत्न कृतः कष्टं विभोतकपरिग्रहः ॥११०॥  
 सर्वमन्नप्रवर्तेषु दिवाराशौ च भोजिषु । अत्रतेषु विशीलेषु दत्त फलविवर्जितम् ॥१११॥  
 य क्लियातिथिवेलायामागतं विभयोचितम् । यो नाचैयति दुर्बुद्धिस्तस्य धर्मो न विद्यते ॥११२॥  
 परित्यक्तोऽसन्नतिथिः सर्वस्वैकान्तनिःस्पृहः । निकेतरहितः सोऽयनतिथिः श्रमणः स्मृतः ॥११३॥  
 येषां न भोजनं हस्तं नाप्यासन्नपरिग्रहः । ते तारयन्ति निर्ग्रन्थाः पाणिपात्रपुटाशिनः ॥११४॥

धन देते हैं ॥६६॥ तदनन्तर मैंने मुनिराजके पास जाकर जिनेन्द्र भगवान्के वचन सुने उससे मेरी आत्मा जो कि मिथ्या दर्शनसे संतप्त थी अत्यन्त सन्तुष्ट हो गई ॥१००॥ मुक्तिके आलिङ्गनकी लालसा रखनेवाले बुद्धिमान् मुनि जिस धर्मका आश्रय ले समस्त परिग्रहका त्यागकर तप करते हैं वह अरहन्तका धर्म मैंने प्राप्त कर लिया । वह धर्म तीनों लोकोंकी महानिधि है, इससे बहिर्भूत जो अन्यवादी हैं वे व्यर्थ ही क्लेश उठाते हैं ॥१०१-१०२॥ तदनन्तर उस धर्मात्माने मुनिराजसे जैसा वास्तविक धर्म सुना था वह सब शुद्ध हृदयसे उसने ब्राह्मणोंके लिए कह दिया ॥१०३॥ उसे सुन सुशर्मा ब्राह्मणी ब्राह्मणसे बोली कि मैंने भी तुम्हारे प्रसादसे जिनेन्द्र प्रतिपादित धर्म प्राप्त कर लिया है ॥१०४॥ भैरा यह भाग्यका योग तो देखो कि जो मोह वश विपफलकी इच्छा कर रहे थे तथा जिसे तद्विषयक रज्ज्वमात्र भी इच्छा नहीं थी ऐसे तुमने अर्हन्तका नामरूपी रसायन प्राप्त कर लिया ॥१०५॥ जिस प्रकार किसी भूर्खके हाथमें मणि आ जाय और वह तिरस्कार कर उसे दूर कर दे उसी प्रकार मुझ मूर्खके गृहाङ्गणमें साधु आये और मैंने उनका अपमान कर उन्हें दूर कर दिया ॥१०६॥ उस दिन आहारके समय उपवाससे सिन्न दिग्गन्धर मुनि वर आये सो उन्हें हटा कर मैंने दूसरे साधुका मार्ग देखा ॥१०७॥ जिन्हें इन्द्र भी नमस्कार करता है ऐसे अर्हन्तको छोड़कर मैंने ज्योतिषी तथा ज्यन्तरादिक देवोंको शिर भुका-भुकाकर नमस्कार किया ॥१०८॥ अर्हन्त भगवान्का धर्मरूपी रसायन अहिंसासे निर्मल तथा सारभूत है सो उसे छोड़कर मैंने अज्ञान वश विपम विपका भक्षण किया है ॥१०९॥ बड़े खेदकी बात है कि मैंने मनुष्य द्वीपको पाकर साधुओं द्वारा परीक्षित धर्मरूपी रत्न तो छोड़ दिया और उसके बदले बहेड़ा अङ्गीकार किया ॥११०॥ जो इन्द्रियोंके विषयोंमें प्रवृत्त है, रात दिन इच्छा-नुसार खाते हैं, व्रत रहित हैं तथा शीलसे शून्य हैं, ऐसे साधुओंके लिए मैंने जो कुछ दिया वह सब निष्फल गया ॥१११॥ जो दुर्बुद्धि मनुष्य आहारके समय आये हुए अतिथिका अपनी सामर्थ्यके अनुसार सन्मान नहीं करता है—उसे आहार आदि नहीं देता है उसके धर्म नहीं है ॥११२॥ जिसने उत्सवकी तिथिका परित्याग कर दिया है, जो सर्व प्रकारके परिग्रहसे त्रिलुल निःस्पृह है तथा घरसे रहित है ऐसा साधु ही अतिथि कहलाता है ॥११३॥ जिनके हाथमें न

स्वशरीरेऽपि निम्नगा ये लुम्पन्नि न जानुन्ति । ते निरपरेप्रहा ज्ञेया मुनिश्चामूर्तिना ॥११५॥  
 पद्मसुन्दरसदृशः कुण्डलिनः शक्तिः । सुगमां शुकुमे पार्या भरणाय बुधे परम् ॥११६॥  
 पादभूके ततो नीचा गुरोर्नस्वयं वादरम् । अशुनतानि मामोदा ब्राह्मणी तेन लम्बिता ॥११७॥  
 विज्ञाय कपिल रक्त परम जिनशासनने । कुलाभ्यासोऽपिप्राणि विनागां भेजिरे गमम् ॥११८॥  
 मुनिमुवतनायस्य मर्यादाय मुदं मतम् । यधुःशुः शारङ्गर्णामा ऊचुरेव सुदुदय ॥११९॥  
 कर्मभारगुरुभूता मानोत्तानितमस्तका । स्तोत्रेन नरक घोरं न पाता रम. प्रमादिन ॥१२०॥  
 भजातमिदमप्राप्त जन्मान्तरशतेऽपि । निनेन्द्रजामन ब्रह्म कृष्णान् प्राप्त मुनिर्मन्त्रम् ॥१२१॥  
 ध्यानशुशुभ्रिगादिदे मनःशुशुभ्रिमाहिता । स्वकर्ममभिधो भावमपिवा जुहुमोऽनुना ॥१२२॥  
 इति केचिद् समाधाय मन. स्ववेगनिर्भरा । विरक्ता सर्वमोक्षो यधुषु भ्रमोत्तमा ॥१२३॥  
 सागारधर्मराम्नु कपिल. परमक्रियः । कदाचिद् ब्राह्मणोमूचे मदभिप्रायवर्तिनाम् ॥१२४॥  
 कान्ते रामपुरीं किं नो ब्रजामोऽथ तमून्तम् । विशुद्धचेष्टिन् द्रष्टु रामं श्रात्रोवलोचनम् ॥१२५॥  
 आशापरायण नित्यमुपायगतमानमम् । दारिद्र्यवारिधीं मग्नमाद्यन् कुशिररणे ॥१२६॥  
 जनमुत्तारयत्येव किञ्च भव्यानुकम्पक । इति कौर्तिभ्रमत्यस्य निर्मलहृद्दकारिणी ॥१२७॥  
 लक्ष्मिदेव गृहगौरं प्रिये पुष्पकरण्डकम् । करोम्यहमपि स्कन्धे सुकुमारमिम शियम् ॥१२८॥

भोजन है न जो अपने पास परिग्रह रखते हैं तथा जो हस्तरूपी पात्रमें भोजन करते हैं ऐसे निर्मन्थ साधु ही संसार समुद्रसे पार करते हैं ॥११४॥ जो अपने शरीरमें भी निर्ग्रह हैं तथा जो कभी बाह्य विषयोंमें नहीं लुभाते और मुक्तिके लक्षण अर्थात् चिह्न स्वरूप दिग्म्वर मुद्रामें विभूषित रहते हैं उन्हें निर्मन्थ जानना चाहिये ॥११५॥ इस प्रकार जिसे सम्यग्दर्शन उपन्न हुआ था तथा जो मिथ्या दर्शनरूपी मलसे रहित था ऐसी सुरामा नामकी ब्राह्मणी पतिसे साथ बुध ग्रहके साथ भरणी नक्षत्रके समान सुशोभित हो रही थी ॥११६॥

तदनन्तर उस ब्राह्मणने हर्षसे ब्राह्मणको उन्हीं गुरुके पादमूलमें ले जाकर तथा आदर सहित नमस्कार कर अणुवत् ग्रहण कराये ॥११७॥ जो पहले आशीर्षि सौंपके समान अत्यन्त दम थे ऐसे ब्राह्मणोंके डुल, कपिलको जिनशासनमें अनुरक्त जान कर शान्तिभायको प्राप्त हो गये ॥११८॥ उनमें जो सुमुद्रि थे वे मुनिसुवत भगवान्का अत्यन्त सुदृढ मत प्राप्त कर श्रावक हो गये तथा इस प्रकार बोले कि हम लोग कर्मोंके भारसे वजनदार थे, अहङ्कारसे हमारे मस्तक ऊपर उठ रहे थे और हम निरन्तर प्रमादसे युक्त रहते थे परन्तु अब जिनयमके प्रमादसे भयङ्कर नरकमें नहीं जायेंगे ॥११९-१२०॥ इस जिनशासनको हमने संकड़ा जन्मोंमें भी नहीं जाना, न प्राप्त किया किन्तु आज अतिशय निर्मल यह जिनशासन रूपी ब्रह्म बड़े कष्टसे प्राप्त किया है ॥१२१॥ अब हम मनरूपी होताके साथ मिलकर भाव रूपी धाँके साथ अपनी कर्मरूपी समिधाओंको ध्यानरूपी देवीप्यमान अग्निमें होमने ॥१२२॥ इस प्रकार मनको स्थिर कर संवेगमें भरे हुए कितने ही ब्राह्मण सर्वपरिग्रहसे विरक्त हो उत्तम मुनि हो गये ॥१२३॥ परन्तु कपिल श्रावकधर्ममें आसक्त रहकर ही उत्तम आचरण करता था । एक दिन वह उत्तम अभिप्राय रखनेवाली ब्राह्मणी से बोला ॥१२४॥ कि हे प्रिये ! आज हम लोग, अतिशय बलवान्, विशुद्ध चेष्टाके धारक तथा कमलके समान नेत्रोंसे युक्त उन श्रीरामके दर्शन करनेके लिए रामपुरी क्यों नहीं चलें ? ॥१२५॥ वे भव्य जीवोंपर अनुरूपता करनेवाले हैं तथा जो निरन्तर आशामें तत्पर रहता है, जिसका मन निरन्तर धनोपार्जनके उपाय जुटानेमें ही लगा रहता है, जो वरिद्रवारूपी समुद्रमें मग्न है, और पेट भरना भी जिसे कठिन है ऐसे वरिद्र मनुष्यका वे उद्धार करते हैं, इस प्रकार आनन्ददायिनी उनकी निर्मल कौर्ति सर्वत्र फैल रही है ॥१२६-१२७॥ हे प्रिये ! उठो, यह फूलाका विटारा तुम ले

एवमुक्त्वा तथा कृत्वा दम्पती सम्पदान्निवती । स्वशक्त्या गन्तुमुद्युक्तौ शुद्धवेपथुभूपितौ ॥१२६॥  
 ब्रजतोश्च तयोरुभ्रा तत्तस्थुः पद्मगां पथि । दद्यात्करालवक्त्राश्च वेतालास्तारहासिनः ॥१२७॥  
 एवमार्दानि वस्त्रानि भीषणान्यवलोक्य तौ । निष्कम्पहृदयौ भूया स्तुतिमेतानुपागती ॥१२९॥  
 नमस्त्रिलोकवद्येभ्यो जिनेभ्यः सतत त्रिधा । उत्तर्णभवपङ्केभ्यो दातृभ्यः परमं शिवम् ॥१३२॥  
 एतयोः स्तुवतोरेवं विदित्वा जिनभक्तिताम् । भेजिरे प्रशमं यथास्ती च प्राप्ती जिनालयम् ॥१३३॥  
 ततो नभो निपद्याथा इत्युक्त्वा रचिताञ्जली । कृत्वा प्रदक्षिण स्तोत्रमुदचीचरतमिदम् ॥१३४॥  
 विहाय लौकिक मार्गं महादुर्गतिदुःखदम् । भवन्तं शरण नाथ चिरेण समुपागतः ॥१३५॥  
 चतुर्भिर्वि शति युक्तामचरणं महात्मनाम् । उत्सर्पिण्यवसर्पिण्योर्वन्दे भूतभविष्यताम् ॥१३६॥  
 पद्मस्रैरावतास्येषु भरतास्येषु पद्मसु । जिनाश्रमामि वास्येषु ताश्रमामि जिनांश्चिधा ॥१३७॥  
 यैः ससारममुदस्य कृते तरणतारणे । त्रिकाल सर्ववास्येषु ताश्रमामि जिनांश्चिधा ॥१३८॥  
 मुनिसुवतनाथाय तस्मै भगवते नमः । त्रैलोक्ये शासनं यस्य सुविशुद्ध प्रकाशते ॥१३९॥  
 इति कृत्वा स्तुति जानुमस्तकस्पृष्टभूतलौ । नेमनुस्तौ जिनं भक्त्या परिहृष्टतनूह्यौ ॥१४०॥  
 ततोऽसी कृनकर्तव्यो रचैः सौम्यैः प्रियंवदे । अनुज्ञातः सम पत्न्या द्रष्टु हलिनैमुद्ययौ ॥१४१॥  
 राजमार्गंऽद्विसकाशान् प्रासादान् विमलस्विव । द्वालयैः दर्शयन् याति दिव्यनारासमानुलान् ॥१४२॥

लो और मैं इस सुकुमार वक्त्रको कन्धे पर रख लेता हूँ ॥१२८॥ इस प्रकार कह कर तथा विसा ही कर हर्षसे भरे दोनो दम्पती जानेके लिए तत्पर हुए । अपनी शक्तिके अनुसार वे निर्मल वेपसे विभूषित थे ॥१२९॥ जब वे चले तो उनके मार्गमें उग्र सर्प विभूषित थे ॥१२९॥ जब वे चले तो उनके मार्गमें उग्र सर्प फणा तानकर रड़े हो गये तथा जिनके मुख डोंटोंसे विकराल थे और जो जोर-जोरसे हँस रहे थे ऐसे वेताल मार्गमें आड़े आ गये ॥१३०॥ परन्तु इन सब भयङ्कर वस्तुओंको देखकर भी उनके हृदय निष्कम्प रहे । वे निश्चल चित्त होकर यही स्तुति पढ़ते जाते थे कि ॥१३१॥ 'जो त्रिलोक द्वारा वन्दनीय है, जो भयङ्कर संसाररूपी कर्दमसे पार हो चुके हैं तथा जो उल्कृष्ट मोक्ष प्रदान करनेवाले हैं ऐसे जिनेन्द्र भगवान्को मन, वचन, कायसे सदा नमस्कार हो' ॥१३२॥ इस प्रकार स्तुति करते हुए उन दोनोकी जिन-भक्तिको जान कर यत् शान्त हो गये और वे रामपुरीके जिनालयमें पहुँच गये ॥१३३॥ तदनन्तर 'भगवान्की वसतिके लिए नमस्कार हो' यह कहकर दोनोने हाथ जोड़े और प्रदक्षिणा देकर दोनो ही यह स्तुति पढ़ने लगे ॥१३४॥ हे नाथ ! महादुर्गतिके दुःख देनेवाले लौकिक मार्गको छोड़कर हम चिरकालके बाद आपकी शरणमें आये हैं ॥१३५॥ उत्सर्पिणी और अवसर्पिणीके वर्तमान तथा भूत-भविष्यत् सम्बन्धी तीर्थङ्करोंकी चौबीसीको हम नमस्कार करने हैं । पाँच भरत और पाँच ऐरावत क्षेत्रोंमें जो तीर्थङ्कर हैं, हो चुके हैं अथवा हांगे उन सबको हम मन, वचन, कायसे नमस्कार करते हैं ॥१३६-१३७॥ जो संसार समुद्रसे स्वयं पार हुए हैं तथा जिन्होंने दूसरोको पार किया है ऐसे समस्त क्षेत्रों सम्बन्धी तीर्थङ्करोंको हम त्रिकाल नमस्कार करते हैं ॥१३८॥ उन मुनिसुवत भगवान्को नमस्कार हो जिनका निर्मल शासन तीनों लोकोंमें प्रकाशमान हो रहा है ॥१३९॥ इस प्रकार स्तुति कर घुटनों और मस्तकसे पृथिवीतलका स्पर्श करते हुए उन्होंने जिनेन्द्र भगवान्को नमस्कार किया । उस समय भक्तिके कारण उन दोनोके शरीरमें रोमाञ्च उठ रहे थे ॥१४०॥

तदनन्तर वन्दनाका कार्य पूर्ण कर चुकनेके बाद शान्त तथा मधुरभाषी रत्नकोंने जिसे आज्ञा दे दी थी ऐसा कपिल ब्राह्मण अपनी स्त्रीके साथ रामके दर्शन करनेके लिए चला ॥१४१॥ वह, राजमार्गमें पर्वतोंके समान ऊँचे, निर्मल कान्तिके धारक, तथा दिव्य त्रियोंसे भरे जो

ऊचे च कुन्दसकरीं सर्वकामगुणान्वितै । राजते मवनैर्यस्य पुरीर्य स्वर्गमन्त्रिभा ॥१४३॥  
 तस्यैतद्भवन् भद्रे प्रान्तप्रासादावेष्टितम् । अभिरामस्य रामस्य पुर्यां मध्ये विराजते ॥१४४॥  
 प्रुवन्निति महाहृष्ट स विवेश च तदगृहम् । इष्ट्वा च लक्ष्मण दूराद्भृशमाकुलता गत ॥१४५॥  
 वृष्यौ सञ्जातकपरच सोऽयमिन्द्रिवरभ्रम । व्यथितो दुविदग्धोऽह चित्रैर्येन तदावधै ॥१४६॥  
 कर्णयोरतितु खानि भाषितानि महाखले । तानि कृत्वा तदा पापे निह्ने निस्सर साम्प्रतम् ॥१४७॥  
 किं करोमि क्व गच्छामि विवर प्रविशामि किम् । अस्मिन् शरणहानस्य भवेच्छरणमद्य क ॥१४८॥  
 अवस्थितोऽयमत्रेति यदि मे विदितो भवेन् । समुल्लप्योत्तरामाशय देशत्याग कृता भवेत् ॥१४९॥  
 प्वमुद्वेगमापन्नो विहाय ब्राह्मणो द्विज । प्रपलायितुमुद्युक्तौ लक्ष्मणेन विलोकित ॥१५०॥  
 स्मिन्वा च स जगादाय कुतो विप्र समागत । वनसर्वाधिनामेव किमप्याकुलतामित ॥१५१॥  
 समाश्वासमिम नावा द्रुतमानय त द्विजम् । पर्यामस्तावदेतस्य चक्षित किमय वदेत् ॥१५२॥  
 न भेत्तय न भेत्तय निवर्तस्वेति चोदित । अधिगम्य समाश्वास निवृत्त स्वलितकम् ॥१५३॥  
 उपसृत्य भय स्वस्ता प्रसृतो धवलाम्बर । पुण्याञ्जलिस्तयोरग्रे स्थिचा स्वस्तायशब्दयन् ॥१५४॥  
 ततो लब्धासनासानो निक्कन्त्याङ्गनो द्विज । ऋग्भि स्तवनदत्ताभरस्तोपाद् रामलक्ष्मणौ ॥१५५॥  
 तत पद्मो जगादैव ता न कृत्वा विमानताम् । वद साम्प्रतमागत्य कस्मात् पूजयसि द्विज ॥१५६॥  
 साऽश्र्वर्वात्र मया ज्ञात एव पञ्चममहेस्वर । मोहाद्विमानितस्तेन भस्मच्छन्न इवानिल ॥१५७॥

महल मिलते थे उन्हें अपनी स्त्रीके लिए दिखाता जाता था ॥१४२॥ उसने स्त्रीसे कहा कि हे भद्रे ! कुन्दके समान उज्ज्वल तथा सर्व मनोरथोंको पूर्ण करनेवाले गुणासे सहित, भयनासे जिनकी यह स्त्री तुल्य नगरी मुशोभित हो रहा है उन मनोहर रामका यह भयन समापवर्ता अन्य महलासे विरा कैसा सुन्दर जान पड़ता है ? ॥१४३-१४४॥ इस प्रकार कहते हुए उस अतिशय हर्षित ब्राह्मणने रामके भजनमें प्रवेश किया । वहाँ यह दूर से ही लक्ष्मणको देखकर अत्यन्त आकुलताको प्राप्त हुआ ॥१४५॥ उसके शरीरमें कँपकँपी बूटने लगी । वह विचार करने लगा कि नील कमलके समान प्रभावाला यह वहाँ पुरुष है जिसने उस उसय मुक्त मूर्तको नाना प्रकार के वधसे दुःखी किया था ॥१४६॥ उसकी बोलती बन्द हो गई । वह मन ही मन अपनी निह्नासे कहने लगा हे महादुष्टे ! हे पापे ! उस समय तो तुने कानाके लिए अत्यन्त दुःखदायी वचन कहे अत्र चुप क्यों है ? याहर निकल ॥१४७॥ वह मन ही मन विचार करने लगा कि क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? किस मिलमें घुस जाऊँ ? आत्र मुक्त शरणहानका यहो कौन शरण होगा ? ॥१४८॥ यत्रि मुझे मालूम होता कि यह यहाँ ठहरा है तो मैं उत्तर दिशाको लौंघकर देशत्याग ही कर देता ॥१४९॥ इस प्रकार उद्वेगको प्राप्त हुआ वह ब्राह्मण, ब्राह्मणको छोड़ भागनेके लिए तैयार हुआ ही था कि लक्ष्मणने उसे देख लिया ॥१५०॥ हँसकर लक्ष्मणने कहा कि यह ब्राह्मण कहाँसे आया है ? जान पड़ता है कि इसका पोषण वनमें ही हुआ है, यह इस तरह आकुलताको क्यों प्राप्त हुआ है ? ॥१५१॥ सान्त्वना देकर उस ब्राह्मणको शीघ्र ही लाओ हम इसकी चेष्टाको देखते तथा मुनगे कि यह क्या कहता है ? ॥१५२॥ 'नहीं डरना चाहिये, नहीं डरना चाहिये, लौटो', इस प्रकार कहने पर वह सान्त्वनाका प्राप्त कर लडखडाते पेरा वापिस लौटा ॥१५३॥

तदनन्तर श्वेत वस्त्रको धारण करनेवाला वह ब्राह्मण पास जाकर निर्भय हो राम लक्ष्मणके सम्मुख गया तथा अञ्जलिमें पुष्प रखकर उनके सामने खडा हो 'स्वस्ति' शब्दका उच्चारण करने लगा ॥१५४॥ तदनन्तर जो प्राप्त हुए आसनपर बैठा था और पास ही जिसकी स्त्री बैठी थी ऐसा यह ब्राह्मण स्तवन करनेमें समर्थ ऋचाआके द्वारा रामलक्ष्मणकी स्तुति करने लगा ॥१५५॥ स्तुतिके बाद रामने कहा कि हे ब्राह्मण ! उस समय हमलोगोंका वैसा तिरस्कार कर अब इस समय आकर पूजा क्या कर रहे हो सो तो बताओ ॥१५६॥ ब्राह्मणने कहा हे देव !

स्थितिरेवा जगन्नाथ लोके स्थावरजङ्गमे । धनवान् पूज्यते नित्य यथाद्विष्यो हिमागमे ॥१५८॥  
 अतुना त्व मया ज्ञात सोऽसि नान्य कदाचन । द्रविणानाह पूज्यन्ते न भवान् पद्म पूज्यते ॥१५९॥  
 निरयमर्थयुत देव मानयन्ति जना जनम् । त्यजन्त्यर्थपरित्यक्त निष्प्रयोजनसौहृदम् ॥१६०॥  
 यस्यार्थास्तस्य मित्राणि यस्यार्थास्तस्य बान्धवा । यस्यार्था स पुमाल्लोके यस्यार्था स च पण्डित ॥१६१॥  
 अर्थेन विप्रहीनस्य न मित्र न सहोदर । तस्यैवार्थसमेतस्य परोऽपि स्वजनायते ॥१६२॥  
 मार्थी धर्मेण यो युक्तो सो धर्मो यो दयान्वित । सा दया निर्मला ज्ञेया मास यस्या न भुज्यते ॥१६३॥  
 मासाशनाङ्घ्रितृत्ताना सर्वेषा प्राणधारिणाम् । अन्या मूलेन सम्पन्ना प्रशस्यन्ते निवृत्तय ॥१६४॥  
 राजन् विचित्ररूपोऽय लोको मानुषलक्षित । मादशो ज्ञायते नैव यथाभूतोऽत्र यो जन ॥१६५॥  
 आस्ता तावद्भवानत्र वन्द्यते ये भवद्विधे । पराभव विमूढेभ्यो लभन्ते तेऽपि साधव ॥१६६॥  
 पूर्वं सन कुमाराख्य किं ते ज्ञातो न चक्रभृत् । महर्दय सुरा यस्य रूप द्रष्टुमिहागता ॥१६७॥  
 सोऽपि शामण्यमासाद्य सम्प्राप्त परिभूतताम् । पर्यटत्र व्वचिल्लेभे भिक्षामाचारकोविद् ॥१६८॥  
 वनस्पयुपर्जाविन्त्या तपित सोऽन्यदा मुनि । पद्माश्रयं गुणैश्वर्यमाददे विजये पुरे ॥१६९॥  
 सुभूमश्चाभृद् भू वा कर कृकभास्वरम् । केयूरभूपितभुजो वदरार्थमडौक्यत् ॥१७०॥  
 वदर नैकमप्यस्मै नि स्वोऽसात्रददात्त । अनभिज्ञो विशेषस्य विशेष कमवाप्तवान् ॥१७१॥

मैंने नहीं जाना था कि आप प्रच्छन्न महेश्वर हो इसीलिए भस्मसे आच्छादित अग्निके समान मोहवश मुझसे आपका अनादर हो गया ॥१५७॥ हे जगन्नाथ ! चराचर विश्वकी यही रीति है कि शीत ऋतुमें सूर्यके समान धनवान्की ही सदा पूजा होती है ॥१५८॥ यद्यपि इस समय मैं जानता हूँ कि आप वही हैं अन्य नहीं फिर भी आपकी पूजा हो रही है सो हे पद्म ! यहाँ यथार्थमें धनकी ही पूजा हो रही है आपकी नहीं ॥१५९॥ हे देव ! लोग निरन्तर धनवान् मनुष्यका ही सम्मान करते हैं और जिसके साथ मित्रताका प्रयोजन जाता रहा है ऐसे धनहीन मनुष्यको छोड़ देते हैं ॥१६०॥ जिसने पास धन है उसके मित्र हैं, जिसके पास धन है उसके बान्धव हैं, जिसके पास धन है लोकमें वह पुरुष है और जिसके पास धन है वह पण्डित है ॥१६१॥ जत्र मनुष्य धनरहित हो जाता है तत्र उसका न कोई मित्र रहता है न भाई ! पर वही मनुष्य जन धनसहित हो जाता है तो अन्य लोग भी उसके आरम्य बन जाते हैं ॥१६२॥ धन वही है जो धर्मसे सहित है, धर्म वही है जो दयासे सहित है और निर्मल दया वही है जिसमें मास नहीं रखा जाता ॥१६३॥ मास भोजनसे दूर रहनेवाले समस्त प्राणियोंके अर्थ त्याग चूँकि मूलसे सहित रहते हैं इसलिए ही उनका प्रशसा होती है ॥१६४॥ हे राजन् ! यह मनुष्य लोक विचित्र है इसमें मेरे जैसे लोगको तो कोई जानता ही नहीं है ॥१६५॥ अथवा आपका यात जाने दीजिये आप जैसे लोग जिनकी वन्दना करते हैं वे साधु भी मूर्ख पुरुषोंसे पराभव प्राप्त करते हैं ॥१६६॥ क्या आप नहीं जानते कि पहले एक ऐसे सनत्कुमार चक्रवर्ती हो गये हैं जिनका रूप देरनेके लिए बड़ी नदी ऋद्धियाको धारण करनेवाले देव आये थे परन्तु वे भी मुनिपद धारणकर पराभवको प्राप्त हुए । आचार शास्त्रके जाननेमें निपुण वे मुनिराज ध्रमण करते रहे परन्तु उन्हें वही भिक्षा नहीं मिली ॥१६७-१६८॥ फिर अन्य समय विजयपुर नगरमें वनस्पतिसे आर्चीविका करनेवाली एक स्त्रीने आहार देकर उन्हें सन्तुष्ट किया और पद्माश्रयंरूपी गुणांका ऐश्वर्य प्राप्त किया ॥१६९॥ तिनकी भुजा वाजूनन्दसे रिभूपित थी ऐसे सुभूमने चक्रवर्ती होकर अपना यलयविभूपित हाथ बेरके लिए बड़ाया परन्तु यह द्रिष्ट है यह ममभरर उनके लिए किसीने एक बेर भी नहीं दिया सो ठाक ही है क्याकि विजयको नहीं

अथमन्यश्च विवशो जनै स्वकृतभोगिभि । न योऽवगम्यते यत्र न स तत्र जनोऽचर्यते ॥१७२॥  
 न कृता मन्दभागेन कस्माद्भ्यागतक्रिया । तदा मयेति मेऽद्यापि तप्यते मानम मृशम् ॥१७३॥  
 रूपमेवमल कान्त युष्माकमवलोकयन् । मृश क्रुद्धोऽपि को नाम न यथावतिविस्मयम् ॥१७४॥  
 एवमुक्त्वा शुचा प्रप्त रुदन्त कपिल गिरा । शुभयासान्वयद् राम सुशर्माण च जानका ॥१७५॥  
 ततो हेमघग्गमोभि किङ्क्रे राघवाज्ञया । कपिल धावद्-प्रीया स्नापित सह भार्यया ॥१७६॥  
 परम भानितश्चात्र वस्त्रै रत्नैश्च भूषित । सुभूरिधनमादाय जगाम निजमालयम् ॥१७७॥  
 अनाना विस्मयकर सर्वोपकरणान्वितम् । भोग यद्यपि दातोऽयं तथापि मुविचक्षण ॥१७८॥  
 सन्मानविशिखैर्विद्धो वष्टो गुणमहोरगै । उपचारहतात्मासौ धृति न लभते द्विज ॥१७९॥  
 दध्नी चाह पुरा यत्र स्कन्धन्यस्तैन्धमारक । यथा शोषितदेह स तृपितोऽयन्तदुर्विध ॥१८०॥  
 ग्रामे तत्रैव जातोऽस्मि पश्य यद्याधिपोपम । रामदेवप्रसादेन चिन्तातु प्रविचरित ॥१८१॥  
 आर्मान्मे शाणंपतितमनेकच्छिद्रजर्जरम् । काकायशुचिसल्लिप्त गृह गोमयवनितम् ॥१८२॥  
 अधुना धेनुभिर्व्यास बहुप्रासादसङ्कलम् । रामदेवप्रसादेन प्राकारपरिमण्डलम् ॥१८३॥  
 हा मया पुण्डरीकाक्षी भ्रातरौ गृहमागता । निर्भस्वितौ विना दोष तौ मृगाङ्गनिभानतौ ॥१८४॥

जाननेवाला मनुष्य किसी विशेषको कन प्राप्त हुआ है ? ॥१७०-१७१॥ यह अथवा और कोई-सभी लोग, रचकृत कर्मको भोगनेवाले मनुष्योंसे निवश हैं । जिस मनुष्यका जहाँ ज्ञान नहीं वहाँ उसकी अर्चा नहीं होती ॥१७२॥ मुझ मन्दभाग्यने उस समय आपकी आतिथ्य क्रिया क्या नहीं की ? यह विचारकर आज भी मेरा मन अत्यन्त सन्तापको प्राप्त है ॥१७३॥ आपके अतिशय सुन्दर रूपको देखनेवाला मनुष्य ही अत्यन्त आश्चर्यको प्राप्त नहीं होता किन्तु आपके प्रति अत्यन्त प्रोध प्रकट करनेवाला पुरुष भी ऐसा कौन है जो अत्यन्त आश्चर्यको प्राप्त नहीं हुआ हो ॥१७४॥ इस प्रकार कहकर वह कपिल ब्राह्मण शोकान्तांत हो रोने लगा, तब रामने शुभ वचनोंसे उसे सान्त्वना दी और सीताने उसको स्त्री मुशर्मको समझाया ॥१७५॥

तदनन्तर रामकी आह्लासे किंकराने भार्या सहित कपिल श्रावकको सुवर्ण घटोमें रक्खे हुए जलसे श्रौतिपूर्वक स्नान कराया ॥१७६॥ उच्छुद्ध भोजन कराया और वस्त्र तथा रत्नोंसे उसे अलङ्कृत किया । तदनन्तर वह बहुत भारी धन लेकर अपने घर वापिस गया ॥१७७॥ यद्यपि वह बुद्धिमान ब्राह्मण, लोगोंको आश्चर्यमें डालनेवाले तथा सर्व प्रकारके उपकरणोंसे युक्त भोगोपभोगने पदार्थोंको प्राप्त हुआ था, तो भी चूँकि वह सम्मानरूपी वाणोंसे विद्ध था, गुणरूपी महासर्पोंसे डसा गया था और सेवा शुश्रूषाके कारण उसकी आत्मा दब रही थी, इसलिए वह सन्तोष को प्राप्त नहीं होता था । भावार्थ—रामने तिरस्कारके बदले उसका सत्कार किया था, अपने अनेक गुणोंसे उसे वशीभूत किया था और स्नान, भोजन, पान आदि सेवा शुश्रूषासे उसे सुखी किया था इसलिए वह रात दिन इसी शोकमें पडा रहता था कि देखो कहीं तौ मैं दुष्ट कि जिसने इन्हे एक रात घर भी नहीं ठहरने दिया और कहीं ये महापुरुष जिन्हाने इस प्रकार हमारा उपकार किया ? ॥१७८-१७९॥ वह विचार करने लगा कि मैं पहले जिस गौवमें इतना अधिक दरिद्र था कि बन्धेपर लकड़ियोंका गट्टा रखकर भूसा-प्यासा दुबल शरीर इधर-उधर भटकता था आज उसी गौत्र में मैं रामके प्रसादसे यक्षराजके समान हो गया हूँ तथा सब चिन्ता और दुःखोंसे छूट गया हूँ ॥१८०-१८१॥ पहले मेरा जो घर जीर्ण शोण होकर गिर गया था, अनेक द्विद्रासे जर्जर था, काक आदि पक्षियोंकी अशुचिसे लिप्त था तथा जिसमें कभी गोबर भी नहीं लगता था, वही घर आज श्री रामके प्रसादसे अनेक गायोंसे व्याप्त है, नाना महलासे सर्वाण तथा प्राकार-कोटसे घिरा हुआ है ॥१८२-१८३॥ हाय, वधे खेदकी चात है कि मैंने

यद्ग्रीष्मात्पतत्पद्माः सम देव्या विनिर्गताः । तन्मे प्रतिष्ठित शक्य हृदये प्रचलत् सदा ॥१८५॥  
 तावन्मे नास्ति दु परस्य धैरो यावद्दिद गृहम् । परित्यज्य निरात्मम् प्रयजित्प्याग्न्यसशयम् ॥१८६॥  
 उपलभ्यास्य वैराग्य बन्धुवर्गं समभ्रमम् । धाराभिराससर्ज्जालं दीनं स्नाकं सुरार्मणम् ॥१८७॥  
 निरीष्य स्वजनं विभो निर्मेज्जं शोऽन्मागरे । अपेक्षानेतया बुद्ध्या निर्जग्दा शिवोऽमुक ॥१८८॥  
 विचित्ररजतस्नेहैर्युक्तमनोरथैः । भूदोष्य दह्यते लोहः किं न जौनीथ भो जना ॥१८९॥  
 इति सवेगमापन्नं प्रिया दु खेन मूर्च्छिताम् । विहाय बन्धुलोकं च बहुविश्लवकारिणम् ॥१९०॥  
 अट्टादश सहस्राणि धेनुर्वां लिततोजसाद् । स्तनपूर्णं च भवनं दासीमोपिल्लमाकुलम् ॥१९१॥  
 सुरार्मायां समारोप्य ततय द्रविणं तथा । यभूव कपिलं स्थापुर्निरारम्भो निरम्बरः ॥१९२॥  
 मद्भानन्दमते शिष्यं सुप्रतीतस्तपोऽनं । चकार गुरुतां तस्य गुणशैलमहाज्ञयं ॥१९३॥

### वियोगिनोवृत्तम्

विजहार महातपास्तत कपिलश्चारुचरित्रधीवध १ ।

परमार्थनिविष्टमानसं ध्रमगुणपरिवीतविग्रह ॥१९४॥

य इदं कपिलानुकीर्तनं पठति प्रह्वमति शृणोति वा ।

उपवाससहस्रसम्भव लभतेऽती रविमामुर' फलम् ॥१९५॥

इत्यार्ये रविप्रेषाचार्यश्लोके पद्मचरिते कपिलोपाख्यानं नाम पञ्चत्रिंशत्तमं पर्वं ॥३५॥

कमलके समान नेत्रोके धारक तथा चन्द्रतुल्य मुखसे सुरोभित, घर आये हुए उन दोनों भाइयों का अपराधके विना ही तिरस्कार किया ॥१८४॥ ग्रीष्म ऋतुके आतापसे जिनके शरीर सतत ही रहे थे वेसे दोनों भाई देवी अर्थात् सीताके साथ घरसे बाहर निकले, वह मेरे हृदयमे सदा शल्यकी तरह गडा हुआ चञ्चल हो उठता है ॥१८५॥ नि सन्देह मेरे दुःखका अन्त तब तक नहीं हो सकता है जब तक कि मैं घर छोड़कर निरात्म हो दीक्षा नहीं ले लेता हूँ ॥१८६॥

तदनन्तर कपिलके वैराग्यका समाचार जानकर इसके घनझाये हुए दीन हीन भाई बन्धु, सुरार्मा ब्राह्मणीके साथ अधुंधारा वहाने लगे ॥१८७॥ मोक्ष प्राप्त करनेमें उत्सुक कपिल, अपने परिजनकी शोकरूपी सागरमें निमग्न देख निरपेक्ष बुद्धिसे बोला कि हे भानजो ! वड़े घड़े मनोरथीसे युक्त कुटुम्बी जनोंके विचित्र न्नेहसे मोहित हुआ यह प्राणी निरन्तर जलता रहता है, यह क्या तुम नहीं जानते ? ॥१८८-१८९॥ इस प्रकार सबेगको प्राप्त हुआ कपिल ब्राह्मण दुःखसे मूर्च्छित स्त्री तथा बहुवु दुःखका अनुभव करनेवाले बन्धुजनोंको छोड़कर, अठारह हजार सहस्रे गाय, रत्नोंसे परिपूर्ण तथा दास-दासियोंसे युक्त भवन, पुत्र और समस्त धन सुरार्मा ब्राह्मणीके लिए सौंपकर आरम्भ रहित दिगम्बर साधु हो गया ॥१९०-१९१॥ सहानन्द मतिके शिष्य तथा गुण और शीलके महासागर अतिशय तपस्वी मुनि, उसके गुरु हुए थे अर्थात् उनके पास उत्तमे दीक्षा ली थी ॥१९२॥ तदनन्तर जो निर्मल चारित्ररूपी कौबरको धारण करते थे, जिनका मन सदा परमार्थमें लगा रहता था, और जिनका शरीर निर्ग्रन्थ प्रत रूपी लक्ष्मणसे आलिङ्गित था वेसे महातपस्वी कपिल मुनिराज पृथिवी पर विहार करने लगे ॥१९४॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि जो मनुष्य अहंकार रहित हो कपिलकी इस कथाको पढ़ता अथवा सुनता है यह सूर्यसे समान देदीप्यमान होता हुआ एक हजार उपवासका फल प्राप्त करता है ॥१९५॥

इस प्रकार आर्य नामक प्रसिद्ध रविप्रेषाचार्य कथित पद्मचरितमें कपिलका वर्णन करनेवाला पंचमपर्व समाप्त हुआ ॥३५॥

## पटत्रिंशत्तमं पर्व

ततोऽनुनमत 'काले विकालप्रतिमे गते । घोरान्धकारमरुद्धे त्रिद्युच्चक्तिभीषणे ॥१॥  
जाताया सुप्रसन्नाया शरदि प्रातिनिमरं । ऊचे यक्षाधिप पद्म प्रस्थानु कृतमानसम् ॥२॥  
चन्तव्य देव यत्किञ्चिदस्माकमिति दुष्कृतम् । विधातु शक्यते केन योग्य सर्वं भवादृशाम् ॥३॥  
इ युक्ते रामदेवोऽपि तमूचे गुह्यकाधिपम् । त्वयापि निरतिला स्वस्य चन्तव्या परतन्त्रता ॥४॥  
सुतरा तेन वाक्येन जात सत्तमभावन । यक्षाणामधिपो नत्वा सम्भाय विपुलश्रियम् ॥५॥  
हार स्वयप्रभाभिस्त्य ददौ पचाय सोऽद्भुतम् । उद्यद्दिनकराकारे 'हरये मणिकुण्डले ॥६॥  
चूडामणिं सुकल्याण सांतायै विलसत्प्रभम् । महाविनोददत्ता च वीणासोऽपिसतनादिर्नाम् ॥७॥  
स्वेच्छया तेषु यातेषु यचराज पुरीकृताम् । माया समहरकिञ्चिद्विधान शोकितामिव ॥८॥  
बलदेवोऽपि कर्णव्यकरणञ्च ससम्मद । अमन्यत परिप्राप्तमुदार शिवमारमन ॥९॥  
पर्यटन्तो महीं स्वैर नानारसफलाशिन । विचित्रसङ्ख्यामक्ता रममाण। सुरा इव ॥१०॥  
उल्लङ्घ्य सुमहारण्य द्विपसिंहसमाकुलम् । जनोपभुञ्जमुद्देश वैजयन्तपुर गता ॥११॥  
ततोऽस्तमागते सूर्ये दिन्चक्रे तमसावृते । नक्षत्रमण्डलाकाणै सञ्जाते गगनाङ्गणे ॥१२॥  
अपरोत्तरदिग्भागे क्षुद्रलोकमयावहे । यथाभिरुचिते देये ते पुरो निक्षेपे स्थिता ॥१३॥  
अथान्तर नगरे राजा प्रसिद्ध पृथिवीधर । इन्द्राणां महिषी तस्य योषिद्विगुणसमन्विता ॥१४॥

तदनन्तर घोर अन्धकारसे व्याप्त और मिजलीकी चमकसे भीषण वर्षा काल, दुष्कालके समान जन क्रम-क्रमसे व्यतीत हो गया तथा स्वच्छ शरदू ऋतु आ गई तब रामने वहाँसे प्रस्थान करनेका विचार किया उसी समय यक्षाका अधिपति आकर रामसे कहता है कि हे देव ! हमारी जो दुष्ट नुति रह गई हो वह क्षमा कीजिये क्योंकि आप जैसे महानुभावोंके योग्य समस्त कार्य करनेके लिए कौन समर्थ है ? ॥१-३॥ यक्षाधिपतिके ऐसा कहने पर रामने भी उससे कहा कि आप भी अपनी समस्त परतन्त्रताको क्षमा कीजिये अर्थात् आपको इतने समय तक मेरी इच्छानुसार जो प्रवृत्ति करनी पड़ी है उसके लिए क्षमा कीजिये ॥४॥ रामके इस वचनसे यक्षाधिप अत्यन्त प्रसन्न हुआ । उसने बहुत काल तक वार्तालाप कर नमस्कार किया, रामके लिए स्वयप्रभ नामका अद्भुत हार दिया । लक्ष्मणके लिए उगते सूर्यके समान देदाप्यमान दो मणिमय कुण्डल दिये, और सीताके लिए महामाङ्गलिक देदीप्यमान चूडामणि तथा महारिनोद करनेमें समर्थ एवं इच्छानुसार शब्द करनेवाली वीणा दी ॥५-७॥ तदनन्तर जन वे इच्छानुसार वहाँसे चले गये तब यचरराजने कुछ शोकयुक्त हो अपनी नगरी सम्बन्धी माया समेट ली ॥८॥ इधर राम भी कर्तव्य कार्य करनेसे हर्षित हो ऐसा मान रहे थे कि मानो मुझे उल्लूक मीक ही प्राप्त हो गया है ॥९॥

अथानन्तर स्वेच्छानुसार पृथिवीमें विहार करते, नाना रसके रसादिष्ट फल खाते, विचित्र कथाएँ करते और देवाके समान रमण करते हुए वे तीना, हाथी और सिंहासे व्याप्त महावनको पारकर मनुष्योंके द्वारा सेवित वैजयन्तपुरके समीपवर्ती मैदानमें पहुँचे ॥१०-११॥ तदनन्तर जब सूर्य अस्त हो गया, दिशाओंका समूह अन्धकारसे आवृत हो गया और आकाशरूपी आँगन नक्षत्रोंके समूहसे व्याप्त हो गया तब वे लुद्र मनुष्याको भय उत्पन्न करनेवाले पश्चिमोत्तर दिग्भागमें नगरके समीप ही किसी इच्छित स्थानमें ठहर गये ॥१२-१३॥ अथानन्तर इस



तनया वनमाश्रिते तयोरत्यन्तसुदुरी । बाल्यात् प्रभृति सा रक्ता लक्ष्मणस्य गुणभ्रुतेः ॥१५॥  
 श्रुत्वानरण्यपुत्रस्य प्रसज्यासमये वचः । रक्षितुं क्वापि निर्घातं राम लक्ष्मणसयुतम् ॥१६॥  
 ध्यात्वेन्द्रनगरेशस्य बालमित्राय सूनवे । सुन्दरायातियोग्याय पितृभ्यां सा निरूपिता ॥१७॥  
 तं च विज्ञाय वृत्तान्तं हृदयस्थितलक्ष्मणा । विरहाद्भयमापन्ना चिन्तामेवमुपागता ॥१८॥  
 अंशुकेन वरं कण्ठं विवेष्टयासज्य पादपे । मृत्युं प्राप्तास्मि नान्येन पुरुषेण समागमम् ॥१९॥  
 विधिच्छलेन केनापि गत्वारण्यं दिनत्रये । भ्रुवमद्यैव यास्यामि मृत्युं विघ्नविवर्जितम् ॥२०॥  
 प्रयाहि भगवन् भानो संप्रेषय निशां द्रुतम् । कृताञ्जलिरियं दीना पादयोः प्रपतामि ते ॥२१॥  
 शर्वरी भण्यतां यात्वा काञ्चन्तां दुःखभागिनी । संवत्सरसम वेत्ति दिनं द्वाग्गम्यतामिति ॥२२॥  
 इति सञ्चित्य सा बाला गतेःस्तं तिग्मतेजसि । सोपवासा समासाद्य पितृभ्यामनुमोदनम् ॥२३॥  
 प्रवर रथमारय सर्वाजनसमावृता । जगाम परया लक्ष्म्या वनदेवीं किलावृत्तम् ॥२४॥  
 यस्यां रात्रौ वनोद्देशे यत्र ते प्रथमं स्थिताः । तस्यामेव तमेवैषा गता दैवनियोगतः ॥२५॥  
 अरण्यदेवतापूजा तस्मिन् किल विनिर्मिता । सुप्तश्च सकलो लोको निराशङ्कः कृतक्रियः ॥२६॥  
 निरशब्दपदनिक्षेपात्तितो वनमृगोव सा । निष्क्रम्य शिविरात् तस्मात् प्रतस्थे भयवर्जिता ॥२७॥  
 ततस्तस्याः समाग्राय गन्ध परमसौरभम् । एवं सूनुः सुमित्राया दध्वी सम्मदमुद्रहन् ॥२८॥  
 ज्योतीरत्नेव काप्येषा मूर्तिरश्रोपलच्यते । कुमार्यां श्रेष्ठया भाग्यमनया कुलजातया ॥२९॥

नगरका राजा पृथिवीधर नामसे प्रसिद्ध था उसकी रानीका नाम इन्द्राणी था जो कि खियोंके योग्य समस्त गुणोंसे सहित थी ॥१४॥ उन दोनोंके वनमाला नामकी अत्यन्त सुन्दरी पुत्री थी । वनमाला बाल्य अवस्थासे ही लक्ष्मणके गुण श्रवण कर उनमें अनुरक्त थी ॥१५॥ इसके माता पिताने सुना कि राम अपने पिता दशरथके दीक्षा लेनेके समय कथित वचनोंका पालन करनेके लिए लक्ष्मणके साथ कहीं चले गये हैं तब उन्होंने इन्द्र नगरके राजाके बालमित्र नामक अत्यन्त योग्य सुन्दर पुत्रके लिए वनमाला देनेका निश्चय किया ॥१६-१७॥ जिसके हृदयमें लक्ष्मण विद्यमान थे ऐसी वनमालाने जब यह समाचार सुना तो वह विरहसे भयभीत हो इस प्रकार चिन्ता करने लगी ॥१८॥ कि वस्त्रसे कण्ठ लपेट वृत्तपर लटक कर भले ही मर जाऊँगी परन्तु अन्य पुरुषके साथ समागमको प्राप्त नहीं होंऊँगी ॥१९॥ मैं किसी कार्यके वहाने सायंकालके समय वनमें जाकर आज ही निर्धिघ्न रूपसे मृत्यु प्राप्त करूँगी ॥२०॥ हे भगवन् सूर्य ! आप जाओ और रात्रिके जल्दी भेजो । मैं अतिशय दीन हो हाथ जोड़कर आपके चरणोंमें पड़ती हूँ । जाकर रात्रिसे कहो कि तुम्हारी आकांक्षा करती हुई यह दुःखिनी दिनको वर्षके समान समझती है इसलिए जल्दी जाओ ॥२१-२२॥ इस प्रकार विचार कर उपवास धारण करनेवाली वह बाला, सूर्यास्त होनेपर माता पिताकी आज्ञा प्राप्तकर उत्तम रथपर सवार हो सबी जनोंके साथ वैभव पूर्वक वनदेवीकी पूजा करनेके लिए गई ॥२३-२४॥

भाग्यकी बात कि जिस रात्रिमें तथा वनके जिस प्रदेशमें राम सीता और लक्ष्मण पहलेसे जाकर ठहरे थे उसी रात्रिमें उसी स्थान पर वनमाला भी आ पहुँची ॥२५॥ वहाँ उसने वन देवताकी पूजा की । तदनन्तर जब सब लोग अपना-अपना कार्य पूरा कर निःशङ्क हो सो गये तब जिसके पैर रखनेका भी शब्द नहीं हो रहा था ऐसी वनमाला वनकी मृगीकी नाई उस शिविरसे निकल निर्भय हो आगे चली ॥२६-२७॥ तत्पश्चात् वनमालाके शरीरसे निकलनेवाली अत्यन्त मनोहर सुगन्धको सूँघकर हर्षित हो लक्ष्मण इस प्रकार विचार करने लगे ॥२८॥ कि 'यहाँ कोई ज्योतिकी रेखाके समान मूर्ति दिखाई पड़ती है, हो सकता है कि वह कोई उष

महता शोकभारेण परिपीडितमानसा । अपश्यन्तां परं तु खवारणोपायमुन्मनाः ॥३०॥  
 अजातचित्तता नूनमेवात्मानं जिघांसति । परयामि तावदेतस्याश्चेष्टामन्तर्हितो भवन् ॥३१॥  
 इति सखित्वं निश्चरन्तो भूत्वा वटतरोरधः । तस्यै कल्पद्रुमस्त्वेव त्रिदशः कौतुकान्वितः ॥३२॥  
 तमेव पादपं साविं प्राप्ता हंसवधूगतिः । नतेव स्तनभारेण चन्द्रवजरा तन्दूरो ॥३३॥  
 लक्ष्मणस्तां तथाभूतां दृष्ट्वाचिन्तयदुत्थिभिः । वेदिं तावदिमां सम्यक् कृतः पूज्यं भवित्यति ॥३४॥  
 अशुक्रेनाम्बुवर्णेन कृत्वा पाशं तु कन्यका । जगादिवं गिरा योगिमनोहरणयोग्यया ॥३५॥  
 एतत्तृणिवासिन्यः शृणुताहो सुदेवताः । भवतीभ्यो नमाम्येवा प्रसादः न्ययता मयि ॥३६॥  
 वाच्यो मद्भवनादेव भवन्तीभिः प्रयत्नतः । कुमारो लक्ष्मणो दृष्ट्वा घनेऽस्मिन् विचरन् भ्रुवम् ॥३७॥  
 यथा त्वद्विरहे बाला वनमाला मुदुःखिता । त्वयि मानसमारोप्य प्रेतलोकमुपागता ॥३८॥  
 अशुक्रेण समालम्ब्य स्वसा न्यघ्रोषपादपे । त्वस्मिन्निष्ठमसूनुं तन्वीं त्यजन्त्यस्माभिरौचिता ॥३९॥  
 एवमुक्तं त्वया नाथ यदि मे नात्र जन्मनि । समागमं वृत्तोऽन्यत्र प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥४०॥  
 एवं निगद्य शाब्दायां समर्पयति पाशकम् । सम्भ्रान्तश्च समालिङ्ग्य सोमि त्रिदिग्भ्रवीत् ॥४१॥  
 अयि मुग्धे मुकण्ठेऽस्मिन् मज्जुजालिङ्गनोचिते । कस्माद्दशरुपाशोऽप्य त्वया मुमुक्षि सज्ज्यते ॥४२॥  
 अहं स लक्ष्मणो मुञ्च पाशं परमसुन्दरि । यथाश्रुतं निरीक्षस्व न चेत्प्रत्येपि बालिके ॥४३॥  
 इत्युक्त्वा पाशमेतस्याः करात् सान्त्वनकोविदः । जहार लक्ष्मणः फेनपुञ्जं तामरमादिव ॥४४॥

कुलीन श्रेष्ठ कुमारी हो ॥३६॥ बहुत भारी शोकके भारसे इसका मन पीड़ित हो रहा है और दुःख दूर करनेका दूसरा उपाय नहीं देखती हुई यह बेचैन हो रही है ॥३०॥ निश्चित ही यह मनचाही वस्तुके न मिलनेसे आत्मघात करना चाहती है अतः छिपकर इसकी चेष्टा देखता हूँ ॥३१॥ इस प्रकार विचार कर कौतुक भरे लक्ष्मण चुपचाप वटवृक्षके नीचे उस प्रकार रखे हो गये जिस प्रकार कि कल्प वृक्षके नीचे कोई देव खड़ा होता है ॥३२॥ तदनन्तर जिसकी चाल हंसीके समान थी, जो स्तनोंके भारसे मुकी हुई सी जान पड़ती थी, जिसका मुख चन्द्रमाके समान था तथा जिसका उदर अत्यन्त कृश था ऐसी वनमाला भी उसी वृक्षके नीचे पहुँची ॥३३॥ उसे उस प्रकारकी देण लक्ष्मणने विचार किया कि इसके शरोंसे ठीक ठीक मालूम तो करूँ कि इसे किससे कार्य है ? ॥३४॥ तदनन्तर जलके समान स्वच्छ वर्णजाले वस्त्रसे फौसी बनाकर वह कन्या योगियाका भी मन हरण करनेमें समर्थ घाणीसे इस प्रकार कहने लगी कि अहो इस वृक्षके निवासी देवताओ ! सुनिये, मैं आपके लिए नमस्कार करता हूँ, आप मुझपर प्रसन्नता कीजिए ॥३५-३६॥ कुमार लक्ष्मण इस वनमें अवश्य ही विचरण करते होंगे सो उन्हें प्रयत्न पूर्वक देखकर आप लोग मेरी ओरसे उनसे कहें ॥३७॥ कि तुम्हारे विरहमें कुमारी वनमाला अत्यन्त दुःखी होकर तथा तुम्हींमें मन लगाकर मृत्यु लोकको प्राप्त हुई है ॥३८॥ वट-वृक्षपर कपड़ेसे अपने आपको टोंगकर तुम्हारे निमित्त प्राण छोड़ती हुई उस कृशाङ्गीको हमने देखा है ॥३९॥ और यह कह गई है कि हे नाथ ! यद्यपि मेरे इस जन्ममें आपने समागम नहीं किया है तो अन्य जन्ममें प्रसन्नता करनेके योग्य हो ॥४०॥

इतना कह कर वह ज्या ही शारदा पर फौसी बाँधती है त्योंही घनड़ाये हुए लक्ष्मणने उसका आलिङ्गन कर यह कहा कि हे मूर्ख ! यह कण्ठ तो मेरी भुजाके आलिङ्गन के योग्य है, हे मुमुग्धि ! तू इसमें यह वस्त्र की फौसी क्यों सजा रही है ? ॥४१-४२॥ मैं वही लक्ष्मण हूँ, हे परम सुन्दरि ! यह फौसी छोड़ो, हे बालिके ! यदि तुम्हें विश्वास न हो तो जैसा सुन रक्खा हो वैसा देख लो ॥४३॥ इस प्रकार कह कर सान्त्वना देनेमें निपुण लक्ष्मणने जिस प्रकार कोई

ततोऽसी व्रपया युक्ता दृष्ट्वा मन्थरचक्षुषा । लक्ष्मण नेत्रचौरेण रूपेण परिलक्षितम् ॥४५॥  
 पर विस्मयमापन्ना चिन्तामेवमुपागता । ईषद्वेपथुना युक्ता नवसङ्गमजन्मना ॥४६॥  
 किमय वनदेवीभि प्रसादो जनितो मम । कारुण्यमुपयाताभि सन्देशवचनै परम् ॥४७॥  
 सोऽय यथाधृतो नाथ सप्रसादो दैवयोगत । भवेद्येन मम प्राणा प्रयान्तो चिनिवारिता ॥४८॥  
 इति सञ्चिन्तयन्ती सा किञ्चि प्रस्वेदधारिणी । लक्ष्मीधरसमाश्लेषे लब्ध्वात्यन्तमराजत ॥४९॥  
 ततो मृदुमहामोदकुसुमोदारसस्तरे । प्रबुद्धो राघवश्चक्षुर्लक्ष्मणार्थमुदीरयन् ॥५०॥  
 अपरयश्च समुत्थाय पप्रच्छ जनकामजाम् । प्रदेशे लक्ष्मणो देवि नैतस्मिन् दृश्यते कुत ॥५१॥  
 प्रदोषे सस्तर कृत्वा सोऽस्माक पुष्पपल्लवै । आसीदनतिदूरस्थ कुमारो ह्यत्र नेक्ष्यते ॥५२॥  
 नाथ बाह्ययता तावदिति तस्या कृतध्वनौ । क्रमादत्युच्चया वाचा वचो व्याहृतवामिति ॥५३॥  
 एहागच्छ वच यातोऽसि भद्र लक्ष्मण लक्ष्मण । प्रयच्छ वचन तात चरित बालकानुज ॥५४॥  
 अयमायाभि देवेति दवास्मै सभ्रमी वच । वनमालासमेतोऽसौ ज्येष्ठस्यान्तिकमागत ॥५५॥  
 अपरात्रे तदा स्पष्टे निशानाथ समुद्ययौ । ववौ कुमुदगर्भासेवायु सामोदशीतल ॥५६॥  
 तत पल्लवकान्ताभ्या हस्ताभ्या रचिताञ्जलि । अशुकावृतसर्वाङ्गा त्रपाविनमितानना ॥५७॥  
 ज्ञातनिरशेषकर्तव्या विभ्राणा विनय परम् । बालावन्दत रामस्य सीतायाश्च क्रमद्वयम् ॥५८॥  
 सद्धितीय ततो दृष्ट्वा साता लक्ष्मणमववीत् । कुमार सह चन्द्रेण समवायस्त्वया कृत ॥५९॥  
 कथ जानासि देवीति पद्मेनोक्ता जगाद सा । चेष्टया देव जानामि शृणु तुरयप्रवृत्तया ॥६०॥

कमलसे फेनको दूर करता है उसी प्रकार उसके हाथ से फोंसी छीन ली ॥४४॥ तदनन्तर नेत्रोंको चुरानेवाले रूपसे सुशोभित लक्ष्मणको मन्थर दृष्टिसे देख कर वह कन्या लज्जासे युक्त हो गई ॥४५॥ नवसमागमके कारण कुल्ल-कुल्ल कोंपती हुई वनमाला परम आश्चर्यको प्राप्त हो इस प्रकार विचार करने लगी ॥४६॥ कि क्या मेरे सन्देश वचनोसे परम दयालुताको प्राप्त हुई वनदेवियोंने ही मुझ पर यह प्रसन्नता की है ? ॥४७॥ जिन्होंने मेरे निकलते हुए प्राण रोके हैं ऐसे ये प्राणनाथ दैवयोगसे ही यहाँ आ पहुँचे हैं ॥४८॥ इस प्रकार विचार करती और कुल्ल-कुल्ल पसीनाको धारण करती हुई वनमाला लक्ष्मणका आलिङ्गन पाकर अत्यधिक सुशोभित हो रही थी ॥४९॥

तदनन्तर इधर कोमल तथा महासुगन्धित फूलोंकी उत्कृष्ट शय्या पर पड़े रामकी जब निद्रा हटो तो उन्हाने लक्ष्मणकी ओर दृष्टि डाली । लक्ष्मणको न देखकर वे उठे और सीतासे पूछने लगे कि देवि ! यहाँ लक्ष्मण क्या नहीं दिखाई देता ? ॥५०-५१॥ सायकालके समय तो यह पूल तथा पत्तासे हमारी शय्याकर यहीं पासमें सोया था पर अब यहाँ दिखाई नहीं दे रहा है ॥५२॥ सीताने उत्तर दिया कि हे नाथ ! आवाज देकर बुलाइए । तब रामने यथाक्रमसे उच्च वाणीमें इस प्रकार शब्द कहे कि हे लक्ष्मण ! तू कहीं चला गया, आओ-आओ, हे तात ! हे वालक ! हे अनुज ! वहाँ हो, आवाज देओ ॥५३-५४॥ रामका आवाज सुन लक्ष्मणने हलबड़ा फर उत्तर दिया कि देव ! यह आता हूँ । इस प्रकार उत्तर देकर वे वनमालाके साथ अमजके समीप आ पहुँचे ॥५५॥ उस समय स्पष्ट ही आधा रात थी, चन्द्रमाका उदय हो चुका था और शुभुदोषे गर्भसे मिलकर सुगन्धित तथा शीतल वायु यह रही थी ॥५६॥ तदनन्तर जिसने कमलके समान सुन्दर हाथोंसे अञ्जलि बौध रखती थी, वरजसे जिसका सर्व शरीर आवृत था, लज्जासे जिसका मुख नम्रीभूत हो रहा था, जो समस्त कर्तव्यको जानती थी तथा परम विनयको धारण कर रही थी ऐसी वनमालाने आकर राम तथा सीताके चरणयुगलको नमस्कार किया ॥५७-५८॥ तदनन्तर लक्ष्मणको स्त्री सहित देख सीताने कहा कि हे कुमार ! तुमने तो चन्द्रमाके साथ मित्रता कर ली ॥५९॥ रामने सीतासे कहा कि हे देवि ! तुम किस प्रकार जानती हो ?

ज्योऽनया सहितश्चन्द्रो यस्मिन् काले समागत । लक्ष्मीधरोऽपि तत्रैव सहितो बालपानया ॥६१॥  
 यथा ज्ञापयसि स्पष्टमेवमेतदिति ध्रुवम् । लक्ष्मीधरोऽन्तिके तस्थौ हिया क्रिच्छित्तानन ॥६२॥  
 उक्नुवन्नेत्रराजावा प्रमोदापितचेतस । प्रसन्नवक्त्रतारेशा मुशाला विस्मयान्विता ॥६३॥  
 कथाभि स्मितयुक्ताभि याताभि स्थानयुक्ताम् । ते तत्र त्रिदशच्छाया नष्टनिद्रा सुरा स्थिता ॥६४॥  
 सरयोऽत्र वनमालाया समये बाधमागता । शयनीय तथा ह्यन्य दशशुक्लस्तमानसा ॥६५॥  
 ततोऽध्रुपूर्णनेत्राणा गवेपन्याकुला मनाम् । तासा हाकारशब्देन प्रथोध भोजिरे भग ॥६६॥  
 उपलभ्य ध वृत्तान्त सन्नद्धारूढसप्तय । दूरा पदातयश्चान्ये कुन्तकामुक्पाणय ॥६७॥  
 दिश सर्वा समास्तीर्य दधातुद्भ्रान्तमानसा । भीतिप्रीतिसमायुक्ता समारस्येय शवका ॥६८॥  
 तत कैरपि ते दृष्टा समेता वनमालया । निवेदिताश्च शेषस्य जनस्य जववाहने ॥६९॥  
 ज्ञातनिश्चोपवृत्तान्तैस्त्वैरल सम्मदाऽन्वितै । पृथिवीधरराजस्य कृत दिष्ट्याभिवर्धनम् ॥७०॥  
 उपायारम्भमुक्तस्य तवाद्य नगरे प्रभो । जगाम प्रक्रीभाव महारत्ननिवि स्वयम् ॥७१॥  
 पपात नभसो वृष्टिविना मेघसमुद्भवान् । परिकर्मविनिर्मुक्त सस्य क्षेत्रात् समुद्गतम् ॥७२॥  
 जामाता लक्ष्मणोऽय ते वर्तते निकटे पुर । जावित हानुमिच्छन्त्या सन्नतो वनमालया ॥७३॥  
 पद्मश्च सीतया साक परमो भवत प्रिय । शच्येव सहितो देवेन्द्रोऽयमत्र विगमते ॥७४॥  
 यद्वतामिति श्रुत्याना वचनै प्रियशसिभि । मुखनिर्मात्चेतस्को मुमुर्लं नृपति वगम् ॥७५॥

इसके उत्तरमें सीताने कहा कि हे देव । मैं समान प्रवृत्त चेष्टासे जानती हूँ सुनिये ॥६०॥ जिस समय चन्द्रमा चन्द्रिका अर्थात् चोंदनीके साथ आया उसी समय लक्ष्मण भी इस बालाके साथ आया है इससे स्पष्ट है कि इसकी चन्द्रमाके साथ मित्रता है ॥६१॥ जैसा आप समझ रहा हैं बात स्पष्ट ही ऐसी है इस प्रकार कहते हुए लक्ष्मण लज्जासे कुछ नवानन हो पास ही में बैठ गये ॥६२॥ इस तरह जिनके नेत्रकमल विकसित थे, जो आनन्दसे विभोर थे, जिनके मुख रूपा चन्द्रमा अत्यन्त प्रसन्न थे, जो सुशील थे, आश्चर्यसे सहित थे, देवोंके समान कान्तिके धारक थे तथा जिनकी निद्रा नष्ट हो गई थी ऐसे वे सत्र, स्थानकी अनुकूलताकी प्राप्त मन्दहास्य युक्त कथाएँ करते हुए वहाँ सुप्तसे विराजमान थे ॥६३-६४॥ यहाँ समयपर जब वनमालाकी सखियाँ जागीं तो शय्याको सूती देख भयभीत हो गईं ॥६५॥ तदनन्तर जिनके नेत्र आँसुओंसे व्याप्त थे तथा जो वनमालाकी खोजके लिए छुटपटा रहीं थीं ऐसा उन सखियाँकी हाहाकारसे बोद्धा जाण उठे ॥६६॥ तथा सब समाचार जानकर तैयार हो कुछ तो योद्धापर आरूढ हुए और कुछ भाले तथा धनुष हाथमें ले पैदल ही चलनेके लिए तैयार हुए ॥६७॥ इस प्रकार जिनके चित्त घबडा रहे थे, जो भय और प्रीतिसे युक्त थे तथा जो शीघ्र गतिमें वायुके बबोंके समान जान पडते थे ऐसे योद्धा समस्त दिशाओंको आच्छादित कर दीडे ॥६८॥

तदनन्तर कितने ही योद्धाआने वनमालाके साथ बैठे हुए उन सत्रको देखा और देख कर शीघ्रगामी वाहनोंसे चलकर शेषजनोंके लिए इसकी खबर दी ॥६९॥ तदनन्तर समस्त समाचारको ठीक ठीक जानकर जो अत्यधिक हर्षित हो रहे थे ऐसे कुछ योद्धाआने पृथिवीधर राजाके लिए भाग्य वृद्धिकी सूचना दी ॥७०॥ उन्होंने कहा कि हे प्रभो । उपायारम्भसे रहित होनेपर भी आज आपके नगरमें स्वय ही महारत्नाका खजाना प्रकट हुआ है ॥७१॥ आप आकाशसे बिना मेघके ही वर्षा पड़ी है तथा जीतना बखिरना आदि क्रियाआँके बिना ही रेतसे धान्य उत्पन्न हुआ है ॥७२॥ आपका जामाता लक्ष्मण नगरने निकट ही वर्तमान है तथा प्राण छोड़नेकी इच्छा करनेवाली वनमालाके साथ उसका मिलाप हो गया है ॥७३॥ सीता सहित राम भी जो कि आपको अत्यन्त प्रिय हैं इन्द्राणी सहित इन्दके समान यहीं सुशोभित हो रहे हैं ॥७४॥ इस प्रकार कहनेवाले श्रुत्योंके प्रिय सूचक वचनोंसे जिसके हृदयमें सुप्तका

तत प्रनुद्धचित्तेन पर प्रमदमोयुवा । दत्त बहुवन तेभ्यः स्मितशुक्लमुखेन्दुना ॥७६॥  
 अचिन्तयच्च ही साधु सञ्जात दुहितुर्मम । अनिश्चितगतिः प्रातो यद्य सुमनोरथः ॥७७॥  
 सर्वेषामेव जीवाना धनमिष्टसमागमः । जायते पुण्ययोगेन यथा-मसुखकारणम् ॥७८॥  
 योजनानां शतेनापि परिच्छिन्ने श्रुतान्तरे । इष्टो मुहूर्तमात्रेण लभ्यते पुण्यभागिभिः ॥७९॥  
 ये पुण्येन विनिर्मुक्तः प्राणिनो दु खभागिनः । तेषा हस्तमपि प्राप्तमिष्टवस्तु पलायते ॥८०॥  
 नरण्याना गिरेर्मूढिन विपमे पथि सागरे । जायन्ते पुण्ययुक्ताना प्राणिनामिष्टसङ्गमाः ॥८१॥  
 हृति सन्नित्य जायायै त वृत्तान्तमशेषतः । उत्थाप्याकथयनोपाद्वरैः कृच्छ्रनिर्गतैः ॥८२॥  
 पुनः पुनरष्टच्छ्र सा सुमुखी स्वप्नशङ्कया । सञ्जातनिश्चयादाप स्वसवेद्यां सुखासिकाम् ॥८३॥  
 ततो रामाधरच्चाये समुद्यति दिवाकरे । प्रेमसम्पूरितो राजा सर्वबान्धवसङ्गतः ॥८४॥  
 वरवारणमारह्य द्युत्या परमया युतः । प्रतस्थे परम द्रष्टुमुत्सुकः प्रियसङ्गमम् ॥८५॥  
 माता च वनमालायाः पुत्रैरष्टाभिरन्विता । आरह्य शिविका रम्या प्रियस्य पदवीं श्रिता ॥८६॥  
 अनन्तर नृपादेशान् कश्चिपुः प्रचुर हितम् । गन्धमाल्या दिवाशेषमनीयत मनोहरम् ॥८७॥  
 ततो दूरात् समालोक्य सफुल्लेचनपङ्कजम् । अवतीर्य गजाद् राजा बुढोके राममादरी ॥८८॥  
 परिष्वज्य महाप्रीत्या सहित लक्षणेन तम् । अष्टच्छ्रत् कुशल कृष्टिर्जानकीं च सुमानसः ॥८९॥

भरना फूट पड़ा था ऐसा राजा पृथिवीपर हर्षातिरेकसे क्षण भरके लिए मूर्छित हो गया ॥७५॥ तदनन्तर सचेत होनेपर जो परम हर्षको प्राप्त था तथा जिसका मुख रूपी चन्द्रमा मन्द मुसकानसे घबल हो रहा था ऐसे राजाने उन भृत्योंके लिए बहुत भारी धन दिया ॥७६॥ वह विचार करने लगा कि अहो, मेरी पुत्रीका बड़ा भाग्य है कि जिससे उसका यह अनिश्चित मनोरथ स्वयं ही पूर्ण हो गया ॥७७॥ समस्त जीवोंको धन, इष्टका समागम तथा जो भी आत्मसुखका कारण है वह सब पुण्य योगसे प्राप्त होता है ॥७८॥ जिसके बीचमे सौ योजनका भी अन्तर प्रसिद्ध है वह इष्ट वस्तु पुण्यात्मा जीवोंको मुहूर्तमात्रमे प्राप्त हो जाती है ॥७९॥ इसके विपरीत जो प्राणी पुण्यसे रहित हैं वे निरन्तर दुःखी रहते हैं तथा उनके हाथमे आई हुई भी इष्ट वस्तु दूर हो जाती है ॥८०॥ अटवियोंमे बीचमे, पहाड़की चोटीपर विपम मार्ग तथा समुद्र के मध्यमे भी पुण्यशाली मनुष्योंको इष्ट समागम प्राप्त होते रहते हैं ॥८१॥ इस प्रकार विचारकर उसने स्त्रीको उठाया और उसके लिए हर्षातिरेकके कारण कष्टसे निकलनेवाले वचनोंके द्वारा सन समाचार कहा ॥८२॥ उस सुमुखीने 'कहीं स्वप्न तो नहीं देख रही हूँ' इस आशङ्कासे धारधार पृष्टा और उत्पन्न हुए निश्चय से वह स्वसवेद्य मुखको प्राप्त हुई ॥८३॥

तदनन्तर जब स्त्रीके ओठके समान लाललाल कान्तिको धारण करनेवाला सूर्य उदित हो रहा था । तब प्रेमसे भरा, सर्व बन्धुजनोंसे सहित, परम कान्तिसे युक्त और परम प्रिय समागम देखनेके लिए उत्सुक राजा पृथिवीधर उत्तम हाथीपर सवार हो चला ॥८४-८५॥ आठों पुत्रोंसे सहित वनमालाकी माता भी मनोहर पालकीपर सवार हो पतिके मार्गमे चली ॥८६॥ इसके पीछे राजाकी आज्ञानुसार सेवकोंके द्वारा अत्यधिक हितकारी वस्त्र तथा गन्ध माला आदि समस्त मनोहर पदार्थ ले जाये जा रहे थे ॥८७॥

तदनन्तर दूरसे ही विकसित नेत्रकमलोंके धारी रामको देखकर राजा पृथिवीधर हाथी से उतरकर आदरके साथ उनके पास पहुँचा ॥८८॥ तत्पश्चात् विधि विधानके वेत्ता तथा शोभा दृश्यके धारक राजाने दड़े प्रेमसे राम लक्ष्मणका आलिङ्गनकर उनसे तथा सीतासे कुशल समा-

१ तद्देव्यपि तयो वृष्टा क्षेम सुस्तिरग्लौचना । निखिलाचारनिष्णाता जानकी परिपन्वने ॥६०॥  
 उपचारो यथायोम्य तयोस्तैरपि निमित्त । आचार्यक हिते<sup>२</sup> याता वस्तुन्यत्र प्रतिष्ठितम् ॥६१॥  
 वीणानेशुमृदङ्गादिसहितो गायनि स्वन । क्षु<sup>३</sup>धार्णवसमो जने वन्दित्रुन्दानुनादित ॥६२॥  
 उ<sup>४</sup>त्सव स महाभात पूजिताश्विलमद्गत । नृत्यैल्लोककमन्यासादतिकम्पितभूतल ॥६३॥  
 दिशस्त्र्यैनिनादेन प्रतिशब्दसमन्वितता । चन्द्र परस्परालापमित्र सम्मदनिर्भरा<sup>५</sup> ॥६४॥  
 शमै प्रसन्नता याचे तस्मिन्नथ महोत्सवे । शरीरकमं तै सर्वं कृत स्नानाशनादिकम् ॥६५॥  
 तत ससिद्धिपारुञ्जसामन्तशतवेष्टिनी । सारङ्गोपमपादातमहाचन्द्रपरिचुद्धी ॥६६॥  
 पुर प्रवृत्तसोऽसाहरानस्यपृथिवीधरी । विदग्धसूतलोकन कृतमद्गलनिस्वनी ॥६७॥  
 हाररानितवचस्काचनचार्णुकारिणी । हरिचन्दनदिग्धाद्वाहारुदी रथमुत्तमम् ॥६८॥  
 नानारत्नाशुम्पर्कसमुद्भूतेन्द्रकामुंठी । शरणाङ्गभास्कराकारायशक्यगुणवर्णनी ॥६९॥  
 सौधर्मेशानदेवार्वा जानकामहितां पुरम् । कुर्वाणी विस्मय तुन्न प्रविष्टो रामलक्ष्मणौ ॥१००॥  
 वरमालाधरी गन्धवद्दण्डपद्मण्डली । सम्पूर्णचन्द्रवदनी विनाताकारधारिणी ॥१०१॥  
 यत्नेनैव कृते तस्मिन्नलामे पुण्येदने । रेमाते परम भोग भुञ्जानी निजयेच्छया ॥१०२॥

चार पूछा ॥६६॥ जिसके नेत्रोंसे स्नेह टपक रहा था तथा जो सब प्रकारका आचार जाननेमें निपुण थी ऐसी रानीने भी राम लक्ष्मणसे कुशल पूछकर साताका आलिङ्गन किया ॥६०॥ उन सजने भा राजा रानीका यथायोम्य सत्कार किया सो ठीक ही है क्योंकि वे इस विषयमें अति शय निपुणताको प्राप्त थे ॥६१॥ तदनन्तर जो वीणा बोंसुरी मृदङ्ग आदिके शब्दसे सहित था, जो लोभको प्राप्त हुए समुद्रकी तुलना धारण कर रहा था और जिसमें वन्दीजनाके द्वारा उचारित त्रिन्दावलीका नाद गूँज रहा था ऐसा सङ्गीतका शब्द होने लगा ॥६२॥ जिसमें आये हुए समस्त इष्टजनोंका सत्कार हो रहा था, तथा नृत्य करनेवाले मनुष्योंके चरण निक्षेपसे चिसम भूतल काँप रहा था ऐसा वह महान् उत्सव सम्पन्न हुआ ॥६३॥ तुरहीके शब्दसे जिनमें प्रतिध्वनि गूँज रहा थी ऐसी दिशाएँ हृषसे ओत प्रीत हो मानो परस्पर वार्तालाप ही कर रही थी ॥६४॥ अथान्तर धीरे धीरे जब वह महोत्सव शान्त हुआ तब उ हाने स्नान भाजन आदि शरीर सम्बन्धी सब कार्य किये ॥६५॥

तदनन्तर जो हाथी घोड़ों पर बैठे हुए सैकड़ों सामन्तोंसे घिरे थे, मृगतुल्य पैदल सिपाहियोंका बड़ा दल जिनके साथ था, वत्साहसे भरा राजा पृथिवीधर जिनके आगे-आगे चल रहा था, चतुर वन्दीजन जिनके आगे मद्गल ध्वनि कर रहे थे, जिनके वक्ष स्थल हारासे सुशोभित थे, जो अमूल्य वस्त्र धारण किये हुए थे, जिनके शरीर हरिचन्दनसे लिप्त थे, जो उत्तम रथ पर सवार थे, जिनके नाना रत्नाकी किरणाके सम्पर्कसे इन्द्रधनुष उठ रहे थे, चन्द्र और सूर्यके समान चिनके आकार थे, जिनके गुणाका वर्णन करना अशक्य था, सौधर्म तथा ऐशानेन्द्रके समान जिनकी कान्ति थी, जो अत्यधिक आश्चर्य उत्पन्न कर रहे थे, जिनके गलेमें वरमालाएँ पहनी थीं, मुगन्धिके कारण जिनके आस पास भ्रमराने मण्डल बौध रकते थे, जिनके मुख चन्द्रमाने समान थे तथा जो विनीत आकारको धारण कर रहे थे ऐसे राम लक्ष्मणने नगरमें प्रवेश किया ॥६६-१०१॥ जिस प्रकार पहले, यज्ञके द्वारा निर्मित नगरमें इच्छानुसार भोग भोगते हुए वे रमण करते थे उसी प्रकार राजा पृथिवीधरके नगरमें भा वे इच्छानुसार उल्टा

## पुष्पिताम्रावृत्तम्

इति वनगहनान्यपि प्रयाताः सुकृतसुसंस्कृतचेतसो मनुष्याः ।

अतिपरमगुणानुपाश्रयन्ते रविरुचयः सहसा पदार्थलाभान् ॥१०३॥

इत्यार्षे रविपेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे पद्मायने वनमालाभिधानं नाम

षट्त्रिंशत्तमं पर्व ॥३६॥



भोग भोगते हुए रमण करने लगे ॥१०२॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि जिनके चित्त पुण्यसे सुसंस्कृत है तथा जो सूर्यके समान दीप्तिके धारक है ऐसे मनुष्य सधन वनोंमें पहुँचकर भी सहसा उत्कृष्ट गुणासे युक्त पदार्थोंको प्राप्त कर लेते हैं ॥१०३॥

इस प्रकार आर्य नामसे प्रसिद्ध, रविपेणाचार्य कथित पद्मचरितमें वनमालाका वर्णन करनेवाला छत्तीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥३६॥





मृगध्वजो रणोभिश्च कलभ केसरी तथा । अङ्ग महीभृत पद्भिरमा करदिना शतै ॥१४॥  
 प्रत्येक पञ्चभिः सप्तिसहस्रैश्च समावृत्ता । प्राप्ता कृतमहो साङ्गा नयपण्डितबुद्धय ॥१५॥  
 उत्साहयन् छलोद्भूत नयशास्त्रविशारदम् । पञ्चालाधिपमतमार्थकारिण ज्ञातकारणम् ॥१६॥  
 द्विरदाना सहस्रेण तैर्ययूना च सप्तभिः । पौण्ड्रधमापतिरालीन प्रताप परम बहन् ॥१७॥  
 साधनेन तदप्रेण सम्प्राप्तो भगवाधिप । पूर्यमाणो मृपैर्वाहो रैवो नदशतैरिव ॥१८॥  
 सहस्रैरागतोऽग्निभिर्दन्तिना जलद्विषाम् । अर्वायेन सुकेशश्च दुर्लभान्तेन वज्रधक् ॥१९॥  
 सुभद्रो मुनिभद्रश्च साधुभद्रश्च नन्दन । तुल्या वज्ररस्यैते सम्प्राप्ता यवनाधिपा ॥२०॥  
 अवार्यार्यसप्राप्त सिंहवीर्यो महीपति । वाङ्ग सिंहरथश्चेतो मानुलो बलशालिनो ॥२१॥  
 पदातिभा रथैर्नागे स्युरीप्रष्टैः प्रतिष्ठितैः । वत्सस्वामी समायातो मारिदत्तोतिभूरिभिः ॥२२॥  
 भावद् भोग्निगे राजा सौवरो धीरमन्दिर । प्राप्नो दुर्वेदसख्येन साधनेनान्विताविनी ॥२३॥  
 एतेऽप्ये च महासत्त्वा राजान ध्रुतशासना । अक्षीहिणाभिराघाता दशभिस्त्रिदशोपमा ॥२४॥  
 नमाभिरनुयातोऽह प्रस्थितो भरत प्रति । त्वामुद्दोक्षे यतो लेखदर्शानन्तर तत ॥२५॥  
 आगन्तव्य वधा प्रीया कार्याप्रसिद्धिषा तथा । परयामोऽप्यादरेण त्वा यथा वर्प कृपावला ॥२६॥  
 एव च चाचिते लेखे न यात्पृथिवीधर । किञ्चिद्बुधे सुमित्राया सन्नुस्तानदभापत ॥२७॥

सौ हाथियों और वायुके पुत्रके समान चपल तीन हजार घोडोंके साथ आज हमारे पास आ गया है ॥१२-१३॥ बहुत भारी उत्साहके देनेवाले तथा नीति निपुण बुद्धिके धारक जो मृगध्वज, रणोर्मि, कलभ, और केसरी नामके अङ्ग देशके राजा हैं वे भी प्रत्येक छह सौ हाथियों तथा पाँच हजार घोडासे समावृत्त हो आ पहुँचे हैं ॥१४-१५॥ जो छलपूर्ण युद्ध करनेमें निपुण है, नीति शास्त्रका पारगामी है, प्रयोजन सिद्ध करनेवाला है तथा युद्धकी सत्र गतिविधियोंका जानकार है ऐसे पञ्चाल देशके राजाको उत्साहित करता हुआ पौण्ड्रदेशका परम प्रतापी राजा, दो हजार हाथिया और सात हजार घोडोंके साथ आ गया है ॥१६-१७॥ जिस प्रकार रेवा नदीके प्रवाह में सैकड़ा नदियाँ आकर मिलती है इसी प्रकार जिसमें अन्य अनेक राजा आ आकर मिल रहे हैं ऐसा मगध देशका राजा भी पौण्ड्राधिपतिसे भी कहीं अधिक सेना लेकर आया है ॥१८॥ पञ्चको धारण करनेवाला राजा सुकेश, मेघके समान कान्तिको धारण करनेवाले आठ हजार हाथिया और जिसका अन्त पाना कठिन है ऐसी घोडाकी सेनाके साथ आ पहुँचा है ॥१९॥ जो इन्द्रके समान पराक्रमके धारी हैं, ऐसे सुभद्र, मुनिभद्र, साधुभद्र और नन्दन नामक भयनाके राजा हैं वे भी आ गये हैं ॥२०॥ जो अवार्य वीर्यसे सम्पन्न है, ऐसा राजा सिंहवीर्य, तथा वङ्ग देशका राजा सिंहरथ ये दोना मेरे मामा हैं सो बहुत भारी सेनासे सुशोभित होते हुए आये हैं ॥२१॥ वत्स देशका राजा मारिदत्त बहुत भारी पदाति, रथ, हाथी और उत्तमोत्तम घोडोंके साथ आया है ॥२२॥ अम्बष्ठ देश का राजा प्रोष्ठिल और सुपीर देशका स्वामी धीरमन्दिर ये दोना असरयात सेनाके साथ आ पहुँचे हैं ॥२३॥ तथा इनके सिषाय जो और भी महापराक्रमी एव देवाका उपमा धारण करने वाले अन्य राजा हैं वे मेरी आज्ञा श्रवणकर सेनाआये साथ आ चुके हैं ॥२४॥ इन सत्र राजाओं के साथ लेकर मैंने अयोध्याके राजा भरतके प्रति प्रस्थान किया है, सो तुम्हारी प्रताप्ता कर रहा है, अतः तुम्हें पर देरनेके बाद तुम्हें ही यहाँ आना चाहिए। तुम्हारी मुझमें प्रीति ही ऐसी है कि जिससे आप दूसरे फायके प्रति दृष्टि भी नहीं डालेंगे। जिस प्रकार किसान वर्षाको बड़े आदरसे देखते हैं, उसी प्रकार हम भी तुम्हें बड़े आदरसे देखते हैं ॥२५-२६॥ इस प्रकार पत्र

अतिवीर्यं तथाबुद्ध्यां भरतस्य विचेष्टितम् । तत्र कौटिलिगतिं ज्ञातुं भद्रस्य दूतस्य ते ॥२६॥  
 एवं वायुगतिः पृथो जगाद् निखिलं मम । त्रिदिनं राजचरितमन्तरङ्गो ज्ञयं परः ॥२६॥  
 इन्द्रामि विशद श्रोतुमियुक्ते पुनरर्वात् । शृणु चित्त समाधाय भवतत्रे कुतूहलम् ॥३०॥  
 श्रुतबुद्धिरिति ख्यातो दूतः श्रुतविशारदः । प्रहितः स्वामिनास्माकं रात्रा भरतमन्वेषी ॥३१॥  
 दूतोऽग्निं शत्रुस्यस्य प्रणताखिलमूभृतः । अतिवीर्यनरेन्द्रस्य नयन्यान्ममनीणिणः ॥३२॥  
 सम्प्राप्य साध्वसं यस्मान्नरकेसरिणः परम् । भजन्ते रिपुमारुहो न निद्रां वसतिष्वपि ॥३३॥  
 विनीता पृथिवी यस्य चतुरम्भोधिमंगला । आज्ञा पाणिगृहीतेव कुरते परिपालिता ॥३४॥  
 आज्ञापययमीं देवो भवन्तमिति सन्निभः । वर्णमंदास्वविन्यस्तैरुज्जितामा समन्ततः ॥३५॥  
 यथा भज समागम्य भृत्यतां भरत द्रुतम् । अयोध्यां वा परित्यज्य भज पारमुदन्वतः ॥३६॥  
 ततः क्रोऽपरोवाहः शत्रुघ्नश्चन्द्रया गिरा । जगाद् निष्प्रतीकारो दाशानल इन्द्रोस्थितः ॥३७॥  
 भजयेव तथा देवो भरतस्तस्य भृत्यताम् । यथा सज्जायते युक्तं तत्राप्रभापितम् ॥३८॥  
 विनीतां च परित्यज्य सचिवेषु प्रभुधुं वम् । यायेवोर्दन्वत पार वशीकुर्वन् कुमानवान् ॥३९॥  
 वचस्त्वां ज्ञापयामीति नितरां तस्य भीषितम् । रासभस्य यथा मत्तवारणधिपगर्जितम् ॥४०॥  
 सूचययथवा तस्य मृत्युमेतद्वचः स्फुटम् । उत्पातभूतमेतो वा स नूनं वायुवर्यताम् ॥४१॥

वोंचे जानेपर राजा पृथिवीधर जब तक बुद्ध नहीं कह पाये कि तब तक उसके पहले ही लक्ष्मण ने कहा कि हे भद्र ! हे समीचीन बुद्धिके धारक दूत ! तुम्हें मालूम है कि राजा अतिवीर्यके उस तरह रष्ट होनेमें भरतकी कैसी चेष्टा कारण है अर्थात् अतिवीर्य और भरतमें विरोध होने का क्या कारण है ? ॥२७-२८॥ इस प्रकार लक्ष्मणके पूछनेपर उस वायुगति नामक दूतने कहा कि मैं चूँकि राजाका अत्यन्त अन्तरङ्ग व्यक्ति हूँ अतः मुझे सब मालूम है ॥२९॥ इसके उत्तरमें लक्ष्मणने कहा कि तो मैं सुनना चाहता हूँ । इस प्रकार कहे जानेपर वायुगति दूत बोला कि यदि आपको कुतूहल है तो चित्त स्थिर कर सुनिए मैं कहता हूँ ॥३०॥ उसने कहा कि एक बार हमारे राजा अतिवीर्यने श्रुतबुद्धि नामका निपुण दूत भरतके पास भेजा, सो उसने जाकर भरतसे कहा कि जो इन्द्रके समान पराक्रमी है । जिसे समस्त राजा नमस्कार करते हैं तथा जो नयके प्रयोग करनेमें अत्यन्त निपुण है ऐसे राजा अतिवीर्यका मैं दूत हूँ ॥३१-३२॥ जो मनुष्योंमें सिंहके समान है तथा जिससे भयभीत होकर शत्रु रूप मृग अपनी वसतिकाओंमें निद्राको प्राप्त नहीं होते ॥३३॥ चार समुद्र ही जिसकी कटिमेंखला है, ऐसी समस्त पृथिवी खाँके समान बड़ी विनयसे जिसकी आज्ञाका पालन करती है, जो उत्तम क्रियाओंका आचरण करनेवाला है तथा सन ओरसे जिसकी आत्मा अत्यन्त वलिष्ठ है, ऐसे राजा पृथिवीपर मेरे मुद्रमें स्थापित किये हुए, अक्षरोंसे आपको आज्ञा देते हैं कि हे भरत ! तू शीघ्र ही आकर मेरी दासता स्वीकृत कर अथवा अयोध्या छोड़कर समुद्रके उस पार भाग जा ॥३४-३६॥

तदनन्तर जिसका शरीर मोक्षसे घ्याप्त हो रहा था तथा उठी हुई दावानलके समान जिसका प्रतिकार करना कठिन था ऐसा शत्रुघ्न तीक्ष्ण वाणीसे बोला कि अरे दूत ! राजा भरत उसकी भृत्यताको उस तरह अभी हाल स्वीकृत करते हैं कि जिस तरह उसका यह कहना ठीक सिद्ध हो जाय ? अयोध्या छोड़नेकी बात कही सो अभ्युदयको धारण करनेवाले राजा भरत अयोध्याको मन्त्रियों पर छोड़ लुद्र मनुष्योंको वश करनेके लिए अभी हाल समुद्रके पार जाते हैं ॥३७-३९॥ परन्तु मैं तुम्हसे कह रहा हूँ कि जिस प्रकार मदान्मस हाथीके प्रति गधेकी गर्जना उचित नहीं जान पड़ती, उसी प्रकार भरतके प्रति तरे स्वामीकी यह गर्जना त्रिलकुल ही उचित नहीं है ॥४०॥ अथवा उसके यह वचन स्पष्ट ही उसकी मृत्युको सूचित करते हैं । जान पड़ता है

युक्तमेवातिवीर्यस्य भरते कर्तुर्मादृशम् । पितुर्येन समो भ्राता ज्येष्ठोऽनावपमानितः ॥५६॥  
 आगच्छाम्यहमिन्धुक्त्वा ऐस्रवाहं महीधरः । प्रतिप्रेष्याङ्गोमंत्रं रामेण पृथिवीधरः ॥५७॥  
 अतिवीर्योऽसिदुर्वाररद्वघ्नना तं व्रजाम्यहम् । एवं महीधरेणोक्ते पद्मो विश्वध्वमग्रवान् ॥५८॥  
 अज्ञातैरिदमस्मान्निः साधनीयं प्रयोजनम् । ततो न महता कृत्य संरभेण तु पार्थिव ॥५९॥  
 सिद्ध स्वमिह कुर्वाणः सुप्रयुक्तमह तव । पुत्रनामान्भिः सार्धमन्तं तस्य व्रजाम्यरे. ॥६०॥  
 इत्युन्वा रथमारुह्य परं सारयलान्वितैः । महीधरसुतैः साक सनीतो लक्ष्मणान्वितः ॥६१॥  
 नन्द्यावर्तपुरीं रामो गन्तुं प्रववृते जवी । प्राप्तश्चावस्थितस्तस्य पुरस्य निकटतरे ॥६२॥  
 सनुकृत्ये कृते तत्र सम्बन्धितनयै. सह । रामलक्ष्मणयोर्मन्त्रः सीतायाश्चेत्यवर्तत ॥६३॥  
 जगाद् जानकी नाथ भवतः सखिबी मम । वक्तु नैवाधिकारोऽस्ति किं तारा भान्ति भास्करे ॥६४॥  
 तथापि देव भापेऽहं प्रेरिता हितकाम्यथा । जातो वशलतातोऽपि मणि. संगृह्यते ननु ॥६५॥  
 अतिवीर्योऽतिवीर्योऽय महासाधनसगतः । क्रूरकर्मा कथं शक्यो जेतु भरतभृशता ॥६६॥  
 अतस्तन्निये तावदुपायाश्चित्यतां द्रुतम् । सहसारम्यमाण हि कार्यं व्रजति सशयम् ॥६७॥  
 त्रिलोकेऽप्यस्ति नासाध्य भवतो लक्ष्मणस्य वा । किन्तु प्रस्तुतमप्यस्या समारुह्य प्रशस्यते ॥६८॥  
 ततो लक्ष्मीधरोऽनोचत्किमेवं देवि भापसे । परय र्वो निहित पापमणुवीर्यं मया रणे ॥६९॥  
 रामपादरज पूतशिरसो मे सुरैरपि । न शक्यते पुरः स्थानु क्षुद्रवीर्यं तु का कथा ॥७०॥

चाले रामने वनमालाके पिता राजा पृथिवीधरको संकेत कर खेच्छानुसार कहा कि जिसने पिताके समान बड़े भाईको अपमानित किया है ऐसे भरत पर अतिवीर्यका ऐसा करना उचित ही है ॥५५-५६॥ तदनन्तर 'मैं अभी आता हूँ' इस प्रकार कहकर राजा पृथिवीधरने दूतको तो बिदा किया और रागके साथ बैठकर इस प्रकार सलाह की कि 'अतिवीर्यका निराकरण करना सरल नहीं है इसलिए मैं छलसे जाता हूँ। राजा पृथिवीधरके इस प्रकार कहने पर रामने विश्वासपूर्वक कहा कि हम लोगोंको यह कार्य अज्ञात रूपसे चुपचाप करना योग्य है अतः हे राजन् ! यद्ये आडम्बरकी आवश्यकता नहीं है ॥५७-५८॥ आप सुचारु रूपसे अपना काम करते हुए यहीं रहिये मैं आपके पुत्र तथा जैवाईके साथ शत्रुके सम्मुख जाता हूँ ॥६०॥ इस प्रकार कहकर राम, लक्ष्मण और सीताके साथ रथपर सवार हो श्रेष्ठ सेना सहित राजा पृथिवीधरके पुत्रोंको साथ ले नन्द्यावर्तपुरीकी ओर चले तथा बेगसे चलकर नगरीके निकट जाकर ठहर गये ॥६१-६२॥ वहाँ स्नान भोजन आदि शरीर सम्बन्धी कार्य कर चुकनेके बाद राम लक्ष्मण, तथा सीताकी पृथिवीधरके पुत्रोंके साथ निम्न प्रकार सलाह हुई ॥६३॥ सलाहके बीच सीताने रामसे कहा कि हे नाथ ! यद्यपि आपके समीप मुझे कहनेका अधिकार नहीं है क्योंकि सूर्यके रहते हुए क्या तारा शोभा देते हैं ? ॥६४॥ तथापि हे देव ! हितकी इच्छासे प्रेरित हो कुछ कह रही हूँ सो ठीक ही है क्योंकि वंशकी लतासे उत्पन्न हुआ मणि भी तो ब्राह्म होता है ॥६५॥ सीताने कहा कि यह अतिवीर्य, अत्यन्त बलवान, बड़ी भारी सेनासे सहित तथा क्रूरता पूर्ण कार्य करनेवाला है सो भरतके द्वारा कैसे जीता जा सकता है ? ॥६६॥ अतः शीघ्र ही उसके जीतनेका उपाय सोचिये क्योंकि सहसा प्रारम्भ किया हुआ कार्य संशयमें पड़ जाता है ॥६७॥ यद्यपि तीन लोकमें भी ऐसा कार्य नहीं है जो आप तथा लक्ष्मणके असाध्य हो किन्तु जो कार्य प्रकृत कार्यको न छोड़कर प्रारम्भ किया जाता है वही प्रशंसनीय होता है ॥६८॥ तदनन्तर लक्ष्मणने कहा कि हे देवि ! ऐसा क्यों कहती हो तुम कल ही अणुवीर्य ( अतिवीर्य ) को रणमें मेरे द्वारा मरा हुआ देख लेना ॥६९॥ रामकी चरण-भूलिसे जिसका शिर पवित्र है ऐसे मेरे

वैराग्यादधवा ताते तपोवनमुपागते । नरेन्द्रेण समाविष्टो ग्रहेण खलवेष्टितः ॥४२॥  
 यद्यधुपशम यातस्ताताग्निमुक्तिकाग्न्या । तथापि निर्गतस्तस्मात्कुलिङ्गस्तं दहाम्यहम् ॥४३॥  
 सिंहे कान्द्रकीटालपङ्कलोहितनेसरे । शान्तेऽपि शावकस्तस्य कुरुते करिपातनम् ॥४४॥  
 इयुक्त्वा दहामानोरुषेणकान्तरभीषणम् । जहास तेजसास्थानं प्रसमानः इवाखिलम् ॥४५॥  
 जगाद् च कुदूतस्य तावदस्य विभीषिताम् । खलीकारोऽप्यर्वायस्य सत्यङ्गार इव द्रुतम् ॥४६॥  
 इयुक्ते पादयोर्दूतो गृह्णात्वा कुपितैर्भटैः । सारमेय इवागस्वी<sup>३</sup> हन्यमानः कृतध्वनिः ॥४७॥  
 आकृष्टो नगराम्भ्य यावन्मुक्तश्च दुग्मितः । दग्धो दुर्वचनैर्धूलीधूसरो निरगात्ततः ॥४८॥  
 ततः सागरगम्भीरः परमार्थविशारदः । अपूर्वं दुर्वचः श्रुत्वा किञ्चित्कोपमुपागतः ॥४९॥  
 केकयागन्दन, श्रीमान्मुप्रभावनन्दनान्वितः । विनिर्नीपुररिं पुर्यां निर्यातः सचिवान्वितः ॥५०॥  
 ध्रुत्वा त मिथिलाधीश कनकः पुरुसाधनः । प्राप सिंहोदराचाश्च राजानो भक्तितत्पराः ॥५१॥  
 चक्रेण महता युक्तो भरतः प्रस्थितस्ततः । नन्द्याजतं प्रजा रञ्ज् पितेव न्यायकोविदः ॥५२॥  
 अतिवीर्योऽपि दूतेन खलीकारप्रदर्शिता । परम क्रोधमानीतः ध्रुत्वा दूषारभीषणः ॥५३॥  
 भरतायाग्नित्रोचिष्णुर्गुतु संविद्ये मतिम् । सामन्तैर्वेष्टितः सर्वैः कृतानेकमहाकुतैः ॥५४॥  
 ततो ललाटभागेन युवचन्द्रकृतिः श्रितः । वनमालापितुः सज्जां कृत्वा स्वैरं बलोऽवदत् ॥५५॥

कि वह उत्पातरूपी भूतसे प्रस्त है अथवा वायुरोगके वशीभूत है ॥४१॥ अथवा वैराग्यके योगसे पिता राजा दशरथके तपोवनके लिए चले जाने पर दुष्टसे घिरा तुम्हारा राजा ग्रहसे आक्रान्त हो गया है ॥४२॥ यद्यपि मोक्षकी आकांक्षासे पितारूपी अग्नि शान्त हो चुकी है तथापि मैं उस अग्निसे निकला हुआ एक तिलगा हूँ, सो तेरे राजाको अभी भस्म करता हूँ ॥४३॥ बड़े-बड़े हाथियोंके रुधिररूपी पङ्कसे जिसकी गरदनके बाल लाल हो रहे थे ऐसे सिंहके शान्त हो जाने पर भी उसका बच्चा हाथियोंका विघात करता ही है ॥४४॥ इस प्रकार जलते हुए वीसोंके बड़े वनके समान भयङ्कर वचन कह कर तेजसे समस्त सभाको प्रसता हुआ शत्रुन्ज जोरसे हँसा ॥४५॥ और घोला कि क्यानेके समान अल्पवीर्य (अतिवीर्य) के इस कुदूतका तिरस्कार शीघ्र ही किया जाय ॥४६॥ शत्रुनके इस प्रकार कहते ही क्रोधसे भरे योद्धाओंने उस दूतके दोनों पैर पकड़ कर उसे पसीटना शुरू किया जिससे वह पीटे जानेवाले अपराधी कुत्तेके समान काँय-काँय करने लगा ॥४७॥ इस तरह नगरीके मध्यतक घसीट कर उसे छोड़ दिया । तदनन्तर दुःखी दुर्वचनोसे जला और धूलिसे धूसर हुआ वह दूत वहाँसे चला गया ॥४८॥

तदनन्तर जो समुद्रके समान गम्भीर थे, परमार्थके जाननेवाले थे तथा जो दूतके पूर्वोक्त अपूर्व वचन सुनकर बुद्ध क्रोधको प्राप्त हुए थे ऐसे श्रीमान् राजा भरत, शत्रुन्ज भाई और मन्त्रियोंकी साथ ले, शत्रुका प्रतिकार करनेके लिए नगरीसे बाहर निकले ॥४९-५०॥ वह सुनकर मिथिलाका राजा कनक बड़ी भारी सेना लेकर भरतसे आ मिला तथा भक्तिमें तत्पर रहनेवाले सिंहेन्द्र आदि राजा भी आ पहुँचे ॥५१॥ इस प्रकार जो पिताके समान प्रजाकी रक्षा करते थे, तथा जो न्याय नीतिमें निपुण थे ऐसे राजा भरत बड़ी भारी सेनासे युक्त हो नन्द्यावर्त नगरकी ओर चले ॥५२॥

उधर अपने अपमानको दिरानेवाले दूतने जिसे अत्यन्त कुपित कर दिया था, जो क्षोभयो प्राप्त हुए समुद्रके समान भयंकर था, जो अग्निके समान दमक रहा था तथा अनेक बड़े-बड़े आश्चर्य पूर्ण कार्य करनेवाले सामन्त जिसे घेरे थे ऐसा राजा अतिवीर्यने भी भरतके प्रति चढ़ाई करनेका निश्चय किया ॥५३-५४॥ तदनन्तर ललाटसे तरुण चन्द्रमाकी आकृतिके धारण करने-

युक्तमेवातिवीर्यस्य भरते कर्तुमीदृशम् । पितुर्येन समो भ्राता ज्येष्ठोऽप्यनपमानित ॥१६॥  
 आगच्छाम्यहमित्युक्त्वा ऐश्वराह महाधर । प्रतिप्रेष्याकरोन्मत्र रामेण पृथिवाधर ॥१७॥  
 अतिवीर्योऽतिदुर्बारेदृग्भना त व्रजाम्यहम् । एव महोधरेणोक्ते पद्मो विप्रध्वजमव्रवीन् ॥१८॥  
 अज्ञातरिद्रमस्माभि साधनीय प्रयोजनम् । ततो न महता कृत्य सरभेण तु पार्थिव ॥१९॥  
 तिष्ठ त्वमिह कुर्वाण सुप्रयुक्तमह तव । पुत्रजागामृभि सार्धमन्त तस्य व्रजाम्यरे ॥२०॥  
 इयुस्त्वा रथमारुह पर सारबलान्वितै । महाधरसुतै साक ससीतो लक्ष्मणान्वित ॥२१॥  
 नन्द्यावर्तपुरीं रामो गन्तु प्रवृत्ते जर्वा । प्रातश्चावस्थितस्तस्य पुरस्य निकर्तरे ॥२२॥  
 तनुकृत्ये कृते तत्र सम्बन्धितनयै सह । रामलक्ष्मणयोर्मन्त्र सातायाश्चेत्यवर्तत ॥२३॥  
 जगद् जानकी नाथ भवत सन्नियै मम । वशतु नैवाधिकारोऽस्ति कि तारा भान्ति भास्करे ॥२४॥  
 तथापि देव भापेऽह प्रेरिता हितकाम्यया । जातो वशलतातोऽपि मणि सगृह्यते ननु ॥२५॥  
 अतिवीर्योऽतिवीर्योऽप्य महामाघनसगत । क्रूरकर्मा कथ शक्यो जेतु भरतभूभृता ॥२६॥  
 अतस्तस्मिन्ने तावदुपायाश्चिन्विता द्रुतम् । सहस्रारम्यमाण हि कार्यं व्रजति सशयम् ॥२७॥  
 त्रिलोकैऽप्यस्ति नासाप्य भवतो लक्ष्मणस्य वा । किन्तु प्रस्तुतमयवचा समारुह्य प्रशस्यते ॥२८॥  
 ततो लक्ष्मीधरोऽत्रोत्तकमेव देवि भापसे । परय श्वो निहित पापमणुवीर्यं मया रणे ॥२९॥  
 रामपादरज पूतशिरसो मे सुरैरपि । न शक्यते पुर स्थानु क्षुद्रवार्ये तु का कथा ॥३०॥

वाले रामने वनमालाके पिता राजा पृथिवीधरको सकेत कर म्वेच्छानुसार कहा कि जिसने पिताके समान बड़े भाईको अपमानित किया है ऐसे भरत पर अतिवीर्यका ऐसा करना उचित ही है ॥१५-१६॥ तदनन्तर 'मैं अभी आता हूँ' इस प्रकार कहकर राजा पृथिवीधरने दूतको तो विवा किया और रामके साथ बैठकर इस प्रकार सलाह की कि 'अतिवीर्यका निराकरण करना सरल नहीं है इसलिए मैं छलसे जाता हूँ। राजा पृथिवीधरके इस प्रकार कहने पर रामने विश्वासपूर्वक कहा कि हम लोगोंको यह कार्य अज्ञात रूपसे चुपचाप करना योग्य है अत हे राजन् । बड़े आडम्बरकी आवश्यकता नहीं है ॥१७-१८॥ आप सुचारु रूपसे अपना काम करते हुए यहीं रहिये मैं आपके पुत्र तथा जैवाईके साथ शत्रुके सम्मुख जाता हूँ ॥१९॥ इस प्रकार कहकर राम, लक्ष्मण और सीताके साथ रथपर सवार हो श्रेष्ठ सेना सहित राजा पृथिवीधरके पुत्रोंको साथ ले नन्द्यावर्तपुरीकी ओर चले तथा वेगसे चलकर नगरीके निकट जाकर ठहर गये ॥२०-२१॥ वहाँ स्नान भोजन आदि शरीर सम्बन्धी कार्य कर चुकनेके बाद राम लक्ष्मण, तथा सीताकी पृथिवीधरके पुत्रोंके साथ निम्न प्रकार सलाह हुई ॥२३॥ सलाहके बीच सीताने रामसे कहा कि हे नाथ ! यद्यपि आपके समीप मुझे कहनेका अधिकार नहीं है क्याकि सूर्यके रहते हुए क्या तारा शोभा देते हैं ? ॥२४॥ तथापि हे देव ! हितको इच्छासे प्रेरित हो कुछ कह रही हूँ सो ठीक ही है क्योंकि वशकी लतासे उत्पन्न हुआ मणि भी तो माह्य होता है ॥२५॥ सीताने कहा कि यह अतिवीर्य, अत्यन्त बलवान्, बड़ी भारी सेनासे सहित तथा व्रता पूर्ण कार्य करनेवाला है सो भरतके द्वारा कैसे जीता जा सकता है ? ॥२६॥ अत शीघ्र ही उसके जीतनेका उपाय सोचिये क्योंकि सहसा प्रारम्भ किया हुआ कार्य सशयमे पड़ जाता है ॥२७॥ यद्यपि तीन लोकमे भी ऐसा कार्य नहीं है जो आप तथा लक्ष्मणके असाध्य हो किन्तु जो कार्य प्रकृत कार्यको न छोड़कर प्रारम्भ किया जाता है वही प्रशसनीय होता है ॥२८॥ तदनन्तर लक्ष्मणने कहा कि हे देवि ! ऐसा क्यों कहती हो तुम फल ही अणुवीर्य ( अतिवीर्य ) को रणमे मेरे द्वारा मरा हुआ देख लेना ॥२९॥ रामकी चरण धूलसे जिसका शिर पवित्र है ऐसे मेरे

न यावद्धरा याति भानुरस्त कुतहली । वाधयता तावद्दयैव क्षुद्रवीर्यस्य पञ्चताम् ॥७१॥  
 युवगर्भमाध्माता सम्बन्धितनया अपि । एतद्व चोऽमुञ्च प्रतिशब्दमिवोन्नतम् ॥७२॥  
 तत पद्मो निवार्यता भ्रूमङ्गेन महामना । अग्रवील्लक्ष्मण धैर्याद्विष गणहूपयन्निव ॥७३॥  
 युक्तमुक्तमल तात जानक्या वस्तु पुष्कलम् । स्फुटाकृत तु नात्यन्तमस्यासादनभीतया ॥७४॥  
 अस्या शृणु यदाहृतमतिवीर्यो वलोद्धत । भरतेन स नो शक्यो वशीकर्तु रणाजिरे ॥७५॥  
 भागो न भरतस्तस्य दशभोऽपि भवत्यत । तस्य दावानलस्याय किं करोति महागज ॥७६॥  
 दन्तिभिरच समृद्धस्य समृद्धोऽपि तुरङ्गमै । भरतो नैव शक्तोऽस्य तथा विन्ध्यस्य केसरी ॥७७॥  
 भरतस्य त्रये नात्र सशयोऽपि समीक्ष्यते । एकान्तस्तु कुतो वापि स्याज्जन्तुप्रलयस्तथा ॥७८॥  
 वष्टमेकक्रयोजति विरोधे कारण विना । पञ्चद्वय मनुष्याणा जायते विवशस्यम् ॥७९॥  
 दुरात्मनातिवार्येण भरते च वशीकृते । जायते रघुपात्रस्य क्लृप्त्वा परय कीदृश ॥८०॥  
 नेक्ष्यते मन्धिरस्य शत्रुघ्नेन च मानिना । शैशवेन कृत दोष शत्राव्युद्धते शृणु ॥८१॥  
 विभावर्था तमिच्छाया किलत्रस्फन्ददायिना । रोद्रभूतिसमेतेन शत्रुघ्नेन चरिष्णुना ॥८२॥  
 निद्रावशाकृतान् वीरान् बहून् कृत्वा मृतञ्चतान् । हस्तिनरच दुरारोहान् प्रगल्हाननिर्भरान् ॥८३॥  
 चतु पष्टिसहस्राणि वाजिना वातरहसाम् । शतानि सप्त चेभानामञ्जनाद्रिसमविविषाम् ॥८४॥  
 बाह्यस्थानि पुरस्यास्य नीतानि दिवसैस्त्रिभि । भरतस्यान्तिक किं ते न श्रुतानि जनैर्यत ॥८५॥

सामने देव भी राडे होनेके लिए समर्थ नहीं हैं फिर अणुवीर्यकी तो बात ही क्या है ? ? ॥७१॥  
 अधया कुतहलसे भरा सूर्य जन तक अन्त नहीं होता है तब तक आज ही अणुवीर्यकी मृत्यु देख लेना ॥७२॥ तरुण लक्ष्मणके गर्भसे फूले राजा प्रथिवीधरके पुत्रोने भी प्रतिध्वनिके समान यहा जोरदार शब्द कहे ॥७३॥

तदनन्तर धैर्यसे समुद्रको कुल्लेके समान तुच्छ करनेगले महामना रामने भ्रुट्टिके भगसे पृथिवीधरके पुत्रोको रोककर लक्ष्मणसे कहा कि हे तात ! सीताने सब बात बिलकुल ठीक कही है केवल रहस्य खुल न जाय इससे भयभीत हो खुलासा नहीं किया है ॥७३-७४॥ उसका जो अभिप्राय है वह सुनो । यह कह रही है कि चूंकि अतिवीर्य बलसे उद्धत है अत भरतके द्वारा रणाङ्गणमें वश करनेके योग्य नहीं है ॥७५॥ भरत उसके दशवें भाग भी नहीं है वह दावानलके समान है अत यह महागज उसका क्या कर सकता है ? ॥७६॥ यद्यपि भरत घोड़ोसे समृद्ध है पर अतिवीर्य हाथियोसे समृद्ध है अत जिस प्रकार सिंह विन्ध्याचलका कुञ्ज नहीं कर सकता उसी प्रकार भरत भी अतिवीर्यका कुञ्ज नहीं कर सकता ॥७७॥ वह भरतको जीत लेगा इसमें कुछ भी शक्य नहीं है अधवा दो में से किसीकी जीत होगी पर उससे प्राणियोका विनाश तो होगा ही ॥७८॥ जन विना कारण ही दो व्यक्तियोंमें परस्पर विरोध होता है तब दोना पक्षके मनुष्योंका विवश होकर क्षय होता ही है ॥७९॥ और यदि दुष्ट अतिवीर्यने भरतको पश कर लिया तो फिर त्रयो रघुपशका कैसा अपयश उत्पन्न होता है ? ॥८०॥ इस विषयमें मन्धि भी होती नहीं दिखती क्याकि मानी शत्रुघ्ने लडकपनके कारण अत्यन्त उद्धत शत्रुके बहुत दोष—अपराध किये हैं सुनो, रौद्रभूतिके साथ मिलकर शत्रुघ्ने अन्धेरी रातमें छापा मार मार कर उसके बहुतसे निद्रानिमग्न चीरोको तथा जिनपर चटना कटिन था और जिनसे मन्धके निर्भर मर रहे थे ऐसे बहुतसे हाथियाको मारा । पवनने समान वेगशालो चौमिठ हजार घोडे और अञ्जनगिरिके ममान आभागाळे सात सी हाथी जो कि इसके नगरके बाहर स्थित थे तीन दिन तक चुगकर भरतके पास ले गया मो क्या लोगोके मुँहसे तुमने सुना नहीं

दृष्ट्वा कलिङ्गराजस्तान् गाढशल्यान् बहुन्नुपात् । जावेन च विनिर्मुक्तान् हत श्लाघा च साधनम् ॥८६॥  
सम्प्राप्त परम क्रोधमप्रमत्त समन्तत । वैरिनिर्यातन कृत्वा बुद्धी रणमुदीक्ष्यते ॥८७॥  
दण्डोपाय परित्यज्य भरतो मानिना वर । हेतु तन्निर्जये नान्य प्रयुक्ते बुद्धिमानपि ॥८८॥  
अथ त्व साधयस्येय वनैतन्न प्रतायते । शक्तिस्ते प्रभवेतात तीम्राशोरपि यातने ॥८९॥  
किन्त्वय वसन्तेऽत्रैव प्रदेशे भरतोऽधुना । निर्गम्य च तथायुक्त प्रकटाकरण नतु ॥९०॥  
भङ्गात्ता एव ये कार्यं कुर्वन्ति पुरुषाद्सुतम् । तेऽतिश्रलाध्या यथायन्त निवृष्य जलदा गता ॥९१॥  
इति मत्रयमाणस्य रामस्य मतिरुद्गता । अतिवार्यप्रहोपाये ततो मत्र समापित ॥९२॥  
प्रमादरहितस्तत्र कृतप्रवरसङ्घथ । सुखेन शर्वरीं नीत्वा राम स्वजनसङ्गत ॥९३॥  
भावासास्त्रिगतोऽपश्यदार्थिकाजनलक्षितम् । जिनेन्द्रभवन भङ्ग्या प्रविशेद्य च साञ्जलि ॥९४॥  
नमस्कार जिनेन्द्राणा विद्यायार्थजनस्य च । सकाशे वरपर्याया गणपाल्या मशस्त्रिकाम् ॥९५॥  
स्थापयित्वा कृता साता कृत्वामान च धनिनाम् । स्त्रात्रेणधारिभि सार्धं सुरूपैलक्ष्मणादिभि ॥९६॥  
कृत्वा पूजा जिनेन्द्राणा बहुमङ्गलभूषिताम् । नरेन्द्रभवनद्वार प्रतप्ते लालयान्वित ॥९७॥  
सुरेन्द्रगणिकातुल्य वाद्य त वणिना जनम् । सर्वं पौरजनों लग्न पश्चाद्गन्तु सविस्मय ॥९८॥  
सर्वलोकस्य नेत्राणि मनसि च सुचेष्टिता । हरन्यस्तः नृपागार प्राप्ता द्वारि सुमण्डना ॥९९॥

है ? ॥८१-८५॥ कलिङ्गाधिपति अतिवार्यने जय देखा कि बहुतसे राजाओको गहरी शल्य लगी हुई है तथा कितने ही राजा निष्पाण हो गये हैं और साथ ही बहुत सी सेनाका अपहरण हुआ है तब वह परम क्रोधको प्राप्त हुआ । अब वह सत्र ओरसे सावधान है और बुद्धिम वैरीसे बढला लेनेका त्रिचार कर रणकी प्रतात्ता कर रहा है ॥८६-८७॥ भरत मानियोंमें श्रेष्ठ है तथा बुद्धिमान् भी इसलिए वह उसके जीतनेमें एक युद्धरूपी उपायको छोडकर अन्य उपाय प्रयोगमें नहीं लाना चाहता ॥८८॥ यद्यपि तुम इसे ठीक कर सकते हो यह किसे प्रतीति नहीं है ? अथवा हे तात ! इसकी बात जाने दो तुम्हें तो सूर्यको भी गिरानेकी शक्ति है किन्तु भरत इसी प्रदेशमें विद्यमान है अर्थात् यहाँसे बहुत ही निकट है सो इस समय उस तरह अयोध्यासे निकल कर प्रकट होना उचित नहीं है ॥८९-९०॥ जो लोग अज्ञात रहकर मनुष्योंकी आश्चर्यम डाल देनेवाला भारी उपकार करते हैं वे चुपचाप बरस कर गये हुए रात्रिके भेषाके समान अत्यन्त प्रशस्तनीय हैं ॥९१॥ इस प्रकार सलाह करते करते रामको, अतिवीर्यके बरा करनेका उपाय सूझ आया और उसके वाट सलाहका काम समाप्त हो गया ॥९२॥

अथानन्तर आत्मवीजनाके साथ मिले हुए रामने, प्रमाद रहित हो उत्तमोत्तम कथाएँ कहते हुए सुरसे रात्रि व्यतीत की ॥९३॥ दूसरे दिन डेरेसे निकलकर रामने आर्यिकाओसे सहित जिनमन्दिर देखा सो हाथ जोडकर बडी भक्तिसे उसमें प्रवेश किया ॥९४॥ भीतर प्रवेशकर जिनेन्द्र भगवान् तथा आर्यिकाओंको नमस्कार किया । वहाँ आर्यिकाआकी जो वरधर्मा नामकी गणिनी थी उसके पास सीताको रक्खा तथा सीताके पास ही अपने मय शस्त्र छोडे । तदनन्तर अतिशय चतुर रामने अपने आपका नृत्यकारिणीका वेश बनाया और साथ ही अत्यन्त सुन्दर रूपको धारण करनेवाले लक्ष्मण आदिने भी स्त्रियोंके वेष धारण किये ॥९५-९६॥ तत्पश्चात् जिनेन्द्र भगवान्की मङ्गलमयी पूजाकर सबलोगोषे साथ रामने लालापूर्वक रात्रमहलके द्वारकी ओर प्रस्थान किया ॥९७॥ इन्द्रनर्तकी की तुलना करनेवाला उन नर्तकियोंको देखकर आश्चर्यसे भरे समस्त नगरवासी उनके पीछे लग गये ॥९८॥ तदनन्तर उत्तम चेष्टाआ और सुन्दर आभूषणोंको धारण करनेवाली वे नृत्यकारिणी सब लोगके नेत्र और मनको हरती हुई राजमहलके द्वारपर पहुँची ॥९९॥

ने घनुविंशतिर्भक्त्या जिनैन्द्रा भक्तितपरैः । वन्द्यन्तेऽस्माभिरित्येवं तेषां तेषां ध्वनि पुरः ॥१००॥  
 कृपा पुराणवन्मुनि गानुमु फुल्लोचनाः । गम्भीरभारतीतानासक्ताश्चारणयोपितः ॥१०१॥  
 धनिमभ्रुतपूर्वं त श्रुत्वा ताना नराधिपः । आजगाम गुणाकृष्टः काष्ठभार इवोदके ॥१०२॥  
 ततो रेचक्यादाय ललिताङ्गविवर्तनम् । नृपस्याभिमुखीभाव जगाम वरवर्त्तनी ॥१०३॥  
 मरिमतालोत्रितैस्तस्या विगलद्भ्रुसमुद्गमैः । गमकानुगतैः कर्मस्तनभारस्य हारिणः ॥१०४॥  
 मन्थरैरचान्मन्त्रारिर्जघनस्य घनस्य च । तथा बाहुलनाहारैः सुलीलकरपल्लवैः ॥१०५॥  
 पादन्वयामैर्लघुसृष्टविमुक्त परिणोत्तलैः । आद्यु सम्पादितैः स्थानैः केशपाशविवर्तनैः ॥१०६॥  
 त्रिकस्य बलनैर्भागगात्रमन्दश्रितात्मभिः । कामघणैरिर्मैलोकैः सकलः समताङ्ग्यत ॥१०७॥  
 मूर्द्धनाभिः स्वर्प्रमैर्षयास्थान नियोजितैः । नर्तकी सा जगो वरगु परिखोलसर्खास्वरम् ॥१०८॥  
 यत्र यत्र मनुदेशे नर्तकी कुर्वते स्थितिम् । तत्र तत्र सभा सर्वा नयनानि प्रयच्छति ॥१०९॥  
 तस्या रूपेण चक्षुषि स्वरेण श्रवणेन्द्रियम् । मनांसि तद्दृश्येनापि वद्मानि सद्गतो ददम् ॥११०॥  
 उफुल्लमुपराजोऽग सातन्ता दानतत्परा । बभूवुनिरलङ्कारा संन्यानाम्बरधारिणः ॥१११॥  
 आतोद्यानुगत नृत्यं तत्तस्यास्त्रिदशानपि । वशीकुर्वति कैवास्था सुहरेष्वन्यजन्तुषु ॥११२॥

तदनन्तर जिनके नेत्रकमल विकसित थे तथा जो भारतीकी गम्भीर तान सीचनेमें आमक्त थीं ऐसी उन नृत्यकारिणी स्त्रियोंने 'भक्तिमे तत्पर रहनेवाली हम सब चौबीस तीर्थ-करोंकोभक्ति पूर्वक नमस्कार करता हैं, यह कहकर सब प्रथम 'तेवा-लेवा' यह अव्यक्त ध्वनि की फिर पुराणोंमें प्रतिपादित वस्तुओंका गाना शुरू किया ॥१००-१०१॥ उन नृत्यकारिणियों की अश्रुतपूर्व ध्वनि सुनकर गुणोंसे खिचा राजा अतिवीर्य उनके पास इस तरह आ गया जिस तरह कि पानीमें गुण अर्थात् रस्तीसे खिचा काष्ठका भार सीचनेवालेके पास आता है ॥१०२॥ तदनन्तर फिरकी लेकर सुन्दर अङ्गोंको मोड़ती हुए श्रेष्ठ नर्तकी राजाके सन्मुख गई ॥१०३॥ वहाँ उसका मन्द-मन्द मुसकानके साथ देरना, भौंहोंका चलाना, विज्ञ मनुष्य ही जिसे समझ पाते थे ऐसे सुन्दर स्तनोंका कँपाना, धामी-धीमी सुन्दर चालसे चलना, स्थूल नितम्बका मट-काना, भुजा रूप लताओंका चलाना, उत्तम लीलाके साथ हस्त रूपी पल्लवोंका किराना, जिनमें शीघ्रतामें स्पर्शकर पृथिवीतल छोड़ दिया जाता था ऐसे पैर रखना, शीघ्रतासे नृत्यकी अनेक मुद्राओंका बदलना, केशपाशका चलाना, कटिकी अस्थिका हिलाना, तथा नाभि आदि शरीर के अवयवोंका दिखलाना आदि कामके वाणोंसे समस्त मनुष्य ताड़े गये थे ॥१०४-१०७॥ यह नर्तकी, जिनका यथास्थान प्रयोग किया गया था ऐसी मूर्च्छनाओं, स्वरां तथा प्रामों—स्वरांके समूहमें मणियोंके स्वरको अपने स्वरमें मिलाकर बहुत सुन्दर गा रही थी ॥१०८॥ यह नृत्यकारिणी जिस-जिस स्थानमें टहरती थी सारी सभा उसी-उसी स्थानमें अपने नेत्र लगा देती थी ॥१०९॥ सारी सभाके नेत्र उसके रूपसे, कान मधुर स्वरसे और मन-रूप तथा स्वर दोनों से मजबूत बंध गये थे ॥११०॥ जिनके मुख कमल विकसित थे ऐसे सामन्त लोग उन नर्तकियों की पुरस्कार देने-दते अलङ्काररहित हो गये थे उनके शरीरपर केवल पद्मिनेके वस्त्र ही धारण रह गये थे ॥१११॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! गायन वादनसे सहित उस नृत्य-कारिणीका यह नृत्य देवोंको भी बराबर करता था फिर जिनका हरा जाना सब घात थी

१. नेत्र नेत्रा इत्युपपत्त्यर्थम् । २. नानाशक्त्याधारण म० । ३. शरत् म० । ४. विरतने म० । ५. इतः इति इत्यन्ति मये मः । ६. च महेशे म० । ७. सन्तानां यत्पारिणी म० । ८. अतास्त्वानुगत (?) म० । ९. मनरेष्वन्य म० ।



विधाय शृणुमादीनां चरित्तम्य प्रकीर्तनम् । संक्षेपेण वशीकृत्य ममिति मरुणां भृगुम् ॥११३॥  
 गंगातेन समुद्रात्प्रा रात्रानमिति नर्तकी । दधाना परमां दीप्तिमुपात्तुं सुदुग्महम् ॥११४॥  
 अनिर्वीर्यं किमेतत्ते दुष्ट व्यस्यितं महत् । नपहीनमिद् वस्तु तेनात्र न्य निपोजितः ॥११५॥  
 किमिति स्वपिनारायण केकयानन्दनस्वया । शान्तचेताः शृगालेन केमरात्र प्रकोपितः ॥११६॥  
 एवं गनेऽपि विभ्राणः परमं विनयं द्रुतम् । मन्त्रमादय सं गात्र यदि ते जात्रिनं प्रियम् ॥११७॥  
 जाता विशुद्धवंशेषु वरकोटनभूमयः । माभूवन् विरात्रा भद्र तपता वरपोषितः ॥११८॥  
 पृताम्बवा परित्यक्ता विमुक्तारोपभूपगाः । ध्रुवं पुरा न शोभन्ते ताराश्चन्द्रमया यथा ॥११९॥  
 निवर्तय द्रुतं चित्तमशुभम्यान्तपरम् । उत्तिष्ठ प्रज निर्मागो नमस्य भरतं सुर्याः ॥१२०॥  
 एव कुरु न चेदेव कुरुने पुरुगायम । ततोऽप्यैव विनष्टोऽपि सगयोऽत्र न विद्यते ॥१२१॥  
 जात्रयेवानरण्यस्य पीत्रे रात्रयं समोहसे । चक्रामति रवी पापलक्ष्मीदोषाकारस्य का ॥१२२॥  
 पतितस्पाद्य नो रूपे मरणं ते समुद्गतम् । शलभस्येव मूढस्य दुष्टपरस्य प्रियघृते ॥१२३॥  
 देवेन भरतेनामा गरुडेन महामना । अलगदांशो भूवा प्रतिस्पर्धनमिच्छति ॥१२४॥  
 ततो निर्भंसनं स्वस्य भरतस्य च शमनम् । निशम्य संसदा साङ्गमभूत्ताद्रेयगो नृपः ॥१२५॥  
 विरक्ता च सभायन्तपरं रूषितमानसा । जुषूर्गागंवेलेव भ्रूतरङ्गमामकुला ॥१२६॥

ऐसे अन्य मनुष्योंकी तो बात ही क्या थी ? ॥११३॥ इस तरह संक्षेपसे ऋषभ आदि तीर्थंकरों के चरित्रका कीर्तन कर जय उस नर्तकीने समस्त सभाको अत्यन्त वशीभूत कर लिया तब यह सद्गीतसे परम दीप्तिको धारण करती हुई राजाको इस प्रकारका असह्य उलाहना देनेके लिए तत्पर हुई ॥११४-११४॥ उसने कहा कि हे अतिवीर्य ! यह तेरी अतिशय दुष्ट चेष्टा क्या है ? तेरा यह कार्य नीतिमे रहित है, किसने तुम्हे इस कार्यमे लगाया है ? ॥११५॥ जिस तरह शृङ्गाळ सिंहको कुपित करता है उस तरह तूने शान्त चित्त भरतको अपना नाश करनेके लिए इस तरह क्यों कुपित किया है ? ॥११६॥ इतना सब होनेपर भी यदि तुम्हे अपना जीवन प्यारा है तो शांति ही परम विनयको धारण करता हुआ जाकर भरतको प्रसन्न कर ॥११७॥ हे भद्र ! विशुद्ध कुलमे उत्पन्न तथा उत्तम क्रीड़ाकी भूमि स्वरूप तेरी ये त्रिविध विधवा न हों ॥११८॥ तुम्हसे रहित होनेपर जिनने समस्त आभूषण छोड़ दिये हैं ऐसी ये उत्तम त्रिविध चन्द्रमासे रहित ताराओंके समान निश्चित ही शोभित नहीं होगी ॥११९॥ इसलिए अगुम ध्यानमें जाने वाले अपने चित्तको शांति ही लौटा, उठ, जा और मानरहित हो भरतको नमस्कार कर । तू बुद्धिमान है ॥१२०॥ अतः ऐसा कर । हे अधम पुरुष ! यदि तू ऐसा नहीं करता है तो आज ही नष्ट हो जायगा इसमे संशय नहीं है ॥१२१॥ अतरण्यके पीता भरतके जीवित रहते ही तू राज्य चाहता है सो सूर्यके देवीप्यमान रहते चन्द्रमाकी क्या शोभा है ? ॥१२२॥ जिस प्रकार कान्ति के लोभी तथा कमजोर पद्मोंवाले मूर्ख शलभका मरण आ पहुँचता है उसी प्रकार हमलोंगोंके रूपपर आसक्त तथा छोटे सहायकोंसे युक्त तुम्ह मूढ़का आज मरण आ पहुँचा है ॥१२३॥ तू जलके सोंपके समान तुच्छ होकर भी गरुड़के समान जो महात्मा राजा भरत हैं उनके साथ ईर्ष्या करना चाहता है ॥१२४॥

तदनन्तर नृत्यकारिणीके मुरसे अपना तर्जन और भरतकी प्रशंसा सुनकर राजा अति-वीर्य सभाके साथ लाल-लाल नेत्रोंका धारक हो गया अर्थात् क्रोधवश उसके नेत्र लाल हो गये ॥१२५॥ जिसका मन अत्यन्त रुद्ध हो गया था जिसका प्रेम समाप्त हो चुका था और जो भ्रुकुटिरूपी तरङ्गोंसे व्याकुल थी ऐसी सारी सभासमुद्रको वेलाके समान चोभकीप्राप्त हुई ॥१२६॥

१. स्मृति म० । २. सुपलभुं म० । ३. मानरहितः । ४. अलगदो जटन्ताः । ५. पदरक्ष-मानसा म० ।

अतिवीर्यो रणा कपो यावज्जग्राह सायकम् । तावदुत्पय नर्तक्या सविलासकृतभ्रमम् ॥१२७॥  
 मण्डलाग्र ममाच्छ्रिय वीर्यमाणेषु राजसु । जीवग्राह विपण्णामा वेशेषु जगृहे दृढम् ॥१२८॥  
 उद्यम्य नर्तका यद्ग प्रश्यन्तो नृपसहतिम् । जगादाविनया योऽत्र स मे वध्यो विमशयम् ॥१२९॥  
 परित्यज्यातिवीर्यस्य पक्ष विनयमण्डना । भरतस्य द्रुत पादौ नमत प्रियजीविता ॥१३०॥  
 भरतो जयति श्रीमान् गुणस्कोताशुमण्डल । दशस्थन्दनवशेन्दुर्लोकानन्दकर पर ॥१३१॥  
 लक्ष्मीकुमुदता यस्य विक्राम भजते तराम् । द्विपत्तपननिर्मुक्ता कुर्वत परमाद्भुतम् ॥१३२॥  
 उज्जगाम ततो लोकवक्त्रेभ्य इति निस्वर । अहो वृत्तमिदं चित्रमिन्द्रजालोपम महत् ॥१३२॥  
 यस्य चारणकन्यानामिदमर्मादृग्विचेष्टितम् । भरतस्य स्वय तस्य शक्ति शक्र जयेदपि ॥१३४॥  
 न विप्र स किमस्माक झुद्धो नाथ करिष्यति । अधत्रा सप्रणामेषु देवो यास्यनि मार्दवम् ॥१३५॥  
 तत करिणमारुह्य रावव सातिवीर्यकं । सहित परिवर्गेण यथौ जिनवरालयम् ॥१३६॥  
 अवतार्य गजात्तत्र प्रविश्य प्रमदान्वित । चक्रे मुमहती पूजा कृतमङ्गलनिस्वन ॥१३७॥  
 वरधर्मापि सर्वेण सद्भेन सहितोपरम् । राघवेण ससीतेन नाता तुष्टेन पूजनम् ॥१३८॥  
 अतिवीर्योऽत्र पद्मेन लक्ष्मणाथ समपित । तस्यामौ वधमुपुक्त कर्तुर्माच्यत<sup>२</sup> सीतया ॥१३९॥  
 मार्वावधोऽस्य लक्ष्मीमन् कन्धरा निष्टुराशय । वेशेषु मागृहागांढ कुमार भज सौम्यताम् ॥१४०॥  
 को दोष कर्मसामर्थ्याद्यदायानृत्यापद नरा । रक्षया एव तथाप्येते दधतामतिसाधुताम्<sup>३</sup> ॥१४१॥

क्रोधसे कौपते हुए अतिवीर्यने ज्याही तलवार उठाई त्याही नर्तकीने विलासपूर्णक विभ्रम दिखाते हुए उड्डल कर तलवार छीन ली और सन राजाओंके देरते-देरते अतिवीर्यको जीवित पकड कर मज्जूतीसे उसके केश बांध लिये ॥१२७-१२८॥ नर्तकीने तलवार उठा कर राजाओंकी ओर देरते हुए कहा कि यहाँ जो भी अविनय करेगा वह नि सन्देह मेरे द्वारा वध्य होगा ॥१२९॥ यदि आप लोगोंको अपना जीवन प्यारा है तो अतिवीर्यका पक्ष छोडकर विनयरूपी आभूषणसे युक्त हो शांति ही भरतके चरणोंमें नमस्कार करो ॥१२९॥ जो लक्ष्मीसे युक्त है, गुण ही जिसकी विस्तृत किरणोंका समूह है, जो लोगोंको परम आनन्दका देनेवाला है, जिसकी लक्ष्मीरूपी कुमुदिनी शत्रुरूपी सूर्यसे निर्मुक्त होकर परम विकासको प्राप्त हो रही है तथा जो अत्यन्त आश्चर्यजनक कार्य कर रहा है ऐसा दशरथके वशका चन्द्रमा भरत जयवन्त है ॥१३१-१३२॥

तदनन्तर लोगोंके मुखसे इस प्रकारके शब्द निकलने लगे कि अहो ! यह बड़ा आश्चर्य है, यह तो बहुत भारी इन्द्रजालके समान है ॥१३३॥ जिसकी नृत्यकारिणियोंको यह ऐसी चेष्टा है उस भरतकी शक्तिका क्या ठिकाना ? वह तो इन्द्रकी भी जीत लेगा ॥१३४॥ न जाने वह राजा भरत कुपित होकर हमारा क्या करेगा ? अथवा प्रणाम करनेवालों पर वह अवश्य ही मार्दवभावको प्राप्त होगा ॥१३५॥ तदनन्तर राम अतिवीर्यको पकड हाथी पर सवार हो अपने परिजनके साथ जिनमन्दिर गये ॥१३६॥ वहाँ उन्होंने हार्थीसे उतर कर बड़े हर्षसे मन्दिरके भीतर प्रवेश किया और मङ्गलमय शब्दोंका उच्चारण कर बड़ी भारी पूजा की ॥१३७॥ मन्दिरमें सर्वमघके साथ जो वरधर्मा नामकी गणिनी ठहरी हुई थी रामने सीताके साथ सन्तुष्ट होकर उनकी भी उत्तम पूजा की ॥१३८॥ वहाँ रामने अतिवीर्यको लक्ष्मणके लिए सौंप दिया और वे उसका वध करनेके लिए उग्रत हुए तब सीताने रुहा कि हे लक्ष्मीधर ! निष्टुर अभिप्रायके धारी हो इसकी प्रीति मत छोड़ो और न जोगसे इसके केश ही पकडो । हे कुमार ! सौम्यताको प्राप्त होओ ॥१३९-१४०॥ इस बेचारेका क्या दोष है ? यद्यपि मनुष्य कर्मोंकी सामर्थ्यसे आपत्तिको प्राप्त होते हैं तथापि सज्जनताको धारण करनेवाले मनुष्य उनकी रक्षा ही करते हैं ॥१४१॥

इतरोऽपि स्वत्राकतुं माधूना नाजितो जन । किमुताथ नरेशाना सहस्राणा प्रपूजित ॥१४२॥  
 उर्थेन मुनक भद्र भवताय पर्याहृत । जानान स्वस्य सामर्थ्यं कानुगच्छति साम्प्रतम् ॥१४३॥  
 गृहाचा समयेनास्य सन्मानमुपलभिता । विमुच्यते पुनर्भूयो मर्यादय चिरन्तना ॥१४४॥  
 इयुक्तो मस्तके कृत्वा करराजावकटमलम् । जगाद् लक्ष्मणो द्वि यद्भ्रमवीपि तथैव तत् ॥१४५॥  
 आस्ता स्वामिनि ते वास्यात्तावदस्य विमोचनम् । सुराणामप्यमु पूज्य कुर्वीथ त्व प्रसादत ॥१४६॥  
 एव प्रशान्तसरम्भे सद्यो लक्ष्मणधरे स्थिते । अतिवीर्या विबुद्धात्मा स्तुत्वा पद्मभाषत ॥१४७॥  
 साधु साधु त्वया चित्र कृतमादग्विवचेष्टितम् । कदाचिदप्यनुपपन्ना ममाद्य मतिरुद्गता ॥१४८॥  
 विमुनहारमुकट दृष्ट्वा त करणान्वित । विश्रान्ध राघवोऽञ्चोत्त सौम्याकारपरिग्रह ॥१४९॥  
 मा व्रनारद्भ दैन्य व धस्व धैर्यं पुरातनम् । महतामेव जायन्ते सम्पदो विपदन्विता ॥१५०॥  
 न चात्र काचिदापत्ते नद्यावर्ते<sup>२</sup> क्रमागते । भरतस्य वशो भूत्वा कुरु राज्य यथेप्सितम् ॥१५१॥  
 अतिवीर्यस्ततोऽञ्चोत्त मे राज्येऽपुना स्पृहा । राज्येन मे क्व दत्तमपुनान्यत्र सज्जयते ॥१५२॥  
 आसान्मया कृता वाङ्मा हिमव सागरावधि । तैनु वमुन्धरा येन विभ्रता मानमुत्तमम् ॥१५३॥  
 सोऽह स्वमानमुन्मूल्य भूत्वा सारविबजित । कुर्यां प्रणतिमन्यस्य कथ पुरपता दधत् ॥१५४॥  
 पत्न्यण्डा रैरपि चोणा पालितेय महानरै । न नृसास्तेऽप्यह ग्रामै पद्मभिरनु किमेतकै ॥१५५॥  
 जन्मान्तरकृतस्यास्य बलिता पश्य कर्मण । क्षायाहानिमह येन राहुणेन्दुशिवाह्न ॥१५६॥

जो सज्जन पुरुष हैं उन्हें साधारण मनुष्यको भी दुःखी करना उचित नहीं है फिर यह तो हजारों राजाओंका पूज्य है इसकी बात ही क्या है ? ॥१४२॥ हे भद्र ! इसे आपने उश कर ही लिया है अतः इसे छोड़ दो । अपनी सामर्थ्यको जानता हुआ यह अब कहाँ जायगा ? ॥१४३॥ प्रजल शत्रुआको पकड़ कर तदनन्तर सन्धिके अनुसार सन्मान कर उन्हें छोड़ दिया जाता है यह चिरकालकी मर्यादा है ॥१४४॥

सीताके इस प्रकार कहने पर लक्ष्मणने हस्तकमल जोड़ मस्तक पर लगाते हुए कहा कि हे देवि ! आप जो कह रही हैं वह वैसा हा है ॥१४५॥ हे स्वामिनि, आपकी आज्ञासे इसका छोड़ना तो दूर रहा इसे आपके प्रसादसे ऐसा कर सकता हूँ कि यह त्रेपताआका भा पूज्य हो जाय ॥१४६॥

इस प्रकार शीघ्र ही लक्ष्मणके शान्त होने पर प्रतिबोधको प्राप्त हुआ अतिगौरव रामकी स्तुतिकर कहने लगा ॥१४७॥ कि आपने जो यह अद्भुत चेष्टाकी सी वडा भला किया । मेरी जो बुद्धि कभा उत्पन्न नहीं हुई वह आन उत्पन्न हो गई ॥१४८॥ इतना कह उसने हार और मुकुट उतार कर रख दिये । यह देख सौम्य आकारको धारण करनेवाले दयालु रामने विरवास दिलाते हुए कहा कि हे भद्र ! तू दानताको प्राप्त मत हो, पहले जैसा धैर्य धारण कर, त्रिपत्तियासे सहित सम्पदाएँ महापुरुषाको ही प्राप्त होती हैं ॥१४९-१५०॥ अब मुझे कोई आपत्ति नहीं है । इस क्रमागत नन्द्यावर्तनगरम भरतका आज्ञानारी होकर इच्छानुसार राज्य कर ॥१५१॥

तदनन्तर अतिवीर्यने कहा कि अब मुझे राज्यकी इच्छा नहीं है । राज्यने मुझे फल दे दिया है । अब दूसरे ही अवस्थामे लगना चाहता हूँ ॥१५२॥ उत्कट मानको धारण करते हुए मैंने हिमवान्से लेकर समुद्र तककी सारी प्रथिवी जीतनेकी इच्छा की थी सो मैं अपने मानको उखाड़कर नि सार हो गया हूँ अब मैं पुरुषत्वको धारण करता हुआ अर्थको नमस्कार कैसे कर सकता हूँ ? ॥१५३-१५४॥ जिन महापुरुषाने इस द्रव्यखण्डकी पृथिवीकी रक्षा की है वे भी सन्तोषको प्राप्त नहीं हुए फिर मैं इन पाँच गाँवोंसे कैसे सतुष्ट हो सकता हूँ ? ॥१५५॥ जन्मा तरमं किये हुए इस कर्मकी बलवत्ता तो देखो कि किस प्रकार गहु चन्द्रमाको कात्ति

मानुष्यस्मिद् जात वारमुक् मयाधुना । सुरागामपि वार्तया किमन्यत्राभिर्धायताम् ॥१५०॥  
 सोऽह पुनर्भवाद्भारवया सम्प्रतिधापित । तथाविधा भवे चेष्टा यया मुक्तिरवाप्यते ॥१५१॥  
 इयुषवा क्षमयिवा त परिवर्गममन्वितम् । गन्वा केसरिविकान्तो मुनि श्रुतिधरश्रुतिम् ॥१५२॥  
 करान्जकुडमलाङ्गेन विजय शिरसा नतिम् । जगाद् नाथ वाञ्छामि दीक्षा देगम्भरामिति ॥१६०॥  
 आचार्यैर्गवमियुके परित्यज्याशुकादिकम् । केशलुञ्ज विधायासा महाव्रतधरोऽभवत् ॥१६१॥  
 आभार्धनिरतस्त्वत्तरागद्वैपपरिग्रह । विजहार हिति धीरो यत्रास्तमितवास्यसो ॥१६२॥  
 ऋक्षापदयुक्तेषु गदनेषु वनेषु म । चकार वसति निर्भीर्गह्वरेषु च भूभूताम् ॥१६३॥

### उपजाति

विमकनिश्चेषपरिग्रहाश गृहीतचारिग्रभर मुशीलम् ।  
 नानातप शोपितदेहमुद्ध महामुनिं त नमतातिर्वीर्यम् ॥१६४॥  
 रानप्रयापादितचारभूष दिगम्बर माधुगुणाव्रतसम् ।  
 सम्प्रस्थित योग्यवर विमुक्तेर्महामुनि त नमतातिर्वीर्यम् ॥१६५॥  
 इद पर चेष्टितनातिर्वीर्यं शृणोति यो यश्च सुधीरधीते ।  
 प्राप्नोति वृद्धि सद्भोऽपि मध्ये रत्रिप्रभाऽस्मा व्यसन न लोक ॥१६६॥

इत्यार्षे रविपेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरितेऽतिनीर्यनिष्कमणामिधान नाम सप्तत्रिंशत्तम पर् ॥३७॥

रहित कर देता है उसा प्रकार इसने मुझे कान्तिरहित—निस्तेज कर दिया ॥१५६॥ जिस मनुष्य पर्यायके लिए देव भी चर्चा करते हैं औरांकी तो वात ही क्या है उस मनुष्य पर्यायको मने अत्र तत्र नि मार रोया ॥१५७॥ अत्र मे दूसरा जन्म धारण करनेसे भयभीत हो चुका हूँ इसलिए आपसे प्रतिज्ञोष पाकर यह चेष्टा करता हूँ कि जिससे मुक्ति प्राप्त होती है ॥१५८॥ इस प्रकार कहकर तथा परिजन सहित रामसे क्षमा कराकर सिंहके समान शूर धीरताको धारण करता हुआ अतिवीर्य श्रुतिधर मुनिराजने पास गया और अञ्जलि युक्त शिरसे नमस्कार कर बोला कि हे नाथ ! मैं देगम्भरी दीक्षा धारण करना चाहता हूँ ॥१५९-१६०॥ 'एवमस्तु' इस प्रकार आचार्यने कहते ही यह वस्त्रादिका त्यागकर तथा केश लोचकर महाव्रतका धारी हो गया ॥१६१॥ आत्माके अर्धमे तत्पर, तथा राग द्वेष आदि परिग्रहसे रहित होकर यह धीर-वीर प्रयत्नमे विहार करने लगा । विहार करते करते जहाँ सूर्य अस्त हो जाता था वहीं वह ठहर जाता था ॥१६२॥ सिंह आदि दुष्ट जानवरोंसे युक्त सघन वनो तथा पर्वतोंकी गुफाओंमें वह निर्भय होकर निवास करता था ॥१६३॥ जिसने समस्त परिग्रहकी आशा छोड़ दी थी, जिसने चारित्रका भार धारण किया था, जो उत्तम शीलसे युक्त था, नाना प्रकारके तपसे जिसने अपना शरीर सुगम दिया, तथा जो स्वयं शुभ रूप था उन महामुनि अतिवीर्यको नमस्कार करो ॥१६४॥ सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्ररूपी मनोहर आभूषणसे जो सहित थे, दिशाएँ ही जिनके अन्तर—वन्ध थे, मुनियोंके अट्टाईम मूल गुण ही जिनके आभरण थे, जिन्होंने कर्मरूपी शत्रुओंको हरनेके लिए प्रस्थान किया था, और जो मुक्तिके योग्य वर थे उन महामुनि अतिवीर्यको नमस्कार करो ॥१६५॥ गीतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! अतिवीर्य मुनिके इस उत्कृष्ट चरितको जो बुद्धिमान् सुनता है अथवा पढ़ता है वह मभाके वीच बुद्धिको प्राप्त होता है तथा मूर्खके समान प्रभासी धारण करता हुआ कभी कष्ट नहीं पाता ॥१६६॥

इन प्रकार आर्ष नामने प्रसिद्ध, रविपेणाचार्य कथित पद्मचरितमें राजा अतिवीर्यकी दीक्षान्त वरान करनेवाता मर्तामरा पर् ममात्त हुआ ॥३७॥

## अष्टत्रिंशत्तमं पर्व

अथ पद्मोऽतिवीर्यस्य तनय नयकोविद् । विजयस्यन्दनाभिग्न्यमभ्यपिञ्चपितुः पत्ने ॥१॥  
 दर्शिताजोपवित्तोऽमावरविन्दातनुभुवम् । स्वसार रतिमालारथा लक्ष्मणाप न्यवेद्यवत् ॥२॥  
 एवमस्त्रियभाष्टाया तस्या पद्मेन लक्ष्मण । लक्ष्माभिवाङ्गमायात्रा ज्ञात्रा सप्रमदोऽभवत् ॥३॥  
 तत कृत्वा जिनेन्द्राणा पूजा विस्मयदायिनाम् । इयाय विन्यस्थान लक्ष्मणाद्यन्वितो बल ॥४॥  
 द्वांश्चा मुवातिवीर्यस्य नर्तकीप्रहहेतुनाम् । शयुञ्ज हास्यसञ्चान निपिथ्य भरतोऽवदत् ॥५॥  
 अतिवीर्यो महाग्न्यस्तस्य कि भद्र हास्यते । त्यक्त्वा यो विपयान् कणार्धं परा शान्तिमुपाश्रित ॥६॥  
 प्रभात्र तपस परय त्रिदशेष्वपि दुर्लभम् । मुनिर्यो रिपुरासीन्न यत्प्राप्ताऽर्मा प्रणम्यताम् ॥७॥  
 श्लाघामियतिवार्यस्य यावज्जुर्न स तिष्ठति । विजयस्यन्दनस्ताव प्राप्त सामन्तमध्यग ॥८॥  
 प्रणम्य भरतायासौ स्थित सङ्कथया चण्डम् । ज्यायसी रतिमालाया नाम्ना विजयसुन्दराम् ॥९॥  
 उपनिन्ये शुभा कन्या नानाअङ्कारधारिणाम् । कोश च विपुल सार साधन च प्रसन्नवत् ॥१०॥  
 कन्यामेकामुपादाय वेकयानन्दनस्तत । तस्यैवानुमग सर्व स्थितरेषा महामनाम् ॥११॥  
 कौतुको क्लिकाकर्णमानसोऽथ महाजवै । नर्थ प्रवृत्ते द्रष्टुमतिवीर्यदिगम्बरम् ॥१२॥  
 वार्मा महामुनि फासार्थिति पृच्छन्नुभावन । एषोऽयमित्यमु भुर्न कथ्यमानमियाय स ॥१३॥

अथानन्तर न्यायके बेरा श्रीरामने अतिवीर्यके पुत्र विजयरथका उसके पिताके पत्र पर अभिप्रेर किया ॥१॥ उमने अपना सत्र धन दिखाया और माता अरविन्दाकी पुत्री अपनी रत्नमाला नामक बहिन लक्ष्मणके लिए देनी कही सो रामने उसे 'एवमस्तु' कहकर स्वीकृत किया रत्नमालाको पा, मानो लक्ष्मी ही गोदमे आई है, यह जानकर लक्ष्मण अधिक प्रसन्न हुए ॥२-३॥ तदनन्तर लक्ष्मण आदिसे महित राम, जिनेन्द्र भगवान्को आश्चर्यदायिना पूजा कर राजा पृथ्वीधरके विजयपुर नगर वापिस आये ॥४॥ नर्तकाके पकड़नेके कारण राजा अतिवार्यने वीक्षा धारण की है यह सुनकर शत्रुत्र हास्य करने लगा सो भरतने मनाकर कहा ॥५॥ कि हे भद्र ! जो कष्टकारी विपयोको छोड़ कर परम शान्तिको प्राप्त हुआ है ऐसा अतिवीर्य महाधन्य है उसकी तू क्या हँसो करता है ? ॥६॥ जो देवाके लिए भी दुर्लभ है ऐसा तपका प्रभाव देख । जो हमारा शत्रु था अब मुनि होने पर वह हमारे नमस्कार करने योग्य गुरु हो गया ॥७॥ इस प्रकार अतिवीर्यकी प्रशंसा करता हुआ भरत जन तक बैठा था तब तक अनेक सामन्तोंके साथ विजयरथ वहाँ आ पहुँचा ॥८॥ वह भरतको प्रणाम कर उत्तम वार्ता करता हुआ चणभर बैठा । तदनन्तर उसने रतिमालाकी बड़ी बहिन विजयसुन्दरी नामकी शुभ कन्या जो कि नाना अलङ्कारको धारण कर रही थी भरतके लिए समर्पित की । साथ ही बड़ी प्रसन्न दृष्टिसे बहुत भारी राजना और उत्तम सेना भी प्रदान का ॥९-१०॥ तदनन्तर उस अद्वितीय कन्याको पा कर भरत बहुत प्रसन्न हुआ उमने विजयरथकी इन्द्रानुबूल सब कार्य स्वीकृत किया सो ठीक ही है क्याकि महापुरुषाको यही रीति है ॥११॥

अथानन्तर जिसका मन कौतुक और उत्कण्ठासे न्याय था ऐसा भरत महावेगशाली घोड़ोंसे अनिर्वाय मुनिराजके दर्शन करनेके लिए चला ॥१२॥ वह उत्तम भावनासे सहित था तथा पृष्टता जाता था कि ये महामुनि कहाँ हैं ? और सेपक कहते

ततो विपमपापाणनिवहात्यन्तदुर्गमम् । नानाद्रुमसमाकीर्णं कुसुमामोदवासितम् ॥१४॥  
 तज्जेन कथित रम्य पर्वत श्वापदाकुलम् । आरुरोहावतीर्याश्चाद्विनीताकारमण्डितः ॥१५॥  
 रोपतोपविनिमुक्तं प्रशान्तकरण विभुम् । शिलातलनिपण्णं तमेकस्मिद्भिव्वाभयम् ॥१६॥  
 अतिवीर्यमुनि इष्टा सुधोरतपसि स्थितम् । शुभध्यानगताभ्याम ज्वलन्तं श्रमणश्रिया ॥१७॥  
 उक्त्वा नयनो लोक सर्वो हृष्टतनूरुहः । विस्मय परम प्राप्तो ननाम रचिताञ्जलिः ॥१८॥  
 कृवास्थ महती पूजा भरत श्रमणप्रियः । प्रणम्य पादयोरुचे भक्त्या विनतविग्रहः ॥१९॥  
 नाथ शूरस्त्वमेवैकः परमार्थविशारदः । येनेय दुर्धरा दीक्षा धृता जिनवरोदिता ॥२०॥  
 विशुद्धकुलजातानां पुरुषाणा महाभ्रमनाम् । ज्ञातससारसाराणामीदमेव विचेष्टितम् ॥२१॥  
 मनुष्यलोकमासाद्य फल यद्भिवान्ब्रुवते । तदुवाच त्वया साधो वयमत्यतदुःखिनः ॥२२॥  
 चन्तव्य दुरित किञ्चिदस्माभिस्त्वर्थाहितम् । कृतार्थोऽसि नमस्तुभ्य प्राप्तयातिप्रतीक्ष्यताम् ॥२३॥  
 ह्ययुक्त्वा साञ्जलि कृत्वा महासाधोः प्रदक्षिणाम् । अवतानं कथा मौनो कुर्वाणो धरणाधरात् ॥२४॥  
 स्थूरीपृष्ठ समाह्वय पूर्वमाणः सहस्रशः । सामन्तैः प्रस्थितोऽयोध्यां विभवाम्भोधिमध्यगः ॥२५॥  
 महाभाधनसामन्तमण्डलस्यान्तरं स्थितः । शुशुभेऽसौ यथा जम्बूद्वीपोऽन्यद्वीपमध्यगः ॥२६॥  
 क्व गतास्ता नु नतवयः कृतलोकानुरज्जवाः । स्वर्जाविनेऽपिनिर्लोभा विदुष्यां मयि प्रियम् ॥२७॥

जाते थे कि ये आगे विराजमान हैं ॥१३॥ तदनन्तर जो ऊँचे नीचे पापाणोंके समूहसे अत्यन्त दुर्गम था, नाना प्रकारके वृक्षांसे व्याप्त था, फूलोंकी सुगन्धिसे सुवासित था, और जङ्गली जानवरोंसे युक्त था ऐसे जानकार सेवकोंके द्वारा यथाथे हुए पर्वतपर भरत चढ़ा और घोड़ेमें उतरकर विनीत वेपसे शोभित होता हुआ अतिवीर्य मुनिराजके दर्शनके लिए चला । ॥१४-१५॥ वे मुनिराज हर्ष-विपादसे रहित थे, शान्त इन्द्रियोंके धारक थे, विभु थे, शिलातल पर विराजमान थे, एक सिहके समान निर्भय थे, घोर तपमें स्थित थे, शुभ ध्यानमें लीन थे और मुनिपनेकी लक्ष्मीसे देदीप्यमान थे ॥१६-१७॥ मुनिराजके दर्शनकर सबलोगोंके नेत्र विकसित हो गये और सबके शरीरमें हर्षसे रोमाञ्च निकल आये । सभीने परम आश्चर्यको प्राप्त हो अञ्जलि जोड़कर उन्हें नमस्कार किया ॥१८॥ जिसे मुनि बहुत प्रिय थे ऐसे भरतने उन मुनिराजकी बड़ी भारी पूजा की, चरणोंमें प्रणाम किया और फिर भक्तिसे नतशरीर होकर इस प्रकार कहा कि हे नाथ ! जिसने यह जिनेन्द्र-प्रतिपादित कठिन दीक्षा धारण की है ऐसे एक आप ही शूरवीर हो तथा आप ही परमार्थके जाननेवाले हो ॥१९-२०॥ विशुद्ध कुलमें उत्पन्न तथा संसारके सारको जाननेवाले महापुरुषोंकी ऐसी ही चेष्टा होती है ॥२१॥ मनुष्य लोक पाकर जिस फलकी इच्छा की जाती है हे साधो ! वह फल आपने पा लिया पर हम अत्यन्त दुर्गो हैं ॥२२॥ हे नाथ ! हमलोगोंसे आपके विषयमें जो कुछ अनिष्ट-पाप रूप चेष्टा हुई है उसे क्षमा कीजिए । आप कृतकृत्य हैं, अतिशय पूज्यताको प्राप्त हुए आपके लिए हमारा नमस्कार है ॥२३॥ इस प्रकार महामुनिराज अतिवीर्यसे कहकर तथा अञ्जलि सहित प्रदक्षिणा देकर उन्हींसे सम्बन्ध रखनेवाली कथा करता हुआ भरत पर्वतसे नीचे उतरा ॥२४॥ तदनन्तर हजारों सामन्त जिम्मे साथ थे तथा जो विभव रूपी समुद्रके बीचमें गमन कर रहा था ऐसा भरत हस्तिनाके पृष्ठ पर सवार हो अयोध्याके लिए वापिस चला ॥२५॥ बड़ी भारी सेना और सामन्तोंके बीचमें स्थित भरत ऐसा सुरोभित हो रहा था मानो अन्य द्वीपोंके मध्यमें स्थित जम्बूद्वीप ही हो ॥२६॥ भरत प्रमत्त चित्तसे इस प्रकार विचार करता जाता था कि जिन्होंने अपने जीवनका भाँ लोभ छोड़कर हमारा इष्ट किया ऐसी लोगोंको अनुरजित करने-

पुर कृत्वातिवीर्यस्य महोया परमा स्तुतिम् । नर्तकीभि कृत कर्म चित्रमेतद्दहो परम् ॥२८॥  
 छांणा कुतोऽथवा शक्तिरीदृशी विष्टपेऽखिले । जिनशासनदेवीभिर्नूनमेतदनुष्ठितम् ॥२९॥  
 चिन्तयन्नयमित्यादि सुप्रसन्नेन चेतसा । जगाम धरणी परयज्ञानास्यसमाकुलम् ॥३०॥  
 व्यासाशेषजगत्काति प्रभाध परम दधत् । सशत्रुघ्नो विवेशासी विनीत<sup>१</sup> परमोदय ॥३१॥  
 साक विजयसुन्दर्यां तस्थी तत्र रति भजन् । सुलोचनापरिष्वको यथा जलदनिस्वन<sup>२</sup> ॥३२॥  
 आनन्द सर्वलोकस्य कुर्वाणौ रामलक्ष्मणौ । कञ्चिकाल पुरे स्थि वा पृथिवीपरभूयुत ॥३३॥  
 जानक्या सह सन्मन्य कर्तव्याहितमानसी । भूय प्रत्यागुमुद्युर्षी समुद्रेशमभाषितम् ॥३४॥  
 वनमाला ततोऽबोचल्लक्ष्मण चाकलक्षणा । स्वल्पे विभ्रती नेत्रे तरत्तरलतारके ॥३५॥  
 भवश्य यदि भोक्तव्या मन्दभाग्याहक त्वया । पुरैव रक्षिता कस्मान्मुमूर्षन्ती वद प्रिय ॥३६॥  
 सौमित्रिरगद् भद्रे विपाद् मा गम प्रिये । अयत्पदैव कालेन पुनरेमि वरानने ॥३७॥  
 मग्यदर्शनहाना या गतिं यान्ति सुविभ्रमे । व्रजेय ता पुन चित्र न चेदेमि तवान्तिकम् ॥३८॥  
 नराणा मानदग्धाना साधुनिन्दनकारिणाम् । प्रिये पापेन लिप्येऽह यदि नायामि तेऽन्तिकम् ॥३९॥  
 रक्षितव्य पितृवैश्यमरमाभि प्राणवल्लभे । दक्षिणोदन्वत कूल गन्तव्य निविचारणम् ॥४०॥  
 मलयोपत्यका<sup>३</sup> प्राय कृवा परममालयम् । नेप्यामि भवतीमेव वरोरु छतिमाव्रज<sup>४</sup> ॥४१॥  
 समये<sup>५</sup> साम्बविलेति वनमाला सुभाषितै । भजे लङ्गलिन पारवं सुमित्राकुचितसम्भव ॥४२॥

वाली वे नर्तकियों कहा गई होगी ? ॥२७॥ राजा अतिवीर्यके सामने हमारी परम स्तुति कर उन नर्तकियोने जो काम किया । अहो ! वह बड़े आश्चर्यकी बात है ॥२८॥ अथवा समस्त ससारमें स्त्रियोंकी ऐसी शक्ति कहाँ है ? निश्चयसे यह कार्य जिनशासनकी देवियोंने किया है ।<sup>१</sup> तदनन्तर जो नाना प्रकारके धान्यसे युक्त पृथिवीको देस रहा था, जिसकी कीर्ति समस्त ससारमें व्याप्त थी, जो परम प्रभाजको धारण कर रहा था और जो उत्कृष्ट अभ्युदयसे युक्त था ऐसे भरतने शत्रुत्रके साथ अयोध्यामें प्रवेश किया ॥२९-३१॥ वहाँ विजयसुन्दरीके साथ प्रीतिको धारण करता हुआ भरत सुलोचना सहित मेघरवर ( जयकुमार ) के समान सुखसे रहने लगा ॥३२॥

अथानन्तर सत्र लोगोको आनन्द उत्पन्न करते हुए राम लक्ष्मण कुछ समय तक तो राजा पृथिवीधरके नगरमें रहे फिर जानकीके साथ सलाह कर आगेका कार्य निश्चित करते हुए इच्छित स्थान पर जानेके लिए उद्यत हुए ॥३३-३४॥ तदनन्तर जो सुन्दर लक्ष्णोसे युक्त थी और औंमुआसे भीगे चञ्चल कर्नानिकाओंवाले नेत्र धारण कर रही थी ऐसी वनमाला लक्ष्मणसे बोली कि हे प्रिय ! यदि मुझ मन्दभाग्याको तुम्हें अवश्य ही छोड़ना था तो पहले ही मरनेसे क्या बचाया था सो कहो ॥३५-३६॥ तब लक्ष्मणने कहा कि हे भद्रे ! हे प्रिये ! हे वरानने ! त्रिपादको प्राप्त मत होओ । मैं बहुत ही थोड़े समय बाद फिर आ जाऊँगा ॥३७॥ हे उत्तम विलासोको धारण करनेवाली प्रिये ! यदि मैं शीघ्र हो तुम्हारे पास वापिस न आऊँ तो सम्यग्दर्शनसे हीन मनुष्य जिस गतिको प्राप्त होते हैं उसी गतिको प्राप्त होऊँ ॥३८॥ हे प्रिये ! यदि मैं तुम्हारे पास न आऊँ तो साधुओंकी निन्दा करनेवाले अहंकारी मनुष्योंके पापसे लिप्त होऊँ ॥३९॥ हे प्राणवल्लभे ! हम पिताके वचनकी रक्षा करनी है और विना कुछ विचार किये दक्षिण समुद्रके तट जाना है ॥४०॥ वहाँ मलयाचलकी उपत्यकामें जाकर उत्तम भवन बनाऊँगा और फिर तुम्हें ले जाऊँगा । हे सुन्दर जौंवावाली प्रिये ! तब तक धैर्य धारण करो ॥४१॥ इस प्रकार उत्तम शब्दासे युक्त शपथोंके द्वारा वनमालाको शान्तकर लक्ष्मण रामके पास जा पहुँचे ॥४२॥

१. अयोध्याम् । २. जयकुमार, मेघरवर इति तस्यैवापर नाम । ३. मलयापत्यकां म० । ४. मात्रत म० । ५. शपथे । समये म० ।

तत सुसजने काले विदितौ तौ न वेनचित् । निर्गम्य नगराद्गन्तु प्रवृत्तौ सह सीतया ॥४३॥  
 प्रभाते तद्विनिर्मुक्तं पुर दृष्ट्वाखिलो जन । परम शोकमापन्नं कृच्छ्रेणाधारयस्नुम् ॥४४॥  
 वनमाला गृहं दृष्ट्वा लक्ष्मणेन विवर्जितम् । समयेषु समालम्ब्य जीवितं शोकिना स्थिता ॥४५॥  
 विहरन्ती ततः क्षोणीं लोकविस्मयकारिणीं । मुमुदाते महासत्त्वौ ससीतौ रामलक्ष्मणौ ॥४६॥  
 युवयुग्मवल्ग्वर्जाना मनोनयनपल्लवान् । तावन्ननुत्पारेण दह-तावाप्तु शनैः ॥४७॥  
 कस्य पुण्यवती गोप्रमेताभ्या समलकृतम् । सुजाता जनना सैका लोके यैतावजाजनत् ॥४८॥  
 धन्येयं वनितैताभ्या सम या चरति चित्तम् । ईदृशं यदि देवाना रूपं देवास्ततः स्फुग्म् ॥४९॥  
 कुत समागतावेतौ व्रजतो वा क्व सुन्दरौ । वाञ्छितं किमिमो कर्तुं स्पृष्टिरादगिष्य कथम् ॥५०॥  
 सरयोऽनेन पथा दृष्टी पुण्डराकनिरीक्षणो । व्रजन्ती सहितौ नार्यां कचिच्चन्द्रनिगाननौ ॥५१॥  
 यदिमो शोभिनीं मुग्धे मनुष्यावथवा सुरो । तत्किमर्थं त्वया शोको धार्यते गतलज्जया ॥५२॥  
 अयि मूढे न पुण्येन नितान्तं भूरिणा विना । लम्ब्यते सुचिरं द्रष्टुमेवविधनराकृति ॥५३॥  
 निवर्तस्व भज स्वस्थस्य स्वस्तं वसनमुदर । मा नैपीर्लोचने खेदमतिमात्रप्रसारिते ॥५४॥  
 नेत्रमानसचोराभ्या दृष्टान्यामपि वाञ्छिके । निष्ठुराभ्या विमेताभ्यां वाभ्यामपि पृथिं भज ॥५५॥  
 इत्याद्यालापसप्तकं कुर्वाणावथलाजनम् । रेमाते शुद्धचित्तौ तां स्वेच्छाविहृत्कारिणी ॥५६॥  
 नानाजनपदाकीर्णां पर्यट्य धरिणीमिमौ । क्षेमाञ्जलिसमाख्यानं समाप्तौ परमं पुरम् ॥५७॥  
 उद्याने निकटे तस्य जलदोःकरसन्निभे । अवस्थिता मुखैर्नैते यथा सौमनसे सुरा ॥५८॥

तदनन्तर जब सब लोग सो गये तब किसीके बिना जाने ही राम लक्ष्मण और सीताके साथ नगरसे निकल कर आगेके लिए चल पड़े ॥४३॥ जब प्रभात हुआ तब नगरको उनसे रहित देख समस्त जन परम शोकको प्राप्त हुए तथा बड़े कष्टसे शरीरको धारण कर सके ॥४४॥ वनमाला भी घरको लक्ष्मणसे रहित देख बहुत शोकको प्राप्त हुई तथा लक्ष्मणके द्वारा की हुई शपथाका आश्रय ले जीवित रही ॥४५॥ तदनन्तर महान् धैर्यके धारक राम लक्ष्मण पृथ्वी पर विहार करते हुए परम आनन्दको प्राप्त हुए । उन्हें देख लोगोंको आश्चर्य उत्पन्न होता था ॥४६॥ वे तरुण स्त्रीरूपी उज्ज्वल लताओंके मन और नेत्ररूपी पल्लवोंको कामरूपी तुपारसे जलाते हुए धीरे-धीरे विहार करते थे ॥४७॥ 'हे सति ! इन दोनोंने किस पुण्यात्माका कुल अलङ्कृत किया है ? वह कौन सी भाग्यशालिनी माता है जिसने इन दोनोंको जन्म दिया है ? ॥४८॥ यह स्त्री धन्य है जो इनके साथ पृथ्वी पर विहार कर रही है । यदि ऐसा रूप देवोंका होता है तो निश्चित ही ये देव हैं ॥४९॥ ये सुन्दर पुरुष कहाँसे आये हैं ? कहाँ जा रहे हैं ? और क्या करना चाहते हैं इनको यह ऐसी रचना कैसे हो गई ? ॥५०॥ जिनके नेत्र कमलके समान तथा मुख चन्द्रमाके तुल्य है ऐसे दो पुरुष एक स्त्रीके साथ इस मार्गसे जा रहे थे सो हे सतियो ! तुमने देवे ॥५१॥ हे मुग्धे ! ये अतिशय सुशोभित व्यक्ति मनुष्य ही अथवा देव, तू निर्लज्ज होकर शोक किस लिए धारण कर रही है ? ॥५२॥ अयि मूर्ख ! ऐसे मनुष्याका रूप बहुत भारी पुण्यके विना चिरकाल तक देखनेको प्राप्त नहीं होता ॥५३॥ इसलिए लौट जा, स्वस्थ हो, नीचे तिसके हुए वस्त्रको संभाल और अत्यधिक पसाये हुए नेत्रोंको वेद मत प्राप्त करा ॥५४॥ अरी बाले ! नेत्र और मनको चुरानेवाले इन कठोर पुरुषोंके देरनेसे क्या प्रयोजन है ? धीरज धर ॥५५॥ इस प्रकार स्त्रीजनोंको वार्तालाप करनेमें तत्पर करते हुए शुद्ध चित्तके धारक ये दोनों स्वेच्छासे विहार कर रहे थे ॥५६॥ इस प्रकार नाना देशोंसे व्याप्त पृथिवी में विहार करते हुए ये क्षेमाञ्जलि नामके परम सुन्दर नगरमें पहुँचे ॥५७॥ उस नगरके निकट ही वे मेघसमूहके समान सुन्दर एक उद्यानमें मुखपूर्वक इस प्रकार ठहर गये जिस प्रकार कि



अन्न वरगुण भुक्त्वा लक्ष्मणेनोपसाधितम् । माध्वीक सीतया सार्धमसेवत हृत्पापुष ॥५६॥  
 प्रासादागिरिमालाभिस्ततो हृत्निरीक्षण । लक्ष्मण पद्गतोऽनुष्ठा प्राप्य प्रश्रययाचिताम् ॥६०॥  
 दधान प्रवर माप्य पीताम्बरधर शुभ । स्वर क्षेमान्जलि द्रष्टु प्रतस्थे चारुविभ्रम ॥६१॥  
 नानालतोपगृहानि काननानि वराण्यसौ । सरित स्वच्छतायाश्च शुभ्राप्रसमसैकता ॥६२॥  
 त्रिचित्रातुरद्वाश्च परिजाडनपर्वतान् । देवधामानि तुहानि कूपान् वापी सभा प्रपा ॥६३॥  
 लोके च विविध परयन् दृश्यमान सविस्मयम् । विशेश नगर धीरो नानाव्यापारसङ्कुलम् ॥६४॥  
 शृणु शृण्विति तत्राय प्रधानविशिखागतम् । अशृणोऽपौरत शब्दमिति विश्रब्धभाषितम् ॥६५॥  
 पुरप कोऽन्यसो लोके यो मुक्ता राजपाणिना । शक्ति प्रसन्न शूरेन्द्रो जितपद्मा<sup>३</sup> गृहीप्यति ॥६६॥  
 स्वर्गे राज्य ददामाति गजा च प्रतिपद्यते । तथापि नानया कृच कथय शक्तियातया ॥६७॥  
 जातश्चाभिमुख शक्ते प्राग्ग्न परिर्वान्त । किं करिष्यति कन्यास्य राज्य वा त्रिदशालये ॥६८॥  
 समस्तेभ्यो हि वस्तुभ्य प्रिय जगति जावितम् । तदर्थमितरत् सर्वमिति को नावगच्छति ॥६९॥  
 श्रुत्वा कौतुका कत्रिदथ पप्रच्छ मानवम् । भद्र ! का जितपद्मेय यदर्थं भाषते जन ॥७०॥  
 सोऽवोपन्म्य युक्त्यासावतिपण्डितमाननी । किं न ते विदिता सर्वलोकविख्यातकीर्तिका ॥७१॥  
 पतन्नगरनाथस्य राज शत्रुन्दमश्रुते । कनकाभासमुपपन्ना दुहित्ता गुणशालिना ॥७२॥  
 यतोऽनया जित पद्म कान्या वदनजातया । पद्मा च सर्वगात्रेण जितपद्मोदितता तत ॥७३॥

सीमनस वनमें देव ठहर जाते हैं ॥५८॥ वहाँ लक्ष्मणके द्वारा तैयार किया उत्तम भोजन ग्रहण कर रामने सीताके साथ दायाका मधुर पेय दिया ॥५९॥

तदनन्तर वडे उडे महल रूपी पर्वताकी पक्षियोंसे जिनके नेत्र हरे गये थे ऐसे लक्ष्मण विनय पूर्वक रामसे आज्ञा प्राप्तकर इच्छानुसार क्षेमान्जलि नगर देखनेके लिए चले । उस समय वे उत्तम मालाएँ और पीतवस्त्र धारण किये हुए थे तथा सुन्दर विलाससे सहित थे ॥६०-६१॥ नाना लताओंसे आलिङ्गित उत्तमोत्तम वनों, स्वच्छ जलसे भरी तथा शुद्धमेघोंके समान उज्ज्वल तटोंसे शोभित नदिया, नाना प्रकारकी धातुओंसे रङ्ग-विरङ्गे क्रीडा-पर्वतों, ऊँचे ऊँचे जिन-मन्दिर, कुओं, वापिकाओं, सभाओं, पानीयशालाआ और अनेक प्रकारके मनुष्योंको देखते हुए उद्धाने नाना प्रकारके व्यापार कार्योंसे युक्त नगरोमें वड़ी धीरतासे प्रवेश किया । लोग उन्हें वडे आश्चर्यसे देख रहे थे ॥६२-६४॥ जन थे नगरके प्रधान मार्गमें पहुँचे तब उन्होंने किसी नगरवालासे निश्चिन्ततापूर्वक कहा हुआ यह शब्द सुना ॥६५॥ यह किसी से कह रहा था कि अरे सुनो-सुनो, ससारमें ऐसा कौन शूरवीर पुरुष है जो राजाके हाथसे छोड़ी हुई शक्तिकी सहकर 'जितपद्मा' कन्याको ग्रहण करेगा ? ॥६६॥ यदि राजा यह भी कहे कि मैं स्वर्गका राज्य देता हूँ तो भी शक्तिसे सम्बन्ध रखनेवाली इस कथासे क्या प्रयोजन है ? ॥६७॥ यदि कोई शक्ति मेलनेके लिए सन्मुख हुआ और प्राणासे रहित हो गया तो यह कन्या और स्वर्ग का राज्य क्या क्या कर लेगा ? ॥६८॥ 'ससारमें समस्त वस्तुओंसे जीवन ही प्यारा है और उसीके लिए अन्य सब प्रयत्न है यह कौन नहीं जानता है ? ॥६९॥

अथानन्तर इम प्रकारके शब्द सुनकर लक्ष्मणने कौतुक चरा किसी मनुष्यसे पूछा कि हे भद्र ! यह जितपद्मा कौन है ! जिसके लिए लोग इस प्रकार चर्चा कर रहे हैं ॥७०॥ इसके उत्तरमें उस मनुष्यने कहा कि जिसका कार्ति समस्त ससारमें व्याप्त है तथा जो अपने आपको अति पण्डित मानती है ऐसी इस कालकन्याको क्या तुम नहीं जानते ? ॥७१॥ यह इस नगरके राजा शत्रुन्दमनजी कनकाभा रानीसे उत्पन्न गुणवती पुत्री है ॥७२॥ चूँकि इसने मुखकी कान्तिसे

नवयौवनसम्पन्ना कलालङ्कारधारिणा । पुसोऽपि त्रिदशान् द्वेष्टि मनुष्येषु कथात्र का ॥७३॥  
 उच्चारयति नो शब्दमपि पुल्लिङ्गवनिनम् । व्यवहार समस्तोऽस्या, पुरपार्थविवर्जित ॥७४॥  
 अद् परयसि कैलाससदश भवन धरम् । अत्र तिष्ठ यसो कन्या शतसेवनलालिता ॥७५॥  
 शक्ति य पाणिना मुक्तो पित्रास्या सहते नर । वृणुते तमिय दग्ध समीहा कृच्छ्रशालिनी ॥७६॥  
 लक्ष्मीधर समाकर्ण्य सक्तेपम्भयविस्मय । दध्यौ सा कीदृशो नाम कन्या यैव समीहते ॥७७॥  
 दुष्टचेष्टामिमा तावकन्या पर्यामि गर्विताम् । अहो पुनरभिप्राय प्रौढोऽप्यमनया कृत ॥७८॥  
 ध्यायन्निति महोच्चेती राजमार्गेण चारणा । विमानामान् महाशब्दान् प्रासादाविधुपाण्डुरान् ॥७९॥  
 दन्तिनो जलदाकारास्तुरङ्गाश्रलचामरान् । बलभीर्नृत्यशालाश्च परयन् मन्थरचक्षुषा ॥८०॥  
 नानानिर्व्यूहसम्पन्न विचित्रध्वजशोभितम् । शुभ्राश्रराशिसङ्काश प्राप शत्रुन्दमालयम् ॥८१॥  
 भास्वन्नक्तिशतकाणं तुङ्गप्राकारयोजितम् । द्वार तस्य दुर्दौकेऽसौ शक्रचापाभितोरणम् ॥८२॥  
 शस्त्रिन्दुदावृते तस्मिन्नानोपायनसङ्कुले । निर्गच्छन्निविशन्निश्च सामन्तैरतिसङ्कटे ॥८३॥  
 द्वा स्थेन प्रविशन्नेप बभापे सौम्यया गिरा । कस्वमज्ञापितो भद्र विशसि क्षितिपालयम् ॥८४॥  
 सोऽवोचद्द्रष्टुमिच्छामि राजान गच्छ वेदय । स्वपदेऽन्यमसौ कृत्वा गत्वा राज्ञे न्यवेदयत् ॥८५॥  
 दिदक्षुस्वा महाराज पुमानिन्दीवरप्रभ । राजीवलोचन धीमान् सौम्यो द्वारेऽवतिष्ठते ॥८६॥

कमलको अथवा सर्व शरीरसे लक्ष्मीको जीत लिया है इसलिए यह जितपद्मा कहलाती है ॥७३॥  
 नवयौवनसे सम्पन्न तथा कलारूपी अलकारोको धारण करनेवाली यह कन्या पुवेदधारी देवासे  
 भी द्वेष करती है फिर मनुष्योंको तो बात ही क्या है ? ॥७४॥ जो शब्द व्याकरणकी दृष्टिसे  
 पुल्लिङ्ग होता है यह उसका भी उच्चारण नहीं करती है । इसका जितना भी व्यवहार है वह सब  
 पुरुषाके प्रयोजनसे रहित है ॥७५॥ सामने जो केलास पर्वतके समान बड़ा भवन देख रहे हो  
 उसीमे यह सेकड़ो प्रकारकी सेवाओंसे लालित होती हुई रहती है ॥७६॥ जो मनुष्य इसके  
 पिताके हाथसे छोड़ी हुई शक्तिको सहन करेगा उसे ही यह बरेगी ऐसी कठिन प्रतिज्ञा इसने ले  
 रक्ती है ॥७७॥

यह सुनकर लक्ष्मण क्रोध, गर्व और आश्चर्यसे युक्त हो विचार करने लगे कि वह कन्या  
 कैसी होगी जो इस प्रकारकी चेष्टा करती है ॥७८॥ दुष्ट चेष्टासे युक्त तथा गर्वसे भरी इस  
 कन्याको देखूँ तो सही । अहो ! इसने यह बड़ा कठोर अभिप्राय कर रक्खा है ॥७९॥ इस प्रकार  
 विचार करते हुए लक्ष्मण महावृषभकी नाई सुन्दर चालसे चलकर मनोहर राजमार्गमे आगे  
 बढ़े । वहाँ वे विमानके समान आभावाले तथा चन्द्रमाके समान ध्वल उत्तमोत्तम भवना,  
 मेचोंके समान हाथियों, चञ्चल चमरोंसे सुरोभित घोडों, छपरियों और नृत्यशालाओंकी  
 घामी दृष्टिसे देखते जाते थे ॥८०-८१॥ तदनन्तर जो नाना प्राकारके निर्व्यूहोंसे युक्त था, रङ्ग  
 विरङ्गी ध्वजाओंसे सुरोभित था, तथा जो सफेद मेघावलीके समान था ऐसे राजा शत्रुदमके  
 महलपर पहुँचे ॥८२॥ महलका द्वार सेकड़ो वेदीप्यमान बेलगुंटोंसे सहित था, ऊँचे प्रकारसे  
 युक्त था, और इन्द्रधनुषके समान रङ्ग विरङ्गे तोरणोंसे सुरोभित था ॥८३॥ तदनन्तर जो  
 शस्त्रधारी पहरेदारोंके समूहसे आवृत था, नाना प्रकारके उपहारोंसे युक्त था और जहाँ बाहर  
 निकलते तथा भीतर प्रवेश करते हुए सामन्तोंकी बड़ी भीड़ लग रही थी ऐसे द्वारमे लक्ष्मण  
 प्रवेश करने लगे तो द्वारपालने सौम्यवाणीसे कहा कि हे भद्र ! तू कौन है जो बिना आज्ञा ही  
 राजमहलमे प्रवेश कर रहा है ॥८४-८५॥ तब लक्ष्मणने कहा कि मैं राजाके दर्शन करना चाहता  
 हूँ सो राजाको खबर दे दो । यह सुन अपने स्थान पर दूसरेको नियुक्तकर द्वारपालने भीतर  
 जाकर राजासे निवेदन किया कि ॥८६॥ हे महाराज ! जो आपके दर्शन करना चाहता है,

भमायवदनं वीक्ष्य राजावोचद्विशत्विती । ततः सुतः सुमित्रायाः प्रतीहारोऽविशन् ॥८८॥  
 त द्यूा सुन्दराकारं सुगम्भीरापि सा सभा । समुद्रमूर्तिवसोभ गता शीतानुदशने ॥८९॥  
 प्रणामरहितं द्यूा विकटांसु सुभासुरम् । किञ्चिद्द्वि कृतचेतस्त्वस्तमपृच्छद्विरिन्दम् ॥९०॥  
 कुतः समागतः कस्त्वं किमर्थं च कृतध्रमः । ततो लक्ष्मीधरोऽवोचत् प्रापुष्येयघनध्वनिः ॥९१॥  
 वाहोह भरतस्यापि महोहिण्डनपण्डितः । विद्वान् मन्त्रं ते भद्वन्तु दुहितुमानमागत ॥९२॥  
 नभसमानश्लेष्मं दुष्टकन्यागर्वा त्वया । पोषिता सर्वलोकस्य वर्तते दुःस्वदायिनी ॥९३॥  
 सोऽवोचद् यो मया मुक्तां शक्तः शक्तिं प्रतीक्षितुम् । कोऽपी नु जितपद्माया मानस्य चरसको भवेत् ॥९४॥  
 उवाच लक्ष्मणः शक्त्या प्रहण मे किमेकया । शक्तोः पद्म विमुञ्च त्व मयि शक्त्या समस्तया ॥९५॥  
 विवादां गर्विणोरेवं प्रयुक्तो यावदेतयोः । गथात्ता निविडास्तात्रत्पिहिता वनिताननैः ॥९६॥  
 परित्यक्तनरद्वेषा द्यूा लक्ष्मणपुत्रवत् । निर्यूढस्था जिताम्भोजा सज्जात्रानाद्वारयत् ॥९७॥  
 दत्तवदाञ्जलि भीरं सौमित्रिरिति संज्ञया । चकार जातयोरां तां मा भोगोरिति सम्मदी ॥९८॥  
 जगाद च किमद्यापि कातर त्व प्रतीक्षसे । विमुञ्चारिन्दमाभित्य शक्तिं शक्तिं निवेदय ॥९९॥  
 इत्युतः कुपितो राजा बद्ध्वा परिकर ददम् । अवलत्वावरुमकाशा शक्तिमेकामुपाददौ ॥१००॥  
 प्रतीक्षेच्छसि मनुं चेदित्युक्त्वा मृकुटीं दधत् । धैरात्र स्थानक कृत्वा तां मुमोच विधानविन् ॥१०१॥

जिसकी प्रभा नील कमलके समान है, जिसके नेत्र कमलोंके समान सुरोभित हैं तथा जो अत्यन्त सौम्य है ऐसा एक शोभासम्पन्न पुरुष द्वार पर खड़ा है ॥८८॥ मन्त्रीके मुखकी ओर देख राजाने कहा कि 'प्रवेश करे' । तदनन्तर द्वारपालके कहने पर लक्ष्मणने भीतर प्रवेश किया ॥८९॥ यद्यपि वह सभा गम्भीर थी तो भी जिस प्रकार चन्द्रमाको देखकर समुद्र लोभको प्राप्त होता है उसी प्रकार वह सभा भी सुन्दर आकारके धारक लक्ष्मणको देखकर लोभको प्राप्त हो गई ॥९०॥ प्रणामरहित, विशाल कन्धोके धारक तथा अतिशय देवीप्यमान लक्ष्मणको देखकर जिसका हृदय बुल्ल-बुल्ल विकृत हो रहा था ऐसे राजा शत्रुदमने पूछा कि तू कहींसे आया है ? कौन है ? और किस लिए आया है ? इसके उत्तरमें वर्षा ऋतुके मेघके समान गम्भीर ध्वनिकी धारण करनेवाले लक्ष्मणने कहा ॥९०-९१॥ कि मैं राजा भरतका सेवक हूँ, पृथ्वी पर घूमनेमें निपुण हूँ, सब विषयोंका पण्डित हूँ और तुम्हारी पुत्रीका मान भङ्ग करनेके लिए आया हूँ ॥९२॥ जिसके मानरुपी सींग अभङ्ग हैं ऐसी जो दुष्ट कन्यारुपी मरकतो गाय तुमने पाल रखी है वह सब लोगोंको दुःख देनेवाली है ॥९३॥ राजा शत्रुदमने कहा कि जो मेरे द्वारा छोड़ी हुई शक्तिकी सदन करनेमें समर्थ है ऐसा वह कौन पुरुष है जो जितपद्माका मान खण्डित करनेवाला हो ॥९४॥ लक्ष्मणने कहा कि मैं एक शक्तिकी क्या प्रहण करूँ ? तू पूरी सामर्थ्यके साथ मुझपर पाँच शक्तिवाँ छोड़ ॥९५॥ यहाँ जब तक दोनों अहंकारियोंके बीच इस प्रकार का विवाद चल रहा था वहाँ तब तक राजमहलके सघन भरोते म्त्रियोंके मुँहसे आन्ध्रादित हो गये ॥९६॥ जितपद्मा भी लक्ष्मणको देख मोहित हो गई और पुरुषोंके साथ द्वेषकी छोड़कर छपरी पर आ बैठी तथा इशारा देकर लक्ष्मणको मना करने लगी ॥९७॥ तब हर्षसे भरे लक्ष्मणने भयभीत तथा हाथ जोड़ कर घेठी हुई जितपद्माको इशारा देकर जताया कि भय मत करो ॥९८॥ और राजासे कहा कि अरे कातर ! अब भी क्या प्रतीक्षा कर रहा है ? शत्रुदम नाम रखे फिरता है । शक्ति छोड़ और पराजय देना ॥९९॥ इस प्रकार कहने पर राजाने कुपित हो अच्छी तरह कमर कसी और जलती हुई अग्निके समान एक शक्ति उठाई ॥१००॥ तदनन्तर 'यदि मरना ही चाहता है तो ले मेल' यह कहकर भीहको धारण करनेवाले विधि-विधानके

'अयन्नेनेव सा तेन धृता दक्षिणपाणिना । वतिकाप्रहणे को वा बहुमानो गररमतः ॥१०२॥  
 द्विर्तायेतरहस्तेन क्वाभ्यां द्वे सुविभ्रमः । शुशुभे सुभृशं ताभिरचतुर्वन्त इव द्विपः ॥१०३॥  
 संक्रुद्धभोगिभोगीभां सम्प्राप्तामप पद्माम् । दन्ताभ्यां दधौ शक्तिं पेशामिन् मृगाधिपः ॥१०४॥  
 तनो देवगगाः स्वस्था वट्टुः पुष्पसहतिम् । ननृतस्ताडयारचक्रुर्दुन्दुभीश्च कृतस्वनाः ॥१०५॥  
 प्रतांच्छारिन्दमेदानीं शक्तिं त्वमिति लक्ष्मणे । कृतशब्दे परं प्राप साध्वसं सकलो जनः ॥१०६॥  
 तमन्ततनुं हृष्टा लक्ष्मणिलयवचसम् । विस्मितोऽरिन्दमो जातस्त्रपावनमिताननः ॥१०७॥  
 जितपद्मा ततः प्राप स्मितच्छायातानना । लक्ष्मीधर समाकृष्टा रूपेणाचरितेन च ॥१०८॥  
 एतशक्तेः समीपेऽस्य सा तन्वां शुशुभेतराम् । कुलिशायुधपार्श्वस्था शचीर्वं विनतानना ॥१०९॥  
 नवेन सगमेनास्या हृदय तस्य कपितम् । यन्नासीत् कपित जातु संग्रामेषु महत्स्वपि ॥११०॥  
 पुरस्तातनेरशानां वन्यया लक्ष्मणा वृतः । विभिद्यापत्रपापार्ली तद्भरन्वस्तेनप्रया ॥१११॥  
 मद्यो विनयनप्रांगो राजान लक्ष्मणोऽश्रीत् । मामकार्हमि मे चतुं शैशवाद्दुविचेष्टितम् ॥११२॥  
 बालानां प्रतिकूलेन कर्मणा वचसापि वा । भवद्विधा सुगभारा नैव यान्ति विकारिताम् ॥११३॥  
 ततः शशुंदमोऽप्येनं सप्रमोदः ससंभ्रमः । स्तंभेरमरराभाभ्यां कराभ्यां परिपत्रजं ॥११४॥  
 उवाच च परंरिह्यगण्डांश्रण्डान् गजान् जणात् । योज्यैर भीमयुद्धेषु भद्र सोऽहं त्वया जितः ॥११५॥

ज्ञाता राजाने आलीढ आसनसे खड़ा होकर वह गदा छोड़ दी ॥१०१॥ लक्ष्मणने विना किसी यन्त्रके ही दाहिने हाथसे वह शक्ति पकड़ ली सो ठीक ही है क्योंकि घटेरके पकड़नेमें गरुडका कीन-सा बड़ा मान होता है ? ॥१०२॥ दूसरी शक्ति दूसरे हाथसे तथा तीसरी चौथी शक्ति दोनों बगलोंमें धारण कर पुलकते हुए लक्ष्मण उनसे चार दोंतोंको धारण करनेवाले ऐरावत हाथीके समान अत्यधिक मुशीभित हो रहे थे ॥१०३॥ अधानन्तर अत्यन्त कुपित सौंपकी फणकी नाई जो पांचवीं शक्ति आई उसे लक्ष्मणने दोंतोंके अग्रभागसे उस प्रकार पकड़ लिया जिस प्रकार कि मृगराज मांसकी टलीको पकड़ रखता है ॥१०४॥ तदनन्तर आकाशमें खड़े देवोंके समूह पुष्प बरसाने लगे, नृत्य करने लगे तथा हर्षसे शब्द करते हुए दुन्दुभि बाजे बजाने लगे ॥१०५॥

अधानन्तर 'शशुंदम' अथ तू मेरी शक्ति मेल' इस प्रकार लक्ष्मणके कहनेपर सबलोग अत्यन्त भयको प्राप्त हुए ॥१०६॥ राजा शशुंदम लक्ष्मणको अक्षत शरीर देख विस्मयमें पड़ गया और लज्जासे उसका सुग नीचा हो गया ॥१०७॥ तदनन्तर मन्द मुसकानकी छायासे जिसका मुख नीचेकी ओर हो रहा था ऐसी जितपद्मा रूप तथा आचरणसे रिचकर लक्ष्मण के पास आई ॥१०८॥ शक्तियोंको धारण करनेवाले लक्ष्मणके पास वह कृशाङ्गी, इस तरह अत्यन्त मुशीभित हो रही थी जिस तरह कि बच्चे धारक इन्द्रके पास गढ़ी नतमुखी इन्द्राणी मुशीभित होती है ॥१०९॥ लक्ष्मणका जो हृदय बड़े-बड़े संग्रामोंमें भी कभी कम्पित नहीं हुआ था वह जितपद्माके नूतन समागमसे कम्पित हो गया ॥११०॥ तदनन्तर लज्जाके भारसे जिसके नेत्र नीचे हो रहे थे वे भी जितपद्माने पिता तथा अन्य अनेक राजाओंके सामने लज्जा छोड़कर लक्ष्मणका चरण किया ॥१११॥ तन्काल ही विनयसे जिसका शरीर नम्रोभूत हो रहा था ऐसे लक्ष्मणने राजासे कहा कि हे माम ! लड़कपनके कारण मैंने जो ग्योटी चेष्टा की है उसे आप क्षमा करनेके योग्य हैं ॥११२॥ बालकोंके विपरीत कार्य अथवा विरुद्ध वचनोंमें आप जैसे महागर्भीर पुरुष विचार भायको प्राप्त नहीं होते ॥११३॥

तदनन्तर हर्ष और संभ्रममें सहित राजा शशुंदमने भी हाथीकी सूंडके समान लम्बी तथा सुपुष्ट भुजाओंमें लक्ष्मणका आलिङ्गन किया ॥११४॥ और कहा कि हे भद्र ! जिस मैंने

वन्द्यान्पि महानागान् गङ्गोत्सवविधयः । विमर्दीकृतवानस्मि मोक्षयाम्य इवाम्बुम् ॥११६॥  
 अहो वीर्यमहो रूपं मदर्शा. शुभ ते गुणाः । अहोनुद्धततायन्तं प्रथयथ तवाद्भुतः ॥११७॥  
 भाषमाणे गुणानेवं राज्ञि सप्तधवस्थिते । लक्ष्मोपरस्त्रयानोऽभूत् क्वापि यान इव घृगम् ॥११८॥  
 अथ लक्ष्मोऽनुद्घातवोपभेयैः समाहृताः । राजादेशान् समाध्माना. शया. मशिनपारणा. ॥११९॥  
 यथेष्ट दीयमानेषु धनेषु परमन्ततः । आनन्दोऽवततागेष्वनगराभद्राणिः ॥१२०॥  
 ततो लक्ष्मीधरोऽवाचि राज्ञा पुरुषपुङ्गव । त्वया दुहितुरिच्छामि पाणिग्रहणमर्चिनुम् ॥१२१॥  
 सोऽवोचद्वगरस्यास्य प्रदेशे निष्ठे मम । ज्येष्ठतिष्ठन्ति त पृच्छ्य स जानाति यथोचितम् ॥१२२॥  
 ततः स्यन्दनमारोप्य जितपद्मां सलक्ष्मणाम् । सदारदन्धुस्य्याश प्रतस्थे तस्य सादरः ॥१२३॥  
 ततः क्षुन्धापगानाधनिर्योपप्रतिमन्त्रनिम् । श्रुत्वा वीर्य विनाल च धूलोपटलमुद्घातम् ॥१२४॥  
 जानुन्यस्तमुद्घु छस्तकरा कृच्छ्याममुत्थिता । सीता जगद् सम्भ्राता गिरा प्रसम्बलिता मुहुः ॥१२५॥  
 कृत सीमित्रिणा नून रावबोद्धतचेष्टितम् । आगेयमाकुलान्यन्त दर्यते कृपमाश्रय ॥१२६॥  
 आरिलय जानकीः देवि मा भैरीरिति शब्दयन् । उक्तस्त्री राघवः क्षिप्र दष्टि धनुषि पातयन् ॥१२७॥  
 तावच्च नरवृन्दस्य महनः स्थितमप्रतः । मुनारगीतनिस्वानमोष्ठाब्जकेऽन्ननाजनम् ॥१२८॥  
 क्रमेण गच्छन्तश्चास्य प्रत्यासत्त मनोहराः । विघ्नमाः समदरयन्त सुदारावयोत्थिता ॥१२९॥  
 नृयन्तं च समालोक्य तारानूपुरशिञ्जितम् । विभ्रन्धः सांतया साकं पद्म पुनरुपाविशन् ॥१३०॥

भयङ्कर युद्धोमें मद्रमाघी कृपित हाथियोंको क्षणभरमें जीता था वह मैं आज तुम्हारे द्वारा जीता गया ॥११६॥ जिसने गोल काली चट्टानोवाले पर्वतके समान कान्तिके धारक बड़े-बड़े जङ्गली हाथियोंको मद्ररहित किया था वह मैं आज मानो अन्य ही हो गया हूँ ॥११६॥ धन्य तुम्हारी अनुद्धतता और धन्य तुम्हारी अद्भुत विनय । अहो शोभनीक ! तुम्हारे गुण तुम्हारे अनुरूप ही हैं ॥११७॥ इस प्रकार सभामें बैठे राजा शत्रुंद्धम जब लक्ष्मणके गुणोंका वर्णन कर रहा था तब लक्ष्मण लज्जाके कारण ऐसे हो गये मानो क्षणभरके लिए कहीं चले ही गये हो ॥११८॥

अथानन्तर राजाकी आज्ञासे मेघसमूहकी गर्जनाके समान विशाल शब्द करनेवाली भेरियों घजाई गईं और हाथियोंकी चिंघाड़का संशय उत्पन्न करनेवाले शब्द कूँके गये ॥११६॥ इन्द्रानुसार धन दिया जाने लगा और समस्त नगरको क्षोभित करनेमें समर्थ बहुत भारी आनन्द प्रवृत्त हुआ ॥१२०॥ तदनन्तर राजाने लक्ष्मणसे कहा कि हे श्रेष्ठ पुरुष ! मैं तुम्हारे साथ पुत्रीका पाणिग्रहण देखना चाहता हूँ ॥१२१॥ इसके उत्तरमें लक्ष्मणने कहा कि इस नगरके निरुद्धयर्ता प्रदेशमें मेरे बड़े भाई विराजमान हैं सो उनसे पूछो वही ठीक जानते हैं ॥१२२॥ तब लक्ष्मण सहित जितपद्माकी रथ पर बैठकर खियों तथा भाई-बन्धुओंसे सहित राजा शत्रुंद्धम बड़े आदरके साथ रामके समीप चला ॥१२३॥ तदनन्तर क्षोभको प्राप्त हुए समुद्रकी गर्जनाके समान जोरदार शब्द सुनकर और उठे हुए विशाल धूलिपटलको देखकर घुटनों पर चार-चार हाथ रखती हुई सीता बड़े कष्टसे उठी और घबड़ाकर मगलित वागीमें रामसे धोड़ी कि हे राघव ! जान पड़ता है लक्ष्मणने कोई उद्धत चेष्टा की है । यह दिशा अत्यन्त आकुल दिग्गई देवी है इसलिए सावधान होओ और जो बुद्ध करना हो सो करो ॥१२४-१२६॥ तब सीताका आलिङ्गन कर 'हे देवि ! भयभीत मत होओ' यह कहते तथा शीघ्र ही धनुष पर दृष्टि डालते हुए राम उठे ॥१२७॥ इतनेमें ही उन्होंने विशाल नर-समूहके आगे उच्चस्वरसे मङ्गल गीत गानेवाली खियोंका समूह देखा ॥१२८॥ वह खियोंका समूह जब क्रम क्रमसे पाम आया तब सुन्दर खियोंके शरीरमें उत्पन्न होनेवाले मनोहर हाव-भाव दिखाई दिये ॥१२९॥ तदनन्तर जिनके नूपुरोंकी

स्त्रियो मद्गलहस्तास्त सर्वालङ्कारभूषिता । कुडोरिरेऽतिहारिण्य समदर्शितलोचना ॥१३१॥  
 रथादुत्तार्य पद्मास्य सहितो जितपद्मया । पति पपात् पद्माया पद्मस्य चरणो द्रुतम् ॥१३२॥  
 पद्मस्य प्रणति कृत्वा साताया अपि सत्रप । निविश्य नातिनिकटे पद्मस्य चिनयी स्थितः ॥१३३॥  
 नृपा शत्रुन्दमायाश्च मया कृत्वा नमस्कृतम् । पद्मस्य सहस्रीतरस्य यथास्थाननवस्थिता ॥१३४॥  
 तत्र सङ्घयया स्थित्वा कुशलप्रश्नपूर्वया । कृते च पुनरानन्दनर्तने पायिवैरपि ॥१३५॥  
 ऋद्वाया परमया युक्त ससौतो लक्ष्मणो बल । प्रविष्ट स्वन्दनारुढो नगर प्रमदान्वित ॥१३६॥  
 तत्र लावण्यकिञ्चलक्योपि कुवल्पाकुले । महाप्रासादसरसि स्वनद्भूषणपङ्क्ति ॥१३७॥  
 नरेभरुर्भा मयप्रतसिद्धधनेरलम् । त्रासात् सङ्कुचितस्वान्तौ कुमारश्रासमन्वितौ ॥१३८॥  
 शत्रुन्दमवृत्तच्छन्दौ निखिन्काल महासुखौ । उपितौ सर्वलोकस्य चित्ताह्लादनदायिनौ ॥१३९॥  
 जितपद्मा ततो भीता विरहादतिदुःखिताम् । परिसान्त्व्य प्रियैर्वाक्यैर्वैनमालानिवाद्रात् ॥१४०॥  
 पद्म मोतानुगो भूवा निशोथे स्वैरनिर्गत । यातो लक्ष्मीधरो दत्त्वा पौराणामर्षति पराम् ॥१४१॥

### शार्दूलचित्रीडितम्

ये जन्मान्तरसञ्चितातिमुकृता सर्वासुभाजा प्रिया ।

य य देशमुपननन्ति विविध कृत्य भजन्त परम् ॥

तस्मिन्मवैदगारुमीख्यचनुरस्तेषा विना चिन्तया ।

मृष्टान्नादिविधिर्भव यनुपमो यो विष्टपे दुर्लभ ॥१४२॥

जोरदार भनकार फेल रही थी ऐसी स्त्रियोंके समूहको नृत्य करता देख राम निश्चिन्त हो सीताने साथ पुन बैठ गये ॥१३०॥

अथानन्तर जिनके हाथोंमें मङ्गल द्रव्य थे, जो सत्र प्रकारके अलङ्कारोंसे अलङ्कृत थी अतिशय मनोहर थी और जिनके नेत्र मदसे फूल रहे थे ऐसी स्त्रियों रामके पास आई ॥१३१॥ कमलके समान मुग्धकी धारण करनेवाले लक्ष्मण जितपद्माके साथ रथसे उतरकर शीघ्र ही रामसे चरणामें जा पड़े ॥१३२॥ तदनन्तर राम और सीताको प्रणामकर लजाते हुए लक्ष्मण रामसे कुछ दूर हटकर विनयपूर्वक बैठ गये ॥१३३॥ शत्रुन्दम आदि राजा भी क्रम क्रमसे राम तथा सीताकी नमस्कार कर यथा स्थान बैठ गये ॥१३४॥ कुशल समाचार पूछकर सत्र वार्ता लाप करते हुए मुखसे बैठे तथा राजाओंने आनन्द-नृत्य किया ॥१३५॥ तदनन्तर परम सम्पदा ने युक्त तथै हथसे भरे राम लक्ष्मण और सीताने रथपर सत्रार हो नगरमें प्रवेश किया ॥१३६॥ यहाँ राजमहलमें पहुँचे सो यह राजमहल एक सरोवरके समान जान पड़ता था क्योंकि मौन्य रूपी वेशरसे युक्त स्त्रियों रूपी नील कमलासे यह व्याप्त था और शब्द करते हुए आभूषण रूपी पङ्क्तियोंसे युक्त था ॥१३७॥ मत्प्रत रूपी सिंहकी गर्जनाके भयसे जिनके चित्त अत्यन्त सङ्कुचित रहने थे, जो कुमार लक्ष्मीसे सहित थे, राजा शत्रुन्दम जिनकी इच्छानुसार मन सेवा करता था, जो महा मुन्यसे सहित थे तथा जो समस्त लोगोंके चित्तको आनन्द देने वाले थे ऐसे नर श्रेष्ठ राम लक्ष्मण उस राजमहलमें कुछ समय तक मुग्धसे रहे ॥१३८-१३९॥

तदनन्तर राम अर्धरात्रिके समय सीताके साथ इच्छानुसार राजमहलसे बाहर निकल पड़े और लक्ष्मण भी धनमालाके समान विरहने भयभीत अतिशय दुःखी जितपद्माकी प्रिय चरणों द्वारा आदर पूर्वक सान्त्वना दे रामके साथ पड़े। इन सबके जानेसे नगरवासियोंका धर्म जाना रहा ॥१४०-१४१॥ गौतमग्यामी कहते हैं कि हे श्रेष्ठिक ! निन्दोंने जन्मान्तरमें यहूत

भोगैर्नास्ति मम प्रयोजनमिमे गच्छन्तु नाश रक्षा  
 इत्येषा यदि सर्वदापि कुरते निन्दामल द्वेषक ।  
 एतै मन्त्रगुणोपपत्तिपटुभिर्वातोऽपि शृङ्ग गिरे  
 नित्यं याति तथापि निजितरविर्दीप्या जन सहमम् ॥

इत्यार्षे रविपेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते जितपद्मोपाख्यान नामाष्टत्रिंशत्तम पर्व ॥३८॥



भारी पुण्यका सञ्चय किया है ऐसे सर्व प्राणियोंको प्रिय पुरुष, नाना प्रकारके उत्तम कार्य करते हुए जिस जिस देशमें जाते हैं उसी उसी देशमें उन्हें विना किसी चिन्ताके समस्त इन्द्रियोंके सुख देनेमें निपुण मधुर आहार आदिकी सब ऐसी अनुपम विधि मिलती है कि लोकमें जो दूसरोंके लिए दुर्लभ रहती है ॥१४७॥ 'मुझे इन लोगोंसे प्रयोजन नहीं है । ये दुष्ट नाशको प्राप्त हों, इस प्रकार भोगोंसे अतिशय द्वेष रखनेवाला पुरुष यद्यपि सर्वदा इन भोगोंका निन्दा करता है और इन्हें छोड़कर पर्यतके शिरपर भी चला जाता है तो भी अपनी कान्तिसे सूर्यको जीतनेवाला पुण्यात्मा पुरुष समस्त गुणाकी प्राप्ति करानेमें समर्थ इन भोगोंके साथ सदा समा गमको प्राप्त होता है अर्थात् पुण्यात्मा मनुष्यकी इच्छा न रहते हुए भी सब प्रकारका सुख-सामग्रा सर्वत्र मिलती है ॥१४८॥

इस प्रकार आर्षनामने प्रसिद्ध, रविपेणाचार्य कथित पद्मचरितम् जितपद्माका वर्णन करनेवाला अडतीसवां पर्व समाप्त हुआ ॥३८॥



## एकोनचत्वारिंशत्तमं पर्व

अथ नानाद्रुमक्षामु बहुपुष्पसुगन्धिषु । लतामण्डपयुक्तानु सेवितानु सुखं मूर्ता ॥१॥  
 देवायनात्निशोपशरारस्थितिसायनी । आयाता रममाणौ तो ससीती रामलक्ष्मणौ ॥२॥  
 क्वचिद्द्रुमसङ्घारा राम स्मितलय लघु । गृहीत्वा कुरते कर्णे जानक्या साधिविति द्रुवन् ॥३॥  
 सुतारौ मङ्गता वल्ली क्वचिदारोप्य जानकाम् । स्वैर दोलयत पारववतिनी रामलक्ष्मणौ ॥४॥  
 द्रुमसङ्घे क्वचिद् स्थित्वा नितान्तघनपल्लवे । कथाभि सुविदग्धानि कुरतस्तद्विनोदनम् ॥५॥  
 इयमेतदयं वल्गा पलाश तर्राद्ययताम् । हारिणां हारि हाराति सातोचे राघव क्वचिन् ॥६॥  
 क्वचिद् भ्रमरसङ्घातैमु खसौरभलोलुपै । कृच्छादरक्षतामेतौ रात्रपुत्री क्वर्षिताम् ॥७॥  
 शनैविहरमाणो तौ मसाती शुभविभ्रमौ । काननेषु विचित्रेषु स्वरर्गेषु सुराविव ॥८॥  
 नानाानोपभोग्येषु देशेषु निहितेक्षणा । धीरौ क्रमेण सम्प्राप्तो पुर वशस्थलद्युतिम् ॥९॥  
 सुदीर्घोऽपि तयो कालो गच्छतो सहस्रीतयो । पुण्यानुगतयोर्नासादपि दु खलवप्रद ॥१०॥  
 अपरयता च तस्याते वशजालातिसङ्कम् । नग वशधराभिरय भिवेव भुवमुदगतम् ॥११॥  
 ध्यायया तुद्रश्याणा य सन्ध्यामिव सन्ततम् । दधाति निर्माराणां च हस्ततो व शीकरै ॥१२॥  
 निर्गच्छन्ती प्रजा दृष्टा पुरादय स एककाम् । राम पप्रच्छ भो वस्मात् जामोऽय सुमहानिति ॥१३॥

अथानन्तर जिनकी शरीर-स्थितिके समस्त साधन देवोपनीत थे, ऐसे सीता सहित राम लक्ष्मण रमण करते हुए वनकी उन भूमियोंमें आये जो नाना प्रकारके वृक्षांसे सहित थीं, जिनमें नाना फूलोंकी सुगन्धि फैल रही थी, जो लतामण्डलोंसे सहित थीं तथा मृगगण जिनमें मुषसे निवास करते थे ॥१-२॥ कहीं राम, मृगके समान कान्तिवाले पल्लवकी तोडकर तथा उसका कर्णाभरण पनाकर 'यह ठीक रहेगा' इस प्रकार कहते हुए सीताके कानमें पहिनाते थे, तो कहीं किसी वृक्ष पर लटकती लता पर सीताकी बैठकर थगलमें दोना ओर रखे हो राम लक्ष्मण उसे मूला मुलाते थे ॥३-४॥ कहीं सघन पत्तोंवाले द्रुम-पण्डमें बैठकर मनोहर मनोहर कथाओंसे उसका मनोविनोद करते थे ॥५॥ कहीं सीता रामसे कहती थी कि यह मनोहर लता देखो; कहीं कहती थी कि यह मनोहर पल्लव देखो और कहीं कहती थी कि यह मनोहर वृक्ष देखो ॥६॥ कहीं मुषकी सुगन्धिके लोभी भ्रमरोंके समूह सीताकी पीडित करते थे, सो ये दोना भाई बड़ी कठिनाईसे उसकी रक्षा करते थे ॥७॥ जिस प्रकार देव स्वरगके वनोंमें विहार करते हैं उसी प्रकार शुभ चेष्टाआने धारक दोनों भाई साताको साथ लिये नाना प्रकारके वनोंमें धीरे धीरे विहार करते थे ॥८॥ नाना मनुष्यासे उपभोग्य देशोंमें नष्टि टालते हुए वे धीर-धीर क्रमसे वशस्थलानि नामक नगरमें पहुँचे ॥९॥ सीताके साथ भ्रमण करते हुए उन पुण्यानुगामों महा पुराणको यद्यपि बहुत काल हो गया था तो भी उतना बड़ा काल उन्हें अशमात्र भी दुःख देनेवाला नहीं हुआ था ॥१०॥

उस नगरके समीप ही उन्होंने वशधर नामका पर्वत देखा जो वामाके समूहमें अत्यन्त व्याप था, पृथिवीकी भेदकर ही मानो ऊपर उठा था, ऊँचे ऊँचे शिखरोंकी कान्तिसे जो मानों सग मन्ध्याकी धारण कर रहा था और निर्भरनाके छींटोसे पेशा जान पड़ता था मानो हँस ही रहा हो ॥११-१२॥ उन्होंने यह भी देखा कि प्रजाके लोग नगरसे निचल निचल कर वही



सोऽथोचदद्य दिवसस्तृतीयो वर्तते नरः । नरमुत्तिष्ठतोऽमुष्मिन्नगे नादस्य<sup>१</sup> मस्तके ॥१४॥  
 ध्वनिरश्रुतपूर्वोऽस्य प्रतिनादो भयाग्रहः । कस्येति बहुविज्ञानैर्न वृद्धैरपि वेद्यते ॥१५॥  
 संशुभ्यतां व भूः सर्वा नन्दतां व दिशो दद्य । सरांसि सञ्चरन्तीव निर्मूल्यन्त इन्द्राग्रिवा<sup>२</sup> ॥१६॥  
 रीरवारावरादेण घनेन ध्वनिनामुना । श्रवणौ सर्वलोकस्य ताड्येतेऽथोघनैरिव ॥१७॥  
 निशागमे किमस्माक वधार्थमपमुद्यत । करोति प्रोडनं तावत् कोऽपि त्रिषपकण्टक ॥१८॥  
 भयेन स्वतन्त्रस्मादर्थं लोको निशागमे । पलायते प्रभाते तु पुनरेति यथायथम् ॥१९॥  
 माप्र योजनमेतस्मादतांस्यान्योन्यभाषितम्<sup>३</sup> । शृणोत्यथ जनः किञ्चित् प्राप्नोति च मुग्धासिकाम् ॥२०॥  
 निशम्योक्तमिद् सीता वभाषे रामलक्ष्मणौ । वयमन्यत्र गच्छामो यत्र याति महाजनः ॥२१॥  
 काल देशे च विज्ञार्थं नीतिशास्त्रनिशारदः । त्रियते पौष्टप तेन न जानु विपदाप्यते ॥२२॥  
 प्रहस्यावोचतामेतामुद्दिग्नां जनकाम्जनाम् । गच्छ त्व यत्र लोकोऽय व्रजत्यलंघुसाध्वसे ॥२३॥  
 जन्विष्यन्तां प्रभाते गौ लोकेन सहितामुना । अमुष्मिन् गण्डशैलान्ते गतभौरागमिष्यति ॥२४॥  
 अस्मिन् महाधरे रम्ये ध्वनिरत्यन्तर्भाषणः । कस्यापिमिति पर्यायो वयनद्येति निश्चयः ॥२५॥  
 प्रभाष्यते बराकोऽय लोकः शिशुसमाकुल । पशुनि<sup>४</sup> सहितः स्वन्तमस्य को नु करिष्यति ॥२६॥  
 वदेही<sup>५</sup> सञ्चरवोचे सतत भवतोरिमम् । हतुमेक प्रह शक्. क. कुलीरप्रहोपमम् ॥२७॥

अन्यत्र जा रहे हैं । तब रामने किसी एक मनुष्यसे पूछा कि हे भद्र ! यह बहुत भारी भय किस कारणसे है ? ॥१३॥ इसके उत्तरमें उस मनुष्यने कहा कि इस पर्वतके शिखर पर रात्रिके समय शब्द उठते हुए आज तीसरा दिन है ॥१४॥ जो शब्द पर्वत पर होता है वह हमने पहले कभी नहीं सुना, उसको प्रतिध्वनि सर्वत्र गूँज उठती है तथा वह अत्यन्त भयङ्कर है । किस व्यक्तिका शब्द है ? यह बहुविधानी वृद्ध लोग भी नहीं जानते हैं ॥१५॥ इस शब्दसे मानो समस्त पृथिवी हिल उठती है, दशों दिशाएँ मानो शब्द करने लगती हैं, सरोवर मानो इधर-उधर फिरने लगते हैं और वृद्ध मानो उखड़ने लगते हैं ॥१६॥ रीतृतामें नरकके शब्दकी तुलना करनेजाले इस भारी शब्दसे समस्त लोगोंके कान ऐसे फटे पड़ते हैं मानो लोहेके घनोसे ही ताडित होते हों ॥१७॥ जान पड़ता है कि रात्रिके समय हम लोगोंका वध करनेके लिए उद्यत हुआ यह कोई लोकका कण्टक क्रीड़ा करता फिरता है ॥१८॥ ये लोग उस शब्दके भयसे रात्रि प्रारम्भ होते ही भाग जाते हैं और प्रभात होने पर पुन. वापिस आ जाते हैं ॥१९॥ यहाँसे कुछ अधिक एक योजन चलकर यह शब्द इतना हलका हो जाता है कि लोग परस्परका वार्तालाप सुन सकते हैं तथा कुछ आराम प्राप्त कर सकते हैं ॥२०॥

यह सुनकर सीताने राम-लक्ष्मणसे कहा कि जहाँ ये सब लोग जा रहे हैं वहाँ हम लोग भी चले ॥२१॥ नीतिशास्त्रके ज्ञाता पुरुष देश कालको समझकर पुरुषार्थ करते हैं, इसलिए कभी आपत्ति नहीं आती ॥२२॥ राम-लक्ष्मणने पचड़ाई हुई सीतासे हँसकर कहा कि तुम्हें बहुत भय लग रहा है इसलिए जहाँ ये लोग जाते हैं वहाँ तु भी चली जा ॥२३॥ प्रभात होनेपर इन लोगोंके साथ हम दोनोंको रोजती हुई निर्भय हो इस पर्वतके समीप आ जाना ॥२४॥ 'इस मंगोहर पर्वत पर यह अत्यन्त भयङ्कर शब्द किसका होता है ? यह आज हम देखेंगे' ऐसा निश्चय किया है ॥२५॥ ये तीन लोग घाल-बगैसे व्याकुल तथा पशुओंसे सहित हैं, इसलिए ये ती भयभीत होंगे ही इनका भला कौन कर सकता है ? ॥२६॥ तब जैसे डर चढ़ रहा हो ऐसी काँपती हुई आवाजमें सीताने कहा कि हमेशा आपलोगों की हठ कंकड़की पकड़के समान विलक्षण ही है उसे

वदन्ती पुनरेव सा पद्मनाभस्य पृष्ठत । लक्ष्मीधरकुमारस्य जगामावस्थिता पुरः ॥२८॥  
 आरोहन्ती गिरिं देवी प्रविशन्नमपङ्कजा । रराज शृङ्गमन्दस्य चन्द्ररेखेव निर्मला ॥२९॥  
 चन्द्रकान्ते त्रनालान्त स्थिता पुष्पमणोरसौ । शलाक्रेवाभवत्तस्य पर्वतस्य विभूषणम् ॥३०॥  
 भृगुपातपरिग्रस्ता ऋचिदुःस्त्रिय तामिमौ । नयतोऽन्यत्र विभ्रद्वहस्तालम्बनकोविदौ ॥३१॥  
 विषमप्रावसद्वात निस्तीर्य त्रासवजितौ । विस्तीर्णनगमूर्धानं ससीतौ तावपापतु ॥३२॥  
 भय सद्धानामारूढौ प्रलम्बितमहाभुजौ । साधयन्तौ सुदुस्साध्या प्रतिमा चतुराननाम् ॥३३॥  
 परेण तेजसा युक्तावबिधारी नगस्थिरौ । शरारचेतनान्यत्ववेदिनौ मोहवजितौ ॥३४॥  
 जातरूपधरौ कान्तिसागरी नवयौवनी । सयतो प्रवराकारी ददृशुस्ते यथोदितौ ॥३५॥  
 दध्युश्च विस्मय प्राप्ता यथा मुक्त्वाशुभार्जनम् । निस्सारमोहित सर्वं ससारे दुःखकारणम् ॥३६॥  
 मित्राणि द्रविण दारा पुत्रा सर्वे च बान्धवा । सुखदुःखमिदं सर्वं धर्म एक सुखावह ॥३७॥  
 हुढीकिरे च भक्त्याद्या मूर्ध्विन्धस्तपाण्य । दधाना परम तोष विनयानतविग्रहा ॥३८॥  
 यावद्ददृशुर्युप्रैर्विस्फुरजिर्महास्वने । भिन्नाजनसमच्छ्रायैश्चलजिह्वैः पृष्ठाकुम्भि ॥३९॥  
 समुद्यतालकैर्मैश्वलद्विरनिश घनै । मानावर्णैरतिस्थूलैर्वैष्टितौ वृश्चिकैश्च तौ ॥४०॥

दूर करनेके लिए कौन समर्थ है ? ॥२७॥ ऐसा कहती हुई वह रामके पीछे और लक्ष्मणके आगे खड़ी हो चलने लगी ॥२८॥ जिसके चरणकमल रोदरिन्न हो गये थे, ऐसी सीता पहाड़ पर चढ़ती हुई इस प्रकार सुरोभित हो रही थी मानो मेवके शिखर पर चन्द्रमाकी निर्मल रेखा ही है ॥२९॥ राम और लक्ष्मणके बीचमें खड़ी सीता चन्द्रकान्तमणि और नीलमणिके मध्यमें स्थित पद्मारागमणिकी शलाकाके समान पर्वतका आभूषण हो रही थी ॥३०॥ जहाँ कहीं सीताको गोल चट्टानोसे नीचे गिरनेका भय होता था वहाँ वे दोनों, उसे ऊपर उठा कर ले जाते थे और जहाँ गिरनेका भय नहीं होता था वहाँ निश्चिन्ततापूर्वक हाथका सहारा देकर ले जाते थे ॥३१॥ इस प्रकार ऊँची-नीची चट्टानोंका समूह पारकर भयसे रहित राम लक्ष्मण सीताके साथ पर्वतके चौड़े शिखर पर जा पहुँचे ॥३२॥

अथानन्तर उन्होंने ऊपर जाकर ऐसे दो मुनि देते जो उत्तमध्यानमें आरूढ थे, जिनकी लम्बी भुजाएँ नीचेकी ओर लटक रही थीं, जो अत्यन्त दुःसाध्य चतुर्मुत्पी प्रतिमाको सिद्ध कर रहे थे, परम तेजसे युक्त थे, समुद्रके समान गम्भीर थे, पर्वतके समान स्थिर थे, शरीर और आत्माको भिन्नताको जाननेवाले थे, मोहसे रहित थे, दिग्गम्य-मुद्राको धारण करनेवाले थे, कान्तिके सागर थे नूतन तारण्यसे युक्त थे, उत्तम आकारके धारक थे और आगमोक्त आचरण करनेवाले थे ॥३३-३५॥ आश्चर्यको प्राप्त हुए वे तीनों अशुभ कर्मोंके आश्रयन परित्याग कर इस प्रकार विचार करने लगे कि ससारमें प्राणियोंकी समस्त चेष्टाएँ निःसार तथा दुःखके कारण हैं ॥३६॥ मित्र, घन, स्त्री, पुत्र, और भाई-जन्य आदि सभी सुखदुःख रूप हैं, एक धर्म ही सुखका कारण है ॥३७॥ तदनन्तर जो भक्तिसे युक्त थे, जिन्होंने हाथ जोड़कर मस्तक पर लगा रक्ते थे, जो परम सन्तोषको धारण कर रहे थे, और विनयसे जिनके शरीर नम्रोभूत हो रहे थे, ऐसे वे तीनों उक्त मुनिराजोंके पास गये ॥३८॥ दर्शन करते ही उन्होंने, जो अत्यन्त भयङ्कर थे, इधर-उधर चल रहे थे, विकट शब्द कर रहे थे, मसले हुए अञ्जनके समान कान्तिवाले थे, तथा तिनकी जीभे लपलपा रही थीं ऐसे मौँपासे और जिन्होंने अपनी पूँछ ऊपर उठा रक्की थी, जो अत्यन्त भयङ्कर थे, रात दिन एक-दूसरे से सटकर चल रहे थे, नाना रङ्गके थे, एत बहुत मोटे थे, ऐसे विच्छुभोसे उन दोनों मुनियाकी

तथाविधौ च तौ दृष्ट्वा रामोऽपि सहलक्ष्मणः । सहसा त्रासमायातौ भजे स्तम्भमिव क्षणम् ॥४१॥  
 वैदेहीं भयसम्पन्ना भर्तारं परिपस्वजे । मा भैषीरिति तामूचे भय त्यक्त्वा क्षणेन सः ॥४२॥  
 उपसृज्य ततः स्वैरं ताभ्यां पन्नगपुञ्जिकाः । अत्यस्ता कारुण्येण मुहुः कृतविवर्तनाः ॥४३॥  
 अयोद्धर्यं चिर पादौ तयोर्निर्भरवारिणा । गन्धेन सीतया लिप्तां चारुणा पुरभावया ॥४४॥  
 आसन्नानां च बल्लीनां कुसुमैर्वनसौरभैः । लक्ष्मीधरार्पितैः शुक्लैः पूरितान्तरमंचितौ ॥४५॥  
 ततस्ते करयुग्मान्जमुकुलध्रोजितालिकाः । चतुर्योगीश्वरी भक्त्या बन्दनां विधिकोविदाः ॥४६॥  
 बाणां च सन्निधायाङ्गे वधूमिव मनोहराम् । पद्मोष्वाद्यद्वयुद्ध गायन् सुमधुराक्षरम् ॥४७॥  
 अन्नगायदिमं लक्ष्मीलतालिङ्गितपादपः । वाकोकिलरवः पुत्रः कैरव्यास्तरवमादरम् ॥४८॥  
 महायोगेश्वरा धीरा मनसा शिरसा गिरा । वन्द्यास्ते साधवो निय सुरैरपि सुचेष्टिताः ॥४९॥  
 उपमानविनिर्मुक्तं यैरन्याहतमुत्तमम् । प्राप्तं त्रिजुवनव्यातं सुभाष्यैरहं दक्षरम् ॥५०॥  
 भिन्न यैर्यानदण्डेन महामोहशिलातलम् । दीनं विदन्ति ये विरवं धर्मानुष्ठानवर्जितम् ॥५१॥  
 गायतोश्चराभ्येवं तयोर्गानविधिज्ञयोः । तिरश्चामपि चेतांसि परिप्राप्तानि माद्वेषम् ॥५२॥  
 ततो विदितनिरस्यंचारुनर्तनलक्षणा । मनोज्ञारूपसम्पन्ना हारमालयादिभूषिता ॥५३॥  
 लीलया परया युक्ता दर्शिताभिनया स्फुटम् । चारुवाहुलताभारा हावभावादिकोविदा ॥५४॥

धिरा देखा ॥३६-४०॥ उक्त प्रकार के मुनियोंको देख, राम भी लक्ष्मणके साथ सहसा भयको प्राप्त हुए तथा क्षण भरके लिए निश्चल रह गये ॥४१॥ सीता भयभीत हो पतिसे लिपट गई, तब रामने क्षण एकरुमं भय छोड़कर सीतासे कहा कि डरो मत ॥४२॥ तदनन्तर राम-लक्ष्मणने धीरे-धीरे पास जाकर जो दूर हटानेपर भी बार-बार वहीं लौट कर आते थे ऐसे सौंप, विच्छुओंको धनुषके अग्रभागसे दूर किया ॥४३॥

अथानन्तर भक्तिमे भरी सीताने निर्भरके जलसे देर तक उन मुनियोंके पैर धोकर मनोहर गन्धसे लिपि किये ॥४४॥ तथा जो वनको सुगन्धित कर रहे थे एवं लक्ष्मणने जो तोड़ कर दिये थे, ऐसे निरुदवर्ती लताओंके फूलोंसे उनकी खूब पूजा की ॥४५॥ तदनन्तर अञ्जलिरूपी कमलकी बोड़ियोंसे जिनके ललाट शोभायमान थे तथा जो विधि विधानके जाननेमें निपुण थे ऐसे उन सवने भक्तिपूर्वक मुनिराजकी बन्दना की ॥४६॥ अत्यन्त उत्तम तथा मधुर अक्षरोंमें गाते हुए रामने मनोहर स्त्रीके समान धीणाको गौदमें रखकर बजाया ॥४७॥ इनके साथ ही लक्ष्मणने भी बड़े आदरसे तत्त्वपूर्ण गान गाया । उस समय लक्ष्मण, लक्ष्मीरूपी लतासे आलिङ्गित वृत्तके समान जान पड़ते थे और उनका मधुर शब्द कोयलकी मीठी तानके समान मालूम होता था ॥४८॥ वे गा रहे थे कि जो महायोगके स्वामी हैं, धीर-वीर हैं तथा उत्तम चेष्टाओंसे सहित हैं, उत्तम भाग्यके धारक जिन मुनियोंने उपमासे रहित, अपण्डित, तथा तीन लोकमें प्रसिद्ध 'अर्हन्' यह उत्तम अक्षर प्राप्त कर लिया है । जिन्होंने ध्यानरूपी दण्डके द्वारा महामोहरूपी शिलातलको तोड़ दिया है और जो धर्मानुष्ठान-धर्माक्षरणसे रहित विरवको दीन समझते हैं ऐसे साधु देवोंके द्वारा भी मनसे, शिरसे तथा वचनसे बन्दनीय हैं ॥४९-५१॥ गानकी विधिको जाननेवाले राम-लक्ष्मण जब इस प्रकारके अक्षर गा रहे थे तब तिर्यञ्चोंके भी चित्त कोमलताको प्राप्त हो गये थे ॥५२॥

तदनन्तर जो समस्त सुन्दर नृत्योंके लक्षण जानती थी, मनोहर वेपथूपासे युक्त थी, हार माला आदिसे अलङ्कृत थी, परम लीलासे सहित थी, स्पष्टरूपसे अभिनय दिखला रही थी, जिसकी वाहुरूपी लताओंका भार अत्यन्त सुन्दर था, जो हाव-भाव आदिके दिखलानेमें निपुण

लयान्तरवशोत्कृष्टमनोऽस्तनमण्डल । निरशब्दचरणाम्भोजविन्यासा चलितोत्का ॥५५॥  
 गीतानुगममपञ्जसमस्ताद्भविचेष्टिता । भन्द्रे धारिवातृत्वज्जाननी भक्तिचोदिता ॥५६॥  
 उपमर्णाद्विर प्रस्ते यातेऽस्त भास्करे तत । सन्ध्याया चानुमार्गेण याताया चलतेजसि ॥५७॥  
 नक्षत्रमण्डलालोकं निर्धनं नीलाभ्रसन्निभम् । व्याप्नुवान् दिश सर्वा गहन ध्वान्तमुत्तमम् ॥५८॥  
 जनस्याश्रावि वर्यापि दिक्षु सञ्चोभन परम् । साराविण तथा चित्र भिन्द्वानमिव पुष्करम् ॥५९॥  
 विद्यज्जालामुर्वैलभ्रैरमुर्द्वैर्वात्समम्बरम् । ववापि यात इवाशोपो लोकछाससमाकुलः ॥६०॥  
 अलप्रतिभवाकारा दृष्टालीकुटिलानना । अट्टहासान् महारौद्रान् भूताना सस्रजुर्गणा ॥६१॥  
 मध्यादा त्रिम रेसु सानल चाशिवा शिवा । सस्वपुनंनृतुर्भूमि क्लेशरशतानि च ॥६२॥  
 मूर्धरोभुजजद्वादीन्यद्गानि ववृपुर्धना । दुर्गन्धिभि समेतानि स्थूलशोणितविन्दुभि ॥६३॥  
 वरवालाकरा क्रूरविग्रहा दोलितस्तनी । लग्नोष्ठा डाकिनी नग्ना इश्यमानास्थिसञ्चया ॥६४॥  
 मासपण्डाभमगनाद्या शिरोघटितशेखरा । एलाप्रसरोजिह्वा पेशाशोणितवपिणी ॥६५॥  
 सिंहव्याघ्रमुसैस्तसलाहचाम्भलीचनै । शूलहस्तैर्विदृष्टोर्द्वैर्बुटीकुटिलालिकै ॥६६॥  
 राक्षसै परपारावैर्नृथिन्निरतिसङ्कुलम् । कम्पिताद्रिशिलाजाल सुचोभ वसुधातलम् ॥६७॥

थी, लय बदलनेके समय जिसके सुन्दर स्तनोंका मण्डल कुछ ऊपर उठकर कम्पित हो रहा था, जिसके चरण कमलौका विन्यास शब्द रहित था, जिसकी एक जोड़ चल रही थी। जिसके शरीरकी समस्त चेष्टाएँ संगीत शास्त्रके अनुरूप थीं, तथा जो भक्तिसे प्रेरित थी, ऐसी सीताने उस प्रकार नृत्य किया जिस प्रकार कि जिनेंद्रके जन्माभिषेकके समय सुमेरु पर श्री देवीने किया था ॥५३-५६॥ तदनन्तर उपसर्गसे ग्रस्त होकर ही मानो जब सूर्य अस्त हो गया और उसीके पीछे चञ्चल तेजकी धारण करनेवाली सध्या भी जन चली गई तब नक्षत्र मण्डलके प्रकाशको नष्ट करनेवाला तथा नील मेघके समान आभावाला सघन अन्धकार समस्त दिशाओंको व्याप्त करता हुआ उदित हुआ ॥५७-५८॥ उसी समय किसीका ऐसा विचित्र शब्द सुनाई दिया जो दिशाओंमें परम सौभ उत्पन्न करनेवाला था तथा जो आकाशको भेदन करता हुआ सा जान पड़ता था ॥५९॥ जिसके अप्रभागमें विजलारूपी ज्वाला प्रकाशमान थी, ऐसी लम्बी घनघटासे आगारा व्याप्त हो गया और लोक ऐसा जान पड़ने लगा मानो भयसे व्याकुल हो कहीं चला ही गया हो ॥६०॥ जिनके आकार अत्यन्त भय उत्पन्न करनेवाले थे तथा जिनके मुख दाँडोकी पक्ति से कुटिल थे, ऐसे भूतोने मुण्ड महा भयङ्कर अट्टहास करने लगे ॥६१॥ राक्षस नीरस शब्द करने लगे, अमङ्गल रूप शृगालियों आगि डगलती हुई शब्द करने लगीं, सैकड़ों क्लेशर भयङ्कर नृत्य करने लगे, ॥६२॥ मेघ, दुर्गन्धित खूनकी बडा माटी घूँटोसे सहित मस्तक चञ्चल, भुजा तथा जद्वा आदि अयवोंकी वर्षा करने लगे ॥६३॥ जो हाथमें तलवार लिये थी जिसका शरीर अत्यन्त क्रूर था, जिसके स्तन हिल रहे थे, जिसके ओठ अत्यन्त लम्बे थे, जो नग्न थी, जिसकी हृष्टियोंका समूह प्रत्यक्ष दिग्याई दे रहा था, जिसकी पृठी आगि मासपण्डके समान थीं, जिसने नगमुण्डना मेहरा पहिन रक्का था, जिसकी जीभ ऊपरकी ओर उठकर ललाटका स्पर्श कर रही थी तथा जो मास और रंधिरकी वर्षा कर रही थी ऐसी टाकिनी दिग्याई देने लगी ॥६४-६५॥ जिनके मुख सिंह तथा व्याघ्रके समान थे, जिनके नेत्र तपे रूप लोह चक्रके सदृश थे, जिनके हाथमें शत्रु विगमान थे, जो आठनों टरा रहे थे, जिनके ललाट भौंहोसे कुटिल थे, जिनकी आवाज अत्यन्त कटोर थी, तथा जो नृत्य कर रहे थे ऐसे राक्षसोंसे भरा हुआ वहाँका भूतल

१. मुत्तरां, मन्त्र १०, ३०, म० । २. निधनात्प्रमनम्, म० । ३. भिन्द्वानमिव म० ।  
 ४. आवाशर । ५. दशधैव आत्सरागमाकुट म० । ६. अमङ्गल-भूत । ७. शृगाव ।

विचष्टितमिदं पृथं नाज्ञासिद्धा महामुना । तयोहि ज्ञानरुमांस्तुशुभलभ्यानमय नदा ॥६८॥  
 तथाविधं तमालोक्य वृत्तान्तं वरभीतिदम् । स्तब्धं जानका नृत्यमारिलप्यकृष्णिना पतिम् ॥६९॥  
 पद्मे जगाद ता देवि मा भैषी शुभमानम् । उपगुह्य मुने पादौ तिष्ठ सारंभयन्निजुदौ ॥७०॥  
 'इत्युत्तरा पादयो कान्ता मुनेरासात्र लाज्जया । लक्ष्मीधरकुमारेण साकं सन्नाहमाश्रित ॥७१॥  
 मञ्जलाविव जामूर्तौ गणितौ तौ महाप्रभौ । निर्घातमिव मुद्वन्तौ समास्फालयता धनु ॥७२॥  
 ततस्तौ सम्भ्रमौ ज्ञात्वा रामनारायणविति । सुरो बह्निप्रभाभिरयस्तिरोधानमुपेयित्वा ॥७३॥  
 ज्योतिर्वरे गते तस्मिन् समस्त तद्विचैष्टितम् । सपदि प्रलयं यात जात च विमल नभ ॥७४॥  
 प्रातिहार्ये कृते ताम्यामिच्छद्भ्या परम हितम् । उत्पन्न केवलज्ञान मुनिपुत्रवयो व्रणान् ॥७५॥  
 चतुर्विधास्ततो देवा नानाधानममाश्रिता । समाज्जमु प्रशसन्ता मुदितास्तपस फलम् ॥७६॥  
 प्रणम्य विधिना तत्र कृत्वा केवलपूजनम् । रचिताबलयो देवा यथास्थानमुपाविशान् ॥७७॥  
 केवलज्ञानसम्भूतिसमाहृष्टसुरागमात् । शपादिना मकौ कालावगूतौ भेदवन्तौ ॥७८॥  
 भूमिगोचरिणो मर्यास्तथा विद्यामहाबला । उपविष्टा यथायोग्य कृत्वा वेदलिना महम् ॥७९॥  
 प्रसन्नमानस्यै सद्य कृत्वा केवलपूजनम् । प्रणम्य सातथा साकं निविष्टौ रामलक्ष्मणौ ॥८०॥  
 अथ तच्छणसम्भूतपरमाहामनस्थितौ । प्रणम्य साञ्जलि पद्म पप्रच्छैव महामुना ॥८१॥

शोभको प्राप्त हो गया और परंतकी चट्टाने हिल उठी ॥६६-६७॥ यह सन हो रहा था परन्तु उन महागुनियोको इस व्यर्थकी चेष्टाका कुछ भी भान नहीं था, उनका ज्ञानोत्पादक प्रयत्न उस समय अन्तरङ्गमे युक्त ध्यानमग्न था ॥६८॥ अच्छे अच्छे पुरुषोंको भय उत्पन्न करनेवाला ऐसा वृत्तान्त देख सीता नृत्य छोड़ कौपती हुई पतिसे लिपट गई ॥६९॥ तब रामने कहा कि हे देवि ! हे शुभ मानसे ! भयभात मत हो । सन प्रकारको भय दूर करनेवाले मुनियोंके चरणाका आश्रय ले बैठ जाओ ॥७०॥ यह कहकर रामन साताको मुनिराजके चरणोंके समीप बैठायी और स्वयं लक्ष्मण कुमारके साथ, युद्धके लिए तैयार हो गये ॥७१॥ तदनन्तर सजल मेघके समान गरजने वाले मन्महा कान्तिके धारक राम लक्ष्मणने अपने अपने धनुष टङ्कोरे सों ऐसा जान पडा मानो यत्र ही छोड़ रहे हों ॥७२॥ तदनन्तर ये बलभद्र और नारायण हैं ऐसा जानकर वह अग्निप्रभ देव घबड़ाकर तिरोहित हो गया ॥७३॥ उस ज्योतिषी देवके चले जानेपर उसकी मन्की मन् चेष्टाएँ तत्काल विलीन हो गई और आकाश निर्मल हो गया ॥७४॥

अथानन्तर परम हितकी इच्छा करनेवाले राम लक्ष्मणने द्वारा प्रतिहारीका कार्य सम्पन्न होनेपर अर्थात् उपसर्ग दूर किये जानेपर दोनों मुनियोंकी चणभरमे केवलज्ञान उत्पन्न हो गया ॥७५॥ तदनन्तर नाना प्रकारके वाहनापर बैठे, हर्षसे भरे तथा तपके फलकी प्रशंसा करते हुए चारों निनायके देव आ पहुँचे ॥७६॥ वहाँ त्रिधिपूर्वक प्रणामकर तथा केवलज्ञानकी पूजाकर सत्र देव लोग हाथ जोड़े हुए यथास्थान बैठ गये ॥७७॥ उस समय केवलज्ञानकी उत्पत्तिसे त्रिभिः हुए देवाका समागम होनेसे रात दिन रूप काल भेदसे रहित हो गया अर्थात् वहाँ रात दिनका व्यवहार समाप्त हो गया ॥७८॥ भूमिगोचरी मनुष्य तथा त्रिधास्त्री महाबलकी धारण करनेवाले विद्याधर-सभी लोग केवलियोंकी पूजाकर यथायोग्य म्यानपर बैठ गये ॥७९॥ प्रसन्न चिन्तने धारक राम लक्ष्मण भी सीताने साथ शीघ्र ही केवलियोंकी पूजाकर यथास्थान बैठ गये ॥८०॥

अथानन्तर तच्छण उत्पन्न हुए परमोत्तम सिंहासनों पर विराजमान केवलज्ञानी महा-

१ जानरुमं = इयनीत्यादिका त्रिया, अन्त आभ्यन्तरे इति त्रिपणी मुक्तेने । २ इत्युत्तरा म० ।  
 ३ यज्ञम् । ३. ज्यातिसम् म० । ४ जात म०, क० । ५ रात्रियसम्पौ । ६. पूजाम् ।

भगवन्तां कृतो नक्त केनाय वामुपद्रव । अथवा स्वस्य युवयोरिदं जातं हितं परम् ॥८२॥  
 त्रिकालगात्रं विश्वं विद्वन्तापि तां समम् । गिरं यामूचतु (गिरायामूचतु) साम्यपरिणाममिति क्रमात्  
 नगर्यां पद्मिना नामिना राजा विजयपर्वत । गुणसस्योत्तमक्षेत्रं भामिनी यस्य धारिणी ॥८३॥  
 अमृतस्वरसंज्ञास्य दूतं शास्त्रविशारदं । राजकर्तव्यकुशलं लोकविद् गुणवत्सल ॥८४॥  
 उपयोगेति भाषास्य द्वौ तस्यां बुद्धिमग्भवा । उदितो मुदिताप्यथ व्यवहारविशारदो ॥८५॥  
 अस्यां दूतोऽन्यदा राजा प्रहितो दूतकर्मणा । प्रवासं सेवितुं सक्तं स्वामिरक्तमतिभृशम् ॥८६॥  
 वसुभूतिं समं तेन सखा तद्भक्तजावित । निर्गतस्त्प्रियासक्तिनिष्ठो दुष्टेन चेतसा ॥८७॥  
 सुप्तं तममिना<sup>१</sup> हवा निवृत्ता नगरा<sup>२</sup> पुनः । जनायावेदयत्तेन किलाहं विनिवर्तितं ॥८८॥  
 उपयागा जगादैश्च जहि मे तनयावपि । विश्रब्धं यत्तिष्ठामि इति बध्ना निवेदितम् ॥८९॥  
 त्वरितं चोदितायासो वृत्तान्तो विनिवेदित । सा हि तेन समं शब्ध्या<sup>३</sup> सङ्गं ज्ञातवता पुरा ॥९०॥  
 ब्राह्मण्या वसुभूतेश्च रतिकार्यसमाध्याया । कथितं तत्तथाभूत् परमाहुर्लक्षित्या ॥९१॥  
 वभूत् चोदितस्यापि सन्दिग्धं विदितं पुरा । मुदितस्य च खड्गस्य दर्शनात् स्फुन्ता गतम् ॥९२॥  
 ततो रोपपरातेन हतं सन्नुदितेन स । कुट्टिजो म्लेच्छतां प्राप क्रूरकर्मपरायण ॥९३॥

मुनियोंको नमस्कार कर रामने हाथ जोड़ इस प्रकार पूछा ॥८२॥ कि हे भगवन् ! रात्रिके समय आप दोनों अथवा अपने ही ऊपर यह उपसर्ग किसने किया था और आप दोनोंमें परस्पर अति स्नेह किस कारण हुआ ? ॥८३॥ यद्यपि दोनों महामुनि त्रिकालविषयक समस्त पदार्थोंको एक साथ जानते थे, तो भी साम्यपरिणामको प्राप्त हुए दोनों महामुनि दिव्य धर्मनिर्णय क्रमसे बोले ॥८४॥ उन्होंने कहा कि—

पद्मिनी नामा नगरीमे राजा विजयपर्वत रहता था । गुणरूपी धान्यकी उत्पत्तिके लिए उत्तम क्षेत्रके समान उसकी धारिणी नामकी स्त्री थी ॥८५॥ राजा विजयपर्वतके एक अमृतस्वर नामका दूत था जो शास्त्रज्ञानमे निपुण था, राजकर्तव्यमे कुशल था, लोकव्यवहारका ज्ञाता तथा गुणामे स्नेह करनेवाला था ॥८६॥ उसकी उपयोगा नामकी स्त्री थी और उसके उदरसे उत्पन्न हुए उदित तथा मुदित नामके दो पुत्र थे । ये दोनों ही पुत्र व्यवहारमे अत्यन्त कुशल थे ॥८७॥ किसी समय राजाने अमृतस्वरको दूत सम्बन्धी कार्यसे बाहर भेजा, सो रामीके कार्यमे अत्यन्त अनुरक्त बुद्धिको धारण करनेवाला अमृतस्वर प्रवासके लिए गया ॥८८॥ उसके साथ उसीके भोजनसे जीवित रहनेवाला वसुभूति नामका मित्र भी गया । वसुभूति अत्यन्त दुष्ट चित्त था तथा अमृतस्वर की स्त्रीमे आसक्त था ॥८९॥ वह सोते हुए अमृतस्वरकी तलवारसे मारकर नगरीमे वापिस लौट आया और आकर उसने लोगोंको बताया कि अमृतस्वरने मुझे लौटा दिया है ॥९०॥ अमृतस्वरकी स्त्री उपयोगाने वसुभूतिसे कहा कि हमारे दोनों पुत्रोंको भी मार डालो जिससे फिर हम दोनों निश्चिन्ततासे रह सकेंगे । सासका यह कहना उसकी नहीं जान लिया इसलिए उसने यह सज समाचार शीघ्र ही उदितके लिए बताया, यथार्थमे वह वह 'सामका वसुभूतिके साथ सगम है' यह पहलेसे जानती थी ॥९१-९२॥ वसुभूतिकी राम स्त्री उसी इस रतिक्रियासे सदा ईर्ष्या ररती थी तथा उसका चित्त अत्यन्त व्याकुल रहता था इसलिए उसने यह समाचार उदित की स्त्रीसे कहा था ॥९३॥ उदितको भी पहलेसे कुछ-कुछ मन्देह था और मुदित भी इस बातको पहलेसे जानता था कि वसुभूतिके पास तलवार देतनेसे सज यात एषट हो गई ॥९३॥ तदनन्तर क्रोधसे युक्त होकर उदितने उसे मार डाला जिससे क्रूरकर्ममे तत्पर रहनेवाला वह पुत्रात्म्य स्नेहपर्यायको प्राप्त हुआ ॥९४॥

१. युय ३०, ४० । २. गिरया । ३. उदितमुदितनामधेयो । ४. लुरिक्या । ५. निवृत्तिनगरी म० ।

६. शम्भवा म० । ७. मृत्ता न म० ।

अन्यदा प्रथित क्षोण्या गणेशो मतिवर्धन । विहरन् पद्मिनीं प्राप ध्रमण सुमहातपा ॥६५॥  
 अनुद्धरेति विरपाता धर्मध्यानपरायणा । महत्तरा तदा चासीदायिका गणपालिना ॥६६॥  
 वसन्ततिलकाम्रिये तत्रोद्याने सुसुन्दरे । सहने सहितस्तस्यो चतुर्भेदेन सद्भुवि ॥६७॥  
 अयोद्यानस्य सम्भ्रान्ता पालका किङ्करा भृशम् । नृप व्यजापयशेव भूमिर्त्रियस्तपणय ॥६८॥  
 अग्रतो नृगुरयुप्र शार्दूल पृष्ठतो नृप । बद्ध क शरण यामो नाशो न सर्वथोदित ॥६९॥  
 भद्रा किं किमिति ब्रूधेत्युक्ता नृपतिनागदन् । नाथोद्यानभुव प्राप्य ध्रमणानां गण स्थित ॥७०॥  
 यद्येन वारयामोऽत शाप भुवमवाप्नुम । न चेत्ते जायते कोप इति न सङ्गो महात् ॥७१॥  
 कल्पोद्यानसमच्छायमुद्यान ते प्रसादत । नरेन्द्रकृतमस्माभिरप्रवेश्य पृथग्जनै ॥७२॥  
 नैव चारयितु शक्यास्तपस्तेजोतिदुर्गमा । त्रिदशैरपि दिग्बद्धा किमुतास्माद्दशैर्जनै ॥७३॥  
 मा भैष्ट ततो राजा कृत्वा किङ्करसान्त्वनम् । उद्यान प्रस्थितो युक्तो विस्मयेनातिभूरिणा ॥७४॥  
 क्रद्वाया च परया युक्तो बन्दिभि कृतनिस्वन । उद्यानभुवमामादन् प्रतापप्रकट पितात् ॥७५॥  
 ददरां च महामागान् धनरेणुममुञ्चिनान् । मुक्तियोग्यत्रियायुक्तान् प्रशान्तद्वयान् सुनान् ॥७६॥  
 प्रतिमावस्थितान् वाक्शिव् प्रलम्बितभुगद्वयान् । पष्ठाष्टमादिभिस्ताम्रैरुपवासैर्विरोपितान् ॥७७॥

अथानन्तर किसी समय मुनिसवके स्वामी मतिवर्धन नामक महातपस्वी आचार्य पृथिवी पर विहार करते हुए पद्मिनी नगरी आये ॥६५॥ उसी समय धर्मध्यानमें तत्पर रहनेवाली, अति शय श्रेष्ठ और आर्यिकाओंके सघकी रक्षा करनेवाली अनुद्धरा नामकी गणिनी भी विद्यमान थीं ॥६६॥ चतुर्विध सपसे सहित मतिवर्धन आचार्य वहाँ आकर उत्तम भूमिसे युक्त वसन्त-तिलक नामक उद्यानमें ठहर गये ॥६७॥ तदनन्तर उद्यानकी रक्षा करनेवाले किङ्कर अत्यन्त व्यग्र हो राजाके पास पहुँचे और पृथ्वी पर हाथ रखकर इस प्रकार प्रार्थना करने लगे कि हे नाथ ! आगे तो उड़ी ऊँची ढालू चट्टान है और पीछे व्याघ्र है बताइये हम किसकी शरणमें जायें । हमारा तो सप्त प्रकारसे विनाश उपस्थित हुआ है ॥६८-६९॥ 'भले आदमियों ! क्या ? क्या ??, क्या कह रहे हो' इस प्रकार राजाके कहने पर किङ्करोंने कहा कि हे नाथ ! मुनियोंका एक सघ उद्यानकी भूमिमें आकर ठहर गया है ॥७०॥ यदि इस सघको हम मना करते हैं तो निश्चित ही शापको प्राप्त होते हैं और यदि नहीं मना करते हैं तो आपको क्रोध उत्पन्न होता है, इस प्रकार हम लोगों पर उडा सफट आ पडा है ॥७१॥ हे राजन् ! आपके प्रसादसे हम लोगोंने वह उद्यान कल्प कृतिये उद्यानके सम्पन्न बना सकते हैं, उसमें सम्प्राण-पाप्मर फलुज्य प्लेश नदी कर सकते, ॥७२॥ जो तपके तेजसे अत्यन्त दुर्गम हैं ऐसे निर्ग्रन्थ मुनियोंको देव भी रोकनेमें समर्थ नहीं हैं फिर हमारे जैसे मनुष्योंकी बात ही क्या है ? ॥७३॥

तदनन्तर 'भयभीत मत होओ' इस प्रकार किङ्करोंको सान्त्वना देकर बहुत भारी आश्चर्यमें युक्त हुआ राजा उद्यानकी ओर चला ॥७४॥ जो बहुत भारी सम्पदासे युक्त था, वन्दोजन निसकी स्तुति करते जाते थे, तथा जो अतिशय प्रतापी था, ऐसा राजा चलकर उद्यानभूमिमें पहुँचा ॥७५॥ वहाँ जाकर उमने महाभाग्यवान् मुनियोंके दर्शन किये । वे मुनि धनकी धूलिसे व्याप्त थे, मुक्तिने योग्य त्रियाओम तत्पर थे तथा अत्यन्त प्रशान्त चित्त थे ॥७६॥ उनमेंसे कितने ही मुनि दोनों भुजाआको नीचे धी ओर लटका कर प्रतिमाके समान अवस्थित थे, तथा वेला-नेला आदि कठिन उपवासोंसे उनने शरीर शुष्क हो रहे थे ॥७७॥ कितने ही स्वा-ध्यायमें तत्पर हो ध्रमरोंके समान मधुरध्वनिसे गुनगुना रहे थे और कितने ही स्वाध्यायमें

स्वाध्यायनिरानन्यान्<sup>१</sup> पङ्क्तिमधुरध्वनीन् । तस्मिन्नेशितचेतस्कान् पाणिपादसमाहितान् ॥१०८॥  
 अवलोक्य मुनीन्तिथ भग्नगर्वाङ्कुरोऽभवन् । अवतीर्य गजाद् भावी ननाम जयपर्वत ॥१०९॥  
 क्रमेण प्रणमन् साधुनाचार्यं समुपगत । प्रणम्य पादयोरुच्ये भोगे सद्बुद्धिसुद्वहन् ॥११०॥  
 नरप्रधानदासिस्ते पयस्य शुभलक्षणा । तथा कथं न ते भोगा रताः पादतलस्थिताः ॥१११॥  
 जगाद् मुनिमुच्यस्ते का ते मतिरिय तवै । स्यास्तुतासद्गतार्त्ता ससारपरिवर्तिनी ॥११२॥  
 करिवालङ्कणान्तचपल ननु जीवितम् । मानुष्यकं च कर्त्तव्यं सारसाम्य विभर्ष्यदः ॥११३॥  
 स्वल्पप्रतिममैश्वर्यं सक्तं च सह चान्ध्रैः । इति ज्ञात्वा रतिः कात्रं चिन्त्यमानातिदुःखदे ॥११४॥  
 नरप्रतिमे घोरे दुर्गन्धे कृमिसङ्कुले । रक्तश्लेष्मादिसरमि प्रभूताशुचिकर्त्तमे ॥११५॥  
 उपितोऽनेकशो जीवो गर्भभासेऽतिसङ्घटे । तथा न शङ्कते मोहमहाध्वान्तसमावृतः ॥११६॥  
 त्रिगण्यन्ताशुचि देहं सर्वां शुभनि गानकम् । क्षणधरमत्राण कृतघ्न मोहपूरितम् ॥११७॥  
 स्नसजालकमशिलप्रतिच्छातवगावृतम् । अनेकरोगविहंतं जरागमजुगुप्सितम् ॥११८॥  
 पृथग्भिन्नि देहेऽस्मिन् ये कुर्वन्ति जना घृतिम् । तेभ्यश्चैतन्यमुक्तेभ्यः स्वस्ति सज्जायते कथम् ॥११९॥  
 शराशिमार्थं पृथस्मिन् परलोकनवासिनि । सुगन्तु प्रशम लोके तिष्ठन्तान्द्रियदस्पवः ॥१२०॥  
 रमते जीवन्पतिः कुमतिप्रमदावृतः । अवस्कन्देन मृत्युस्त कर्त्तव्यं यतिमुच्छति ॥१२१॥

चित्त लगाकर पद्मासनसे विराजमान थे ॥१०८॥ इस प्रकारके मुनियोंको देख कर राजाका गर्वरूपी अङ्कुर भग्न हो गया तथा उसने हाथीसे नीचे उतर कर मुनियोंको नमस्कार किया । राजाका नाम विजयपर्वत था ॥१०९॥ भोगोंमें समीचीन बुद्धिको धारण करनेवाला राजा क्रम क्रमसे सब मुनियोंको नमस्कार करता हुआ आचार्यके पास पहुँचा और उनके चरणोंमें प्रणाम कर इस प्रकार बोला कि हे नरश्रेष्ठ ! तुम्हारी शुभ लक्षणोंसे युक्त जैसी दीप्ति है वैसे भोग आपके चरणतलमें स्थित क्यों नहीं है ? ॥११०-१११॥ आचार्यने उत्तर दिया कि तेरे शरीरमें यह क्या बुद्धि है ? तेरी यह बुद्धि शरीरको स्थिर समझनेवाली है सो मूठी है और संसारको घटानेवाली है ॥११२॥ निश्चयसे यह जीवन हस्तिशिशुके कानोंके समान चञ्चल है तथा मनुष्यका यह जीतन्य केलेके सारकी सदृशता धारण करता है ॥११३॥ यह ऐश्वर्य और वन्द्युजनोंका नमोगम स्वप्नके समान है, ऐसा जानकर इनमें क्या रति करना है ? इन ऐश्वर्य आदिका ज्यों-ज्यों विचार करो त्यों-त्यों ये अत्यन्त दुःखदायी ही मालूम होते हैं ॥११४॥ जो नरकके समान है, अत्यन्त भयङ्कर है, दुर्गन्धिसे भरा है, कीड़ोंसे युक्त है, रक्त तथा कफ आदिका मानो सरोवर है, जहाँ अत्यन्त अशुचि पदार्थोंकी कीच मच रही है तथा जो अत्यन्त संकीर्ण है ऐसे गर्भमें इस जीवने अनेकों द्वार निवास किया है, फिर भी महामोहरूपी अन्धकारसे आवृत हुआ यह प्राणी उससे भयभीत नहीं होता ॥११५-११६॥ जो सर्व प्रकारके अशुचि पदार्थोंका भाण्डार है, क्षण भरमें नष्ट हो जानेवाला है, जिसकी कोई रक्षा नहीं कर सकता, जो कृतघ्न है, मोहसे पूरित है, नमोंके समूहसे वेष्टित है, अत्यन्त पतली चर्मसे चिरा है, अनेक रोगोंसे राण्डित है, और युद्धापाके आगमनसे निन्दित है, ऐसे इस शरीरको धिक्कार है ॥११७-११८॥ जो मनुष्य ऐसे शरीरमें धैर्य धारण करते हैं, चैतन्य अर्थात् विचाराविचारकी शक्तिसे रहित उन मनुष्योंका कल्याण कैसे हो सकता है ? ॥११९॥ यह आत्मारूपी बन्धनकारा परलोकके लिए प्रस्थान कर रहा है, सो लोगोंको जरूरदस्ता सट्टनेवाले ये इन्द्रियरूपी चोर उन्में रोक कर बैठे हैं ॥१२०॥ यह जीवरूपी राजा कुबुद्धि रूपी स्त्रीसे घिरकर कीड़ा कर रहा है और मृत्यु उन्में अचानक ही

१. भ्रमरमनुस्पर्शनम् । रत्नान् १०, म० । २. दण्ड म० । ३. मनुष्याणां म० । ४. ऐश्वर्यं म० । ५. वसत म० । ६. मत्ता शुभ म० । ७. विदित म०, १० । ८. गुणान् म०, ज० । ९. अरस्कन्देन म० ।



मनो विषयमार्गेषु मत्तद्विरद्विभ्रमम् । वैराग्यवलिना शक्य रोद्भु ज्ञानाद्बुद्धिः ॥१२२॥  
 परस्वारूपसस्येषु निभ्राणा लोभमुत्तमम् । अमा हर्षाकनुरगा एतमोद्धमदानवा ॥१२३॥  
 शरीररथमुत्सुक । पातयन्ति कुबर्मसु । चित्तप्रग्रहमयन्त योम्य कुरत तद्दृष्टम् ॥१२४॥  
 नमस्यत जिन भक्त्या स्मरतानारत तथा । मसारम्यागर येन समुत्तरत निश्चितम् ॥१२५॥  
 मोहारिण्युक्त हिवा तप मयमहेतिभि । लोकाग्रनगर प्राप्य राज्य कुरुत निर्भया ॥१२६॥  
 जैन व्याकरण ध्रुत्वा सुधाविनयपर्वत । त्यक्त्वा विपुलमैथयं यभूव मुनियुक्त्व ॥१२७॥  
 तावपि धातरौ तस्मिन् ध्रुत्वा भक्त्या जिनध्रुतिम् । प्रज्य सुनपोभारा सद्गतावाप्तुर्महाम् ॥१२८॥  
 सम्मेद च प्रजन्तौ ताविष्टनिर्वाणवन्दनौ । क्यञ्चिन्मार्गतो अष्टावरण्यानी समाश्रितौ ॥१२९॥  
 वसुभूतिचरेणाथ रौद्रश्लेच्छेन वीक्षितौ । अतिरुद्धेन चाहृती गिरानोशकटोरवा ॥१३०॥  
 त्रिधासन्त तमालोक्य ज्यायान्मुदितमन्वान् । मा भयोर्धर्तरथ स्व ममाधान समाश्रय ॥१३१॥  
 श्लेच्छोऽयं हन्नुमुद्युक्तो दरयते नौ दुराकृति । विराभ्यासममृदाया चान्तेरथ विनिश्चय ॥१३२॥  
 प्रयुवाच स त भाति का नौ जिनवचस्थयो । नून मूढतयास्माभिरप्यय प्रापितो वयम् ॥१३३॥  
 पृथु तौ विद्वितालापां सविचार समाश्रितौ । प्रत्यान्यान शरारादे प्रतिमायोगमागतौ ॥१३४॥  
 समीपता च सम्प्राप्तौ श्लेच्छो हन्तु समुद्यत । आलोक्य देवयोगेन सैनेशेन निवारित ॥१३५॥  
 राम पत्रच्छ तेनैनी व्यापादयितुमोत्सितौ । सेनाधिपेन निमुक्तां रक्षितौ वन हेतुना ॥१३६॥

दुखी करना चाहती है ॥१२१॥ विषयोंके मार्गमें मद्गोन्मत्त हाथीके समान दौड़ता हुआ यह मन इतिहासकी अङ्कुराकी धारण करनेवाले वैराग्यरूपी बलवान् पुष्पके द्वारा ही रोक जा सकता है ॥१२२॥ जो शरीररूपी धान्यमें उत्तम लोभको धारण कर रहे हैं तथा जो महा मोहरूपी वेग को धारणकर लम्बी चौकड़ी भर रहे हैं ऐसे ये इन्द्रियरूपी घोड़े शरीररूपी रथको कुमार्गमें गिरा देते हैं, इसलिए मन रूपी लगामको अत्यन्त दृढ़ करो ॥१२३-१२४॥ भक्तिपूर्वक जितेन्द्र भगवान्को नमस्कार करो और निरन्तर उन्हींका स्मरण करो जिससे निश्चय पूर्वक संसार सागरको पार कर सको ॥१२५॥ तप और संयमरूपी शस्त्रोंके द्वारा मोहशत्रुकी कटकको नष्टकर मोक्षरूपी नगरको प्राप्त करो तथा निर्भय होकर वहाँका राज्य करो ॥१२६॥ इस प्रकार जैनाचार्यका व्याख्यान सुनकर उत्तम बुद्धिको धारण करनेवाला राजा विजयवर्धन निराश वैभक्तका परित्याग कर श्रेष्ठ मुनि हो गया ॥१२७॥

दूतके पुत्र दोनों भाई उदित और मुदित भक्तिपूर्वक जिनवाणी सुनकर हीनित हो गये और उत्तम तपको धारण करते हुए एक साथ पृथिवी पर विहार करने लगे ॥१२८॥ निर्वाण क्षेत्रकी वन्दनाकी अभिलाषा रखते हुए वे सम्मेदाचलको जा रहे थे, सो किसी तरह मार्ग भूलकर एक महाअटनीमें जा पहुँचे ॥१२९॥ वसुभूतिका जीव मरकर उसी अटनीमें पुष्टलेन्द्र हुआ था, सो उसने देगते ही अत्यन्त क्रुद्ध होकर कठोर वाणीसे उन्हें बुलाया ॥१३०॥ उसे मारनेके लिए उसका बेट बड़े भाई उदितने मुदितसे कहा कि हे भाई ! भयभीत मत हो, इस समय समाधि धारण करो, चित्त स्थिर करो ॥१३१॥ दुष्ट आश्रितिको धारण करनेवाला यह श्लेन्द्र हम दोनोंको मारनेके लिए तत्पर दिखाई देता है सो हम लोगोंने चिरकालके अभ्याससे जिस कुमारको ममृद्ध बनाया है आज उसको परीक्षाका अवसर है ॥१३२॥ मुदितने बड़े भाईको उत्तर दिया कि जितेन्द्र भगवान्के चरणोंमें स्थिर रहनेवाले हम लोगोंको भय किस बातका है ? निश्चयसे हम लोगोंने भी इसका वध किया होगा ॥१३३॥ इस प्रकार वार्तालाप करते हुए दोनों भाई विचार पूर्वक रखे हो गये और शरीर आङ्गिसे समता छोड़ प्रतिष्ठा योगको प्राप्त हुए ॥१३४॥ तदनन्तर मारनेकी इच्छा रखता हुआ वह भौल उनके पास आया परन्तु देवयोगसे भौलके सेनापतिने उसे दौन लिया जिसे मना कर दिया ॥१३५॥ यह सुन, रामने बैबलीसे पूछा

१. हेतुमि म० । २. व्याख्यान । ३. सम्माद ख० । ४. श्रीशत्रुघारया म० ।

केवस्थायात् समुद्भूता भारताति भवान्तरे । सुरप कर्पकरवास्ता यच्चस्थाने सहादरो ॥१३०॥  
 लुब्धकेनाहतो जाव शकुन्तिग्राममन्यदा । ताभ्या कारण्ययुक्ताभ्या दत्वा मूल्य विमोचित ॥१३८॥  
 ततोऽसौ शकुनो मृचा बभूव म्लेच्छभूपति । सुरप कर्पकश्चैतावुदितो मुदितस्तथा ॥१३९॥  
 पद्माभवन्नसौ यस्मादेवाभ्या रञ्जित पुरा । तस्मात् सेनापतिर्भूयो रञ्जासाविमौ मुना ॥१४०॥  
 लुब्धको जावमोक्षेण वसुभूतिद्विजात्तम । सजातो कर्मयोगेन मनुष्यभवमुत्तमम् ॥१४१॥  
 यद्यथा निमित्त पूर्वं तद्योग्य जायतेऽधुना । ससारवासस्तक्षाना जीवाना गतिरीदृशी ॥१४२॥  
 किमथातैरिहानर्थप्रन्थैरौशनसादिभि । एकमेव हि कर्तव्य सुकृत सुखकारणम् ॥१४३॥  
 नि मृतावुपसर्गात्तौ मुना कर्मानुभावात् । निर्वाणसदन प्रासावकाष्टं तिनवन्दनाम् ॥१४४॥  
 एव तौ चारुधामानि पर्यव्य समय चिरम् । रत्नत्रय समाराण्य मृचा स्वर्गमुपागतौ ॥१४५॥  
 निन्द्ययोनियु पर्यव्य वसुभूति सुकृच्छृत । मनुष्यव समासाद्य तापसत्रतमाश्रित ॥१४६॥  
 कृचा बालतप कष्ट कालधर्मेण सन्नत । अग्निकेतुरिति ख्यात क्रूरो ज्योति सुरोऽभवत् ॥१४७॥  
 तथारिभ भरतक्षेत्रे नाम्नारिष्टमहापुरम् । प्रियव्रत इति ख्यात पुरुभोगोऽत्र पाथिव ॥१४८॥  
 महादेव्याबुभे तस्य योषिद्गुणसमन्विते । काञ्चनाभा प्रसिद्धैका पद्मावपरोदिता ॥१४९॥  
 च्युतौ तौ सुन्दरौ नाकाजाती पद्मावतासुतौ । नाम्ना रत्नरथोऽचरच्च विचित्ररथसन्नक ॥१५०॥  
 उपन्न कनकाभाया ज्योतिर्देवं परिस्युत । अनुन्धर इति ख्याति गुणैस्ते चावनिं गता ॥१५१॥  
 राज्य पुत्रेषु निक्षिप्य पट्टदिनानि जिनालये । कृतसलेखन सम्पक् स्वर्गं यात प्रियव्रत ॥१५२॥

कि भील इन्हें क्या मारना चाहता था और सेनापतिने किस कारणसे छुड़ा कर इनका रक्षा की ॥१३६॥ तब केवली भगवान्के मुखसे इस प्रकारकी दिव्यध्वनि प्रकट हुई कि भवान्तरमें यदास्थान नामक नगरमें सुरप और कर्पक नामके दो भाई रहते थे ॥१३७॥ एक दिन एक शिकारी किसान पक्षीको पकड़ कर उस गाँवमें ले आया सो दूजसे युक्त होकर सुरप और कर्पकने मूल्य देकर उसे छुड़ा दिया ॥१३८॥ तदनन्तर वह पक्षी मर कर म्लेच्छ राजा हुआ और सुरप तथा कर्पक मर कर उदित तथा मुदित हुए ॥१३९॥ चूँकि पक्षी अवस्थामे इन दोनोंने पहले इसको रक्षा की थी इसलिए पक्षीने भी सेनापति होकर इन दोनों मुनियोंकी रक्षा की ॥१४०॥ शिकारीका जीव मर कर कर्मयोगसे उत्तम मनुष्य पर्याय पाकर वसुभूति नामका ब्राह्मण हुआ ॥१४१॥ यह जीव पूर्व भवमें जैसा करता है इस भवमें उसके अनुरूप ही उत्पन्न होता है । ससारी प्राणियोंकी ऐसी ही दशा है ॥१४२॥ यहाँ निरर्थक शुक्रादि निर्मित शास्त्राके पढ़नेसे क्या होता है ? सुखके कारणभूत एक पुण्यका ही सचय करना चाहिए ॥१४३॥ पुण्यके प्रभावसे उपसर्गसे निकले हुए दोनों मुनियोगे निर्वाण क्षेत्र—सम्मोदाचल पहुँच कर जिन वन्दना की ॥१४४॥ इस प्रकार अनेक उत्तमोत्तम स्थानोंमें भ्रमण कर तथा चिरकाल तक रत्नत्रयकी आराधना कर मर कर दोनों मुनि स्वर्ग गये ॥१४५॥ और वसुभूति अनेक खोटी योनियोंमें भ्रमण कर बड़ी कठिनाईसे मनुष्यभव को प्राप्त हुआ, सो वहाँ उसने तापसके त्रत धारण किये ॥१४६॥ तदनन्तर दुःखदायी बाल तप कर वह मरा और अग्निकेतु नामका दृष्ट ज्योतिषी देव हुआ ॥१४७॥

तदनन्तर इसी भरतक्षेत्रमें एक अरिष्टपुर नामा नगर है जहाँ प्रियव्रत नामका महाभोगवान् राना राय करता था ॥१४८॥ उसकी स्त्रियोंके गुणोंसे सहित दो महादेवियों थी एक काञ्चनाभा और दूसरी पद्मावती ॥१४९॥ उदित और मुदितके जीव स्वर्गसे चयकर राना पद्मावतीने रत्नरथ और विचित्ररथ नामके सुन्दर पुत्र हुए ॥१५०॥ वसुभूतिका जीव जो ज्योतिषी देव हुआ था वह प्रियव्रत रानाकी दूसरी महादेवी काञ्चनाभाके अनुन्धर नामका पुत्र हुआ । पृथिवी पर आये हुए ताना पुत्र अपने गुणासे प्रसिद्धिको प्राप्त हुए ॥१५१॥ राजा प्रियव्रत पुत्राके ऊपर राज्य

राज्ञोऽन्यस्य सुता नाम्ना श्रीप्रभा श्रीप्रभेव सा । लब्धा रत्नरथेनेष्टा कनकाभाङ्गजेन च ॥१५३॥  
 लब्धा रत्नरथेनैषा ततो द्वेषमुपागतः । अनुन्धरो महो तस्य विनाशयित्मुद्यतः ॥१५४॥  
 ततो रत्नरथेनासौ विचित्रस्यन्दनेन च । निर्जिय समरे पञ्च दण्डान् प्राप्य निराकृतः ॥१५५॥  
 खलीकारास्ततः पूर्वजन्मवैराच्च कोपत । जटावलकलधारी न तापसोऽभूद् विपाट्प्रियव्र ॥१५६॥  
 मुक्त्वा राज्यं चिरं कालं सोदरीं दु प्रबोधिनी । प्रमज्य सुतपः कृत्वा स्वर्गलोकमुपागता ॥१५७॥  
 ता महावैजसां तत्र सुप्त प्राप्य सुरोचितम् । स्युती सिद्धार्धनगरे क्षेमद्वरमहीभृतः ॥१५८॥  
 उत्पन्नौ विमलारयायां महादेव्यां सुसुन्दरी । देशभूषण इत्याद्यो द्वितीयः कुलभूषण ॥१५९॥  
 विद्यार्जनोचितौ तौ च क्रीडन्तौ तिष्ठतो गृहे । नाम्ना सागरधोपथं विद्वान् भ्राम्यन्नुपागतः ॥१६०॥  
 राज्ञा च सगृहीतस्य तस्य पार्श्वेऽग्निलाः कलाः । शिञ्चितौ तावदारेण विनयेन समन्वितौ ॥१६१॥  
 स्वजन नैव तौ कश्चिज्ज्ञानोत्तस्तदगतात्मकौ । कर्तव्यं हि तयोः सर्वं विद्याशालागतं तदा ॥१६२॥  
 उपाध्यायेन चानीतौ मुचिरानु पितुरन्तिकम् । दृष्ट्वा योग्यौ नरेन्द्रेण यथाकामं स पूजितः ॥१६३॥  
 आवयोः क्लिष्टं दारार्थं पित्रा सामन्तकन्यकाः । आनायिता इति श्रोत्रपथं वार्तां तयोर्गता ॥१६४॥  
 ततस्ती पर्या सुन्या वाद्यालीं गन्तुमुद्यतौ । चातायनस्थितां कन्या पुरशोभानपरयताम् ॥१६५॥  
 तत्सङ्गमायमन्योन्य मानसेऽकुरता वधम् । ततश्च चन्दिनो वज्रादिति शब्दः सगुत्थित ॥१६६॥

झोड़ जिनालयमें छह दिनकी उत्तम सल्लेखना धारण कर स्वर्ग गया ॥१५२॥ अधानन्तर एक राजाकी पुत्री श्रीप्रभा जो कि यथार्थमें श्रीप्रभा अर्थात् लक्ष्मीके समान प्रभाकी धारक थी, रत्नरथने उससे व्याह कर लिया। इसी पुत्रीको काञ्चनाभाका पुत्र अनुन्धर भी चाहता था। वह द्वेष रखकर उसकी भूमिको उजाड़ करनेके लिए उद्यत हो गया ॥१५३-१५४॥ तब रत्नरथ और विचित्ररथने उसे युद्धमें जीत कर तथा पाँच प्रकारके दण्ड देकर देशसे निकाल दिया ॥१५५॥ अनुन्धर इस अपमान से तथा पूर्वभव सम्बन्धी वैरसे क्रुपित होकर जटा और वलकलको धारण करनेवाला विपट्कृके समान तापसी हो गया ॥१५६॥

इधर रत्नरथ और विचित्ररथ दोनों भाई चिरकाल तक राज्य भोगकर प्रबोधको प्राप्त हुए। सो दीक्षा ले उत्तम तप धारण कर स्वर्ग लोकमें उत्पन्न हुए ॥१५७॥ महातेजको धारण करनेवाले दोनों भाई वहाँ देवोंके योग्य उत्तम सुप्त भोगकर वहाँमें च्युत हुए और सिद्धार्थ नगरके राजा क्षेमद्वरकी विमला नामक महादेवीके दो सुन्दर पुत्र हुए। प्रथम पुत्रका नाम देशभूषण और दूसरे पुत्रका नाम कुलभूषण था ॥१५८-१५९॥ विद्या उपार्जन करनेकी योग्य अवस्थामें वर्तमान दोनों भाई घर पर क्रीडा करते रहते थे। एक दिन भ्रमण करता हुआ एक सागरसेन नामका महाविद्वान् वहाँ आया, सो राजाने उसे रत्न लिया। उक्त विनयसे युक्त दोनों भाइयोंने उस विद्वान्के पास समस्त कलाएँ सीसी ॥१६०-१६१॥ दोनों पुत्रोंका विद्यामें इतना चित्त लगा कि वे अपने परिवारके लोगोंको भी नहीं जानते थे। यथार्थमें उनका सम्पूर्ण चित्त विद्या और विद्यालयमें ही लगा रहता था ॥१६२॥ उपाध्याय चिर कालके बाद पुत्रोंको निपुण बनाकर पिताके पास ले गया सो पिताने पुत्रोंको योग्य देन उपाध्यायका यथायोग्य सम्मान किया ॥१६३॥ तदनन्तर पिताने हम दोनोंके विवाहके लिए राजा कन्याएँ बुलवाई हैं यह समाचार उनके कर्णमार्ग तक पहुँचा ॥१६४॥

तदनन्तर परम कान्तिसे युक्त दोनों भाई एक दिन नगरके बाहर जानेके लिए उद्यत हुए सो उन्होंने भरोसेमें बैठौ नगरकी शोभा स्वरूप एक कन्या देखी ॥१६५॥ उस कन्याका समागम प्राप्त करनेके लिए दोनों ही भाइयोंने अपने मनमें परस्पर एक दूसरेके वध करनेका विचार किया। तदनन्तर वन्दीके मुखसे उसी समय यह शब्द निकला ॥१६६॥ कि विमला देवीके साथ वह

साक विमलया द्रव्या श्रामान् चैमङ्करो नृप । चिर जयति यस्वैता तनया त्रिदशोपमा ॥१६७॥  
 वातायनस्थितैपापि कन्यका कमलासवा । जयति त्रातरात्रतां यस्याश्चारुणोक्त्या ॥१६८॥  
 ततस्तां तद्भिरो ज्ञावा सोर्दशपावधारिति । वैराग्य परम प्राप्ताप्रिति चिन्तामुपागता ॥१६९॥  
 धिगधिगधिगिदमन्त पापमस्माभिरहितम् । अहो मादस्य दारुण्य मोदरा येन काक्षिता ॥१७०॥  
 चिन्तयित्वा प्रमादेन दुःखमस्मात्प्रमादशम् । कुर्वन्ति ये सदा कार्यं तेपा त्वयन्तसाहसम् ॥१७१॥  
 अमारोऽयमहोऽयन्त ससारो दुःखपूरित । तत्र नामेदशा भावा जायन्ते पापकर्मणाम् ॥१७२॥  
 कुतोऽयमुपपत्त चित्र चेतनो नरक प्रपेत् । सम्प्राप्य योधमस्माभि सद्बुद्धिश्चित्रमुत्तमम् ॥१७३॥  
 इति सच्चित्त्य सन्त्यज्य मातरं दुःखमूर्च्छिताम् । स्नेहाकुलं च पितरं दीक्षा देव्यासर्सा श्रिता ॥१७४॥  
 नभाविहृणी लधि प्राप्य तां सुतपोधना । आहिपाता जैगन्तानचिन्ताथाम्भिवृत्तितम् ॥१७५॥  
 क्षेमङ्करनरेशस्तु तच्छोकाकानलदीपित । युगपत्सकलं त्वयत्राहं हारं पञ्चममागत ॥१७६॥  
 भवादाराग्यं पूर्वोक्तान् स एव हि पितावयो । तेन नौ प्रणि वामरप तस्य नियममुत्तमम् ॥१७७॥  
 गरुडाधिपतिश्चामा जात रथातो मरुवत । मुन्दरोद्धतविजान्ता महालोचनमञ्ज ॥१७८॥  
 धुञ्ज स्वामनकम्पेन प्रयुज्यावभिमूचित । आगतोऽय स्थितो भाति व्यन्तरामरससदि ॥१७९॥  
 अनुत्तरस्तु विहरस्तापसाचारतपर । कौमुद्यानगरीं यात शिष्यसङ्घेन वधित ॥१८०॥  
 नरेश मुमुक्षुस्तत्र रतवपस्य भाभिना । कान्ता शतप्रधानं च प्राप्ता परममुन्दरा ॥१८१॥

राजा क्षेमङ्कर सदा जयन्त रहे जिसके कि देवोंके समान ये दो पुत्र हैं ॥१६७॥ तथा भरोसेमें बैठो यह कमलोत्सरा नामकी कन्या भी धन्य है जिसके कि मुन्दर गुणासे उत्कट ये दो भाई हैं ॥१६८॥ तदनन्तर वन्द्याके कहनेसे 'यह हमारी वहिन है' ऐसा जानकर परम वैराग्यकी प्राप्ति हुए दोनों भाई इस प्रकार विचार करने लगे कि ॥१६९॥ अहो ! हम लोगोंके द्वारा इच्छित इस भारा पापको धिक्कार है, धिक्कार है, धिक्कार है । अहो ! मोहकी दारुणता देवों कि जिससे हमने वहिन ही की इच्छा की ॥१७०॥ हम लोग तो प्रमादसे ही ऐसा विचार कर दुःखी हो रहे हैं फिर जो जान-बूझकर मदा ऐसा कार्य करते हैं उनका तो बहुत भार साहस हा कहना चाहिये ॥१७१॥ अहो ! दुःखसे भरा यह ससार तिलकुल ही असार है जिसमें पापा मनुष्योंके ऐसे विचार उपजते हैं ॥१७२॥ किसी पापके उदयसे सहसा कार्य करनेवाला प्राणी नरक जा सकता है, पर हम लोग तो सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्रको पाकर भी नरक जाना चाहते हैं, यह उडा आश्चर्य है ॥१७३॥ ऐसा विचारकर तु तसे मूर्च्छित माता और स्नेहसे आकुल पिताको छोड़कर दोनोंने देवग्यरी दीक्षा धारण कर ली ॥१७४॥ उत्तम तपरूपी धनको धारण करनेवाले दोनों मुनियाने आकाशगामिनी ऋद्धि प्राप्त कर जगत्के नाना तीर्थ क्षेत्रोंमें विहार किया ॥१७५॥ राजा क्षेमङ्कर उस शोकाग्निसे दग्ध हो कर एक साथ समस्त जाहार छोड़ मृत्युको प्राप्त हुआ ॥१७६॥ राजा क्षेमङ्कर पहले कहे हुए भयसे ही लेकर हम दोनोंका पिता होता आया है इसलिए हम दोनोंने प्रति उसका निरन्तर भारो स्नेह रहता था ॥१७७॥ अत्र वह मरकर भयनगोष्ठी देवोंमें सुपर्ण कुमार जातिके देवोंका अधिपति, प्रसिद्ध, मुन्दर अद्भुत पराक्रमका धारी महालोचन नामका देव हुआ है ॥१७८॥ यह वली अपने आसनके कम्पित होनेसे छुभित हो अरुधि ज्ञानसे द्वारा सत्र जान कर यहाँ आया है तथा ज्यन्तर देवोंकी सभामें बैठता है ॥१७९॥

उधर तपसियोक भाचार पालन करनेमें तत्पर अनुत्तर, शिष्य समूहने साथ विहार करता हुआ कौमुदी नगरीमें आया ॥१८०॥ यहाँका राजा मुमुक्षु था और रतवती उसकी स्त्री थी

१ मि सद्बुद्धिश्चित्रमुत्तमम् ० । २ देवग्यरीम् । ३ जग मात्याजिनताथाभिवृत्तितम् ० ।

४. दारे म० । ५. मृ. सुम् । ६. सर्पगर्भ्य म० ।

अवन्द्वा च सचेष्टा मद्नेति विलासिनो । पताका मद्नेनेव त्रि वा लोकमुपासिता ॥१८०॥  
 मातुद्रक्तमुने पारसे मन्मन्दर्शनमैद्री । तप्राप्येतरतीर्थानि नृणनुत्थान्यमन्यत ॥१८१॥  
 तस्या पुत्रोऽप्य रक्षसि कदाचिद्वदन्वृष । अहाऽप्यौ तापस स्थान महाता तपमामिति ॥१८२॥  
 ततो मदनवाऽश्वाधि कीटगनाथेऽशा तप । मित्याटशामविज्ञानलोकदुम्भनकारिणाम् ॥१८३॥  
 तस्त्रुत्वा भूपतिस्तरस्य क्रुद्ध सा चागदन् पुन । मा न्य परधनाप्रेम मेऽचिरापाटप्रतिनम् ॥१८४॥  
 इत्युक्त्वा स्वगृह गत्वा शिशुवित्वा मनोहरम् । आसन्ना नागदत्तात्वा प्रैपयत्तापसाश्रमम् ॥१८५॥  
 तस्मै सैकान्तयाताय योगस्थाय सुविभ्रमा । आस्थितामरबन्धेऽप्य परमाङ्गप्रधारिणी ॥१८६॥  
 वातेहितामरव्याजाङ्गस्काण्डमदर्शयन् । मारस्यान्त पुरस्थान लावण्यरसनिर्भरम् ॥१८७॥  
 ममाधानोपदेशेन कुङ्कुमद्रवपिन्धरम् । मारदारणकुम्भाभ तथा वक्ष्यमिन्द्रद्वयम् ॥१८८॥  
 कुमुमप्रहणयाजाङ्ग खम्बनोविरतेर्गृहम् । नाभिमण्डलमुत्तेज कचादेश च सुन्दरा ॥१८९॥  
 अज्ञानयोगमेतस्य भित्वा लोचनमानये । अपतता प्रदंगेषु तेषु तस्या सुवन्धने ॥१९०॥  
 ताडित स्मरवाणैश्च समुपाय समाकुल । गत्वा शनैरष्टदत्ता त्व बाले कात्र वर्तमे ॥१९१॥  
 मन्व्याकान्तिऽत्र ये क्वचिन् प्राणिन क्षुद्रका अपि । आलस्य स्व निषेवन्ते ननु च मुकुमारिका ॥१९२॥  
 मावोचन्मधुरैरणै भिन्दन्ती हृदयस्थलाम् । लालया बाहुलतिकामुद्रयन्ती मुग्ध प्रति ॥१९३॥  
 चल्तीलेल्लक्ष्म्याये धारयन्ता विनोचने । किञ्चिदैन्यमिव प्रासा नहुविस्फुरिताम् ॥१९४॥

जो सैन्डो स्त्रियोंमें प्रधान तथा परम सुन्दरी थी ॥१८१॥ उसी राजाके उत्तम चेष्टाको धारण करने वाली एक मदना नामकी विलासिनो (वेश्या)छाी थी, जो ऐसी जान पडती थी मानो ससार को जीत कर कामदेवके द्वारा प्राप्त की हुई पतङ्का ही हो ॥१८२॥ उस मदनाने साधुदत्त मुनिके पास मन्मन्दर्शन प्राप्त किया था जिसे पाकर वह अन्यधर्मोको लृणने समान तुच्छ मानती थी ॥१८३॥ अधानन्तर किसी दिन राजाने मदनाके सामने कहा कि अहो ! यह तापस महातपोका स्थान है ॥१८४॥ यह सुन मदनाने कहा कि हे नाथ ! उन मिथ्याचष्टि, अज्ञानी तथा लोकोको टगने वाले लोकोका तप कैसा ? ॥१८५॥ यह सुन राजा उसके लिए क्रुद्ध हुआ पर उसने फिर कहा कि हे नाथ ! मोक्ष मत कीजिए तथा इसे मेरे चरणोंमें वर्तमान देखिए ॥१८६॥ यह कह कर तथा घर जाकर उमने अपनी नागदत्ता नामका सुन्दरी पुत्रीको सित्वा कर उम तापसके आश्रमम भेजा ॥१८७॥ सुन्दर हावभाज और उत्तम वेपभूपाको धारण करनेवाली नागदत्ता देवक्याने समान जान पडती थी । वह पशान्तमे योग लेकर बैठे हुए उम तापसके पास जाकर खडी हो गई ॥१८८॥ ह्वासे हिलते हुए वस्त्रके वहाने उसने कामदेवके अन्त पुरके समान, सौ बर्य रससे भरे अपने ऊरु दिखाये ॥१८९॥ समाधानके वहाने केशरके त्रसे पीले तथा कामदेवके गण्डस्थलकी तुलना धारण करनेवाले दोना स्तन प्ररुट किये ॥१९०॥ पुण्य प्रहणने वहाने नीरों टीलीजर जघन स्थान दिखाया, देवीप्यमान नाभिमण्डल और सुन्दर बगले भी दिखाई ॥१९१॥ उस तापसके नेत्र और मन अज्ञानपूर्ण योगका भेदन कर उम नागदत्ताके उन-उन प्रदेशा पर पडने लगे तथा वहीं बन्धनसे युक्त हो गये ॥१९२॥ तदनन्तर कामके जागसे ताडित तपस्वी अत्यन्त व्याकुल होता हुआ उठकर उसके पास गया और धीरेसे उससे पूछने लगा कि हे बाले ! तू कीन है ? और यहाँ कहाँ आई है ? ॥१९३॥ इस मन्व्याके समय छाटे मोटे प्राणी भी अपने घर रहते हैं फिर तू तो अत्यन्त मुकुमार है ॥१९४॥ नागदत्ता मधुरवर्णसे उसका हृदयस्थल भेदती, लीलापूर्वक मुजलताको मुग्धकी ओर उपर उठाती, चञ्चल नील कमलके समान कान्तिके धारक नेत्रोंको धारण करती, कुञ्ज-कुञ्ज

शृणु नाथ ! दयाधार ! शरणागतवत्सल ! । अभ्ययाऽहं विना श्रेयादद्य निर्वासिता गृहान् ॥१६७॥  
 कापायप्राप्तता चाह भवद्दीयामिमा स्थितिम् । आचरामि प्रसादं मे कुरु नाथानुमोदनात् ॥१६८॥  
 शुभ्रपा भवत कृत्वा दिवा नक्त च सत्तया । इह लोको मया लब्ध परलोकश्च जायते ॥१६९॥  
 किं तद्भ्रमार्थकामेषु न यद्भवति लभ्यते । निधानमसि काम्याना मया पुण्येन वीक्षित ॥२००॥  
 इति सम्भाषिते तस्याः विज्ञाय प्रगुण मन । स्मरेण दह्यमानोऽसावप्रवीदिति विबलव १ ॥२०१॥  
 भद्रे कौऽहं प्रसादस्य प्रसादं त्वं ममोत्तमे । भजस्व भक्तिमेषोऽहं यावज्जीव करोमि ते ॥२०२॥  
 द्रुपुस्त्वालिङ्गितुं क्षिप्रं तत् प्रसारितवाहुकम् । अगदीत् पाणिना कन्या वारयन्तीति सादरा ॥२०३॥  
 न वर्तते इदं कर्तुं कन्याह विधिवर्जिता । पृच्छ मे मातरं गत्वा गृहेऽस्मिन् दृश्यतोरणे ॥२०४॥  
 परा कारुण्ययुक्तेय भवत शमुषी यथा । एता प्रसादायावश्यं तुभ्यमेपा ददाति माम् ॥२०५॥  
 प्यमुक्तस्तथा साकं त्वरया व्याकुलव्रतम् । वेश्माविशद्विलासिन्या सवितर्यस्तमागते ॥२०६॥  
 'मन्मथाकृष्टनि शेषहर्षांकविषयो ह्यसौ । किञ्चिद्वेत्ति स्म नोपायं विशन्वारीमिव द्विष ॥२०७॥  
 न शृणोति स्मरप्रस्तो न जिघ्रति न पश्यति । न जानात्यपरस्पर्शं न बिभेति न लज्जते ॥२०८॥  
 आश्चर्यं मोह्यत कष्टमनुत्ताप प्रपद्यते । अन्यो निपतित कृपे यथा पन्नगसेविते ॥२०९॥  
 वेश्याचरणयोश्चासी कृत्वा विलुडित शिर । याचते कन्यका पूर्वसञ्चितश्चाविशन्नूप ॥२१०॥

दीनताको प्राप्त होती तथा अधरोष्ठको धार धार हिलाती हुई बोली ॥१६५-१६६॥ कि हे नाथ !  
 हे दयाके आधार ! हे शरणागत वत्सल ! सुनिये, आज मेरी माताने मुझे अपराधके बिना ही  
 घरसे निकाल दिया है ॥१६७॥ सो हे नाथ ! अब मैं गेरुआ वस्त्र धारणकर आपकी इस वृत्तिका  
 आचरण करूँगी, आप अनुमति देकर मुझपर प्रसाद कीजिये ॥१६८॥ रात दिन आपकी सेवा  
 करनेसे मेरा यह लोक तथा परलोक दोनों ही सुधर जावेंगे ॥१६९॥ धर्म अर्थ और कामसे ऐसा  
 कौन पदार्थ है जो आपके पास प्राप्त न हो सके, आप समस्त मनोरथोंके भाण्डार हैं ।  
 पुण्यसे ही आपके दर्शन हुए हैं ॥२००॥ इस प्रकार कहने पर उसका मन वशीभूत  
 जान कामसे जलता हुआ तापस व्याकुल होता हुआ इस प्रकार बोला ॥२०१॥  
 कि हे भद्रे ! प्रसाद करनेके लिए मैं कौन होता हूँ ? हे उत्तमे ! तुम्हीं मुझपर  
 प्रसाद करो, स्वीकृत करो, मैं जीवन पर्यन्त तुम्हारी भक्ति करूँगा ॥२०२॥  
 ऐसा कहकर उसने आलिङ्गन करनेके लिए शीघ्र ही अपनी भुजा पसारी तब आठरके साथ उसे  
 हाथसे रोकती हुई कन्याने कहा ॥२०३॥ कि यह करना उचित नहीं है, मैं कुमारी कन्या हूँ  
 जिसका तोरण दिखाई दे रहा है, ऐसे इस घरमें जाकर मेरी मातासे पूछो ॥२०४॥ आपकी  
 बुद्धिके समान वह परम दयासे युक्त है, उसे प्रसन्न करो वह अवश्य ही मुझे तुम्हारे लिए दे  
 देगी ॥२०५॥ इस प्रकार नागदत्ताके कहने पर वह सूर्यास्तके अनन्तर अटपटे पैर रखता हुआ  
 उसके साथ वेश्याके घर गया ॥२०६॥ जिसके समस्त इन्द्रियोंके विषय कामसे आकृष्ट हो चुके  
 थे, ऐसा वह तापस धारी ( वन्धन ) में प्रवेश करनेवाले हार्थके समान बुद्ध भी उपाय नहीं  
 जानता था ॥२०७॥ सो ठीक ही है, क्योंकि कामसे प्रसन्न मनुष्य न सुनता है, न सूचता है, न  
 देखता है, न दूसरेका स्पर्श जानता है, न डरता है और न लज्जित हा होता है ॥२०८॥ जिस  
 प्रकार अन्धा मनुष्य सौपासे भरे हुए गिरकर पड़ और सन्तापको प्राप्त होता है उसी प्रकार  
 यह कामो मनुष्य मोहवश पड़ और सन्तापको प्राप्त होता है, यह आश्चर्यकी बात है ॥२०९॥  
 तदनन्तर वह तापस वेश्याके चरणोंमें शिर मुकाकर कन्याकी याचना करता है और उसी समय

स्थापितो बन्धुबन्धाऽपी राज्ञा नरं समोक्षितः । खलीकारं प्रभाते च प्रनटं प्रापितः परम् ॥२११॥  
 ततोऽपमाननिर्दग्धः पर दुःख समुद्रहन् । भ्राम्यन् महीं मृनः बलेशयोनिषु भ्रमण स्थितः ॥२१२॥  
 ततः कर्मानुभावेन मनुष्यभवमागतः । दारिद्र्यपङ्कनिर्मग्न जनादरविवर्जितम् ॥२१३॥  
 गर्भस्थ एव चैतस्मिन् विदेशं जनको गतः । उद्वेजितः कुटुम्बिन्वा कलहकुरवाक्यया ॥२१४॥  
 कुमारे च हता माता म्लेच्छेन विपयाहती । दुःख च परम प्राप्तः सर्वबन्धुविवर्जितः ॥२१५॥  
 ततस्तापसतां प्राप्य कृत्वा बालतपः परम् । ज्योतिर्लोकं समारह्य नाम्ना बह्विप्रभोऽभवन् ॥२१६॥  
 अनन्तवीर्यनामाथ केवली सेवितः सुरैः । इत्यन्तेवासिना पृष्टो धर्मचिन्तागतात्मना ॥२१७॥  
 मुनिसुव्रतनाथस्य तीर्थेऽस्मिन् भवता समः । कोऽन्वोऽनुभविता भव्यो लोकस्योत्तरकारणम् ॥२१८॥  
 सोऽजोचन्मयि निर्वाणं गतेऽत्र भ्रमणचित्तो । देशभूषण इत्येको द्वितीयः कुलभूषणः ॥२१९॥  
 भवितारी जग सारो केवलज्ञानदर्शिनौ । यौ समाश्रित्य लोकोऽयं तरिष्यति भवार्णवम् ॥२२०॥  
 सोऽपि बह्विप्रभस्तस्माच्छ्रुत्वा केवलिनो मुपान् । श्वस्थानं निजं यातो दध्यौ केवलिभक्षितम् ॥२२१॥  
 अन्यदावधिना ज्ञात्वा योगिनाविहं नी गिरौ । अनन्तवीर्यसर्वज्ञमिथ्यात्राक्यं करोम्यहम् ॥२२२॥  
 पृथगुक्त्वाभिमानेन परमेणातिमोहितः । आगतः पूर्ववैरेण कर्तुं परमुपद्रवम् ॥२२३॥  
 चरमाद्भयं दृष्ट्वा स भवन्तमतिद्रुतम् । सुरेन्द्रकोपभीत्या च तिरोधानमुपागतः ॥२२४॥  
 वारायणसमेतेन प्रातिहार्ये त्वया कृते । केवलज्ञानमस्माकं जातं घातिपरिचये ॥२२५॥

पूर्वसंकेतानुसार राजा प्रवेश करता है ॥२१०॥ राजाने उसे बंधवा कर रात्रिभर रक्ता और सवेरे छान-बीन कर सत्रके समक्ष उसका परम तिरस्कार किया ॥२११॥ तदनन्तर अपमानसे जला तापस परम दुःखको धारण करता हुआ पृथ्वी पर भ्रमण करता रहा और अन्तमें मरकर दुःखदायी योनियोंमें भटकता रहा ॥२१२॥ तदनन्तर कर्माके प्रभावसे मनुष्य भवको प्राप्त हुआ सो दरिद्रत्वरूपी कोचडमें निमग्न तथा लोगोके आदरसे रहित नीच कुलमें उत्पन्न हुआ ॥२१३॥ जब वह गर्भमें था तभी कलहके समय क्रूर वचन कहनेवाली स्त्रीसे उद्विग्न होकर इसका पिता परदेश चला गया था ॥२१४॥ तथा जब वह बालक ही था तभी म्लेच्छोंके द्वारा देश पर आक्रमण होनेसे इसकी माता मर गई । इस तरह सर्व बन्धुओंसे रहित होकर वह परम दुःखको प्राप्त होता रहा ॥२१५॥ तदनन्तर तापस होकर तथा कठिन बालतपकर ज्योतिष लोकमें अग्निप्रभ नामक देव हुआ ॥२१६॥

अयानन्तर एक समय धर्म की चिन्तामें जिसका मन लग रहा था ऐसे शिष्यने देवोके द्वारा सेवित अनन्तवीर्य नामा केवलीसे पूछा कि हे नाथ ! मुनिसुव्रत भगवान्के इस तीर्थमें आपके समान ऐसा दूसरा कौन भव्य होगा जो संसार समुद्रसे पार होनेका कारण होगा ॥२१७-२१८॥ तत्र अनन्तवीर्य केवलीने उत्तर दिया कि मेरे मोक्ष चलेजानेके बाद मुनियोंकी इस भूमिमें एक देशभूषण और दूसरा कुलभूषण इस प्रकार दो केवली होंगे । ये जगत्के सारभूत तथा केवलज्ञान और दर्शनके धारक होंगे । इनका आश्रय लेकर भव्यजीव संसार-सागरसे पार होंगे २१९-२२०॥ वह अग्निप्रभदेव केवलीके मुखसे यह सुनकर तथा उन्हीके कथनका ध्यान करता हुआ अपने स्थानपर चला गया ॥२२१॥ एक दिन अचधिज्ञानसे वह हम वानो मुनियोंको इस पर्यंतपर विद्यमान जानकर 'मैं अनन्तवीर्यसर्वज्ञके वचन मिथ्या करता हूँ' इस प्रकार कहकर तीव्र मोहसे मोहित होता हुआ पूर्व वैरेके कारण परम उपद्रव करनेके लिए यहाँ आया ॥२२२-२२३॥ सो चरमशरीरी आपको देखकर तथा इन्द्रके क्रोधसे भयभीत हो शीघ्र ही तिरोधानको प्राप्त हुआ अर्थान् भाग गया ॥२२४॥ तुम बलभद्र हों और लक्ष्मण नारायण सो इसके साथ तुमने हमारा उपसर्ग दूर किया अतः घातिया कर्माका क्षय होनेपर हमें केवलज्ञान उत्पन्न हुआ

इति ग यागतीः ध्रुत्वा प्राणिना वैरकारिणाम् । वैरानुबन्धमुत्सृज्य स्वस्था भवत जन्तवः ॥२२६॥  
 महादूतमिति ध्रुत्वा वचन केवलीरितम् । मुहुः मुरामुरा नेमुस्तं भीता भवदुःखतः ॥२२७॥  
 तावच्च गरुडायाशः परम सम्पद श्रितम् । नत्वा केवलिनः पादौ शैषकजापितालिकः ॥२२८॥  
 ऊचे रघुकुलोद्योत विलसम्मणिकुण्डलम् । सिग्धां प्रसारयन् दृष्टिं प्रेमतपित्तमानसः ॥२२९॥  
 प्रातिहास्यं कृत येन त्वया मसुतयो. परम् । ततस्तुष्टोऽस्मि याचस्व वस्तु यत्तेऽभिरोचते ॥२३०॥  
 एण चिन्तागत. स्थित्वा जगाद् रघुनन्दनः । त्वयामुरप्रसन्नोऽस्मि स्मतेऽव्या वयमापदि ॥२३१॥  
 साधुमेवाप्रसादेन फलमेतदुपागतम् । अर्ङ्गाकर्तव्यमस्माभिर्भवद्धारविनिर्गतम् ॥२३२॥  
 एवमस्त्रित तेनोक्ते दध्मु शङ्खान् दिवीकसः । भेष्यंश्च मेघनिनदाः मानुवाचाः समाहताः ॥२३३॥  
 माधुपूर्वभर ध्रुत्वा सवेग परम श्रिताः । प्रावमजुर्जनाः केचिदन्वेऽणुवतमाश्रिताः ॥२३४॥

### इन्दुवदनावृत्तम्

देशकुलभूषणमुनी नु जगदर्थ्या सर्वभयदु खमलसङ्गमविमुक्ता ।  
 ग्रामपुरपर्वतमटम्वपरिरम्यान् बभ्रमत्तुरुक्तमगुणैरुपचिन्तागान् ॥२३५॥  
 देशकुलभूषणमहामुनिभव ये वृत्तमतिपूतमिन्द्रमुक्कटसुभावाः ।  
 ३श्रोत्रचसोविपयतामुपनयन्ते ते रविनिभा दुरितमाद्यु विस्जन्ति ॥२३६॥

इत्यार्षे रविपेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते देशकुलभूषणोपाख्यानां नामैकोनचत्वारिंशत्तमं पर्व ॥२३६॥

है ॥२३५॥ इस प्रकार वैर करनेवाले प्राणियोंकी गति आगतिको सुनकर हे प्राणियो ! परस्परका वैर छोड़ स्वस्थ होओ अर्थात् आत्मस्वरूपमे लीन होओ ॥२२६॥ इस प्रकार केवली भगवान्के द्वारा उचरित महापवित्र वचन सुनकर संसारके दुखोंसे भयभीत हुए सुर और असुरोंने उन्हें धार-धार नमस्कार किया ॥२२७॥

इतनेमें ही परम ऐश्वर्यको प्राप्त सुवर्ण कुमारोके पतिने हाथ जोड़कर मस्तकसे लगा केवली भगवान्के चरणकमलमें नमस्कार कर देदीप्यमान मणिमय कुण्डलोंके धारक रामसे कहा । उस समय वह गरुडेन्द्र रामकी ओर स्नेह पूर्ण दृष्टि डाल रहा था तथा प्रेमसे उसका मन सन्तुष्ट हो रहा था ॥२२८-२२९॥ उसने कहा कि चूँकि तुमने हमारे पुत्रोंकी परम सेवा की है इसलिए मैं तुम पर प्रसन्न हूँ तुम्हें जो वस्तु रुचती हो वह माँग लो ॥२३०॥ राम जगभर चिन्ता करते हुए चुपचाप बैठे रहे । तदनन्तर बोले कि हे देव ! यदि प्रसन्न हो आपत्तिके समय हम लोगोंका स्मरण रखना ॥२३१॥ साधुसेवाके प्रसादसे ही यह प्राप्त हुआ कि आप जैसे सत्पुरुषोके साथ मिलाप हुआ तथा संसारके द्वारसे निकलनेका मार्ग मिला ॥२३२॥ 'येमा ही हो' इस प्रकार गरुडेन्द्रके कहने पर देवोंने शङ्ख फूँके तथा अनेक प्रकारके वादियोंके साथ मेघोंके समान शब्द करनेवाली भेरियाँ बजाई ॥२३३॥ मुनियोंके पूर्वभव सुन कर परम संवेगको प्राप्त हुए कितने ही लोगोंने टीला धारण कर ली और कितने ही लोग अणुत्रतोंके धागी हुए ॥२३४॥ जगत्के द्वारा पूजनीय तथा संसारके समस्त दुःखरूपी मलके समागमसे रहित देशभूषण, कुलभूषण केवली उत्तम गुणोंसे युक्त ग्रामपुर पर्वत तथा मटम्व आदि रमणीय स्थानोंमें विहारकर धर्मका उपदेश देने लगे ॥२३५॥ गीतम ग्रामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! जो देशभूषण, कुलभूषण, महामुनियोंके इस अनिगम्य पवित्र चरित्रको उत्तम भावोंसे युक्त हो सुनते हैं तथा कथन कर दूसरोंको सुनाते हैं वे सूर्यके समान देदीप्यमान होकर शीघ्र ही पापोंका त्याग करते हैं ॥२३६॥

इम प्रकार आर्यनामने प्रतिद, रविपेणाचार्य स्थित पद्मचरितमें देशभूषण कुलभूषण केवलीका व्याख्यान करनेवाला उनतालोमसौ पर्व समाप्त हुआ ॥२३६॥



## चत्वारिंशत्तमं पर्व

श्रुत्वा केवलिन पद्ममयैविग्रहधारिणम् । स्तुत्वा सजयनिस्वान प्रणेषु सर्वपाधिवा ॥१॥

वशस्थलपुरशश महाचित्त सुरप्रभ । सलक्ष्मण सपत्न्याक पद्मनाभमपूजयत् ॥२॥

प्रासादशिपरच्छायाधवलकृतपुष्करम् । नाटुणोद्देगार गन्तु रामो राज्ञापि याचित ॥३॥

वशाद्रिशिखरे रम्ये हिमवच्छिखरोपमे । समविस्तारणसद्गुणैरमणायशिलातले ॥४॥

नानावृक्षलताकारेण नानाशतुनिनादिते । मुगन्वानिलसम्पूर्णं नानापुष्पफलाकुले ॥५॥

पद्मोपलवनाश्याभिर्वापाभिरतिशोभिते । सर्वतुंगद्वितायुर्नवसत्कृतसवन ॥६॥

सजिता परमा भूमि शुद्धादर्शतलोपमा । दशार्धवर्गैरजसा कश्चित्तानेकभक्तिका ॥७॥

कुन्दातिमुक्कलता वकुल कमलानि च । वृथिका मल्लिका नागा भशाकाश्चारपद्मवा ॥८॥

एत चाम्ये च भूयासश्चारभास मुगन्धय । भावारम्यविलासाभि प्रमदाभि प्रकल्पिता ॥९॥

यद्भवा परिकर पुग्भि सुविदग्धै सुसम्भ्रमै । मङ्गलालापसम्पन्नै स्वामिभक्तिपरायणै ॥१०॥

मेघकाण्डानि वस्त्राणि नानाचित्रधराणि च । प्रसारितानि रत्नानि वैचयताशतानि च ॥११॥

त्रिङ्गिणाचालयुक्तानि मुक्तादामशतानि च । चामराणि विचित्राणि लम्बूपमणिपट्टिका ॥१२॥

दर्पणा हुद्बुदावल्या विस्तुरद्गास्कराशव । न्यस्तायेतानि तुद्गेषु तोरणेषु ध्वजेषु च ॥१३॥

अवनौ पूष्कलशा स्थापिता विधिसयुता । हसा द्वे निविष्टास्ते विरेजुर्नलितावन ॥१४॥

अथानन्तर केवली भगवान्के सुरसे रामको चरमशरीर जानकर समस्त राजाआने जयव्यति के साथ स्तुति कर उहे नमस्कार किया ॥१॥ और उदार चित्तके धारक वशस्थलपुर नगरके राजा सुरप्रभने लक्ष्मण तथा सीता सहित रामकी की भक्ति की ॥२॥ जो महलाके शिखराका कान्तिसे आकाशको घबल कर रहा था ऐसे नगरम चलनेके लिए राजाने रामसे उहुत याचना की परन्तु उहाने स्वीकृत नहीं किया ॥३॥ तत्र जो अतिशय रमणाय था, हिमगिरिके शिखरके समान था, जहाँ एक समान लम्बे चौड़े अच्छे रङ्गके मनोहर शिलातल थे, जो नाना वृक्षा और लताआसे व्याप्त था, नाना पत्ता जहाँ शत्रु कर रहे थे, जो सुगन्धित वायुसे पूर्ण था, नाना प्रकारके पुष्पा और फलोंसे युक्त था, कमल और उत्पलके वनासे युक्त वापिकाआसे जो अत्यन्त शोभित था, तथा सप्त ऋतुआके साथ आन्तर वसन्त ऋतु निसका सेवा कर रही था, ऐसे वशधर पर्वतके शिखर पर शुद्ध दर्पणतलके समान उत्कृष्ट भूमि तैयार का गई । उस भूमि पर पाँच वर्णकी धूलि से अनेक चित्राम बनाये गये थे ॥४-७॥ अनेक प्रकारके भावासे रमणाय चैष्टाआका धारण करनेवाला रित्रयाने वहाँ उसी पञ्चवर्णका परागसे सुन्द, अतिमुक्तमलता, मीलश्री, कमल, जुहा, मालती, नागकेशर और सुन्दर पल्लवासे युक्त अशोक वृक्ष, तथा इनके सिवाय सुन्दर कान्ति और सुगन्धिको धारण करनेवाले बहुतसे अन्य वृक्ष बनाये ॥८-११॥ चतुर, उत्तम चैष्टाओंके धारक, मङ्गलमय चार्तालापम तत्पर और स्वामि भक्तिम निपुण मनुष्याने बडा तैयारीके साथ नाना चित्राको धारण करनेवाले वादला रङ्गके वस्त्र फैलाये, सैकडा सघन पतावारण पहराई ॥१०-११॥ छोटी-छोटी चण्टियासे युक्त सैकडा मोतियाँकी मालाएँ, चित्र विचित्र चमर, मणिमय फानूस, दर्पण, तथा जिनपर मूर्त्यकी किरणें प्रकाशमान हो रहा थीं ऐसे अनेक छोटे-छोटे गोले ये सप्त ऊँचे ऊँचे तोरणा तथा ध्वजाआम लगाये ॥१२-१३॥ वृथिना पर

यत्र यत्र पदन्यास करोति रघुनन्दन । तत्र तत्रोरुपमानि स्थापितानि महींतले ॥१५॥  
 शयनान्यासनै साक रचितानि यतस्तत । मणिकाञ्चनचित्राणि सुखस्पर्शराष्यलम् ॥१६॥  
 सलघ्नद्रादिताम्बूल प्रवराष्यशुकानि च । महासुगन्धयो गन्धा भास्वन्त्याभरणानि च ॥१७॥  
 सूदगेहसमेतानि कन्दूशालाशतानि च । बहुभेदान्नपूर्णानि कृतयत्नानि सर्वत ॥१८॥  
 गुडेन सपिपा दध्ना भू कचिद् भाति पङ्किला । इति कर्तव्यताभाजा जनेनादरिणान्विता ॥१९॥  
 स्वाहारेण वचिच्छा पथिना स्वेच्छया स्थिता । प्रसाद्यन्ति विश्रव्या सङ्घावदगुलमका ॥२०॥  
 कचिन्ना शेखरी भाति मदिरामत्तलोचन । कचिन् सीमन्तिनी मत्ता वकुलामोदवाहिनी ॥२१॥  
 वचिन्नाड्य कचिद् गात कचिसुकृतसङ्घा । कचित् कान्ते सम नायौ रमन्ते वारुविभ्रमा ॥२२॥  
 दत्तप्रेङ्गा कचिन् स्मेरै सलालैर्विशुण्वै । विलासिन्यो विराजन्ते गीर्वागरागिनीपमा ॥२३॥  
 रामलक्ष्मणयोर्धानि रचितानि ससीतयो । क्राडाधामानि कस्तानि नरो वर्णयितु क्षम ॥२४॥  
 नानाभूषणयुक्ताहो सुमाह्वयाम्बरधारिणौ । यथेप्सितकृताहारौ श्रिया परमयान्वितौ ॥२५॥  
 साता चाकिल्लसौभाग्या दुरितासङ्घवृत्तिता । रमते तत्र चेष्टाभि शास्त्रदृष्टाभिरुज्ज्वलम् ॥२६॥  
 तत्र वशगिरी राजन् रामेण जगदिन्दुना । निर्मापितानि चैत्यानि जिनेशाना सहस्रश ॥२७॥  
 महावष्टम्भसुस्तम्भा युक्तविस्तारतुङ्गता । गन्तव्यहर्म्यवलभाप्रभु याकारशोभिता ॥२८॥  
 सतोरणमहाद्वारा सशाला परिखान्विता । सितचारुपताकाड्या बृहद्वष्टारवाचिता ॥२९॥

जहाँ तहाँ विधिपूर्वक पूर्ण कलश रखे गये थे जो कमलिनीके वनमें बड़े हुए हंसोंके समान सुशोभित हो रहे थे ॥१५॥ श्रीराम जहाँ-जहाँ चरण रखते थे वहाँ वहाँ पृथिवी तल पर बड़े बड़े कमल रख दिये गये थे ॥१६॥ जहाँ तहाँ मणियों और सुवर्णसे चित्रित तथा अतिशय सुन्दर दायक स्पर्शको धारण करनेवाले आसन और सोनेके स्थान बनाये गये थे ॥१६॥ लज्ज आदिसे सहित ताम्बूल, उत्तम वस्त्र, महासुगन्धित गन्ध और देवीप्यमान आभूषण वहाँ जहाँ तहाँ रखे गये थे ॥१७॥ जो सत्र ओरसे नाना प्रकारकी भोजन सामग्रीसे युक्त थीं तथा जिनमें रसोई घर अलगसे बनाया गया था। ऐसी सैकड़ों भोजनशालाएँ वहाँ निर्मित की गई थीं ॥१८॥ वहाँ की भूमि कहीं गुड, घी और दहीसे पकिल (कीचसे युक्त) होकर सुशोभित हो रहा थी तो कहीं कर्तव्य पालन करनेमें तत्पर आदरसे युक्त मनुष्योंसे सहित थी ॥१९॥ कहीं मधुर आहारसे लृप्त हुए पथिक अपनी इच्छासे बंटे थे तो कहीं निश्चिन्तताके साथ गोष्ठी बनाकर एक दूसरेको प्रसन्न कर रहे थे ॥२०॥ कहीं सेहरेको धारण करनेवाला और मदिराके नशामें मूढते हुए नेत्रोंसे युक्त मनुष्य दिखाई देता था तो कहीं मौलश्रीकी सुगन्धिको धारण करनेवाली नशासे भरी स्त्री दृष्टिगत होती थी ॥२१॥ कहीं नाट्य हो रहा था, कहीं संगीत हो रहा था, कहीं पुण्य चर्चा हो रही थी, और कहीं सुन्दर विलासोंसे सहित स्त्रियों पतियोंके साथ क्रीडा कर रही थीं ॥२२॥ कहीं मुसकराते तथा लीलासे सहित विट पुरुष जिन्हें धखा दे रहे थे, ऐसी देव नर्तकियोंके समान वेद्यों सुशोभित हो रही थीं ॥२३॥ इस प्रकार सीता सहित रामलक्ष्मणके जो क्रीडास्थल बनाये गये थे उनका वर्णन करनेके लिए कौन मनुष्य समर्थ है ? ॥२४॥ जिनके शरीर नाना प्रकारके आभूषणोंसे सहित थे, जो उत्तमोत्तम मालाएँ और वस्त्र धारण करते थे, जो इच्छानुसार क्रीडा करते थे ॥२५॥ और अत्यन्त सौभाग्यको धारण करनेवाली तथा पापके समागमसे रहित सीता वहाँ शास्त्र निरूपित चेष्टाओंसे उज्ज्वल क्रीडा करती थी ॥२६॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राघव ! उस वंशगिरि पर जगत्प्रे चन्द्र स्वरूप रामने जिनेंद्र भगवान्की हजारों प्रतिमाएँ बनवाई थीं ॥२७॥ तथा जिनमें महामज्जृत तम्भे लगनाये गये थे, जिनकी चौड़ाई तथा ऊँचाई योग्य थी, जो भ्रोगे, महलों तथा छुपरी आदिकी रचनासे शोभित थे, जिनमें बड़े-बड़े द्वार तोरणोंमें युक्त थे, जिनमें अनेक शालाएँ निर्मित थीं, जो परिणामसे सहित थे, सफेद और

भृद्भ्रवशमुरजमहातोत्तमनिस्त्रना । मर्मरैरानके शङ्खभेरीभिश्च महारवा ॥३०॥  
 सततारव्यभि शंपरम्यवस्तुमहोत्सवा । विरेजुस्तत्र रामाया जिनप्रासादपट्टकृतय ॥३१॥  
 रेतिरे प्रतिमास्तत्र सर्वलोकनमस्कृता । पञ्चवर्णा जिनेन्द्राणा सर्वलक्षणभूषिता ॥३२॥  
 अन्यदाथ महोपालरामो राजाबलोचन । लभ्या ररसुवाचेत् क्रियते किमत परम् ॥३३॥  
 इह संप्रेरित काल सुखेन परमे गिरी । जितचैत्र्यममुधाना स्थापिता कातिकुञ्जला ॥३४॥  
 अनेन भूयता श्रेष्ठैरुपचारशतैर्हता । अत्रैव यद्वि तिष्ठामस्तदा कार्यं विनश्यति ॥३५॥  
 इह तावदल भोगैरिति चिन्तयतोऽपि मे । न मुञ्चति चणमपि प्रवरा भोगसन्तति ॥३६॥  
 इह यत् न्रियते कर्म तपरत्रोपमुज्यते । पुराकृताना पुण्याना इह सम्पद्यते फलम् ॥३७॥  
 अस्माकमत्र वसता त्रिध्रता सुखसम्पदम् । अमा ये दिवसा यान्ति न तेषा पुनरागम ॥३८॥  
 नदीना चण्डवेगानामायुषो दिवसस्य च । यौवनस्य च सीमिते यद्गत गनमेव तत् ॥३९॥  
 नया कर्णवायास्तु परतो रोमहर्षगम् । भ्रूयते दण्डकारण्य दुर्गमं चित्तिचारिभि ॥४०॥  
 भारता न विशयात्वा वरिगम् जनपद्मोऽग्नि । तत्रार्णवतट भ्रिवा विद्म क्वचिदालयम् ॥४१॥  
 यदाज्ञापयसायुक्ते कुमारिण ससम्भ्रमम् । सुरेन्द्रसदश भोग भुक्त्वा ते निर्गतास्त्रय ॥४२॥  
 अनुगत्य सुदूर तौ बलोपेत सुरप्रभ । वृच्छान्निवतितस्ताभ्या शोका पुरसुवागत ॥४३॥

सुन्दर पताकाओंसे युक्त धे, बडे बडे घण्टाओंके शब्दसे व्याप्त धे, जिनमें मृदंग, बोंसुरो और मुरजका संगीतमय उत्तम शब्द फैल रहा था, जो मोंफा, नगाडो, शङ्खा और भेरियाके शब्दसे अत्यन्त श्रादायमान थे और जिनमें सदा समस्त सुन्दर वस्तुओंके द्वारा महोत्सव होते रहते थे ऐसे रामके वनत्राये जिनमन्दिरोंकी पत्कियाँ उस पर्वत पर जहाँ तहाँ सुशोभित हो रहा थीं ॥३८-३९॥ उन मन्दिरोंमें सत्र लोगोंके द्वारा नमस्कृत तथा सत्र प्रकारके लक्षणासे युक्त पञ्चवर्णकी जिनप्रतिमाएँ सुशोभित थीं ॥३९॥

अथानन्तर एक दिन कमललोचन राजा रामचन्द्रने लक्ष्मणसे कहा कि अत्र आगे क्या करना है ? ॥३३॥ इस उत्तम पर्वत पर समयसुखसे व्यतीत किया तथा जिनमन्दिरोंके निर्माणमें उत्पन्न उज्ज्वल कीर्ति स्थापित की ॥३४॥ इस राजाकी सैकडा प्रकारकी उत्तमोत्तम सेवाओंके वशीभूत होकर यदि यहीं रहते हैं तो सकलपत कार्य नष्ट होता है ॥३५॥ यद्यपि मैं सोचता हूँ कि मुझे इन भोगोंसे प्रयोजन नहीं है तो भी यह उत्तम भोगोंकी सन्तति क्षण भरके लिए भी नहीं छोडती है ॥३६॥ जो कर्म इस लोकमें किया जाता है उसका उपभोग परलोकमें होता है और पूर्व भवमें किये हुए पुण्य कर्मोंका फल इस भवमें प्राप्त होता है ॥३७॥ यहाँ रहते तथा सुख सम्पदाको धारण करते हुए हमारे जो ये दिन बीत रहे हैं उनका फिरसे जागमन नहीं हो सकता ॥३८॥ हे लक्ष्मण ! सीत वगैरे बहनेवाली नदिया, आयुके दिन और यौवनका जो अश चला गया वह चला ही गया फिर लौटकर नहीं आता ॥३९॥ कर्णरवा नदीके उस पार रोमाञ्च उत्पन्न करनेवाला तथा भूमिगोचरियोंका जहाँ पहुँचना कठिन है ऐसा दण्डक वन सुना जाता है ॥४०॥ देशसे रहित उस वनमें भरतका आज्ञाका प्रवेश नहीं है इसलिए वहाँ समुद्रका किनारा प्राप्त कर घर वनायेगे ॥४१॥ 'जो आता हो' इस प्रकार लक्ष्मणके कहनेपर राम-लक्ष्मण और सीता तीनों ही इन्द्र सदश भोग छोडकर वहाँसे निकल गये ॥४२॥ वशस्थविलपुरका राजा सुरप्रभ अपनी सेनाके साथ बहुत दूर तक उन्हे पहुँचानेके लिए गया । राम लक्ष्मण उसे बड़ी बठिनाईसे लौटा लिये । तदनन्तर शोकको धारण करता हुआ वह अपने नगरमें वापिस आया ॥४३॥

## उपजातिवृत्तम्

एषोऽपि तुङ्ग परमो महीध्रः श्रीमन्नितम्बो ब्रह्मघानुसानुः ।  
 विलम्पतीभिः ककुभा समूह भासार्चक्राञ्जैनगृहावलीभिः ॥४४॥  
 रामेण यस्मात्परमाणि तस्मिन् जैनानि वेरमानि विधापितानि ।  
 निर्नष्टवशाद्रिवचा स तस्माद्रविप्रभो रामगिरि प्रसिद्धः ॥४५॥

इत्यार्षे रविपेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते रामगिर्युपाख्यान नाम चत्वारिंशत्तम पर्व ॥४०॥

इधर जिसकी मेरुलाएँ शोभासे सम्पन्न थीं, तथा जिसके शिखर अनेक धातुओंसे युक्त थे ऐसा यह ऊँचा उत्तम पर्वत दिशाओंके समूहको लित्त करनेवाली जिनमन्दिरोंकी पक्तिसे अतिशय सुशोभित होता था ॥४४॥ चूँकि उस पर्वत पर रामचन्द्रने जिनेन्द्र भगवान्के उत्तमोत्तम मन्दिर बनवाये थे इसलिए उसका वंशाद्रि नाम नष्ट हो गया और सूर्यके समान प्रभाको धारण करनेवाला वह पर्वत 'रामगिरि'के नामसे प्रसिद्ध हो गया ॥४५॥

इस प्रकार आर्य नामसे प्रसिद्ध, रविपेणाचार्य विरचित पद्मचरितमें रामगिरिका वर्णन करनेवाला चाल्तीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥४०॥

## एकचत्वारिंशत्तमं पर्व

अधानरप्यनसारां धीमन्तीं सीतयान्विवती । दिदक्षु दक्षिणाम्बोधिमायाता सुखभागिनी ॥१॥  
 पुरप्रामसमाक्रोर्णानतीय विषयान् बहून् । प्रविष्टौ तौ महारण्य नानामृगसमाकुलम् ॥२॥  
 यस्मिन्न विद्यते पन्था स्थान नार्थेनिषेवितम् । पुलिन्दानामपि प्रायो दुश्चर यज्ञगाकुलम् ॥३॥  
 नानावृत्तलताङ्गीं महाविषमगह्वरम् । गुहान्धकारगम्भीर बह्विर्करनिम्नगम् ॥४॥  
 नोश श्रोत्रा शनैस्तत्र गच्छन्ती जानकीवशात् । निर्भयी प्राडनोद्युक्तो प्राप्सौ कर्णरवा नदीम् ॥५॥  
 यस्यास्तटानि रम्याणि गृण्युं कानि भूरिभिः समान्यायतदेशानि स्पर्शं विभ्रति सौख्यदम् ॥६॥  
 अनत्युच्चैर्न च्छाये पञ्चपुण्ड्रिभूमितैः । रेजुस्तद्गुम्फैस्तस्या समापधरणाधरा ॥७॥  
 वनमेतदल चात् नदा चेति निरूप्य ती । रम्ये तत्र तरच्छायेऽवस्थितौ सीतयान्विवती ॥८॥  
 क्षण स्थित्वाऽतिरम्याणि सैकनान्यवगाह्य च । जलावगाहन वक्रस्ते रम्यनाडयोचितम् ॥९॥  
 ततो मृष्टानि पत्रवानि फल्गानि कुसुमानि च । यथेच्छमुपभुक्तानि तैः सुख कृतसङ्कथैः ॥१०॥  
 तत्र भाण्डोपकरण मकर वेकयीसुत । मृदावशैः पलाशैश्च विविधैराशु निर्ममे ॥११॥  
 अमोपु स्वादचारुणि फल्गानि सुरमानि च । वनजानि च सस्यानि राजपुत्रो समस्करोत् ॥१२॥  
 अन्यदातिथिवेलायां गगनाह्नवारिणो । प्रभापटलसवातविभ्रदौ चारुदर्शनी ॥१३॥

अधानन्तर जिन्हें दक्षिण समुद्र देखनेकी इच्छा थी तथा जो निरन्तर सुख भोगते आते थे ऐसे श्रीमान् राम-लक्ष्मण सीताके साथ नगर और ग्रामोंसे व्याप्त बहुत देशोंको पारकर नाना प्रकारके मृगोंसे व्याप्त महावनमें प्रविष्ट हुए ॥१-२॥ ऐसे सघन वनमें प्रविष्ट हुए जिसमें मार्ग ही नहीं सूझता था, उत्तम मनुष्योंके द्वारा सेवित एक भी स्थान नहीं था, वनचारी भीलोंके लिए भी जहाँ चलना कठिन था, जो पर्वतोंसे व्याप्त था, नाना प्रकारके वृक्ष और लताओंसे सघन था, जिसमें अत्यन्त विषम गर्त थे, जो गुहाओंके अन्धकारसे गम्भीर जान पड़ता था, और जहाँ भरने तथा अनेक नदियों वह रही थीं ॥३-४॥ उस वनमें वे जानकोंके कारण धीरे धीरे एक कोश ही चलते थे । इस तरह भयसे रहित तथा क्रीडा करनेमें उद्यत दोनों भाई उस कर्णरवा नदीमें पास पहुँचे ॥५॥ जिसके कि किनारे अत्यन्त रमणीय, बहुत भारी वृगोंसे व्याप्त, समान, लम्बे चौड़े और सुपकारी स्पर्शको धारण करनेवाले थे ॥६॥ उस कर्णरवा नदीके समीपवर्ती पर्वत, किनारेके उन वृक्षोंसे सुशोभित थे जो व्यादा ऊँचे तो नहीं थे पर जिनकी छाया अत्यन्त घनी थी तथा जो फल और फूलोंसे युक्त थे ॥७॥ यह वन तथा नदी दोनों ही अत्यन्त सुन्दर हैं ऐसा विचार कर वे एक वृक्षकी मनोहर छायामें सीताके साथ बैठ गये ॥८॥ क्षण भर वहाँ बैठकर तथा मनोहर किनारोंपर अवगाहन कर वे सुन्दर क्रीडाके योग्य जलावगाहन करने लगे अर्थात् जलके भीतर प्रवेश कर जलक्रीडा करने लगे ॥९॥ तदनन्तर परस्पर सुपकारी कथा करते हुए उन सजने वनमें पके मधुर फल तथा फूलोंका इच्छानुसार उपभोग किया ॥१०॥ वहाँ लक्ष्मणने नाना प्रकारका मिट्टी, धाँस तथा पत्तोंसे सज प्रकारके वर्तन तथा उपयोगी सामान शीघ्र ही बना लिया ॥११॥ इन सज वर्तनोंमें राजपुत्रों सीताने रजादिष्ट तथा सुन्दर फल और वनकी सुगन्धित धानने भोजन बनाये ॥१२॥

किसी एक दिन अतिथि प्रेक्षणके समय सीताने सहसा सामने आते हुए सुगुप्ति और गुप्ति

ज्ञानत्रितयसम्पत्ता महाव्रतपरिव्रह्मी । परेण तपसा युक्ती दुःसृष्टामुक्तमानसौ ॥१४॥  
 मासोपवासिनो वारो गुण्यो शुभसमाहितो । य-द्वन्ता नयनानन्द<sup>१</sup> बुधचन्द्रमसाविव ॥१५॥  
 मुना सुगुप्तिसुप्तारयावायान्तौ सम्मुख भुव<sup>२</sup> । यथोक्ताचारसम्पत्तौ सहसा मोतयेचितो ॥१६॥  
 तत प्रमदसम्भारविकसन्नेव<sup>३</sup> शोभया । द्यिताय तथा टयातमिति रोमाजिताङ्गया ॥१७॥  
 परय परय नरश्रेष्ठ । तपसा कृशविग्रहम् । दैगम्पर परिश्रान्त भद्रन्तयुगल शुभम् ॥१८॥  
 क तत् ष त्ति प्रिये साधिव पण्डिते चारदर्शने । निर्ग्रन्थयुगल दृष्ट भवत्या गुणमण्डने ॥१९॥  
 यन्निरौष्य वरारोहे सुचिर पापमज्जितम् । जगान् प्रणाशमायाति जनाना भक्तचेतसाम् ॥२०॥  
 इ पुके रघुचन्द्रेण मातोषाच सप्तम्रमा । इमाविमाविति प्रीत्या स तदाभून् समाकुल ॥२१॥  
 ततो युगमित्तोषोदेशविन्यस्तलोचनौ । मुना प्रशान्तगमनौ सुसमाहितविग्रहौ ॥२२॥  
 अभ्युधानाभियानाभिसुष्टे<sup>४</sup> प्रणमनादिभि । दम्पताभ्या कृतावेतौ पुण्यनिर्भरपर्वतौ ॥२३॥  
 शुच्यद्वया च वेदेह्य महाश्रद्धापरातया । परिविष्ट तयो श्राद्ध रमणेन समेतया ॥२४॥  
 गवामरथ्यजाताना महिपाणा च चारणा । हेवद्वर्त्तनमिश्रेण पयसा त समुद्भू<sup>५</sup> ॥२५॥  
 खर्त्तुरैरिन्द्रैराग्रनालिकेरै रसान्वितै । बदराम्लातकाद्यैश्च वैदेह्या सुप्रसाधितै ॥२६॥  
 आहार्यैर्विधिवै<sup>६</sup> शान्त्रदृष्टिशुद्धिसमन्वितै । पारणा चक्रनुगुंदासम्बन्धोक्तिस्तचेतसौ ॥२७॥

नामके दो मुनि देखे । वे मुनि आकाशाङ्गणमें विहार कर रहे थे, कान्तिके समूहसे उनके शरीर व्याप्त थे, वे बहुत ही सुन्दर थे, मति श्रुत अरुधि इन तीन ज्ञानोसे सहित थे, महाव्रताके धारक थे, परम तपसे युक्त थे, खोटी इच्छाआसे उनके मन रहित थे, उन्होंने एक मासका उपवास किया था, वे धीर धीर थे, गुणासे सहित थे, शुभ चेष्टाके धारक थे, बुध और चन्द्रभाके समान नेत्राको आनन्द प्रदान करते थे और यथोक्त आचारसे सहित थे ॥१३-१६॥ तदनन्तर हर्षके भारसे जिसके नेत्रोकी शोभा विकसित हो रही थी तथा जिसके शरीरमें रोमाञ्च उठ रहे थे ऐसी सीताने रामसे कहा कि हे नरश्रेष्ठ । देखो देखो, तपसे जिनका शरीर कृश हो रहा है तथा जो अतिशय थके हुए मालूम होते हैं, ऐसे दिगम्बर मुनियोंका यह युगल देखो ॥१७-१८॥ रामने सभ्रममें पड कर कहा कि हे प्रिये । हे साध्वि । हे पण्डिते । हे सुन्दरदर्शने । हे गुणमण्डने । तुमने निर्ग्रन्थमुनियोंका युगल कहाँ देखा ? कहाँ देखा ? ॥१९॥ वह युगल कि जिसके देखनेसे हे सुन्दरि । भक्त मनुष्योंका चिरसञ्चित पाप क्षण भरमें नष्ट हो जाता है ॥२०॥ रामके इस प्रकार कहने पर सीताने सभ्रम पूर्वक कहा कि ये हैं, वे है<sup>१</sup> । उस समय राम कुछ आकुलताको प्राप्त हुए ॥२१॥

तदनन्तर युग प्रमाण पृथिवीमें जिनकी रष्टि पड रही थी, जिनका गमन अत्यन्त शान्ति पूर्ण था और जिनके शरीर प्रमादसे रहित थे, ऐसे दो मुनियोंको देखकर दम्पती अर्थात् राम और सीताने उठकर खडे होना, समुख जाना, स्तुति करना, और नमस्कार करना आदि क्रियाओंसे उन दोनों मुनियोंको पुण्यरूपा निर्भरके भरानेके लिए पर्वतके समान किया था ॥२२-२३॥ जिसका शरीर पवित्र था, तथा जो अतिशय श्रद्धासे युक्त थी ऐसी सीताने पतिके साथ मिलकर दोनों मुनियोंके लिए भोजन परोसा-आहार प्रदान किया ॥२४॥ वह आहार वनमें उत्पन्न हुई गायो और भैंसोंके ताजे और मनोहर घी, दूध तथा उनसे निर्मित अन्य मावा आदि पदार्थोंसे बना था ॥२५॥ खजूर, इन्द्रुद, आम, नारियल, रसदार वेर तथा भिल्लामा आदि फलोंसे निर्मित था ॥२६॥ इस प्रकार शास्त्रोक्त शुद्धिसे सहित नाना प्रकारके खाद्य पदार्थोंसे उन मुनियोंने पारणा

१ नग म० । २ बुवा म०, ख० । ३ विकशत्रेण म० । ४ यानाभिसुष्ट प्रणयनादिभि म०, यानाभिसुष्टि प्रणयनादिभि म० । ५ भाजन । ६ दृष्टिताडिता म० ।

एव च पर्युपास्यंती मुनी राम प्रियान्वित । समस्तभाद्रसम्भारकृतनिग्रन्थमानन ॥२८॥  
 तावद्दुन्दुभयो नेदुर्गांगनेऽदृष्टताडिता । ववी समीरण स्त्रैर घ्राणरञ्जनकारणम् ॥२९॥  
 साधु साध्विति देवाना मधुरो निस्वनोऽभवत् । ववर्ष पञ्चवर्णाभि कुमुमानि नभस्तल्पम् ॥३०॥  
 पात्रदानानुभावेन दिव्या सकलवर्णिका । पूर्य-ता नभोऽपसद्गुमारा महाद्युति ॥३१॥  
 अथात्रैव वनादेशे गहनस्य महातरो । निपण्णाऽग्रे महागृध्र स्वेच्छयात्रस्थितोऽभवत् ॥३२॥  
 स दृष्ट्वाऽतिशयोपेतौ मुनी कर्मानुभावात् । बहुना मभवान् स्मृत्वा तत्तद्देवमचित्तयत् ॥३३॥  
 मनुष्यभावमुकुर प्रमत्तेन मया पुरा । विवेकिनापि न ह्य तपो धिग्मामचेतनम् ॥३४॥  
 भाव प्रतप्यमे किं त्वमधुना पुपचेष्टित । कमुपाय करोम्येता कुत्सिता योनिमागत ॥३५॥  
 अनुकूलारिभि पापमित्रश-दर्नधारिभि । प्रेरितेन सता त्यक्त धर्मरत्न सदा मया ॥३६॥  
 सुभूरिचरित पापमपकर्ष्यं गुरुदितम् । मोहध्वान्तपरातेन द्रष्टे यद्दधुना स्मरन् ॥३७॥  
 न किञ्चिद्द्र बहुना चिन्तितेन प्रयोजनम् । गतिरन्या न मे लोके विद्यते तु त्वमस्ये ॥३८॥  
 एतौ प्रयामि शरण साधू सर्वमुत्थावही । इतो मे परमार्थस्य प्राप्ति सञ्जायते ध्रुवम् ॥३९॥  
 इति पूर्वमवैष्यामान् परम शोकमागत । दर्शनाच्च महासाधो प्रमोद त्वरयान्वित ॥४०॥  
 विधूय पञ्चयुगलमधुसगूर्णलाचन । पपात शाखिनो मूर्ध्नि प्रध्रयान्वितविभ्रम ॥४१॥  
 नागा सिंहादयोऽप्यत्र नादेन महतामुना । विदुर्द्रवुरय दुष्ट कथ तु न रग्राधम ॥४२॥

की । उन मुनियोंके चित्त भोजन विषयक गृध्रताके सम्बन्धसे रहित थे ॥२८॥ इस प्रकार समस्त भाग्यसे मुनियोंका सम्मान करनेवाले राम इन दाना मुनियोंकी सेवा कर सीताके साथ बैठे ही थे कि उसा समय आनाशने अष्टजनोंसे ताडित दुन्दुभि वाजे बजने लगे, घ्राण इन्द्रियकी प्रसन्न करनेवाली बाधु धीरे धीरे वहने लगी, 'धन्य, धन्य' इस प्रकार देवोंका मधुर शब्द होने लगा, आकाश पोंच वर्णके फूल बरसाने लगा और पात्रदानके प्रभावसे आकाशको व्याप्त करनेवाली, महाकान्तिकी धारक, सब रङ्गोंकी दिव्यरत्न वृष्टि होने लगी ॥२८-३१॥

अथानन्तर वनके इसी स्थानमें सचन महागृध्रके अग्रभाग पर एक बड़ा भारी गृध्र पक्षी स्वेच्छासे बैठा था ॥३२॥ सो अतिशय पूर्ण होना मुनिराजोंको देखकर कर्मोदयके प्रभावसे उसे अपने अनेक भय स्मृत हो उठे । वह उस समय इस प्रकार विचार करने लगा ॥३३॥ कि यद्यपि मैं पूर्ण पर्यायमें त्रिवेकी था तो भी मैंने प्रमादी बनकर मनुष्य भयमें करने योग्य तपश्चरण नहीं किया अत मुझ अत्रिवेकीका धिक्कार हो ॥३४॥ हे हृदय ! अत्र क्यों सताप कर रहा है ? इस समय तो इस दुःखनिर्मे आकर पाप चेष्टाओंमें निमग्न हूँ अत क्या उपाय कर सकता हूँ ? ॥३५॥ मित्र सद्गाओं धारण करनेवाले तथा अनुकूलता दिखानेवाले पापी वैरियोंसे प्रेरित हो मैंने सदा धर्मरूपी रत्नका परित्याग किया है ॥३६॥ मोहरूपी अधकारसे व्याप्त होकर मैंने गुरुओंका उपदेश न सुन जिस अत्यधिक पापका आचरण किया है उसे आज स्मरण करता हुआ ही जल रहा हूँ ॥३७॥ अथवा इस विषयमें बहुत विचार करनेसे कुछ भी प्रयोजन नहीं है क्योंकि तु लोगोंका चय करनेके लिए लोकमें मेरी दूसरी गति नहीं है—अन्य उपाय नहीं है । मैं तो सब जीवोंको सुख देनेवाले इन्हीं दोनों मुनियोंकी शरणको प्राप्त होता हूँ । इनसे निश्चित ही मुझे परमार्थकी प्राप्ति होगी ॥३८-३९॥ इस प्रकार पूर्वभ्रजका स्मरण होनेसे जो परम शोककी प्राप्त हुआ था तथा महामुनियोंके दर्शनसे जो अत्यधिक हर्षको प्राप्त था ऐसा शाश्वतसे सहित, अश्रुपूर्ण नेत्रोंका धारक, पत्र रिचयपूर्ण चेष्टाआसे सहित वह गृध्र पक्षी दोनों पक्ष पङ्कडाकर प्रसन्न शिग्रसे नीचे आया ॥४०-४१॥ यहाँ इस अत्यधिक कोलाहलसे हाथी तथा सिंहादिक

हा मात पश्यतामुष्य धार्ष्ट्यं गृध्रस्य पापिन चिन्तयिचेति वैदेह्या कोपाकुलितचित्तया ॥४३॥  
 वार्यमाणोऽपि यनेन कृतनिष्ठुरश दया । मुनिपादोदक पत्ता सोत्साह पातुमुद्यत ॥४४॥  
 पादादरुप्रभाशण शरार तस्य त चणम् । र नराशिसम जात परात चित्रतेजसा ॥४५॥  
 जार्ता हेमप्रभौ पत्नी पादौ वैदूर्यसन्निभौ । नानार नन्दविदेहश्चन्नुविद्रुमविभ्रमः ॥४६॥  
 तत स्वमन्यथाभूतमवलोक्य सुमम्भद । विमुञ्ज-मधुर नाद नतितु स समुद्यत ॥४७॥  
 देवदुन्दुभिनादाऽपात्रेव तस्यातिदुन्दरम् । आतोद्यत्व परिप्राप्त स्वां च वाणीं सुतेजस ॥४८॥  
 मुञ्जानन्दनशाम्भकाकृत्य गुरुद्वयम् । शुशुभे कृतनृत्योऽनौ शिला मेवागमे यथा ॥४९॥  
 विधिना पारणा कृ वा मुना कृतयथोचितौ । वैदूर्यसदृशे राजन्नुपविष्टौ शिलातले ॥५०॥  
 पद्मरागाभनेत्रश्च पत्ता सङ्कुचितच्छद । प्रणम्य पादयो साधो सुख तस्थौ कृताञ्जलि ॥५१॥  
 क्षणादग्निमिवालोच्य उल्लन्त तेजसा खगम् । पद्मो विकचपद्माञ्च विस्मय परम गत ॥५२॥  
 प्रणम्य पादयो साधु गुणशालविभूषणम् । अपृच्छदिति विन्यस्य मुहुर्नेत्रे पतत्रिणि ॥५३॥  
 भगवन्नयमत्यन्त विरूपावयव पुरा । कथ क्षणेन सञ्जातो हेमर नच्यच्छब्धि ॥५४॥  
 अशुचि सर्वमासादो गृध्राऽय दुष्टमानस । निपद्य पादयो शान्तस्तव कस्मादवस्थित ॥५५॥  
 सुगुप्तिश्चमणोऽनोचद् राजन् पूर्वमिहाभवत् । देशो जनपदाकार्णो विषय सुन्दरो महान् ॥५६॥

बड़े बड़े जन्तु तो भाग गये पर यह दुष्ट नीच पत्नी क्या नहीं भागा । हा मात । इस पापी गृध्रका धृष्टता तो देखो, इस प्रकार निचार कर जिसका चित्त क्रोधसे आकुलित हो रहा था तथा जिसने कठोर शब्दोंका उच्चारण किया था ऐसी साताने यद्यपि प्रयत्नपूर्वक उस पत्नीको रोका था तथापि वह बड़े उत्साहसे मुनिराजके चरणोदकको पीने लगा ॥४७-४३॥ चरणोदकके प्रभावसे उसका शरीर उसी समय रत्नराशिके समान नाना प्रकारके तेजसे व्याप्त हो गया ॥४४॥ उसके दोना पह्न सुवर्णके समान हो गये, पैर नाल मणिके समान दिखने लगे, शरीर नाना रत्नाकी कान्तिका धारक हो गया और चोंच भूँगाके समान दिखने लगी ॥४५॥ तदनतर अपने आपको अन्य रूप देख वह अत्यन्त हर्षित हुआ और मधुर शब्द छोडता हुआ नृत्य करनेके लिए उद्यत हुआ ॥४६॥ उस समय जो देव दुन्दुभिका नाद हो रहा था वही उस तेजस्वीकी अपनी वाणीसे मिलता जुलता अत्यन्त सुन्दर साजका काम दे रहा था ॥४७-४८॥ दोना मुनियोंको प्रदक्षिणा देकर हर्षाशुको छोडता हुआ वह नृत्य करनेवाला गृध्र पक्षी वर्षा ऋतुके मयूरके समान सुरोभित हो रहा था ॥४९॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! जिनका यथोचित सत्कार किया गया था ऐसे दोना मुनिराज विधिपूर्वक पारणकर वैदूर्यमणिके समान जो शिलातल था उस पर विराज मान हो गये ॥५०॥ और पद्मराग मणिके समान नेत्रोका धारक गृध्र पत्नी भा अपने पद्म सङ्कुचित कर तथा मुनिराजके चरणोम प्रणाम कर अञ्जली बाँध सुखसे बैठ गया ॥५१॥ विकसित कमलके समान नेत्रोको धारण करनेवाले राम, क्षण भरमें तेजसे जलती हुई अग्निके समान उस गृध्र पत्नीको देखकर परम आश्चर्यको प्राप्त हुए ॥५२॥ उन्होंने पत्नीपर बार बार नेत्र डालकर तथा गुग और शीलरूपी आभूषणको धारण करनेवाले मुनिराजके चरणोम नमस्कार कर उनसे इस प्रकार पूछा कि हे भगवन् ! यह पत्नी पहले तो अत्यन्त विरूप शरीरका धारक था पर अब क्षण भरमें सुवर्ण तथा रत्न राशिके समान कान्तिका धारक कैसे हो गया ? ॥५३-५४॥ महा अपवित्र, सब प्रकारका मास खानेवाला तथा दुष्ट हृदयका धारक यह गृध्र आपके चरणोम बैठकर अत्यन्त शान्त कैसे हो गया है ? ॥५५॥

तदनतर सुगुप्ति नामक मुनिराज बोले कि हे राजन् ! पहले यहाँ नाना जनपदोंसे ध्याप्त



पत्तनग्रामसंवाहमटम्बपुटभेदनैः । घोःद्रोणमुखासंश्रय सन्निवेशैर्विराजितः ॥५७॥  
 कर्णकुण्डलनामात्र पुरमार्यान् मनोहरम् । तरिमन्त्रयमभूद्राजा प्रतापपरमोदयः ॥५८॥  
 चण्डविक्रमसम्पन्नो भग्नशाश्रवकण्ठकः । दण्डो मानमयं रथातो दण्डने नाम साधनी ॥५९॥  
 धृताश्विना जल तेन मथितं रघुनन्दन । धर्मश्रद्धापरिीतेन घृतः पावागमो जिया ॥६०॥  
 देवी मस्करिणा तस्य वैरिवस्था परामभवत् । तेषामसावधोशेन सम्भोग समुपागतः ॥६१॥  
 सोऽपि तस्याः परं वश्यस्तामेव दिशमाश्रयत् । स्त्रीचित्तहरणोद्युक्तः किं न कुर्वन्ति मानवाः ॥६२॥  
 निष्क्रान्तेनान्यदा तेन नगरात् साधुरीक्षितः । प्रलम्बितभुजः श्रीमान् ध्यानमरुद्धमानसः ॥६३॥  
 कृष्णमर्षो मृतस्तस्य त्रिधाज्ञो विपलालयः । कण्ठे निधापितस्तेन प्रावदारणचेतसा ॥६४॥  
 यावद्देवोऽप्यनातो न प्रदानुर्मम केनचित् । तावन्न सहरेद्योगमिति ध्यात्वा मुनिः स्थितः ॥६५॥  
 अर्ताते गणरात्रे च पुनस्तेनैव वर्त्मना । निष्क्रामन् पाथिवोऽपरयत्तद्वशम् महामुनिम् ॥६६॥  
 ऋजुनैव च रूपेण गत्वा निकटतां भृशम् । अग्रच्छद्गपनेतार किमेतदिति सोऽवदत् ॥६७॥  
 नरेन्द्र पश्य केनापि नरकावासमागिणा । योगस्थस्य मुनेरस्य कण्ठे सर्पः समर्पितः ॥६८॥  
 यस्य सर्पस्य सम्पर्काद् विग्रहस्य समुद्रगतम् । प्रतिविम्बं शितिक्लिन्न दुर्दर्शमतिभीषणम् ॥६९॥  
 मुनिं नि प्रतिकर्माणं दृष्ट्वा राजा तथाविधम् । प्रणम्यान्मयघातास्ते च स्थान यथोचितम् ॥७०॥  
 ततः प्रभृति सज्जोऽसौ कर्तुं भक्तिमनुत्तमाम् । निरन्धरमुनान्द्राणां वारितोपद्रवक्रिय ॥७१॥

एक बहुत बड़ा सुन्दर देश था ॥५६॥ जो पत्तन, ग्राम, संवाह, मटम्ब, पुटभेदन, घोप और द्रोण मुख आदि रचनाओंसे मुशोभित था ॥५७॥ इसी देशमें एक कर्णकुण्डल नामका मनोहर नगर था जिसमें यह परम प्रतापी राजा था । यह तीव्र पराक्रमसे युक्त, शत्रुरूपी कंटकांको भग्न करनेवाला, महामानी एवं साधनसम्पन्न दण्डक नामका धारक था ॥५८-५९॥ हे रघुनन्दन ! धर्मकी श्रद्धासे युक्त इस राजाने पापपीपक शारत्रको समझकर बुद्धिपूर्वक धारण किया सो मानो इसने घृतकी इच्छासे जलका ही मन्थन किया ॥६०॥ राजा दण्डककी जो रानी थी वह परिव्राजकी की बड़ी भक्त थी क्योंकि परिव्राजकोंके स्वामीके द्वारा वह उत्तम भोगको प्राप्त हुई थी ॥६१॥ राजा दण्डक रानीके वशीभूत था इसलिए यह भी उसी दिशाका आश्रय लेता था, सो ठीक ही है क्योंकि स्त्रियोंका चित्त हरण करनेमें उद्यत मनुष्य क्या नहीं करते हैं ? ॥६२॥ एक दिन राजा नगरसे बाहर निकला वहाँ उसने एक ऐसे साधुको देखा जो अपनी भुजाएँ नीचे लटकाये हुए थे, वीतराग लक्ष्मीसे सहित थे तथा जिनका मन ध्यानमें रुका हुआ था ॥६३॥ पापाणके समान कठोर चित्तके धारक राजाने उन मुनिके गलेमें, विपमिश्रित लारसे जिसका शरीर व्याप्त था ऐसा एक मरा हुआ काला सोंप डलवा दिया ॥६४॥ 'जब तक इस सोंपको कोई अलग नहीं करता है तब तक मैं योगकी संतुष्टि नहीं करूँगा' ऐसी प्रतिज्ञा कर वह मुनि उसी स्थान पर लड़े रहे ॥६५॥ तदनन्तर बहुत रात्रियों व्यतीत हो जानेके बाद उसी मार्गसे निकले हुए राजाने उन महा-मुनिको उसी प्रकार ध्यानारूढ देखा ॥६६॥ उसी समय कोई मनुष्य मुनिराजके गलेसे सोंप अलग कर रहा था । राजा मुनिराजकी सरलतासे आकृष्ट हो उनके पास गया और सोंप निकालनेवाले मनुष्यसे पूछता है कि 'यह क्या है ?' इसके उत्तरमें वह मनुष्य कहता है कि राजन् ! देवो, नरककी रोज करनेवाले किसी मनुष्यने इन ध्यानारूढ मुनिराजके गलेमें सोंप डाल रक्खा है ॥६७-६८॥ जिस सोंपके संपर्कसे इनके शरीरकी आकृति श्याम, रोदरिन्न, दुर्दर्शनीय तथा अत्यन्त भयङ्कर हो गई है ॥६९॥ बुद्ध भी प्रतिकार नहीं करनेवाले मुनिको उसी प्रकार ध्यानारूढ देखा राजाने प्रणाम कर उनमें क्षमा मार्गी और तदनन्तर वह यथास्थान चला गया ॥७०॥ उस समय से राजा दिग्गम्बर मुनियोंकी उत्तम भक्ति करनेमें तत्पर हो गया और उसने मुनियोंके सब उपद्रव-

देर्वाविटपरिव्राजा<sup>१</sup> ज्ञात्वाऽन्यविषयं नृपम् । इदं क्रोधपरितेन विधातुमभिवान्छितम् ॥७२॥  
जीवितस्नेहमृत्सुखं परदुःखाहितान्मव । निर्मन्थरूपपद्मेद्याः सम्पर्कमभजत् पुन ॥७३॥  
ज्ञात्वा तद्दीदृश कर्म राज्ञान्क्रोधमयीयुषा । अमा-याद्युपदेशं च स्मृत्वा निर्मन्थनिन्दनम् ॥७४॥  
क्रूरकर्मभिरन्यैश्च प्रेरित भ्रमणाहितैः । आज्ञापयन् महर्षीणां यन्त्रनिष्पीडने नरान् ॥७५॥  
गणाधिपसमेतोऽसौ समूहोऽभ्यर्चवाससाम् । यन्त्रनिष्पीडनैर्नीतः पञ्चतां पापकर्मणाम् ॥७६॥  
बाह्यभूमिगतस्तत्र मुनिरेकः समाव्रजन् । इत्यवार्थतः लोकेन वेनचित् करुणावता ॥७७॥  
भो भो निर्मन्थ मागास्त्व पृथेनैर्न्ययमाश्रयन् । यन्त्रेणापीड्यसे तत्र द्रुतं कुरु पलायनम् ॥७८॥  
यन्त्रेषु भ्रमणाः सर्वे राज्ञा क्रुद्धेन पीडिताः । मागास्त्वमप्यवस्था तां रक्ष धर्माश्रय वपु ॥७९॥  
ततः क्षणमसौ लङ्घयितुं खेन शल्यितः । वज्रस्तम्भ इवाकम्पस्तथावच्यक्तचेतनः ॥८०॥  
अधास्य शतदुःखेन प्रेरित शमगह्णात् । निरभ्यरमहीध्रस्य निरगात् क्रोधकेसरी ॥८१॥  
रक्षाशोकप्रकाशेन निखिल तस्य चक्षुषः । तेजसा विहितं व्योम सन्ध्यामयमिवाभवत् ॥८२॥  
कोपेन तप्यमानस्य मुनेः सर्वत्र विग्रहे । प्रस्वेदयिन्द्वो जाताः प्रतिविम्बितविष्टपा ॥८३॥  
ततः कालानलाकारो बहुलः कुटिल पृथुः । हाकारेण मुखात्तस्य निरगात् पावकध्वजः<sup>३</sup> ॥८४॥  
अनुलग्नश्च तस्याग्निरज्जगाम निरन्तरम् । कृतं नभस्तल येन निरिन्धनविदीपितम् ॥८५॥

कष्ट दूर कर दिये ॥७१॥ रानीके साथ गुप्त समागम करनेवाले परिव्राजकोंके अधिपतिने जब राजाके इस परिवर्तनको जाना तब क्रोधसे युक्त होकर उसने यह करनेकी इच्छा की ॥७२॥ दूसरे प्राणियोंको दुःख देनेमें जिसका हृदय लग रहा था ऐसे उस परिव्राजकने जीवनका स्नेह छोड़ निर्मन्थ मुनिका रूप धर रानीके साथ सपर्क किया ॥७३॥ जब राजाको इस कार्यका पता चला तब वह अत्यन्त क्रोधको प्राप्त हुआ । मन्त्रों आदि अपने उपदेशमें निर्मन्थ मुनियोंकी जो निन्दा किया करते थे वह सब इसकी स्मृतिमें भूलने लगा ॥७४॥ उसी समय मुनियोंसे द्वेष रखनेवाले अन्य दुष्ट लोगोंने भी राजाको प्रेरित किया जिससे उसने अपने सेवकोंके लिए समस्त मुनियोंको घानोमें पेलनेकी आज्ञा दे दी ॥७५॥ जिसके फलस्वरूप गणनायकके साथ-साथ जितना मुनियोंका समूह था वह सब, पापी मनुष्योंके द्वारा घानोमें पिलकर मृत्युको प्राप्त हो गया ॥७६॥ उस समय एक मुनि कहीं बाहर गये थे जो लौटकर उसी नगरीकी ओर आ रहे थे । उन्हें किसी वयाल मनुष्यने यह कह कर रोका कि हे निर्मन्थ ! हे विगम्बरमुद्राके धारी ! तुम अपने पहलेका निर्मन्थवेष धारण करते हुए नगरीमें मत जाओ, अन्यथा घानोमें पेल दिये जाओगे, शीघ्र ही यहाँसे भाग जाओ ॥७७-७८॥ राजाने क्रुद्ध होकर समस्त निर्मन्थ मुनियोंको घानोमें पिलवा दिया है तुम भी इस अवस्थाको प्राप्त मत होओ, धर्मका आश्रय जो शरीर है उसकी रक्षा करो ॥७९॥

तदनन्तर समस्त सघकी मृत्युके दुःखसे जिन्हें शल्य लग रही थी ऐसे वे मुनि क्षणभरके लिए व्रजके रत्नभकी नौई अकम्प—निश्चल हो गये । उस समय उनकी चेतना अव्यक्त हो गई थी अर्थात् यह नहीं जान पड़ता था कि जीवित है या मृत ? ॥८०॥ अथानन्तर उन निर्मन्थ मुनि रूपी पर्वतकी शान्तिरूपी गुफासे सैकड़ों दुःखोंसे प्रेरित हुआ क्रोधरूपी सिंह बाहर निकला ॥८१॥ उनके नेत्रके अशोकके समान लाल-लाल तेजसे आकाश ऐसा व्याप्त हो गया मानी उसमें संध्या ही व्याप्त हो गई हो ॥८२॥ क्रोधसे तपे हुए मुनिराजके समस्त शरीरमें स्वेदकी बूँदें निकल आईं और उनमें लोकरा प्रतिविम्ब पड़ने लगा ॥८३॥ तदनन्तर उन मुनिराजने मुखसे 'हा' शब्द का उच्चारण किया उसीके साथ मुखसे धुआँ निकला जो कालाग्निके समान अत्यधिक कुटिल और विशाल था ॥८४॥ उस धुआँके साथ ऐसी ही निरन्तर अग्नि निकली कि जिसने ईन्धनके बिना

उत्क्राभिर्नु जगद्भ्यास्त ज्योतिर्देवा पतन्ति तु । महाप्रलयकाले तु बद्धिदेवा तु रापिता ॥८६॥  
 हा हा मात क्रमेतन्नु तापोऽप्यमतिदुस्मह । अधुम्याप्यरते दीर्घमदशैरिव वेगिभि ॥८७॥  
 मूर्धनिमुक्तमेतैतद्गगन कुस्ते ध्वनिम् । वशारण्यमिजोहास जाविताऋषेणोचितम् ॥८८॥  
 यापदेव ध्वनिलोकै वनतैऽप्यन्तमाकुल । बद्धिस्तत्त्वद्वय देशमनयद् भस्मरोपताम् ॥८९॥  
 मान्त पुर न देशो न पुराणि न च पर्वता । न नद्यो नाप्यरण्यानि तदा न प्रागधारिण ॥९०॥  
 महाप्रेगयुक्तेन मुनिना चिरमजितम् । क्रोधाग्निनाग्निल दग्ध तपोऽप्यन्त् त्रिभु शिष्यताम् ॥९१॥  
 यतोऽथ दण्डको देश आर्साद्दण्डरपाधिर्ब । तेनैव ध्वनिनाद्यापि दण्डक परिकीर्यते ॥९२॥  
 काले महत्पत्तिप्रान्ते प्राप्ताया चारुता भुवि । पुनेऽत्र पादपा जाता परंताश्च सनिग्गता ॥९३॥  
 मुनेस्त्वस्य प्रभाषेण सुराणामपि भोतिदम् । वनमेतद्भूत् कैव वार्ता त्रिवाचलाश्रितोम् ॥९४॥  
 पश्चाद्दिद समाकर्णं सिंहेन गरभादिभि । नानाशकुनिवृन्दैश्च मस्यभेदैश्च भूरिभि ॥९५॥  
 अद्याप्यस्योहृदावस्य ध्रुवा शब्द पर भयम् । व्रजन्ति मानवा कस्य वृत्तान्ते तु निशोचिन् ॥९६॥  
 ससारैऽतिचिर भ्रान्त्वा दण्डको दु ग्गूरित । अय गृध्रवमायातो वनेऽत्र रतिमागत ॥९७॥  
 द्यूता सातिशयापे नौ वनेऽत्र समागता । पापस्य कर्मणो हान्या प्राप्त पूर्वैऽप्यस्मृतिम् ॥९८॥  
 योऽसी परमया शक्त्या युक्तोऽभूद्दण्डको नृप । सोऽथ परपत सज्जान कंठश पापकर्मभि ॥९९॥  
 इति विज्ञाय विरस फल कटुककर्मण । कथ न सज्यते धर्मे दुरिताद्य विरज्यते ॥१००॥

ही समस्त आकाशको देदीप्यमान कर दिया ॥८६॥ क्या यह लोक उन्काओंसे व्याप हो रहा है ? या ज्योतिष्क देव नीचे गिर रहे हैं ? या महा प्रलयकाल आ पहुँचा है ? या अग्निदेव कुपित हो रहे हैं ? हाय माता ! यह क्या है ? यह ताप तो अत्यन्त दु सह है, ऐसा लगता है जैसे येगशाली बड़ी-बड़ी सडाशियोंसे नेत्र उराडे जा रहे हो, यह अमूर्तिक आकाश ही घोर शब्द कर रहा है, मानो प्राणोके सींचनेमें उद्यत बोंसोना वन ही जल रहा है' इस प्रकार अत्यन्त व्याकुलतासे भरा यह शब्द जन तक लोकमें गूँजता है वन तक उस अग्निने समस्त देशको भस्म कर दिया ॥८६-८६॥ उस समय न अन्त पुर, न देश, न नगर, न पर्वत, न नदियों, न जङ्गल और न प्राणी ही शेष रह गये थे ॥८७॥ महान् सवेगसे युक्त मुनिराजने चिरकालसे जो तप सञ्चित कर रखा था यह सनका शब्द क्रोधाग्निमें दग्ध हो गया—जल गया फिर दूसरी वस्तुएँ तो बचती ही कैसे ? ॥८९॥ यह दण्डक देश था तथा दण्डक ही यहाँका राजा था इसलिए आज भी, यह स्थान दण्डक नामसे ही प्रसिद्ध है ॥८९॥ बहुत समय के बाद वनेके काल यहाँ की भूमि कुछ सुन्दरताको प्राप्त हुई है और ये वृक्ष, पर्वत तथा नदियों त्रिराई देने लगी हैं ॥९३॥ उन मुनिके प्रभावसे यह वन देवोंके लिए भी भय उत्पन्न करनेवाला है फिर विद्याधरीकी तो बात ही क्या है ? ॥९४॥ आगे चल कर यह वन सिंह अष्टापद आदि क्रूर जन्तुओं, नाना प्रकारके पक्षि-समूहों तथा अत्यधिक जङ्गली धान्योंसे युक्त हो गया ॥९५॥ आज भी इस वनकी प्रचण्ट दानानल का शब्द सुनकर मनुष्य पिछली घटनाका स्मरण कर भयभीत होते हुए काँपने लगते हैं ॥९६॥ राजा दण्डक बहुत समय तक ससारमें भ्रमण कर दुःख उठाता रहा वन गृध्रपर्यायको प्राण हो इस वनमें प्रीतिको प्राप्त हुआ है ॥९७॥ इस समय इस वनमें आये हुए अतिशय युक्त हम दोनोंको देखकर पापकर्मकी मन्दता होनेसे यह पूर्वभवके स्मरणको प्राप्त हुआ है ॥९८॥ जो दण्डक राजा पहले परम शक्तिसे युक्त था वह देवों, आज पापकर्मोंके कारण कैसा हो गया है ? ॥९९॥ इस प्रकार पाप कर्मका नौरस फल जान कर धर्ममें क्यों नहीं लगा जाय और पापसे क्यों नहीं

दृष्टान्त परकायोऽपि शान्तेर्भवति कारणम् । असमञ्जसमात्माय किं पुनः स्मृतिमागतम् ॥१०१॥  
 पक्षिण सयतोऽग्रादीन्मा भैरारधुना द्विज । मा रोदार्ययथा भाव्य क करोति तदन्यथा ॥१०२॥  
 आश्रास गच्छ विश्रन्ध कम्प मुञ्च सुखा भव । परय ध्येयमरण्यानी क राम सीतयान्वित ॥१०३॥  
 अवग्रहोऽस्मदीय क क स्वमाचार्यसङ्गत । प्रबुद्धा दु खसम्बोध कर्मणाभिदर्माहितम् ॥१०४॥  
 इद कर्म विचित्रत्वाद् विचित्र परम जगत् । अनुभूर्त ध्रुत दृष्ट यथेव प्रबदात्प्रहम् ॥१०५॥  
 पक्षिण प्रतिबोधार्थं ज्ञात्वाभूत च सारिण । सुगुणिरवदत् स्वस्य सुगुणे शमकारणम् ॥१०६॥  
 अचलो नाम विख्यातो वाराणस्या महापति । गिरिदेवीति जायास्य गुणरत्नविभूषिता ॥१०७॥  
 त्रिगुप्त इति विख्यातो गुणनाम्नान्यदा मुनि । पारणार्थं गृह तस्या प्रविष्ट शुद्धचेष्टित ॥१०८॥  
 स तया परमा श्रद्धा दक्षत्या विप्रपूर्विकात् । तपित परमात्मेन स्वय व्यापारमुत्तया ॥१०९॥  
 समाज्ञाशनकृ यञ्च पादन्यस्तोत्तमाङ्गया । पप्रच्छान्यापदेशेन स्वस्य पुत्रसमुद्भवम् ॥११०॥  
 नाथ सातिशयाऽय मे गृहवासो भविष्यति । किं वा नेति प्रसादोऽय क्रियता निश्चयापणम् ॥१११॥  
 वधोगुप्तिं ततो भित्वा राज्ञीभयचयुरोधत । तस्याश्चाहसमादिष्ट मुनिना तनयद्वयम् ॥११२॥  
 त्रिगुप्तस्य मुनेस्तस्य समादेशोऽनयत मुनी । जाता सुगुप्तिगुप्ताख्यौ पितृभ्या तौ तत कृतौ ॥११३॥  
 तौ च सर्वकलाभिज्ञौ कुमारश्राममन्विता । तिष्ठन्ता विविधैर्भावे रममाणौ जनप्रियो ॥११४॥  
 वृत्तान्तोऽय च सञ्जातो गन्धर्वत्या महापते । पुरोहितस्य सोमस्य प्रियायास्तनयद्वयम् ॥११५॥

गिरिक्त हुआ जाय ? ॥१००॥ दूसरेका उदाहरण भी शान्तिका कारण हो जाता है फिर यदि अपनी ही खोटी बात स्मरण आ जावे तो कहना ही क्या है ? ॥१०१॥

रामसे इतना कहकर मुनिराजने गृध्रसे कहा कि हे द्विज ! अब भयभीत मत होओ, रोओ मत, जो बात जैसी होनेवाली है उसे अन्यथा कौन कर सकता है ? ॥१०२॥ धैर्य धरो, निश्चिन्त होकर कपकपी छोड़ो, सुनी होओ, देखो यह महा अटवी कहीं ? और सीता सहित राम कहीं ? ॥१०३॥ हमारा पडगाहन कहीं ? और आत्म कल्याणके लिए दुःखका अनुभव करते हुए तुम्हारा प्रबुद्ध होना कहीं ? कर्मोंकी ऐसी ही चेष्टा है ॥१०४॥ कर्मोंकी विचित्रताके कारण यह ससार अत्यन्त विचित्र है । जैसा मैंने अनुभव किया है, सुना है अथवा देखा है वैसा ही मैं कह रहा हूँ ॥१०५॥ पक्षीको समझानेके लिए रामका अभिप्राय जान सुगुप्ति मुनिराज अपनी दीक्षा तथा शान्तिका कारण कहने लगे ॥१०६॥

उन्होंने कहा कि वाराणसी नगरीमें एक अचल नामका प्रसिद्ध राजा था । उसकी गुणरूपी रत्नोंसे विभूषित गिरि देवी नामकी स्त्री थी ॥१०७॥ किसी एक दिन त्रिगुप्त इस सार्थक नामको धारण करनेवाले तथा शुद्ध चेष्टाओंके धारक मुनिराजने आहारके लिए उसके घर प्रवेश किया ॥१०८॥ सो विधि पूर्वक परम श्रद्धाको धारण करनेवाली गिरि देवीने अन्य सब कार्य छोड़ स्वय ही उत्तम आहार देकर उन्हे सतुष्ट किया ॥१०९॥ जब मुनिराज आहार कर चुके तब उसने उनके चरणोंमें मस्तक मुकाकर किसी दूसरेके बहाने अपने पुत्र उत्पन्न होनेकी बात पूछी ॥११०॥ उसने कहा कि हे नाथ ! मेरा यह गृहवास सार्थक होगा या नहीं ? इस बातका निश्चय कराकर प्रसन्नता कीजिये ॥१११॥ तदनन्तर मुनि यद्यपि तीक्ष्ण गुप्तियोंके धारक थे तथापि रानीकी भक्तिके अनुरोधसे बचनगुप्तियोंको तोड़कर उन्होंने कहा कि तुम्हारे दो सुन्दर पुत्र होंगे ॥११२॥ तदनन्तर उन त्रिगुप्त मुनिराजके कहे अनुसार दो पुत्र उत्पन्न हुए सो माता पिताने उनके 'सुगुप्ति' और 'गुप्त' इस प्रकार नाम रखे ॥११३॥ वे दोनों ही पुत्र सर्व कलाओंके जानकार, कुमार लक्ष्मीसे सुशोभित, अनेक भागोंसे रमण करते तथा लोगोंकी अत्यन्त प्रिय थे ॥११४॥

उसी समय यह दूसरा वृत्तान्त हुआ कि गन्धवती नामकी नगरीके राजाके सोम नामका

सुखेनुरगिनकेतुश्च तयोः प्रीतिरनुत्तमा । सुखेनुरन्यदा चान्यद् दृग्दर्शनपरिग्रहः ॥११५॥  
 भावयोरपुना भ्रात्रो वृषकू शयनमेतया । त्रियो ज्ञापयारयमिति दृग्दर्शनगतः ॥११६॥  
 सुखेनू प्रतिपुत्रं मन् शुभकर्मनुभावन । भनन्तोर्यथादाने भ्रमणाय समाधिः ॥११७॥  
 भनितेनुरियोगेन भ्रातृगण्यन्तदु गित । वाराणस्यामभू दुष्प्रकारयो धर्मगणितया ॥११८॥  
 भुर्या चैवविध त च भ्रातर स्नेहयन्धन । प्रतिघोरयितु वान्यद् सुखेनुगंमुमुक्षुः ॥११९॥  
 न मजन्तु गुरुगावावि सुखेनो कथयिष्यमि । कृत्वात्त मोक्षरायेम येनामानुगतायति ॥१२०॥  
 कोऽमी नाथेति तेनोमे गुरुदेवमुदाहरत् । करिष्यति तया माक म् नर्प दुष्मात्रन ॥१२१॥  
 युवयो. कुर्वतोर्जवर जाह्नवीमागमिष्यति । चादकन्या मम श्राभिस्तृभिगीरविग्रहा ॥१२२॥  
 दिवसस्य गते याम विविधोशुक्रधारिणां । एभिश्चिद्वैविधित्वा तां भाषितस्यमिद् तया ॥१२३॥  
 दृष्ट्वा ता वक्ष्यमांश्च ख ज्ञान चेद्विदिते ते मने । यद्विदया तुमायां किं भविनेति शुभाशुभम् ॥१२४॥  
 अज्ञानोऽमी विलस्य मस्तापसस्य भविष्यति । भगवद् जानामिति ख वक्ष्यम्येष मुनिश्चित ॥१२५॥  
 अरुणप्र प्रवरो नाम? वणिज सम्पदान्वित । तस्येव दुहित्वा नाम्ना रुचिरेति प्रकीर्तना ॥१२६॥  
 तृतायेऽर्द्धनि पञ्चम्य वराकाय प्रपश्यते । ततोऽज्ञा कम्बरप्रामे विलामस्य भविष्यति ॥१२७॥  
 वृक्षेण मारिता मेरी महिणी च तत पितु । मानुलस्य विलामस्य भविष्यति शरारजा ॥१२८॥  
 एवमस्तिरति सन्नाप्य प्रणय प्रसदी गुरुम् । सुखेनू ममत प्राप्तव्यापमानां निवेदनम् ॥१२९॥

पुरोहित था उसकी श्रोक सुखेनू और अग्निनेतु नामने दो पुत्र थे । उन दोनों ही पुरोमि अन्यधिक प्रेम था, उस प्रेमके कारण बड़े होने पर भी वे एक ही शय्या पर सोते थे । समय पाकर सुखेनूका विवाह हो गया । जत्र स्त्री घर आई तत्र सुखेनू यह विचार कर बहुत दुःखी हुआ कि इस श्रोक द्वारा अब हम दोनों भाइयोंकी शय्या जुड़ी-जुड़ी की जा रही है ॥११५-११७॥ इस प्रकार शुभ कर्मके प्रभावसे प्रतिरोधको प्राप्त हो सुखेनू अनन्तरीय मुनिके पास टीक्षित हो गया ॥११८॥ भाईके त्रियोगसे अग्निनेतु भी बहुत दुःखी हो धर्म संचय करनेको भावनामे वाराणसीमे उप तापस हो गया ॥११९॥ स्नेहके बन्धनमें बंधे सुखेनूने जत्र भाईके तापस होनेका समाचार सुना तत्र वह उसे समझानेके अर्थ जानेके लिए उद्यत हुआ ॥१२०॥ जत्र वह जाने लगा तत्र गुरुने उससे कहा कि हे सुखेनू ! तुम अपने भाईसे यह वृत्तान्त कहना जिससे यह शत्रु ही उपरान्त हो जायगा ॥१२१॥ 'हे नाथ ! वह कौन सा वृत्तान्त है ?' इस प्रकार सुखेनूके कहने पर गुरुने कहा कि दुष्ट भावनाको धारणा करनेवाला तेरा भाई तेरे साथ वाद करेगा ॥१२२॥ मो जिस समय तुम दोनों वाद कर रहे होओगे उन समय गौरवर्ण शरीरको धारणा करनेवाली एक सुन्दर कन्या तीन त्रियोंके साथ गङ्गा आवेगी । वह दिनके पिछले प्रहरमे आवेगी तथा विचित्र चम्रको धारण कर रही होगी । इन चिह्नोंसे उसे जानकर तुम अपने भाईसे कहना कि यदि तुम्हारे धर्ममें कुछ ज्ञान है तो यथाओ इस कन्याका क्या शुभ अशुभ होनेवाला है ? ॥१२३-१२५॥ तत्र वह अज्ञानी तापसी लज्जित होता हुआ तुमसे कहेगा कि अच्छा तुम जानने हो तो कहो । यह सुन तुम निश्चयसे सुदृढ़ हो कहना कि इसी नगरमें एक सम्पत्तिशाली प्रवर नामका वैश्य रहता है यह उसीको लडकी है तथा रुचिरा नामसे प्रसिद्ध है ॥१२६-१२७॥ यह बेचारी आजसे तीसरे दिन मर जायगी और कम्बर नामक माममे विलास नामक वैश्यके यहाँ उकरी होगी । भेदिया उम बकरीको मार डालेगा जिससे गाडर होगी फिर मरकर उसाके घर भैम होगी और उसके बाद उसी विलासके पुत्री होगी । वह विलास इस कन्याके पिताका मामा होता है ॥१२८-१२९॥ 'पैसा ही हो' इस प्रकार कहकर तथा गुरुको प्रणामकर हर्षसे भग सुखेनू क्रम-

गुरणा च यथादिष्टं तौ दृष्ट्वा तमुदाहरत् । तथा वृत्तं च तत्सर्वं यातमग्नेः समक्षताम् ॥१३१॥  
 ततोऽग्नौ विधुरा नाम्ना विलासस्य शरीरजा । याचिता श्रेष्ठिना लब्धा प्रवरेण मनोहरा ॥१३२॥  
 विवाहसमये प्राप्ते प्रवराय न्यवेदयत् । अग्निकेतुर्यथैव त दुहित्वासीद् भवान्तरे ॥१३३॥  
 विलासायापि ते सर्वे भवास्तेन निवेदिताः । ध्रुत्वा तत्कन्यका जाता जातिस्मरणयोरिदा ॥१३४॥  
 ततः प्रमजितुं वाञ्छा सा सवेगपराकरोत् । प्रवरश्च विलासेन व्यवहारं दुराशयः ॥१३५॥  
 सभायां पितुरस्माकं प्रवरे भद्रतां गते । आर्यिकात्वमिता कन्या धमण्य च तापसः ॥१३६॥  
 वृत्तान्तमीदृशं ध्रुत्वा वयं वैराग्यपूरिताः । सकारोऽनन्तवीर्यस्य जैनेन्द्रमतमाश्रिताः ॥१३७॥  
 पृथं मोहपरोताना प्राणिनामतिभूरिशः । जायन्ते कुलित्वाचारा भवसन्ततिदायिनः ॥१३८॥  
 मातापितृसुहृन्मित्रभार्यापत्यादिकं जनं । सुखदुःखादिकं चायं विवर्तं लभते भवं ॥१३९॥  
 तच्छ्रुत्वा सुतरां पत्नीं भीतोऽभूद् भवदुःखतः । चकार च मुहुःशब्दं धर्मग्रहणवाञ्छया ॥१४०॥  
 उक्तं च गुरुणा भद्रं मा भैर्यैरधुना व्रतम् । गृहाण येन नो भूयः प्राप्यते दुःखसन्ततिः ॥१४१॥  
 प्रशान्तो भव मा पंडा' कार्थीः सर्वासु गारिणाम् । अनृतं स्तेयतां भार्यां परकीयां विवर्जय ॥१४२॥  
 एकान्तब्रह्मचर्यं वा गृहीं वा सत्त्वमण्डितः । रात्रिभुक्तिं परित्यज्य भव शोभनचेष्टितः ॥१४३॥  
 प्रयतोऽहं क्षपाया च जिनेन्द्रान् वहं चेतसा । उपवासादिकं शक्यं सुधार्मिकममाचर ॥१४४॥

प्रमसे तापसोके आश्रममे पहुँचा ॥१३०॥ गुरने जिस प्रकार कहा था उसी प्रकार उस कन्याको देखकर सुकेतुने अपने भाई अग्निकेतुसे कहा और वह सबका सब वृत्तान्त उसी प्रकार अग्नि केतुके सामने आ गया अर्थात् सच निकला ॥१३१॥

तदनन्तर वह कन्या जब मरकर चौथे भवमे विलासके विधुरा नामकी पुत्री हुई तब प्रवर नामक सेठने उस सुन्दरीकी याचना की और वह उसे प्राप्त भी हो गई ॥१३२॥ जब विवाहका समय आया तब अग्निकेतुने प्रवरसे कहा कि यह कन्या भवान्तरमे तुम्हारी पुत्री थी ॥१३३॥ यह कहकर उसने कन्याके वर्तमान पिता विलासके लिए भी उसके वे सब भय कह सुनाये । उन भयोंको सुनकर कन्याको जातिस्मरण हो गया ॥१३४॥ जिससे संसारसे भयभीत हो उसने दीक्षा धारण करनेका विचार कर लिया । इधर प्रवरने समझा कि विलास किसी छलके कारण मेरे साथ अपनी कन्याका विवाह नहीं कर रहा है इसलिए दूषित अभिप्रायको धारण करनेवाले प्रवरने हमारे पिताकी सभामे विलासके विरुद्ध अभियोग चलाया परन्तु अन्तमे प्रवरकी हार हुई, कन्या आर्यिका पदको प्राप्त हुई और अग्निकेतु तापस दिग्म्बरमुनि बन गया ॥१३५-१३६॥ वृत्तान्तको सुनकर हमने भी विरक्त हो अनन्तवीर्य नामक मुनिराजके समीप जिनेन्द्र दीक्षा धारण कर ली ॥१३७॥ इस प्रकार मोही जीवोंसे संसारकी सन्ततिकी बढ़ानेवाले अन्क खोटे आचरण हो जाया करते हैं ॥१३८॥ यह जीव अपने किये हुए कर्मके अनुसार ही माता, पिता, स्नेही मित्र, स्त्री, पुत्र तथा सुख दुःखादिकको भव-भवमे प्राप्त होता है ॥१३९॥

यह सुनकर वह गृध्र पक्षी संसार सम्बन्धी दुःखोंसे अत्यन्त भयभीत हो गया और धर्म ग्रहण करनेकी इच्छासे बार-बार शब्द करने लगा ॥१४०॥ तब मुनिराजने कहा कि हे भद्र ! भय मत करो । इस समय व्रत धारण करो जिससे फिर यह दुःखोंकी सन्तति प्राप्त न हो ॥१४१॥ अत्यन्त शान्त हो जाओ, किसी भी प्राणीको पीड़ा मन पहुँचाओ, असत्य वचन, चोरी और परस्त्रीका त्याग करो अथवा पूर्ण ब्रह्मचर्य धारण कर उत्तम क्षमासे युक्त हो रात्रि भोजनका त्याग करो, उत्तम चेष्टाओंसे युक्त होओ, बडे प्रयत्नसे रात-दिन जिनेन्द्र भगवान्को हृदयमे धारण करो, शक्यतनुसार विवेकपूर्वक उपवासादि नियमोंका आचरण करो, प्रमाद रहित होकर

इन्द्रियाण्यप्रमत्त सन्नुसुकान्यारमगोचरे । कुङ्कुमव्ययस्यानि साधूना भक्तिपर ॥१४५॥  
 इत्युक्तं साञ्जलि पद्मा शिरो विनमयन्मुहुः । कुत्रांगो मधुर शब्द जग्राह मुनिभाषिणम् ॥१४६॥  
 श्रावकोऽयं विनीतात्मा जातोऽस्माकं विनोदहृत् । इत्युक्त्वा सस्मिता माता तं कारुण्य समस्पृष्टवत् ॥१४७॥  
 साधुभ्यामुक्तमियेत् रचित्तु वोऽनुनोचितम् ३ । तपस्वा शान्तचित्तोऽयं यं वा गच्छन्तु पद्मभृत् ॥१४८॥  
 अस्मिन् सुगहनेऽरण्ये क्रूरप्राणिनिषेविते । सम्यग्दृष्टे रम्यस्यास्य रक्षा कार्या स्वया मदा ॥१४९॥  
 सती गुणत्रय प्राप्य सुनरा स्नेहपूर्णया । मीतयानुगृहातोऽमी परिपालनचिन्तया ॥१५०॥  
 पल्लवस्पर्शहस्ताभ्यां तं परामृशती सती । जनकस्याज्ञया तेने विनीता गरुड यथा ॥१५१॥  
 निर्ग्रन्थपुङ्गवानेभि स्तुतिपूर्वं नमस्कृती । बहुपकारिसञ्चारी यातावाग्नोचित पदम् ॥१५२॥  
 नभ समुत्पतन्ती ती शुश्रुमाते महामुना । दानधर्मसमुद्रस्य कङ्गोलाविव पुष्कली ॥१५३॥  
 प्रभिन्न धारण तावद् वशाकृत्य वनोचितम् । आरुह्य लक्ष्मण भ्रुवा ध्वनिमागत्य समाजुल ॥१५४॥  
 रत्नकाञ्चनराशिं च दृष्ट्वा पर्वतसन्निधिम् । नानावर्णप्रभाजालसमुद्गतसुरायुधम् ॥१५५॥  
 विक्कमन्नयनाम्भोजमहावीनुकपूरित । कृतो विदिततृप्तान्त पद्मेन मुदितामना ॥१५६॥  
 प्राप्तो धारित्री पक्षी नायासीत्ती विना क्वचित् । निर्ग्रन्थवचन सर्वं कुर्वन्नुद्यतमानस ॥१५७॥  
 रम्यमाणापदेशोऽती सातथायुवनाश्रमे । पद्मलक्ष्मणमार्गेण रममाणोऽग्रमन्महाम् ॥१५८॥

इन्द्रियोंको व्यवस्थित कर आत्मध्यानमें उत्सुक करो और साधुओंकी भक्तिमें तत्पर होओ ॥१४७-१४९॥ मुनिराजके इस प्रकार कहने पर गृध्र पक्षीने अञ्जलि बोंध धार-धार शिर हिलाकर तथा मधुर शब्दका उच्चारण कर मुनिराजका उपदेश ग्रहण किया ॥१४६॥ 'विनीत आत्माको धारण करनेवाला यह श्रावक हम लोगोंका विनोद करनेवाला हो गया' यह कह कर मन्दहास्य करनेवाली सीताने उस पक्षीका दोनों हाथोंसे स्पर्श किया ॥१४७॥ तदनन्तर दोनों मुनियोंने राम आदिको लक्ष्य कर कहा कि अब आप लोगोंको इसकी रक्षा करना उचित है क्योंकि शान्तचित्तकी धारण करनेवाला यह वैचारा पक्षी कहीं जायगा ? ॥१४८॥ क्रूर प्राणियोंसे भरे हुए इस सचन वनमें तुम्हें इस सम्यग्दृष्टि पक्षीकी सदा रक्षा करनी चाहिये ॥१४९॥ तदनन्तर गुरुके वचन प्राप्त कर अतिशय स्नेहसे भरी सीताने उसके पालनकी चिन्ता अपने ऊपर ले उसे अनुगृहीत किया अर्थात् अपने पास ही रख लिया ॥१५०॥ पल्लवके समान कोमल स्पर्शवाले हाथासे उसका स्पर्श करती हुई विनयवती सीता ऐसी सुशोभित हो रही था माना गरुडका ही स्पर्श कर रही हो ॥१५१॥

तदनन्तर जिनका भ्रमण अनेक जीवोंका उपकार करनेवाला था ऐसे दोनों निर्ग्रन्थ साधु, राम आदिके द्वारा स्तुतिपूर्वक नमस्कार किये जाने पर अपने योग्य स्थान पर चले गये ॥१५२॥ आकाशमें उड़ते हुए वे दोनों महामुनि ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो दानधर्मरूपी समुद्रकी दो बड़ी लहरें ही हों ॥१५३॥ उसी समय एक मदीन्मत्त हाथीकी वशाकर तथा उस पर सवार हो लक्ष्मण शब्द सुनकर कुङ्कुम व्यप होते हुए आ पहुँचे ॥१५४॥ नाना वर्णकी प्रभाआके समूहसे जिसमें इन्द्रधनुष निकल रहा था ऐसी पर्वतके समान बहुत बड़ी रत्न तथा सुरणकी राशि देख कर जिनके नेत्ररमल विकसित हो रहे थे तथा जो अत्यधिक कीनुकसे चुक थे ऐसे लक्ष्मणको प्रसन्न हृदय रामने सन समाचार विदित कराया ॥१५५-१५६॥ जिसे रत्नत्रयका प्राप्ति हुई थी तथा जो मुनिराजके समस्त वचनोंका बड़ी तत्परतासे पालन करता था ऐसा वह पक्षी राम और सीताके जिना कहीं नहीं जाता था ॥१५७॥ अणुप्रताश्रममें स्थित सीता जिसे बार-बार मुनियोंके उपदेशका स्मरण कराता रहती थी ऐसा वह पक्षी राम लक्ष्मणके मार्गमें रमण करता हुआ पृथ्वी

धर्मस्य परयतोदार्यं यदस्मिन्नेव जन्मनि । शाकपत्रोपमो गृध्रो जातस्तामरसोपमः ॥१५६॥  
 पुरा योऽनेकमासादो दुर्गन्धोऽभूज्जुगुप्सितः । सोऽथ काञ्चनतुम्भाम् सुरभिः सुन्दरोऽभवत् ॥१६०॥  
 ऋचिद् वह्निशिवाकारः ऋचिद् वैदूर्यसन्निभः । ऋचिचार्माकरच्छायो हरिर्मन्गिरुचिः ऋचिन् ॥१६१॥  
 रामलक्ष्मणयोरमे स्थितोऽसौ बहुचादुकः । बुभुजे साधु सम्पन्नमस्य सातोपसाधितम् ॥१६२॥  
 चन्दनेन स दिग्धाहो हेमकिङ्किण्यलङ्कृतः । बिभ्राणः शकुन्ती रेजे रत्नांशुजटिलं शिरः ॥१६३॥  
 यस्मादणुजटास्तस्य विरेजू रत्नहेमजाः । जटायुरिति तेनासाधाहृतस्त्वैरितिप्रियः ॥१६४॥  
 जितहसमति कान्त चारुविभ्रमभूपितम् । समन्यपक्षिणो दृष्ट्वा भयवन्तो विसिस्मियुः ॥१६५॥  
 त्रिसन्ध्य सांतया साक वन्दनामकरोदसौ । भक्तिप्रहो जिनेन्द्राणां सिद्धानां योगिनां तथा ॥१६६॥  
 तत्र प्राति महाप्राप्ता जानकी करगाररा । अप्रमत्ता सदा रक्षां कुर्वन्ती धर्मवरसला ॥१६७॥

### उपजातवृत्तम्

भास्वादमानो निजयेध्वयासौ फलानि शुद्धान्यमृतोपमानि ।  
 जल प्रशस्त च पियन्नरग्ये बभूव नित्य सुविधिः पतत्रो ॥१६८॥  
 सतालशब्द जनकात्मजाया धर्माश्रयोच्चारितगीतिकायाम् ।  
 कृतानुगात्या पतिदेवरम्यां ननतं हृष्टो रविस्त्रजटायुः ॥१६९॥

इत्यार्षे रविपेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते जटायुपाख्यानं नामकचत्वारिंशत्तमं पर्व ॥४१॥

पर भ्रमण करता था ॥१५८॥ अहो ! धर्मका माहात्म्य देखो कि जो पक्षी इसी जन्ममें शाकपत्र के समान निष्प्रभ था वही कमलके समान सुन्दर हो गया ॥१५६॥ पहले जो अनेक प्रकारके भांसको खानेवाला, दुर्गन्धित एवं घृणाका पात्र था वही अब सुवर्णकलशमें स्थित जलके समान मनोज्ञ एवं सुन्दर हो गया ॥१६०॥ उसका आकार कहीं तो अग्निकी शिखाके समान था, कहीं नीलमणिके सदृश था, कहीं स्वर्णके समान कान्तिसे युक्त था और कहीं हरे मणिके तुल्य था ॥१६१॥ राम लक्ष्मणके आगे बैठा तथा अनेक प्रकारके मधुर शब्द कहनेवाला वह पक्षी सीताके द्वारा निर्मित उत्तम भोजन ग्रहण करता था ॥१६२॥ जिसका शरीर चन्दनसे लिप्त था, जो स्वर्ण निर्मित छोटी-छोटी घंटियोंसे अलङ्कृत था तथा जो रत्नोंकी किरणोंसे व्याप्त शिरको धारण कर रहा था ऐसा वह पक्षी अत्यधिक सुशोभित हो रहा था ॥१६३॥ यतश्च उसके शरीर पर रत्न तथा स्वर्णनिर्मित किरणरूपी जटाएँ सुशोभित हो रही थीं इसलिए राम आदि उसे 'जटायु' इस नामसे बुलाते थे । वह उन्हें अत्यन्त प्यारा था ॥१६४॥ जिसने हंसकी चालको जीत लिया था, जो स्वयं सुन्दर था और सुन्दर विलासोंसे जो युक्त था ऐसे उस जटायुको देखकर अन्य पक्षी भयभीत होते हुए आश्चर्यचकित रह जाते थे ॥१६५॥ वह भक्तिसे नम्रीभूत होकर तीनों संध्याओंमें सीताके साथ अरहन्त सिद्ध तथा निर्घन्थ साधुओंको नमस्कार करता था ॥१६६॥ धर्मसे स्नेह करनेवाली दयालु सीता बड़ी सावधानीसे उसकी रक्षा करती हुई सदा उस पर बहुत प्रेम रखती थी ॥१६७॥ इस प्रकार वह पक्षी अपनी इच्छानुसार शुद्ध तथा अमृतके समान स्वादिष्ट फलोंकी खाता और जङ्गलमें उत्तम जलको पीता हुआ निरन्तर उत्तम आचरण करता था ॥१६८॥ जब सीता तालका शब्द देती हुई धर्ममय गीतोंका उच्चारण करती थी और पति तथा देवर उसके स्वरमें स्वर मिलाकर साथ-साथ गाते थे तब सूर्यके समान कान्तिको धारण करनेवाला वह जटायु हर्षित हो नृत्य करता था ॥१६९॥

इस प्रकार आर्पणनामसे प्रसिद्ध रविपेणाचार्य कथित पद्मचरितमें जटायुका वर्णन करनेवाला इकतालीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥४१॥



## द्विचत्वारिंशत्तमं पर्व

पात्रदानप्रभावेण ससीता रामलक्ष्मणौ । इहेव रत्नहेमादि संप्लुक्तौ यभूवतु ॥१॥  
 ततश्चामीकरानेकभक्तिविन्याससुन्दरम् । सुस्तम्भवेदिकागर्भगृहसङ्गतमुन्नतम् ॥२॥  
 स्थूलमुक्ताफलस्रग्मिविराजत्पवनायनम् । बुद्बुदादशशूलमूषखण्डचन्द्रादिमण्डितम् ॥३॥  
 शयनासनवादित्रयवस्त्रगन्धादिप्रदितम् । चतुर्भिर्भारणैर्युक्त विमानप्रतिम रथम् ॥४॥  
 आरूढा विचरन्त्येते प्रतिघातविवर्जिता । जटायुमहिता रम्ये वने सत्ववर्ता नृणाम् ॥५॥  
 क्षत्रिहिन क्वचिन् पक्ष क्वचिन्मास मनोहरे । मयेप्सितकृतक्रीडा प्रदेशे तेऽव्रतस्थिरे ॥६॥  
 निवासमत्र कुर्मोऽत्र कुर्म ह्यभिलाषिण । महोरुनवशष्येच्छा विचेरुस्ते वन सुप्रम् ॥७॥  
 महानिर्भरगम्भारान् काश्चिदुच्चावचान् यदून् । उचुन्नपादपान् देशान् जम्बुद्वीप्य ते शनै ॥८॥  
 स्वेच्छया पर्यगन्तस्ते सिद्धा इव भयोन्मिता । मध्य दण्डककचस्य प्रविष्टा भारदु खदम् ॥९॥  
 विचित्रशिखरा यत्र हिमाद्रिगिरिसन्निभा । रम्या निर्भरनद्यश्च सुक्ताहारोपमा स्थिता ॥१०॥  
 अश्रुप्रेतितन्त्रिकाभिर्बद्रीभिर्विभीतकै । शिरापै कदलैर्लक्ष्मणैश्च ॥११॥  
 कदम्बैस्तिलत्रैर्लोध्रशोकेर्नीललोहितै । जम्बुभि पाण्डाभिश्च चूतैराघ्रातकै शुभै ॥१२॥  
 चम्पकै कर्णिकारैश्च सालैस्तालै प्रियङ्गुभि । सप्तपर्णैस्तमालैश्च नागैर्नन्दिभिरजुनै ॥१३॥  
 वेमरैश्चन्दनैर्नीपैर्भूर्जैर्हि गुलकैर्वटै । सितासितैरगुरुभि कुन्दै रम्भाभिरिन्द्रुदै ॥१४॥  
 पद्मकैर्मुचिलिन्दैश्च कुण्डलै पारिजातिकै । बन्धकै केतकाभिश्च मधुकै खदिरैस्तथा ॥१५॥

अथानन्तर पात्र दानके प्रभावसे सीता सहित राम लक्ष्मण इसी पर्यायमे रत्न तथा सुवर्णादि सपत्तिसे युक्त हो गये ॥१॥ तदनन्तर जो स्वर्णमयी अनेक खेल-शूटोके विन्याससे सुन्दर था, जो उत्तमोत्तम रम्भो वेदिका तथा गर्भगृहसे सहित था, ऊँचा था, जिसके भरोखे वडे उड़े मोतियोंकी मालासे सुरोभित थे, जो छोटे-छोटे गोले, दर्पण, फन्नुस, तथा खण्ड चन्द्र आदि सजावटकी सामग्रोसे अलङ्कृत था, शयन, आसन, वादित्र, वस्त्र तथा गन्ध आदिसे भरा था, जिसमे चार हाथी जुते थे और जो निमानके समान था ऐसे रथ पर सवार होकर ये सत्र द्विज, किराँ, प्रपणके, चटपट्टु पक्षीके, साश, साश, पैर्यराठी, पन्तुग्योके, पन्नको, हरण, कालेयाले, यन्त्रे, विचरण करते थे ॥२-५॥ वे उस मनोहर वनमे इच्छानुसार क्रीडा करते हुए कहीं एक दिन, कहीं एक पक्ष और कहीं एक माह ठहरते थे ॥६॥ 'हम यहाँ निरास करेंगे' 'यहाँ ठहरोगे' इस प्रकार कहते हुए वे किसी वडे खेलकी नई घास खानेकी इच्छाके समान वनमें सुप्त पूर्वक विचरण करते थे ॥७॥ जो वडे उड़े निर्भरोसे गम्भीर थे तथा जिनमे ऊँचे ऊँचे वृक्ष लग रहे थे ऐसे कितने ही ऊँचे नीचे प्रदेशोको पार कर वे घोरै घोरै जा रहे थे ॥८॥ सिद्धाके समान निर्भय हो स्वेच्छासे घूमते हुए वे, भीर मनुष्योंको भय देनेवाले दण्डक वनके उस मध्य भागमें प्रविष्ट हुए जहाँ हिमगिरिके समान विचित्र पर्वत थे तथा मोतियोंके हारके समान सुन्दर निर्भर और नदियों स्थित थीं ॥९-१०॥ जहाँका घन, पीपल, इमली, वैरी, बहेडे, शिरीष, केले, राल, अक्षरोट, देवदार, धी, कदम्ब, तिलक, लोभ, अशोक, नील और लाल रङ्गको धारण करनवाले जामुन, गुलान, आम, अवाढा, चम्पा, कनेर, सागौन, ताल, प्रियङ्गु, सप्तपर्ण, तमाल, नागकेशर, नन्दी, बीहा, बकीली, चन्दन, नीप, भोजपत्र, हिगुलक, वरगद, सफेद तथा काला अगुरु, कुन्द,

मदनैर्खदिरैर्निभ्यै खजूरैरुग्रकैस्तथा । नारिङ्गैर्मातुलिङ्गीभिर्द्राडिर्माभिस्तथासनै ॥१६॥  
 नालिकर्षा कपिरथैश्च रसैरामलकैश्चनै । शर्माहरीतकाभिश्च कोविदारैरगस्तिभि ॥१७॥  
 करञ्जनुष्टकालीयैरकचैरनमोदकै । कङ्कोलखगलवङ्गीभिर्मरिचाजातिभिस्तथा ॥१८॥  
 चविभिर्धातकीभिश्च कुप्यकैरतिमुक्तकै । पूरैस्तामूलवटलोभिरेलाभी रत्नचन्दनै ॥१९॥  
 वेतै श्यामलताभिश्च मेपथङ्गेर्हरिद्रुभि । पलाशै स्पन्दनैर्विल्वैश्चिरविल्वै समेथिकै ॥२०॥  
 चन्दनैरडुकैश्च शालमलावाजरीस्तथा । पुमिरन्ध्रैश्च भृङ्गिस्तदरुण्य विराजितम् ॥२१॥  
 सस्यैर्बहुप्रकारैश्च स्वयम्भूतै रसोत्तमै । पुण्ड्रेक्षुभिश्च विस्तीर्णा प्रवेशास्तस्य सङ्कुला ॥२२॥  
 चित्रपादपसद्दावैर्नानावहरीसमाकुलै । अशोभत वन वाढ द्वितीयमिव नन्दनम् ॥२३॥  
 मन्दमारतनिक्षिप्तै पद्मवैरतिकोमलै । ननर्तवाटवी तोषात् पद्माद्यागमजननः ॥२४॥  
 वायुतो ह्रियमाणेन रजसाभ्युत्थितेव च । आलिलिङ्गे च सद्गन्धवाहिना नित्ययायिना ॥२५॥  
 अगायदिव भृङ्गाणा ऋङ्गाणेन मनोहरम् । जहासेव भिन्न रम्य शैलनिर्भरशोकरै ॥२६॥  
 जावजीवकभेरुण्डहससारसकोकिला । मयूररयेनकुररा शुक्रकौशिकसारिका ॥२७॥  
 कपोतभृङ्गराजश्च भारद्वाजाद्यन्तथा । अरमन्त द्विजास्तस्मिन् प्रयुक्तकलनिस्वना ॥२८॥  
 कोलाहलेन रम्येण तद्वन तेन सम्भ्रमि । जगाद स्वागतमिव प्राप्तकर्तव्यदक्षिणम् ॥२९॥  
 कुत किं राजपुत्राति कस्मिन्नागच्छ साध्विति । इति-कोमलभास्या सज्जलपुत्रिव द्विजा ॥३०॥  
 सितासितारुणाभोजसन्धवैरतिनिर्मलै । सरोभिर्वीक्षितुमिव प्रवृत्त सुकुनूहलात् ॥३१॥  
 फलभारनतैरभ्रैर्नानामेव महादरम् । सुमोचानन्दनिश्वासमिव सद्गन्धवायुना ॥३२॥

रम्भा, इग्ना, पद्मक, मुचकुन्द, कुटिल, पारिजातक, दुपहरिया, केतकी, महुआ, खेर, मैना, सदिर, नीम, खजूर, छत्रक, नारंगी, विजौरै, अनार, असन, नारियल, कैंधा, रसोद, आँवला, शमी, हरड, कचनार, करञ्ज, कुष्ठ, कालीय, उत्कच, अजमोद, ककोल, दालचीनी, लोंग, मिरच, चमेली, चव्य, आँवला, कुप्यक, अतिमुक्तक, सुपारी, पान, इलायची, लालचन्दन, वेंत, श्यामलता, मेढासिंगी, हरिद्रु, पलाश, तेंदू, वेल, चिरोल, मेथी, चन्दन, अरडूक, सेंम, बीजसार, इनसे तथा इनके सिवाय अन्य वृक्षोंसे सुशोभित था ॥११-३१॥ उस वनके लम्बे चौड़े प्रदेश रम्य उत्पन्न हुए अनेक प्रकारके धान्यों तथा रसोले पौँडा और ईँटोंसे व्याप्त थे ॥२०॥ नाना प्रकारकी लताओंसे युक्त विविध वृक्षोंके समूहसे वह वन ठीक दूसरे नन्दनवनके समान सुशोभित हो रहा था ॥२२॥ मन्द-मन्द वायुसे हिलते हुए अत्यन्त कोमल किसलयोंसे वह अटवी ऐसी जान पडता थी मानो राम आदिके आगमनसे उत्पन्न हर्षसे नृत्य ही कर रही हो ॥२५॥ वायुके द्वारा हरण की हुई परागसे वह अटवी ऊपर उठी हुई सी जान पडती थी और उत्तम गन्धकी धारण करनेवाली वायु मानो उसका आलिङ्गन कर रही थी ॥२५॥ वह भ्रमरोंकी झुंझरसे ऐसी जान पडती थी मानो मनोहर गान ही गा रही हो और पहाडा निर्मरके उड़ते हुए जलकणोंसे ऐसी विदित होती थी मानो शुक्ल एव सुन्दर हास्य ही कर रही हो ॥२६॥ चकोर, भेरुण्ड, हस, सारस, कौकिला, मयूर, वाज, कुरर, तोता, उल्लूक, मैना, कवूतर, भृङ्गराज, तथा भारद्वाज आदि पक्षी मनोहर शब्द करते हुए उस अटवीमें क्रीडा करते थे ॥२७-२८॥ पक्षियोंके उस मधुर कोलाहलसे वह वन ऐसा जान पडता था मानो प्राप्त कार्यमें निपुण होनेसे सभ्रमके साथ सगका स्वागत ही कर रहा हो ॥२९॥ फलरव करते हुए पक्षी कोमलजाणासे मानो यही कह रहे थे कि हे साध्वि ! राजपुत्रि ! तुम कहाँसे आ रही हो और कहाँ आई हो ॥३०॥ सफेद, नीले तथा लाल कमलोसे व्याप्त अतिशय निर्मल सरोवरोंसे वह वन ऐसा जान पडता था मानो कुनूहल चरा देखनेके लिए उद्यत ही हुआ हो ॥३१॥ फलोंके भार से झुके हुए अन्न भागोंसे वह वन ऐसा

तत सौमनसाकार वन तद्वाच्य राधिव । जगाद् विक्रामोन्नलोचना जनकामनाम् ॥३३॥  
 वल्लभिर्गुणैकै स्तम्भै समासन्नैरमा नगा । सकुटुम्भा इवामान्ति प्रिये यच्छात्र लोचने ॥३४॥  
 प्रियङ्गुलविका परय सङ्गता वकुलोरसि । कान्तस्येव वरारोहा शक निर्भरसाह्वदम् ॥३५॥  
 चलता पल्लवेनेय सभ्रस्यप्रेण माधवी । परामृशति सौहार्दादिव चूतमनुत्तरात् ॥३६॥

छन्द. (?)

अथ मदालमे क्षण करा करेशुचोदित । मयुकरविघ्नितदलनिचय प्रविशति साते कमलवनम् ॥३७॥

उपजाति

वहन्नमो दर्पमुदारमुखैर्वह्नीकृशद् गवलीमुनाल ।  
 लालान्वितो वज्रसमेन धार भिन्ते विपाणैर्न लस्युराप्र ॥३८॥

आर्याच्छन्द

अमुमिन्द्रनालवर्णं विवरात्रियतिन्तूरतनुभागम् ।  
 परय मयूर दृष्ट्वा प्रविशन्तमहि भयाकुलितम् ॥३९॥

शार्दूलचिकीडितम्

परयामुथ महानुभावचरित मिहस्य सिंहवणे  
 रम्येऽस्मिन्नचले शुभामुन्नगतस्याराद्विकसिद्युते ।  
 य श्रुत्वा रथनादमुन्नतमना निद्रा विहाय क्षण  
 धीक्षयापाङ्कदशा विवृण्व्य शनकैर्भूयस्तथैव स्थित ॥४०॥

जान पडता था मानो उडे आदरसे राम आदिको नमस्कार ही कर रहा हो और सुगन्धि वायुसे ऐसा सुशोभित होता था मानो आनन्दके स्वासोच्छ्वास ही छोड़ रहा हो ॥३९॥

तत्रन्तर सौमनस वनके समान सुन्दर वनको देख देखकर रामने निकसित कमलके समान गिरेले हुए नेत्रोंको धारण करनेवाली सीतासे कहा कि हे प्रिये ! इधर देखो, ये वृक्ष लताआ तथा निम्नवर्ती शुभ्रमो और माडियोंसे ऐसे जान पडते हैं मानो कुटुम्भ सहित ही हा ॥३३-३४॥ वकुल वृक्षके वक्षस्थलसे लिपटी हुई इस प्रियङ्गु लताको देखो ! यह ऐसी जान पडती है मानो पतिने वक्षस्थलसे लिपटी प्रेम भरी सुन्दरी ही हो ॥३५॥ यह माधवीलता हिलते हुए परलपसे मानो सौहार्दके कारण ही आमका स्पर्श कर रही है ॥३६॥ हे सीते ! जिसके नेत्र मद्से आलस हैं, हस्तिनी जिसे प्रेरणा दे रही है और जिसने कलिकाओंके समूहको भ्रमरोसे रहित कर दिया है ऐसा यह हाथी कमल वनमें प्रवेश कर रहा है ॥३७॥ जो अत्यधिक गर्वको धारण कर रहा है, जो लीलासे सहित है, तथा जिसके गुणोंके अप्रमाण सुशोभित हैं ऐसा यह अत्यन्त नील भँसा धम्रके ममान सींगके द्वारा वामीके उच शिखरको भेद रहा है ॥३८॥ इधर देखो, इस साँपके शरीरका नहुत कुछ भाग निलसे बाहर निकल आया था फिर भी यह सामने इन्द्रनाल मण्डिने समान नीलवर्णीवाले मयूरकी देखकर भयभीत हो फिरसे उसी बिलमें प्रवेश कर रहा है ॥३९॥ हे सिंहके समान नेत्रोंको धारण करनेवाली तथा फैलती हुई कान्तिसे युक्त प्रिये ! हम मनोहर पर्वतपर गुहारे अप्रभागमें स्थित सिंहकी उदात्त चेष्टाने देखो जो इतना दृढ चित्त है कि रथना शब्द सुनकर क्षण भरके लिए निद्रा छोडता है और कटाक्षसे उसकी ओर देखकर

### यसन्ततिलकावृत्तम्

नानामृगचतजपानसुरक्तवक्त्रो दर्पोद्भुर ऋषिलनेत्रमरात्रिवक्त्रं ।  
मूर्धोपनीतलसदुज्ज्वलवालपुच्छो व्याघ्रो नखै खनति पापदमेप मूले ॥४१॥

### मन्दाक्रान्ता

अन्त कृत्वा शिशुगणमिमे कामिनाभि समेत  
दूरन्यस्तप्रचलनयना भूरिश सावधाना ।  
किञ्चिद्दूर्वाग्रहगचतुरा प्रान्तयाता कुरद्वा  
परयन्ति त्वा विपुलनयनालम्बिन कौतुकेन ॥४२॥

### आर्यावृत्तम्

सुन्दरि पश्य वराह दृष्टान्तरलग्नमुस्तमुन्नतसत्त्वम् ।  
अभिनवगृहीतपङ्क गच्छन्त मन्धर सघोणम् ॥४३॥

### चशस्थवृत्तम्

अय प्रयत्नादिव चित्रितागको विनातिवर्णैर्बहुभि सुलोचने ।  
भजत्यतिनाडनमर्भकै सम वनैकदेशे नृगभाजि चित्रक ॥४४॥

### दोधकवृत्तम्

रथेनयुवैष लघुभ्रमपक्षो दूरत एव निरूप्य समन्तात् ।  
स्वामितस्य पर शरभस्य स्तेनयति द्रुतमामिपमास्यात् ॥४५॥

### द्रुतविलम्बितवृत्तम्

कमलजालकराजितमस्तक ककुदमुन्नतमाचलित वहन् ।  
अयमुदात्तरवोऽत्र विराजते सुरभिपुत्रपतिरैरविभ्रम ॥४६॥

तथा धीरेसे जमुहाई लेकर फिर भी उसी तरह निर्भय बैठे हैं ॥४०॥ इधर नाना मृगाका रक्षि-  
पान करनेसे जिसका मुख अत्यन्त लाल हो रहा है, जो अहंकारसे फूल रहा है, जिसका मुख नेत्राकी  
पीली पीली क्रान्तिसे युक्त है, तथा चमकोले बालोंसे युक्त जिसकी पूँछ पीछेसे घूमकर मस्तकके  
समीप आ पहुँची है ऐसा यह व्याघ्र नाखूनोके द्वारा वृत्तके मूलभागको नाखूनासे खींच रहा है  
॥४१॥ जिन्हाने स्त्रियोंके साथ साथ अपने बच्चोंके समूहको धीचम कर रक्खा है, जिनके चञ्चलनेत्र  
बहुत दूर तक पड़ रहे हैं, जो अत्यधिक सावधान हैं, जो कुछ-कुछ दूर्वाके ग्रहण करनेमें चतुर हैं और  
कौतुक वश जिनके नेत्र अत्यन्त विशाल हो गये हैं ऐसे ये हरिण समीपमें आकर तुम्हें देख रहे हैं ॥४२॥  
हे सुन्दरि ! धीरे धीरे जाते हुए उस वराह को देखो, जिसकी दाढ़ीमें मोथा लग रहा है, जिसका  
बल अत्यन्त उन्नत है, जिसने अभी हाल नई कोचड़ अपने शरीरमें लगा रक्खी है, तथा जिसको  
नाक बहुत लम्बी है ॥४३॥ हे सुलोचने ! प्रयत्नके विना ही जिसका शरीर नाना प्रकारके वर्णोंसे  
चित्रित हो रहा है ऐसा यह चीता इस लृणग्रहलघुघनके एक देशमें अपने बच्चाके साथ अत्यधिक  
क्रीडा कर रहा है ॥४४॥ इधर जिसके पङ्क जल्दी जल्दी घूम रहे हैं ऐसा यह तरुण बाज पक्षी  
दूरसे ही सत्र ओर देगकर सोते हुए शरभके मुखसे बड़ा शीघ्रताके साथ मासको छीन रहा है  
॥४५॥ इधर जिसका मस्तक कमल जैसी आवर्तसे सुशोभित है, जो कुछ-कुछ हिलती हुई ऊँची  
काँदौरको घारण कर रहा है, जो विशाल शब्द कर रहा है तथा जो उत्तम विभ्रमसे सहित है

स्वच्छन्द

वचिदिदमतिघनवरनगकलित वचिदणुबहुविधतृणपरिनिचितम् ।  
वचिदपगतभयमृगपुरुपटल वचिदतिभययुतररहितगहनम् ॥४७॥

चण्डीचन्द्र.

वचिदुरमदगनपातितवृक्ष वचिदभिनवतरजालकयुक्तम् ।  
वचिदलिङ्गकलभृत्तरस्य वचिदतिस्वररवसम्भूतरुक्तम् ॥४८॥

प्रमाणिकावृत्तम्

वचिद्विभ्रान्तसत्त्वक वचिद्विभ्रन्धसत्त्वकम् । वचिद्विरत्रुगद्वर वचिद्विस्वस्तगद्वरम् ॥४९॥

तोष्टकचन्द्र.

अरुण धवल कपिल हरित वलित निभृत सरव विरवम् ।

विरल गहन सुभग विरस, तरण पृथुक विपम सुसमम् ॥५०॥

इद तदण्डकारण्य प्रसिद्ध दयिते वनम् । परयानेकविध कर्मप्रपञ्चमिव जानकि ॥५१॥

नगोऽथ दण्डरो नाम शृङ्गालीढामराहण । सुवक्त्रे यस्य नाम्नेद् दण्डकारण्यमुच्यते ॥५२॥

तुद्रया शिखरेष्वस्य<sup>३</sup> प्रमथा धातुजन्मना । रक्तया पुष्पपद्मेव प्रावृत्त भाति पुष्करम् ॥५३॥

अस्य गद्वरदेशेषु परश्रीपधिमहाशिखा । निर्वातस्थप्रदोषाभा दूरन्ध्वस्ततमरथया ॥५४॥

शालिनोच्छ्रन्द

अस्मिन्नुच्चैर्निरा मग्नतन्तस्नारारात्रा प्रावमद्वातसक्ता ।

सुकाकारान् सौकरानुत्सृजन्तो रानन्धते स्पष्टभासानुकारा ॥५५॥

ऐसा यह वैल सुशोभित हो रहा है ॥४६॥ कहीं तो यह वन उत्तमोत्तम सघन वृक्षोंसे युक्त है, कहीं छोटे-छोटे अनेक प्रकारके वृक्षासे व्याप्त है, कहीं निर्भय मृगोंके बड़े बड़े कुण्डोंसे सहित है, कहीं अत्यन्त भयभीत वृक्षमृगोंके लिए सघन भाडियोंसे युक्त है ॥४७॥ कहीं अतिशयमशोभन्त हाथियोंके द्वारा गिराये हुए वृक्षोंसे सहित है, कहीं नगीने वृक्षोंके समूहसे युक्त है, कहीं भ्रमर-समूहको मनोहारी मन्थारसे सु-बर है, कहीं अत्यन्त तीक्ष्ण शब्दोंसे भरा हुआ है ॥४८॥ कहीं प्राणी भयसे इधर-उधर घूम रहे हैं, कहीं निध्रन्त बैठे हैं, कहीं गुफाएँ जलसे रहित हैं, कहीं गुफाओंसे जल बह रहा है ॥४९॥ कहीं यह वन लाल है, कहीं सफेद है, कहीं पीला है, कहीं हरा है, कहीं मोड़ लिये हुए है, कहीं निश्चल है, कहीं शब्दसहित है, कहीं शब्दरहित है, कहीं विरल है, कहीं सघन है, कहीं सुन्दर है, कहीं नीरस—शुष्क है, कहीं तरुण—हराभरा है, कहीं विशाल है, कहीं विपम है, और कहीं अत्यन्त सम है ॥५०॥ हे प्रिये जानकि ! देखो यह प्रसिद्ध दण्डकारण्य कर्मोंके प्रपञ्चके समान अनेक प्रकारका हो रहा है ॥५१॥ हे सुमुखि ! शिखरोंके समूहसे आभाशरूपी आँगनको व्याप्त करनेवाला यह दण्डक नामका पर्वत है जिसके नामसे ही यह वन दण्डक वन कहलाता है ॥५२॥ इस पर्वतके शिखर पर गेरू आदि धातुओंसे उत्पन्न हो ऊँची उठनेवाली लाल लाल कान्तिसे आन्ध्रादित हुआ आकाश ऐसा जान पड़ता है मानो लाल फूलोंके समूहसे ही व्याप्त हो रहा हो ॥५३॥ इधर इस पर्वतकी गुफाओंमें दूरसे ही अन्धकारके समूहका नष्ट करनेवाली त्रेदोग्यमान औपधियोंकी घड़ी बड़ी शिराएँ वायुरहित स्थानमें स्थित दीपकोंके समान जान पड़ती हैं ॥५४॥ इधर पाषाण खण्डोंके बीच अत्यधिक शब्दके साथ बहृत ऊँचेसे पड़नेवाले ये भरने भातियोंके समान जलकणोंकी छोड़ते हुए सूर्यकी किरणोंके

१. पर्वत । २. शृङ्गे शालीढामराहण येन स । ३. शिखरेष्वस्य म० ।

## विद्युन्मालावृत्तम्

अस्योद्देशा शुभ्रा केचित् केचिर्नीला रक्ता केचित् ।  
दृश्यन्तेऽर्मी वृक्षैर्व्याप्ता प्रान्ते कान्तेऽप्यन्त कान्ता ॥५६॥

## प्रमाणिकाञ्चन्द्र

अना समीरणेरिते वरोष्टि वृत्तमस्तवे । विभान्ति गह्वरे लवा रये करा क्वचित् क्वचित् ॥५७॥

## रचिरावृत्तम्

अथ क्वचित् फलभरनम्रपादप क्वचित् स्थिते कुसुमपटैरलकृत ।  
क्वचित् खगै कलरवकारिभिश्चितो विभात्यल वरमुखि दण्डको गिरि ॥५८॥

## कोकिलकञ्चन्द्र

इह चमरीगणोऽयमतिदुष्टमृगोपगत प्रियतरवालिधि प्रियतमैरनुयातपथ ।  
अनतिविसृष्टमन्दगतिरिन्दुरुचि पुरुष प्रविशति गह्वर न पृथुकाहितचञ्चलकृ ॥५९॥

## स्त्रग्धरावृत्तम्

एषा नीला शिला स्यात्किमिरमुपचित कन्दराणा मुखेषु  
स्यादेतत् किं विहाय स्फटिकमणिशिला किन्तु वृष्टान्तरस्था ।  
एष स्याद् गण्डशैल किमुत गजपति सेवते गाढनिद्रा  
कान्ते चोणाधरेऽस्मिन्नतिसप्तशतया दुर्गमा भूविभागा ॥६०॥  
एषा क्रोञ्चरवा नाम नदा जगति विश्रुता । जल यस्या प्रिये वाध्र त्वदीयमिव चेष्टितम् ॥६१॥

## अश्वललितचञ्चन्द्र

शुद्धमरदीरथह्वरमल तस्थतरपुष्पमहितधरम् । भवशयनीयरूपसुभग सुकेशि जलमत्र राजतितराम् ॥६२॥

साथ मिलकर सुशोभित हो रहे हैं ॥५५॥ हे कान्ते ! इस पर्वतके कितने ही प्रदेश सफेद हैं, कितने ही नील हैं, कितने ही लाल हैं, और कितने ही वृक्षावलीसे व्याप्त हो कर अत्यन्त सुन्दर दिखाई देते हैं ॥५६॥ हे वरोष्टि ! सघनवनमें वायुसे हिलते हुए वृक्षोंके अग्रभाग पर कहीं-कहीं सूर्यकी किरणें ऐसी सुशोभित होती हैं मानो उसके लण्ड ही हों ॥५७॥ हे सुमुखि ! जो कहीं तो फलोंके भारसे झुके हुए वृक्षोंके समूहसे युक्त है, कहीं पडे हुए पुष्प रूपी वस्त्रोंसे सुशोभित है, और कहीं कलरव करनेवाले पक्षियोंसे व्याप्त है ऐसा यह दण्डक वन अत्यधिक सुशोभित हो रहा है ॥५८॥ इधर, जिसे अपनी पूँछ अधिक प्यारी है, जिसके बल्लभ पीछे पीछे दौड़े चले आ रहे हैं, जो चन्द्रमाके समान सफेद कान्तिका धारक है, और जो अपने बच्चों पर चञ्चल दृष्टि डाल रहा है ऐसा यह चमरीमृगोका समूह दुष्ट जीवोंके द्वारा उपद्रुत होने पर भी अपनी मन्दगतिको नहीं छोड़ रहा है तथा बाल दूट जानेके भयसे कठोर एव सघन भाडीमें प्रवेश नहीं कर रहा है ॥५९॥ हे कान्ते ! इधर इस पर्वतकी गुफाओंके आगे यह क्या नील शिला रसी है ? अथवा अन्धकारका समूह व्याप्त है, ? इधर यह वृक्षोंके मध्यमें आकाश स्थित है अथवा स्फटिक मणिकी शिला विद्यमान है ? और इधर यह काली चट्टान है या कोई बड़ा हाथी गाढ निद्राका सेवन कर रहा है इस तरह अत्यन्त सादृश्यके कारण इस पर्वतके भूभागों पर चलना कठिन जान पड़ता है ॥६०॥ हे प्रिये ! यह वह क्रोञ्चरवा नामकी जगत्-प्रसिद्ध नदी है कि जिसका जल तुम्हारी चेष्टाके समान अत्यन्त उज्ज्वल है ॥६१॥ हे सुकेशि ! जो मन्द-मन्द वायुसे प्रेरित होकर

भद्रकच्छुन्द

हसकुलाभकेनपटलप्रभिमन्त्रहृत्पुष्पपुञ्जकलितम् । भृङ्गनिनाददूरितवना क्वचिद् विकटसङ्कोपलचयै ॥६३॥

( ? ) छुन्द

प्रादसहस्रचारविपमा क्वचिच्च पुरुवेदसङ्गतजला ।

घोरतपस्विचेष्टिसमा क्वचिच्च वहति प्रशान्तगुरियम् ॥६४॥

पुष्पिताप्रावृत्तम्

परमशितिशिलौघरिमिन्न क्वचिदनुलग्नसितोपलाशयुक्तम् ।

जलमिह सितदन्नि भाति वाह हरिहरयोरित सङ्गत शरीरम् ॥६५॥

यंशपत्रपतितम्

रत्नशिलौघरिमनिचिता क्वचिदियममला भाति समुत्तर्कसमये दिग्दिग् सुरपते ।

मिन्नजला क्वचिच्च हग्नितैरुपलकरचयै शैवालशङ्खागमकृतो विरसयति खगाद् ॥६६॥

हरिणीवृत्तम्

कमलनिर्गेष्वत्र स्वेच्छकृतातिकूलस्वत निभृतपवनासङ्गात् कम्पेष्वभीष्णकृतभ्रमम् ।

परमसुरभेगन्धाद् वक्त्रात्तवेव समुद्रतान् मधुकपटल कान्ते र्जाव विभाति रजोरुणम् ॥६७॥

शियरिणीच्छुन्द

विपित पाताले क्वचिदिह जल मुक्तवहन पर गर्भारव वहति दयिते ते मन इव ।

क्वचिर्शैलाम्भोजैरनतिचलितै पद्चितैविभार्याचिच्छाया प्रवरचनितालोकनभवाम् ॥६८॥

लहरा रहा है, जो तटपर स्थित वृक्षांके पुष्प-समूहको धारण कर रहा है और जो कैलासके समान शुभलरूपसे सुन्दर है ऐसा इस नदीका जल अत्यन्त सुशोभित हो रहा है ॥६२॥ यह जल कहीं तो इस समूहके समान उज्ज्वल फेन समूहसे युक्त है, कहीं टूट-टूटकर गिरे हुए फूलोंके समूहसे सहित है, कहीं भ्रमरोंके समूहसे इसका कमल वन पूरित है और कहीं यह यज्ञ-बडे सपन पापाणोंके समूहसे उपलक्षित है ॥६३॥ यह नदी कहीं तो हजारों मगरमच्छोंके सवारसे विपम है, कहीं इसका जल अत्यन्त वेगसे सहित है और कहीं यह घोर तपस्वी साधुओंकी चेष्टाके समान अत्यन्त प्रशान्त भावसे वहती है ॥६४॥ हे शुक्ल दंतोंको धारण करनेवाली सीते ! इस नदीका जल एक ओर तो अत्यन्त नील शिला समूहकी किरणोंसे मिश्रित होकर नीला हो रहा है तो दूसरी ओर समीपमें स्थित सफेद पापागसण्डाकी किरणोंसे मिलकर सफेद हो रहा है इस तरह यह परस्पर मिले हुए हरिहर-नारायण और महादेवके शरीरके समान अत्यन्त सुशोभित हो रहा है ॥६५॥ लाल लाल शिलाखण्डोंकी किरणोंसे व्याप्त यह निर्मल नदी, कहीं तो सूर्योदयनालीन पूर्ण दिशाके समान सुशोभित हो रही है और कहीं हरे रंगके पापाण-राण्टकी किरणोंके समूहसे जलके मिश्रित होनेसे शैवालकी शङ्खासे आनेवाले पक्षियोंको विरस कर रही है ॥६६॥ हे कान्ते ! इधर निरन्तर चलनेवाली वायुके सङ्गसे हिलते हुए कमल समूह पर जो इन्द्रानुसार अत्यन्त मधुर शब्द कर रहा है, निरन्तर भ्रमण कर रहा है और उसकी परागसे जो लाल वर्ण हो रहा है ऐसा भ्रमरोंका समूह तुम्हारे गुप्तसे निकली सुगन्धिके समान उच्छ्रित सुगन्धिसे उन्मत्त हुआ अत्यधिक सुशोभित हो रहा है ॥६७॥ हे दयिते ! जो अतिशय स्वच्छ

१. ६२ तमं श्लोकं अश्वत्थिलितच्छुन्दस पाठद्वयम् । ६३ तमे च श्लोके भद्रकच्छुन्दस पाठद्वयम् । उभयत्रार्थं एव श्लोकं विद्यते । अथवा उभयार्थान्ने उपजातिच्छुन्दा भवति । किन्तु विभिन्नजातिपूषजाति वृत्तप्राया न दृश्यते । २. लोचनयुवम् म० ।

## चतुष्पदिकावृत्तम्

अत्र विभाति व्योमगवृन्द बहुत्रिधजलभववनकृतचरणम् ।  
 प्रेमनिबद्ध तारविराव षड्विदतिमदवशपरिचितकलहम् ॥६६॥  
 सैकतमस्या राजति चेद् सवनितखगकुलकृतपदपदवि ।  
 खजघनस्य प्राप्तसुसमन्त्र गतघनसुरपथशशधरवदने ॥७०॥

## मत्तमयूरच्छन्दः

एषा यातानेकविलासाकुलिताम्बुस्तोयाधीश षोडशरभूरतिकान्ता ।  
 तद्व्यचारस्फातगुणीष शुभचेष्ट विष्पसुन्दरमुत्तमशोला भरतेशम् ॥७१॥

## रचिरावृत्तम्

इमे प्रिये फलकुसुमैरलङ्कृतास्तटीरहो विविधविहङ्गसङ्कुला ।  
 निरन्तरा सज्जलघनौघसन्निभा इमामिता रतिमिव कर्तुमावधो ॥७२॥

## अपरघन्त्रच्छन्द

इति निगदति राघवोत्तमे परमविचित्रपदार्थसङ्गतम् ।  
 प्रमदभरवशगता सता जनकसुता निजगाद सादरम् ॥७३॥

## ग्रहर्षिणोवृत्तम्

नद्येषा विमलजला तरङ्गरम्या हसाद्यै खगनिबहै कृताभिलाषा ।  
 एतस्या प्रियतम ते मनोगत चेतोयेऽस्या किमिति रतिघृण न कुर्म ॥७४॥

हे तथा वहाव छोडकर पाताल तक भरा है ऐसा इस नदीका जल कहीं तो तुम्हारे मनके समान परम गान्भीर्यको धारण कर रहा है और कहीं भ्रमरोंसे व्याप्त तथा कुल-कुल द्रिलते हुए नील कमलासे उत्तम स्त्रीके देखनेसे समुत्पन्न नेत्रोंकी शोभा धारण कर रहा है ॥६६॥ इधर कहीं जो नाना प्रकारके कमलरनाम विचरण कर रहा है, प्रेमसे युक्त है, उष शब्द कर रहा है और तीव्र मद्से विवश हो जो परस्पर कलह कर रहा है ऐसा पक्षियोंका समूह सुशोभित हो रहा है ॥६६॥ मेघरहित आकाशमें विद्यमान चन्द्रमाके समान उज्ज्वल मुखको धारण करनेवाली हे प्रिये ! इधर जिस पर स्त्रियों सहित ऋषी जा करनेवाले पक्षियोंके समूहने अपने चरण चिह्न बना रखे हैं ऐसा इस नदीका यह बालुमय तट तुम्हारे नितम्बस्थलकी सफरता धारण कर रहा है ॥७०॥ जिस प्रकार अनेक उत्तम विलासां—दावभाव रूप चेष्टाआसे सहित तरङ्गके समान उत्तम भीहोंसे युक्त एव उत्तम शीलको धारण करनेवाली सुभद्रा सुन्दर एवं विभूत गुणसमूहसे युक्त, शुभ चेष्टाआके धारक तथा ससोरभे सर्वसुन्दर भरत चक्रवर्तीको प्राप्त हुई थी उसी प्रकार अनेक विलासां—पक्षियोंके सचारसे युक्त जलको धारण करनेवाली, भीहों के समान उत्तम तरङ्गोंसे युक्त, अतिशय मनोहर यह नदी, अत्यन्त सुन्दर तथा विभूत गुण समूहसे सहित शुभ चेष्टासे युक्त एवं जगत्सुन्दर लवणसमुद्रको प्राप्त हुई है ॥७१॥ हे प्रिये ! जो फल और फूलोंसे अलङ्कृत हैं, नाना प्रकारके पक्षियोंसे व्याप्त हैं, निरन्तर हैं तथा जलसे भरे मेघ समूहके समान जान पड़ते हैं ऐसे ये किनारेके वृक्ष हम दोनोंको प्रीति उत्पन्न करनेके लिए ही मानो इस नदी कूलमें प्राप्त हुए हैं ॥७२॥ इस प्रकार जब रामने अत्यन्त विचित्र शब्द तथा अर्थसे सहित घचन पढ़े तब हर्षित होयी हुई सीताने आदरपूर्णक पहा ॥७३॥ कि हे प्रियतम ! यह नदी विमल जलसे भरी है, लहरोंसे रमणीय है, हंसादि पक्षियोंके समूह इसमें इच्छानुसार ऋषी



दियोगिनीच्छन्दः

अथ राजमुनासमीरित तद्वाक्यं राघवगोत्रचन्द्रमाः ।  
अनुजानुगतोऽभिनन्दनात् भेजे रम्यभुव रमालयात् ॥७५॥  
पूर्वं चक्रे लक्ष्मीनाथः स्नपनमभिनवरुतगजपतिरनपथपरिचितश्रमप्रतिनोदनम् ।  
तस्मादूर्ध्वं नानास्वादप्रवरकिसलयकुसुमसमुच्चयमुचितां च परिक्रियाम् ॥७६॥

( ? )

पश्चात् स्रोतः संसत्ताम्रट्टमनिवहपरिचलनकरणवरमहितमतुलं विचेष्टितमोप्सितम् ।  
रामेणामा स्नानुं सक्तो विविधजलविहृतिविषयपरमविधिसमुपचितं गुणाकरमानसः ॥७७॥

पृथ्वीवृत्तम्

सफेनवलया लसत्प्रकटवीचिमालाकुला विमर्दितसितासितारुणपयोजपत्राचिता ।  
समुद्गतफलस्वनातिरहसङ्गमासेविता सम रघुकुलेन्दुना रतिमिवाकरोदापगा ॥७८॥

दियोगिनीवृत्तम्

विनिमग्ध्य सुदूरयायिना विसिनोत्तण्डतिरोहितामना ।  
पुनराशुसमागामाश्रिता रघुपुत्रेण रता नृपा मजा ॥७९॥  
मुक्त्वा नानाहृत्यासद्ग कुसुमवनचरणत्ररजोविराजिगरुद्भृतम् ।  
गत्वा क्षिप्रं तारोदेशं स्वरितकृतविविधरसिताः पुरोगतयोपितः ॥८०॥  
तेषां द्रष्टुं सक्ताः श्रेष्ठामपरनिपथगमनरहित विधाय मनो भ्रुशम् ।  
तियंशोऽपि स्रोते रम्य परुषहृतिरहितमनसो विदन्ति समीहितम् ॥८१॥

कर रहे हैं और आपका मन भी इसमें लग रहा है तो इसके जलमें हम लोग भी क्यों नहीं  
क्षणभर व्रीडा करें ॥५४॥

### पुष्पिताप्रावृत्तम्

अतिमधुररव करामिघातैर्महजरवादिपि सुन्दर विचित्रम् ।

अनुगतदयितो रघुप्रधान सलिलमवादयदन्वित सुगीत्या ॥२२॥

परितोऽकरोद्भ्रमगमस्य ज उरमगसक्तचेतसोदारचतुरकरणेऽनुगतक्रियस्य <sup>१</sup>हलहेतेर्लक्ष्मण ।

अतिवेगवान् पुनरपेनजवनिपुणचारत परो भ्रातृगुणनिरतथा परम समुद्रवचापलक्षित ॥२३॥

### मालिनीवृत्तम्

इति सुविमललाल स्वेच्छयाभोविहार प्रमदमुपनयन्त तारभाजा मृगाणाम् ।

रघुपतिरनुभूय भ्रातृदारानुयातो गजपतिरिव तीर सेवितु सम्प्रवृत्त ॥२४॥

### वशस्यवृत्तम्

शरारयात च विधाय वर्तन महाप्रशस्तैर्वनजन्मवस्तुभि ।

स्थिता लतामण्डपरुद्धभास्करे सुरा इवामा कृतचित्रसङ्घा ॥२५॥

सीतापतिस्ततोऽवोचदिति विश्रद्ध्यमानस । जगयुर्मूर्धकरया सातयाऽलङ्कृतान्तिक ॥२६॥

सन्धस्मिन् विविधा भ्रातृदुमा स्वादुफलान्विता । सरित स्वच्छतोयाश्च मण्डपाश्च लतामका ॥२७॥

अनेकरत्नसम्पूर्णा दण्डकोऽय महागिरि । प्रदेशैर्विविधैर्युक्त परकाढनकोचितै ॥२८॥

उपकण्ठेऽस्य नगर विदुभ्य सुमनोहरम् । नैजिकावर्नसम्भूता गृह्णीमो महिपास्तथा ॥२९॥

अस्मिन्नगोचरेऽन्येषामरण्येऽयत्सुन्दरे । विषयावासन कुर्म परमा धृतिरत्र मे ॥३०॥

<sup>२</sup>स्वस्मिन्निहितचेतस्के नून शोकप्रशाकृते । <sup>३</sup>स्वहितै स्वजनै सर्वै परिवर्गसमन्वितै ॥३१॥

समफते हैं—जानते हैं ॥२०—२१॥ तदनन्तर रामने सीताके साथ साथ उत्तम गीत गाते हुए हथे लियाके आघातसे जलका बाजा बजाया । उस जलवाद्यका शब्द मृदङ्गके शब्दसे भी अधिक मधुर सुन्दर और विचित्र था ॥२२॥ उस समय रामका चित्त जलक्रोडामे आसक्त था तथा वे स्वयं नाना प्रकारकी उत्तम चतुर चेष्टाआके करनेमें तत्पर थे । भाईके स्नेहसे भरे एव समुद्रपोष धनुषसे सहित लक्ष्मण उनके चारों ओर चक्कर लगा रहे थे । यद्यपि लक्ष्मण अत्यन्त वेगसे युक्त थे तो भी उस समय वेगको दूरकर सुन्दर चालके चलनेमें तत्पर थे ॥२३॥ इस प्रकार उज्ज्वल लीलाको धारण करनेवाले राम भाई और रत्नोंके साथ, तटपर स्थित मृगाको हर्ष उपजानेवाली जलक्रीडा इच्छानुसार कर गजराजके समान किनारे पर आनेके लिए उद्यत हुए ॥२४॥ स्नानके बाद वनमें उत्पन्न हुई अतिशय श्रेष्ठ वस्तुओंके द्वारा शरीरकृति अर्थात् भोजन कर वे अनेक प्रकारका कथाएँ करते हुए जहाँ लताआके मण्डपसे सूर्यका संचार रुक गया था ऐसे दण्डक वनमें देवोंके समान आनन्दसे बैठ गये ॥२५॥ तदनन्तर जटायुके मस्तक पर हाथ रखे हुई सीता जिनके पास बैठी थी ऐसे राम निश्चिन्त चित्त हो इस प्रकार बोले ॥२६॥ कि हे भाई ! यहाँ स्वादिष्ट फलोंसे युक्त नाना प्रकारके वृक्ष हैं, स्वच्छ जलसे भरी नदियाँ हैं और लताओंसे निर्मित नाना मण्डप हैं ॥२७॥ यह दण्डक नामका महापर्वत अनेक रत्नासे परिपूर्ण तथा उत्तम क्रीडाके योग्य नाना प्रदेशोंसे युक्त है ॥२८॥ हम लोग इस पर्वतके समीप अत्यन्त मनोहर नगर बनायें और वनमें उत्पन्न हुई पोषण करनेवाली अनेक भैंसे रख ले ॥२९॥ जहाँ दूसरोका आना कठिन है ऐसे इस अत्यन्त सुन्दर वनमें हम लोग देश बसायें क्योंकि यहाँ मुझे बड़ा सन्तोष हो रहा है ॥३०॥ जिनका चित्त हम लोगमें लग रहा है और जो निरन्तर शोकके वशीभूत रहती हैं ऐसी अपनी माताआको, अपना हित करनेवाले समस्त परिकर एव परिवारके

वज्रानय जनन्यां नौ स्वरित न न नाथवा । तिष्ठ सुन्दर नैव मे मानस शुद्धिमश्नुते ॥६२॥  
स्वयमेव गमिष्यामि शरत्समयसङ्गमे । प्रतिजाप्रद्ववान् सातामिह स्थास्यति यत्नवान् ॥६३॥  
ततो लक्ष्मीधरे नम्रे प्रस्थितेऽवस्थिते तथा । प्रेमाद्रीकृतचेतस्क पुन पद्मो जगाविति ॥६४॥  
समयेऽस्मिन्नतिक्रान्ते द्वािसमास्करदारणे । प्राप्नोष्यन्तमय भोम काल सम्प्रति जालद् ॥६५॥  
धुन्ध्याकृपारनिर्घोषाश्रलाञ्जननगोपमा । दिशोऽन्धकारयन्त्येते विद्युद्गन्तो बलाहका ॥६६॥  
निरन्तर तिरोधाय गगन घनविप्रहा । मुञ्चन्ति क यथा देवा रत्नराशिं तिनोद्भवे ॥६७॥

### उपजातिवृत्तम्

विधाय तुहानचलान् महान्तो धाराभिस्त्वैर्ध्वनय पयोदा ।  
नभोद्गणेऽर्मा निभृत चरन्त चणप्रभासद्गमिनो विभान्ति ॥६८॥

### धंशस्थवृत्ताम्

पयोमुच केचिदमी विषाण्डुरा समीरिता वेगवता नभम्बता ।  
भ्रमन्ति निष्पातममयतामना मनोविशेषा इव यौवनध्रिता ॥६९॥  
अथ सस्यपुत्र मुक्त्वा मेघा भूश्रुति वर्षति । अनिश्चितविशेष सद् कुत्रात्रे द्विर्णो यथा ॥१००॥

### मालिनीवृत्तम्

अतिचवमिह कारे सिन्धव्र सम्प्रवृत्ता विपमतमविहारोदारपङ्का धरित्रा ।  
जलपरिमलशोतो वाति चण्डश्च वायुर्न तव गमनयुक्त तेन मन्ये सुभावं ॥१०१॥

साथ-जाओ शीघ्र ही ले आओ अथवा नहीं-नहीं ठहरो, यह ठीक नहीं है इसमें मेरा मन  
शुद्धताको प्राप्त नहीं हो रहा है ॥६१-६२॥ शरद् ऋतु आने पर मैं स्वयं जाऊंगा, तुम सीताके  
प्रति सावधान रहकर यत्न सहित यहीं ठहरना ॥६३॥ तदनन्तर रामकी पहली बात सुनकर  
लक्ष्मण बड़ी नम्रतासे जाने लगे थे पर दूसरी बात सुनकर रुक गये । उसी समय जिनका चित्त  
प्रेमसे आर्द्र हो रहा था ऐसे रामने पुन कहा कि देदीप्यमान सूर्यसे दारुण यह ग्रीष्म काल तो  
व्यतीत हुआ अथ यह अत्यन्त भयकर वर्षा काल उपस्थित हुआ है ॥६४-६५॥ जो क्षीमको  
प्राप्त हुए समुद्रके समान गर्जना कर रहे हैं तथा जो चलते फिरते अञ्जनगिरिके समान जान  
पड़ते हैं ऐसे त्रिजलीसे युक्त ये मेघ विशाओको अन्धकारसे युक्त कर रहे हैं ॥६६॥ जिस प्रकार  
जिनेन्द्र भगवान्के जन्मके समय देव रत्नराशिको वर्षा करते हैं उसी प्रकार मेघोंका शरीर धारण  
करनेवाले देव निरन्तर रूपसे आकाशको आच्छादित कर जल छोड़ रहे हैं—पानी बरसा रहे  
हैं ॥६७॥ जो स्वयं महान् हैं, अत्यधिक गर्जना करनेवाले हैं, जो अपनी मोटी धाराओंसे पर्वतोंको  
और भी अधिक उन्नत कर रहे हैं, जो आकाशाङ्गणमें निरन्तर विचरण कर रहे हैं तथा जिनमें  
त्रिजली चमक रही है ऐसे ये मेघ अत्यधिक मुशोभित हो रहे हैं ॥६८॥ वेगशाली वायुके द्वारा  
प्रेरित ये कितने ही सकेद मेघ असयमी मनुष्योंके तर्ण हृदयोंके समान इधर-उधर घूम रहे हैं  
॥६९॥ जिस प्रकार विशेषताका निश्चय नहीं करनेवाला घनाह्व मनुष्य बुपात्रके लिए धन देता  
है उमी प्रकार यह मेघ धान्यकी भूमि छोड़कर पर्वत पर पानी बरसा रहा है ॥१००॥ इस  
समय घडे वेगसे नदियों वहने लगी हैं, अत्यधिक कीचडसे युक्त हो जानेके कारण पृथिवी पर  
निहार करना दुर्भर हो गया है और जलके सम्बन्धसे शीतल तीक्ष्ण वायु चलने लगी है इसलिए

इति निगदति पद्मे केकयीसूनुरुचे  
 प्रवदसि यदधीशस्त्वं तधाहं करोमि ।  
 विविधरसकथाभिः सुन्दरे स्वाश्रये ते  
 रविपरिचयमुक्तं कालमस्थुः सुखेन ॥१०२॥

इत्यार्षे रविपेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते दण्डकारण्यनिवासाभिधानं  
 नाम द्विचत्वारिंशत्तमं पर्व ॥४२॥



हे भद्र ! तुम्हारा जाना ठीक नहीं है ॥१०१॥ इस प्रकार रामके कहने पर लक्ष्मण बोले कि आप स्वामी हो जैसा कहते हो वैसा ही मैं करता हूँ । इस तरह अपने सुन्दर निवास स्थलमें वे नाना प्रकारकी स्नेहपूर्ण कथाएँ करते हुए सूर्यके परिचयसे रहित वर्षा काल तक सुखसे रहे ॥१०२॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध रविपेणाचार्य द्वारा कथित, पद्मचरितमें दण्डक वनमें निवासका वर्णन करनेवाला बयालीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥४२॥



## त्रिचत्वारिंशत्तमं पत्र

सत शरदनुनिचा शरदाङ्कपरिभि । घनौघ विशदश्रके<sup>१</sup> राज्यमात्रान्तविष्टप ॥१॥  
 विक्रमपुष्पपङ्कतात् पादपान् रितग्वचेतय । अलङ्कारोत्तमास्तस्य जगृहु कङ्कुरदना ॥२॥  
 जामूतमलनिर्मुक्त भिन्नाञ्जनमद्युति । अभुनेव चिर शीत रराज गगनाङ्गणम् ॥३॥  
 प्रावृट्कालगत्रा मेघकलशैर्धरिणाश्रियम् । अभिपिच्य गत कापि विद्युक्छाविराजित ॥४॥  
 चिरात् कमलिनागेह प्राप्य<sup>२</sup> पक्षभृता गणा । उद्भूतमधुरालापाम कामप्यापु सुखामिकाम् ॥५॥  
 मिन्धव स्वच्छकालाला<sup>३</sup> उन्मत्तापुलिना पराम् । कान्तिर्मायु समासाद्य शरत्पमथकामुक्म् ॥६॥  
 वर्षावातविमुक्तानि चिराप्राप्य सुखासिकाम् । काननानि व्यराजन्त सङ्गतानाव निद्रया ॥७॥  
 सरासि पङ्कताङ्गानि सम शोभस्समुत्थितै । पादपं पक्षिनादेन समालापमिवाभजन् ॥८॥  
 नानापुष्पकृतामोदा रजनीविमलाम्बरा । मृगाङ्कतिलक भेजे सुकालेशमिवोपता ॥९॥  
 केतकीसूतिरजमा पाण्डुरीकृतविग्रह । वचो समारणो मन्द मद्ययन् कामिनाजनम् ॥१०॥  
 इति प्रसन्नता प्राप्ते काल सासाहविष्टपे । मृगेन्द्रगतिरखिलविज्जमैकमहारस ॥११॥  
 लब्धानुगमन ज्येष्ठादाशानिहितवाचण । कदाचिल्लक्ष्मणा भ्राम्यन्नेककस्तद्वनान्तिकम् ॥१२॥  
 भञ्जिद्रामर गन्ध विनातपवनाङ्गतम् । अचिन्तयच्च कस्यैव भवेद्भ्रान्तो मनोहर ॥१३॥

अथानन्तर उज्ज्वल शरद् ऋतु, चन्द्रमाकी किरण रूपी वाणोंके द्वारा मेघसमूहको जीत कर समस्त विश्वमें व्याप्त होती हुई राज्य करने लगी ॥१॥ जिनका चित्त स्नेहसे भर रहा था ऐसी दिशा रूपी स्त्रियाने उस शरद् ऋतुके स्वागतके लिए ही मानो खिले हुए पुष्पसमूहसे सुशोभित वृक्ष रूपी उत्तमोत्तम अलंकार धारण किये थे ॥२॥ मेघरूपी मलसे रहित आकाश रूपी आगम, मर्दित अञ्जनके समान श्यामवर्ण हो ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो बहुत देर तक पानीसे धुल जानेके कारण ही स्वच्छ हो गया है ॥३॥ वर्षा काल रूपी हाथी, मेघरूपी कलशोंके द्वारा पृथिवी रूपी लक्ष्मणा अभिषेक कर बिजली रूपी कक्षाआम सुशोभित होता हुआ जान पड़ता है कहीं चला गया था ॥४॥ भ्रमराके समूह बहुत समय बाद कमलिनीके घर जा कर मधुरालाप करते हुए सुखसे बैठे थे ॥५॥ जिनके पुलिन धारे धारे उन्मत्त हो रहे हैं ऐसी स्वच्छजलस भरी नदियों शरत्कालरूपी वल्लभनों पा कर परम कान्तिको प्राप्त हो रहीं थीं ॥६॥ वर्षा वालकी तीक्ष्ण वायुसे रहित वन चिरकाल बाद मुलसे बैठकर ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो निद्रासे सगत ही थे—नींद ही ले रहे थे ॥७॥ कमलोंसे युक्त सरोवर तटा पर उत्पन्न हुए वृक्षाके साथ पक्षियोंके शब्दके वहाने मानो वार्तालाप ही कर रहे थे ॥८॥ जिसने नाना प्रकारके फूलोंकी सुगन्धि धारण की थी तथा जो आकाश रूपी स्वच्छ वरत्से सुशोभित थी ऐसी रात्रि रूपी म्ना उत्तमकाल रूपी पतिको पाकर मानो चन्द्रमा रूपी तिलकको धारण कर रहा था ॥९॥ केतकीके फूलोंसे उत्पन्न परागके द्वारा जिसका शरीर शुक्लवर्ण हा रहा था ऐसी वायु कामिनीजनाको उन्मत्त करती हुई धारे-धीरे वह रही थी ॥१०॥ इस प्रकार जिसमें समस्त संसार नन्माहसे युक्त था ऐसे उस शरत्कालके प्रसन्नताको प्राप्त होने पर सिंहके समान निर्भय विचरने वाले महापराजमी लक्ष्मण बड़े भाई रामसे आक्षा प्राप्त कर दिशाआकी ओर दृष्टि डालते हुए किसी समय अरेले ही उस दृष्टक वनके समीप घूम रहे थे ॥११-१२॥ उसी समय उन्होंने तिनकी पवनके द्वारा लाई हुई दिव्य सुगन्धि सूँघा । उसे सूँघते ही वे विचार करने लगे

पादपाना क्रिमेतेषा स्फुटकुसुमधारिणाम् । आहोस्विन्मम देहस्य कुमुमोत्करशायिन ॥१४॥  
 वैदेह्या सङ्गतो राम किमुतोपरि तिष्ठति । विना कश्चि समापातो भवेद्त्र त्रिविष्टपा' ॥१५॥  
 ततो भगधराजेन्द्र पप्रच्छ ध्रमणोत्तमम् । भगवन् कस्य गन्धोऽसौ चक्रे विस्मयन हरे ३ ॥१६॥  
 ततो गणधरोऽशोचनज्ञानलोकविचेष्टित । सन्देहतिमिरादित्य पापधुलीसमीरण' ॥१७॥  
 द्विधापस्य जिनेन्द्रस्य धुनिवाससमागमे । विद्याधराय विद्वाय याताय शरण विभुम् ॥१८॥  
 राक्षसानामाशेन महाभामेन धामता । अम्भादवाहनायासाःकूपयेयुदितो वर ॥१९॥  
 विपुले राक्षसद्रापे त्रिष्टु नाम पर्वतम् । मेघवाहनविभ्रक्त्यो गच्छ दक्षिणसागरे ॥२०॥  
 जम्बूद्वीपस्य जगतामिमामाश्रित्य दक्षिणम् । लङ्कैति नगरी तत्र रक्षोभिनिवेशिता ॥२१॥  
 रहस्यमिदमेक च विद्याधर पर शृणु । जम्बूभरतवर्षस्य दक्षिणाशा समाश्रयत् ॥२२॥  
 आश्रयित्वोत्तर तार लवणस्य महोदधे । वसुन्वरोदरस्थानस्वभावापितमायतम् ॥२३॥  
 याजनस्थायम भाग दण्डकाद्रो गुहाश्रयम् । अधोग वा महाद्वार प्रविश्य मणितोरणम् ॥२४॥  
 अलङ्कारोदय नाम स्थित पुरमनुत्तमम् । स्थानायशतधर्मस्थ दिव्यदेश निरीच्यते ॥२५॥  
 नानाप्रकाररत्नाशुमन्तानपरिराचितम् । विस्मयोपादाने शक्तमपि त्रिदिवसन्ननाम् ॥२६॥  
 अप्रतर्क्य गगनगैर्दुर्गं विद्याविब्रजितै । सर्वकामगुणोपेत विचित्रालयसङ्कुलम् ॥२७॥  
 परचक्रसमाप्तान्तो यद्यापसु कदाचन । भवेद्दुर्गं समाश्रय्य तिष्ठेत्तव निर्मयस्तत ॥२८॥  
 द्युत्तस्तेन यातोऽसौ यो विद्याधरवाल्क । लङ्कापुरीमभूत्समात् सन्तानोऽनेकपुङ्गव ॥२९॥

कि यह मनोहर गन्ध किसकी होनी चाहिए ? ॥१३॥ क्या यह गन्ध विकसित फूलों का धारण करने वाले इन वृक्षों का है अथवा पुष्पसमूह पर शयन करने वाले मेरे शरीर का है ? ॥१४॥ अथवा उपर सीताके साथ श्रीराम विराजमान हैं ? या कोई देव यहाँ आया है ? ॥१५॥

तदनन्तर भगवद्देशके सम्राट् राजा श्रेणिकने गीतम स्वामीसे पूछ कि हे भगवन् ! वह किसकी गन्ध थी जिसने लक्ष्मणको आश्चर्य उत्पन्न किया था ॥१६॥ तदनन्तर लोकाकी चेष्टाओं को जानने वाले, सदेह रूपी अन्धकारको नष्ट करनेके लिए सूर्य एव पाप रूपी धूलिको उड़ानेके लिए वायु स्वरूप गणधर भगवान् बोले ॥१७॥ कि द्वितीय जिनेन्द्र श्री अजितनाथके समवसरण मे मेघवाहन नामका विद्याधर भयभीत हो कर प्रभुकी शरणमे आया था । उस समय राक्षसोंके अधिपति बुद्धिमान महाभामने करुणा वश मेघवाहनके लिए इस प्रकार वर दिया था ॥१८-१९॥ कि हे मेघवाहन । दक्षिण समुद्रमे एक विशाल राक्षस द्वीप है उसी द्वीपमें त्रिष्टु नामका पर्वत है सो तू निश्चिन्त हो कर उसी त्रिष्टु पर्वत पर चला जा । यहाँ जम्बूद्वीपकी जगती ( वेदिका ) का आश्रय कर दक्षिण दिशामें राक्षसाने एक लङ्का नामकी नगरी बसाई है । वहाँ ही तू निवास कर । हे विद्याधर ! इसके साथ ही एक रहस्य-गुप्त मार्ग और सुन । जम्बूद्वीप सम्बन्धी भरत क्षेत्रकी दक्षिण दिशामें लवण समुद्रके उत्तर तटका आश्रय कर पृथिवीके भीतर एक लम्बा चौड़ा स्वाभाविक स्थान है जो योजनके आठवें भाग विस्तृत है । दण्डक पर्वतके गुफाद्वारसे नीचे जाने पर मणिमय तोरणासे देदीप्मान एक महाद्वार मिलता है उसमें प्रवेश करने पर अलङ्कारोदय नामका एक उत्कृष्ट सुन्दर नगर दिखाई देता है ॥२०-२५॥ वह नगर नाना प्रकारके रत्नाकी किरणोंके समूहसे सुशोभित है तथा देवोंको भी आश्चर्य उत्पन्न करनेमे समर्थ है । आकाशमें गमन करने वाले विद्याधर उसका विचार ही नहीं कर सकते तथा विद्यासे रहित मनुष्योंके लिए वह अत्यन्त दुर्गम है । वह सत्र प्रकारके मनोरथोंको पूर्ण करनेवाले गुणोंसे सहित है तथा विविध प्रकारके भवनासे व्याप्त है ॥२६-२७॥ यदि कदाचित् तू आपत्तिके समय परचक्रके द्वारा आक्रान्त हो तो उस दुर्गका आश्रय कर निर्मय निवास करना ॥२८॥ इस प्रकार

यथावस्थितभात्राना ध्रुवान परम सुपम् । मिथ्याविरूपिताधार्तां ग्रहण दु गमुत्तमम् ॥३०॥  
 विद्याभृता मुराणा च जैयो भेदो विचक्षणै । तिलपत्रंतयोस्तुक्व शक्तिशक्त्यादिभिर्गुणै ॥३१॥  
 पङ्कचन्दनयोर्यद्द्वयप्रोपलरत्नयो । तद्वन् गेचरलोकस्य देवलोन्य चान्तरम् ॥३२॥  
 गर्भवासपरिक्लेशमनुभूय विधेर्वशात् । तत समुपजायन्ते विद्यामात्रोपजीविन ॥३३॥  
 क्षेत्रप्रशंसमुद्भूता गे चरन्ताति गेचरा । अमराणा स्वभावस्तु मनोजोष्य त्रिपुष्यताम् ॥३४॥  
 सुरूपशुचिसर्वाङ्गा गर्भवासविवर्जिता । मांसास्थिकन्देद्रहिता देवा अनिमिषेक्षणा ॥३५॥  
 जरारोगत्रिहानाश्च सतत यौवनान्विता । उदारतेजसा युक्ता सुपसीभाप्यसागरा ॥३६॥  
 स्वभावविद्यामप्यक्षा अवधिज्ञानलोचना । कामरूपधरा धीरा स्वच्छन्दगतिधारिण ॥३७॥  
 अमी लङ्काध्रिता राजन् न देवा न च राक्षसा । रक्षन्ति रक्षन्तां क्षेत्रमाहूतास्तेन राक्षसा ॥३८॥  
 तद्वशानुक्रमो जैयो युगानामन्तरी सह । पारम्पर्याद् व्यतिरान्त काणो नैकाग्रवोपम ॥३९॥  
 रच प्रभृतिपु श्लाघ्येवर्ततेषु बहुष्वपि । गण्डत्रयाधिपस्तस्य रावणोऽभवदन्वये ॥४०॥  
 भगिनी दुर्नखा तस्य रूपेणप्रतिमा भुवि । प्राप्तस्तथा महावीर्यो रमण खररूपण ॥४१॥  
 चतुर्दशसहस्राणि नृणा तस्य महा मनाम् । प्रतीतो दूषणारव्यश्च मेनाग्रितिरुजित ॥४२॥  
 दिक्कुमार ह्रवोदारे धरणीजटरे स्थितम् । अलङ्कारपुर तस्य स्थानमासीन्महार्जस ॥४३॥  
 शम्भूको नाम सुन्दश्च सुती तस्य भभूवतु । उन्धुतश्च दशप्रावाद भुवि गीरवमाप न ॥४४॥

महाभीम राक्षसेन्द्रके कहते पर जो विद्याधर बालक, लङ्कापुरी गया था उसीसे अनेक उत्तमोत्तम सन्तति उत्पन्न हुई ॥२६॥ जो पदार्थ जिस प्रकार अवस्थित हैं उनका उसी प्रकार ध्यान करना सो परम सुख है और मिथ्याकल्पित पदार्थोंका ग्रहण करना सो अत्यधिक दुःख है ॥३०॥ विद्याधरों और देवोंके बीच बुद्धिमान् मनुष्योंको शक्ति, कान्ति आदि गुणोंके कारण तिल तथा पर्वतके समान भारी भेद समझना चाहिए ॥३१॥ जिस प्रकार कीचड़ और चन्दन तथा पापाय और रत्नमें भेद है उसी प्रकार विद्याधर और देवोंमें भेद है ॥३२॥ विद्याधर तो गर्भवासका दुःख भोगकर चादमें कर्मोदयकी अनुकूलतासे विद्यामात्रके धारक होते हैं । ये विद्याधरके क्षेत्र विजयार्थ पर्वत पर तथा उनके योग्य बुरोंमें उत्पन्न होते हैं तथा आकाशमें चलते हैं इसलिए गेचर कहलाते हैं । परन्तु देवोंका स्वभाव ही मनोहर है ॥३३-३४॥ देव, सुन्दर रूप तथा पवित्र शरीरके धारक हैं, गर्भवाससे रहित हैं, मांस हड्डी तथा स्नेह आदिसे दूर हैं और टिमनार रहित नेत्रोंके धारक हैं ॥३५॥ वे बृद्धावस्था तथा रोगोंसे रहित हैं, सदा यौवनसे सहित रहते हैं, उत्कृष्ट तेजसे युक्त, सुख और सौभाग्यके सागर, स्वाभाविक विद्याओंसे सम्पन्न, अविज्ञानरूपी नेत्रोंके धारक, इच्छानुसार रूप रखनेवाले, धीर, वीर और स्वच्छन्द गतिसे विचरण करनेवाले हैं ॥३६-३७॥ हे राजन् ! लकामें रहनेवाले विद्याधर न देव हैं और न राक्षस हैं किन्तु राक्षस द्वीपकी रक्षा करते हैं इसलिए राक्षस कहलाते हैं ॥३८॥ अनेक युगान्तरोके साथ उनके वंशका अनुक्रम चला आता है और उसी अनुक्रम परम्पराके अनुसार अनेक सागर प्रमाण काल व्यतीत हो चुका है ॥३९॥ राक्षस आदि बहुतसे प्रशासनीय उत्तमोत्तम विद्याधर राजाओंके व्यतीत हो चुकने पर उसी वंशमें तीन रण्डका स्वामी रावण उत्पन्न हुआ है ॥४०॥ उसकी एन दुर्नखा नामकी बहिन है जो पृथ्वी पर अपने सौन्दर्यकी उपमा नहीं रखती । उसने महाशक्तिशाली चरदूषण नामक पति प्राप्त किया है ॥४१॥ अतिशय बलवान् चरदूषण चौदह हजार प्रमाण मनुष्योंका विश्वासप्राप्त सेनापति है ॥४२॥ वह दिक्कुमार भवनवासी देवके समान उदार है । पृथ्वीके मध्यमें स्थित अलङ्कारपुर नामका नगर उस महाप्रतापीका निवास स्थान है ॥४३॥ उससे शम्भूक और सुन्द नामके दो पुत्र उत्पन्न हुए थे । साथ ही वह अपने सम्बन्धी रावणसे भी

गुरुभिर्वायंमाणोऽपि मृत्युपाशावलोकितः । शम्बूक सूर्यहासार्थं प्राविशद्गीपणं वनम् ॥४५॥  
 ययोक्तमाचरन् राजन्नाराधयितुमुद्यतः । एकाग्रमुग्धिशुद्धात्मा ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः ॥४६॥  
 असमाप्तोपयोगस्य यो मे दृष्टिपथे स्थितः । वध्योऽसाविति भाषित्वा वशस्थलमुपाविशत् ॥४७॥  
 दण्डकारण्यभागान्तं तां च व्रीचरवा नदीम् । सागरस्योत्तरं तीरं संसृत्यासाववस्थितः ॥४८॥  
 नीत्वा द्वादशवर्षाणि ततोऽसावसिद्धरातः । ब्राह्मः सप्तदिनं स्थित्वा हन्यात्साधकमन्यथा ॥४९॥  
 कैकमेयीं सुतस्नेहाद्दृष्टुमागाद् क्षणे क्षणे । अपश्यच्चसिमुद्भूत काले देवैरधिष्ठितम् ॥५०॥  
 प्रसन्नवदना भर्तुर्निजगाद् यथाविधि । शम्बूकस्य महाराज सिद्धं तद्योगकारणम् ॥५१॥  
 आगमिष्यति मे पुत्रो मेरु कृत्वा प्रदक्षिणम् । अहोभिखिभिर्नद्यापि नियमो न समाप्यते ॥५२॥  
 एव मनोरथ सिद्ध दध्यो चन्द्रनखा सदा । लक्ष्मणश्च तमुदेशं सम्प्राप्तः पर्यटन् वने ॥५३॥  
 सहस्रामरपूजयस्य सद्गन्धस्य स्वभावतः । अनन्तस्यादिहीनस्य खड्गरत्नस्य तस्य सः ॥५४॥  
 दिव्यगन्धानुलिप्तस्य दिव्यस्त्रभूषितस्य च । गन्धो भास्करहासस्य लक्ष्मीधरमुपेयिवान् ॥५५॥  
 लक्ष्मणो विस्मय प्राप्तः परिजयस्य क्रियान्तरम् । अयासीद् गन्धमार्गोणं केसरीव भयोत्कृतः ॥५६॥  
 अपश्यच्च तरुच्छन्न प्रदेशमतदुर्गमम् । लताजालावलीरुद्धं तुङ्गपापाणवेष्टितम् ॥५७॥  
 मध्ये च गहनस्यास्य सुसप्त धरणीतलम् । विचित्ररत्ननिर्माणमर्चितं कनकाभ्रजैः ॥५८॥  
 मध्ये तस्यापि विपुल वशस्तम्बं समुत्थितम् । सौधर्मंभिव सद्गुणविविज्ञातकुतूहलम् ॥५९॥

पृथ्वी पर गौरवको प्राप्त हुआ था ॥४४॥ जिसे मृत्युका फन्दा देख रहा था ऐसे शम्बूकने गुरु-  
 जनोके द्वारा रोके जाने पर भी सूर्यहास नामा खड्ग प्राप्त करनेके लिए भयङ्कर वनमें प्रवेश किया  
 ॥४५॥ हे राजन् ! वह यथोक्त आचरण करता हुआ सूर्यहास खड्गको प्राप्त करनेके लिए उद्यत  
 हुआ । वह एक अन्न खाता है, निर्मल आत्माका धारक है, ब्रह्मचारी है और इन्द्रियोंको जीतने  
 वाला है, ॥४६॥ 'उपयोग' पूर्ण हुए बिना जो मेरी दृष्टिके सामने आवेगा वह मेरे द्वारा वध्य  
 होगा' इस प्रकार कहकर वह वंशस्थल पर्वत पर वंशकी एक भाड़ीमें जा बैठा ॥४७॥ वह दण्डक  
 वनके अन्तमें क्रीडारवा नदी और समुद्रके उत्तर तटके बीच जो स्थान है वहाँ अवस्थित है  
 ॥४८॥ तदनन्तर बारह वर्ष व्यतीत होने पर वह सूर्यहास नामा खड्ग प्रकट हुआ जो सात दिन  
 ठहर कर ग्रहण करने योग्य होता है अन्यथा सिद्ध करनेवालेको ही मार डालता है ॥४९॥  
 दुर्नखा ( चन्द्रनखा ) पुत्रके स्नेहसे उसे बार-बार देखनेके लिए उस स्थान पर आती रहती थी  
 सो उसने उसी क्षण उत्पन्न हुए उस देवाधिष्ठित सूर्यहास खड्गको देखा ॥५०॥ जिसका मुख  
 प्रसन्नतासे भर रहा था ऐसी दुर्नखाने अपने पति सरदूपणसे कहा कि हे महाराज ! मेरा पुत्र  
 मेरुपर्वतकी प्रदक्षिणा देकर तीन दिनमें आ जावेगा क्योंकि उसका नियम आज भी समाप्त नहीं  
 हुआ है ॥५१-५२॥ इस प्रकार इधर शम्बूककी माता चन्द्रनखा, सिद्ध हुए मनोरथका सदा ध्यान  
 कर रही थी उधर लक्ष्मण वनमें घूमते हुए उस स्थान पर जा पहुँचे ॥५३॥ एक हजार देव जिसकी  
 पूजा करते थे, जिसकी स्वाभाविक उत्तम गन्ध थी, जिसका न आदि था न अन्त था, जो दिव्य-  
 गन्धसे लिप्त था और दिव्यमालाओंसे जो अलंकृत था ऐसे उस सूर्यहास नामक खड्गरत्नकी  
 गन्ध लक्ष्मण तक पहुँची ॥५४-५५॥ आश्चर्यको प्राप्त हुए लक्ष्मण अन्य कार्य छोड़कर जिस मार्गसे  
 गन्ध आ रही थी उसी मार्गसे सिंहके समान निर्भय हो चल पड़े ॥५६॥ वहाँ जाकर उन्होंने  
 वृक्षोंसे आन्ध्यादित, लताओंके समूहसे चिरा तथा ऊँचे-ऊँचे पापाणोंसे वेष्टित एक अत्यन्त  
 दुर्गम स्थान देखा ॥५७॥ इसी वनके बीचमें एक समान पृथ्वीतल था जो चित्र-विचित्र रत्नोंसे  
 बना था तथा सुवर्णमय कमलोंसे अर्चित था ॥५८॥ उसी समान धरातलके मध्यमें एक बौसीका



अयान्ते तस्य निघंशं त्रिस्तुरकरमण्डलम् । सर्वाचकारं येन प्रदीप्तमित् लक्षणे ॥१०॥  
 नष्टराङ्गमनादाय लक्ष्मीमाङ्गलविरमयः । जिज्ञामर्माधगतामस्य तं येऽगुम्भमश्चिद्वनः ॥११॥  
 गृहीतमायकं दृष्ट्वा तं सर्वास्त्रप्र देवताः । अस्माकं स्वान्वयमीयुस्त्वा मनमस्यमृजयन् ॥१२॥  
 अथावोचत सोनेयः किञ्चिदस्त्राकुल्येवगः । यौमित्रिश्चिरवयस्य व नु यानो भविष्यति ॥१३॥  
 मद्रोत्तिष्ठ जटायुः स्य दूरमग्नय सद्रुतम् । लक्ष्मीधरकृमारस्य निपुगान्तेयग कृत् ॥१४॥  
 इयुनः करुण यावत् करोयुःपतिनु म्यगः । अहूर्लो तावदायस्य जनकम्याद्गजावदत् ॥१५॥  
 अथ कुङ्कुमपङ्केन लिप्ताहो नाथ लक्ष्मणः । चित्रमाल्याम्बरधरः ममायानि स्मल्लङ्कृतः ॥१६॥  
 गृहीतश्चायमेतेन मण्डलाग्रो महाप्रभः । राजतेऽयन्तमेतेन शैलः केमरिणा यथा ॥१७॥  
 दृष्ट्वा तमोदश रामो विस्मयम्याप्तमानसः । अमहः प्रमद रोद्रेषुमुष्पाय परिपश्यते ॥१८॥  
 पृष्टश्च लक्ष्मणः कृत्स्न स्ववृत्तान्तमवेदयत् । स्थिताश्च ते विचित्राभिः सङ्ख्याभिर्घामुष्यम् ॥१९॥  
 दृष्ट्वा प्रतिदिनं सङ्गं सुतं च नियमस्थितम् । यायामोत् न्मा दिने तस्मिन् कैःकमेव्यागतैःकृता ॥२०॥  
 अपरयश्च विसाराणो वनं कृत्तमरोपतः । अचिन्तयच्च यातः व पुत्रः स्थिवाटवीमिनाम् ॥२१॥  
 स्थितश्च यत्र ससिद्धमसिरसमिदं वनम् । क्षिन्दानेन परीक्षार्थं न युक्तं सुतुना हृतम् ॥२२॥  
 तावच्चास्तस्थितादित्यमण्डलप्रतिम शिरः । सङ्कुण्डल करन्ध च ददर्शं स्थाणुमप्यगम् ॥२३॥

विस्तृत स्तम्भ ( भिड़ा ) था जो किसी अज्ञात कुनृहलके कारण सीधर्मस्वर्गको देखनेके लिए ही मानो उँचा उठा हुआ था ॥१५॥

अथानन्तर उस बौंसोके स्तम्भमें देदीप्यमान किरणोंके समूहसे सुरोभित एक रत्न दिग्दर्शिया जिससे बौंसोके साथ-साथ समस्त वन प्रज्वलित-सा जान पड़ता था ॥१६॥ आश्चर्यचकित लक्ष्मणने निःशङ्क हो वह रत्न ले लिया और उसकी तीक्ष्णताकी परख करनेके लिए उमों वंश-स्तम्भको उन्हांने काट डाला ॥१७॥ रत्नधातुके लक्ष्मणको देखकर वहाँ सत्र देवताओंने 'आप हमारे स्वामी हो' यह कहकर नमस्कारके साथ-साथ उनकी पूजा की ॥१८॥

अथानन्तर जिनके नेत्र कुञ्ज-कुञ्ज ओंमुओसे भर रहे थे ऐसे रामने यह कहा कि आज लक्ष्मण बड़ी देर कर रहा है कहाँ गया होगा ? ॥१९॥ हे भद्र जटायु ! उठो और शीघ्र ही आकाशमें दूर तक उड़कर लक्ष्मणजुमारकी अच्छी तरह खोज करो ॥२०॥ इस प्रकार रामके करुणापूर्वक कहने पर जटायु उड़नेकी तैयारी करता है कि इतनेमें सीता अङ्गुली ऊपर उठाकर कहती है ॥२१॥ कि जिनका शरीर केशरकी पङ्कसे लिप्त है, जो नाना प्रकारकी मालाओं और वस्त्रोंको धारण कर रहे हैं तथा जो अलंकारोंसे अलङ्कृत हैं ऐसे लक्ष्मण यह आ रहे हैं ॥२२॥ इन्होंने यह महादेदीप्यमान रत्न ले रक्खा है और इससे ये सिंहसे पर्वतके समान अत्यन्त सुरोभित हो रहे हैं ॥२३॥ लक्ष्मणकी वैसा देख रामका मन आश्चर्यसे व्याप्त हो गया तथा वे हर्षको रोकनेके लिए असमर्थ हो गये जिससे उन्हांने चठकर उनका आलिङ्गन किया ॥२४॥ पूछने पर लक्ष्मणने अपना सब वृत्तान्त बतलाया । इस तरह राम लक्ष्मण और सीता—तीनों प्राणों नाना प्रकारकी कथाएँ करते हुए मुरसे वहाँ ठहरे ॥२५॥

अथानन्तर जो चन्द्रनग्न प्रति दिन रत्नको तथा नियममें स्थित पुत्रको देख जाती थी उस दिन वह अकेली ही वहाँ आई ॥२६॥ आते ही उसने बौंसोके उस समस्त वनको सत्र ओरसे कटा देखा । वह विचार करने लगी कि पुत्र इस अटवीमें रहकर अब कहाँ चला गया ? ॥२७॥ जिस वनमें यह रहा तथा जहाँ यह रत्न रत्न सिद्ध हुआ परीक्षाके लिए उसी वनको काटते हुए पुत्रने अच्छा नहीं किया ॥२८॥ इतनेमें ही उसने अस्ताचल पर स्थित सूर्यमण्डलके समान

१. करण म० । २. तावत् अहूर्लो आपस्य उत्पानखेदेन युक्ता कृत्वा । ३. वशानाम् ।

४. क्षिप्तम् ।

उपकार कृतस्तस्या परमो मूर्च्छया चगम् । पुत्रमृत्युमनुत्थेन यत्र दु खेन पीडिता ॥३४॥  
 तत सञ्जा समासाद्य हाकारमुखर मुखम् । उच्चिप्य कृच्छ्रतो दृष्टिं तत्र मूर्धन्यपातयन् ॥३५॥  
 विललाप च शोकार्तां गलदन्नाकुलेक्षणा । कुररीवैकिङ्कारण्ये हृदयाघातकारिणां ॥३६॥  
 स्थितो द्वादशवर्षाणि दिनाना च चतुष्टयम् । पुत्रो मे ह । पर चान्त न विधे<sup>३</sup> दिवसत्रयम् ॥३७॥  
 कृतान्तापकृत किं ते मया परमनिष्ठुर । येन<sup>३</sup> दृष्टनिधिः पुत्र सहसा विनियतित ॥३८॥  
 अपुण्यया मया नूनमन्यजनमनि बालक । कस्या अपहतो मृत्यु तत्प्रत्यागतमद्य ते ॥३९॥  
 मयापि पुत्र जातोऽसि कथमेतां स्थितिं गत । ईदृशोऽपि प्रयच्छैका वःचमातिविनाशिनाम् ॥४०॥  
 एहि वस निज रूप प्रतिपद्य मनोहरम् । अमङ्गलमिदं मायाश्रीडनं न विरानते ॥४१॥  
 स्फुट यातोऽसि हा वस परलोक विधेवंशात् । अन्यथा चिन्तितं कार्यमिदमुद्गतमन्यया ॥४२॥  
 अनुष्ठितं त्वया मातु प्रतिकूल न जातुचित् । अनुना कारणोन्मुक्त किमिदं विनयोन्मितम् ॥४३॥  
 ससिद्धसूर्यहासरचेदजीविष्यस्त्वमत्र ते । अस्थास्यत् कः पुरो लोके चन्द्रहासवृत्तो यथा ॥४४॥  
 भजता चन्द्रहासेन पद मम सहोदरे । सूर्यहासस्य न चान्त नूनमात्मविरोधिन ॥४५॥  
 पृक्क भोगेऽरण्ये निद्राप नियमस्थितम् । कुशत्रो कन्य हन्तु त्वा मूढस्य प्रसूत कर ॥४६॥  
 अर्दायोपैक्षिता तेन भवन्त निजन्तोदिता । क्व गमिष्यति पापोऽप्यौ साम्प्रत हतचेतन ॥४७॥  
 विलापमिति कुवाणा कृन्वासे सुतमुत्तमम् । सुबुभ्ये विदुमच्छायलोचना करसदतम् ॥४८॥

निष्प्रभ, तथा कुण्डलोसे युक्त शिर और एक रूठके बीच पडा हुआ पुत्रका घड़ देखा ॥५३॥  
 उसी क्षण मूर्च्छाने उसका परम उपकार किया जिससे पुत्रकी मृत्युसे उत्पन्न दुःखसे वह पीडित  
 नहीं हुई । सचेत होने पर हा हा कारसे मुखर शिर ऊपर उठाकर उसने बड़ी कठिनाईसे पुत्रके  
 शिर पर दृष्टि डाली ॥५४-५५॥ भरते हुए आँसुओंसे जिसके नेत्र आकुलित थे तथा जो अपनी  
 दाती कूट रही थी ऐसी शोकसे पीडित चन्द्रनरया, वनमें अकेली कुररीके समान विलाप करने  
 लगा ॥५६॥ मेरा पुत्र वारह वर्ष और चार दिन तक यहाँ रहा । हाय देव ! इसके आने तूने  
 तीन दिन सहन नहीं किये ॥५७॥ हे अतिशय निष्ठुर देव ! मैंने तेरा क्या अपकार किया था  
 जिससे पुत्रको निधि दियाकर सहसा नष्ट कर दिया ॥५८॥ निश्चय ही मुझपापिनीने अन्य जन्ममें  
 किसीका पुत्र हरा होगा इसीलिए तो मेरा पुत्र मृत्युको प्राप्त हुआ है ॥५९॥ हे पुत्र ! तू मुझसे  
 उत्पन्न हुआ था फिर ऐसी दशाको कैसे प्राप्त हो गया ? अथवा इसी अवस्थामें तू दुःखको दूर  
 करनेवाला एक वचन तो मुझे दे—एक बार तो मुझसे बोल ॥६०॥ आओ वत्स ! अपना मनोहर  
 रूप धरकर आओ । यह तेरी अमङ्गल रूप छलक्रीड़ा अच्छी नहीं लगती ॥६१॥ हाय वत्स !  
 भाग्य वश तू स्पष्ट ही परलोक चला गया है । यह कार्य अन्य प्रकारसे सोचा था और अन्य  
 प्रकार हो गया ॥६२॥ तूने कभी भी माताके प्रतिकूल कार्य नहीं किया है अत्र यह अकारण  
 प्रियका त्याग क्यों कर रहा है ? ॥६३॥ सूर्यहास सङ्ग सिद्ध होने पर यदि तू जीवित रहेगा  
 तो इस सप्ताममें चन्द्रहाससे आवृत्तकी तरह ऐसा कौन पुरुष है जो तेरे सामने खडा हो सकेगा ?  
 ॥६४॥ चन्द्रहास सङ्ग मेरे भाईके पास है सो जान पडता है उसने अपने विरोधी सूर्यहास  
 सङ्गको सहन नहीं किया है ॥६५॥ तू इस भयकर वनमें अकेला रहकर नियमका पालन करता  
 था किसीका कुञ्ज भी अपराध तूने नहीं किया था फिर भी किस मूर्ख दुष्ट शत्रुका हाथ तुझे  
 मारनेके लिए आगे बडा ? ॥६६॥ तुम्हें मारते हुए उस शत्रुने शीघ्र ही प्रकट होनेवाली अपनी  
 उपेक्षा प्रकट की है । अत्र वह अविचारी पापी कहाँ जावेगा ? ॥६७॥ इस प्रकार उत्तम पुत्रको  
 गोदमें रखकर विलाप करते-करते जिसके नेत्र मूँगाके समान लाल हो गये थे ऐसी चन्द्रनरयाने

ततः स्यात् परिश्रय्य शोकं नष्टासन्तति । गृहान्वा परमं त्रयमुपायं स्फुरितानना ॥८६॥  
 सञ्चरन्ती तमुद्देशं स्वैर मार्गानुलक्षितम् । निरैकत युवान्ती तं चित्तबन्धनकारिणी ॥८७॥  
 विनाशमगमत्तस्याः काशोऽसौ तादृशोऽपि सन् । आदेशं ह्य तस्याभूत् स्थाने रागरस पर ॥८८॥  
 ततोऽचिन्तयद्देताभ्यां नराभ्यामभिलाषिणम् । वृणोमि नरमि युच्चैरुत्कृष्टं दधती मन ॥८९॥  
 इति सच्चिन्ध ससाधुकन्याकृष्य समाधिता । हृदयेनानुराग्यन्त भावगङ्गावतिना ॥९०॥  
 हंसाय पद्मिनीघण्टे महिषोव महाद्रुहं । सस्य सारङ्गशालेव तत्राभूत् सानिलापिणी ॥९१॥  
 भञ्जन करशाशाना कुर्वन्ती स्फुटनिस्वनम् । उपद्विरय क्रिलोद्धिग्ना पुत्रागस्य तलेऽरुदत् ॥९२॥  
 अतिदीनकृतारावा धूसरा वनरेणुना । दृष्ट्वा तां रामरमणा कृपावष्टभमानसा ॥९३॥  
 उत्थायान्तिकमागत्य करामरौनतपरा । मा भैषारिति भाषिषा गृह्णात्वा पाणिपल्लवे ॥९४॥  
 किञ्चित् किल त्रपाभात् मलिनाशुकधारिणीम् । सान्त्वयन्ती शुभैर्वाक्यै रमणान्तिप्रमानयत् ॥९५॥  
 ततः पद्मो जगद्गैता का त्व श्वापदमेविते । एकाकिना वने कन्ये चरसाहातिवु खिता ॥९६॥  
 ततः सम्भाषणं प्राप्य स्फुटं तामरसेषणा । जगद् भ्रमरौघस्य वावानुकृतिमेतया ॥९७॥  
 पुरपोत्तम मे माता नि सत्याया मृति गता । तत्रैवेन च श्रोत्रेण तातोऽपि विनिपातित ॥९८॥  
 साह पूर्वकृतात् पापात् यन्धुमि परिवर्जिता । प्रविष्टा दण्डवारण्य वैराग्यं दधती परम् ॥९९॥  
 परय पापस्य माहाग्यं यद्दान्दुन्यपि पद्मताम् । अरण्येऽस्मिन् महाभामे न्यालैरपि विवर्जिता ॥१००॥

हायमे लेकर पुत्रका चुम्बन किया ॥८६॥ तदनन्तर एण एकमे शोक छोड़कर वह उठी । उसके अश्रुओंकी धारा नष्ट हो गई और तीव्र क्रोध धारण करनेसे उसका मुख दमकने लगा ॥८६॥ वह मार्गके समापमें ही स्थित उस स्थान पर इच्छानुसार इधर-उधर घूमने लगी । उसी समय उसने चित्तको बाँधनेजाले दोनों तरुण—रामलक्ष्मणको देखा ॥८७॥ उन्हें देखते ही उसका बैसा तीन क्रोध नष्ट हो गया और आदेशके समान उसके स्थान पर परम राग रूपी रस आ जमा ॥८८॥ इसने बाद उसने ऐसा विचार किया कि इन दोनों पुरुषोंमेंसे मैं अपने इच्छुक पुरुषको वहाँगी इस प्रकार उसके मनमें ऊँची तरङ्गे उठने लगी ॥८९॥ ऐसा विचार कर वह कन्याभायको प्राप्त हुई । वह उस समय भाव रूपी गुफामें वर्तमान हृदयसे अत्यन्त आतुर हो रही थी ॥९०॥ जिस प्रकार हंसी कमलिनोके मुण्डमे, महिषी (भैंस) महासरोवरमें और हरिणी धान्यमें अभिलाषामें युक्त होती है उसी प्रकार वह भी राम लक्ष्मणमें अभिलाषामें युक्त हो गई ॥९१॥ वह हाथकी अङ्गुलियाँ चटरमाती हुई भयभीत मुद्रामें पुत्राग वृक्षके नीचे बैठकर रोने लगी ॥९२॥ जो अत्यन्त दीन शब्द कर रही थी, तथा वनकी धूलिसे धूसरित थी ऐसी उस कन्याको देग सीताका हृदय दयासे द्रवीभूत हो गया ॥९३॥ वह उठकर उसके पास गई तथा शरीर पर हाथ फेरने लगी । तदनन्तर 'डरो मत' यह कहकर उसका हाथ पकड़ कर पतिने पास ले आई । उस समय वह बुद्ध-बुद्ध ललित हो रही थी, तथा मलिन वस्त्रको धारण किये हुई थी । सीता उसे शुभ वचनोंसे सान्त्वना दे रही थी ॥९४-९६॥

तदनन्तर रामने उससे कहा कि हे कन्ये ! जङ्गली जानवरोंसे भरे इस वनमें अतिशय दुःखमें युक्त तू कीन अकेली विचरण कर रही है ? ॥९६॥ तदनन्तर सम्भाषण प्राप्त कर जिसके नेत्र कमलके समान तिल रहे थे ऐसी वह कन्या भ्रमर समूहका अनुकरण करने वाली वाणीसे बोली ॥९७॥ कि हे पुरुषोत्तम ! मूर्खों आने पर मेरी माता मर गई और उसके उत्पन्न शोकसे पिता भी मर गये ॥९८॥ इस तरह पूर्वोपाजित पापके कारण यन्धुजनोंसे रहित हो परम वैराग्य को धारण करती हुई मैं इस दण्डरुचनमें प्रविष्ट हुई थी ॥९९॥ पापका माहात्म्य तो देखो कि

१. मन्थ्यायस्फुरितानना ( ? ) म० । २. यथा व्याकरण कथंचित् स्थाने वञ्चित् आदेशा भवति तद्वत् । ३. माता ।

चिरान्मानुषनिर्मुक्ते भ्रमन्त्यास्मिन् वने मया । भवन्तः साधवो दृष्टाः क्षयात् पापस्य कर्मणः ॥१०४॥  
जनोऽविदितपूर्वो यो जने बध्नाति सौहृदम् । अनाहृतश्च मामीष्यं व्रजति प्रपयोऽभक्तः ॥१०५॥  
अनाहृत प्रभूतं च भाषते शून्यमानसः । उत्पादयति विद्वेषं कस्य नासौ क्रमोऽभक्तः ॥१०६॥  
एवभूतापि नो वाद्यप्राणान् मुञ्चामि सुन्दर । तावदधैव मामिच्छ दुःखितायां दयां कुरु ॥१०७॥  
न्यायेन सङ्गता साध्वो सर्वोपप्लवजिताम् । को वा नेच्छति लोनेऽस्मिन् कल्याणप्रकृतिस्थितिम् ॥१०८॥  
श्रुत्वा तद्वचन तस्यास्त्रपया परिवर्जितम् । परस्परं समालोक्य स्थितौ तूर्णौ नरोत्तमौ ॥१०९॥  
सर्वेशान्नाथार्थबोधाम्बुत्तालिन हि तयोर्मनः । कृत्याकृत्यविवेकेषु मलमुक्त प्रकाशते ॥११०॥  
निर्मुक्तदुःखनिश्वास गच्छामांति तयोर्दिते । पशनाभादिभिः सोक्ता यथेष्टं क्लियतामिति ॥१११॥  
तस्यां प्रयातमात्रायां तदाशालीनताहती । ससती विस्मिता वीरौ स्मरवक्रत्रो बभूवतुः ॥११२॥  
अन्तर्हृद्य च सन्तुद्धा समुपत्य त्वरावती । याता चन्द्रनखा धाम निज शोकसमाकुला ॥११३॥  
शोभयापहतस्तस्या लक्ष्मणस्तरलेक्षण । पुनरालोकनाकांक्षो विरहादाकुलोऽभवत् ॥११४॥  
<sup>१</sup>उत्थायान्यापदेशेन रामदेवसकाशतः । अत्रौ पादपद्मान्यां बध्नामान्वेपणातुरः ॥११५॥  
अचिन्तयच्च रिशनात्मा वाष्पव्याकुललोचनः । आत्मन्यानादनम्रीतिरिति तप्रेमनिर्भरः ॥११६॥  
रूपयौवनलावण्यगुणपूर्णां घनस्तनी । मदनाविष्टनागेन्द्रवनितासमगामिनी ॥११७॥  
आयान्त्येव सती कस्माद्दृष्टमात्रा न सा मया । स्तनोपपोडनाखेप परिख्या हातात्मना ॥११८॥

मैं यद्यपि मृत्युकी इच्छा करती हूँ फिर भी इस महाभयंकर वनमें दुष्ट जीव भी मुझे छोड़ देते हैं ॥१०३॥ चिरकालसे इस निर्जन वनमें भ्रमण करती हुई मैंने पापकर्मके क्षयसे आज आप सज्जनों के दर्शन किये हैं ॥१०४॥ जो पहलेका अपरिचित मनुष्य किसी मनुष्यसे मैत्रीभाव प्रकट करता है, बिना बुलाया निर्लज्ज हो उसके पास जाता है तथा बिना आदरके शून्यचित्त हो अधिक भाषण करता है वह कमहीन मनुष्य किसे द्वेष नहीं उत्पन्न करता ? ॥१०५-१०६॥ ऐसी होने पर भी हे सुन्दर ! जब तक मैं प्राण नहीं छोड़ती हूँ तब तक आज ही मुझे चाहो, मेरी इच्छा करो मुझ दुःखिनी पर दया करो ॥१०७॥ जो न्यायसे संगत है, साध्वी है, सर्व प्रकार की बाधाओंसे रहित है, तथा जिसकी कल्याण रूप प्रकृति है ऐसी कन्याको इस संसारमें कौन नहीं चाहता ? ॥१०८॥ राम-लक्ष्मण उसके लज्जाशून्य वचन सुनकर परस्पर एक दूसरेको देखते हुए चुप रह गये ॥१०९॥ समस्त शास्त्रोंके अर्थ ज्ञानरूपी जलसे धुला हुआ उनका निर्मल मन करने योग्य तथा नहीं करने योग्य कार्योंमें अत्यन्त प्रकाशित हो रहा था ॥११०॥ दुःख भरी श्वास छोड़कर जब उसने कहा कि मैं जाती हूँ तब राम आदिने उत्तर दिया कि 'जैसी तुम्हारी इच्छा हो वैसा करो' ॥१११॥ उसके जाते ही उसकी आकुलीनतासे प्रेरित हुए शूरवीर राम-लक्ष्मण सीताके साथ आश्चर्यसे चकित हो हँसने लगे ॥११२॥

तदनन्तर शोकसे व्याकुल चन्द्रनखा मनमार क्रुद्ध हो उड़कर शीघ्र ही अपने घर चली गई ॥११३॥ लक्ष्मण उसकी सुन्दरतासे हरे गये थे इसलिए उनके नेत्र चञ्चल हो रहे थे वे उसे पुनः देखनेकी इच्छा करते हुए विरहसे आकुल हो गये ॥११४॥ वे किसी अन्य कार्यके वहाने रामके पाससे उठकर चन्द्रनखाकी सोजमें व्यग्र होते हुए पैदल ही वनमें भ्रमण करने लगे ॥११५॥ जिनका हृदय अत्यन्त रिन्न था, जिनके नेत्र आसुओंसे व्याप्त थे, जिन्होंने अपने आपके विषयमें प्रकट हुए चन्द्रनखाके प्रेमकी उपेक्षा की थी तथा जो उसके प्रेमसे परिपूर्ण थे ऐसे लक्ष्मण इस प्रकार विचार करने लगे कि जो रूप यौवन सौन्दर्य तथा अनेक गुणोंसे परिपूर्ण थी, जिसके स्तन अतिशय सघन थे और जो कामोन्मत्त हस्तिनीके समान चलती थी ऐसी उस

१. भूतापिता ( ? ) म० । २. मुञ्जति म० । ३. तस्यः अशालीनता अकुलीनता तथा हती ।

४. उत्थायान्यापदेशेन म० । अन्यन्याजेन ।

अयोगमोहित चेतश्च्युत कर्तव्यवस्तुन । साम्प्रत शोकशिपिना दृश्यते मे निरहुराम् ॥११६॥  
जाता सा विषये कस्मिन् कस्य वा दृष्टिता भवेत् । सूपभ्रष्टा मृगाण्येव कुत प्राप्ता सुलोचना ॥१२०॥  
सञ्चिन्त्येति वृत्तभ्रान्तिरतामपरयन् समाकूल । मेने तद्गनमाकाशपुष्पगुण्य समन्तत ॥१२१॥

### मालिनीवृत्तम्

अविदितपरमार्थैरेवमर्थेन हीन न खलु विमलचित्तं कार्यमारम्भणीयम् ।  
अविषयवृत्तचित्ता तस्ममासक्तिमुक्ता दधति परमशोकं बाल्यद्वन्द्विहाना ॥१२२॥  
किमिदमिह मनो मे किं निषेद्य तद्विष्टं कथमनुगतकुर्यै प्राप्यते श मनुष्यै ।  
इति वृत्तमतिरञ्जयै विवेकस्य कर्ता रविरिव विमलाऽसौ राजते लोकमार्गे ॥१२३॥

इत्यर्थे रविपेणाचार्यप्रोक्ते पद्मचरिते शम्भूतनपाभिरयान नाम  
त्रिचत्वारिंशत्तम पर्व ॥४३॥



सतीका मैंने आते तथा द्विपनेके साथ ही स्तनोको पीडित करनेवाला आलिङ्गन क्यों नहीं किया ॥११६-११८॥ उसके त्रियोगसे मोहित हुआ मेरा चित्त कर्तव्य वस्तु—करने योग्य कार्यसे च्युत होता हुआ इस समय शोकरूपी अग्निके द्वारा निर्गम्य रूपसे जल रहा है ॥११६॥ वह किस देशमें उत्पन्न हुई है ? किसकी पुत्री है ? यह उत्तम नेत्राकी धारक भुण्डसे त्रिबुजी हरिणी के समान यहाँ कहाँसे आई थी ? ॥१२०॥ इसप्रकार विचार कर जो इधर-उधर भ्रमण कर रहे थे तथा उसे न देख कर जो अत्यन्त व्याकुल थे ऐसे लडमगने उस वनको सत्र ओर से आकाश-पुष्पके समान माना था ॥१२१॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! निर्मल चित्तके धारक मनुष्योंको इस तरह परमार्थके जाने बिना निरर्थक कार्य प्रारम्भ नहीं करना चाहिये । क्योंकि जो बालकोंके समान निर्नुद्धि मनुष्य अयोग्य विषयमें चित्त लगाते हैं वे उसकी प्राप्तिसे रहित हो परम शोकको धारण करते हैं ॥१२२॥ 'यह क्या है ? इसमें मुझे मन क्यों लगाना चाहिये ? यह इष्ट क्यों है ? और करने योग्य कार्योका अनुसरण करने वाले मनुष्य ही सुख शान्ति प्राप्त कर पाते हैं, इस प्रकार विचार कर जो उत्कृष्ट विवेकका कर्ता होता है वह सूर्यकी तरह निर्मल होता हुआ लोकके मार्गमें सुशोभित होता है ॥१२३॥

इस प्रकार आर्ष नाममे प्रसिद्ध, रविपेणाचार्य कथित पद्मचरितमें शम्भूकने  
कथना उर्णन करने वाला तैतालीमर्गा पर्व समाप्त हुआ ॥४३॥



## चतुश्चत्वारिंशत्तमं पर्व

अनिच्छयाथ विध्वस्ते<sup>१</sup> खरवध्या मनोवने । दुःसपूर पुन प्राप्तो भग्नरोधो<sup>२</sup> यथा नद ॥१॥  
 चकार व्याकुलीभूता विविध परिदेवनम् । शोकपावकत्तसाक्षा विव्यता बहुला यथा ॥२॥  
 वहन्ती चापमान त क्रोऽदैन्यस्थमानसा । विगलद्गरिनेत्राम्बुद्वृपणेन निरेचवत् ॥३॥  
 ता विनष्टयति दृष्ट्वा धरणाधूलिधूसराम् । प्रकीर्णकेशसम्भारा शिथिलाभूतमेखलाम् ॥४॥  
 मखविद्युत्कलोरुकुचद्वारा सशोणिताम् । कर्णाभरणनिर्मुक्ता हारलावण्यवज्रिताम् ॥५॥  
 विशिष्टकञ्चुका भ्रष्टस्वभावतनुतेजसम् । आलोडिता गजेनेव नलिन्या<sup>५</sup> मद्वाहिना ॥६॥  
 पप्रच्छ परिसाध्यैष कान्ते शोघ्न निवेदय । अवस्थामिमका केन प्रापितासि दुःशामन ॥७॥  
 अद्येन्दुरष्टम कस्य मृद्युता काऽवलोकिता । गिरे स्वपिति क शृङ्गे मूढ क्राडति कोऽहिना ॥८॥  
 कोऽप्य क्व ममापन्नो देव कस्याशुभावहम् । मन्त्रोद्योग्नायव दास्ये शलभ क पतिष्यसि ॥९॥  
 धिक् त पशुमम पाप विवेक्यकमानसम् । अपवित्रसमाचार लोकद्वितयदूषितम् ॥१०॥  
 अल रुदि वा ना-येव काचित् प्राकृताबला । स्पृष्ट्वा येनासित शस वाडवाग्निशिखासमा ॥११॥  
 अद्यैव त दुराचार कृत्वा हस्ततलाहतम् । नेप्ये प्रेतगतिं सिधौ यथा नाग निरकुशम् ॥१२॥  
 एवमुक्ता विस्वाम्यो रुद्रित कृच्छ्रत परात् । अस्त्रविलम्बालकाच्छन्नगण्डामादात् सगद्गदम् ॥१३॥

अथानन्तर जब अनिच्छासे चन्द्रनखाका काम नष्ट हो गया तब तटको भग्न करनेवाले नदके समान दुःखका पूर उसे पुन प्राप्त हो गया ॥१॥ जिसका शरीर शोक रूपी अग्निसे सतप्त हो रहा था ऐसी चन्द्रनखा, मृतवत्सा गायके समान व्याकुल होकर नाना प्रकारका विलाप करने लगी ॥२॥ जो पूर्वोक्त अपमानको धारण कर रही थी, जिसका मन क्रोध और दीनतामें स्थित था तथा जिसके नेत्रोंसे अश्रु भर रहे थे ऐसी चन्द्रनखाको खरदूपगने देखा ॥३॥ जिसका धैर्य नष्ट हो गया था, जो प्रथिवीको धूलसे धूसरित थी, जिसके केशोंका समूह विररा हुआ था, जिसकी मेखला ढीली हो गई थी, जिसकी बगला जँवों तथा स्तनोंकी भूमि नगोंसे चिन्न थी, जो रुधिरसे युक्त थी, जिसके कर्णाभरण गिर गये थे, जो हार और लावण्यसे रहित थी, जिसकी चोली फट गई थी, जिसके शरीरका स्वाभाविक तेज नष्ट हो गया था, और जो मद्यो-मत्त हाथीके द्वारा मर्दित कमलिनिके समान जान पड़ती थी ऐसी चन्द्रनखाको सान्त्वना देकर खरदूपगने पूछा कि हे प्रिये ! शीघ्र ही बताओ तुम किस दुष्टके द्वारा इस अवस्थाको प्राप्त कराई गई हो ? ॥७॥ आज किसका आठवों चन्द्रमा है मृत्युके द्वारा कौन देखा गया है ? पहाडकी चोटी पर कौन सो रहा है और कौन मूर्ख सर्पके साथ ब्रीडा कर रहा है ? ॥८॥ कौन अन्धा कुण्ठे आकर पडा है ? किसका देव अशुभ है ? और मेरी प्रज्वलित क्रोधाग्निमें कौन पतङ्ग बन कर गिरना चाहता है ? ॥९॥ जिसका मन विवेकसे रहित है जो अपवित्र आचरण करनेवाला है और जिसने दोनों लोकोंको दूषित किया है उस पशु तुल्य पापीको धिक्कार है ॥१०॥ रोना व्यर्थ है तुम अन्य साधारण स्त्रियोंके समान थोड़े ही हो बडवानलकी शिखाने समान जिसने तुम्हें छुआ है उसका नाम कहो ॥११॥ निरकुश हाथीको सिद्धके समान मैं आज ही उसे हस्ततलसे पीसकर यमराजके घर भेज दूँगा ॥१२॥ इस प्रकार कहनेपर कडे कटसे रोना छोडकर वह गद्गद वाणीमें बोली । उस समय उसके कपोल

१ चन्द्रनखाया । २ भग्नरोधा, भग्न रोधो यस्यासी । भग्नरोधो म० । ३. गौरिवि । ४. मद्वाहिनी म० ।

वमान्तरस्थित पुत्र द्रष्टुं यातास्मि साम्प्रतम् । अपर्यन्त च केनापि प्रयप्रचिद्वृक्षमूर्धकम् ॥१३॥  
 तन शोणितधाराभिनि मृताभिर्निरन्तरम् १ प्रदीप्तमिव तन्मूले लक्ष्यते काचकम्पलम् ॥१५॥  
 प्रशान्ताऽवस्थित हृत्वा मे केनापि सुपुत्रकम् । एतन्न समुपल प्राप्त वृत्ताममन्त्रितम् ॥१६॥  
 साष्टु दुःखमद्वेषाणा भावन भाग्यवनिता । तन्मूर्धान् निधायार्द्धे निप्रलाप प्रसवेविता ॥१७॥  
 तावच्च तेन दुष्टेन शम्भूकृत्वधकारिणा । उपगृह्णास्मि वाङ्मया कर्तुं किमपि चञ्चिता ॥१८॥  
 उक्तऽपि भुञ्ज मुञ्चेति धनस्पर्शवशज्ञत । न मुञ्चति हतामा मा कोऽपि नाचकुल्लोद्गत ॥१९॥  
 नस्यैर्विलुप्य दन्तैश्च तेनाह विचने वने । एतिका प्रापितावस्था क्षात्रला क्व पुमान् ज्ञा ॥२०॥  
 तथापि पुण्यशेषेण केनापि परिरक्षिता । अविषण्डितचारित्रा कृच्छ्राय नि मृता तत ॥२१॥  
 सर्वविद्याधाराशास्त्रिलोकचोमकारण । भ्राता मे रावण स्यात् शत्रेणाप्यपरानित ॥२२॥  
 एतद्रूपगनामा त्व भर्ता कोऽपि विवर्ण्यसे । मग्नासास्मि तथाप्येतामवस्था दैवयोगत ॥२३॥  
 उतस्तद्रचन श्रुत्वा शोकक्रोधसमाहृत २ । स्वय महाजयो गत्वा दृष्ट्वा व्यापादिन सुतम् ॥२४॥  
 सम्पूर्णमुसमानोऽपि पूर्वमारहलोचन । वभूव भाषणाकारो मन्वप्राप्तमार्कमखिम ॥२५॥  
 आगतश्च द्रुत भूय प्रविश्य भवन निचम । सुहृद्भि सहितश्चक्रे स्वल्पकालप्रधारणम् ॥२६॥  
 तत्र केचिद्द्रुत प्रोचु सचिवा कर्कशाशया । राज्ञःकायमभिप्राय बुद्धा सेवापरायणा ॥२७॥  
 शम्भूक साधितो येन सङ्गरान च हस्तितम् । असावुपेक्षितो रानन् वद कि न करिष्यति ॥२८॥

औसुभ्रोसे भीम रह्ये तथा निरखरे ह्यु वालोंसे आन्ध्रजधे ॥१३॥ उसने कहा कि मैं अभी यन्त्रके मध्यमे स्थित पुत्रको देखनेके लिए गई थी सो मैंने देखा कि उसका मस्तक अभी हाल किसीने काट डाला है ॥१४॥ निरन्तर निरन्ली हुई रुधिरकी धाराओंसे वशस्थलका मूल भाग अग्निसे प्रज्वलितने समान दिखाई देता है ॥१५॥ शान्तिसे बैठे हुए मेरे सुपुत्रको जिसने मारकर पूजाके साथ साथ प्राप्त हुआ वह सङ्गरत्न ले लिया है ॥१६॥ जो हजारों दुःखाका पात्र तथा भाग्यसे हीन है ऐसी मैं पुत्रके मस्तकको गोदमें रखकर जिलाप कर रही थी ॥१७॥ कि शम्भूकका वध करनेवाले उम दुष्टने दोनों भुजाभासे मेरा आलिङ्गन किया तथा कुट्ट अन्वर्ध करनेकी इच्छा की ॥१८॥ यद्यपि मैंने उससे कहा कि मुझे छोड़-छोड़ तो भी वह कोई नीच कृत्तोलपत्र पुरुष था इसलिए गाढ़ स्पर्शके वशीभूत हुए उसने मुझे छोड़ा नहीं ॥१९॥ उसने उस निरर्तन वनमें नखा तथा दाँतोंसे क्षिन्न भिन्न कर मुझे इस दशाको प्राप्त कराया है सो आप ही सोचिये कि अत्रला कहाँ और जलजान् पुत्र्य कहाँ ? ॥२०॥ इतना सज होने पर भी किसी अवशिष्ट पुण्यने मेरी रक्षा की और मैं चारित्रको अविण्डित रखती हुई वडे कष्टसे आन उससे वचकर निकल सकी हूँ ॥२१॥ जो समस्त विद्याधरोंका राजा भी है, तीन लोकके शोभका कारण है, और इन्द्र भी निसे पराजित नहीं कर सका ऐसा प्रसिद्ध रावण मेरा भाई है तथा तुम एतद्रूपण नाम धारी अद्भुत पुत्र्य मेरे भर्ता हो फिर भी दैव योगसे मैं इम अवस्थाको प्राप्त हुई हूँ ॥२२-२३॥

तदनन्तर चन्द्रनराणे रचन सुनकर शोक और क्रोधसे ताडित हुए महावेगशाली एतद्रूपणने ग्यज जाकर पुत्रको मरा देखा ॥२४॥ यद्यपि वह मृगके समान नेत्राको धारण करनेवाला और पूर्ण चन्द्रमाके समान उज्ज्वल था तो भी पुत्रको मरा देखे प्राप्त सुतुके मध्याह्न कालीन सूर्यके समान भयकर हो गया ॥२५॥ उसने शीघ्र हा वापिस आकर और अपने भजनमें प्रवेश कर मित्राके साथ स्वल्पकालीन मन्त्रगा की ॥२६॥ उनमेंसे कठार अभिप्रायके धारक तथा सेनामें तत्पर रहनेवाले कितने ही मन्त्री राजाका अभिप्राय जानकर शीघ्र ही कहने

उत्तुर-ये विवेकस्था नाथ नेद लघुक्रियम् । सामन्तान् ढीक्याशेषान् रावणाय च कथ्यताम् ॥२१॥  
 यस्यासि नमुपपन्न सुसाध्य स कथ भवेत् । तस्मात् सदातकार्येऽस्मिस्वरा<sup>१</sup> कर्तुं न दुज्यते ॥३०॥  
 गृहवास्यानुरोधेन राजमाधिपमविदे । दूत सम्प्रेषितस्तेन युग लङ्का महाजन ॥३१॥  
 राजधैर्यात् कुतोऽयं चिर यादवस्थित । रावणस्यान्तिके दूत कार्यसाधनतत्पर ॥३२॥  
 तीव्रक्रोधपरातामा तावच खरदूषण । अभासत पुन पुत्रगुणप्रेषितमानस<sup>२</sup> ॥३३॥  
 मायात्रिनिहतै क्षुद्रैर्न तुभिर्भूमिगोचरै । दिव्यसेनागं व क्षु-धस्तरितु नेव शक्यते ॥३४॥  
 भिगिद शार्पमस्मारु सहायान् यदि वाञ्छति । द्वितीयोऽपि कथ बाहुरिप्यते मम बाहुना ॥३५॥  
 इ युञ्ज च परम विभ्रदभिमान स्वान्वित । उ-पपात सुहृन्मध्याङ्गाकाश स्फुरितानन ॥३६॥  
 तमेका-तपर दृष्ट्वा सखद्वानि षणान्तरे । चतुर्दशसहस्राणि सुहृदा निर्ययु पुरात् ॥३७॥  
 तस्य राजसैन्यस्य श्रुत्वा वादित्रनिस्वनम् । क्षु-भसागरीर्घोष मैथिली प्रासमागता ॥३८॥  
 कि किमेतदहो नाथ प्राप्तमित्युद्गतस्त्रय । आलिङ्गतिस्म जीवेश वल्ली कल्पतरु यथा ॥३९॥  
 न भेत्त-व्य न भेत्तव्य इति ता परितान्व्य स । अचि-तयदय कस्य भवेच्छन्द सुदुर्धर ॥४०॥  
 ख किमेप सिंहस्य भवेज्जलधरस्य वा । आहोस्त्रिदम्बुनाथस्य पूरयत्यखिल नभ ॥४१॥  
 उवाच च प्रिये नूतममा चतुरगामिन । नादिन प्रचलपक्षा राजहसा नभोऽङ्गणे ॥४२॥

लगे कि जिसने शम्भूकको मारा है तथा खड्गरत्न हथिया लिया है । हे राजन् ! यदि उसकी  
 उपेक्षाकी जायगी तो वह क्या नहीं करेगा ? ॥२७-३०॥ कुछ विवेकी मन्त्री इस प्रकार बोले  
 कि हे नाथ ! यह कार्य जल्दी करनेका नहीं है इसलिए सब सामन्तोंको बुलाओ और रावणको  
 भी खबर दी जाय ॥२६॥ जिसे खड्गरत्न प्राप्त हुआ है वह सुखपूर्वक यशमें कैसे किया जा  
 सकता है ? इसलिए मिलकर समूहके द्वारा करने योग्य इस कार्यमें उतावली करना ठीक  
 नहीं है ॥३०॥

तदन-तर उसने गुरुजनोंके धचनोंके अनुरोधसे रावणको खबर देनेके लिए एक तरुण तथा  
 वेगशाली दूत लङ्काको भेजा ॥३१॥ उधर कार्य सिद्ध करनेमें तत्पर रहनेवाला वह दूत, किसी  
 राज्यधैर्यके कारण चिर काल तक रावणके पास बैठा रहा ॥३२॥ इधर तीव्र क्रोधसे जिसकी  
 आत्मा व्याप्त हो रही थी तथा जिसका मन पुत्रके गुणोंमें चार बार जा रहा था ऐसा खरदूषण  
 पुन बोला कि मायासे रहित क्षुद्र भूमिगोचरी प्राणियोंके द्वारा, क्षोभको प्राप्त हुआ दिव्य सेना  
 रूपी सागर नहीं तैरा जा सकता ॥३३-३४॥ हमारी इस शूरीरताको धिक्कार है जो अन्य  
 सहायकोंकी वाञ्छा करती है । मेरी वह भुजा किस कामकी जो अपनी ही दूसरी भुजाकी इच्छा  
 करती है ॥३५॥ इस प्रकार कहकर जो परम अभिमानको धारण कर रहा था तथा क्रोधके कारण  
 जिसका मुख कम्पित हो रहा था ऐसा शीघ्रतासे भरा खरदूषण मित्राके बीचसे उठकर आकारामे  
 जा उडा ॥३६॥ उसे हठमें तत्पर देख उसके चौदह हजार मित्र जो पहलेसे तैयार थे तृण भरमें  
 नगरसे बाहर निकल पडे ॥३७॥ राक्षसाकी उस सेनाके, क्षोभको प्राप्त हुए सागरके समान  
 शब्दवाले वादित्रोंका शब्द सुनकर सीता भयको प्राप्त हुई ॥३८॥ हे नाथ ! यह क्या है ? क्या  
 है ? इस प्रकार शब्दोंका उच्चारण करती हुई वह भर्तारसे उस प्रकार लिपट गई जिस प्रकार कि  
 लता कल्प वृक्षसे लिपट जाती है ॥३९॥ 'नहीं डरना चाहिए नहीं डरना चाहिए' इस प्रकार  
 उसे सात्वना देकर रामने विचार किया कि यह अत्यन्त दुर्धर शब्द किसका होना चाहिए ?  
 ॥४०॥ क्या यह सिंहका शब्द है या मेघकी ध्वनि है अथवा समुद्रकी गर्जना समस्त आकाराको  
 व्याप्त कर रही है ॥४१॥ उन्होंने सीतासे कहा कि हे प्रिये ! जान पडता है वे मनोहर गमन



किं वा दुष्टद्विजा कचिदन्ये त्वद्भयकारिण । समर्पय प्रिये चाप प्रलय प्रापयाम्यमून् ॥४३॥  
 अधासन्नवमागच्छद् विविशामुधमनुलम् । वातेरिताम्रवृन्दाध निरीक्ष्य सुमहद्वलम् ॥४४॥  
 जगाद् राघव किं तु नन्दीश्वरममा सुरा । जिनन्दान् वन्दितु मन्वा प्रस्थिता स्युर्महीनम् ॥४५॥  
 भाहो वशस्थल द्विवा हवा कमपि मानवम् । असिरस्ने सुशीतेऽस्मिन् प्राप्ता मायाविवैरिण ॥४६॥  
 दुरशीलया तया नून स्त्रिया मायाप्रवाणया । निजा सर्वोभिता पुनैः स्युस्मद् दुष्टृतिं प्रति ॥४७॥  
 नात्र युक्तमवशात् सैवमभ्यर्णतामितम् । इत्युक्त्वा क्वचैः टाप कारुणिके घ न्यपातयन् ॥४८॥  
 ततस्तमञ्जलिं कृत्वा सुमित्रातनयोऽगदत् । भयि स्थिते न सरम्भस्तव देव तिराजते ॥४९॥  
 सरत्त राजपुत्रीं च प्रत्यरासि वज्राभ्यहम् । ज्ञेया च सिंहादेव मम यथापदुज्ज्वेत् ॥५०॥  
 इत्युक्त्वा कञ्चुच्छ्रं समुपात्तमहायुष । यादुधुमन्पुत्रं धर्मीहृत्तमण प्रत्यरिस्थित ॥५१॥  
 दृष्ट्वा तमुत्तमाकार वीरं पुरपुत्रवम् । पर्यस्तुण्न् विहाय स्या जलदा इव पर्वतम् ॥५२॥  
 यत्किमुद्गरचक्राणि कुन्तवाग्राश्च खेचरै । परिकार्णान्यमी सम्यक् शस्त्रैरेव न्यवारयन् ॥५३॥  
 निरुध्य सर्वशस्त्राणि खेचरैः प्रहितानि स । चन्द्रदण्डान् शरान् मात्रुत् प्रयुक्ता व्यामगाहिन् ॥५४॥  
 एकद्वैव सा तेन विद्या रमहाचम् । रूढा वाणैः कद्विन्द्रेव विज्ञानैः स्वयतामना ॥५५॥  
 माणिक्यशकलाङ्गानि राजमानानि कुण्डलैः । पेनु शिरासि खाद् भूमिं खसर कमरानि वा ॥५६॥  
 शैलाभा द्विरदा पेनुरर्धं सद् महाभग । कुर्वते तिनद् भीम सद्यस्त्रद्वामसं ॥५७॥

करनेवाले तथा पद्माकी हिलानेवाले राजहंस पत्नी आकाशरूपी आंगनमें शत्रु करते हुए जा रहे हैं ॥४४॥ अथवा तुम्हें भय उत्पन्न करनेवाले कोई दूसरे दुष्ट पत्नी ही जा रहे हैं । हे प्रिये ! धनुष देओ, जिससे मैं इन्हें प्रलयको प्राप्त करा दूँ ॥४५॥ तदनन्तर नाना प्रकारके शस्त्रासे युक्त, वायुसे प्रेरित मेघ समूहके समान दीप्तनेवाली बड़ी भारी सेनाको समीपमें आती देख रामने कहा कि क्या ये महा तेजके धारक देव भक्ति पूर्वक चिन्ते द्र देवकी वदना करनेके लिए नन्दीश्वर द्वापकी जा रहे हैं ॥४६-४७॥ अथवा योंसके भिडेको छेदकर तथा किसी मनुष्यको मारकर यह रत्नरत्न लक्ष्मणने लिया है सो मायावी शत्रु ही आ पहुँचे हैं ॥४८॥ अथवा जान पड़ता है कि उस दुराचारिणी मायाविनी स्त्रीने हम लोगको दुःख देनेके लिए आत्मीय जनाकी लोभित किया है ॥४९॥ अत्र निकटमें आई हुई सेनाकी उपज्ञा करना उचित नहीं है ऐसा कहकर रामने कवच और धनुष पर नष्टि डाली ॥४९॥ तत्र लक्ष्मणने हाथ जोड़कर कहा कि हे देव ! मेरे रहते हुए आपका क्रोध करना शोभा नहीं देता ॥४९॥ आप राजपुत्रीकी रक्षा कानिए और मैं शत्रुकी ओर जाता हूँ । यदि मुझपर आपत्ति आयेगी तो मेरे सिंहावासे उसे समझ लेना ॥५०॥ इतना कहकर जो कवचसे आच्छादित हैं तथा जिसने महाशस्त्र धारण किये हैं ऐसे लक्ष्मण युद्धके लिए तत्पर हो शत्रुकी ओर मुक्तकर रखे हो गये ॥५१॥ उत्तम आकारके धारक, मनुष्योंमें श्रेष्ठ तथा अतिशय शूरवीर उन लक्ष्मणको देखकर आकाशमें स्थित त्रिधाधरोंने उद्दे इस प्रकार घेर लिया जिस प्रकार कि मेघ किसी पर्वतको घेर लेते हैं ॥५२॥ विद्याधरोंके द्वारा चलाये हुए शक्ति, गुप्तर, धक्, भाले और वाणाका लक्ष्मणने अपने शस्त्रासे अच्छी तरह निवारण कर दिया ॥५३॥ तदनन्तर वे विद्याधरोंके द्वारा चलाये हुए समस्त शत्रुको रोककर उनकी ओर वज्रमय वाण छोड़नेको तत्पर हुए ॥५४॥ अकेले लक्ष्मणने विद्याधरकी वह बड़ी भारी सेना अपने वाणासे उस प्रकार रोक ली जिस प्रकार कि मुनि विशिष्ट ज्ञानके द्वारा सोटी इच्छाका रोक लेते हैं ॥५५॥ मणिगण्डासे युक्त तथा कुण्डलासे सुशोभित शत्रुआके शिर, आकाशरूपी सरोधरके कमलाङ्गे समान कट-कटकर आकाशसे प्रथिवी पर गिरने लगे ॥५६॥ पर्वताके समान

१ लक्ष्मणमुपात्त म० । २ प्रत्यरि म० । ३ कुन्तिता दृष्ट्या वदित्वा 'का कत्तपुरपञ्चि' इति कुर्याने वदादेश । ४ भूमि । ५ गगनसरावरकमलानि इव शिरासि । ६ सद्योऽत्र दत्तं, सद्यस्त्रवासम म० ।

अयमस्य महान् लाभो निम्नतस्तस्य तानभूत् । यद्भूर्ध्वं शरैर्योषान्<sup>१</sup> विव्याथ सहवाहनात् ॥५८॥  
 अत्रान्तरे प्ररिप्राप्त पुष्पकस्थो दशानन । क्रुद्धं कृताशयो हन्तु शम्भूकचकारिणम् ॥५९॥  
 अपश्यच्च महामाहसम्प्रवेशनकारिणाम् । रत्नरत्नो<sup>२</sup> समुद्रती<sup>३</sup> साक्षाहृत्तमोमिव स्थिताम् ॥६०॥  
 चन्द्रम कान्तवदनां बन्धूकामवराधराम्<sup>४</sup> । तनूदरीं च लक्ष्मीं च जलजसृष्टदलोचनाम्<sup>५</sup> ॥६१॥  
 महामकुम्भगिरिपरमोच्चुह्वविपुलस्तनाम् । यौवनोदयसम्पन्ना सर्वैर्घ्नीगुणसद्गताम् ॥६२॥  
 सहितामिव कामेन कान्तिज्या दृष्टिसायकाम् । निजा चापलता हन्तु सुखैरेव यथेप्सितम् ॥६३॥  
 सर्वम्भूतिमहाचारीं रूपातिशयवर्तिनीम् । सीता मनोभवोदारज्वरप्रहणकारिणाम् ॥६४॥  
 तस्यामाङ्घ्रितमात्राया प्रयोऽस्य प्रलय गत । अजायतापरो भावश्चित्रा हि मनसो गति ॥६५॥  
 अचिन्तयच्च किं नाम जावित मेऽनया विना । अयुक्तस्थानया का वा श्रीमद्दायस्य वेरमन ॥६६॥  
 इमामप्रतिमाकारा ललिता नवयौवनाम् । हराम्यद्यैव यावन्नो कश्चिज्जाना<sup>६</sup>युपागतम् ॥६७॥  
 भारण्यु प्रसभ कार्यं न मे शक्तिं विद्यते । किन्विदमादृश वस्तु यत्कीपानत्वमर्हति ॥६८॥  
 निवेद्यन् गुणास्तावत्नोकेऽल याति लाघवम् । ईदृशान् किं पुनर्दोषान् स्यापयन्ना प्रियो भवेत् ॥६९॥  
 धितय सकल लोक शशाङ्करनिर्मला । कीर्तिर्व्यवस्थिता माभूत् सैव सति मलीमसा ॥७०॥  
 तस्मादकार्तिसम्भूतिमकुञ्चं स्वार्थतत्पर । रह प्रयत्नमारेभे लोको हि परमो गुरु ॥७१॥

वडे-वडे हाथी घोडोंके साथ-साथ नीचे गिरने लगे तथा ओठोंको ढसनेवाले वडे उडे योद्धा भयकर शब्द करने लगे ॥१५७॥ उन सनको मारते हुए लक्ष्मणको यह बडा लाभ हुआ कि वे ऊपरकी ओर जानेवाले वाणोंसे योद्धाओंको उनके वाहनोंके साथ ही छेद देते थे अर्थात् एक ही प्रहारमें वाहन और उनके ऊपर स्थित योद्धाओंको नष्ट कर देते थे ॥१५८॥

तदनन्तर दशो नीचमे शम्भूकके चघकर्ताको मारनेके लिए निचार करनेवाला, क्रोधसे भरा रावण पुष्पक विमानमें बैठकर वहाँ आया ॥ १५९ ॥ आते ही उसने महामोहमें प्रवेश करानेवाला तथा रति और अरतिको धारण करनेवाली साक्षान् लक्ष्मीके समान स्थित सीताको देखा ॥६०॥ उस सीताका मुख चन्द्रमाके समान सुन्दर था, वह बन्धूक पुष्पके समान उत्तम ओष्ठाको धारण करनेवाला था, कृशाङ्गी थी, लक्ष्मीके समान थी, कमलदलके समान उसके नेत्र थे ॥६१॥ रिसा वडे हाथीके गण्डस्थलके अप्रभागके समान उन्नत तथा स्थूल स्तन थे, वह यौवनके उदयसे सम्पन्न तथा समस्त स्त्री गुणासे सहित था ॥६२॥ वह ऐसी जान पडती था मानो इच्छित पुष्पको अनायास ही मारनेके लिए कामदेवके द्वारा धारण की हुई अपनी धनुषरूपी लता ही हो । कान्ति ही उस धनुष रूपा लताको डोरो थी और नेत्र ही उसपर चढाये हुए वाण थे ॥६३॥ वह सनको स्मृतिको चुगनेवाली थी, अत्यन्त रूपवती थी और कामरूपी महाज्वरको उत्पन्न करनेवाली थी ॥६४॥ उसे देखते ही रावणका क्रोध नष्ट हो गया और दूसरा ही भाव उत्पन्न हो गया सो ठीक हा है क्योंकि मनरी गति विचित्र है ॥६५॥ वह निचार करने लगा कि इसके बिना मेरा जीवन क्या है ? और इसके बिना मेरे घरकी शोभा क्या है ? ॥६६॥ इसलिए जन तक कोई मेरा आना नहीं जान लेना है तब तक आज ही मैं इस अनुपम, नवयौवना सुन्दरीका अपहरण करता हूँ ॥६७॥ यद्यपि इस कार्यको पल्पपूर्वक सिद्ध करनेकी शक्ति मुझमें विद्यमान है किन्तु यह कार्य ही ऐसा है कि द्विपानेरे योग्य है ॥६८॥ लोकमें अपने गुणोंको प्रकट करनेवाला मनुष्य भी अत्यधिक लघुतासे प्राप्त होता है फिर जो इस प्रकारके दोषोंको प्रकट करनेवाला है वह प्रिय कैसे हो सकता है ? ॥६९॥ मेरी चन्द्रमाकी किरणोंके समान निर्मल कीर्ति समस्त ससारमें ध्यान दीकर स्थित है सा यह ऐसा काम करने पर भलिन न हो जाय ॥७०॥ इसलिए अकारिणी

इति ध्यात्वावलोकित्वा निघण्टोपायमज्ञसा । विवेद हरणे तस्यास्तेषां नामकुलादि यत् ॥७२॥  
 अयं स लक्ष्मणः स्यात् बहुभिः कृतरोचनः । अयं स रामः सीतेय सा गुणैः परिकीर्तिता ॥७३॥  
 अमुष्य व्यसनं कृत्वा सिंहनादं स धन्विनः । गरुमानिव गृध्रस्य सीतां पेशीमिवाद्दे ॥७४॥  
 जायावैरप्रदीप्तोऽपमज्ज्वलः सरदूपणः । शक्यादिभिः जगदीशेभ्यो मारिष्यति ॥७५॥  
 महाप्रकृष्टप्रस्य नदस्त्रोद्धारहसः । तटयोः पातने शक्तिः केन न प्रतिपद्यते ॥७६॥  
 इति सखिन्य कामार्तः शिशुवस्वल्पमानसः । विषवन्मरणोपाय हरणं प्रति निश्चितः ॥७७॥  
 शस्त्रान्धकारिते जाते तयोरप महाहये । कृत्वा सिंहरवं रामरामेति च मुहुर्जंगी ॥७८॥  
 त च सिंहरव ध्रुत्वा स्फुट लक्ष्मणभाषितम् । प्रीत्यारतिर्मयात् पत्नो व्याकुलीभूतमानसः ॥७९॥  
 निर्माह्यैर्जानकी सम्यक् प्रकृदाचारयन्तभूरिभिः । जगमेक प्रिये त्विष्ट मा भैरोरिति सन्नदन् ॥८०॥  
 वयस्त्रयनितां तावन्नटायू रच यनतः । किञ्चिदस्मकृत भद्र स्मरस्युपकृत यदि ॥८१॥  
 इत्युक्त्वा वार्यमाणोऽपि शत्रुनैः क्रन्दनाकुलेः । सती मुक्त्वा जनेऽरण्ये वेगवान् प्राविशद् रणम् ॥८२॥  
 अत्रान्तरे समागत्य विद्यालोकैर्न कोविद् । सीतामुत्क्षिप्य बाहुभ्यां नलिनीमिव वारणः ॥८३॥  
 कामदाहगृहीता मा विस्मृताशेषार्मणीः । आरोपयितुमरिभे पुष्पक गगनस्थितम् ॥८४॥

उत्पत्तिको वचाता हुआ यह स्वार्थसिद्ध करनेमें तत्पर हो एकान्तमें प्रयत्न करता है सो ठीक ही है क्योंकि लोक परमगुरु है अर्थात् संसारके प्राणी श्रेष्ठ चतुर हैं ॥७१॥ इस प्रकार विचारकर उसने अवलोकितो विद्याके द्वारा सीताके हरण करनेका वास्तविक उपाय जान लिया। राम-लक्ष्मण तथा सीताके नाम कुल आदि सबका उसे ठीक ठीक ज्ञान हो गया ॥७२॥ जिसे अनेक लोग घेरे हुए हैं ऐसा यह वह लक्ष्मण है, यह राम है, और यह गुणोंसे प्रसिद्ध सीता है ॥७३॥ इसके बाद उस रावणने इस घनुर्धारी रामके लिए आपत्तिस्वरूप सिंहनाद करके सीताको ऐसे पकड़ लिया जैसे गरुडपक्षी गीधके मुखकी मांसपेशीको ले लेता है ॥७४॥ स्त्रीके वैरसे अत्यन्त क्रोधका प्राप्त हुआ यह सरदूपण अजेय है तथा शक्ति आदि शस्त्रोंसे इन दोनों भाइयोंको क्षणभरमें मार डालेगा ॥७५॥ जिसमें बहुत बड़ा पूर चढ़ रहा है तथा जिसका वेग अत्यन्त तीव्र है ऐसे नदमें दोनों तटोंको गिरानेकी शक्ति है यह कौन नहीं मानता है ? ॥७६॥ ऐसा विचारकर कामसे पीड़ित तथा बालकके समान विवेकशून्य हृदयको धारण करनेवाले रावणने सीताके हरण करनेका उस प्रकार निश्चय किया कि जिस प्रकार कोई मारनेके लिए विषपानका निश्चय करता है ॥७७॥

अथानन्तर जन लक्ष्मण और सरदूपणके बीच शस्त्रोंके अन्धकारसे युक्त महायुद्ध हो रहा था तब रावणने सिंहनादकर बार-बार राम ! राम !! इस प्रकार उच्चारण किया ॥७८॥ उस सिंहनादको सुनकर रामने समझा कि यह लक्ष्मणने ही किया है ऐसा विचारकर वे प्रीतिवश व्याकुलित चित्त हो अरतिको प्राप्त हुए ॥७९॥ तदनन्तर उन्होंने सीताको अत्यधिक मालाओंसे अञ्जो तगह डक दिया और कहा कि हे प्रिये ! तुम क्षणभर यहाँ ठहरो भय मत करो ॥८०॥ सीतासे इतना कहनेके बाद उन्होंने जटायुसे भी कहा कि हे भद्र ! यदि तुम मेरे द्वारा किये हुए उपकारका स्मरण करते हो तो मित्रकी स्त्रीकी प्रयत्न पूर्वक रक्षा करना ॥८१॥ इतना कहकर यद्यपि क्रन्दन करनेवाले पक्षियोंने उन्हें रोका भी था तो भी वे निर्जन वनमें सीताको छोड़कर वेगसे युद्धमें प्रविष्ट हो गये ॥८२॥

इसी बीचमें विद्याके आलोकसे निपुण रावण, कपालिनीको हाथीके समान दोनों मुजाओं से सीताको उठाकर आकाशमें स्थित पुष्पक विमानमें चढ़ानेका प्रयत्न करने लगा। उस समय

द्विपमाणांश्च प्रेष्य स्वामिना वनिता प्रियाम् । सरम्भवद्विदीष्टा मा समुत्पत्य महाज्व ॥८५॥

तादृगकोटिभिरयन्त जगद्युत्सोलाङ्गलैः । दशाननसुर क्षेत्र चकपात्सुसमाद्रितम् ॥८६॥

परपैरुद्धना नैश्च वातस्त्वातिताशुके । जघान जवनैर्भूय सर्वकायमल बल ॥८७॥

इष्टवस्तुविधातेन रावण कोपवानथ । हत्वा हस्ततलेनैव महीतलमजागमत् ॥८८॥

ततोऽसौ परुषाघाताद् विरूलाभूतमानस । कुर्वन् केकापित दु र्या खगो मूर्च्छामुपागत ॥८९॥

ततो निर्विनमाराण्य पुष्पक जनकात्मजाम् । जानान सन्नत काम रावण स्त्रेच्छया यया ॥९०॥

शाचापहृतमात्मान रामरागातिशायनात् । सीता शोकप्रशीभूता विललापार्तनिस्त्वनात् ॥९१॥

तव स्वपुरुषसकहृदया कृतरोदनाम् । इष्ट्वा सातानभूत् किञ्चिद् विरागीव दशानन ॥९२॥

अचिन्तयच्च मे राधा कृतेऽभ्यस्यैव कस्यचित् । यदिय रीति सक्तानु करुण विरहाकुला ॥९३॥

कीर्तयन्ता गुणान् भूय साधूनामभिसम्मतान् । पुरापान्तरसम्बन्धानतिशोकपरायणा ॥९४॥

वर्त्ममेतेर खड्गेन गूढा व्यापाद्व्याभ्यमूम् । अथवा न स्त्रिय हन्तु मम चेत प्रवर्तते ॥९५॥

न प्रसादयितु शक्य क्रुद्ध शाप्र नरेधर । अभीष्ट लब्धुमथवा क्षतिर्वा कातिरेव वा ॥९६॥

विद्या वाभिमता लघु परलोकक्रियापि वा । प्रिया वा मनसो भार्या यद्वा किञ्चित् समाहितम् ॥९७॥

साधूनामप्रत पूवे प्रतमेत-मयाजितम् । अग्रसज्ञा न भोक्तव्या परस्य स्नामयेति च ॥९८॥

उसकी आत्मा कामकी दाहसे दग्ध हो रही थी तथा उसने समस्त धर्म बुद्धिको भुला दिया था ॥८५-८६॥ तदनन्तर रामकी प्रिय वनिताको हरी जाती देर जिसकी आत्मा क्रोधान्तिसे प्रज्वलित हो रही थी ऐसा जगयु वेगसे आकाशमें उड़कर खूनसे गीले रावणके वक्ष स्थल रूपी रेतको अत्यन्त तीव्र अग्रभागको धारण कनेवाले नख रूपी हलाके द्वारा जोतने लगा ॥८५-८६॥ तत्पश्चात् अतिशय बलवान् जटायुने वायुके द्वारा वस्त्रोको फाडनेवाले कठोर तथा वेगशाली पद्मेके आघातसे रावणके समस्त शरीरको छिन्न भिन्न कर डाला ॥८७॥ तदनन्तर इष्ट वस्तुमें बाधा डालनेसे क्रोधको प्राप्त हुए रावणने हस्ततलके प्रहारसे ही जटायुको मारकर पृथ्वीतल पर भेज दिया अर्थात् नीचे गिरा दिया ॥८८॥ तदनन्तर कठोर प्रहारसे जिसका मन अत्यन्त विकल हो रहा था ऐसा दु खसे भरा जटायु पत्नी के कें करता हुआ मूर्च्छित हो गया ॥८९॥ तत्पश्चात् बिना किसी विघ्न बाधाके सीताको पुष्पक विमान पर चढाकर कामको ठीक जाननेवाला रावण इच्छानुसार चला गया ॥९०॥ सीताका रामसे अत्यधिक राग था इसलिए अपने आपको अपहृत जान शोकके वशीभूत हो वह आर्तनाद करती हुई विलाप करने लगा ॥९१॥ तदनन्तर अपने भर्तामें जिसका चित्त आसक्त था ऐसी सीताको रोती देर रावण क्रुद्ध विरक्त सा हो गया ॥९२॥ वह विचार करने लगा कि इसने हृदयमें मेरे लिए आदर ही क्या है यह तो किसी दूसरेके लिए ही क्रुणरदन कर रही है उसमें ही इसके प्राण आसक्त हैं तथा उमाके विग्रहसे आकुल हो रही है ॥९३॥ सत्वहृषोको इष्ट हैं ऐसे अन्य पुरुष सम्बन्धी गुणोका वार वार कथन करती हुई यह अत्यन्त शोकके धारण करनेमें तत्पर है ॥९४॥ तो क्या इस राजसे इस मूर्खाको मार डालें अथवा नहीं, स्त्रीको मारनेके लिए मेरा चित्त प्रवृत्त नहीं होता ॥९५॥ अथवा अधीर होनेकी बात नहीं है क्याकि तो राजा कुपित होता है उसे शीघ्र ही प्रसन्न नहीं किया जा सकता । इसीप्रकार इष्ट वस्तुका पाना, कान्ति अथवा कीर्तिका प्राप्त करना अभीष्ट विद्या, पारलौकिकी प्रिया, मनको आनन्द देनेवाला भार्या अथवा और भा जो कुछ अभिलषित पदार्थ हैं वे सहसा प्राप्त नहीं हो जाते—उन्हें प्राप्त करनेके लिए समय लगता हा है ॥९६-९७॥ मैंने साधुओंके समक्ष पहले यह

१. नवसूत्रहलै । २ दशाननस्येद दायाननम् । दशानन म०, ग० । ३ निस्त्वान् म० । ४ नृदा म० । ५ अभीष्टहलम । अभीष्टम् ज० ।

रचिद्वि प्रतं तस्मात् प्रसाद् प्रापयाम्यमुम् । भद्रिप्यथनुकूलेय कालेन मम सम्पदा ॥१६१॥  
 इति सत्रिय तामङ्गात्तले<sup>१</sup> स्वस्मिन्नतिष्ठिपत् । प्रतीचते हि तत्काल मृयु कर्मप्रचोदित ॥१७०॥  
 अथेपुवारिधाराभिराकुल रणमण्डलम् । प्रविष्ट राममालोक्य सुमित्रातनयोऽगदन् ॥१७१॥  
 हा कष्ट देव कस्मात् त्व भूमिमेतामुपागत । एकाकीं मैथिली मुक्त्वा विपिने विज्जमङ्गले ॥१७२॥  
 तेनोक्तस्त्वद्भव श्रुत्वा प्राज्ञोऽस्मि खरया निवत । सोऽगोचद् गम्यता प्राप्य न साधु भवता कृतम् ॥१७३॥  
 सर्वथा परमोस्ताहो जय त्व बलिग रिपुम् । इयुक्त्वा शङ्कया युक्तो जानकीं प्रति चञ्चल ॥१७४॥  
 चगाञ्चिवर्तते यावन् तावच्च न दृश्यते । सातेति हतवधेते रामरच्युतममन्यत ॥१७५॥  
 हा सीत इति भाषित्रा मूर्च्छितो धरणांमगान् । भद्रो तेन परिप्लवा सा बभूव विभूषिता ॥१७६॥  
 सजा प्राप्य ततो दृष्टि निक्षिपन् वृषलङ्गले । इति प्रेमपरीतात्मा जगादाव्यन्तमाकुल ॥१७७॥  
 अथि देवि क्व यातासि प्रयच्छ वचन द्रुतम् । चिर कि प्रतिहासेन दृष्टासि तरुमध्यगा ॥१७८॥  
 एद्यागच्छ (प्र) यातोऽस्मि कार्यं कोपेन किं प्रिये । जानास्येव चिर<sup>२</sup> कोपात्तव देवि न मे सुखम् ॥१७९॥  
 एव कृतवनिर्ग्राम्यन् प्रदेश त सुगह्वरम् । गृभ मुमुषुर्गच्छिष्ट कृतेकेकास्वन शनै ॥१८०॥  
 ततोऽन्यन्तविषगात्मा त्रियमाणस्य पक्षिण । कर्णजापं ददौ प्राप्तस्त तेनामरकायताम् ॥१८१॥  
 तस्मिन् कालगते पत्रं शोकार्तं केवले वने । त्रियोगदहनव्याप्त पुनर्मूर्च्छामशिश्रियत् ॥१८२॥

नियम लिया था कि जो परस्त्री मुझे नहीं चाहेगी मुझपर प्रसन्न नहीं रहेगी मैं उसका उपभोग नहीं करूँगा ॥१८२॥ इसलिए इस व्रतकी रक्षा करता हुआ मैं इसे प्रसन्नताको प्राप्त कराता हूँ संभव है कि यह समय पाकर मेरी सम्पदाके कारण मेरे अनुकूल ही जावेगी ॥१८३॥ ऐसा विचार कर रावणने सीताको गोदसे हटा कर अपने समीप ही बैठा दिया सो ठीक ही है क्याकि कर्मसे प्रेरित मृत्यु उसके योग्य समयकी प्रतीक्षा करती ही है ॥१८०॥

अथानन्तर वागरूपी जलकी धाराओंसे आकुल युद्धके मैदानमें रामको प्रविष्ट देव लक्ष्मण ने कहा ॥१८१॥ कि हाय देव ! वडे दुःखकी बात है आप विघ्नोसे व्याप्त वनमें सीताको अकेली छोड़ इस भूमिमें किस लिये आये ? ॥१८०॥ रामने कहा कि मैं तुम्हारा शब्द सुनकर शीघ्रतासे यहाँ आया हूँ । इसके उत्तरमें लक्ष्मणने कहा कि आप शीघ्र ही चल जाइये आपने अच्छा नहीं किया ॥१८३॥ 'परम उत्साहसे भरे हुए तुम बलवान् शत्रुकी सज प्रकारसे जीतो' इस प्रकार कह कर शङ्कासे युक्त तथा चञ्चलचित्तके धारक राम जानकीकी ओर वापिस चले गये ॥१८४॥ जब राम चगभरमें यहाँ वापिस लौटे तब उन्हें सीता नहीं दिखाई दी । इस घटनासे रामने अपने चित्तको नष्ट हुआ सा अथवा च्युत हुआ सा माना ॥१८५॥ हा सीते ! इस प्रकार कहकर राम मूर्च्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़े और भर्ताके द्वारा आलिङ्गित भूमि सुशोभित हो उठी ॥१८६॥ तदनन्तर जब सन्नाको प्राप्त हुए तब वृक्षांसे व्याप्त वनमें अधर-अधर दृष्टि डाल हुयेते प्रेमपूर्ण आत्माके धारक राम, अन्यन्त व्याकुल होते हुए इस प्रकार कहने लगे ॥१८७॥ कि हे देवि ! तुम कहाँ चली गई हो ? शीघ्र ही वचन देओ । चिरकाल तक हँसी करनेसे क्या लाभ है ? मैंने तुम्हें पृथ्वीमें मध्य चलती हुई देखा है ॥१८८॥ हे प्रिये ! आओ आओ, मैं प्रयाण कर रहा हूँ, शीघ्र करनेसे क्या प्रयोजन है ? हे देवि ! तुम यह जानती ही हो कि दीर्घकाल तक तुम्हारे शीघ्र करनेसे मुझे सुख नहीं होता है ॥१८९॥ इस प्रकार शब्द करने तथा गुफाओंसे युक्त उस स्थानमें ध्रमण करते हुए रामने धीरे-धीरे केंक करते हुए मरणोन्मुख जटायुको देखा ॥१९०॥ तदनन्तर अत्यन्त दुःखित होकर रामने उस मरणोन्मुख पक्षीके कानमें शोकाकार मन्त्रका जाप दिया और उसके प्रभावसे वह पक्षी देवपर्यायकी प्राप्त हुआ ॥१९१॥ त्रियोगाग्निसे व्याप्त राम उस पक्षी

ममाश्वस्य च सर्वत्र न्यस्य दृष्टिं समाकुलः । दानं ललाप नैराश्याद् भूनेनेजातमानसः ॥११३॥  
 रन्ध्रं प्राप्य वने भीमे हा केनास्मि दुरात्मना । हरता जानकीं कथं हत्वो दुष्करकारिणा ॥११४॥  
 दर्शयस्तामश्रोत्वृष्टां हरन् शोकमशेषतः । को नाम दान्धवत्वं मे वनेऽस्मिन् परमेत्यति ॥११५॥  
 भो वृषाश्रमपरुद्धाया सरोजदललोचना । सुकुमारादिका<sup>३</sup> भीरुस्वभावा वरगामिनी ॥११६॥ ✓  
 चित्तोत्सवकरी पद्मरजोगन्धिमुखानिला । अर्वा यौपिती सृष्टिर्दृष्टा स्यात् काचिद्व्रता ॥११७॥ ✓  
 कथं निरुत्तरा यूषमिन् युक्त्वा तद्गुणैर्हतः । पुनर्मूर्च्छांपरीतात्मा धरणीतलमागमत् ॥११८॥ ✓  
 ममाश्वस्य च सक्नुवो वज्रावर्तं महा पुनः । आयोप्यास्फालयन्मुक्तं टङ्कारपुरुनित्स्वनम् ॥११९॥  
 सिंहाना भोतिजनन नृसिंहः सिंहनित्स्वनम् । सुमोच सुहृत्सुप्रमुक्तं द्विरदश्रुतम् ॥१२०॥  
 भूयो त्रिपाद्भाग्यं स्वकृत्वापोत्तरीयकम् । उपविश्य प्रमादं स्तं शूरोच कलितं सणात् ॥१२१॥  
 दुःश्रुत्य दुर्विमर्शेण भजता खरितां गतिम् । धर्मधीरिव भूदेन हारिता हा मया त्रिया ॥१२२॥  
 मानुषव परिभ्रष्ट गहने भवसङ्केते । प्राप्नुमत्यद्भुत भूयः प्राणिनाशुभकर्मणा ॥१२३॥  
 प्रैलोक्यगुणवद्वल पतित निम्नगापती । लभेत कं पुनर्धन्यः कालेन महताप्यलम् ॥१२४॥  
 वनितामृतमेतन्मे कराङ्कस्य महागुणम् । प्रनष्ट सङ्गति भूयः केनोपायेन यास्यति ॥१२५॥  
 वनेऽस्मिन् जननिर्मुक्तं कस्य दोषः प्रदीयते । नूनं मत्यागकोपेन क्वापि याता तपस्विनी ॥१२६॥

के मरने पर शोकसे पीड़ित हो निर्जन वनमें पुनः मूर्च्छाको प्राप्त हो गये ॥११२॥ जन सचेत हुए तब सय ओर दृष्टि डालकर निराशताके कारण व्याकुल तथा खिन्न चित्त होकर करुण विलाप करने लगे ॥११३॥ वे कहने लगे कि हाय-हाय भयङ्कर वनमें छिद्र पाकर कठोर कार्य करनेवाले किसी दुष्टने सीताका हरण कर मुझे नष्ट किया है ॥११४॥ अब विछुड़ी हुई उस सीताको दिखा कर समस्त शोकको दूर करता हुआ कौन व्यक्ति इस वनमें मेरे परम वान्धवपनेको प्राप्त होगा ॥११५॥ हे वृद्धो! क्या तुमने कोई ऐसी स्त्री देखी है? जिसकी चम्पाके फूलके समान कान्ति है, कमलदलके समान जिनके नेत्र हैं, जिसका शरीर अत्यन्त सुकुमार है, जो स्वभावसे भीरु है, उत्तम गतिसे युक्त है, हृदयमें आनन्द उत्पन्न करनेवाली है, जिसके मुखकी वायु कमलकी परागके समान सुगन्धित है तथा जो स्त्रीविषयक अपूर्व सृष्टि है ॥११६-११७॥ अरे तुम लोग निरुत्तर क्यों हो? इस प्रकार कह कर उसके गुणोंसे आकृष्ट हुए राम पुनः मूर्च्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़े ॥११८॥ जब सचेत हुए तब कुपित हो वज्रावर्त नामक महाधनुषको चढ़ाकर टङ्कारका विशाल शब्द करते हुए आस्फालन करने लगे। उसी समय नरश्रेष्ठ रामने बार-बार अत्यन्त तीव्र सिंहनाद किया। उनका वह सिंहनाद सिंहाको भय उत्पन्न करनेवाला था तथा हाथियोंने कान खड़े कर उसे डरते-डरते सुना था ॥११९-१२०॥ पुनः विषादको प्राप्त होकर तथा धनुष और उत्तरन्ददको उतारकर बैठ गये और तत्काल ही फल देनेवाले अपने प्रमादके प्रति शोक करने लगे ॥१२१॥ हाय-हाय जिस प्रकार मोही मनुष्य धर्मवृद्धिको हरा देता है उसी प्रकार लक्ष्मणके सिंहनादको अच्छी तरह नहीं श्रवणकर विचारके बिना ही शीघ्रतासे जाते हुए मैंने त्रियाको हरा दिया है ॥१२२॥ जिस प्रकार संसाररूपी वनमें एक बार छूटा हुआ मनुष्य भव, अशुभकार्य करनेवाले प्राणीको पुनः प्राप्त करना कठिन है उसी प्रकार त्रियाका पुनः पाना कठिन है। अथवा समुद्रमें गिरे हुए त्रिलोकी मूल्यरत्नको कौन भाग्यशाली मनुष्य दीर्घकालमें भी पुनः प्राप्त कर सकता है? ॥१२३-१२४॥ यह महागुणोंसे युक्ता वनितारूपी अमृत मेरे हाथमें स्थित होने पर भी नष्ट हो गया है सो अब पुनः किस उपायसे प्राप्त हो सरेगा? ॥१२५॥ इस निर्जन वनमें किसे दोष दिया जाय? जान पड़ता है कि मैं उसे छोड़कर गया था इसी मोघसे वह बेचारी कहीं चली

अरण्ये निर्मनुष्येऽन्मिन्कमुपेयं प्रमाद्य च । उपद्रामि दुष्टतायासो यो मे वार्तां निवेदयेत् ॥१२०॥  
 इयं ते प्राणतुल्येति चैन-ध्रुवयोः परम् । कुर्वाणप्रह्लादन को मे वधवागृहद्वयिता ॥१२०॥  
 दयावार्तादराः कौऽन्मिन् लोके पुरुषपुङ्गवः । यो मे ग्मिताननो कान्तां दुर्गपदचरितिताम् ॥१२१॥  
 हृदयागारमुहोस कात्याविरहवदिता । उदग्गजन्दानेन को मे निर्वापविपयनि ॥१२०॥  
 इत्युत्था परमोद्विक्तो महानिहितलोचनः । अयं हृत् किमपि ध्यापस्तन्मयी निश्चलरिमदः ॥१२१॥  
 अथ ना यन्तदूरम्यन्तकाकीस्वनं कथम् । ममाकर्ण्य दरा तर्प्यां ध्रुवगं च न्यवापवत् ॥१२०॥ ✓  
 अघिन्तपद्मुप्यादेऽन्म्यङ्गे गन्धमुचिन्तम् । किमिदं पङ्कजवनं भवेत्ताता कुतूहलात् ॥१२३॥ ✓  
 दष्टुर्थं मनोहारि नानातुमुममकुलम् । स्यान् हरितचेतोऽस्याः कदाचिन्मगमापकम् ॥१२४॥ ✓  
 जगाम च तमुद्देश यावच्चक्राहमुन्दरी । मया विना क्व यार्ताति पुनर्द्वेगमागमत् ॥१२५॥ ✓  
 भो भो महोधराशो ! धातुभिर्विषिषेधित ! मृतुर्दशरथस्य त्वां पश्याम्यः परिपृच्छने ॥१२६॥ ✓  
 विगुलस्तननघ्राहा विषोद्यो हसगामिनी । सञ्चितया भवेद् दष्टा मीता मे मनसः प्रिया ॥१२७॥ ✓  
 दष्टादष्टेति किं वधिं मूढि मूढि क्व सा क्व सा । केवल निगदस्येय प्रतिशब्दोऽयमांशः ॥१२८॥  
 इत्युत्था पुनरप्यासीत् किमदष्टेन चोदिता । कृतान्तराधुगा बाला ममामक्षा मती मती ॥१२९॥ ✓  
 षण्डोऽन्मिमालयाऽयन्त येगव्याविपेक्षया । कान्ता हता भवेद्यथा विषेय दुग्निच्छया ॥१३०॥ ✓

गई है ॥१२६॥ मैं पापाचारी इस निर्जन वनमें त्रिमके पाम जाकर तथा उमे प्रमन्न कर पूछूं जो मुझे प्रियाका समाचार बता सके ॥१२७॥ “यह तुम्हारी प्राणतुल्य प्रिया है” इस प्रकार अमृतको प्रदान करनेवाले यचनसे कौन पुरुष मेरे मन और कानोंको परम आनन्द प्रदान कर सकता है ? ॥१२८॥ इस संसारमें ऐसा कौन ब्यालु श्रेष्ठ पुरुष है जो मेरी मुमकुगती हुई निष्पाप कान्ताको मुझे दिगला सकता है ? ॥१२९॥ प्रियाके विरहरूपी अग्निसे जलने हुए मेरे हृदय-रूपी घरको कौन मनुष्य समाचाररूपी जल देकर शान्त करेगा ? ॥१३०॥ इस प्रकार कह कर जो परम उद्वेगको प्राप्त थे, पृथ्वीपर जिनके नेत्र लग रहे थे, और जिनका शरीर अत्यन्त निश्चल था जैसे राम बार-बार कुल्ल ध्यान करते हुए बैठे थे ॥१३१॥

अथानन्तर कुल्ल ही दूरीपर उन्होंने चन्वीका मनोहर शब्द सुना सो सुनकर उम दिशामें दृष्टि तथा कान दोनों ही लगाये ॥१३२॥ वे विचार करने लगे कि इस पर्वतके समीप ही गन्धर्वसे सूचित होनेवाला कमल वन है सो क्या वह कुतूहल वरा उस कमल वनमें गई होगी ? ॥१३३॥ नाना प्रकारके फूलोंसे व्याप्त तथा मनको हारण करनेवाला वह स्थान उमका पहलेसे देखा हुआ है सो संभव है कि वह कदाचित् क्षणभरके लिए उमके चित्तको हर रहा हो ॥१३४॥ ऐसा विचारकर वे उस स्थानपर गये जहाँ चकवी थीं । फिर ‘मेरे विना यह कहाँ जाती है’ यह विचारकर वे पुनः उद्वेगको प्राप्त हो गये ॥१३५॥ अब वे पर्वतको लक्ष्यकर कहने लगे कि हे नाना प्रकारकी धातुओंसे व्याप्त पर्वतराज ! राजा दशरथका का पुत्र पद्म (राम) तुमसे पूछता है ॥१३६॥ कि जिसका शरीर स्थूल स्तनोसे नम्रभूत है, जिसके आठ दिम्बके समान हैं । जो हंसके समान चलता है तथा जिसके उत्तम नितम्ब हैं ऐसी मनकी आनन्द देनेवाली मीता क्या आपने देगी है ? ॥१३७॥ उसी समय पर्वतसे टकराकर रामके शब्दोंकी प्रतिध्वनि निकली जिसे सुनकर उन्होंने कहा कि क्या तुम यह कह रहे हो कि हों देसों है देगों है तो बताओ यह कहाँ है ? कहाँ है ? कुछ समय बाद निश्चय होनेपर उन्होंने कहा कि तुम तो केवल ऐसा ही कहते हो जैसा कि मैं कह रहा हूँ जान पड़ता है यह इस प्रकारकी प्रतिध्वनि ही है ॥१३८॥ इतना पहचर वे पुनः विचार करने लगे कि यह सती बाला दुर्दैवसे प्रेरित होकर कहाँ गई

१. ग्मिताननः म०, व० । २. ममाचारव्यनलितदानेन । ३. सञ्चितम् म० ।

किंवाऽयन्तभ्रुधार्तेन नितान्तमूर्चेतसा । इभारिणा भवेद्मुक्ता सायुवर्गस्य वत्सला ॥१४१॥  
 पशोर्भीमैककार्यस्य मिहस्योन्वेसरस्य सा । ध्रियते दृष्टिमात्रेण नखादिस्पर्शानाद्रिणा ॥१४२॥  
 भ्राता भग्न मृषे भीमे लक्ष्मण मशय ध्रितः । सीतया विरहश्राय तेन जानामि नो रतिम् ॥१४३॥  
 जौवलीकमिम वेद्मि सरल प्राप्तसंशयम् । जानामि च पुनः शून्यमहो दुःखस्य चित्रता ॥१४४॥  
 दुःखस्य यावदेकस्य नावसान मज्जाग्रहम् । द्वितीयं तावदायातमहो दुःखार्णवो महान् ॥१४५॥  
 खड्गपादस्य स्वण्डोऽयं हिमदग्धस्य पावकः । स्वलितस्यावदे पातः प्रायोजनार्था बहुस्वगाः ॥१४६॥  
 तत पर्यन्तं विपिने परयन्मृगगरुमतः । विवेश स्वाश्रय भूयः ध्रिया शून्यमरण्यकम् ॥१४७॥  
 अयन्तरीनवदनः कृत्वा निर्याय धनुर्लताम् । सितरत्नचणपटच्छिन्नस्तस्थौ पर्यस्य भूतले ॥१४८॥  
 भूयो भूयो बहु ध्यायन् षण्णनिश्चरप्रहः । निराशतां परिप्रासः मूकारमुत्तराननः ॥१४९॥

### अतिरचिराच्छन्दः

महानरानिति पुरदु खलधितान् पुराकृतादमुकृतकर्मभूभणात् ।

अहो जना भृशमवलोक्य दीयता मतिः सदा जिनवर्धर्मकर्मणि ॥१५०॥

होगी ? जिन प्रकारकी इच्छा प्रियाको हर लेती है उसी प्रकार जिसमें बड़ी बड़ी तोद्य तरङ्ग  
 उठ रही हैं । जो अत्यन्त वेगसे बहती है तथा जिसमें विवेक नहीं है ऐसी नदी ने कहीं प्रियाको  
 नहीं हर लिया हो ॥१३६-१४०॥ अथवा अत्यन्त भ्रूससे पीडित तथा अतिशय क्रूर चित्तके धारक  
 किसी सिंहने साधुओंके साथ स्नेह करनेवाली उस प्रियाको खा लिया है ॥१४१॥ जिसका कार्य  
 अत्यन्त भयकर है तथा जिसकी गर्दनके बाल खड़े हुए हैं ऐसे सिंहके देखने मात्रसे नर्यादिके  
 स्पर्शके बिना ही वह मर गई होगी ॥१४२॥ मेरा भाई लक्ष्मण भयंकर युद्धमें संशयको प्राप्त है  
 और इधर यह सीताके साथ विरह आ पड़ा है इससे मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लगता ॥१४३॥  
 मैं इस समस्त संसारको संशयमें पड़ा जानता हूँ अथवा ऐसा जान पड़ता है कि समस्त संसार  
 शून्य दशाको प्राप्त हुआ है सो ठीक ही है क्योंकि दुःखकी बड़ी विचित्रता है ॥१४४॥ जब तक  
 मैं एक दुःखके अन्तको प्राप्त नहीं हो पाता हूँ तब तक दूसरा दुःख आ पड़ता है । अहो ! यह  
 दुःख रूपी सागर बहुत विशाल है ॥१४५॥ प्रायः देखा जाता है कि जो पैर लंगड़ा होता है  
 उसीमें चोट लगती है, जो वृक्ष तुपारसे सूख जाता है उसीमें आग लगती है और जो फिमलता  
 है वही गर्तमें पड़ता है प्रायः करके अनर्थ बहु संख्यामें आते हैं ॥१४६॥ तदनन्तर वनमें भ्रमण  
 कर मृग और पक्षियोंको देखते हुए राम अपने रहनेके स्थान स्वरूप वनमें पुनः प्रविष्ट हुए । वह  
 यन उस समय सीताके बिना शीभासे शून्य जान पड़ता था ॥१४७॥

तदनन्तर जिनका मुख अत्यन्त दौन था तथा जिन्होंने सफेद और महीन वस्त्र ओढ़  
 रख्या था ऐसे गम धनुषको डोंगी रहितकर पृथिवी पर पड़ गये ॥१४८॥ वे बार-बार बहुत देर  
 तक ध्यान करते रहते थे, जग-जगमें उनका शरीर निरचल हो जाता था, वे निराशताको प्राप्त थे  
 तथा मूकार शब्दसे उनका मुख शब्दाश्रयमान हो रहा था ॥१४९॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि  
 अहो जना ! इस प्रकार पूर्वोक्तानि पाप कर्मके उदयमें बड़े-बड़े पुरुषोंको अतिशय दुःखी



न ये भयप्रभवविकारमहते पराद्दुःखा जितवचना-बुधामने ।  
वशाहृताद् शरणाविविनातमून् तप्यन् स्वहृत्तरवि मृदुग्मह ॥१५१॥

इत्यार्षे रसियेणाचार्यश्लोके पद्मधारते मीनाहरणुरामविलासामिधानं  
नामचतुश्रतरिशतम परं ॥१४॥



देव, जिनेन्द्र कथित धर्ममें सदा बुद्धि लगाओ ॥१४०॥ जो मनुष्य समाप्त मध्यर्था विकारोंकी संगतिसे दूर रहकर जिनेन्द्र भगवान्के वचनोंकी उपामना नहीं करते हैं, उन शरणरहित तथा इन्द्रियोंके वशीभूत मनुष्योंको अपना पूर्वोन्नीत कर्मरूपी दुःखद मृत्यु सदा मंजद करना रहता है ॥१५१॥

इस प्रकार आर्य नामस प्रसिद्ध, रसियेणाचार्य कथित पद्मचरितमें मीनाहरणु और राम  
विनायका वर्णन करनेवाला चतुर्विंशति परं समाप्त हुआ ॥१४॥

## पञ्चत्वारिंशत्तमं पर्व

एतस्मिन्नन्तरे प्रातः पूर्वाश्लेषो विराधितः । समेतः सचिवैश्शूरैः सन्नद्धः शस्त्रसकुलः ॥१॥  
 एकाकिनमसो ज्ञाता युद्धयमान महानरम् । स्वार्थससिद्धिसभूर्तिं दीप्यमान महौजसा ॥२॥  
 जानु चित्तितले न्यस्य मूर्द्धन्यस्तकरद्वयः । अत्रवीदिति नम्राङ्गः परम विनय वहन् ॥३॥  
 नाथ ! भक्तोऽस्मि ते किञ्चिद्विज्ञाप्य श्रूयता मम । त्वद्विधाना हि ससर्गो निकारक्षयकारणम् ॥४॥  
 कृतार्थभाषणस्यास्य कर विन्यस्य मस्तके । पृष्ठतस्तिष्ठ मार्भर्परिव्यवोचत लक्ष्मणम् ॥५॥  
 ततः प्रणम्य भूयोऽसौ महाविस्मयसङ्गतः । जगाद् क्षणसञ्जातमहातेजाः प्रियं वचः ॥६॥  
 महाशक्तिमिम शशु त्वमेक विनिवारय । रणाजिरे भटान् शोषान् निधन प्रापयाम्यहम् ॥७॥  
 इत्युक्त्वा 'दीपण सैन्य तेन शोघ्न विराधितम् । अथावद् बलमस्पृश' प्रहृल्लद्वेतिसंहतिः ॥८॥  
 उवाच च चिरात् सोऽहं चन्द्रोदरनृपात्मज । प्राप्तो विराधितः ख्यातो रणातिथ्यममुत्सुकः ॥९॥  
 वेदानो गम्यते साधु स्थायता युद्धशौण्डिकैः । अद्य तद्वः प्रदास्यामि यत्कृतान्तोऽतिदारुणः ॥१०॥  
 इत्युक्ते वैरसम्पन्नो भटानामतिसङ्कुलः । बभूव शस्त्रसम्पातः सुमहान् जनमक्षयः ॥११॥  
 पत्तय पत्तिभिलग्नाः सादिनः सादिभिः समम् । गजिनो गजिभिः सत्रा रथिनो रथिभिः सह ॥१२॥

अथानन्तर इसी बीचमे जिसका पहले उल्लेख किया गया था ऐसा खरदूषणका शत्रु विराधित, मन्त्रियों और शूर-वीरोंसे सहित अस्त्र-शस्त्रसे सुसज्जित हो वहाँ आया ॥१॥ उसने महातेजसे देदीप्यमान लक्ष्मणको अकेला युद्ध करते देख महापुरुष समझा और यह निश्चय किया कि इससे हमारे स्वार्थकी सिद्धि होगी ॥२॥ पृथिवीतल पर घुटने टेककर तथा मस्तकपर दोनों हाथ लगाकर परम विनयको धारण करनेवाले विराधितने नम्र होकर इस प्रकार कहा कि हे नाथ ! मैं आपका भक्त हूँ मुझे आपसे कुछ निवेदन करना है सो सुनिये क्योंकि आप जैसे महापुरुषकी संगति दुःखक्षयका कारण है ॥३-४॥ विराधित आधी-चात ही कह पाया था कि लक्ष्मणने उसके मस्तकपर हाथ रखकर कहा कि हमारे पीछे रखे हो जाओ ॥५॥

तदनन्तर जो महा आश्चर्यसे युक्त था और जिसे तत्काल महातेज उत्पन्न हुआ था ऐसा विराधित पुनः प्रणामकर प्रिय वचन बोला कि इस महाशक्तिशाली एक शत्रु-खरदूषणको तो आप निवारण करो और युद्धके आँगनमे जो अन्य योद्धा हैं मैं उन सबको मृत्यु प्राप्त कराता हूँ ॥६-७॥ इतना कहकर उसने शीघ्र ही खरदूषणकी सेनाको नष्ट करना प्रारम्भ कर दिया । वह सेनाके साथ लहलहाते शस्त्रोंके समूहसे युक्त हो खरदूषणकी सेनाकी ओर दौड़ा ॥८॥ उसने सामने जाकर कहा कि मैं राजा चन्द्रोदरका पुत्र विराधित युद्धमे आतिथ्य पानके लिए उत्सुक हुआ चिरकाल वाद आया हूँ ॥९॥ अब कहीं जाइयेगा ? जो युद्धमे शूर-वीर हैं वे अच्छी तरह रखे हो जायें । आज मैं आप लोगोंको वह फल दूँगा जो कि अत्यन्त दारुण-कठोर यमराज देता है ॥१०॥ इतना कहते ही दोनों ओरके योद्धाओंमे वैर भरा तथा मनुष्योंका सहारा करने-वाला बहुत भारी शस्त्रोंका संपात होने लगा—दोनों ओरसे शस्त्रोंकी वर्षा होने लगी ॥११॥ पैदल पैदलोंसे, घुड़सवार घुड़सवारोंसे, गजसवार गजसवारोंसे और रथसवार रथसवारोंके

१. नगरे म० । २. धरेः म० । ३. सार्थसम्पद् निसभूर्ति म०, व० । ४. कृतार्थभाषणस्य-म० । ५. दूषणस्येद दीपणम् । ६. विराधितः क०, ख०, ज० । ७. सम्पन्न म० । ८. प्रन्त्रलद्वेतिमतिः । ९. वच-संस्कार म० ।

परम्परकृतान्द्वानैरति महविभिर्भटैः । सकुलैर्जनिने युद्धे 'कृतान्धोऽन्यमहायुधं ॥१३॥  
 रगाजिरे पर तेजो भयमानो नय नवम् । दिव्यकामुर्कमुद्यम्य शरदुद्धिगम्य ॥१४॥  
 वरेण सह सग्राम चक्रे परमभैरवम् । लक्ष्मीधर गुनामीर स्वामिनेय सुगद्विपाम् ॥१५॥  
 तत क्रोधपरतेन स्वरेण सरनिस्वनम् । अत्रात्रि लक्ष्मण 'मरुदे शुक्रहोहितधनुषा ॥१६॥  
 ममामजमुदासीनं हत्वा परमचापल । कान्ताकुर्वा च समुदय पापाघापि क्व गम्यते ॥१७॥  
 अद्य ते निशितैर्गोवीर्षिन नागयाम्यहम् । कृत्वा तथात्रिध कर्म फल तस्यानुभूयताम् ॥१८॥  
 ध्वज-तधुत्र निर्लेज परस्त्रामद्गोलुप । ममाभिमुखता गत्वा परलोकं मनापुना ॥१९॥  
 ततस्तै परुषैर्वार्यै समुदापितमानस । उवाच लक्ष्मणो त्रात्र पूषन् सकल नभ ॥२०॥  
 किं वृथा गर्जामि धुद्र दुं श्वेचर शुना सम । षड नयामि तत्र त्वा यत्र ते मनयो गत ॥२१॥  
 इत्युक्त्वावस्थित स्योमि विरथ सरदूपगम् । चकार लक्ष्मण छिद्रचारकतु च नि प्रथम् ॥२२॥  
 तनोऽमी पतित क्षोण्या नभस्त कोऽलाहित । प्रक्षालेऽत्र पुण्येवु ग्रहन्तरलप्रद ॥२३॥  
 स्वद्रागुर्गदेदेहश्च सीमिति प्रचयावन । अमिग्न समाहृत्य मोऽन्यन्याभिमुख वर्या ॥२४॥  
 इत्यासन्न तथात्प्राचित्र युद्ध भयानकम् । मुमुतु स्वस्थिता देवा मयुःशान् मातुनिस्वनान् ॥२५॥  
 तावद्विरमि सशुद्धा दूपगस्थ न्यपातयन् । सूर्यहास यथायांथ लक्ष्मणोऽञ्जतविप्रद ॥२६॥

साथ भिड गये ॥१७॥ तदनन्तर जो परम्पर एक दूसरेको चुला रहे थे, जो अत्यन्त हर्षित हो रहे थे जो अत्यन्त सकुल-व्यग्र थे और जिन्होंने एक दूसरेके बडे-बडे शस्त्र काट दिये थे ऐसे योद्धाओंके द्वारा उधर महायुद्ध हो रहा था इधर रणके मैदानमें नवीन नयान परम तेजो धारण करनेवाला लक्ष्मण, दिव्यधनुष उठाकर जागासे दिशाओ और आकाशमें व्याप करना हुआ सरसे साथ उस तरह अत्यन्त भयंकर युद्ध कर रहा था जिस तरह कि इन्द्र देवैन्द्रके साथ करता था ॥१३-१४॥ तदनन्तर क्रोधसे व्यापण चञ्चल और लाल-लाल नेत्राका धागण करनेवाले सरदूपणके कठोर शब्दोंमें लक्ष्मणसे कहा कि हे अतिशय चपल पारी ! मेरे निर्भर पुत्रको मार कर तथा मेरी स्त्रीके स्तनोका स्पर्शकर अत्र तू कहा जाता है ? ॥१६-१७॥ आज नादग जागासे तेरा जीवन नष्ट करता हूँ तूने जैसा कर्म किया है वैसा फल भोग ॥१८॥ हे अत्यन्त लुद्र ! निर्लेज ! परस्त्री सगना लोलुप ! अब मेरे सम्मुख आकर परलोकको प्राप्त हो ॥१९॥

तदनन्तर उन कठोर वचनोसे जिनका मन प्रतीत हो रहा था ऐसे लक्ष्मणने समस्त आकाश-को गुनाते हुए निम्नांकित वचन कहे । उहाने कहा कि रे लुद्र त्रिधाधर ! तू कुत्ते समान व्यर्थ ही क्या गरज रहा है ? मैं जहाँ तेरा पुत्र गया है वहीं तुम्हें पटुचाता हूँ ॥ २०-२१ ॥ इतना कहकर लक्ष्मणने आकाशमें स्थित सरदूपणको रथरहित कर दिया, उसका धनुष और पताका काट डाली तथा उसे निष्प्रभ कर दिया ॥२२॥ तदनन्तर जिस प्रकार पुण्यके बीज होने पर चञ्चल शरीरको धारण करनेवाला ग्रह पृथिवीपर आ पडता है उसी प्रकार क्रोधसे लाल लाल दीखनेवाला सरदूपण आकाशसे पृथिवीपर नीचे आ पडा ॥२३॥ गन्धका त्रिणोसे जिसका शरीर व्याप हो रहा था ऐसा सरदूपण लक्ष्मणकी ओर दौडा और लक्ष्मण भी सूर्यहास सद्र चींचकर उसके सामने जा टटे ॥२४॥ इस प्रकार उन दोनोंमें निकटसे नाना प्रकारका भयंकर युद्ध हुआ तथा मर्गमें स्थित दोनोंने साधु साधु-धन्य धन्य शब्दोंके साथ साथ उनपर पुत्रोंकी वर्या की ॥२५॥ उसी समय अलङ्घित शरीरके धारक लक्ष्मणने कुपित हो श्वदूरव्यग्रे तिरपर

१ तिति म० । २. कृतान्यन्य म० । ३ युद्धे । ४. टुप श्वेचर टु श्वेचरलक्ष्मणकुर्वा हे टु श्वेचर ।  
 ५. लीनदेहश्च म० । ६ चित्रयुद्ध म० ।

निर्जीव पतित क्षोण्यां यभूत् स्वरदूषण । आलेख्यरविसङ्काशो यद्वस्वर्गच्युतोऽमरः ॥२७॥  
 अथवा द्युतितो रत्या निक्षेष्टोभूतविग्रह । रत्नपर्वतगण्डो वा दिग्गजेन निपातितः ॥२८॥  
 अथ सेनापतिर्नाम्ना दूषणः 'स्वरदूषणः । विरथं कर्तुमारभे चन्द्रोदरचूपात्मजम् ॥२९॥  
 लक्ष्मणेनेपुगा तावद्गाढ मर्मणि ताडितः । घूर्णमानो गता भूमि समाश्रान्तमाप्नुत ॥३०॥  
 दवा विरावितायाथ तद्वत् स्वरदूषणम् । प्रययो लक्ष्मणः प्रीतः प्रदेश पद सश्रितम् ॥३१॥  
 यावत्पर्यति त सुप्त भूमौ सीताविवर्जितम् । जगो चोत्थि कि नाथ याता क्व वद जानकी ॥३२॥  
 उथाय सहसा द्रष्टुं लक्ष्मण निर्गमद्रुम् । किञ्चि प्रमोदमायातः परिव्वजनतत्परः ॥३३॥  
 जगाद् भद्र नो वेत्ति देवा केनापि कि हता । उत सिंहेन निमुक्ता न दृष्टात् गयेपिना ॥३४॥  
 पाताल कि भवेन्नोता नम शिखरमेव वा । उद्वेगेन विलीना वा सुकुमारशरीरिका ॥३५॥  
 तत प्रोपरीताद्गो विपादा लक्ष्मणोऽगदत् । देवोद्वेगानुबन्धेन न किञ्चिदपि कारणम् ॥३६॥  
 नून दैव्येन केनापि हता केनापि जानकी । भ्रियमागामिमा लक्ष्ये कर्तव्योऽत्र न मशयः ॥३७॥  
 परिसान्न्व्येत्तमैवांशैर्विविधैः श्रुतिपेशलैः । विमलेनाम्भमा तस्य मुखं प्राञ्जालयन् सुधीः ॥३८॥  
 ध्रुवा तावद्वत् तार शब्दमुत्तानितानन । अदृच्छत् श्रीधर रामः सम्भ्रम किञ्चिदापयन् ॥३९॥  
 किमेया नर्दति क्षोणी गगनाक्विसय ध्वनिः । कि कृत भवता पूर्वं शशुशोप भयोऽस्मितम् ॥४०॥

यथार्थ नामवाला सूर्यहास खड्ग गिराया ॥२६॥ जिससे वह निर्जीव होकर चित्र लिखित सूर्यके समान उस तरह पृथिवीपर आ पड़ा जिस तरह कि स्वर्गसे च्युत हुआ कोई देव पृथिवीपर आ पड़ता है ॥२७॥ पृथिवीपर पड़ा निर्जीव खड्गदूषण ऐसा जान पड़ता था मानो निश्चेष्ट शरीरका धारक कामदेव ही हो अथवा दिग्गजके द्वारा गिराया हुआ रत्नगिरिका एक खण्ड ही हो ॥२८॥

तदनन्तर स्वरदूषणका दूषण नामक सेनापति चन्द्रोदर राजाके पुत्र विराधितको रथ रहित करनेके लिए उद्यत हुआ ॥२९॥ उसी समय लक्ष्मणने उसके मर्मस्थलमें वागसे इतनी गहरी चोट पहुँचाई कि बेचारा घूमता हुआ पृथिवीपर आ गिरा और तत्काल मृत्युको प्राप्त हो गया ॥३०॥ तदनन्तर स्वरदूषणकी वह समस्त सेना विराधितके लिए देकर प्रीतिसे भरे लक्ष्मण उस स्थानपर गये जहाँ श्रीराम विराजमान थे ॥३१॥ जाते ही लक्ष्मणने सीता सहित रामको पृथिवीपर सोते हुए देखा । देखकर लक्ष्मणने कहा कि हे नाथ ! उठो और कहो कि सीता कहाँ गई हैं ? ॥३२॥ राम सहसा उठ बैठे और लक्ष्मणको घाय रहित शरीरका धारक देख कुछ हर्षित हो उनका आलिङ्गन करने लगे ॥३३॥ उन्होंने लक्ष्मणसे कहा कि हे भद्र ! मैं नहीं जानता हूँ कि देवीको क्या किसीने हर लिया है या सिंहेने खा लिया है । मैंने इस वनमें बहुत गोजा पर दौरी नहीं ॥३४॥ उसे कोई पातालमें ले गया है या आकाराके शिखरमें पहुँचा दी गई है अथवा वह सुकुमाराङ्गी भयके कारण विलीन हो गई है ॥३५॥

तदनन्तर जिनका शरीर क्रीधसे व्याप था ऐसे लक्ष्मणने विपाद युक्त होकर कहा कि हे देव ! उद्वेगों परम्परा बढाने में कुछ प्रयोजन नहीं है ॥३६॥ जान पड़ना है कि जानकी किसी दैव्यके द्वारा हरी गई है सो कोई भी क्यों नहीं इमे धारण किये हों मैं अवश्य ही प्राप्त करूँगा इसमें संशय नहीं करना चाहिए ॥३७॥ इस प्रकार कानोंको भ्रिय लगनेवाले विविध प्रकारके घपनोंसे सान्त्वना देकर बुद्धिमान लक्ष्मणने निर्मल जलसे रामका मुख धुलाया ॥३८॥ तदनन्तर उस समय अतिशय उग्र शब्द सुन कुछ-कुछ संभ्रमको धारण करनेवाले रामने ऊपरकी ओर मुखपर लक्ष्मणसे पूछा कि क्या यह पृथिवी शब्द कर रही है या आकाशमें यह शब्द आ रहा है ? क्या तुमने पहले मेरे द्वारा छोड़े हुए शयुको गेप रहने दिया है ? ॥३९-४०॥

सुमिद्यान्मृतोऽवोचन्नाथाऽत्र हि मदाहने । उपकारो महान् काञ्चै रवेचरग कृता मम ॥४१॥  
 चन्द्रोदरसुत साऽय विराधित इति ध्रुव । द्रव्यतो देवनेनैव हिनेन परिर्दक्षित ॥४२॥  
 यत्रुविधेन महता नरेणाम्य मुचेतम । आगच्छता महानव गच्छ धुतिमुपागत ॥४३॥  
 त्रिभ्रुवचतयोर्थायान् कथेय वल्लत तयो । नायन्महावलोपत परिप्राय विराधित ॥४४॥  
 ततो जयजयम्वात वृत्रा विरिजिताङ्गलि । जगाद् रत्नरश्मिमा प्रगर्भ सविर्व नमम् ॥४५॥  
 स्वामा ख परमोऽस्माभिश्चिरान् प्राप्ता नरोत्तम । अन प्रदायतामात्मा नाथ कर्त्तव्यवस्तुनि ॥४६॥  
 इत्युक्त्वा लक्ष्मणाऽभागात् स्वामी शृणु सुवर्तनम् । गुरो कनापि मे पया एता दुर्नयवनिता ॥४७॥  
 तथा विरहित मोऽय पद्म शाङ्कराकृत । यदि नाम एवमेव प्रागान्तावद्वदि विगाययहम् ॥४८॥  
 एतन्प्रागदशमकान् भद्र प्राणानवैहि मे । ततोऽत्र प्रकृते किञ्चिदर्थेऽप्य कारण परम् ॥४९॥  
 ततो नतानन किञ्चिन्वगप्रसुरगिन्तयन् । कृत्वापि भ्रममन मे कष्टमाशा न पूजिता ॥५०॥  
 मुम्य सप्तमता स्पष्ट नानावनविहारिणा । परयासा योजित कथे कथ मशयगहूर ॥५१॥  
 दु स्वार्णवतट प्राप्सो या या गृह्णाम्यह एताम् । दैनानाम्मूलयते सा म्वा कृन्म विधिवग जगन् ॥५२॥  
 तथाप्युमाहमाश्रियं कर्त्तव्य समुदागतम् । करामि कुर्वता भद्रमभद्र वास्वहर्मन्तम् ॥५३॥  
 इति ध्यात्वावहारपु मन्त्रानुमाहमस्तुतम् । जगाद् सजिवान् धारा वचना स्फुत्तेजसा ॥५४॥  
 पया महानरस्यास्य नाता यदि महातन्म् । अधाकार गिरि वारि स्थल वा विपिन पुरम् ॥५५॥  
 गवेषयत य नेन स्वर्शासुमम तत । यद्विच्युत कृतार्थाना तदास्यामि महाभग्न ॥५६॥

तदनन्तर लक्ष्मणने कहा कि हे नाथ ! इस महायुद्धमें विद्याधरने समय पर मेरा उडा उपकार किया है । यह विद्याधर राजा चन्द्रोदरका पुत्र विराधित है जो हितकारा देवके द्वारा ही मानो अजसर पर मेरे समाप भेजा गया था ॥४१-४२॥ उत्तम इन्द्रको धारण करनेवाला वह विद्याधर चार प्रकारकी बडा भारी सेनाके साथ आपके पास आ रहा है सा यह महान् शस्त्र उलाना सुनाई दे रहा है ॥४३॥ इधर विररस्त चित्ते धारक राम लक्ष्मणने वाच जन तक यह कथा चलता है तब तक वही भारी सेनाके साथ विराधित वहाँ आ पहुँचा ॥४४॥ तदनन्तर विद्याधरके राजा विराधितने नश्रीभूत मन्त्रियां साथ साथ हाथ जोडकर तथा जय जय शस्त्रका उच्चारण कर कहा कि आप मनुष्यामें उत्तम उत्कृष्ट स्वामा चिरकाल जाद प्राप्त हुए हो सो करने योग्य कार्यके विषयमें मुझे आना दानिये ॥४५-४६॥ इस प्रकार कहन पर लक्ष्मणने कहा कि हे सज्जन ! सुनो किसी दुराचारीने मेरे अग्रज रामकी पत्नी हर लो है सा उसमें रहित राम, शोकके वशीभूत हो यदि प्राण छोडते हैं तो मैं निश्चय हा अग्निमें प्रवेश करूँगा ॥४७-४८॥ क्योंकि हे भद्र ! तुम यह निश्चित जानो कि मेरे प्राण इन्हींने प्राणाने साथ मजजून बँधे हुए हैं इसलिए इस विषयमें कुछ उत्तम उपाय करना चाहिए ॥४९॥ तब विद्याधरका राजा विराधित नीचा मुखर कुड्ड विचार करने लगा कि अहो ! इतना भ्रम करने पर भी मेरी आशा पूर्ण नहीं हुई ॥५०॥ मैं पहले मुखसे दृञ्जानुसार निवास करता था कि स्थानभ्रष्ट हो नाना वनोमें भ्रमण करता रहा । अब मैंने अपने आपको इनका शरणमें सोपा सो देग्यो ये स्वय कष्टकारी सशयने गर्तम पड रहे हैं ॥५१॥ दु स्वरूपी सागरके तटको प्राप्त हुआ मैं जिस जिम लताको पकडता हूँ मो देवके द्वारा वही नहीं लता उलाड दा जाता है, नास्तरने समस्त समार कर्मोंके आधीन है ॥५२॥ यद्यपि ये अपने कर्मके अनुसार हमारा भला या बुरा कुछ भी करें तो भा मैं उत्साह धारण कर इनने इस उपस्थित कार्यको अजस्य करूँगा ॥५३-५४॥ इस प्रकार अतरङ्गमें विचार कर उत्साहको धारण करने हुए धार वार विराधितने तेज पूर्ण वचनाने मन्त्रियासे कहा

१ अजसरे, प्रथम म० । २ परिप्राप्त म० । ३ अग्रजस्य । ४ नाश्रुत म० । ५ मज्जनुमाहनमनुत्तम्, व० । ६ गजपता म० ।

इत्युक्त्वाः समदोषेवाः सत्तद्वा परमोत्तमः । नानास्वभाः स्वगा जग्मुर्दिशो दश यशोधिनः ॥५७॥  
 अथाकंजटिनः सूनुराग्ना रत्नजटी स्वगाः । खत्री द्रागिति शुश्राव दूरतो रुद्रितध्वनिम् ॥५८॥  
 आशां च भजमानस्तामाकर्णदिति निम्बनम्<sup>१</sup> । हा राम हा कुमारैति जलधेरुध्वैमग्ने<sup>२</sup> ॥५९॥  
 परिदेवननिस्वान ध्रुत्वा त सपरिस्फुटम् । समुत्पपात त देश विमान यावदोत्तते ॥६०॥  
 अरुषोपरि परिक्रन्दं कुर्वन्तीमितिविह्वलाम्<sup>३</sup> । वैदेहीं स समालोक्य यभाण क्रोधप्रवृत्तः ॥६१॥  
 तिष्ठ तिष्ठ महापाप दुष्ट विद्याधरायम । कृत्वापराधमोदहं क त्वया गम्यतेऽधुना ॥६२॥  
 दयितां रामदेवस्य प्रभामण्डलसोदराम् । मुञ्च शीघ्रमर्भाट ते जावितं यदि दुर्मते ॥६३॥  
 ततो दशाननोऽप्येनमारोश्य परुषस्वनम् । युद्धे समुद्यतः क्रुद्धो विह्वलीभूतमानसः ॥६४॥  
 पुनश्चाचिन्तयद्युद्धे<sup>४</sup> प्रवृत्ते सति विह्वला । मयानिरूपिता सीता कदाचित्पञ्चतां भजेत् ॥६५॥  
 आकुलां रचता चैतां परमव्याकुलामना । न व्यापादयितुं शक्यः क्षुद्रोऽप्येव नभश्चरः ॥६६॥  
 इति मन्त्रिय सम्भ्रान्तस्यमौल्युत्तराम्बरः । स्वस्थस्य रत्नजटिनो बलीं विद्यामपाहरत् ॥६७॥  
 अथ रत्नजटी व्रतः किञ्चिन्मन्त्रप्रभावतः । पपात शनकैल्लकास्कुलिङ्ग इव मेदिनीम् ॥६८॥  
 समुद्रजलमप्यस्थ कम्पुर्जाप समाश्रितः । आयुर्वर्तनसामर्प्याङ्गपातो यथा वणिक् ॥६९॥  
 निश्चलश्च स्रग् स्थित्वा समुद्रस्यैवायत भृशम् । कम्पुपर्वतमारुह्य दिशाचक व्यलोक्यत् ॥७०॥

कि इन महामानवकी पत्नी, महीतल, आकाशा, पर्वत, जल, स्थल, वन अथवा नगरमें कहीं भी ले जाई गई हो यत्नपूर्वक समस्त दिशाओंमें सब ओरसे उसकी खोज करो। हे महायोद्धाओ! खोज करने पर तुम लोग जो चाहोगे वह प्रदान करूँगा ॥५४-५६॥ इस प्रकार कहने पर हर्षसे युक्त, अस्त्र-शस्त्रसे सुसज्जित, परम तेजके धारक, नाना प्रकारकी वेप-भूपासे सुसोभित और यशके इच्छुक विद्याधर दशों दिशाओंमें गये ॥५७॥

अथानन्तर अर्कजटीके पुत्र रत्नजटी नामक रत्नधारी विद्याधरने दूरसे शीघ्र ही रोनेका शब्द सुना ॥५८॥ जिस दिशासे रोनेका शब्द आ रहा था उसी दिशामें जाकर उसने समुद्रके ऊपर आकाशमें 'हा राम ! हा कुमार लक्ष्मण !' इस प्रकारका शब्द सुना ॥५९॥ विलापके साथ आते हुए उस अत्यन्त स्पष्ट शब्दको सुनकर जब वह उस स्थानकी ओर उड़ा तब उसने एक विमान देखा ॥६०॥ उस विमानके ऊपर विलाप करती हुई अतिशय विह्वल सीताको देखकर वह क्रोध-युक्त हो बोला कि अरे ठहर-ठहर, महापापी दुष्ट नीच विद्याधर ! ऐसा अपराध कर अब तू कहा जाता है ? ॥६१-६२॥ हे दुर्बुद्धे ! यदि तुम्हें जीवन इष्ट है तो रामदेवकी स्त्री और भामण्डल की बहिनको शीघ्र ही छोड़ ॥६३॥ तदनन्तर कर्कश शब्द कहनेवाले रत्नजटीके प्रति कर्कश शब्दोंका उच्चारण कर क्रोधसे भरा तथा विह्वल चित्तका धारक रावण युद्ध करनेके लिए उद्यत हुआ ॥६४॥ फिर उसने विचार किया कि 'युद्ध होने पर मैं इस विह्वल सीताको देख नहीं सकूँगा और उस दशामें सम्भव है कि यह कदाचित् मृत्युको प्राप्त हो जाय और यदि इस घबड़ाई हुई सीताकी रक्षा भी करता रहूँगा तो अत्यन्त व्याकुल चित्त होनेके कारण, यद्यपि यह विद्याधर सुद्र है तो भी मेरे द्वारा मारा नहीं जा सकेगा' ॥६५-६६॥ इस प्रकार विचार कर हड़बड़ाहट के कारण जिसके मुकुट और उत्तरीय वस्त्र शिथिल हो गये थे ऐसे चलवान रावणने आकाशमें स्थित रत्नजटी विद्याधर की विद्या हर ली ॥६७॥

अथानन्तर भयभीत रत्नजटी किसी मन्त्रके प्रभावसे उल्काके तिलगोंके समान धीरे-धीरे पृथ्वी पर आ पड़ा ॥६८॥ जिसका जहाज डूब गया है ऐसे वणिक्के समान वह आयुष्का अतिरव शेष रहनेके कारण समुद्र जलके मध्यमें स्थित कम्पुनामक द्वीपमें पहुँचा ॥६९॥ वहाँ वह क्षणभर

१. मति निम्बनम् म० । २. अरे देवेन म० । ३. मतिविह्वलाम् म० । ४. प्रवर्तते म० । ५. रक्षितां म० । ६. वस्त्रभय म० । ७. वस्त्रान् रावणः ।

ततः समुद्रवानेन शिशिरवमुपेयुषा । अपनीतश्रमरुदेः समाशरवामदुःखिनः ॥७१॥  
येऽन्येऽन्वेपणं कर्तुं गतास्तेऽन्विष्य शक्तिनः । राघवस्याग्निं क प्राप्ताः प्रणष्टवदनीजसः ॥७२॥  
तेषां ज्ञात्वा मनः शून्यं महोविन्यस्तच्छ्रुत्वा । पद्मो जगत्तद्दोषोऽपि निरवस्य म्लानलोचनः ॥७३॥  
निजां शक्तिममुञ्चन्निर्भवंद्रिः सातुन्वेचराः । अम्मन्कार्ये कृतो यतो देवं तु प्रतिहृलकम् ॥७४॥  
तिष्ठत स्वेच्छयेदानीं यात वा स्वं समाश्रयम् । वाडवास्वगतं रत्नं करान् किं पुनरोद्यते ॥७५॥  
नूनं सर्वं कृतं कर्म प्रावर्णाय फलं मया । तत्कर्तुं मन्यथा शक्यं न भवद्भिर्मयापि वा ॥७६॥  
विमुक्तं वन्धुभिः कष्टं विवृष्टं वनमाश्रितम् । अनुकम्पा न तत्रापि जनिता देवशतुगा ॥७७॥  
मन्ये यथानुबन्धेन लज्जोऽयं विधिरुद्धतः । तथैतस्मात्परं दुःखं किं नामान्यत्करिष्यति ॥७८॥  
परिदेवनमारुध्ये कर्तुमेव नराधिपे । धीरं विराधितोऽशोचन् परिस्मान्वनपण्डितः ॥७९॥  
गिरादमनुलं देव किमेवमनुसेवमे । स्वर्देवैरव दिनेः परय प्रियामनघविग्रहाम् ॥८०॥  
शोको हि नाम कोऽन्येष विरभेदो महत्तमः । नाशयन्त्याश्रित देह का कथान्येषु वस्तुषु ॥८१॥  
तस्मादवलम्ब्यतां धैर्यं महापुरपमेवितम् । मयद्विधा विवेकाना मवन क्षेत्रमुत्तमम् ॥८२॥  
आचन् पर्यति भद्राणि धीरश्रिततरादपि । प्रहो हृत्वमतिभद्रं कृष्णादपि न पर्यति ॥८३॥  
कालो नैव विषादस्य दीयतां कारणे मनः । आत्मान्मिहानर्थं कुरुते परमं पुरा ॥८४॥

निश्चल बैठे फिर बार-बार लम्बी साँस लेकर वह कम्बु पर्वत पर चढ़कर दिशाओंकी ओर देखने लगा ॥७०॥ तदनन्तर समुद्रकी शांतलवायुसे जिसका परिश्रम और पसीना दूर हो गया था ऐसा दुःखी रत्नजटी बुद्ध संतुष्ट हुआ ॥७१॥ जो अन्य विद्याधर सीताकी रोज करनेके लिए गये थे वे शक्तिभर रोज कर रामके समीप वापिस पहुँच उस समय प्रयोजनकी सिद्धि नहीं होनेसे उनके मुखका तेज नष्ट हो गया था ॥७२॥ जिनके नेत्र पृथ्वी पर लग रहे थे ऐसे उन विद्याधरोंका मन शून्य जान कर म्लाननेत्रोंके धारक रामने लम्बी और गरम साँस भरकर कहा कि हे धन्य विद्याधरों ! आप लोगोंने अपनी शक्ति न छोड़ते हुए हमारे कार्यमें प्रयत्न किया है पर मेरा भाग्य ही विपरीत है ॥७३-७४॥ अब आपलोग अपनी इच्छानुसार बैठिये अथवा अपने-अपने घर जाइये । जो रत्न हाथसे छूटकर घडवानलमें जा गिरता है वह क्या फिर त्रिराई देता है ? ॥७५॥ निश्चय ही जो बुद्ध कर्म मैंने किया है उसका फल प्राप्त करने योग्य है उसे न आप लोग अन्यथा कर सकते हैं और न मैं भी अन्यथा कर सकता हूँ ॥७६॥ मैंने भाई-बन्धुओंसे रहित, कष्टकारी दूरवर्ती वनका आश्रय लिया सो वहाँ भी भ्राग्यरूपी शत्रुने मुझपर दया नहीं की ॥७७॥ जान पड़ता है कि यह उत्कट दुःख मेरे पीछे लग गया है सो इससे अधिक दुःख और क्या करेगा ? ॥७८॥ इस प्रकार कहकर राम विलाप करने लगे तब सान्त्वना देनेमें निपुण विराधितने बड़ी धीरतासे कहा कि हे देव ! आप इस तरह अनुपम विषाद क्यों करते हैं ? आप थोड़े ही दिनोंमें निष्पाप शरीरकी धारक प्रियाको देखेंगे ॥७९-८०॥ यथार्थमें यह शोक कोई बड़ा भारी विपदा भेद है जो आश्रित शरीरको नष्ट कर देता है अन्य वस्तुओंकी तो चर्चा ही क्या है ? ॥८१॥ इसलिए महापुरुषोंके द्वारा सेवित धैर्यका अवलम्बन कीजिए आप जैसे उत्तम-पुरुष विवेककी उत्पत्तिके उत्तम क्षेत्र हैं ॥८२॥ धीरवीर मनुष्य यदि जीवित रहता है तो वृत्त समय याद भी कल्याणको देस लेता है और जो तुच्छ बुद्धिका धारी अपौर मनुष्य है वह कष्ट भोगकर भी कल्याणको नहीं देख पाता है ॥८३॥ यह विषाद करनेका समय नहीं है कार्य करनेमें मन दीजिये क्योंकि उदासीनता बड़ा अनर्थ करनेवाली है ॥८४॥

१. अरतीनश्रमवेदमामाश्रितदुःखितः म० । २. यथा स्वन्वेपण म० । ३. वाडवास्या गत म०, व० । ४. विदूर । ५. शरी म० । ६. उदामीन म० ।

विद्याधरमहाराजे निहने ष्वरूपणे । अर्धा-तरमनुप्राप्त दुःखन्तमवधार्यताम् ॥८५॥  
 किष्किन्धे-द्रेन्द्रजिद्वारौ भानुकर्णस्तथैव च । त्रिशिरा क्षोभणो भाम क्रूरकर्मा महोदर ॥८६॥  
 एवमाद्या महायोरा नानाविद्यामहौषस्य । यास्यन्ति साग्रत क्षोभ मित्रस्वजनदु खत ॥८७॥  
 नानायुद्धमहश्वेषु सर्वेऽस्मात्प्रकीर्तय । विजयार्थनगावासखगेन्द्रेणाप्यसाधिता ॥८८॥  
 पवनभ्यामन स्वधातो यस्य वानरलक्षितम् । केतु दूरात् समालोक्य विद्वन्वित् द्विपा गणा ॥८९॥  
 तस्याभिमुखता प्राप्य देवयोगात् सुरा अपि । श्लथजन्ति विजये बुद्धि स हि कोऽपि महाशया ॥९०॥  
 तस्माद्बुद्धि नत् स्थानमलङ्काराद्यमाश्रिता । भामण्डलस्वसुर्वार्ता स्वस्थाभूता लभामहे ॥९१॥  
 तद्धि न पुरमायातम-वयेन रमातले । तत्र दुर्गे स्थिता कार्य चिन्तयामो यथोचितम् ॥९२॥  
 इयुक्ते चतुरैरथैश्चतुर्भिर्युक्तमुत्तमम् । भास्वर रथमारुह्य प्रस्थितौ रघुनन्दनौ ॥९३॥  
 शुशुभाने तदायन्त न तो पुरुषसत्तमो । सातया रहितो सम्यग्दृष्टया बोधशमाश्रित ॥९४॥  
 चतुर्विंशमहात्मैर्यसागरेण समावृत । स्वरावानग्रतस्तस्थौ चन्द्रोदररूपासज ॥९५॥  
 तावच्चन्द्रनग्यासूनु नगरद्वारनि सृतम् । कृतयुद्ध पराजिय य प्रविष्ट परम पुरम् ॥९६॥  
 तत्र देविनिवासाभे पुरे रत्नसमुत्तरे । यथोचित स्थित चक्रु खरदूषणवेशरनि ॥९७॥  
 तस्मिन्नमरसन्नाभे भवने रघुनन्दन । सीताया गमनात्लेभे श्रुति तु न मनागपि ॥९८॥  
 अरण्यमपि रम्य व याति कान्ताममागमे । कान्तावियोगदग्धस्य सर्वं वि-ध्यवनायते ॥९९॥

विद्याधरा के राजा खरदूषणके मारे जाने पर दूसरी बात हो गई है और जिसका फल अच्छा नहीं होगा ऐसा आप समझ लीजिए ॥८५॥ किष्किन्धापुरी का राजा सुग्रीव, इन्द्रजित्, भानुकर्ण, त्रिशिरा, क्षोभण, भीम, क्रूरकर्मा और महोदर आदि बड़े-बड़े योद्धा जो नाना विद्याआके धारक तथा महा तेजस्वी हैं इस समय अपने मित्र-स्वजनदुखत कुटुम्बी जनाके दुखसे क्षोभका प्राप्त हागे ॥८६-८७॥ इन सत्र योद्धाओंने नाना प्रकारके हजारा युद्धामें सुयश प्राप्त किया है तथा विजयार्थ परत पर रहनेवाला विद्याधरोका राजा भी इन्हें वश नहीं कर सकता ॥८८॥ पवनज्वरका पुत्र हनुमान् अतिशय प्रसिद्ध है जिसको वानर चिह्नित ध्वजा देखकर शत्रुओंने मृण्ड दूरसे ही भाग जाते हैं ॥८९॥ देव योगसे देव भी उसका सामना कर विजयकी अभिलाषा छोड़ देते हैं यथार्थमें यह कोई अद्भुत महा यशस्वी पुत्र है ॥९०॥ इसलिए उठिये अलङ्कारपुर नामक सुरक्षित स्थानका आश्रय लें वहाँ निश्चिन्ततासे रहकर भामण्डलकी वह्निका समाचार प्राप्त करें ॥९१॥ यह अलङ्कारपुर पृथिव्याके नीचे है और हम लोगकी वश परम्परासे चला आया है उसी दुर्गमें स्थानमें स्थित रहकर हम लोग यथा योग्य कार्यकी चिन्ता करेंगे ॥९२॥ इस प्रकार कहने पर चार चतुर घोडासे जुते हुए उत्तम देवीव्यमान रथ पर सवार होकर राम-लक्ष्मणने प्रस्थान किया ॥९३॥ जिस प्रकार सम्यग्दर्शनसे रहित ज्ञान और चारित्र सुशोभित नहीं होते हैं उसी प्रकार उस समय सीतासे रहित राम और लक्ष्मण सुशोभित नहीं हो रहे थे ॥९४॥ चार प्रकारकी महासेना रूपी सागरम विरा विराधित शीघ्रता करता हुआ उनमें आगे स्थित था ॥९५॥ जय तक यह पहुँचा तब तक चन्द्रनखाका पुत्र नगरके द्वारसे निकल कर युद्ध करने लगा मा उसे पगजित कर यह परम सुन्दर नगरने भातर प्रविष्ट हुआ ॥९६॥ यह नगर देवाके निवास स्थानके समान रत्नासे श्लाघ्यमान था । वहाँ जाकर विराधित तथा राम लक्ष्मण खरदूषणके भयनमें यथायोग्य निवास करने लगे ॥९७॥ यद्यपि यह भवन देवभवनके समान था ता भी राम सीताके चले जानेसे वहाँ रक्ष मात्र भी धर्मको प्राप्त नहीं होते थे— यहाँ उन्हें माताके विना मिलहुञ्च भा अच्छा नहीं लगता था ॥९८॥ आके समागममें यम भा

१. म। मन्नादर १७ म० । २. त्रिशिरि म० । ३. गण म० । ४. स्ववति विषय म० ।

५. म-पररि १२ म० । ६. ममावृत् म० ।



अर्धकान्ते गृहस्थास्य तरुण्डविराजिते । प्रीसादमनुल कीच्यं सप्तार रत्नन्दन ॥१००॥  
 तत्राहंन् प्रतिमा द्रुमा रत्नपुष्पकृत्ताचंनान्म् । क्षणविरमृतसन्ताप पत्रो धृतिमुदागत ॥१०१॥  
 इतस्ततश्च तत्रार्थं वीक्षमाण कृतानति । किञ्चित् प्रशान्तदु खीमिरवत्स्थे रघुत्तम ॥१०२॥  
 आर्प्रायवल्गुसश्च मुन्दो माजा समन्वित । पितृभ्रातृविनाशन शोकां लङ्कामुपाविशन् ॥१०३॥

शालिनीच्छन्दः

एव सद्भान् सावसानान् विद्विष्या नानादु यै प्रापणोयानुपायै ।  
 विध्न्युक्तान् मूरिभिर्दुनिवारैरिच्छ्या तेषु प्राणिनो मा कुरध्वम् ॥१०४॥  
 यद्यप्याशापूर्वकमानुभावान् सन्न कर्तुं जायते प्राणभानाम् ।  
 प्राप्य ज्ञान सायुवर्गोपदेशाद्गन्त्रा नाश सा रवे शर्वरीव ॥१०५॥

इत्यार्षे रविपेणाचार्यप्राक्के पद्मपुराणे सीतानियोगदाहाभिवान नाम  
 पञ्चचरित्तम पर्व ॥४५॥

रमणीयताको प्राप्त होता है और स्त्रीके वियोगसे जलते हुए मनुष्यको सब कुछ गिन्य वनके समान जान पड़ता है ॥६६॥

अथानन्तर वृद्धोंके समूहसे सुशोभित, उस भवनके एकान्त स्थानमें अनुपम मन्दिर देखकर राम वहाँ गये ॥१००॥ उस मन्दिरमें रत्न तथा पुष्पासे जिसकी पूजा की गई थी ऐसी जिनेन्द्र प्रतिमाके दर्शनकर वे क्षणभर सब सताप भूलकर परम धैर्यको प्राप्त हुए ॥१०१॥ उस मन्दिरमें इधर-उधर जो और भी प्रतिमाएँ थी उनके दर्शन करते तथा नमस्कार करते हुए राम वहाँ रहने लगे । जिनेन्द्र प्रतिमाओंके दर्शन करनेसे उनके दुःखकी लहरे कुछ शान्त हो गई थीं ॥१०२॥ पिता और भाईके मरनेसे जिसे शोक ही रहा था ऐसा सुन्द, अपनी सेनासे सुरक्षित होता हुआ माता चन्द्रनखाके साथ लङ्कामें चला गया ॥१०३॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि इस प्रकार जो नाना प्रकारके दुःखदायी उपायोसे प्राप्त करने योग्य हैं तथा अनेक प्रकारके दुर्निवारसे युक्त हैं ऐसे सब परिग्रहोंकी नश्वर जानकर हे भक्त्यजनो ! उनमें अभिलाषा मत करो ॥१०४॥ यद्यपि पूर्ण कर्मोदयसे प्राणियोंके परिग्रह सचित्त करनेकी आशा होती है तो भी मुनि समूहके उपदेशसे ज्ञान प्राप्तकर वह आशा उस तरह नष्ट हो जाती है जिस तरह कि सूर्यसे प्रकाश पाकर रात्रि नष्ट हो जाती है ॥१०५॥

इस प्रकार आर्पण नाममें प्रसिद्ध, रविपेणाचार्य रचित पद्मचरित्तममें सीताके वियोगजन्य दाहका वर्णन करनेवाला पैतालीसवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥४५॥

## पट्चत्वारिंशत्तमं पर्व

तत्रासावुचमे तुन्ने विमानशिखरे स्थित । रवेर रवेर प्रजन् रवेने रावणो दिवि भानुवत् ॥१॥  
 माताया शोकतप्तया ग्लान वीक्षयास्यपङ्कजम् । रतिरागविमूढामा दध्यां किमपि रावण ॥२॥  
 'अध्रुदुदिनवक्त्राया सीताया कृपण परम् । नानाप्रियशतान्यूचे पृष्टत पारवैतोऽप्रत ॥३॥  
 भारस्यायत्यन्तमृदुभिर्हंतोऽह कुसुमेपुभि' । प्रिये यदि तत साध्वि नरहत्या भवेत्तव ॥४॥  
 वक्त्रारविन्दमेतत्ते सक्रोपमपि सुन्दरि । राचते चारुभावाना सर्वथैव हि चारुता ॥५॥  
 प्रसाद देवि भूयास्ये सकृच्चक्षुर्विधीयताम् । त्वच्चक्षुकान्तितोयेन स्नातस्यापैतु मे ध्रम ॥६॥  
 यदि दृष्टिप्रसाद मे न करोपि वरानने । एनेन पापघने सत्त्वं ताडय मस्तके ॥७॥  
 भवत्या रमणोद्याने किं न जातोऽस्म्यशोकक । सुलभा यस्य ते श्लाघ्या पादपद्मतलाहति ॥८॥  
 कृशोदरि गवाक्षेण विमानशिखरस्थिता । दिशः पश्य प्रयाताऽस्मि वियदुर्ध्वं रवेरपि ॥९॥  
 कुलपर्वतसयुक्ता समेरु सहसागराम् । पश्य चोणोमिमा देवि शिखिनेव विनिमितात् ॥१०॥  
 एवमुक्त्वा सर्ता सीता परार्चानव्यवस्थिता । अन्तरे तृणमाधाय जगादाकृचिताक्षरम् ॥११॥  
 'अवसर्पं ममाङ्गात्रि मा स्पृश पुरुषाधम । निन्द्याक्षरामिमा वाणोमीदृशी भापसे कथम् ॥१२॥

अधानन्तर विमानके ऊँचे शिखर पर बैठा इच्छानुसार गमन करता हुआ रावण आकाशमे सूर्यके समान सुशोभित हो रहा था ॥१॥ रति सम्प्रधी रागसे जिसकी आत्मा विमूढ हो रही थी ऐसा रावण शोक-सतप्त सीताके मुखभाये हुए मुख-कमलका ध्यान कर रहा था—उसी ओर देख रहा था ॥२॥ जिसके मुखसे निरन्तर अध्रुआंकी वर्षा हो रही थी ऐसी सीताके आगे पीछे तथा बगलमे खड़ा होकर रावण बड़ी दीनताके साथ नाना प्रकारके सँकड़ा प्रिय वचन बोलता था ॥३॥ वह कहता था कि मैं कामदेवके अतिशय कोमल पुष्पमयी वाणोंमे पायल होकर यदि मर जाऊँगा तो हे साध्वि ! तुम्हे नरहत्या लगेगी ॥४॥ हे सुन्दरि ! तेरा यह सुनारविन्द क्रोध सहित होने पर भी सुशोभित हो रहा है सो ठीक ही है न्याकि जो सुन्दर हैं उनमे सभी प्रकारसे सुन्दरता रहती है ॥५॥ हे देवि ! प्रसन्न होओ और इस दासके मुख पर एक वार च्लु डालो । तुम्हारे च्लुकी कान्ति रूपी जलसे नहाने पर मेरा सन श्रम दूर हो जायगा ॥६॥ हे सुमुखि ! यदि दृष्टिका प्रसाद नहीं करती हो—और उठाकर मेरी ओर नहीं देखती हो तो इस चरण-कमलसे ही एक वार मेरे मस्तक पर आघात कर दो ॥७॥ मैं तुम्हारे मनोहर ग्लानमे अशोक वृक्ष क्या नहीं हो गया ? क्योंकि वहाँ तुम्हारे इस चरण-कमलका प्रशसनीय तल प्रहार सुलभ रहता ॥८॥ हे कृशोदरि ! विमानकी छत पर बैठकर भरोसेमे जरा दिशाओंको नो देखो मैं सूर्यसे भी कितने ऊपर आकाशमे चल रहा हूँ ॥९॥ हे देवि ! कुलाचलो, मेरु पर्वत और सागरसे सहित इस पृथिवीको देखो । यह ऐसी जान पड़ती है मानो किमी कारीगरके द्वारा ही बनाई गई हो ॥१०॥ इस प्रकार कहने पर पीठ देखर बैठो हुई सीता बीचमे वृण रग्यकर निम्नाङ्कित अप्रिय वचन बोली ॥११॥

उसने कहा कि हे नीच पुण्य ! हट, मेरे अङ्ग मत छू । नू इस प्रकारकी यह निन्दनीय वाणी

पापामकमनायुष्यमस्वर्गमयशस्करम् । असदाहितमेतत्ते विरुद्ध भयकारि च ॥१३॥  
 परदारान् समाकाञ्चन् महादुःखमवाप्स्यसि । पश्चात्तापपरीताहो भस्मरज्ज्वाभलापमम् ॥१४॥  
 महता मोहपत्रेण तवोपचितचेतसः । मुधा धर्मोपदेशोऽयमन्धे नृपविलासवन् ॥१५॥  
 इच्छामात्रापि ध्रुव यद्ब्रूया पापमनुत्तमम् । नरके वासमामाद्य कष्ट वर्त्तनमाप्स्यसि ॥१६॥  
 रुचाक्षराभिमानाभि पर वज्राभिरियपि । मदनहातचित्तस्य प्रेमास्य न निवृत्तने (न्यवर्त्तते) ॥१७॥  
 तत्र दूषणमप्राप्ते निवृत्ते परमप्रिया । शुक्रहस्तप्रहस्ताद्या सोद्वेगा स्वाम्यदर्शनान् ॥१८॥  
 चलत्केतुमहाखण्ड कुमारार्कसमप्रभम् । त्रिमान वाच्य द्वाशास्य मुदितास्त दृष्टीकिरे ॥१९॥  
 प्रदानैदिव्यवस्तूना सम्मानैश्चाहुभि<sup>१</sup> परं । तामिश्च भूयसगन्धिरप्राह्णा जनकामजा ॥२०॥  
<sup>२</sup>शक्नोति सुखर्था पातु क शिष्यामाशुशुचणे । को वा नागवधूमूर्ध्नि स्थूयद् रनशलाकिङ्काम् ॥२१॥  
 कृत्वा करपुत्र मूर्ध्नि दशागुल्लिखमाहितम् । ननाम रावण साता निन्दितोऽपि वृणाप्रवन् ॥२२॥  
 महेन्द्रमन्दौस्तावद्भिभवे सचिवैर्भुंशम् । नानादिभ्यः समायातैरारूढो रक्षसा पति ॥२३॥  
 जय नर्थस्य नन्देति शब्दे ध्वजणहारिभि । उपगात परिप्राहा लङ्कामाखण्डलोपम ॥२४॥  
 अचिन्तयच्च रामस्या सोऽय विद्याधराधिप । यत्राचरत्यमर्यादा तत्र कि शरण भवेत् ॥२५॥  
 यावत्प्राप्नोमि नो वातां भर्तुं कुशलवतिन । तावदाहारकार्यस्य प्रचारयानमिद मम ॥२६॥



क्या बोल रहा है ? ॥१७॥ तेरी यह लुप्ट चेष्टा पाप रूप है, आयुको कम करनेवाला है, नरकका कारण है अपकीर्तिको करनेवाली है, विरुद्ध है तथा भय उत्पन्न करनेवाली है ॥१९॥ परस्त्रीकी इच्छा करता हुआ तू महादुःखको प्राप्त होगा तथा भस्मसे आच्छादित अग्निके समान पश्चात्ताप में तेरा समस्त शरीर न्याप्त होगा ॥१४॥ अथवा तेरा चित्त पापरूपी महापङ्कसे व्याप्त है अतः तुम्हें धर्मका उपदेश देना उसी प्रकार व्यर्थ है जिस प्रकार कि अन्धेने सामने नृत्यके हाथ माच दिखाना व्यर्थ होता है ॥१५॥ अरे नीच ! परस्त्रीकी इच्छा मात्रसे तू बहुत भारी पाप बौधकर नरकमें जायगा और वहाँ कष्टकारी अवस्थाको प्राप्त होगा ॥१६॥ इस प्रकार यद्यपि सीताने कठोर अक्षरोसे भरी बाणीके द्वारा रावणका तिरस्कार किया तो भी कामसे आहत चित्त होनेके कारण उसका प्रेम दूर नहीं हुआ ॥१७॥

यहाँ सरदूषणका युद्ध समाप्त होनेपर भी रामा राजणका दर्शन न होनेसे परम स्नेहने भरे शुक्र हस्त प्रहस्त आदि मन्त्री परम उद्वेगको प्राप्त हो रहे थे सो जन उन्हाने हिलती हुई पताशसे सुशोभित प्रातः कालीन सूर्यके समान राजणका विमान आता देखा तत्र वे हर्षित होकर उसने पास गये ॥१८-१९॥ उन्हींने दिव्य वस्तुओंकी भेट देकर सम्मान प्रदर्शित कर तथा अति शय प्रिय वचन कहकर राजणकी अगवान्नी की तो भी भृत्याकी उन सम्पदाओंसे सीता वशीभूत नहीं हुई ॥२०॥ ससारमें ऐसा कौन चतुर मनुष्य है जो अग्निशिखाका पान कर सके अथवा नागिनने शिरपर स्थित रत्नमया शलाकाका स्पर्श कर सके ॥२१॥ यद्यपि सीताने वृणके अग्रभाग के समान राजणका तिरस्कार किया था तो भी वह दशों अङ्गुलियोंसे सहित अङ्गलि शिरपर धारण कर उसे नार नार नमस्कार करता था ॥२२॥ नाना दिशाआसे आये हुए तथा इन्द्रके समान-पूर्ण प्रभवको धारण करनेवाले मन्त्रियोंने जिसे घेर लिया था और 'जय हो, चढते रहो, समृद्धिमान् होओ' इत्यादि कर्ण प्रिय वचनसे जिसका स्तुति हो रही थी ऐसे इन्द्रतुल्य राजणने लकामे प्रवेश किया ॥२३-२४॥ उस समय सीताने विचार किया कि यह विद्याधराका राजा ही जहाँ अमर्यादाका आचरण कर रहा है वही दूसरा कौन शरण हो सकता है ? ॥२५॥ फिर भा मेरा यह

१. शुक्रहस्ताद्या सोद्वेगा नप्राम० म०, न० । २. स्वाहुभि म० । ३. शक्नोतिमुखा म० ।

उदीचीन प्रताचीन तत्रास्ति परमोज्ज्वलम् । गीर्वाणरमण रघातमुद्यान स्वर्गसत्रिभम् ॥२७॥  
 तत्र कवतरच्छायमहापादपमकुले । स्थापयिवा रत्न. सीता विवेश स्वनिवेतनम् ॥२८॥  
 तावद्दूषणपञ्चत्वादप्रतोऽस्य महासुचम् । अष्टादश सहस्राणि विप्रलेपुर्महास्वरम् ॥२९॥  
 भ्रानुश्चन्द्रनवा पादौ सस्योन्मुक्तकण्ठकम् । अभाग्या हा हतास्मीति विललापास्तदुर्दिनम् ॥३०॥  
 रमणामनपञ्चवद्विनिर्दग्धमानसाम् । विलपन्तामिमा भूरि जगादैव सहोदर ॥३१॥  
 अल वत्से रदित्वा ते प्रसिद्ध किं न विद्यते । जगप्रान्विहित सर्वं प्राप्नोऽयत्र न मशय ॥३२॥  
 अन्यथा व महोचारा जना क्षुद्रकशनय । धायमेवविधो भर्ता भवत्या व्योमगोचर ॥३३॥  
 मयेदमजित पूरं व्यक्त न्यायागत फलम् । इति ज्ञावा शुच कर्तुं कस्य मर्त्यस्य युज्यते ॥३४॥  
 नाकाले म्रियते कश्चिद्भ्रूणैः समाहृत । मृत्युकालेऽमृत जन्तोर्विपता प्रतिपद्यते ॥३५॥  
 येन व्यापादितो वसे समरे खरदूषण. । अन्येषा वाहितेच्छाना मृत्युरेष भवाग्यहम् ॥३६॥  
 स्वमारमेवमाघास्य दत्तादेशो जिनाचने । दह्यमानमना वासभवन रावणोऽविशत् ॥३७॥  
 तत्रादरनिराकाञ्च तत्त्वत्रिसप्तविप्रहम् । सान्मादनेशरिच्छाय नि श्वमन्तमिबोरगम् ॥३८॥  
 भर्तारं दु खयुक्तेव भूपादादरवजिता । महादरमुवाचैवमुपमृत्यु मयामजा ॥३९॥  
 किं नाथाकुलता धसे खरदूषणमृत्युना । न विपादोऽस्ति शूरागामापसु महताध्वपि ॥४०॥

नियम है कि जत्र तक भर्ताका कुशल समाचार नहीं प्राप्त कर लेती हूँ तत्र तक मेरे आहार कार्यका त्याग है ॥२६॥

तदनन्तर परिचमोत्तर दिशामें विद्यमान अतिशय उज्ज्वल, स्वर्गके समान सुन्दर देवारण्य नामक उद्यान है सो कल्पवृक्षके समान कान्तिराले बड़े बड़े वृक्षासे व्याप्त उस उद्यानमें एक जगह सातासो ठहराकर रावण अपने महलमें चला गया ॥२७-२८॥ इतनेमें ही खरदूषणके मरणका समाचार पाकर रावणकी अठारह हजार रानियों बहुत भारी शोकके कारण महाशब्द करती हुई रावणके सामने विलाप करने लगी ॥२९॥ चन्द्रनरा भाईके चरणोंमें जाकर तथा गला फाड़ फाड़कर 'हाय-हाय मैं अभागिनी मारी गई' इस तरह अश्रुवर्षासे दुर्दिनको पराजित करती हुई विलाप करने लगी ॥३०॥ पति और पुत्रको मृत्युरूपी अग्निसे जिसका मन जल रहा था ऐसी अत्यधिक विलाप करती हुई चन्द्रनरासे भाई—रावणने इस प्रकार कहा ॥३१॥ कि हे वत्से ! तेरा रोना व्यर्थ है । यह क्या प्रसिद्ध नहीं है कि ससारके प्राणी पूर्णभयमें जो कुछ करते हैं उस सबका फल अवश्य ही प्राप्त होता है इसमें सशय नहीं है ॥३२॥ यदि ऐसा नहीं है तो बुद्धशक्तिके धारक भूमिगोचरो मनुष्य कहीं आंग तुम्हारा ऐसा आकाशनामी भर्ता कहीं ? ॥३३॥ 'मैंने यह सब पूर्णमें सक्षिप्त किया था सो उसीका यह न्यायागत फल प्राप्त हुआ है' ऐसा जानकर किसी मनुष्यको शोक करना उचित नहीं है ॥३४॥ जत्र तक मृत्यु का समय नहीं आता है तत्र तक घससे आहत होने पर भी कोई नहीं मरता है और जत्र मृत्युका समय आ पहुँचता है तत्र अमृत भी जात्रके लिए निप हो जाता है ॥३५॥ हे वत्से ! जिसने युद्धमें खरदूषणको मारा है उसने साथ अन्य सब शत्रुओंके लिए मैं मृत्युमरूप हूँ अर्थात् मैं उन सबको मारूँगा ॥३६॥ इस प्रकार वहिनरो आशवासन तथा जिनेन्द्र देवकी अर्थात् उपदेश देकर जिसका मन जल रहा था ऐसा रावण निरासगृहमें चला गया ॥३७॥ वहाँ जाकर रावण आदरकी प्रतीक्षा किये बिना ही शय्या पर जा पड़ा । उस समय वह उन्मत्तसिद्धने समान अथवा साँस भरते हुए सर्पके समान जान पड़ता था ॥३८॥ भर्ताको ऐसा देग, दुरयुक्त की तरह आभूषणोंके आदरसे रहित मन्दोगी बड़े आदरमें उसके पास जाकर इस प्रकार बोली ॥३९॥ कि हे नाथ ! क्या खरदूषणकी मृत्युने आङ्गलताकी घाण कर रहे हो ? परन्तु यह ठीक नहीं है क्योंकि शूरागोंकी बड़ी-बड़ी आभ-

पुरानेकर सप्रामे मुहदस्ते क्षय गता । न च गोचिता जानु दूषण स्मिन् शोचसि ॥४१॥  
 आत्मनहेन्द्रमप्रामे श्रामालिप्रमुता नृपा । वा-धवास्ते क्षय याता शोचितास्ते न जानुचिन् ॥४२॥  
 अभून्सर्वशोम्भवमामीदृषि महापदि । शोक कि वदसीदामीं विनामामि विभो वद ॥४३॥  
 ततो महोदर स्वैर निरवयोराच रावण । तत्र किञ्चिपरियय धारितो दारितारचरम् ॥४४॥  
 शृणु सुन्दरि सद्भावमेक ते कथयाम्यहम् । स्वामिन्यमि ममासूना सर्वदा कृतवाञ्छिता ॥४५॥  
 यदि वाञ्छसि जावन्त मा ततो देवि नार्हमि । कोषं कर्तुं ननु प्राणा मूल मरुस्थ वस्तुन ॥४६॥  
 ततस्तयैवमि युक्ते शपथैविनियम्य ताम् । विलसु इव किञ्चिम् रावण समभाषत ॥४७॥  
 यदि सा वैषस सृष्टिपूर्वा<sup>१</sup> तु खवर्णना । सीता पति न मा वष्टि ततो मे नास्ति जावितम् ॥४८॥  
 लावण्य यौवन रूप माधुर्यं चान्धेष्टितम् । प्राप्य ता सुन्दरामेका<sup>२</sup> कृतार्थत्वमुपागतम् ॥४९॥  
 तना मन्दोदरी कथा जावा तस्य दशामिनाम् । विहमन्ता जगद्दिव विस्फुरदन्तचन्द्रिका ॥५०॥  
 इत् नाथ महाधर्यं वरो यत् कुरुतेऽर्धनम् । अपुण्या सावला नून या त्वा नार्थयते स्वयम् ॥५१॥  
 अथवा निविले लोके मैत्रैका परमाद्या । या स्वया मानकुटेन याच्यते परमापदा<sup>३</sup> ॥५२॥  
 केयूरनजलैरिमै करिकरोपमै । आलिय याहुमि कस्माद् बलान् कामयमे न ताम् ॥५३॥  
 सोऽवोचद्वेवि विजाप्यमस्यत्र शृणु कारणम् । प्रसम येन गृहामि न ता सर्वाङ्गसुन्दरीम् ॥५४॥

तियामे भी विपाद् नहीं होता ॥४०॥ पहले अनेक समामोंमें तुम्हारे मित्र क्षयको प्राप्त हुए हैं उन सबका तुमने शोक नहीं किया किन्तु आज गरदूषणके प्रति शोक कर रहे हो ? ॥४१॥ राजा इन्द्रके सप्रामे श्रामाली आदि अनेक राजा जो तुम्हारे मन्धुजन थे क्षयको प्राप्त हुए थे पर उन सबका तुमने कभी शोक नहीं किया ॥४२॥ पहले बड़ी बड़ी आपत्तिमें रहने पर भी तुम्हें किसीका शोक नहीं हुआ पर इस समय क्यों शोकको धारण करते हो यह मैं जानना चाहती हूँ सो हे रामिन् इसका कारण बतलाइये ॥४३॥

तदनन्तर महान् आदरसे युक्त रावण सौंस लेकर तथा कुछ शय्या छोडकर कहने लगा । उस समय उसके अक्षर कुछ तो मुखने भीतर रह जाते थे और कुछ बाहर प्रकट होते थे ॥४४॥ उसने कहा कि हे सुन्दरि ! मुनो एक सद्भावकी बात तुमसे कहता हूँ तुम मेरे प्राणाकी रगामिनी हो और सदा मेने तुम्हें चाहा है ॥४५॥ यदि मुझे जीवित रहने देना चाहती हो तो हे देवि ! क्रोध करना योग्य नहीं है, क्याकि प्राण हा तो सब वस्तुआके मूल कारण हैं ॥४६॥ तदनन्तर 'ऐसा ही है' इस प्रकार मन्दोदरीके कहने पर उसे अनेक प्रकारकी शपथासे नियममें लाकर कुछ कुछ लजित होते हुए की तरह रावण कहने लगा ॥४७॥ कि जिसका वर्णन करना कठिन है ऐसी विघाता की अपूर्व सृष्टि स्वरूप वह सीता यदि मुझे पति रूपसे नहीं चाहती है तो मेरा जीवन नहीं रहेगा ॥४८॥ लावण्य, यौवन, रूप, माधुर्य और सुन्दर चेष्टा सभी उस एक सुन्दरीको पाकर कृतकृत्यताको प्राप्त हुए हैं ॥४९॥

तदनन्तर रावणकी इस कष्टकर दशाको जानकर हँसती तथा दोतोकी कान्तिरूपी चाँदनीको फेलाती हुई मन्दोदरी इस प्रकार बोली कि हे नाथ ! यह बडा आश्चर्य है कि वर याचना कर रहा है । जान पडता है कि वह स्त्री पुण्य हीन है जो स्वय आपसे प्रार्थना नहीं कर रही है ॥५०-५१॥ अथवा समस्त सत्तारमें वही एक परम अभ्युदयको धारण करनेवाली है । जिसका कि तुम्हारे जैसे अभिमानी पुरुष बडी दीनतासे याचना करते हैं ॥५२॥ अथवा वाजुन्दके रत्नासे जटिल तथा हाथाकी सूँडकी उपमा धारण करनेवाली इन भुजाओंसे बलपूर्वक आलिङ्गन कर क्यों नहीं उसे चाह लेते हो ? ॥५३॥ इसके उत्तरमें रावणने कहा कि हे देवि !

१ तत सद्भाव म० । २ धारिता तारितान्तरम् (रं) । ३ रसना म० । ४ मेता ख० । ५ परमा यग म० ।

आर्मीदन्तवीर्यस्य मूले भगवतो मया । आत्मेकं व्रत साक्षाद्देवि निरग्रन्थससदि ॥५५॥  
 तेन देवेन्द्रवन्द्येन व्याख्यातमिदमादृशम् । तथा निवृत्तिरेकापि ददाति परम फलम् ॥५६॥  
 जन्तना दुःखभूयिष्ठभवसन्ततिसारिणाम् । पापान्निवृत्तिरत्वापि ससारीत्तारकारणम् ॥५७॥  
 येषां निरतिरेकापि व्रतश्रितोपजायते<sup>१</sup> । नरास्ते जर्जरीभूतफलशा इव निर्गुणा ॥५८॥  
 मनुष्याणां पशूनां च तेषां यत् किञ्चिदन्तरम् । येषां न त्रिघते कश्चिद्विरामो मोक्षकारणम् ॥५९॥  
 शक्या मुञ्चत पापानि गृहीतं सुकृत धनम् । जात्यन्वा इव ससारे न भ्राम्यथ यतश्चिरम् ॥६०॥  
 एव भगवतो वक्त्ररूपमलाङ्गितं वच । मधु पां वा नरा केचिद्भागानाम्बरता<sup>२</sup> गता ॥६१॥  
 सागारधर्ममपरे श्रिता विकल्पाक्षय । कर्मानुभावतः सर्वे न भवन्ति ममकिया ॥६२॥  
 एकेन साधुना तत्र प्रोक्तोऽहं सौम्यचेतसा । दशानन गृह्णाणैका निवृत्तिमिति शक्ति ॥६३॥  
 धर्मं नोऽवलद्वाप प्राण शून्यमनस्कर । कथं व्रतसि वित्तानां गुणसग्रहकोविदः ॥६४॥  
 इत्युक्तेन मया देवि प्रणम्य मुनिपुङ्गवम् । देवानुरमहर्षीणां प्रत्यक्षमिति भाषितम् ॥६५॥  
 यावन्नोऽवृत्ति मा नारां परकीया मनस्विनी । प्रसभ सा मया तात्रज्ञाभिगम्यापि दुःखिना ॥६६॥  
 एतच्चाप्यभिमानेन गृह्णात दयिते व्रतम् । का मा क्रिल समालोक्य साध्वी मान करिष्यति ॥६७॥  
 अतो न ता स्वयं देवि गृह्णासि सुमनोहराम् । सकृज्जल्पन्ति रात्रान् प्रत्यवायोऽन्यथा महान् ॥६८॥  
 यावन्मुञ्चामि नो प्राणान् तावत् सीता प्रसाद्यताम् । भस्मभावज्ञते गोहे वृषखानश्रमो वृथा ॥६९॥

मैं जिस कारण उस सर्गाङ्ग सुन्दरीको जयदर्स्ती ग्रहण नहीं करता हूँ इसमें निवेदन करने योग्य कारण है उमे सुनो ॥५४॥ हे देवि ! मैंने अनन्तवीर्य भगवान्के समीप निरग्रन्थ मुनियोर्षी सभामें साक्षात् एक व्रत लिया था ॥५५॥ इन्द्रांके द्वारा वन्दनीय अनन्तवीर्य भगवान्ने एक वार ऐसा व्याख्यान किया कि एक वस्तुका त्याग भी परम फल प्रदान करता है ॥५६॥ दुःखोंसे भरी भय-परम्परामें भ्रमण करनेवाले प्राणियोंके पापसे थोड़ी भी निवृत्ति हो जावे तो वह उनके ससारसे पार होनेका कारण हो जाती है ॥५७॥ जिन मनुष्योंके किसी पदार्थके त्यागरूप एक भी नियम नहीं है वे फूटे घटके समान निर्गुण हैं ॥५८॥ उन मनुष्यों और पशुओंमें कुछ भी अन्तर नहीं है जिनके कि मोक्षका कारणभूत एक भी नियम नहीं है ॥५९॥ हे भव्य जीवो ! शक्तिके अनुसार पाप छोड़ो और पुण्यरूपी धनका संचय करो जिससे जन्मान्ध मनुष्योंके समान चिर काल तक संसारमें परिभ्रमण न करना पड़े ॥६०॥ इस प्रकार भगवान्के मुख फलसे निकले हुए वचनरूपी मकरन्दको पीकर कितने ही मनुष्य निरग्रन्थ अक्षयशास्त्री प्राप्त हुए और हीनशक्तिको धारण करनेवाले कितने ही लोभ गृहस्थधर्ममें प्राप्त हुए सो ठीक ही है क्योंकि कर्मोदयके कारण सब एक समान क्रियाके धारक नहीं होते ॥६१-६२॥ उस समय सौम्य चित्तके धारक एक मुनिराजने मुझसे कहा कि हे दशानन ! शक्तिके अनुसार तुम भी एक नियम ग्रहण करो ॥६३॥ तुम धर्मरूपी उज्वल रत्नद्वीपको प्राप्त हुए हो सो विज्ञानी तथा गुणोंके संग्रह करनेमें निपुण होकर भी खाली मन एवं खाली हाथ क्यों जाते हो ॥६४॥ इस प्रकार कहनेपर हे देवि ! मैंने मुनिराजको प्रणामकर मुख अमुर तथा मुनियोंके समस्त इस तरह कहा कि जब तक मानवता परछीं मुझे स्वयं नहीं चाहेगी तब तक दुर्गो होनेपर भी मैं बलपूर्वक उभवा सेवन नहीं करूँगा ॥६५-६६॥ हे प्रिये ! मैंने यह व्रत भी इस अभिमान से ही लिया था कि मुझे देवदर फीन पतिव्रता मान करेगी ? ॥६७॥ इसलिए हे देवि ! मैं उम मनोहराङ्गोको स्वयं नहीं ग्रहण करता हूँ क्योंकि राजा एक वार ही रहते हैं अन्यथा बहुत भारी पापा आ पड़तीं हैं ॥६८॥ अब जब तक मैं प्राण नहीं छोड़ता हूँ तब तक मोक्षानो प्रसन्न करो

ततस्त तादृश ज्ञावा सजातकर्णोदया । यभाण रमणी नरथ स्वल्पमेतत् समीहितम् ॥७०॥  
 तत किञ्चिन्मधुस्वादविलासवशवलिता । सा देवरमणोद्यान जगाम कमलेशुभा ॥७१॥  
 तदाज्ञा प्राप्य सम्पन्निरष्टादशमहीजसाम् । दशाननवरक्षीणा सहस्राण्यनुव्रजु ॥७२॥  
 मन्दोदरा क्रमा प्राप्य सातामेवमभापत । समस्तनयविज्ञानकृतमण्डनमानसा ॥७३॥  
 अपि सुन्दरि हर्षस्य स्थाने कस्माद्विपादसि । त्रैलोक्येऽपि हि सा धन्या पतिर्यस्या दशानन ॥७४॥  
 सर्वविद्याधराधाश पराजितसुराधिपम् । त्रैलोक्यमुन्द्र कस्मापति नेच्छसि रावणम् ॥७५॥  
 नि स्व भ्रमागोचर कोऽपि तस्यार्थे दु खितासि किम् ।  
 सर्वलोकवरिष्ठस्य स्वस्य सौख्य विधायताम् ॥७६॥  
 आभार्य कुर्वत कर्म सुमहामुखधानम् । दोषो न त्रिद्यते कश्चित्सर्वं हि सुखकारणम् ॥७७॥  
 मयेति गदित वाक्य यदि न प्रतिपद्यते । ततो यद्भविता तत्ते शशुभि प्रतिपद्यताम् ॥७८॥  
 बलीयान् रावण स्वामी प्रतिपद्यविवजित । कामेन पीडित कोप गच्छेत्प्रार्थनभङ्गनात् ॥७९॥  
 यौ रामलक्ष्मणी नाम तव कावपि सम्मती । तयोरेपि हि सन्देह क्रुद्धे सति दशानने ॥८०॥  
 प्रतिपद्यस्व तन् क्षिप्र विद्याधरमहेश्वरम् । हृदयं परम प्राप्तां सौरीं लाला समाश्रय ॥८१॥  
 इत्युक्त्वा वाण्यसम्भारगद्गदोद्गीर्णवणिका । जगाद जानका जातजललोचन शरिणी ॥८२॥  
 वनिते सर्वमेतत्ते विरुद्ध वचन परम् । सतानामीदृश वक्त्राल्कथ निगन्तुमर्हति ॥८३॥  
 हृदमेव शरार मे द्विन्द भिन्दायना इत । भर्तुं पुरुषमन्य तु न करोमि मनस्यपि ॥८४॥

क्योंकि घरके भस्म हो जाने पर कूप खुदानेका श्रम व्यर्थ है ॥६६॥

तदनन्तर रावणको वैसा जान जिसे दया उत्पन्न हुई थी ऐसी मन्दोदरी बोली कि हे नाथ ! यह तो बहुत छोटी बात है ॥७०॥ तत्परचात् कुछ मधुर विलासाकी वशावर्तिनी कमललोचना मन्दोदरी देवारण्य नामक उद्यानमें गई ॥७१॥ उसकी आज्ञा पाकर रावणकी अठारह हजार मानवती स्त्रियों भी वैभवके साथ उसके पीछे चली ॥७२॥ समस्त नय-नीतियाके विज्ञानसे जिसका मन अलकृत था ऐसी मन्दोदरीने क्रम-क्रमसे सीतাকে पास जाकर इस प्रकार कहा ॥७३॥ कि हे सुन्दरि ! हर्षके स्थानमें विपाद क्यों कर रही हो ? वह स्त्री तीना लोकामे धन्य है जिसका कि रावण पति है ॥७४॥ जो समस्त विद्याधरोंका अधिपति है, जिसने इन्द्रको पराजित कर लिया है, तथा जो तीना लोकामे अद्वितीय सुन्दर है ऐसे रावणको तुम पतिरूपसे क्यों नहीं चाहती हो ? ॥७५॥ तुम्हारा पति कोई निर्यन भूमिगोचरी मनुष्य है सो उसके लिए इतना दुखी क्या हो ? सर्व लोकोसे श्रेष्ठ अपने आपको सुरा करना चाहिए ॥७६॥ अपने लिए महामुरखके साधनभूत कार्यके करनेवालेको कोई दोष नहीं है क्योंकि मनुष्यके सत्र प्रयत्न सुराके लिए ही होते हैं ॥७७॥ इस प्रकार मेरे द्वारा कहे हुए वचन यदि तुम स्वीकृत नहीं करती हो तो फिर जो दशा होगी वह तुम्हारे शत्रुआज्ञो प्राप्त हो ॥७८॥ रावण अतिशय बलवान् तथा शत्रुसे रहित है प्रार्थना भङ्ग करने पर वह काम पीडित हो क्रोधको प्राप्त हो जायगा ॥७९॥ जो राम लक्ष्मण नामक कोई पुरुष तुम्हें इष्ट है सो रावणके वृषित होने पर उन दोनोंका भी सन्देह ही है ॥८०॥ इसलिए तुम शीघ्र ही विद्याधरोंके अधिपति रावणको स्वीकृत करो और परम ऐश्वर्यको प्राप्त हो देवा सम्बन्धि लीलाको धारण करो ॥८१॥

इस प्रकार कहने पर जिसके सुराके कारण गद्गद वर्ण निकल रहे थे तथा जो अधुर्पूर्ण नेत्र धारण कर रही थी ऐसी सीता बोली कि हे वनिते ! तेरे ये सत्र वचन अत्यन्त विरुद्ध हैं । पतिव्रता स्त्रियोंके सुरासे ऐसे वचन नहीं निकल सकते हैं ? ॥८२-८३॥ मेरे इस

सन कुमारुषोऽपि यदि वाखण्डलोपम । नरस्तथापि त भर्तुरन्य नेच्छामि सर्वाथा ॥८५॥  
 युष्मान्त्वामि सक्षेपाद्दारात् सर्वाणिहागतान् । यथा ब्रूत तथा नैतत्करोमि कुरुतेऽपिसतम् ॥८६॥  
 एतस्मिन्नन्तरे प्राप्त स्वयमेव दशानन । सीता मदनतापार्तां गङ्गावेणामिव द्विप ॥८७॥  
 सर्मापाभूय चोवाच पर कुरुगया गिरा । किञ्चिद्विहसित कुर्वन्मुलचन्द्र महादर ॥८८॥  
 'मा यासादेवित् सत्रास भक्तोऽह तव सुन्दरि । शृणु विज्ञान्यमेक मे प्रसीदावहिता भव ॥८९॥  
 वस्तुना केन हीनोऽह जगत्रितयवर्तिना । न मा वृणोपि यद्योग्यमात्मन पतिमुत्तमम् ॥९०॥  
 इयुक्त्वा स्पृष्टुकाम त सातावोचससम्भ्रमा । अपसर्पं ममाङ्गानि मा स्पृश पापमानस ॥९१॥  
 उवाच रावणो देवि त्यज कोपाभिमानताम् । प्रसीद दिव्यभोगाना शचाव त्वामिनी भव ॥९२॥  
 सीतोवाच कुशीलस्य विभवा केवल मलम् । जनस्य साधुशालन्य दारिद्र्यमपि भूषणम् ॥९३॥  
 चारुवशप्रसूताना जनानां शीलहारत । लोकद्वयविरोधेन शरण भरण वरम् ॥९४॥  
 परयोपि कृताशस्य तवेद जीवित मुधा । शीलस्य पालन कुर्वन् यो जीवति स जीवति ॥९५॥  
 एव तिरस्कृतो माया कर्तुं प्रवृत्ते द्रुतम् । नेशुर्देव्य परिग्रस्ता सज्जात सर्वमाकुलम् ॥९६॥  
 एतस्मिन्नन्तरे जाते भानुर्मायाभयादिव । सम किरणचक्रेण प्रविवेशास्तगद्गमम् ॥९७॥  
 प्रचण्डैर्विगलङ्घ्यै करिभिर्यनवृद्धितै । भोपिताभ्यगमसीता शरण न दशाननम् ॥९८॥

शरीरको तुम लोग चाहे छेद डालो, भेद डालो अथवा नष्ट कर दो परन्तु अपने भर्ताके सिवाय अन्य पुनपको मनमे भी नहीं ला सकती हूँ ॥८५॥ यद्यपि मनुष्य सनत्कुमारके समान रूपका धारक हो अथवा इन्द्रके तुल्य हो तो भी भर्ताके सिवाय अन्य पुरुषकी मैं किसी तरह इच्छा नहीं कर सकती ॥८६॥ मैं यहाँ आई हुई तुम सब स्त्रियासे सक्षेपमें इतना ही कहती हूँ कि तुम लोग जो कह रही हो वह मैं नहीं करूँगी तुम जो चाहो सो करो ॥८६॥

इसी बीचमे जिस प्रकार हाथी गङ्गाकी धाराके पास पहुँचता है उसी प्रकार कामके सतापसे दुःखी रावण स्वय सीताके पास पहुँचा ॥८७॥ और पासमे स्थित हो मुखरूपी चन्द्रमा को बुद्ध बुद्ध हास्यसे युक्त करता हुआ बड़े आदरके साथ अत्यन्त दयनीय वाणीमे बोला कि हे देवि ! भयको प्राप्त मत होओ, हे सुन्दरि ! मैं तुम्हारा भक्त हूँ, मेरी एक प्रार्थना सुनो, प्रसन्न होओ और सावधान बनो ॥८८-८९॥ बताओ कि मैं वीना लोकामे वर्तमान किस वस्तुसे हीन हूँ जिससे तुम मुझे अपने योग्य उत्तम पति स्वीकृत नहीं करती हो ॥९०॥ इतना कहकर रावणने स्पर्श करनेकी चेष्टा प्रकट की तब सीताने हड़बड़ा कर कहा कि पापी हृदय ! हट मेरे अङ्गारा स्पर्श मतकर ॥९१॥ इसके उत्तरमे रावणने कहा कि हे देवि ! क्रोध तथा अभिमान छोड़ो, प्रसन्न होओ और इन्द्राणीके समान दिव्य भोगोंकी स्वामिनी बनो ॥९२॥ सीताने कहा कि कुशील मनुष्यकी सम्पदाएँ केवल मल हैं और सुशील मनुष्यकी दरिद्रता भी आभूषण है ॥९३॥ उत्तम कुलमे उत्पन्न हुए मनुष्योंकी शीलकी हानिकर दोनों लोकोंके विरुद्ध कार्य करनेसे मरणश शरणमे जाना ही अच्छा है ॥९४॥ तू परस्त्रीकी आशा रखता है अतः तेरा यह जीवन व्यथा है । जो मनुष्य शीलकी रक्षा करता हुआ जाता है वास्तवमे वह जाता है ॥९५॥

इस प्रकार तिरस्कारको प्राप्त हुआ रावण शीघ्र ही माया करनेके लिए प्रवृत्त हुआ । सब देवियों भयभीत होकर भाग गईं और वहाँका सब बुद्ध आकुलतामे पूर्ण हो गया ॥९६॥ इसी बीचमे सूर्य, किरण समूहके साथ साथ अस्ताचलकी गुहामे प्रविष्ट हो गया सो मानो रावणकी मायाने भयसे ही प्रविष्ट हो गया था ॥९७॥ जो अत्यन्त क्रोधसे युक्त थे, निम्नके गणस्थलसे मद चू रहा था तथा जो अन्यधिक गर्वना कर रहे थे ऐसे हाथियासे डराये जानेपर भी सीता



दृष्टान्तरालदर्शनभ्यां प्रैतुःसहनिःस्वने । भीषिताप्यगमन्सीता शरणं न दशाननम् ॥६६॥  
 चन्द्रेवरमहातिः सिंहैरुप्रनत्वात्कुशैः । भीषिताप्यगमन्सीता शरणं न दशाननम् ॥१००॥  
 जलस्फुल्लिङ्गभोमासौलमजिह्वैर्महोरगैः । भीषिताप्यगमन्सीता शरणं न दशाननम् ॥१०१॥  
 स्यात्ताननेः कृतोत्पातपतनेः प्रवरानरैः । भीषिताप्यगमन्सीता शरणं न दशाननम् ॥१०२॥  
 तमःविण्डासितेन्द्रुवैर्तानैः कृतहुङ्कृत् । भीषिताप्यगमन्सीता शरणं न दशाननम् ॥१०३॥  
 पृथु नानाविधैरप्रैरसर्गैः षणोप्रतैः । भीषिताप्यगमन्सीता शरणं न दशाननम् ॥१०४॥  
 तापश्च समतीताया विभाज्यां भयादिव । जिनेन्द्रवेरममृतस्त्री रक्षभेयोदिनि स्वनः ॥१०५॥  
 उद्घाटितरुपादानि ह्यारणि परवेरमनाम् । प्रभाते गतनिद्राणि लोचनायां रजिरे ॥१०६॥  
 सन्ध्या रक्षिता प्राची दिगयन्तमराजत । कुङ्कुमस्येव पङ्केन भानोरगपद्भतः कृता ॥१०७॥  
 नैश ध्वान्त समुत्प्राप्यं कुरेन्दु विगतप्रभम् । उदवाय सहस्रांशुः पङ्कजानि न्यशोधयन् ॥१०८॥  
 नतो विमलतां प्राप्ते प्रभाते चलेपदिशि । विभीषणादयः प्रापुर्दशास्य प्रिययान्यत्राः ॥१०९॥  
 परद्रूपणशोकेन ते निवांस्यनताननाः । सवाण्लोचना भूर्मां समासीता यथोचितम् ॥११०॥  
 तावत्पटान्तरस्थाया रक्ष्याः शोकनिर्भरम् । शुश्राव योषितः शब्द मनोभेद विभीषणः ॥१११॥  
 जगाद् व्याकुलः किञ्चिदपूर्वमिहाहना । का माम् करुण रीति स्वामिनेव वियोजिता ॥११२॥

रावणकी शरणमें नहीं गई ॥६६॥ जिनके दौते दादोंसे अत्यन्त भयंकर विग्राहें देते थे और जो दु सह शब्द कर रहे थे ऐसे व्याघ्रोंके द्वारा डराये जानेपर सीता रावणकी शरणमें नहीं गई ॥६६॥ जिनकी गरदनके बाल हिल रहे थे तथा जिनके नररूपी अंडुश अत्यन्त तीक्ष्ण थे ऐसे सिंहोंके द्वारा डराये जाने पर भी सीता रावणकी शरणमें नहीं गई ॥१००॥ जिनके नेत्र देदीयमान तिलगोंके समान भयंकर थे तथा जिनकी जिह्वाएँ लपलपा रही थीं ऐसे बड़े-बड़े सर्पोंके द्वारा डराये जाने पर भी सीता रावणकी शरणमें नहीं गई ॥१०१॥ जिनके मुख खुले हुए थे, जो वार-वार ऊपरकी ओर उड़ान भरते थे तथा नीचेकी ओर गिरते थे ऐसे वानरोंके द्वारा डराये जाने पर भी सीता रावणकी शरणमें नहीं गई ॥१०२॥ जो अन्धकारके विण्डके समान काले थे, ऊँचे थे, तथा हुंकार कर रहे थे ऐसे वेतालोंके द्वारा डराये जानेपर भी सीता रावणके शरणमें नहीं गई ॥१०३॥ इस प्रकार चण-चण में किये जानेवाले नाताप्रकारके भयंकर उपसर्गोंके द्वारा डराये जानेपर सीता रावणकी शरणमें नहीं गई ॥१०४॥

तदनन्तर भयसे ही मानो रात्रि व्यतीत ही गई और जिन सन्दिरोमें शब्द भेरी आदिका शब्द होने लगा ॥१०५॥ प्रभात होते ही बड़े-बड़े महलोंके द्वार सम्बन्धी क्रियाइ गुल गये सो उनसे वे ऐसे जान पड़ते थे मानो निद्रा-रहित नेत्र ही उन्होंने खोले हों ॥१०६॥ सन्ध्यासे रँगों हुई पूर्व दिशा अत्यन्त मुशोभित हो रही थी और उससे ऐसी जान पड़ती थी मानो आनेवाले सूर्यकी अगवानिकी लिए कुङ्कुमके पङ्कसे ही लिप्त की गई हो ॥१०७॥ रात्रि सम्बन्धी अन्धकारको नष्टकर तथा चन्द्रमाको निष्प्रभ बनाकर सूर्य उदित हुआ और कमलोंको विकसित करने लगा ॥१०८॥ तदनन्तर जिसमें पक्षां उड़ रहे थे ऐसे प्रातःकालकी निर्मलताको प्राप्त होनेपर विभीषण आदि प्रिय धान्धव रावणके समीप पहुँचे ॥१०९॥ परद्रूपणके शोकसे जिसके मुख चुपचाप नीचेकी ओर झुक रहे थे तथा जिनके नेत्र अश्रुओंसे युक्त थे ऐसे वे सब यथायोग्य भूमिपर बैठ गये ॥११०॥ उसी समय विभीषणने पटके भीतर स्थित शोकके भारसे रोती हुई स्त्रीका इन्द्रय-धिदारक शब्द सुना ॥१११॥ सुनकर व्याकुल होते हुए विभीषणने कहा कि यह यहाँ कौन अपूर्व स्त्री करुण शब्द कर रही है ऐसा जान पड़ता है मानो यह पतिके साथ वियोगको प्राप्त हुई

शब्दोऽयं शोकसम्भूतमस्या कम्पं समुल्लवणम् । निवेदयति देहस्य तु लसम्भारवाहिन ॥११३॥  
 पृथमुक्त समाकर्ण्य सातः तारतरस्वनम् । रुरोद सज्जनस्याग्रे नूनं शोकं प्रवर्द्धते ॥११४॥  
 जगौ च वाष्पपूर्णस्वाप्नैस्खलनिर्गतात्तरम् । इह को मे देव बन्धुस्व वत्पृच्छसि वसल ॥११५॥  
 सुता जनकराजस्य स्वसा भामण्डलस्य च । काकुत्स्थस्याहक पत्नी सीता दशरथस्तुषा ॥११६॥  
 वार्तान्वेषी गतो यावद्भर्ता मे भ्रातुराहवे । रन्ध्रेऽहं तावदेतेन हता कुम्भितचेतसा ॥११७॥  
 यावन्न मुञ्चति प्राणान् रामो विरहितो मया । भ्रातरस्मै द्रुतं तावन्नोत्वा मामर्पयौदित ॥११८॥  
 पृथमुक्त समाकर्ण्य क्रुद्धचेता विभीषण । जगाद वितयं विभ्रद् भ्रातरं गुरुवसल ॥११९॥  
 आशीविषाग्निभूतेय मोहाद् भ्रातं कुतस्त्वया । परनारा समानाता सर्वथा भयदायिनी ॥१२०॥  
 बालबुद्धिरपि स्वामिन् विज्ञाप्य ध्रुयता मम । दत्तो हि मम देवेन प्रसादो वचनं प्रति ॥१२१॥  
 भवकीर्तिलताजालैर्जटिल वलय दिशाम् । मा धावाद्यशोदाँव प्रसीद स्थितिकोविद ॥१२२॥  
 परदारामिलापोऽयमयुक्तोऽतिभयङ्कर । लज्जनीयो जुगुप्स्यश्च लोकद्वयनिपुदन ३ ॥१२३॥  
 धिक्शब्दं प्राप्यते योऽयं सज्जनेभ्य समन्तत ४ । सोऽयं विदारणे शक्तो हृदयस्य सुचेतसाम् ॥१२४॥  
 जानन् सकलमर्यादा विद्याधरमहेश्वर । ज्वलन्तमुत्सुकं कस्मात्करोपि हृदये निजे ॥१२५॥  
 यो ना परकलत्राणि पापबुद्धिनिषेवते । नरकं स विशत्येव लोहपिण्डो यथा जलम् ॥१२६॥

है ॥११२॥ इसका यह शब्द दुःखके भारको धारण करनेवाले शरीरके शोकोत्पन्न उत्कट कम्पन को सूचित कर रहा है ॥११३॥ इस प्रकार विभीषणके उक्त शब्द सुनकर सीता और भी अधिक रोने लगी सो ठीक ही है क्योंकि सज्जनके आगे शोक बढ़ता है ॥११४॥ उसने अभ्रपूर्ण मुरसे दूटे-फूटे अक्षर प्रकट करते हुए कहा कि हे देव ! यहाँ मेरा बन्धु तू कौन है ? जो इस प्रकार स्नेहके साथ पूछ रहा है ॥११५॥ मैं राजा जनककी पुत्री, भामण्डलकी बहिन, रामकी पत्नी और दशरथकी पुत्रजधू सीता हूँ ॥११६॥ मेरा भर्ता कुशल वार्ता लेनेके लिए जगतक भाईके युद्धमे गया था तब तक छिद्र देर इस दुष्टहृदयने मेरा हरण किया है ॥११७॥ मुझसे बिलुङ्गे राम जन तक प्राण नहीं छोड़ देते हैं हे भाई ! तब तक मुझे शीघ्र ही ले जाकर उन्हें सौंप दे ॥११८॥ इस प्रकार सीताके शब्द सुनकर विभीषणका चित्त कुपित हो उठा । तदनन्तर विनयकी धारण करनेवाले गुरुजनस्नेही विभीषणने भाईसे कहा कि हे भाई ! आशीविषसर्पकी विषरूपी अग्निके समान सत्र प्रकारसे भय उत्पन्न करनेवाली यह पर-नारी तू मोहवशा कहींसे ले आया है ? ॥१२१-१२०॥ हे स्वामिन् ! यद्यपि मैं बालबुद्धि हूँ तो भी मेरी प्रार्थना श्रवण कीजिये वचनके विषयमे आपने सुमपर प्रसन्नता को है अर्थात् मुझे वचन कहने की स्वतन्त्रता दी है ॥१२१॥ हे मर्यादाके जाननेमे निपुण ! यह दिशाओंका समूह आपकी कीर्तिरूपी लताओंके जालसे व्याप्त हो रहा है सो इसे अपयशरूपी दावानल जला न दे अतः प्रसन्न हूजिए ॥१२२॥ यह परस्त्रीकी अभिलाषा अनुचित है, अत्यन्त भयङ्कर है, लज्जा उत्पन्न करनेवाली है, घृणित है और दोनों लोकाको नष्ट करनेवाली है ॥१२३॥ सर्वत्र सज्जनासे यह धिक् शब्द प्राप्त होता है वही सद्दय मनुष्याके हृदयके विदारण करनेमे समर्थ है अर्थात् लोकनिन्दा विचारवान् मनुष्याके हृदयको भेदन करनेवाली है ॥१२४॥ आप तो समस्त मर्यादाको जाननेवाले, विद्याधरके अधिपति हैं फिर इस जलते हुए ज्वलन्तको अपने हृदयपर क्यों रख रहे हो ? ॥१२५॥ जो पाप बुद्धि मनुष्य परस्त्रियोषा सेवन करता है वह विनयसे उस तरह नरकमे प्रवेश करता है जिस तरह कि लोहका पिण्ड जलमे प्रवेश करता है ॥१२६॥

१ पूषास्वामिनः निर्गतात्तरम् म० । २ अरकीतिश्याग्नि 'यने च यनवद्गौ च दया दाव इदप्यने, इत्यनर । ३ त्रिनाशय म० । ४ समं तत म० ।

तद्गुत्वा रावणोऽवोचत् किं तद्द्रव्यं मदीतले । आतयस्यास्मि न स्वामी परकीय तुतो मम ॥१२७॥  
 इत्युक्त्वा विकथा कर्तुं प्रारभे भिन्नमानसः । लब्धान्तरत्र मारीचो महानीतिरवोचत् ॥१२८॥  
 जानन्नपि कथं सर्वं लोकरुचं दशानन । अत्रोदीदृश कर्म मोहस्पेदं विचेष्टितम् ॥१२९॥  
 सर्वथा प्रातरुथाय पुरेण सुचेतसा । कुशलाकुशलं स्वस्य चिन्तनीय त्रिवेकतः ॥१३०॥  
 निरपेक्षं प्रवृत्तेऽस्मिन् वक्तुमेवं महामती । सभायाः क्षोभन कुर्वन्नृत्तस्यौ रक्षसां प्रभुः ॥१३१॥  
 त्रिजगन्मण्डनाभिख्यमारोह च चारणम् । महद्भिभिश्च सामन्तैर्वाहारुदैः समावृतः ॥१३२॥  
 पुष्पनाभं समारोप्य सीतां शोक्यमाकुलाम् । पुरः कृत्वा महाभूया प्रययौ नगरीदिशा ॥१३३॥  
 कुन्तामितोऽमरच्छत्रज्जवात्पितृपाणयः । अग्रतः पुरयाः ससुः कृतसम्भ्रमनिस्वनाः ॥१३४॥  
 चलिताश्चञ्चलप्रोवाः स्थूरीषूद्राः सहस्रशः । चञ्चुराननध्रुणुच्छितयश्चाहमादिनः ॥१३५॥  
 प्रचण्डनिस्वनद्वण्टाः कृतर्जामृतगर्जिताः । प्रचेलुर्वैत्तुभिर्नुक्ता गण्डशैलसमा गज्जाः ॥१३६॥  
 अट्टहासान् विमुञ्चन्तः कृतमानाविचेष्टिताः । स्फोटयन्त इवाकाशं प्रजग्मुर्मानवा पुरः ॥१३७॥  
 सहस्रस्यैव नृपाणां ध्वनिना पूरयन् दिशः । लङ्कां दशाननोऽविषन् मणिकाञ्चनतोरणाम् ॥१३८॥  
 सम्पद्भिरेवमावाभिवृत्तोऽप्यग्न्यन्तवाहभिः । सीता दशानन मेने वृणादपि जघन्यकम् ॥१३९॥  
 अकल्पमपं स्वभावेन वैदेहीमानसं नृपः । न शक्य लोभमाने तु लेपमभ्यु यथाम्बुजम् ॥१४०॥

यह सुनकर रावणने कहा कि हे भाई ! पृथिवीतल पर यह कौन पदार्थ है जिसका मैं स्वामी न हूँ ? अतः मेरे लिए यह परकीय वस्तु कैसे हुई ? ॥१२७॥ इस प्रकार कहकर उस भिन्न हृदयने विकथाएँ करना प्रारम्भ कर दिया । तदनन्तर अवसर पाकर महानीतिज्ञ मारीच बोला ॥१२८॥ कि हे दशानन ! लोकका सब वृत्तान्त जानते हुए भी तुमने ऐसा कार्य क्यों किया ? यथार्थमे यह मोहकी ही चेष्टा है ॥१२९॥ बुद्धिमान् मनुष्यको सब तरहसे प्रातःकाल उठकर धिवेक पूर्वक अपने हिताहितका विचार करना चाहिए ॥१३०॥ इस प्रकार महाबुद्धिमान् मारीच जब निरपेक्ष भावसे यह सब कह रहा था तब बीचमे ही सभाके क्षोभको करता हुआ रावण उठकर रङ्गा हो गया ॥१३१॥ तदनन्तर वड़ी-वड़ी ऋद्धियो और अस्वारुद सामन्तोंसे घिरा हुआ रावण त्रिलोकमण्डन नामक हाथी पर सवार हो गया ॥१३२॥ वह शोकसे व्याकुल सीताको पुष्पक विमान पर चढ़ा कर तथा आगे कर वड़े वैभवसे नगरी की ओर चला ॥१३३॥ भाले, रत्न, तोमर, छत्र तथा ध्वजा आदि जिनके हाथमें थे और जो संभ्रम पूर्वक जोरदार नारे लगा रहे थे ऐसे पुरुष आगे-आगे चल रहे थे ॥१३४॥ जिनकी प्रीयाएँ चञ्चल थीं, जो सुशोभित सुरोंके अग्रभागसे पृथिवीकी रौद्र रहे थे तथा जिनपर मनोहर सवार बैठे हुए थे ऐसे हजारों घोड़े चल पड़े ॥१३५॥ जिनके घण्टे प्रचण्ड शब्द कर रहे थे, जो मेघोंके समान गर्जना कर रहे थे, जिन्हें महावत प्रेरित कर रहे थे और जो गण्डशैल-काळी चट्टानोंवाले पर्वतोंके समान जान पड़ते थे ऐसे हाथी चलने लगे ॥१३६॥ जो अट्टहास छोड़ रहे थे अर्थात् ठहाका मार कर हँस रहे थे, नाना प्रकारकी चेष्टाएँ कर रहे थे और आकाशकी फोड़ते हुए से जान पड़ते थे ऐसे मनुष्य उसके आगे-आगे जा रहे थे ॥१३७॥ इस प्रकार हजारों तुरहियोंके शब्दसे दिशाओंकी पूर्ण करता हुआ रावण मणि तथा स्वर्णनिर्मित तोरणोंसे अलंकृत लंका नगरीमें प्रविष्ट हुआ ॥१३८॥ यद्यपि रावण इस प्रकारकी अत्यन्त सुन्दर सम्पदाओंसे घिरा हुआ था तो भी सीता उसे वृणसे भी तुच्छ समझती थी ॥१३९॥ स्वभावसे ही निर्मल सीताके मनको रावण उस तरह लोभ प्राप्त करानेके लिए समर्थ नहीं हो सका जिस प्रकारकी पानी कमलको लेप प्राप्त करानेके लिए समर्थ नहीं होता है ॥१४०॥

समन्तकुसुम तावन्नावातरुलताकुलम् । प्रमदाय वन सीता नीता नन्दनसुन्दरम् ॥१४१॥  
 स्थित फुलनगस्योद्ध्वं दृष्ट्वा यद् दृष्टिवन्दनम् । उन्मादो मनसस्तुङ्गो देवानामपि जायते ॥१४२॥  
 गिरि मसभिरुचानैर्वेष्टित स्वायते स च । रराज भद्रशालाद्यै सूर्यावर्त इवोज्ज्वल ॥१४३॥  
 एकदेशानह तस्य विविधाद्भुतसङ्कुलान् । नामत सम्प्रवक्ष्यामि तव राजन् निरोध्यताम् ॥१४४॥  
 प्रकीर्णक जनानन्द सुखसेव्य समुच्चयम् । चारणप्रियसङ्ग च निबोध प्रमद तथा ॥१४५॥  
 प्रकाणक महापृष्ठे जनानन्द तत परम् । यत्रानिपिद्धसञ्चारो जन क्रीडति नागर ॥१४६॥  
 वृषायेऽल वने रम्ये मृदुपादपसङ्कुले । धनवृन्दप्रतीकाशे सरिद्वापीमनोहरे ॥१४७॥  
 दशव्यामायता वृक्षा रविमागपिरोधिन । केतकायूथिकोपेतास्ताम्बुलाकृतसङ्गमा ॥१४८॥  
 निरपद्रवसञ्चारे तत्रोद्यानसमुच्चये । विलसन्ति विलासिन्य इच्छिदेशे च सत्ररा ॥१४९॥  
 चारणप्रियमुद्यान मनोज्ञ पापनाशनम् । स्वाध्यायनिरता यत्र श्रमणा व्योमचारिण ॥१५०॥  
 तस्योपरि समारल ययुष्टमनिन्दितम् । सुखारोहणसोपान दृश्यते प्रमदाभिधम् ॥१५१॥  
 स्नानक्राडोचिना रम्या वाच्योऽस्मिन् पद्मशोभिता । प्रपा समाश्रयिष्यन्ते रचितानेकभूमय ॥१५२॥  
 नारिद्रमातुलिङ्गाद्यै ३ फलैर्यत्र निरन्तरा । खजूरैर्नालिरेरैश्च तालैरन्यैश्च वेष्टिता ॥१५३॥  
 तत्र च प्रमदोद्याने सर्वा एवागजातय । कुसुमस्तम्भैश्च शशा गीयन्ते मत्तपूपदै ॥१५४॥

अथानन्तर जिसमें सत्र ओरसे फूल फूल रहे थे, जो नानाप्रकारके वृक्ष और लताओंसे युक्त था तथा जो नन्दन वनके समान सुन्दर था ऐसे प्रमद नामक वनमें सीता ले जाई गई ॥१४१॥ फूलाके पर्यतके ऊपर स्थित तथा दृष्टिको बाँधनेवाले जिस प्रमदवनको देखकर देवाके मनमें भी अत्यधिक उन्माद उत्पन्न हो जाता है ॥१४२॥ अत्यन्त लम्बे लम्बे सात उद्यानोंसे घिरा हुआ वह पर्वत ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो भद्रशाल आदि वनोंसे घिरा अतिशय उज्ज्वल सुमेरु पर्वत ही हो ॥१४३॥ गोतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! अनेक आश्रयोंसे भरे हुए उसके एक देशरूप जो सघन वन है हम उनके नाम कहते हैं सो सुनो ॥१४४॥ उस पर्वत पर जो सात वन हैं उनके नाम इस प्रकार हैं—१ प्रकीर्णक २ जनानन्द ३ सुखसेव्य ४ समुच्चय ५ चारण-प्रिय ६ निबोध और प्रमद ॥१४५॥ इनमेंसे प्रकीर्णक नामका वन पृथ्वीतल है पर उसके आगे जना-नन्द नामका वह वन है जिसमें कि वे ही मनुष्य क्रीडा करते हैं जिनका कि आना जाना निपिद्ध नहीं है अन्य लोग नहीं ॥१४६॥ उसके ऊपर चलकर तीसरा सुपसेव्य नामका वन है जो फोमल वृक्षांसे व्याप है, मेघ समूहके समान है, तथा नदियों और वापिकाओंसे मनोहर है । उस वनमें सूर्यके मार्गको रोकनेवाले, केतकी और जूहीसे सहित तथा पानको लताओंसे लिपटे दशवेमा प्रमाण लम्बे-लम्बे वृक्ष हैं ॥१४७-१४८॥ उसके ऊपर अपद्रव रहित गमनागमनसे युक्त समुच्चय नामका चौथा वन है जिसमें कहीं हाव-भावको धारण करनेवाली स्त्रियों सुशोभित हैं तो कहीं उत्तमोत्तम मनुष्य सुशोभित हो रहे हैं ॥१४९॥ उसके ऊपर चारणप्रिय नामक पाचवें पापापहारी मनोहर वन है जिसमें चारणशुद्धिधारी मुनिराज स्वाध्यायमें तत्पर रहते हैं ॥१५०॥ [उसके ऊपर छठवाँ निबोध नामका वन है जो ज्ञानका निराम है] और उसके आगे चट्टकर प्रमद नामका सातवाँ वन है जो घोड़ेके पृष्ठके समान उत्तम तथा सुपसे चढ़नेके योग्य मोड़ियोंसे युक्त दिखाई देता है ॥१५१॥ इस प्रमद वनमें स्नानक्रीडाके योग्य, फमलासे सुशोभित मनोहर वापिकाएँ हैं, स्थान स्थान पर पानीयशालाएँ और अनेक गण्डोंसे युक्त मभागृह विद्यमान हैं ॥१५२॥ जहाँ गजूर, नारियल, ताल तथा अन्य वृक्षोंसे घिरे ग्य फलोंमें लड़े नागिन्द्र और वीजपूर आदिके वृक्ष हैं ॥१५३॥ उस प्रमद

कुर्वन्ती<sup>१</sup> लतालीला कोमलै<sup>२</sup> पल्लवै करै । घृणिता मन्दवानेन पल्लुष्वमनोहरा ॥१५५॥  
 सारङ्गदयिताभिश्च प्रलम्बाम्बुदशोभिन । समस्तकुञ्जतच्छाया<sup>३</sup> सेच्यन्ते घनवान्वा ॥१५६॥  
 विभूति तस्य ता वाप्य सहस्रच्छन्दनानना । आलोकन्त द्वयन्तुता भमितोपल्लोचनै ॥१५७॥  
 गहनान् कोकिलालापान् नुरयन् यो मन्दवायुना । दीपिका विहसन्ताव राजहमसदम्बक<sup>४</sup> ॥१५८॥  
 प्रमदाभिलषमुद्यान सर्वभोगोसवावहम् । अग्र किं बहुनोक्तेन स्याद्भर नन्दनादपि ॥१५९॥  
 अशोकमालिना नाम पत्रपद्मविराजिता । वापी वनकमपोपाना विचित्राकारगोपुरा ॥१६०॥  
 मनोहरैर्गृहैर्भाति गवाक्षाद्युपशोभितै । सल्लतालिङ्गितमानैर्निर्भरैश्च ससीकरै ॥१६१॥  
 तत्राशोकतरच्छत्रे स्थापिता शोकधारिणी । देशे रामालयाद् अष्टा स्वय श्रारिज जानकी ॥१६२॥  
 तस्मिन् दशाननोत्तभि खामिन्-तरवजितम् । साता प्रसाद्यते वस्त्रगन्धालङ्कारपाणिभि ॥१६३॥  
 दिव्यै सनत्तनैर्गनैर्वाक्यैश्चामृतहारिभि । अनुनेतु न सा शक्या सम्पदा चामराभया ॥१६४॥  
 उपयुषारि सरक्तो दूती विद्याधराधिप । प्राहिगोद्वि स्मरोदारदावज्वालकुलाकृत ॥१६५॥  
<sup>५</sup>दूति सीता प्रज गृह्णि दशास्यमनुरक्तकम् । न साम्प्रतमवज्ञातु प्रसीदेत्यादिभाषते ॥१६६॥  
 गताऽऽगता च या तस्मै वदतीति विनेजस । देव साहारमुत्सृज्य स्थिता त्वा वृणुते कथम् ॥१६७॥

नामक उद्यानमें वृक्षोंकी सब जातियों विद्यमान हैं जो कि फूलोंसे आच्छादित हैं और मन्दोन्मत्त भ्रमर जिनपर गुञ्जार करते हैं ॥१५४॥ वहाँ मन्द-मन्द वायुसे हिलती और फलों तथा फलोंसे मनोहर लता अपने कोमल पल्लवोंसे ऐसी जान पड़ती है माना हाथ चलाती हुई नृत्य ही कर रही हो ॥१५५॥ वहाँ नीचे लटकते हुए मेवाके समान सुशोभित तथा समस्त ऋणुआमें छाया उत्पन्न करनेवाले सघन वृक्षोंकी हरिणियाँ सदा सेवा करती हैं—उनके नीचे विश्राम लेती हैं ॥ १५६॥ कमलरूपा मुखोंसे सहित वहाँकी वापिकाएँ नील कमल रूपी नेत्रोंके द्वारा उस वनकी उस विभूतिको मानो अचूत होकर ही सदा देखती रहती हैं ॥१५७॥ जहाँ मन्द मन्द वायुसे नृत्य करती हुई वापिकाएँ राजहम पक्षियोंके समूहसे ऐसी जान पड़ती हैं माना कोकिलोंके आलापसे युक्त सघन वनाकी हँसी ही कर रही हो ॥१५८॥ इस विषयमें अधिक कहनेसे क्या ? इतना ही बहुत है कि समस्त भोगों और उ-संगोंको धारण करनेवाला वह प्रमद नामक उद्यान नन्दन वनसे भी अधिक सुन्दर है ॥१५९॥

उस प्रमद वनमें अशोक मालिनी नामकी वापी है जो कि कमल पत्रोंसे सुशोभित है, स्वर्णमय सोपानोंसे युक्त है, और विचित्र आकार वाले गोपुरसे अलङ्कृत है ॥१६०॥ इसके सिवाय वह प्रमद वन करोड़ों आदिसे अलङ्कृत तथा उत्तमोत्तम लताओंसे आलिङ्गित मनोहर गृहों और जल कणोंसे युक्त निर्भरोंसे सुशोभित है ॥१६१॥ उस प्रमद वनके अशोक वृक्षसे आच्छादित एक देशमें वैठी शोकधती साता ऐसी जान पड़ती थी माना रंगोंसे गिरी सान्नात् लक्ष्मी हो ॥१६२॥ वहाँ रावणकी आज्ञानुसार वस्त्र, गन्ध तथा अलकारोंका हाथामे धारण करने वाली स्त्रियों निरन्तर सीताको प्रसन्न करनेकी चेष्टा करती थीं ॥१६३॥ किन्तु नृत्य सहित नृत्य संगीता, अमृतके समान मनोहर वचना और देवतुल्य सम्पदाके द्वारा सीता अनुकूल नहीं का जा सकी ॥१६४॥ इतने पर भी कामरूपी दावानलकी प्रचण्ड ज्वालामुखीसे व्याकुल हुआ रागी रावण एकके बाद एक दूती भेजता रहता था ॥१६५॥ वह कहता था कि हे दूति ! जाओ और सीतासे कहो कि अत्र अनुरागसे भरे रावणकी उपेक्षा करना उचित नहीं है अतः प्रसन्न होओ ॥१६६॥ दूती सीताके पास जाती और वापिस आकर तेजरहित रावणसे कहता कि हे देव !

न चल्पति निपण्णाहा नाल कायेन चेटते । न ददाति महाशोका दृष्टिमस्मासु जानका ॥१६८॥  
 अमृतादपि सुस्वादौ पय प्रभृतिभि श्रितम् । सुगन्धि वृणुते नाह विचित्र बहुवर्णकम् ॥१६९॥  
 ततो मदनदासाग्निज्वालाहाड समन्तत । आर्त्तो व्यचिन्तयत् भूरि मनोज्ञो व्यसनाण्वे ॥१७०॥  
 शोचयन्मुक्तदार्धोष्णनिश्वासानिलसन्तति । शुष्पन्मुख पुन किञ्चिद्गाययविदिताक्षरम् ॥१७१॥  
 स्मरप्रालेयनिर्दग्ध धुनाति मुखपङ्कजम् । मुहु किमपि सञ्चिय स्मयते क्षणनिश्चल ॥१७२॥  
 अनुबन्धमहादाहा समस्तावयवानलम् । क्षिपयविरत भूमौ कुट्टिमाया विवर्त्तक ॥१७३॥  
 उत्तिष्ठति पुन शून्य सेवते निजमासनम् । नि क्रामति पुनर्दृष्टा जन प्रतिनिवर्त्तते ॥१७४॥  
 नागोन्द् इव हस्तेन सर्वदिङ्मुखगामिना । आस्फालयति नि शङ्कु कुट्टिम कम्पमानयन् ॥१७५॥  
 स्मरन् साता मनोयातामामान पौरुष त्रिधिम । निरपेक्षमुपालब्धु साभ्रुनेत्र प्रवर्त्तते ॥१७६॥  
 किञ्चिदाह्वयने दत्तहुङ्कारश्चातिकैजनै । तृष्णामास्ते पुन किं किमति शून्य प्रभापते ॥१७७॥  
 साता सातेति कृ वास्यमुत्तान भापते मुहु । तिष्ठयवाङ्मुख भूयो नखेन विलिखन् महाम् ॥१७८॥  
 करेण हृदय मार्षि बाहुमुद्धानमाचते । पुनर्मुञ्चति हुङ्कार तल्प मुञ्चति सेवते ॥१७९॥  
 दधाति हृदये पद्म पुनर्दूर निरस्यति । मुहु पठति शृङ्गार गगनाङ्गणमीचते ॥१८०॥

वह तो आहार छोडकर बैठी है तुम्हें किस प्रकार स्वीकृत करे ॥१६७॥ वह चुपचाप बैठी है, न कुछ बोलती है, न शरीरसे कुछ चेष्टा करती है और न महाशोकसे युक्त होनेके कारण हम लोगोंपर दृष्टि ही डालती है ॥१६८॥ अमृतसे भी अधिक स्वादिष्ट, दूध, आदिसे युक्त, सुगन्धित, तथा अनेक वर्णका विचित्र भोजन उसे दिया जाता है पर वह स्वीकृत नहीं करती है ॥१६९॥ दूतीकी बात सुनकर जो सब ओरसे कामरूपी प्रचण्ड अग्निकी ज्वालाओंसे व्याप्त था तथा दुःखरूपी सागरमें निमग्न था ऐसा रावण अत्यधिक दुःखी होता हुआ पुन चिन्तामें पड जाता था ॥१७०॥ वह कभी लम्बी तथा गरम श्वासोद्धासका वायुको छोडता हुआ शोक करता था तो कभी मुक्त सूख जानेसे अस्पष्ट अक्षरों द्वारा कुछ गाने लगता था ॥१७१॥ वह कामरूपी तुषारसे जले हुए मुखकमलको चार-चार हिलाता था और कभी क्षणभरके लिए निश्चल बैठकर तथा कुछ सोचकर हँसने लगता था ॥१७२॥ वह रत्नरचित फर्सपर लोटता और महादाह से युक्त समस्त अवयवको बार बार फैलाता था ॥१७३॥ फिर उठकर खड़ा हो जाता, कभी शून्य हृदय हो अपने आसनपर जा बैठता, कभी बाहर निकलता और किसी मनुष्यको देखकर फिर लौट जाता ॥१७४॥ जिस प्रकार हाथी सब दिशाओंमें जानेवाली सूँडसे किसीका आस्फालन करता है उसी प्रकार रावण भी नि शङ्कु हो सब दिशाओंमें घूमनेवाले अपने हाथसे कम्पित करता हुआ फर्सको आस्फालन करता था अर्थात् फर्सपर घुमा घुमाकर हाथ पटकता था और उससे फर्सको कपित करता था ॥१७५॥ वह मनमें आई हुई सीताका स्मरण करता हुआ अपने पुन्यार्थ, तथा निरपेक्ष भाग्यको उलाहना देनेके लिए प्रवृत्त होता था और उस समय उसके नेत्रासे अश्रु निकलने लगते थे ॥१७६॥ वह किसीको बुलाता था और समीपवर्ती लोग जब हँकार देते थे तब चुप रह जाता था तदनन्तर चार-चार क्या है ? क्या है ? इस प्रकार निना किसी लक्ष्यके वकता रहता था ॥१७७॥ वह कभी मुखको ऊपर कर 'सीता साता' इस प्रकार चार-चार चिल्लाता था और कभी मुख नीचा कर नखसे पृथिवीको खोदता हुआ चुप बैठा रहता था ॥१७८॥ वह कभी हाथसे वक्ष स्थलको साक करता था, कभी भुजाओंके अग्रभागकी देगता, कभी हुकार छोडता कभी विस्तर पर जा लेता था ॥१७९॥ कभी हृदय पर कमल

१ चिन्तयत् म० । २ स्मरतावयवानम् म० । ३ मुपालब्ध म० । ४ यति म० ।

५ मीक्षन् म० ।

हस्त हस्तेन मस्तरय हन्ति पादेन मेदिनीम् । निरवामदहनरवाममाहृष्याधैरमाचरते ॥१८१॥  
 धत्ते कहरुह खान केशान् वचयति चगम् । कापेन दुस्सहः दृष्टि कचिदेव विमुञ्चति ॥१८२॥  
 जम्भोचानाकृतोरस्को वाण्यन्ध्रादितलोचन । वातुतोरणमुद्यम्य भिनत्ति स्फुटदृग्गुलि ॥१८३॥  
 अशकान्तेन हृत्पय धीनयवाहितेषणम् । कुमुदै कुस्ने रूप पुननाशयति द्रुतम् ॥१८४॥  
 चित्रययाद्रा सीता द्रवययधुमि पुन । दीन चिपति हाकारान् न न मानेति जल्पति ॥१८५॥  
 पुनमाद्या त्रिया विलग्न मदनप्रहपीडित । करोति कठगालाप चित्र हि स्मरयेद्वितम् ॥१८६॥  
 तस्य स्मराग्निना दास हृदयेन सम वपु । अनुग्रन्थमहाधूप ज्वल याराहृतेन्यनम् ॥१८७॥  
 अचिन्तयच्च हा कष्ट कामवस्यामह गत । येनेदमपि शक्नामि न बोद्ध स्वयारारकम् ॥१८८॥  
 दुर्गसागरमध्यस्था वृहद्विद्याधरा मया । चिता सहस्रयो युद्धे किमिद वर्तनेऽपुना ॥१८९॥  
 सर्वत्र जगति ख्यातलोकापालपरिचरुद । वन्द्यागृहमुपानीता महेंद्रोऽपि पुरा मया ॥१९०॥  
 अनेकयुद्धनिर्भानवराधिपकदम्बक । सोऽह सम्प्रति माहेन भस्मोक्तुं प्रवर्तित ॥१९१॥  
 चिन्तयत्रिदमन्यच्च कामाचार्यवशगत । भास्ता तावदसौ रात्रिदमन्यद्विबुध्यत्राम् ॥१९२॥  
 आकुला मन्त्रिभि साक महामन्त्रविशारद् । विभीषण समारमे निरूपयिमुमादशम् ॥१९३॥  
 स हि रावणराष्ट्रस्य पुर धत्ते गतश्रम । समस्तशास्त्रो गान्मुञ्चतनिर्मलमानस ॥१९४॥

रगता, कभी उसे दूर फेंक देता, कभी बार-बार शृङ्गारका पाठ करता—शृङ्गार भरे शार्दीका उच्चारण करता और कभी आज़ाशकी ओर देखने लगता था ॥१८०॥ कभी हाथसे हाथका स्पर्शका पीरसे पृथिवीको ताडित करता था, कभी रसासोच्छ्राम रूपी अग्निसे काले पडे हुए अधरोष्ठको रींच कर देखता था ॥१८१॥ कभी 'कह कह' शब्द करता था, कभी केशाको खोल कर फैलाता था, कभी किसी पर क्रोधसे दुःसह दृष्टि छोड़ता था ॥१८२॥ कभी निमुहाई लेते समय वक्षस्वलको फुलाकर आगेको उभार लेता था, कभी नेत्रोको आँसुओंसे आच्छादित करता था, कभी भुजाओंका तोरण उपर उठा अगुलियाँ चटकाता हुआ उसे तोड़ता था ॥१८३॥ कभी हृदयकी ओर दृष्टि डालकर वस्त्रके अञ्चलसे हवा करता था, कभी फूलोंसे रूप उनाता और फिर उसे शीघ्र ही नष्ट कर देता था ॥१८४॥ कभी आदृष्टे साथ सीताका चित्र बनाता और फिर उसे आँसुओंसे गीला करता था, कभी दीनताके साथ हा हाकार करता और कभी 'न, न' 'मा, मा' शब्दोंका उच्चारण करता था ॥१८५॥ इस प्रकार कामरूपी पहले पंडित रावण अनेक प्रकारकी चेष्टाँ करता तथा वन्द्यापूर्ण वार्तालाप करता था सो ठीक ही है क्योंकि कामकी चेष्टा विचित्र होती है ॥१८६॥ जिसमें वासनारूपी महाधूम उठ रहा था, तथा आशा जिसमें र्धन बन रही थी ऐसा उसका शरीर कामाग्निसे दीप्त हो हृत्पयके साथ जल रहा था ॥१८७॥ वह कभी विचार करता कि हाथ में किस अस्थया को प्राप्त हो गया जिससे अपने इस शरीरको भी धारण करनेके लिए समर्थ नहीं रहा ॥१८८॥ मैंने दुर्गम समुद्रके बीचमें रहनेवाले हजारों बड़े बड़े विद्याधर युद्धमें जीते हैं पर इस समय यह क्या हो रहा है ? ॥१८९॥ जिसका लोकापालरूपी परिकर समस्त ससारमें प्रसिद्ध था ऐसे राजा इन्द्रको भी मैंने पहले उन्दीगृहमें टाल रखा था तथा अनेक युद्धोंमें जिसने राजाओके समूहको पराजित किया था ऐसा मैं इस समय मोहके द्वारा भस्मीभूत हो रहा हूँ ॥१९०-१९१॥ गौतम-फहते हैं कि हे रावन् ! यह तथा अन्यवस्तुओंका चिन्तन करता हुआ रावण कामरूपी आचार्यके यशीभूत हो रहा था सो यह रहने दो अब दूसरी बात सुनो ॥१९२॥

अथानन्तर आकुलतासे भरा तथा बड़ी-बड़ी मन्त्रणा करनेम निपुण विभीषण मन्त्रियोंके साथ बैठकर इस प्रकार निरूपण करनेके लिए तैयार हुआ ॥१९३॥ यथार्थमें समस्त शास्त्रोंके ज्ञान

राजस्य हि तत्तुर्यो न हितो विद्यते पर । तस्य सर्वोपयोगेन चिन्तनीये स वर्तते ॥११५॥  
 उवाचासावहो वृद्धा राजनी थ व्यवस्थिते । उपक्षिपत कर्तव्यमस्माकमधुनोचितम् ॥११६॥  
 त्रिभीषणोदित ध्रुवा सम्भिन्नमतिरभ्यधात् । भत पर वदाम कि गत कार्यमकार्यताम् ॥११७॥  
 स्वामिनो दशवक्त्रस्य सहसा दैवयोगत । दक्षिणोपतितो बाहु खरदूषणसञ्जक ॥११८॥  
 विराधितोऽपर कोऽपि कारण या न कस्यचित् । सोऽय गोमायुता मुक्त्वा केसरिख समाधित ॥११९॥  
 भव्यता पश्यतामुप्य साधुकर्मादयामिमां । लक्ष्मणस्याहवे यातो बन्धुता यत्सुचेष्टित ॥२००॥  
 एतेऽपि बलिा सर्वे मानिन कपिकेतव । भवन्त्याक्रान्तितो वरया निभृत्वास्तु न जानुचित् ॥२०१॥  
 अमापामन्य आकारो मानस लवया स्थितम् । भुजङ्गानामिवात्यन्तमन्तरे दारुण विपम् ॥२०२॥  
 नेता वानरमौरानामवन्नकुसुमापति । व्यक्षेण भजते पक्ष सुप्रावस्य मर सुत ॥२०३॥  
 तत पद्ममुत्तोऽनोचद्विधायानादरस्मितम् । खरदूषणवृत्तेन गणितेनेह को गुण ॥२०४॥  
 वृत्तान्तेनामुता कस्य सत्रासोऽकारिरेव च । भवत्येव हि शूराणामादशा समरे गति ॥२०५॥  
 वातेनापहृते सिन्धो कणे का न्यूनता भवेत् । रावणस्य बल रफांत किं दूषणसर्माहया ॥२०६॥  
 ग्राहा प्रजति मे चेत् कुर्वत सम्प्रधारणम् । काय दशानन स्वामा काव्ये केऽपि वनोक्त ॥२०७॥  
 सूर्यहासवरेणापि क्रियते लक्ष्मणेन किम् । विराधित क नामेव यस्येच्छामनुवर्तते ॥२०८॥

जलसे धुलकर जिसका मन अत्यन्त निर्मल हो गया था तथा जो सब प्रकारके श्रमको सहन करनेवाला था ऐसा विभीषण ही रावणके राष्ट्रका भार धारण करनेवाला था ॥११४॥ विभीषणके समान रावणका हित करनेवाला दूसरा मनुष्य नहीं था । वह उसके करने योग्य समस्त कार्योंमें सर्व प्रकारका उपयोग लगाकर सदा जागरूक रहता था ॥११५॥ विभीषणने मन्त्रियासे कहा कि अहो युद्धजनो ! राजाकी ऐसी चेष्टा होनेपर अब हम लोगोका क्या कर्तव्य है सो पढ़ो ॥११६॥ विभीषणका कथन सुनकर सभिन्नमति बोला कि इससे अधिक और क्या कहें कि सन राय अकार्यताको प्राप्त हो गया है अर्थात् सब कार्य गडबड हो गया है ॥११७॥ स्वामी दशाननकी दक्षिण भुजाके समान जो खरदूषण था वह दैवयोगसे सहसा नष्ट हो गया ॥११८॥ वह विराधित नामका विद्याधर जो कि किसीके लिए कुछ भी नहीं था वह आज शृगालपना झोडकर सिंहपनेको प्राप्त हुआ है ॥११९॥ पुण्य कर्मके उदयसे प्राप्त हुई इसकी इस भव्यताको तो देखो कि उत्तम चेष्टाओंकी धारण करनेवाला यह युद्धमें लक्ष्मणकी मित्रताको प्राप्त हो गया ॥२००॥ इधर ये सभी वानरवशी भी अभिमानी तथा बलवान् हो रहे हैं सो ये आक्रमणसे ही वशमे हो सकते हैं विना आक्रमणके कभी वशीभूत नहीं हो सकते ॥२०१॥ इनका आकार कुछ दूसरा ही है और मन दूसरे ही प्रकारका स्थित है जिस प्रकार सौंपाके बाहामे तो कोमलता रहती है और भीतर दारुण विप रहता है ॥२०२॥ खरदूषणकी पुत्री अंनंग कुसुमाना पति हनुमान् इस समय वानर वशियाका नेता बन रहा है और वह ग्यासकर सुभीनका ही पक्ष लेता है । इस प्रकार सभिन्नमतिके कह चुकने पर पंचमुख मन्त्री अनादर पूर्वक हँसता हुआ बोला कि यहाँ खरदूषणका वृत्तान्त गितनेसे अर्थात् उसकी मृत्युका सोच करनेसे क्या लाभ है ? ॥२०३-२०४॥ इस वृत्ता तसे किसेभय तथा किसकी अपकीर्ति है ? अर्थात् किसीकी नहीं क्योंकि युद्धमें शूर वीराकी ऐसी गति होती ही है ॥२०५॥ बायुके द्वारा समुद्रकी एक कणिका हरलेने पर समुद्रमें क्या न्यूनता आ गई ? अर्थात् कुछ भी नहीं । रावणका बल बहुत है, उसने शोष देखनेसे क्या । ऐसी बात सोचते हुए मेरे मनमें लज्जा आती है । कहीं यह जगन्ना स्वामी रावण और कहीं अन्य वनवासी ? ॥२०६-२०७॥ लक्ष्मण यद्यपि सूर्यहास नन्दको धारण करनेवाला है तो भा उससे क्या और विराधित उसकी इच्छानुसूल प्रवृत्ति करता है—उसका



मृगेन्द्राभिष्टितामानमपि काननमङ्गलम् । दम्बकते न किं दाया गिरि परमदु महम् ॥२०६॥  
 महत्प्रमतिनामाय सचिनोऽनन्तर जगी । सूचयन् प्रिस वात्स्य पूर्व मन्त्रकल्पनान् ॥२१०॥  
 मानोद्भूतेरिर्मवांशपरधंहाते किमारितै । मन्त्रगोप्य हि मन्वद् स्वामिने दिनमिच्छुता ॥२११॥  
 स्वप इत्यनया बुद्ध्या कार्यावज्ञा न वैरिणि । काल प्राप्य कर्गो यद्देहेन्दु सन्प्रविष्टपम् ॥२१२॥  
 अधर्मावा महामैन्य स्यात् सर्वत्र विष्टे । स्वलोनापि त्रिष्टुप्तेन निहतो रणमूर्धनि ॥२१३॥  
 तस्माद्भेषविनिमुक्तमिय परमदुर्गमा । नगरी क्रियता लङ्का मतिसन्दोहराग्निभि ॥२१४॥  
 सुपोराणि प्रसापन्ता यन्प्राप्येतानि सर्वत । तुङ्गप्राकारकृष्टेषु दर्यतां च कृताकृतम् ॥२१५॥  
 सन्मानैर्यद्गुभि शशन् सेव्यो जनपदांश्चिरल । स्वप्रनाज्जतिरेरण दर्यतां प्रियनादिभि ॥२१६॥  
 सर्वोपायविधानेनै रक्षयतां प्रियकारिभि । राधा दशाननो येन सुप्यतां प्रतिपत्तने ॥२१७॥  
 प्रसाद्यता मुविज्ञानैर्मधिलो परमै प्रियै । मयुरैर्वचनैर्दानै चारैरहितधरिच ॥२१८॥  
 सुप्रात्र वैष्टुनगरमन्याश्च भण्डुहवान् । बहि स्थापयतोऽनुनाश्रगर्वा रचकारिण ॥२१९॥  
 पृथक्ते न ते भेद जानन्ति बहिराहिता । कापे नियोगदानाच्च जानन्ति स्वामिन प्रियम् ॥२२०॥  
 पृथ दुर्गंतरे जाते कार्ये सर्वत्र सर्वत । को जानाति हता मीता स्थितामग्रापरत्र वा ॥२२१॥  
 रहितश्चानया रामो ध्रुव प्राणान् विमोषयति । यस्यैयमोदशी कान्ता वर्तत प्रिरहे प्रिया ॥२२२॥  
 रामे च पद्मता प्राते शोक्रविस्त्वमानस । एकाका ध्रुवयुक्तो वा सौमित्रि कि करिष्यन्ति ॥२२३॥

मित्र है इससे भी क्या ? ॥२०८॥ क्योंकि वन सहित एक अत्यन्त दुःसह पर्यंत यद्यपि मिहसे सहित हो तो भी क्या उसे दानानल जला नहीं देता ? ॥२०६॥

तदनन्तर माथा हिलाकर पूर्व कथित वचनोंको नीरस पतावा हुआ सहस्रमति मन्त्रा नोला कि मानसे भरे इन निरर्थक वचनोंके कड़नेसे क्या लाभ है ? स्वामीका हित चाहनेवाले 'यदि को ऐसी मन्त्रगा करनी चाहिए जो प्रकृत वातसे सम्बन्ध रखनेवाली हो ॥२१०-२११॥ 'बहु छोटा है' ऐसा समझकर शत्रुकी अवज्ञा नहीं करनी चाहिये क्योंकि समय पाकर अग्निका एक कण समस्त ससारको जला सकता है ॥२१२॥ बड़ा भारी सेनाका स्वामी अरजप्रोत्र समस्त ससारमें प्रसिद्ध था तो भी रणको अग्रभागमें छोटेसे त्रिष्टुप्के द्वारा मारा गया था ॥२१३॥ इमल्लिचिना जिताके विलम्बके इस लका नगरीको बुद्धिमान् मनुष्योंके द्वारा अत्यन्त दुर्गम बनाया जावे ॥२१४॥ ये महाभयानक यन्त्र सत्र दिशाओंमें फैला दिये जायें । अत्यन्त उन्नत प्राकारके शिखरों पर चक्रकर 'क्या किया गया क्या नहीं किया गया' इसकी देव देवकी जाय ॥२१५॥ अनेक प्रकारके सम्मानोंसे समस्त देशकी निरन्तर सेवा की जाय और मयुर वचन बालनेवाले राज्याधिकारी सत्र लोगोंकी अपने कुटुम्बीजनोंसे अभिन्न देखें ॥२१६॥ प्रिय करनेवाले मनुष्य सत्र प्रकारके उपायोंसे राजा दशाननकी रक्षा करे जिससे वह सुखको प्राप्त हो सके ॥२१७॥ जिस प्रकार दूधके द्वारा सर्पिणोंको प्रसन्न किया जाता है उसी प्रकार उत्तम चानुर्यं, परम प्रिय मयुर वचनों और इष्ट वस्तुओंके दानके द्वारा सीताको प्रसन्न किया जाय ॥२१८॥ मित्रु नगरके स्वामी सुधीव तथा नगरीकी रक्षा करनेमें उद्यत अन्य उत्तम योद्धाओंके नगरके बाहर गया जावे ॥२१९॥ ऐसा करने पर बाहर रसे हुए सुधीवादि अन्तरका भेद नहीं जान सकेगे और कार्य सौंपा जानेके कारण वे यह समझते रहेंगे कि स्वामी हम पर प्रमत्त है ॥२२०॥ इस तरह जब यहाँका प्रत्येक कार्य सत्र जगह सत्र ओरसे अत्यन्त दुर्गम हो जायगा तब कौन जान सकेगा कि हरी हुई सीता यहाँ है या अन्यत्र है ? ॥२२१॥ सीताके बिना राम निश्चित ही प्राण द्याड देगा । क्योंकि जिसकी ऐसी प्रिय स्त्री चिरहमें रहेगी वह जीवित रह हा कैसे सकेगा ॥२२२॥ जब राम मृत्युको प्राप्त हो जायगा तब शोकसे दुःखा अकेला अथवा लुप्त सहायकासे युक्त

अथवा रामशोनेन मरण तस्य निश्चितम् । दीपप्रकाशयोर्बद्धदनयो सङ्गत परम् ॥२२४॥  
 अपराधाधिमग्न सन् यास्यति क विराधित । सुग्रीवस्यापि वाधन्त श्रूयते लोकत परम् ॥२२५॥  
 माया सुग्रीवमन्देहकारिणी यश्च भाशयेन् । दशवदनेरवरादस्य कोऽसौ लोके भविष्यति ॥२२६॥  
 तस्मात्तदुर्गसंसिद्धौ स नाथ भजतेतराम् । योगश्चाय विभोर्वाढ परिणामे शुभावह ॥२२७॥  
 प्रकारेणामुना शत्रूनेतानन्यांश्च जेष्यति । दशाननस्ततो यत्न क्रियतामत्र वस्तुनि ॥२२८॥  
 एव विमृश्य त्रिद्वीप प्रमोदान्वितमानसा । यथास्व नित्य जग्मु कर्तव्यकृतनिश्चया ॥२२९॥  
 विभीषणेन यथाद्यै शालो दुर्गतराकृत । विद्याभिश्च विचित्राभिर्लङ्का गह्वरतारका ॥२३०॥

### मन्दाक्रान्ता

कृय क्रिद्विद्विशदमनसामासवास्यानपेक्ष नासैरुक्त फलति पुरुषस्योक्तिरुक्त पारुषेण ।  
 देवापेत<sup>१</sup> पुरपकरण कारण नेष्टसगे तस्माद्भव्या कुरुत यतैन सर्वहेतुप्रसादे ॥२३१॥  
 राजन्कर्मण्युदयसमय सेवमाने<sup>२</sup> जनाना नानाकार कुशलवचन नो विशत्येव चेत ।  
 युक्ता तस्मात्स्थितिमनुनयन् कर्म कुर्यात्प्रशस्त भूयो येन प्रतपति रवि शोकरूपो न कष्ट ॥२३२॥  
 इत्यर्थे रविपेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे मायाप्रकाराभिधान नाम घट्चत्वारिंशत्तम पर् ॥४६॥

लक्ष्मण क्या कर लेगा ? ॥२२३॥ अथवा रामके शोकसे उसका मरण होना निश्चित है क्याकि इन दोनाका समागम दीप और प्रकाशके समान अविनाभावी है ॥२२४॥ विराधित अपगधरूपी सगुदमे मग्न है अत कहों जावेगा ? अथवा जावेगा भी तो सुग्रीवके समीप जावेगा ऐसा लोकासे मुना जाता है ॥२२५॥ सुग्रीवका सन्देह उत्पन्न करनेवाली मायाको जो नष्ट कर सके ऐसा पुरुष ससारसे स्वामी दशाननसे बढकर दूसरा कौन होगा ? ॥२२६॥ इसलिए उस कठिन कार्यको सिद्ध करनेके लिए सुग्रीव, स्वामी-दशाननको ही सेवा करेगा । और सुग्रीवके साथ दशाननका समागम होना फलकालमें शुभदायक होगा ॥२२७॥ इस विधिसे दशानन इन शत्रुओंको तथा अन्य लोकाको भी जीत सकेंगे इसलिए इस विषयमें शीघ्र ही यत्न किया जावे ॥२२८॥ इस प्रकार विचार कर बुद्धिमान् मन्त्री, करने योग्य कार्यका निश्चय कर हर्षित चित्त होते हुए अपने-अपने घर गये ॥२२९॥ विभीषणने यन्त्र आदिके द्वारा कोटको अत्यन्त दुर्गम कर दिया तथा नाना प्रकारकी विद्याओंके द्वारा लङ्काको गहरो एव पाशोंसे युक्त कर दिया ॥२३०॥

गीतमरामा कहते हैं कि हे राजन् ! निर्मलचित्तके धारक मनुष्योंका कोई भी कार्य आप वचनोसे निरपेक्ष नहीं होता अर्थात् आपके कहे अनुसार ही उनका प्रत्येक कार्य होता है । आप भगवान्ने मनुष्योंके लिए जो कार्य बतलाये हैं वे पुरुषार्थके बिना सफल नहीं होते और पुरुषार्थ देवके बिना इष्ट सिद्धिका कारण नहीं होता इसलिए हे भव्यजीवो ! सो सजका कारण है उसने प्रसन्न करनेमें प्रयत्न करो ॥२३१॥ हे राजन् ! जब तक मनुष्योंके कर्मका उदय विद्यमान रहता है तब तक नानाप्रकारके कुशल वचन उनमें चित्तमें प्रवेश नहीं करते हैं इसलिए अपनी योग्य रीतिके अनुसार प्रशस्त-पुण्यकर्म करना चाहिए जिससे कि फिर शोकरूपी कष्टदायी सूर्य सन्ताप उत्पन्न न कर सके ॥२३२॥

इम प्रकार आर्ष नामम प्रतिद रविपेणाचार्य कथित, पद्मपुराणमें रावणों मायाके विविध रूपोंका वर्णन करनेवाला द्वियालिसवा पर्ण पूर्ण हुआ ॥४६॥

## सप्तचत्वारिंशत्तमं पर्व

किष्किन्धेशस्ततो भ्राम्यन् कान्ताविरहदु खित<sup>१</sup> । त प्रदेशमनुप्राप्तो निवृत्त यत्र सयुगम् ॥१॥  
 तत्राद्याद्यान् भगवान् गचाश्च गतजावितान् । सामन्तानश्वसयुक्ताभिर्मसिन्द्रवविप्रहान् ॥२॥  
 दह्यमानान् नृपान् काश्चित् काश्चिन्निषसितास्तथा । त्रियमाणानुमरणान् कान्ताभिरान् भटान् ॥३॥  
 विच्छिन्नार्धमुजान् काश्चित् काश्चिदर्थोत्सवजितान् । निस्तान्त्रचयान् काश्चिन्काश्चिद्वह्निस्तमस्तकान् ॥४॥  
 गोमायुप्राट्टान् काश्चित् खगैः काश्चिन्निषेवितान् । रुदिता<sup>२</sup> परिवर्गेण काश्चिद्भ्रातृदिविप्रहान् ॥५॥  
 किमेतदितिप्रष्टश्च तस्मै कश्चिद्वेदेदयत् । सीताया हरणं घ्वस्ती जगद्युत्तरदूरणी ॥६॥  
 ततोऽभवद् भृशं दुःखात्तरदूषणमृद्युत् । किष्किन्धाधिपतिश्चिन्तामेतामगमदाकुल ॥७॥  
 कष्टं चिन्तितमेतन्मे किलारसैः वलशालिने । निवेद्य दयिताशोक मोक्षयामांति महाशया ॥८॥  
 विद्यानदन्तिना सोऽपि कथमाशामहादुम । भग्नो मम विपुण्यस्य कथं शान्तिर्भविष्यति ॥९॥  
 किमज्ञानामुत् गत्वा सादरं सश्रयाग्यहम् । मद्रूपधारिणो येन मरणं स करिष्यति ॥१०॥  
 उद्योगेन विमुक्तानां जनानां मुक्तिता कुत । तस्माद् दुःखविनाशाय श्रयाम्युद्योगमुत्तमम् ॥११॥  
 अथवानेकशो दृष्टोऽनादरं<sup>३</sup> स कथ्यति । नवोऽनुरागवन्द्यो हि चन्द्रो लोकस्य नान्यदा ॥१२॥  
 तस्मान् महाबल दास महाविद्याविशारदम् । रावणं शरणं यामि स मे शान्तिं करिष्यति ॥१३॥

अथानन्तर किष्किन्धापुरका स्वामी सुमीव स्त्रीके विरहसे दुःखी हो भ्रमण करता हुआ जहाँ कि तरदूषण तथा लक्ष्मणका युद्ध हुआ था ॥१॥ वहाँ आकर उसने देखा कि कहीं दूटे हुए रथ पड़े हैं, कहीं मरे हुए हाथी पड़े हैं, कहीं जिनके शरीर छिन्न भिन्न हो गए हैं, ऐसे घोडोंके साथ सामन्त पड़े हैं ॥२॥ कहीं कोई राजा जल रहे हैं, कोई सोंस भर रहे हैं, कहीं जिनके पीछे स्त्रियाँ मर रहीं थीं ऐसे मरे हुए अनेक सुभट पड़े हैं ॥३॥ किन्हींकी आधी मुजा कट गई है, किन्हींकी आधी जोंघ टूट चुकी है, किन्हींकी आँतोका समूह निकल आया है, किन्हींके मस्तरु फट गये हैं, किन्हींकी शृगाल घेरे हुए हैं, किन्हींको पत्नी खा रहे हैं और किन्हींके मृत शरीरको रोते हुए कुटुम्बीजन आच्छादित कर रहे हैं ॥४-५॥ 'यह क्या है ? इस प्रकार पूछने पर किसीने उसे बताया कि सीताका हरण हो चुका है और जटायु तथा तरदूषण मारे गए हैं ॥६॥

तदनन्तर तरदूषणकी मृत्युसे किष्किन्धापति सुमीव बहुत दुःखी हुआ, वह आकुल होता हुआ इस प्रकार चिन्ता करने लगा कि हाय मैंने विचार किया था कि 'मैं इस वलशालीके लिए निवेदन कर रही सम्बन्धी शोकसे छूट जाऊँगा' इसी वजह आशासे मैं यहाँ आया था पर मेरे भाग्यरूपी हाथीने उस आशारूपी महावृत्तकी कैसे गिरा दिया । हाय अब मुझ पापाको किस प्रकार शान्ति होगी ॥७-९॥ क्या अब मैं आदरके साथ हनुमान्का आश्रय लूँ निससे वह मेरे समान रूपका धारण करनेवाले मायामयी सुवाणका भरण कर सके ॥१०॥ उद्योगसे रहित मनुष्योंको सुख कैसे प्राप्त हो सकता है, इसलिए मैं दुःखका नाश करनेके लिए उत्तम उद्योगका आश्रय लेता हूँ ॥११॥ अथवा हनुमान्को अनेक बार देखा है अतः वह अनादर करेगा क्योंकि नवान चन्द्रमा ही लोगोंके द्वारा अनुरागके साथ वन्दनीय होता है अन्य समय नहीं है ॥१२॥ इसलिए महाबलवान्, देदीप्यमान् और महाविद्याओंमें निपुण रावणकी शरणमें जाता हूँ वहा

अज्ञानानो विशेष वा क्रोधचोदितमानस । दशानन कदाचिन्नो<sup>१</sup> हन्तु वाञ्छेदुभावपि ॥१४॥  
 मन्त्रदोषमसकार दान पुण्य स्मश्रुताम् । दु शील्व मनोदाह दुमित्रेभ्यो न वेदयेत् ॥१५॥  
 तस्माद्येनैव सप्रामे निहित ररदूषण । तमेव शरण यामि स मे शान्ति करिष्यति ॥१६॥  
 तुल्यव्यसनताहेतो कालोऽयमुपसर्पति । सद्भाव हि प्रपद्यन्ते तुल्यावस्था<sup>२</sup> जना भुवि ॥१७॥  
 एव विमृश्य सद्भावचारुद्वि समन्तत । प्रजिघायादराद् दूत प्रिय क्तुं विराधितम् ॥१८॥  
 सुप्रावागमने तेन ज्ञापितेऽभूद् विराधित । सविस्मय सतोपश्च चकार च मनस्यद् ॥१९॥  
 चित्र सुप्रावराजो मा ससेव्य सन्निपेवते । अथवाश्रयसामर्थ्यात् पुसा कि नोपजायते ॥२०॥  
 ततो दुन्दुभिनिर्घोषि समाकर्ष्य घनोपमम् । पातालनगर जात भयाकुलमहाजनम् ॥२१॥  
 ततो लक्ष्मीधरोऽष्टचन्द्रनुरागाइसम्भवम् । वद् तूर्यनिनादोऽय ध्रुयते कस्य सहत ॥२२॥  
 सोऽशोचच्छ्रुत्वा देव महाबलसमन्वित । नाथोऽय कपिकेनूना प्राप्तस् वा प्रेमतत्पर ॥२३॥  
 भ्रातरौ रालिसुप्रावौ किञ्चिन्धानगराधिपो । तिग्माशुरजस पुत्री प्रख्याताववनाविभौ ॥२४॥  
 बालाति योऽत्र विख्यात शालशौर्यादिभिर्गुणै । अभिमानमहाशैले नानसीद् दशवक्रकर्म ॥२५॥  
 पर प्राप्य प्रबोध स कृत्वा सुप्रावसाञ्छ्रियम् । तपोवनसुपाविच सर्वग्रन्थविवर्जितम् ॥२६॥  
 सुप्रापोऽप्यभिसक्ताना सुताराया श्रियान्वित । राज्ये नि कण्ठे रेमे शचीयुक्तो यथा हरि<sup>३</sup> ॥२७॥

मुझे शान्ति प्रदान करेगा ॥१२॥ अथवा जिसका मन क्रोधसे प्रेरित हो रहा है ऐसा रावण, विशेषको न जानता हुआ कदाचित् हम दोनोंको ही मारनेकी इच्छा करे तो उलटा अनर्थ हो जायगा ॥१४॥ इसके साथ नीति भी यह कहती है कि दुष्ट मित्रोंके लिये, मन्त्रदोष, असत्कार, दान, पुण्य, अपनी शूर-वीरता, दुष्ट स्वभाव और मनकी दाह नहीं बतलानी चाहिए ॥१५॥ इसलिये जिसने बुद्धिमें ररदूषणको मारा है उसीके शरणमें जाता हूँ, वही मेरे लिए शान्ति उत्पन्न करेगा ॥१६॥ रामको भी स्त्रीका विरह हुआ है और मैं भी स्त्रीके विरहसे दुखी हूँ इसलिये एक समान दुख होनेसे यह समय उनके पास जानेके योग्य है क्योंकि पृथिवी पर समान अवस्थावाले मनुष्य सद्भाव—पारस्परिक प्रीतिको प्राप्त होते हैं ॥१७॥ ऐसा विचारकर जिसे सज ओरसे उत्तम बुद्धि प्राप्त हुई थी ऐसे सुप्रीवने विराधितको अनुकूल करनेके लिये उसके पास अपना दूत भेजा ॥१८॥ जब दूतने सुप्रीवके आगमनका समाचार कहा तब विराधित आश्चर्य और सतोपसे युक्त होकर मनमें यह विचार करने लगा कि आश्चर्य है सुप्रीव तो हमारे द्वारा सेवा करने योग्य है फिर भी वह हमारी सेवा कर रहा है सो ठीक ही है क्योंकि आश्रयनी सामर्थ्यसे मनुष्योंके क्या नहीं होता है ? ॥१९-२०॥

तदनन्तर मेघके समान दुन्दुभिका शब्द सुनकर पाताल नगर, (अलकार पुर), भयसे व्याकुल हैं महाजन जिसमें ऐसा हो गया ॥२१॥ तत्परचात लक्ष्मणने विराधितसे पूछा कि कहीं कि यह किसकी तुरहीका शब्द सुनाई दे रहा है ? ॥२२॥ इसके उत्तरमें विराधितने कहा कि हे देव ! यह महाबलसे सहित, वानरवशियोंका स्वामी सुप्रीव प्रेमसे युक्त हो आपके पास आया है ॥२३॥ बालि और सुप्रीव ये दोनों भाई किञ्चिन्ध्या नगरीके स्वामी हैं, राजा सहस्ररिम रजने पुत्र हैं तथा पृथिवी पर अत्यन्त प्रसिद्ध हैं ॥२४॥ इनमें जो बालि नामसे प्रसिद्ध था वह शील, शूर-वीरता आदि गुणोंसे विख्यात था तथा अभिमानसे लिये मानो सुमेरु ही था, उसने राजणका नमस्कार नहीं किया था ॥२५॥ अन्तमें परम प्रबोधको प्राप्त हो तथा राज्यलक्ष्मी सुप्रावके आधीन कर वह सर्वपरिग्रहसे रहित तपोवनमें प्रविष्ट हो गया ॥२६॥ सुप्रीव भी अपनी सुतारा नामक स्त्रीमें अत्यन्त आसक्त हो

\* १ धित म० । २. आवाम् । ३. सुपसंरण १००, ज० । ४. तुल्यानान्द्रा म० । ५. प्रत्यानी + अरनी = पृथे तान्, इमी । ६. इन्द्र ।

सुतो यस्याङ्गदाभित्यः गुणरत्नविभूयितः । किष्किन्धाविषये यस्य मद्रुधान्यविप्रतिता ॥२८॥  
 तयोरित्यं कथा यापङ्कतेऽन्यचेतसोः । तारम्यमप्राय सुप्रायः धीमन्धाविषकेननम् ॥२९॥  
 ज्ञातश्चानुमतिं प्राप्य विवेगेक्षितमङ्गलम् । राजाविकृतलोकेन परमं दर्शितादरः ॥३०॥  
 लक्ष्मीधरकुमाराद्यासं राजन् प्रासविस्मयाः । परिपन्वजिरे कान्त्या विक्रमं वनाग्नयाः ॥३१॥  
 उपविष्टाश्च त्रिधिया जाम्बूतदमहीतले । योग्य सम्भाषणं चक्रुरमुनोपमया गिरा ॥३२॥  
 निवेदितं ततो वृद्धैरिति पद्ममहीक्षिते<sup>३</sup> । देव किष्किन्धनगरे सुप्रायवस्थोऽमनोरथरः ॥३३॥  
 प्रभुर्महापले भोगी गुणवानतिमप्रियः । केनापि दुष्टमायेन रगेनानयंमाहृतः ॥३४॥  
 एतस्याकृतिमाधिरय राजपमोग पुर बलम् । सुतारां च गृह्णातु ता कोऽपि बान्धुनि दुर्मतिः ॥३५॥  
 एतस्य वचनस्थान्ते रामस्तस्मिन्मुधोऽभवत् । अचिन्तयच्च भंसोऽपि दुःखितो नाम विद्यो ॥३६॥  
 मयाय सदशो मन्ये यदि धारता भजेत् । येनास्य दृश्यमानैकप्रतिपक्षेण वाधनम् ॥३७॥  
 अर्थेऽप्य दुस्तरोऽयन्त कथमेतन्नविष्यति । हानिरेवविधस्यैवा मद्रिषः किं करिष्यति ॥३८॥  
 सुमित्रातनयोऽपृच्छन् कृष्णं दुःखस्य कारणम् । सुप्रायस्य मनस्तुल्य धीरं जाम्बूतदध्रुतिम् ॥३९॥  
 ततोऽप्री मन्त्रिणां सुयो जगाद विनयान्वितः । अमसुप्रायवरूपस्य ससुप्रायस्य वास्तवम् ॥४०॥

राज्य लक्ष्मी सहित निष्कण्टक राज्यमे इस प्रकार क्रीड़ा कनता था जिस प्रकार कि टन्द्राणी सहित इन्द्र क्रीड़ा करता है ॥२७॥ उस सुप्रायरा गुणरूपी रत्नोसे विभूयित अङ्गद नामका ऐसा पुत्र है कि किष्किन्धा देशमें जिसकी कथा अन्य कथाओंसे रहित है अर्थात् अन्य लोगोंकी कथा छोड़कर सम्पूर्ण किष्किन्धा देशमें उसी एककी कथा होती है ॥२८॥ इस प्रकार अनन्यचित्तके धारक लक्ष्मण तथा विराधितके बीच जब तक यह वार्ता चल रही थी कि तब तक सुप्राय राजभवनमें आ पहुँचा ॥२९॥ राजाके अधिकारी लोगोंने ज्ञात होने पर उसके प्रति बहुत आदर दिखलाया । तदनन्तर अनुमति पाकर उसने मङ्गलाचारका अवलोकन करते हुए राज भवनमें प्रवेश किया ॥३०॥ हे राजन् ! जिन्हें आश्चर्य प्राप्त हो रहा था तथा जिनके मुख कमल कान्तिसे मिल रहे थे ऐसे लक्ष्मण आदिने उसका आलिङ्गन किया ॥३१॥ शिष्टाचारके उपरान्त सप्त विधिपूर्वक स्वर्णमय पृथिवी तल पर बैठे और अमृततुल्य वाणीसे परस्पर वार्तालाप करने लगे ॥३२॥

तदनन्तर वृद्धजनोंने राजा रामचन्द्रके लिए परिचय दिया कि हे देव ! यह किष्किन्ध नगरका राजा सुप्राय है ॥३३॥ यह महा ऐश्वर्यशाली, महाबलवान्, भोगी सुखवान् तथा मज्जनों को अतिशय प्यारी है । परन्तु किसी दुष्ट मायावी विद्याधरने इसे अनर्थ—आपत्तिमें डाल दिया है ॥३४॥ कोई दुर्बुद्धि विद्याधर इसका रूप धर इसके राज्य भोग, नगर, सेना तथा इसकी प्रिया सुताराको भी ग्रहण करना चाहता है ॥३५॥ तदनन्तर वृद्धजनोके उक्त वचन पूर्ण होनेके बाद राम, सुप्रायके सन्मुख उसकी ओर देखने लगे । रामने मनमें विचार किया कि अरे ! यह तो मुझसे भी अधिक दुःखी है ॥३६॥ यह मेरे समान है अथवा मैं समझता हूँ कि यह मुझसे भी कहीं अधिक हीनताको प्राप्त है क्योंकि इसका शत्रु तो इसके सामने ही थावा पहुँचा रहा है ॥३७॥ इसका यह कार्य अत्यन्त कठिन है सो किस प्रकार होगा । इसकी यह बड़ी हानि हो रही है मेरा जैसा व्यक्ति क्या करेगा ? ॥३८॥ लक्ष्मणने सुप्रायके मनके ममान जो जाम्बूतद नामक धीर-वीर मन्त्री था उससे दुःखका समस्त कारण पूछा ॥३९॥

तदनन्तर मन्त्रियोंमें मुख्य जाम्बूतदने बड़ी विनयसे मायामय सुप्राय और वाग्मधिक

१. सप्रायः म० । २. निवेशे वृत्तमङ्गलः म० । ३. महीक्षितौ ख. । ४. मादतः म०, २० । ५. मदपेक्षयापि । ६. अपगता = हीनता । ७. लक्ष्मण म० ।

राजन् दारुणान्दलतापाशवशीकृतः । रूप रूपवशः कोऽपि सम कृत्वाम्य मायया ॥४१॥  
 अज्ञातो मन्त्रिवर्गस्य सर्वस्थात्मजनस्य च । सुग्रीवान्त पुर तुष्टः प्राविशत्पापचेतनः ॥४२॥  
 प्रविशन्त च त दृष्ट्वा सुताराहा परा सती । महादेवी जगादास्यममुद्दिग्ना निज जनम् ॥४३॥  
 दुष्टविद्याधर कोऽपि सुग्रीवाकृतिरेपठ । आयाति पापपूर्णात्मा चारलक्ष्मणवर्जितः ॥४४॥  
 अभ्युधानादिकामस्य क्रियां माकाष्टं पूर्ववन् । केनापि तरणायोऽयमभ्युपायेन दुर्णयः ॥४५॥  
 अथाशङ्काविमुक्तत्वा गम्भीरो लीलयान्वित । गत्वा सुग्रीववद्भजे सौम्रीव स वरसन्तम् ॥४६॥  
 पुनस्मिन्नन्तरे प्राप बालिराजानुजः प्रमात् । अट्टाह्नीच्च जन दीनमप्राचीच्च समाकुलः ॥४७॥  
 कस्मादय जनोऽस्माक म्लानवक्त्रेक्षणो भृशम् । विषाद् वहते स्थाने स्थाने कृतसमागमः ॥४८॥  
 किमद्भदो गतो मेरु बन्दनार्थी चिरायति । किं वा प्रमादतो देवी कस्याप्युपगता रूपम् ॥४९॥  
 जन्ममृ युजरा युप्रनानासमारुदु खतः । विभ्यद् विभीषणः किं स्यात्तपोवनमुपागतः ॥५०॥  
 चिन्तयन्नियतिश्रम्य द्वाराणि मणितेजसा । भासमानानि सर्वाणि संयुक्तानि सुतोरणैः ॥५१॥  
 गीतज्ञविषतमुक्तानि सुसानीव समततः । शङ्खितद्वारपालानि प्रयातान्यन्यतामिव ॥५२॥  
 प्रासादप्रवतोऽप्यङ्गे विक्षिपन् दृष्टिमायताम् । अपश्यत्स्त्रीजनान्तस्थमात्माभ दुष्टखेचरम् ॥५३॥  
 दिव्यहाराम्बर दृष्ट्वा त शोभां दधत पुर । चित्रावतसक कान्त्या विकसद्दनाम्बुजम् ॥५४॥

सुग्रीवका अन्तर वताया ॥४७॥ उसने कहा कि हे राजन् ! अतिशय दारुण कामरूपी लताके पाशसे विवश तथा सुताराके रूपसे मोहित कोई पापी विद्याधर मायासे इसका रूप बनाकर मन्त्रोक्त तथा समस्त परिजनोंके बिना जाने, सन्तुष्ट हो सुग्रीवके अन्त-पुरमे प्रविष्ट हुआ ॥४१-४२॥ उसे प्रवेश करते देव सुतारा नामकी परम सती महादेवीने भयभीत होकर अपने परिजनसे कहा कि जिसकी आत्मा पापसे पूर्ण है, तथा जो उत्तम लक्षणोंसे रहित है ऐसा यह कोई दुष्ट विद्याधर सुग्रीवका वेप रत्नकर आता है अतः पहलेकी तरह तुम लोग इसका सत्कार नहीं करो। यह दुर्नयरूपी सागर किसी उपायसे तिरने योग्य है—पार करने योग्य है ॥४३-४४॥ तदनन्तर जिसकी आत्मा शङ्कासे रहित थी, जो गम्भीर था और लीलासे सहित था ऐसा वह मायामय विद्याधर सुग्रीवके समान जाकर उसके सिंहासन पर आ बैठा ॥४६॥ इसी बीचमे बालिराजाका अनुज चास्तविक सुग्रीव, यथान्तमसे वहाँ आया। आते ही उसने अपने परिजनको दीन देखकर व्यग्र हो उसने पूछा कि ये हमारे परिजन, अत्यन्त म्लानमुख एवं म्लाननेत्र होकर विषाद क्यों धारण कर रहे हैं तथा स्थान स्थान पर इरट्टे हो रहे हैं ? ॥४७-४८॥ बन्दनाकी अभिलाषासे अद्भुत सुमेरु पर्वत पर गया था सो क्या आनेमें विलम्ब कर रहा है अथवा महादेवी प्रमादके कारण किसीपर रोपको प्राप्त हुई है ? ॥४९॥ अथवा जन्म मृत्यु और जरामे अत्यन्त उग्र संसारके नाना दुःखोंसे भयभीत होकर विभीषण तपोवनको प्राप्त हुआ है ॥५०॥ इस प्रकार चिन्ता करता हुआ सुग्रीव, मणियोंके तेजसे देदीप्यमान तथा उत्तमोत्तम तोरणोंसे संयुक्त उन समस्त द्वारोंको उल्लङ्घनकर महलके भीतर प्रविष्ट हुआ कि जो संगीतमय धार्तालापसे रहित थे, सब ओर से संतप्त हुएके समान जान पड़ते थे, जिनके द्वारपाल शङ्कासे युक्त थे तथा जो अन्यरूपताको प्राप्त हुएके समान जान पड़ते थे ॥ ५१-५२॥ जब उसने महलके उत्तम मध्यभागमें अपनी लम्बी दृष्टि डाली तो उसने स्त्री जनोके पास बैठे हुए अपनी ही समान आभावाले एक दुष्ट विद्याधरको देखा ॥५३॥ जो दिव्य हार और वस्त्रोंको धारण कर रहा था, परम शोभाका धारक था, चित्र विचित्र आभूषणोंसे युक्त था, तथा मान्तिसे जिसका मुख कमल विकसित ही रहा था ऐसे दुष्ट विद्याधरको

क्रुद्धो जगज्जं सुग्रीव प्रावृषेण्यघनोपमम् । दिद् सुग्रेषु चिपन् भावमकृतो मन्व्यावनागाम् ॥१५॥  
 तत सुमावतुषोऽपि कुर्वन् परंपगजितम् । उक्तार्थो कोपरकास्य करीर मद्द्विद्वत् ॥१६॥  
 सदद्योष्ठी महाभावी दृष्टा ती योद्धुमुद्यती । सामना<sup>१</sup> तिददु चिप धीरन्द्रायाः सुमन्त्रिण ॥१७॥  
 सुतारेति ततोऽगोचत् दुष्टोऽय कोऽपि गेचर । तुल्य सर्णेण देहेन घलेन यत्नमा दद्या ॥१८॥  
 पर्युभमं न तुल्यस्तु लक्षणैर्मनकौगपि । प्रामादशङ्कृम्भापैश्चिरसन्धितलचितै ॥१९॥  
 भर्तुर्मे भूपिताहस्य महापुरुषलक्षणे । कस्यापि वार्धमस्यास्य चात्रिवालेयतुष्यना ॥२०॥  
 श्रुत्वापाद् सुतारोक्त सादृश्यद्वतचित्तदे । मन्त्रिभिस्तदवज्ञान नि रजोत् धनिभिर्यथा ॥२१॥  
 प्रमाभूय च तै सर्वैर्मन्त्रिभिर्मतिशालिभि । गदितं सम्प्रधार्येद् सन्देहद्वतमानसै ॥२२॥  
 मद्यपस्यातिवृद्धस्य वेरयाव्यसनिन<sup>२</sup> शिशो । प्रमदाना च वासयानि जानु कार्याणि नो युपै ॥२३॥  
 अत्यन्तदुर्लभा लोके गोत्रशुद्धिस्तया विना । नितान्तपरमेणापि न राज्येन प्रयोजनम् ॥२४॥  
 सम्प्राप्य निर्मल गोत्र भव्य शालादिभूपितै । सस्मादन्त पुर यत्नादिद् रच्य सुनिर्मलम् ॥२५॥  
 अर्कोतिरिति नि-येयमस्य नोपद्यते यथा । कुरश्चमसियत्नेन विमर्श्याग्विलभेतयो ॥२६॥  
 अहं कृत्रिमसुग्रीव पितृभ्रातृया समाश्रित । अहं द सत्यसुग्रीव मातृवात्पातुतेषत् ॥२७॥

सामने देव सुग्रीव, क्रुद्ध होकर सन्ध्याके मेघ समान लाल नेत्रोंकी कान्तिको दिशाओंमें फैलाता हुआ वर्षा ऋतुके मेघके समान गरजा ॥१४-१५॥ तदनन्तर सुग्रीवके समान रूपको धारण करने वाला विद्याधर भी क्रोधसे रक्तमुख हो हाथीके समान मद्से विह्वल होता और कठोर गर्जना करता हुआ उठा ॥१६॥

अथानन्तर ओटोंको डसते हुए उन दोनों पलवानाको युद्धके लिए उद्यत देव श्रीचन्द्र आदि मन्त्रियोंने शान्ति पूर्वक शीघ्र ही उन्हें रोक दिया ॥१७॥ तत्परचान् सुताराने कहा कि यह कोई दुष्ट विद्याधर है । यद्यपि समस्त शरीर, बल, वचन, और कान्तिके तुल्य विरयता है परन्तु प्रसाद, शङ्क, कलशा, आदि लक्षणोंसे जो कि मेरे पतिके शरीरमें चिरकालसे स्थित हैं तथा जिन्हें मैंने अनेक बार देखा है किञ्चित् भी मेरे पतिके समान नहीं है ॥१८-२४॥ महापुरुषाके लक्षणोंसे जिनका शरीर भूपित है ऐसे मेरे पतिकी तथा इस किसी नीचकी तुल्यता घोड़े और गधेकी तुल्यताके समान है ॥२५॥

तदनन्तर दोनोंकी सटशतात्रे कारण जिनके चित्त हरे गये थे ऐसे मन्त्रियोंने सुताराके इन शब्दोंको सुनकर भी उनकी उस तरह अवज्ञा कर दी जिस प्रकार कि घनी मनुष्य निर्धन मनुष्यके वचनोकी अवज्ञा कर देते हैं ॥२६॥ सदेहने जिनका मन हर लिया था ऐसे उन बुद्धि शाली मन्त्रियोंने एकत्रित हो सलाह कर यह कहा कि मद्यपायी, अत्यन्त वृद्ध, बेरया, व्यसनी, बालक और स्त्रियोंके वचन विद्वज्जनोको कर्मा नहीं मानना चाहिए ॥२७-३३॥ लोकमें गोत्रकी शुद्धि अत्यन्त दुर्लभ है इसलिए उसके विना बहुत भारी राज्यसे भी प्रयोजन नहीं है ॥३४॥ निर्मल गोत्र पा कर ही शालादि आभूषणोंसे विभूषित हुआ जाता है इसलिए इस निर्मल अन्त पुरकी यत्न पूर्वक रक्षा करनी चाहिये ॥३५॥ जिस तरहसे सुग्रीव निन्दनीय अपकीर्ति न हो उस तरह इन दोनोंका सत्र विभाग कर अतियत्नपूर्वक काम करना चाहिए ॥३६॥ अहनामका पुत्र पिताकी भ्रान्तिके कृत्रिम-वनापटी सुग्रीवके पास गया और अहं नामका पुत्र माताके

१. सप्तो म० । २ सास्ता म० । ३ मनागपि इंपदधि 'अत्यमर्नान्मानकच् प्राक्ते' इत्यच् । ४ वाचमस्यास्य म० । ५ नित्यै म० । ६ व्यसनय शिशो म० । ७ विमिश्र म० ।

मन्दिहाना निजे नाथे वयमप्यतिसाध्यत । सुतारावचनादेन पुरस्कृत्य व्यवस्थिता ॥६८॥  
 अक्षोहिण्यस्तत सप्त प्रभुमेरुमुपाश्रिता । इतर चापि तावन्व्य सशयस्य वश गता ॥६९॥  
 पुरस्य दक्षिणे भागे सुग्रीव कृत्रिम कृत । उत्तरे तस्य सुग्राव स्थापितश्च यथाविधि ॥७०॥  
 अक्रोचन्द्ररश्मिश्च प्रतिज्ञामिति सशये । बालिपुत्रो तत कुर्वन् सर्वत प्रतिपालनम् ॥७१॥  
 सुताराभवनद्वार यो मजेकश्चिदस्य स । प्राङ्गे-दीवरशोभस्य ध्वज्य खड्गस्य मे ध्रुवम् ॥७२॥  
 तत कपिध्वजावेव स्थापितौ तावुभावपि । अपश्यन्तौ सुतारास्य निमग्नौ व्यसनार्णवे ॥७३॥  
 ततोऽय स यमुग्रीवो द्युिताविरहाकुल । बहुदा शोकहानार्थमगच्छन् खरदूषणम् ॥७४॥  
 पुनश्च मारुते पार्वमन्नवीच पुन पुन । परिश्रायस्व दु खार्तं प्रसाद कुरु बान्धव ॥७५॥  
 मदाय रूपमासाद्य मायया कोऽपि पापधी । कुरते मे परा वाधा स गन्वा मार्यता द्रुतम् ॥७६॥  
 सुग्रीवस्य वच ध्रुवा तदवस्थस्य शोकिन । अज्जनातनय क्रोधाद्वाडवाग्निसमोऽभवत् ॥७७॥  
 विमान परमच्छाद्यमप्रताघातसन्निभम् । नानालङ्कारभूषिष्ट त्रिदशावाससन्निभम् ॥७८॥  
 उसाह परम विश्रदारह्य सचिवैर्वृत । किङ्किन्धनगर प्राप स्वर्गं सुकृतभागिव ॥७९॥  
 ध्रुवा प्राप्त हनूमन्तमसकौ विगतज्वर । आरुह्य द्विरद प्रात सुग्राव इव निर्ययो ॥८०॥  
 त कपिध्वजमालोक्य पर सादृश्यमागतम् । विस्मितो वायुपुत्रोऽपि पतित सशयार्णवे ॥८१॥  
 अचिन्तयच्च सुव्यक्त सुग्रीवो द्वाविमा कथम् । एतयो कतर हन्मि यद्विशपो न लभ्यते ॥८२॥

वचनोंके अनुरोधसे सत्य सुग्रीवके पास गया ॥६७॥ हम लोग भी अत्यन्त सदृशताके कारण अपने स्वामीके विषयमें सदृशशील हैं परन्तु सुताराके कहनेसे इसीको आगे कर स्थित हैं ॥६८॥ सशयके वशमें पडे सात अक्षोहिणी सेनाएँ एक सुग्रीवके आश्रय गईं और उतनी ही दूसरे सुग्रीवके अधीन हुई ॥६९॥ नगरके दक्षिण भागमें कृत्रिम सुग्रीव रक्खा गया और वास्तविक सुग्रीव नगरके उत्तर भागमें विधिपूर्वक स्थापित किया गया ॥७०॥ सब ओरसे रक्षा करनेवाले वालिके पुत्र चन्द्ररश्मिने सशय उपस्थित होने पर इस प्रकार की प्रतिज्ञा की कि इन दोनोंमें जो भी सुताराके भवनके द्वार पर जावेगा वह तरुण इन्दीवर—नीलकमलके समान सुशोभित मेरी रत्नके द्वारा अवश्य ही ध्वज होगा—मेरी तलवारके द्वारा मारा जायगा ॥७१-७२॥ तदनन्तर इस प्रकार रक्ते हुए दोनों सुग्रीव सुताराका मुख न देखते हुए व्यसनरूपी सागरमें निमग्न हो गये ॥७३॥

अथानन्तर रानीके विरहसे आकुल सत्यसुग्रीव, शोक दूर करनेके लिए अनेक बार खर दूषणके पास आया ॥७४॥ फिर हनुमानके पास जाकर उसने बार बार कहा कि हे बान्धव । मैं दुःखसे पीडित हूँ अत मेरी रक्षा करो, प्रसन्न होओ ॥७५॥ कोई पापपुद्घि विद्याधर मायासे मेरा रूप रसकर मुझे अत्यन्त वाधा पहुँचा रहा है सो जाकर उसे शीघ्र ही मारो ॥७६॥ उस प्रकारकी अवस्थामें पडे शाक युक्त सुग्रीवके वचन सुनकर हनुमान् क्रोधसे बहवानलके समान हो गया ॥७७॥ वह परम उरमाहकी धारण करता हुआ मन्त्रियाके साथ, अत्यन्त कान्तिमान्, नाना अलङ्कारसे प्रचुर, स्वर्गतुल्य अप्रतीघात नामक विमानमें सवार हो उस तरह किङ्किन्ध नगर पहुँचा चिम तगह कि पुण्यात्मा मनुष्य स्वर्गमें पहुँचता है ॥७८-७९॥ हनुमान्की आया सुन वह शीघ्र ही हाथी पर सवार हो प्रसन्नताके साथ सुग्रावकी तरह नगरसे बाहर निकला ॥८०॥ अत्यन्त सादृश्यको प्राप्त हुए उस कपिध्वजको देखकर हनुमान् भी विस्मित हो सशयरूपी सागरमें पड गया ॥८१॥ यह विचार करने लगा स्पष्ट ही ये दोनों सुग्रीव हैं जय तक कि



अविद्वि चानयोर्भेदमुभयोर्मानरेन्द्रयो । कदाचिद् वधिप मास्त् सुप्रीय सुहृदा वरम् ॥२३॥  
 सुहृत् मन्त्रिभि साधं विस्तरय च यथाविधि । उदासीनतया देव मारुति स्वपुर गत ॥२४॥  
 निवृत्ते मरुत पुत्रे सुभावोऽभवदाकुल । असी च सदशोऽमुष्य तथैवातिष्ठदाशया ॥२५॥  
 मायासहस्रमम्पन्नो महाशौर्यो महोदय । उल्कायुगोऽपि सन्देह प्राप कष्टमिदं परम् ॥२६॥  
 निमग्न मशयाग्भोर्यो व्यसनप्राहसद्भ्यः । न जानाम्यधुना देव क इम तारयिष्यति ॥२७॥  
 कान्तावियोगदानेन प्रदीप्त कपिकेतनम् । कृतञ्च मन सुप्राव प्रसीद रघुनन्दन ॥२८॥  
 जय शरणमायातो भवन्त ध्रितयसलम् । भवद्विषशरीर हि परदु खस्य नाशनम् ॥२९॥  
 गतस्तद्वचन श्रुत्वा त्रिस्मयप्याहमानसा । जाता पद्मादय सर्वे धिगाहोहातिभाषिण ॥३०॥  
 अचिन्तय च पद्माज्ज ३ सख्यय मम दु खत । जाताऽग्र समानेषु प्राय प्रेमोपजायते ॥३१॥  
 पूष प्रत्युपकार मे यदि कर्तुं न शक्यति । निर्मन्थ्यत्रमणो भूवा साधयिष्यामि निर्बन्धितम् ॥३२॥  
 एष ध्यावानुर्वाधाद्यै सम समन्य च षण्णम् । कपिमालान्द्रमाहूय पद्मानामोऽभ्यभाषन् ॥३३॥  
 ससुप्रीवो भवान्यो वा सर्वथा ख मयेन्मिषत । विनिय भवतस्तुल्य पद यच्छामि ते निजम् ॥३४॥  
 तथाविध पुरा राज्य प्राप्य यान सुतारया । सेवस्व मुदितोऽन्यन्तमग्ननि शेषकृष्णम् ॥३५॥

त्रिगोपता नहीं जान पड़ती है तब तक इन दो में से एकको कैसे मारूँ ? ॥२८॥ इन दोनों यानर राजाआका अन्तर जाने जिना मैं कदाचित् मित्रोमें श्रेष्ठ सुप्रीयको ही न मार वैदूँ ॥२९॥ इस प्रकार सुहृत् भर मन्त्रियोंके साथ त्रिधिपूर्वक विचार कर उदासीन भावसे हनुमान् अपने नगरको वापिस चला गया ॥३०॥ हनुमान्के वापिस लौट जाने पर सुप्रीव बहुत व्याकुल हुआ । और जो इसके समान दूसरा मायाजी सुप्रीव था वह आशा लगाये हुए उसी प्रकार स्थित रहा आया ॥३१॥ यद्यपि सुप्रीव हजारों प्रकारकी मायासे रजय सम्पन्न है, महाशक्तिशाली है, महान् अभ्युदयका धारक है, और उल्कारूप अरत्रोंका धारक है तो भा सन्देहको प्राप्त हो रहा है यह बड़े कष्टकी बात है ॥३२॥ हे देव ! व्यसनरूपी मगरमच्छासे भरे हुए सशय रूपी सागरमें निमग्न इस सुप्रीवको कौन तारेगा यह नहीं जान पड़ता ॥३३॥ हे राघव ! खी त्रियोग रूपी दानानलसे प्रदीप्त तथा कृत उपकारको माननेवाले इस कपिध्वज सुप्रीवकी सेवा स्वीकृत करो, प्रसन्न होओ ॥३४॥ यह आपको आश्रितवत्सल सुनकर आपकी शरण आया है, यथार्थमें आप जैसे महापुरुषका शरीर पर दु रका नाश करनेवाला है ॥३५॥

तत्रनन्तर उमके वचन सुनकर जिनके हृदय आश्चर्यसे व्याप्त हो रहे थे ऐसे राम आदि कभी लोभ 'धिक्' 'अहो' 'ही' आदि शब्दोंका उच्चारण करने लगे ॥३६॥ रामने विचार किया कि भव यह दुःखके कारण मेरा दूसरा मित्र हुआ है क्योंकि प्राय कर समान मनुष्योंमें ही प्रेम होता है ॥३७॥ यदि यह मेरा प्रत्युपकार करनेमें समर्थ नहीं होगा तो मैं निर्मन्थ साधु हो कर मोक्षसाधन करूँगा ॥३८॥ इस प्रकार ध्यान कर तथा विराहित आदिके साथ तृण भर मन्त्रणा कर सुप्रीवको बुला रामने उससे कहा ॥३९॥ कि तुम चाहे यथार्थ सुप्रीव होओ और चारे कृत्रिम सुप्रीव मैं तुम्हें चाहता हूँ और तुम्हारे सहश जो दूसरा सुप्राव है उसे मार कर तुम्हारा अपना पद तुम्हें देता हूँ ॥४०॥ तुम पहलेकी भौति अपना राज्य प्राप्त कर समस्त जगुआको निर्मूल करते हुए प्रसन्न हो सुताराके साथ समागमको प्राप्त होओ ॥४१॥

यदि मे निश्चयोपेतः प्राणेभ्योऽपि गरीयसीम् । सीता ता गुणसम्पूर्णा भद्रोपलभसे प्रियाम् ॥६६॥  
 कपिकेतुरवाचेत् यदि ता तव न प्रियाम् । सप्ताहाऽभ्यन्तरे वेद्मि विशामि ज्वलन तदा ॥६७॥  
 अभीभिरर्चैः पद्मः पर प्रह्लादमाश्रितः । शशाङ्करश्चिमसदृशैर्दधानः कुमुदोपमाम् ॥६८॥  
 प्रवाहेणामृतस्यैव प्लावितो विरुचाननः । रोमाञ्जनिर्भर देह बभार च समन्ततः ॥६९॥  
 अन्योन्यस्य वय द्रोहरहितविति चादरात् । समय चक्रतुर्जन तस्मिन्नेव जिनालये ॥१००॥  
 ततो रथवरासूद्री महासामन्तसेवितौ । रिप्तिन्धनगरं तेन प्रयातो रामलक्ष्मणौ ॥१०१॥  
 समोपाभूय दूतश्च प्रह्वित कपिमौलिना । निर्भस्मितश्च कूटेन सुप्रवेणागतः पुनः ॥१०२॥  
 ततश्चालोकमुप्राव, मनस्य स्पन्दनस्थित । युद्धाय निर्ययी क्रुद्ध, पृथुसैन्यसमावृतः ॥१०३॥  
 अथ कूटभटाटोप, सङ्कटश्चाङ्गनिस्वन । सम्प्रहारो महानासीदप्रसलप्रसेनयोः ॥१०४॥  
 मुप्रावमेव मुप्रावो जगामोदुप्रावमुप्रसूट् । विद्यायाः करणासक्तो दृढ योद्धुं समुद्यतः ॥१०५॥  
 सम्प्रहारो महान् जातस्तयोश्चक्रेपुसायकै । अन्यकारीकृताकाशश्चिरमप्राप्तयोः श्रमम् ॥१०६॥  
 अथ मुप्रावमाहृत्य गदस्यालोकवानरी । विज्ञाय मृत इत्येवं तुष्टः परमुपाविशत् ॥१०७॥  
 निश्चेष्टविप्रहृश्वाय सत्यशारासृगध्वजः । निज शिविरमानीतः परिवार्यं सुहृद्जनैः ॥१०८॥

हे भद्र ! मैंने जो निश्चय किया है उसे प्राप्त करनेके वाद यदि तुम मेरी प्राणाधिका तथा गुणांसे परिपूर्ण सीताका पता चला सके तो उत्तम धात है ॥६६॥ यह सुनकर मुप्रावने कहा कि यदि मैं सात दिनके भीतर आपको प्रियाका पता न चला दूँ तो अग्निमें प्रवेश करूँ ॥६७॥ चन्द्रमाकी किरणोंके समान मुप्रावके इन अक्षरोंसे राम कुमुदकी उपमा धारण करते हुए परम आह्लादको प्राप्त हुए ॥६८॥ अमृतके प्रवाहसे तर हुए के समान उनका मुख-कमल खिल उठा तथा शरीर सय ओरसे रोमाञ्चोंसे व्याप्त हो गया ॥६९॥ हम दोनों परस्पर द्रोहसे रहित हैं—एक दूसरेके मित्र हैं इस प्रकार आदरके साथ उन दोनोंने उस जिनालयमें जिन-धर्मानुसार शपथ धारण की ॥१००॥

तदनन्तर महासामन्तोसे सेवित रामलक्ष्मण मुप्रावके साथ उत्तम रथ पर आरूढ हो किष्किन्ध नगरकी ओर चले ॥१०१॥ नगरके समीप पहुँच कर सुवृटमें वानरका चिह्न धारण करनेवाले मुप्रावने दूत भेजा सो मायावी मुप्रावके द्वारा तिरस्कृत होकर पुनः वापिस आ गया ॥१०२॥ तदनन्तर क्रोधसे भरा कृत्रिम मुप्राव तैयार हो रथ पर बैठकर बड़ी सेनासे आवृत्त होता हुआ युद्धके लिए निकला ॥१०३॥ अध्यानन्तर जिनके आगे सेना लग रही थी ऐसे उन दोनोंमें महा युद्ध प्रारम्भ हुआ । उनका यह महा युद्ध कपटी योद्धाओंके विस्तारसे युक्त था, संकट पूर्ण था तथा तीक्ष्ण शब्दोंसे सहित था ॥१०४॥ जो तीक्ष्ण क्रोधका धारक था, तथा विद्याओंके करनेमें आसक्त था ऐसा मुप्राव, अहंकारसे प्रीवाको उपर उठानेवाले कृत्रिम मुप्रावसे दृढ़ युद्ध करनेके लिए उद्यत हुआ ॥१०५॥ चिर काल तक युद्ध करनेके वाद भी जिनमें थकावटका अंश भी नहीं था ऐसे उन दोनों मुप्रावोंमें महान् युद्ध हुआ । उनके उस युद्धमें चक्र-पाग तथा रत्न आदि शस्त्रोंसे आकाशमें अन्धकार फैल रहा था ॥१०६॥

अधानन्तर कृत्रिम मुप्राव, गदाके द्वारा मुप्रावको चोट पहुँचा कर तथा 'यह मर गया' ऐसा समझ कर संतुष्ट होता हुआ नगरमें प्रविष्ट हुआ ॥१०७॥ इधर जिसका शरीर निश्चेष्ट

अनवीह्वर्यमज्ञश्च नाथ हस्तमुपागतः । जीवश्रेय कथं चौरः पुरं मम पुनर्गतः ॥१०६॥  
 नूनं न भवितव्यं मे दुःखस्यान्तेन राघव । भवन्तमपि सम्प्राप्य किन्तु कष्टमतः परम् ॥११०॥  
 ततः पद्मप्रभोजोचक्रवर्तोर्युध्यमानयोः । विशेषो न मया ज्ञातो न हतस्तेन ते समः ॥१११॥  
 अज्ञानदोषतो नाथ मानिगीर्यैव जानुचिन् । सुहृदं जैनवाच्येन जनितं प्रियसङ्गमम् ॥११२॥  
 अथाहूतः पुनः प्राप्तः सुप्रीवप्रतिमो बली । सरम्भवद्विधा दीप्तः पद्मेनामिमुन्वाहृतः ॥११३॥  
 अग्निगैत्रं स रामेण धीभितः सागरोपमः । निखरप्राहसद्धानसज्जारायन्तमङ्गलम् ॥११४॥  
 लक्ष्मणेनैव सुप्रीवः परिष्वस्य दृष्ट धृतः । स्त्रीवैरतः समीपं मा शश्रोः कोपेन गादिति ॥११५॥  
 ततः ससार पद्माभः सुप्रीवाभ समाह्वयन् । ज्वलन् संग्रामसंग्राप्तिजनितेनोरनेजसा ॥११६॥  
 अथ पद्म समालोक्य शमाश्रुचक्षु च साश्रुकम् । वैताली निःसृता विद्या नारीवोदतचेष्टिता ॥११७॥  
 सुप्रीवाहृतितिसुर्गं वानराङ्गविवर्जितम् । सहसा साहसगतिमिन्द्रनीलनगोपमम् ॥११८॥  
 स्वभावमागतं दृष्ट्वा निःशान्तमित्रं कञ्चुकान् । शास्त्रामृगध्वजा सर्वे सधुर्म्यैकवमाध्रिता ॥११९॥  
 नानाबुद्धाश्च समुद्रा बलिनस्तमयुचयन् । सोऽयं सोऽयमतिस्वान कुर्वाणा पर्यतेति च ॥१२०॥  
 तेन तेजस्विना सैन्यं तद्द्विपामुन्शक्तिना । पुरस्कृतं दिशो भजे यथा तूलं नमस्वता ॥१२१॥

पढ़ा था ऐसे यथार्थ सुप्रीवको उसके मित्र जन घेर कर अपने शिबिरमें ले आये ॥११०॥ जब सचेत हुआ तब रामसे बोला कि नाथ ! हाथमें आया चौर जीवित ही पुनः मेरे नगरमें कैसे चला गया ॥१०६॥ जान पड़ता है कि राघव ! अब मेरे दुःखका अन्त नहीं होगा और फिर आपकी प्राप्त कर भी । इससे बढ़कर कष्ट और क्या होगा ? ॥११०॥ तत्पश्चात् रामने कहा कि मैं युद्ध करते हुए तुम दोनोंकी विशेषता नहीं जान सका था इसीलिए मैंने तुम्हारी सदृशता करनेवाले सुप्रीवकी नहीं मारा है ॥१११॥ जिनागमका उच्चारणकर तू मेरा प्रिय मित्र हुआ है सो कहीं अज्ञानरूपी दोषसे तुम्हें ही नष्ट नहीं कर दूँ इस भयसे मैं चुप रहा ॥११२॥

अथानन्तर उस कृत्रिम सुप्रीवको फिरसे ललकारा सो वह बलवान् क्रोधाम्निसे दीप्त होता हुआ पुनः आया तथा रामने उसका सामना किया ॥११३॥ जिस प्रकार पर्वतके द्वारा समुद्र क्षोभको प्राप्त होता है उसी प्रकार क्रूर योद्धारूपी मगरमच्छको संचारसे अतिशय भरा हुआ यह समुद्र तुल्य कृत्रिम सुप्रीव रामके द्वारा क्षोभको प्राप्त हुआ ॥११४॥ इधर नृदमण्यने वास्तविक सुप्रीवका दृष्ट आलिङ्गन कर उसे इस अभिप्रायसे रोक लिया कि कहीं यह स्त्रीके वैरके कारण क्रोधसे शत्रुके पाम न पहुँच जावे ॥११५॥ तदनन्तर युद्धकी प्राप्तिसे उत्पन्न विशाल तेजसे देदीप्यमान राम, कृत्रिम सुप्रीवको ललकारते हुए आगे बढ़े ॥११६॥ अथानन्तर रामको आया देव मिन्द्र करनेवालेसे पूछकर वैताली विद्या उसके शरीरसे इस प्रकार निकल गई कि जिस प्रकार उद्वत चेष्टाको धारण करनेवाली स्त्री निकल जाती है ॥११७॥ तत्पश्चात् जो सुप्रीवकी आकृतिसे रहित था, जिसका वानर चिह्न दूर हो चुका, जो इन्द्रनील मणिके समान जान पड़ता था, और जो आवरणसे निकले हुए के समान अपने स्वाभाविक रूपमें स्थित था ऐसे साहस गतिको देखकर मन वानरवंशी क्षुभित हो एक रूपताको प्राप्त हो गये ॥११८-११९॥ नाना-शस्त्रोंसे सहित, क्रोध भरे बलवान् वानर 'यह बड़ी है यह वही है देवो देवो' आदि शब्द करते हुए उससे युद्ध करने लगे ॥१२०॥ सो विशाल शक्तिके धारक उस तेजस्वीने शत्रुओंकी उस

ताम्रसंसायक कृवा धनरत्नविक्रम । अथावपद्ममुद्गिरय घनावनचयोपम ॥१२२॥  
 शरधारा चिपत्यस्मिन् भृशःवाद्गहितान्तरम् । विषाय मण्डप बाणैरस्थ्यात् काकुस्थनन्दन ॥१२३॥  
 सम साहसयानेन पद्मस्याभूत्पर सृजम् । आनन्दो हि स पद्मस्य चिर य कुस्ते रणम् ॥१२४॥  
 ततः कृवा रणत्रीडा चिरमूजितविक्रम । क्षुरप्रैरस्य क्वच चिच्चेद रघुनन्दन ॥१२५॥  
 तितवागारदेहोऽथ कृतस्तीफणै शिलीमुखै । गत मुनाहसो भूमिमालिलिङ्ग गतप्रभ ॥१२६॥  
 समासाय च तै सर्वं कुतूहलिभिराचित । दुष्ट साहसयानोऽसाविति ज्ञातश्च निश्चितम् ॥१२७॥  
 ततः सन्नामृक पद्म मुग्धोव पर्यपूजयत् । स्तुतिभिश्चाभिरम्याभिस्तुष्टावोदात्तसम्मद ॥१२८॥  
 पुरे कारयितु शोभा परमा हतकण्ठके । यात कान्तासमायोग समुत्कण्ठा वहन् पराम् ॥१२९॥  
 भोगसागरमनोऽसौ नैवासासादहनशाम् । चिरदृष्ट मुत्ताराया न्यस्तनि शेषचेतन ॥१३०॥  
 रात्रिमेवा रहिनीया पद्माभप्रमुखा नृपा । ऋद्धया प्रविश्य किष्किन्ध महाबलसमन्विता ॥१३१॥  
 आनन्दोद्यानमाश्रित्य नन्दनध्राविडम्पम् । स्वेच्छयागस्थिति च्छुल्लेकिपालसुरश्रिय ॥१३२॥  
 तस्या<sup>३</sup> वर्णनमेवातिवर्णनारम्यतापि तु<sup>३</sup> । उद्यानस्यान्यथा कोऽसौ शक्तस्तद्गुणवर्णने ॥१३३॥  
 रम्य चैत्यगृह तत्र न्यन्तचन्द्रप्रभाचनम् । तद्विघ्नघ्न प्रणम्यैतावासीनां रामलक्ष्मणी ॥१३४॥

सेनाकी जन आगेकर रत्नेडा तत्र वह दिशाओको उस प्रकार प्राप्त हुई जिस प्रकारकी पवनसे प्रेरित रुई प्राप्त होती है ॥१२१॥ उस समय उद्धत पराक्रम तथा मेघ समूहकी उपमा धारण करनेवाला साहसगति, धनुषपर बाण चढाकर रामकी ओर दौडा ॥१२२॥ उधर जन यह लगातार बाण समूहकी वर्षा कर रहा था तत्र इधर राम भी बाणोंके द्वारा मण्डप बनाकर स्थित थे—राम भी पनयोर बाणोंकी वर्षा कर रहे थे ॥१२३॥ इस प्रकार रामका साहसगतिके साथ परम युद्ध हुआ सो ठीक ही है क्योंकि जो चिरकाल तक युद्ध करता था वह रामको आनन्ददायी होता था ॥१२४॥ तदनन्तर अत्यधिक पराक्रमके धारक रामचन्द्रने चिरकाल तक रणत्रीडाकर बाणसे उसका कण्ठ छेद दिया ॥१२५॥ तत्पश्चात् तीक्ष्ण बाणसे जिसका शरीर चलनके समान सद्भिद्र हो गया था ऐसे साहसगतिते प्रभा रहित ही पृथिवीका आलिङ्गन किया अर्थात् प्राण रहित हो पृथिवीपर गिर पडा ॥१२६॥ कुतूहलसे भरे सत्र विद्याधरोंने आकर उमे देसा तथा निश्चयसे जाना कि यह साहसगति ही है ॥१२७॥

तदनन्तर उत्पट हर्षसे धारक मुग्धोवने भाई—लक्ष्मण सहित रामकी पूजा की तथा मनोहर स्तुतियासे स्तुति की ॥१२८॥ शत्रुरहित नगरमें परमशोभा करानेके लिए परम उत्कण्ठाको धारण करता हुआ वह छात्रे साथ समागमकी प्राप्त हुआ ॥१२९॥ वह भोगरूपी सागरमें ऐसा मग्न हुआ कि रात दिनका भी उसे ज्ञात नहीं रहा । वह चिरकाल याद दिया था अतः मुत्ताराके लिए ही उसने अपनी समस्त चेतना समर्पित कर दी ॥१३०॥ महाबलसे सहित राम आदि प्रमुख राजाआने एक रात्रि नगरसे बाहर निता कर वैभवके साथ किष्किन्ध नगरमें प्रवेश किया ॥१३१॥ यहाँ लोचपाल देवोंने समान शोभाकी धारण करनेवाले राम आदि प्रमुख राजा, नन्दनवननी शोभाकी विडम्बित करनेवाले आनन्द नामक उद्यानमें स्वेन्द्रासे ठहरे ॥१३२॥ उस उद्यानका सुन्दरताका वर्णन नहीं करना ही उसका सबसे बड़ी सुन्दरता थी अन्यथा उसके गुण वर्णन करनेमें कौन समर्थ है ? ॥१३३॥ उस उद्यानमें चन्द्रप्रभ भगवानकी प्रतिमामें मुग्धोवित मनोहर चैत्यालय था सो समस्त विघ्नोना नष्ट करनेवाले चन्द्रप्रभ भगवानकी नमस्कार कर राम

वहिर्ध्रैयालयस्यास्य चन्द्रोदरमुतादय । स्वमैन्यावासन कृत्वा बभूवुविगतध्रमा ॥१३५॥  
 गुणध्रुवनुरागेण स्वयवरणुद्धय । त्रयोदश मुता पद्य सुप्रोवस्य ययुर्मुदा ॥१३६॥  
 चन्द्राभा नाम चन्द्रास्या द्वितीया हृदयावली । अन्या हृदयधर्मैति चेतस सकोपमा ॥१३७॥  
 तुरायानुन्धरो नाम्ना श्रीकान्ता श्रीरिवापरा । सुन्दरी सर्वतश्चित्तसुन्दरीत्यपरोदिता ॥१३८॥  
 अन्या सुरवता नाम सुरस्त्रासमविभ्रमा । मनोवाहिन्यभिख्याता मनोवहनकोविदा ॥१३९॥  
 चारुश्रारिति विद्याता चारुश्री परमार्थत । मदनी सवभूतान्या प्रसिद्धा मदनीसवा ॥१४०॥  
 अन्या गुणवती नाम गुणमालाविभूषिता । एका पद्मावता ख्याता बुद्धपद्मसमानना ॥१४१॥  
 तथा जिनमतिर्निय जिनपूजनतत्परा । पूता कन्या समादाय यथी तासा परिच्छद ॥१४२॥  
 प्रणम्य च अगौ राम नाथैतासा स्वयवृतम् । शरण भव लोकेश कन्याना बन्धुरत्तम ॥१४३॥  
 दुषिदग्धै खगैर्माभूत् विद्याहोऽस्माकमियलम् । जातमासा मन ध्रुवा गोत्रस्य वानुपालकम् ॥१४४॥  
 ततो हीभारनन्नास्या वशिता शोभया विधुम् । पद्माभमुपसमाप्ता पद्माभा नववीचना ॥१४५॥  
 विद्युद्गहिसुवर्णाञ्जगर्भमासा महायसाम् । देहभासा विकासेन तासा रेजे नभस्तलम् ॥१४६॥  
 उपविश्य विनीतास्ता लावण्यान्वितविग्रहा । समापे पद्मनाभस्य तस्थु पूजितचेष्टिता ॥१४७॥

लक्ष्मण वहाँ रहने लगे ॥१३४॥ चन्द्रोदरके पुत्र—विराधित आदि उस चैत्यालयके बाहर अपनी सेनाएँ ठहरा कर श्रमसे रहित हुए ॥१३५॥

तदनन्तर रामके गुण श्रवण कर अनुरागसे भरी सुग्रीवकी तेरह पुत्रियों स्वयवरणकी इच्छासे हर्ष पूर्वक वहाँ आई ॥१३६॥ वे तेरह पुत्रियों इस प्रकार थीं—पहली चन्द्रमाके समान मुखवाली चन्द्रमा, दूसरी हृदयावली, तीसरी हृदयके लिए सङ्कटकी उपमा धारण करनेवाली हृदयधर्मा, चौथी अनुन्धरी, पाँचवी द्वितीय लक्ष्माके समान श्रीकान्ता, छठवीं सर्वप्रकारसे सुन्दर चित्त सुन्दरी, सातवीं देवाङ्गनाके समान विभ्रमको धारण करनेवाली सुरवती, आठवीं मन के धारण करनेमें निपुण मनोवाहिनी, नौवीं परमार्थम उनम शोभाको धारण करनेवाली चारुश्री, दशवीं मदनके उत्सवरूपरूप मदनीसवा, ग्यारहवीं गुणाका मालासे विभूषित गुणवती, बारहवीं विकसित कमलके समान मुखको धारण करनेवाली पद्मावती और तेरहवीं निरन्तर जिनपूजनमें तत्पर रहनेवाली जिनमती । इन सब कन्याओंको लेकर उनका परिकर रामके पास आया ॥१३७-१४२॥ रामको प्रणाम कर उसने कहा कि हे नाथ ! आप इन सब कन्याओंके स्त्रयवृत शरण होओ । हे लोकेश ! इन कन्याओंके उत्तम बन्धु आप ही हैं ॥१४३॥ गोत्रकी रक्षा करनेवाले आपका नाम मुनकर इन कन्याओंका मन स्वभावसे ही ऐसा हुआ कि हमारा विवाह नीच विद्याधरोंके साथ न हो ॥१४४॥ तदनन्तर लक्ष्माके भारसे चिनके मुख नम्र हो रहे थे, जो शोभासे युक्त थीं, जिनकी आभा कमलके समान थी तथा जो नव यौवनसे परिपूर्ण थीं ऐसी वे सब कन्याएँ राजा रामचन्द्रके पास आई ॥१४५॥ विजली, अग्नि, सुवर्ण तथा कमलके भातरी दलके समान उनकी शरीरकी विपुल कान्तिके विकाससे आकाश सुशोभित होने लगा ॥१४६॥ विनीत, लावण्य युक्त शरीरकी धारक एव प्रशस्त चेष्टाओंसे युक्त वे सब कन्याएँ रामके पास आकर बैठ गई ॥१४७॥

## आर्य्याच्छन्दः.

रमते क्वचिदपि चित्त पुरपरवे पूर्वजन्मसम्बन्धान् ।  
 एषा भद्रपरिवर्त्ते सर्वेषा श्रेणिकावस्था ॥१४८॥

इत्यार्षे रविपेणाचार्येप्रोक्ते पद्मपुराणे विटसुग्रीवप्रधारयान नाम  
 सप्तचत्वारिंशत्तम पर्यं ॥१५॥



गीतम रामाभी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! पुरपोमे सूर्य समान रामचन्द्रका भी चित्त किन्हींमें  
 रमणको प्राप्त हुआ सो यह दशा समस्त संसारी जीवों को है ॥१५८॥

इम प्रकार आर्य नामसे प्रसिद्ध, रविपेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें विट सुग्रीवके  
 वधना कथन करनेवाला सैंतालीसवा पर्यं समाप्त हुआ ॥१५॥



## अष्टचत्वारिंशत्तमं पर्व

अधोपलालनं तस्य वान्छन्त्यो वरकन्यका । बहुभेदा त्रिधाश्चतुर्द्वैवलोकादिवागता ॥१॥  
 वीणादिवादनैस्तामा गीतैश्चातिमनोहरैः । ललिताभिश्च स्त्रीलाभिर्हेतु तस्य न मान्यम् ॥२॥  
 सर्वाकारसमानातो विभवस्तस्य पुष्कल । न भोगेषु मनश्चर्जे वैदेहीं प्रति सहतम् ॥३॥  
 अनन्यमानसोऽर्मा हि सुकृति शेषचेष्टित । सीता मुनिरिव ध्यायन् सिद्धिमास्थान्यमहादर ॥४॥  
 न शृणोति ध्वनिं किञ्चिद् रूप परयति नापरम् । जानकामयमेवास्य सर्वं प्रत्यवभासते ॥५॥  
 न करोति कथामन्या कुरते जानकीकथाम् । अन्यामपि च पार्श्वस्था जानकीत्यभिभाषते ॥६॥  
 वायम् पृच्छति प्रान्या गिरिवं कलनादया । आय्यता विपुल देश इषा स्वात् मेधिला क्वचिन् ॥७॥  
 सरस्युच्चिद्रपमाद्रिकिञ्जलकालङ्कृताम्भसि । चत्राह्ममिथुन इष्टा किञ्चित् सञ्चिन्त्य कुप्यति ॥८॥  
 सीताशरारसम्पर्कशङ्कया बहुमानवन् । निमाद्यलोचने किञ्चित् समालिङ्गति मारुतम् ॥९॥  
 पतस्या म्या निपण्णोति वमुधा बहु मन्यते । जगुप्सितस्तया नूनमिति चन्द्रमुदाचते ॥१०॥  
 अचिन्त्ययच्च किं साता मद्रवियोगाग्निदापिता । तामवस्था भजेन् प्राप्ता स्यादस्या यापदैपिणाम् ॥११॥  
 किमिय जानका नैवा लता मन्दानिलेरिता । किमशुकमिद नैतच्चलपत्रकदम्बरम् ॥१२॥

अथानन्तर श्रीरामको प्रसन्न करनेकी इच्छा करती हुई वे उत्तम कथाएँ नाना प्रकारकी त्रियाएँ करने लगीं । वे कन्याएँ ऐसी जान पड़ती थीं मानो स्वर्गलोकसे ही आई हों ॥१॥ वे कन्याएँ कभी वीणा आदि वादित्त वजाती थीं, कभी अत्यन्त मनोहर गीत गाती थीं और कभी नृत्यादि ललित क्रीडाएँ करती थीं फिर भी उनकी इन चेष्टाओंसे रामका मन नहीं हरा गया ॥२॥ यद्यपि उन्हें सत्र प्रकारकी पुष्कल सामग्री प्राप्त थी तो भी सीताकी ओर आकर्षित मनको उन्होंने भोगोंमें नहीं लगाया ॥३॥ जिस प्रकार मुनि मुक्तिका ध्यान करते हैं उसी प्रकार राम अन्य सत्र चेष्टाओंमें छोड़कर अनन्यचित्त हो आदरके साथ सीताका ही ध्यान करते थे ॥४॥ वे न तो उन कन्याओंके शब्दोंको सुनते थे और न उनके रूपको ही देखते थे । उन्हें सत्र ससार सातामय ही जान पड़ता था ॥५॥ वे एक सीताकी ही कथा करते थे और दूसरी कथा ही नहीं करते थे । यदि पासमें राई किसी दूसरी स्त्रीसे बोलते भी थे तो उसे सीता समझकर ही बोलते थे ॥६॥ वे कभी मधुरवाणीमें कभीसे इस प्रकार पूछते थे कि हे भाई ! तू तो समस्त देशमें भ्रमण करता है अतः तू ने कहीं सीताको तो नहीं देखा ॥७॥ गिले हुए कमल आदि पुष्पाङ्गी परागसे जिसका जड़ अलङ्कृत था ऐसे सरोवरमें क्रीडा करते चकवा चकवीचे युगलको देखकर वे बुद्ध सोच त्रिचाम्मे पड़ जाते तथा क्रोध करने लगते ॥८॥ कभी नेत्र बन्दकर बड़े सम्मानके साथ वायुका यह विचारकर आलिङ्गन करते कि समन है कभी इसने सीताका स्पर्श किया हो ॥९॥ इस प्रथिवी पर सीता वैठी थी । यह सोचकर उसे धन्य समझते और चन्द्रमाको यह सोचकर ही मानो देखते थे कि यह उससे दूरा अपनी आभासे तिरस्कृत किया गया था ॥१०॥ वे कभी यह विचार करने लगते कि सीता मेरी वियोगरूपी अग्निसे जलकर कहीं उस अवस्थाको तो प्राप्त नहीं हो गई होगी जो त्रिपत्तिप्रसन्न प्राणियोंकी होती है ॥११॥ क्या यह सीता है ? मन्द मन्द वायुसे हिलती

१. लल्य म० । २. सिद्धि मास्थाय म० । ३. गिरेव म० । ४. समालिङ्गित म० ।

५. तथा म० ।

३६-२

एने कि लोचने तस्या नैते पुण्ये मपट्पदे । करोऽय किं चलस्तस्या नायं प्रत्यप्रपल्लवः ॥१३॥  
 केशभार मयूरीषु तस्या. पश्यामि सुन्दरम् । अपर्याप्तशशाङ्गे च लक्ष्मीमलिकसम्भवाम् १४॥  
 त्रिपर्णाभोजनपण्डेषु श्रिय लोचनगोचराम् । शोणपल्लवमध्यस्थसितपुष्पेस्मितस्त्रियम् ॥१५॥  
 स्तवरेषु सुजातेषु कान्तिमत्सुस्तेनश्रियम् । जिनस्नपनवेदीनां शोभां मध्येषु मध्यमाम् ॥१६॥  
 तामामेरोद्धभागेषु नितम्भरताकृतिम् । ऊहशोभां सुजातासु कदलीस्तम्भिकासुताम् ॥१७॥  
 पद्मेषु चरणाभिधया स्थलसम्प्राप्तजन्मसु । शोभां तु समुदायस्य तस्या पर्यामि न क्वचिन् ॥१८॥  
 चिरायति कथं सोऽपि सुमीवः कारणं नु किम् । दृष्टा नाम भवेत् सीता किं तेन शुभदर्शिता ॥१९॥  
 मद्बियोगेन तसा वा विलीनां तां सुशीलकामं । ज्ञात्वा निवेदनेऽशक्तः किमसौ नैति दर्शनम् ॥२०॥  
 किं वा कृतार्थतां प्राप्तः प्राप्य राज्यं पुनर्निजम् । स्वस्थाभूतो भवेद् दुःखं मम विष्मृत्य खेचर. ॥२१॥  
 एव चिन्तयतस्तस्य वाणविल्लुतचक्षुषः । सस्तालसशरीरस्य विवेदावरजो मनः ॥२२॥  
 तत समग्रम स्वान्त कोपारुणितलोचनः । यया सुमीवमुद्दिश्य नग्नासिविलसत्करः ॥२३॥  
 गच्छतस्तस्य वानेन जह्वास्तम्भासजन्मना । दोलायितामभूत् सर्वं महोत्पाताकुलं पुरम् ॥२४॥  
 वेगनिक्षिप्तनि शंपराजाधिकृतमानवैः । प्रविश्य तद्गृहं दृष्ट्वा सुमीवमिदमम्यधात् ॥२५॥  
 भाः पाप दयितादु पतिमग्ने परमेश्वरे । भार्यया सहितः सीक्ष्यं कथं भजसि दुर्मते ॥२६॥

हुई लता नहीं है ? क्या यह उसका वस्त्र है, चञ्चल पत्रोका समूह नहीं है ? ॥१२॥ क्या ये उसके नेत्र हैं, ध्रमर सहित पुष्प नहीं हैं ? और क्या यह उसका चञ्चल हाथ है नूतन पल्लव नहीं है ? ॥१३॥ मैं उसका सुन्दर केशपाश मयूरियोम, ललाटकी शोभा अर्धचन्द्रमे, नेत्रोंकी शोभा तीन रङ्गके कमलामं, मन्द मुसकानकी शोभा लाल-लाल पल्लवोंके मध्यमें स्थित पुष्पमे, स्तनोंकी शोभा कान्तिसम्पन्न उत्तम गुच्छोंमे, मध्यभागकी शोभा जिनाभिपेककी वेदिकाओंके मध्यभागमे, नितम्बकी स्थूल आकृति उन्हीं वेदिकाओंके ऊर्ध्वभागमे, ऊरुओंकी अनुपम शोभा धेलेके सुन्दर स्तम्भोंमे, और चरणोंकी शोभा स्थलकमला अर्थात् गुलाबके पुष्पोंमें देखता हूँ परन्तु इन सबके समुदाय स्वरूप सीताकी शोभा किसीमें नहीं देखता हूँ ॥१४-१८॥ यह सुमीव भी बिना कारण क्यों देर कर रहा है ? शुभ पदार्थोंको देपनेवाले उसने क्या किसीसे सीताका समाचार पूछा होगा ? ॥१९॥ अथवा वह शीलवती मेरे वियोगसे सन्तप्त होकर नष्ट हो गई है ऐसा वह जानता है तो भी कहनेमे असमर्थ होता हुआ ही क्या दिखाई नहीं देता है ? ॥२०॥ अथवा वह विद्याधर अपना राज्य पाकर कृतकृत्यताको प्राप्त हो गया है तथा मेरा दुःख भूलकर अपने आनन्दमें निगमन हो गया है ॥२१॥ इस प्रकार विचार करते-करते जिनके नेत्र आँसुओंसे व्याप्त हो गये थे तथा जिनका शरीर ढीला और आलस्य युक्त हो गया था ऐसे रामके अभिप्रायको लक्ष्मण समझ गये ॥२२॥

तदनन्तर जिनका चित्त क्षोभसे युक्त था, नेत्र क्रोधसे लाल थे, और जिनका हाथ नंगी तलवार पर सुशोभित हो रहा था ऐसे लक्ष्मण सुमीवको लक्ष्य कर चले ॥२३॥ उस समय जाते हुए लक्ष्मणकी जह्वाओरूपी स्तम्भोंसे उत्पन्न धायुके द्वारा समस्त नगर ऐसा कम्पायमान हो गया मानो महान् उत्पातसे आतुल होंकर ही कम्पायमान हो गया हो ॥२४॥ राजाके समस्त अधिकाारी मनुष्योंकी अपने वेगसे गिराकर वे सुमीवके घरमे प्रविष्ट हो सुमीवसे इस प्रकार कहने लगे ॥२५॥ अरे पापी ! जय कि परमेस्वर-राम स्त्रीके दुःखमें निगमन हैं तब रे दुर्वृद्धे ! तू स्त्रीके

१. पुष्पेषु पट्पदाः म० । २. शशाङ्गे म० । ३. नश्रियम् (?) म० । ४. 'अभिलष्या नामशोभयोः' इत्यमरः । ५. मयूराननन-मनु (?) म० । ६. दृष्ट्वा म० । ७. प्राता म० । ८. प्राये म० । ९. अनुभवं 'दग्ग' । १०. समग्रमः शान्ताः म० । ११. माननः म० ।



अहं त्वा खेचरध्वान्न भोगे दुर्लभित खल । भयामि तत्र नाथेन यत्र नातस्त्वदाकृति ॥२७॥  
 पृथुसुप्रान् विमुञ्चन्त वर्णान् कोपस्त्रणानिच । लक्ष्मीधर प्रणामेन सुप्राव शममानयत् ॥२८॥  
 उवाच चेदमेक मे श्रम्यता देव विस्मृतम् । क्षुद्राणां हि भवयेव मादशा दुर्विचेष्टिनम् ॥२९॥  
 तत्सार्धपाणया दारा सम्भ्रान्ता कम्पमूर्तय । सम्भ्रणामेन नि शेष जहुलंक्षमणसम्भ्रमम् ॥३०॥  
 सज्जनाम्भोद्वाप्तोयधारातिकरसद्गत । प्रयाति विलय कापि जनारणिभयोऽन्त ॥३१॥  
 प्रणाममात्रमाधो हि महता चेतस शम । महद्भिरपि नो दानैस्त्वशाश्रयन्ति दुर्जना ॥३२॥  
 प्रतिज्ञा स्मारयस्तस्य चक्रे लक्ष्मीधर परम् । उपकार यथा योगी यत्तदस्य मातरम् ॥३३॥  
 पप्रच्छ भगवाधारां गणेश्वरमिहान्तरे । यत्तदस्य वृत्तान्त नाथेच्छामि विनेदितुम् ॥३४॥  
 ततो गणेशरोजोचच्छृणु श्रेणिकभूपते । चकार यत्तदस्य यथा मानु स्मृति मुनि ॥३५॥  
 अस्ति कौञ्जपुर नाम नगर तत्र पार्थिव । यत्तस्य प्रिया तस्य राज्ञिललि प्रकातिसा ॥३६॥  
 तत्पुत्री यत्तदात्स्य स वाह्या विहरन् सुखम् । अपश्यत् परमा नारी स्थिता दुर्विधपाटके ॥३७॥  
 स्मरंरुहत्तचित्तोऽसौ तामुद्दिश्य व्रजत्रिणि । मुनिनावधियुक्तेन मैत्रिमित्यभ्यभाषत ॥३८॥  
 ततस्त विष्णुदुद्योतघोषित वृक्षमूलगम् । ऐक्षतायननामान मुनि सायकपाणिन ॥३९॥  
 तमुपैत्य नति कृत्वा पप्रच्छ विनयान्वित । भगवन् किं त्वया मेति निविद्ध कौतुक मम ॥४०॥

साथ सुरका उपभोग क्यों कर रहा है ? ॥२६॥ अरे दुष्ट ! नीच विद्याधर ! मैं तुम्हें भोगासक्तको वहाँ पहुँचाता हूँ जहाँ कि रागने तेरी आकृतिको धारण करनेवाले कृत्रिम सुमीधको पहुँचाया है ॥२७॥ इस प्रकार क्रोधान्तिके कणोरे समान उमनचन छोडनेवाले लक्ष्मणको सुमीधने नमस्कार कर शान्त किया ॥२८॥ और कहा कि हे देव ! मेरी एक भूल क्षमा की जाय क्योंकि मेरे जैसे जुद्ध मनुष्योकी सोटी चेष्टा होती ही है ॥२९॥ जिनके शरीर काँप रहे थे ऐसी सुप्रावकी घबडाई हुई स्त्रियों हाथमे अर्ध लेलेकर बाहर निकल आई और उन्होंने अच्छी तरह प्रणाम कर लक्ष्मणके समस्त क्रोधको नष्ट कर दिया ॥३०॥ सो ठीक ही है क्योंकि मनुष्यरूपी अरणिसे उत्पन्न हुई क्रोधान्ति, सज्जनरूपी मैत्र सम्बन्धी उचनरूपी जलधाराओके साथ मिलकर शीघ्र ही कहीं विलीन हो जाती है ॥३१॥ निश्चयसे महापुम्पोके चित्तकी शान्ति प्रणाममात्रसे सिद्ध हो जाती है जब कि दुर्जन बडे बडे दानोंसे भी शान्त नहीं होते ॥३२॥ लक्ष्मणने प्रतिज्ञाका स्मरण कराते हुए सुमीधका उस तरह परम उपकार किया जिस तरह कि योगी अर्थान् मुनिने यत्तदत्तकी माताका किया था ॥३३॥

इसी बीचमे राजा श्रेणिकने गौतमस्वामीसे पूछा कि हे नाथ ! मैं यत्तदत्तका वृत्तान्त जानना चाहता हूँ ॥३४॥ तदनन्तर गणधर भगवान्ने कहा कि हे श्रेणिक भूपाल ! मुनिने जिस प्रकार यत्तदत्तने माताको स्मरण कराया था वह कथा कहता हूँ सो सुनो ॥३५॥ एक कौञ्जपुर नामका नगर है उसमे यव नामका राजा था और राजिला नामसे प्रसिद्ध उनकी स्त्री थी ॥३६॥ उन दोनोंके यत्तदत्त नामका पुत्र था । एक दिन उसने नगरके बाहर सुखपूर्वक भ्रमण करते समय दग्निद्रीकी वस्तामे स्थित एक परमसुन्दरी स्त्री देखी ॥३७॥ देखते ही कामके बाणसे उमरा हृदय हरा गया सो वह रात्रिके समय उसके उद्देश्यसे जा रहा था कि अवधिज्ञानसे युक्त मुनिराजने 'मा अर्थान् नहीं' इस प्रकार उच्चारण किया ॥३८॥ तदनन्तर उसी समय बिजली चमकी सो उसने प्रकाशमे हाथमे तलवार धारण करनेवाले यत्तदत्तने एक वृक्षके नीचे बैठे हुए अयन नामक मुनिराजको देखा ॥३९॥ उसने बड़ी दिनवसे उनके पास जाकर तया नमस्कार कर उनसे पूछा कि हे भगवन् ! आपने 'मा' शब्दका

सोऽबोचद् वा समुद्दिश्य प्रस्थित कामुको भवान् ।  
 सा ते माता ततस्तदा मा यती कामीति वारित ॥४१॥  
 सोऽबोचत् कथमित्यारय ततोऽस्मिन् प्रस्तुत मुनि ।  
 मानसानि मुनीना हि सुदिग्धान्यनुकम्पया ॥४२॥  
 शृण्वरिन् मृत्तिकावत्या कनको नाम वाणिज ।  
 धूर्नाग्नि तस्य भार्याया बन्धुदत्त सुतोऽभवत् ॥४३॥

भार्या मित्रवती तस्य एतादत्तसमुद्भवता । कृत्वास्या गर्भमज्ञात पोतेन प्रस्थित पति ॥४४॥  
 श्वसुरभ्या ततो ज्ञात्वा गर्भं दुश्चरितेति सा । निराकृता पुरात् चिप्र दास्योपलिकया सह ॥४५॥  
 प्रस्थिता च पितुर्गोह सार्धेन महता समम् । सर्पेणोपलिकाद् दृष्टा मृता च विपिनान्तरे ॥४६॥  
 तत सरया विमुकासी शीलमात्रसहायिका । इमं क्रीडपुर प्राप्ता महारोकसमाकुला ॥४७॥  
 स्कातदेवाचंकारामे प्रसूता यावदम्बरम् । आरात् चालयितु याता शिशुस्तावद्वृत शुना ॥४८॥  
 सुत स्वैर समादाय रत्नकम्बलवेष्टितम् । ददौ यत्तमहीपाय नात्वा स ह्यस्य वल्लभ ॥४९॥  
 ततोऽग्नेन विपुत्राया राज्ञिलाया समपित । सार्धां च यच्चदत्तारया प्रापितस्त्व स वर्तसे ॥५०॥  
 प्रत्याकृत्य च सम्भ्रान्तमपरयन्ती प्रसूतकम् । विप्रलाप चिर चरुं तु खान् मित्रवती परम् ॥५१॥  
 देवार्चनेन सा दृष्टा कृपया कृतसान्त्वना । स्व मे स्वसेति भापि वा स्वकेऽवस्थापितोदजे ॥५२॥  
 सहाय्यरहितत्वेन त्रपयाकार्तिभाहित । न सा गता पितुर्गोह तत्रैव निरता ततः ॥५३॥

उच्चारण कर निषेध किसलिए किया । इसका मुझे बड़ा कौतुक है ? ॥४०॥ इसके उत्तरम  
 मुनिराने कहा कि आप कामी होकर जिसके उद्देश्यसे जा रहे थे वह आपकी माता है इसलिए  
 'मत जाओ' यह कहकर मैंने रोका है ॥४१॥ यत्तदत्तने फिर पूछा कि वह मेरी माता कैसे है ?  
 इसके उत्तरमें मुनिराजने प्रकृत वार्ता कही सो ठीक ही है क्योंकि मुनियोंके मन अनुकम्पासे युक्त  
 होते ही हैं ॥४२॥ उन्होंने कहा कि मुनो, मृत्तिकावती नामक नगरामें एक कनक नामका वणिक्  
 रहता था, उसकी धुर नामकी स्त्रीमें एक बन्धुदत्त नामका पुत्र हुआ था ॥४३॥ बन्धुदत्तकी स्त्रीका  
 नाम मित्रवती था जो कि लतादत्तकी पुत्री थी । एक बार बन्धुदत्त अज्ञातरूपसे मित्रवतीको  
 गर्भधारण करा कर जहाजसे अन्यत्र चला गया ॥४४॥ तदनन्तर सास श्वसुरने गर्भका ज्ञान  
 होने पर उसे दुश्चरिता समझ कर नगरसे निकाल दिया, सो गर्भवती मित्रवती, उत्पलिना  
 नामक दासीको साथ ले एक बड़े बनजारके सघके साथ अपने पिताके घरकी ओर चली ।  
 परन्तु जङ्गलके बीच उत्पलिकाको सोपने डँस लिया जिससे वह मर गई ॥४५-४६॥ तब वह  
 सर्पोंसे रहिन, एक शीलव्रत रूपी सहायिकासे युक्त हो महारोकसे व्याकुल होती हुई इस  
 क्रीडपुर नगरामें आई ॥४७॥ यहाँ रघीत नामक देवार्चकके उपवनमें उसने पुत्र उत्पन्न किया ।  
 तदनन्तर पुत्रको रत्नकम्बलमें लिपेट कर जन तक वह समीपवती सरोवरमें वस्त्र धोनेके लिए  
 गई तब तब एक कुत्ता उस पुत्रको उठा ले गया ॥४८॥ वह कुत्ता राजाका पालनू त्याग कुत्ता  
 था इसलिए उसने रत्नकम्बलमें लिपेटे हुए उस पुत्रको अच्छी तरह ले जाकर राजा यज्ञके लिए  
 दे दिया ॥४९॥ राजाने वह पुत्र अपनी पुत्र रहित राजिला नामकी रानाके लिए दे दिया तथा  
 उसका यत्तदत्त यह सार्धक नाम रक्खा क्योंकि यत्त कुत्ताका नाम है और वह पुत्र उसके द्वारा  
 दिया गया था । यही यत्तदत्त तू है ॥५०॥ जब मित्रवती लौटकर आई और उमने अपना पुत्र नहीं  
 देखा तब वह दुःखसे चिरकाल तक बहुत विलाप करती रही ॥५१॥ तदनन्तर उपवनमें स्वामा  
 देवार्चनेने उसे देख कर दया पूर्वक सान्त्वना दी और यह कह कर कि 'तू हमारी बहिन है'  
 अपनी कुटीमें रक्खी ॥५२॥ सहायक न होनेसे, लज्जासे अथवा अपकीर्तिके भयसे वह फिर

सेयम' यन्तरागीलाभ्या जिनधर्मपरायणा । कुगरे दुविधस्थास्ते भ्रमता वा त्वपेक्षिता ॥५४॥  
 मनता बन्धुदत्तेन यहत् रत्नकम्बलम् । अस्यास्तद्यज्ञमवने तिष्ठयद्यापि रक्षितम् ॥५५॥  
 इयुर्नैव सयत नत्वा स्तुवा च दितकारिणम् । इयाय रत्नवानेव सम्भ्रमी यज्ञमन्निधिम् ॥५६॥  
 ऊच च तेऽसिनानेन द्विनन्धि नियत शिर । संत्यतो यदि मे जन्म न शास्त्रि स्फुटकारणम् ॥५७॥  
 यथावद् वेदित तेन रत्नकम्बललक्षितम् । अय जरायुलेपेन तिष्ठयद्यापि दिग्धक ॥५८॥  
 प्रथमान्या ततस्तस्य पितृभ्या सह सद्मम् । जातो महोन्मोपेत महाविभ्रविस्मित ॥५९॥  
 कथित ते महाराज वृत्तान्ताद्दिदमागतम् । अधुना प्रकृत वक्ष्ये भवावहितमानम् ॥६०॥  
 लक्ष्माधर पुरस्कृत्य मुद्रावस्वरित ययौ । समीप रामदेवस्य स तस्यौ विहितानति ॥६१॥  
 सतो विन्मगर्गेण सदा प्रकण्ठेष्टितान् । आहूय किङ्करान् सर्वान् महाकुलसमुद्भवान् ॥६२॥  
 काश्चिदधृतवृत्तान्तान् महाभोगे हतात्मिकान् । वेदयन् विस्मयप्राप्तान् पद्मनिमित्तमद्भुतम् ॥६३॥  
 काश्चिद् विज्ञातवृत्तान्तान् प्रभुकार्यपरायणान् । जगौ प्रयुषकारण वाचा सन्मानयत्रिदम् ॥६४॥  
 ओ ओ सुविभ्रमा सर्वं गणुत श्रासमुष्टता । सातामुपलभन् द्राक् व वतंत इति स्फुटम् ॥६५॥  
 महीतले समस्तेऽस्मिन् पाताले ते जले स्थले । जन्म द्रापे पयोनाथे द्वापे वा घातकामति ॥६६॥  
 कुलपर्वतवृन्नेषु काननान्तेषु मेरुषु । नगरेषु विचित्रेषु रम्येषु स्योमचारिणाम् ॥६७॥  
 गहनेषु समस्तेषु नानाविद्यापराङ्मना । जानात दिक्षु सर्वान् सतीं भूविधरेषु च ॥६८॥

पिताके घर नहीं गई और वहीं रहने लगी ॥५३॥ वह अत्यन्त शीलवती तथा जिनधर्मसे धारण करनेमें तत्पर रहती हुई दरिद्र देवार्चककी कुटीमें बैठी थी सो भ्रमण करते हुए तुमने उसे देखा ॥५४॥ उसके पति बन्धुदत्तने परदेशको जाते समय उसे जो रत्नकम्बल दिया था वह आज भी रात्रा यज्ञके घरमें सुरक्षित रक्खा है ॥५५॥ इस प्रकार कहने पर उसने हितकारी मुनिराजको नमस्कार कर उनकी बहुत स्तुति की । तदनन्तर वह तलवार लिये ही शीघ्रतासे राजा यज्ञके पास गया ॥५६॥ और बोला कि यदि तू मेरे जन्मका सच-सच कारण स्पष्ट नहीं बताता है तो मैं इसी तलवारसे तेरा मस्तक काट डालूँगा ॥५७॥ इतना कहने पर राजा यज्ञने सच कारण ज्यों-क्योंकी बतला दिया और साथ ही वह रत्नकम्बल दिखलाते हुए कहा कि यह अत्र भा जरायुके लेपसे लिप्त है ॥५८॥ तदनन्तर उसका अपने पूर्व माता-पितासे साथ समागम हो गया और महा वैभवसे आश्चर्यमें डालनेवाला बड़ा उत्सव हुआ ॥५९॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! प्रकरण आ जानेसे यह वृत्तान्त मैंने तुम्हसे कहा अत्र फिर प्रकृत बात कहता हूँ सो सावधान होकर श्रवण कर ॥६०॥

तदनन्तर मुनीव, लक्ष्मणकी आगे कर शीघ्र ही रामके समीप आया और नमस्कार कर खड़ा हो गया ॥६१॥ तत्पश्चात् उसने पराङ्मने गर्वसे सदा स्पष्ट चेष्टाओंके करनेवाले एव उष कुलाम उत्पन्न ममस्त किराँकी बुलाकर जिन महाभोगी किङ्करोने यह वृत्तान्त नहीं सुना था उन्हें रामका अद्भुत कार्य बतला कर आश्चर्यसे चकित किया ॥६१-६२॥ तथा जो इस वृत्तान्तको जानते थे प्रभुका कार्य करनेमें तत्पर रहनेवाले उन किङ्करीका वचन द्वारा सन्मान करते हुए उनमें रामका प्रयुषकार करनेके लिए यह कहा ॥६३॥ कि हे उत्तम विभ्रमोंको धारण करनेवाले श्रीसम्पन्न समस्त पुरुषो ! तुम लोग शीघ्र ही सीताका पता चलाओ कि वह कहाँ है ? ॥६४॥ तुम लोग नाना प्रकारकी विद्याओं और पराङ्मसे युक्त हो अत्र इस समस्त भूतलमें, पातालमें, आकाशमें, जलमें, धलमें, जम्बूद्वीपमें, समुद्रमें, घातकीरण्ड द्वीपमें, कुलाचलाके

१ 'सत्यया यदि मे जन्म नास्ति एव स्फुटकारणम्' म० । २ प्राङ्गने म० । ३ महामाहाइतात्मिकान् म० ।  
 ४. श्रीमद्भुमना (?) म० ।

शोषामिव ततो मूर्ध्नि ते कृत्वाऽऽ प्रमोदिनः । उत्पत्य दिक्षु सर्वासु द्रुते जम्बुरहंयवः ॥६६॥  
 युवविधाभृता लेख नायथावा यथाविधि । ज्ञातानि-शेषवृत्तान्तो वैदेहोऽप्युपपादितः ॥७०॥  
 ततोऽर्षी स्वस्तुदुःखेन निताप्तोद्विग्नमानसः । सुग्रीव इव रामस्य नितरां निभृतोऽभवत् ॥७१॥  
 स्वयमेव च सुग्रीवः पर्यटन् भानुवर्मना । तारानिकरचक्रेण सम्प्रवृत्तो गवेषणे ॥७२॥  
 दुष्टविद्यायारानेऽपुरान्वेषणतत्परः । ध्वज दूरात् समालोक्य सर्मारणविकम्पितम् ॥७३॥  
 जम्बूद्वीपमहोद्वयं शिखरेणोपलक्षितम् । नभस्तल पर प्राप बलदंशुकपल्लवः<sup>१</sup> ॥७४॥  
 वियतोऽवतरद् बीष्य विमान भानुभासुरम् । उत्पाताशङ्कितो जातो रत्नवेशी समाकुलः ॥७५॥  
 आसादनुसमालोक्य तदसावतिविह्वलः । वैरतेयात् परिग्रस्तः सञ्चुकोच यथोरागः ॥७६॥  
 आमन्न च परिज्ञाय ध्वजेन कपिलधमणम् । रत्नकेशी गतश्चिन्तामिति ह्युभययाकुलः ॥७७॥  
 लङ्काधिपतिना नून क्रुद्धेन जनितागसा । प्रेषितो मद्विनाशाय सुग्रीवोऽयमुपागतः ॥७८॥  
 किं न प्रतिभये शीघ्र मृतो रत्नाव्राम्भसि । हा विगतान्तरे द्वापे मरणं समुपागतम्<sup>२</sup> ॥७९॥  
 मनोरथ पुरस्कृत्य विद्यावीर्यविवर्जितः । जीवितैस्सृष्ट्याविष्टः प्रापयिष्यामि किन्त्वहम् ॥८०॥  
 इति चिन्तयतस्तस्य सप्रप्तो वानरध्वजः । द्योतयन् सहसा द्वीप द्वितीयं इव भास्करः ॥८१॥  
 तत्र धूमरसर्वाङ्गमालोक्य धनपांशुभिः । वानराङ्गध्वजोऽपृच्छदनुकम्पासमुद्वहन् ॥८२॥

निज्जाले, वनके अन्त भागोमें, सुमेरु पर्वतांमें, विद्याधरोके चित्र-विचित्र मनोहर नगरोंमें, समस्त दिशाओंमें और भूमिके विचरो अर्थात् कन्दराओंमें सीताका पता चलाओ ॥६६-६८॥

तदनन्तर हर्षसे भरे अहंकारी वानर शोषाक्षतकी तरह सुग्रीवकी आज्ञाको शिरपर धारणकर शीघ्र ही उड़कर समस्त दिशाओंमें चले गये ॥६६॥ एक तरफ विद्याधरके द्वारा विधि-पूर्वक पत्र भेजकर भामण्डलके लिए भी समस्त वृत्तान्तसे अवगत कराया गया ॥६७॥ तदनन्तर वहनिके दुःखसे भामण्डल अत्यन्त दुःखी हुआ और सुग्रीवके समान रामका अतिशय आज्ञाकारी हुआ ॥६९॥ सुग्रीव, स्वयं भी सीताकी खोज करनेके लिए ताराओंके समूहके साथ आकाशमार्गसे चला ॥७२॥ वह दुष्ट विद्याधरोंके अनेक नगरोंके बीच सीताकी खोज करनेमें तत्पर हुआ भ्रमण कर रहा था । तदनन्तर हवासे हिलती हुई ध्वजाको दूरसे देखकर वह जम्बूद्वीपके एक पर्वतके शिखरसे उपलक्षित आकाशमें पहुँचा । उस समय उसके वररका अञ्चल हवासे हिल रहा था ॥७३-७४॥ उस पर्वत पर रत्नकेशी विद्याधर रहता था, सो वह आकाशसे उतरते हुए सूर्यके समान देदीप्यमान सुग्रीवके विमानको देखकर उत्पातकी आशङ्कासे युक्त हो गया ॥७५॥ विमान को देखकर वह अत्यन्त विह्वल हो गया और जिस प्रकार गरुडसे भयभीत हो सर्प संतुचित होकर रह जाता है उसी प्रकार रत्नकेशी भी उस विमानसे भयभीत हो संतुचित होकर रह गया ॥७६॥ जब सुग्रीव विलज्जल निकट आ गया तब उसे उसकी ध्वजासे वानरवंशी जानकर रत्नकेशी मृत्युके भयसे व्याकुल होता हुआ इस प्रकारकी चिन्ताको प्राप्त हुआ ॥७७॥ जान पड़ता है कि मैंने लङ्काधिपति-रावणका अपराध किया था अतः कृपित होकर उसके द्वारा मुझे नष्ट करनेके लिए भेजा हुआ यह सुग्रीव आया है ॥७८॥ हाय मैं भय उत्पन्न करनेवाले लरण समुद्रमें गिर कर शीघ्र ही क्यों नहीं मर गया । मुझे धिक्कार है जिसे इस अन्य द्वीपमें मरण प्राप्त हुआ है—मरनेका अवसर प्राप्त हो रहा है ॥७९॥ मैं विद्याधरसे रहित होकर भी इच्छाओं को आगे कर जीवित रहनेकी इच्छासे युक्त हूँ सो देव् अथ क्या प्राप्त करता हूँ ? ॥८०॥ इस प्रकार रत्नकेशी विचार कर ही रहा था कि इतनेमें द्वितीय सूर्यके समान द्वीपको प्रकाशित हुआ सुग्रीव वहाँ शीघ्र ही जा पहुँचा ॥८१॥ वनकी धूलिसे जिसका समस्त शरीर धूसर हो रहा था

१. अक्षरानुना । २. जम्बूद्वीपमहोद्वयस्य म० । जम्बूद्वीपमहोद्वयस्य म० । ३ पल्लवम् म० । ४. मनुयगम् म० । ५. बीमिः सृष्ट्या म० । ६. दनुवन् म० ।

स त्वं रत्नजटी पूर्वमासीद् विद्यासमुन्नतः । अवस्थामोदशीं कस्मादधुना भद्रं मङ्गतः ॥८३॥  
 इत्युक्तोऽप्यनुकम्पेन सुग्रीवेण सुवाक्यम् । सर्वान् कम्पयन् भीत्या दीनो रत्नजटी भृशम् ॥८४॥  
 मा मैत्रीर्भद्रं मा मैत्रीरित्युक्तश्च पुनः पुनः । जगौ वृत्तानतिर्धर्ममतिः प्रकृतितापसम् ॥८५॥  
 प्रतिपत्तां भवन् साधो रात्रणेन दुरामना । सीताहरणसम्भेन द्विजविद्योऽहमीदृशः ॥८६॥  
 जीवितारां समालम्ब्य कथञ्चिद्वैवयोगतः । ध्वजमेतं समुत्सृज्य स्थितोऽग्निं कविपुङ्गव ॥८७॥  
 उपलब्धप्रवृत्तिश्च तोषोद्देगं वहन् द्रुतम् । गृहीत्वा रत्नजटिनं सुग्रीवः स्वपुरं ययौ ॥८८॥  
 समर्चं लक्ष्मणस्याथ महतां च स्वगामिनाम् । जगौ रत्नजटी पद्म विनयो विद्विताऽजलिः ॥८९॥  
 देव देवीं नृशंसेन सर्ता सीता दुरामना । इता लङ्कापुरीन्द्रेण विद्या च मम कोपिन ॥९०॥  
 पुत्रान्तो सा महाकन्दं ध्वनिना चित्तहारिणा । सृगीव व्याकुलीभूता नीता तेन बलीयमा ॥९१॥  
 येनासीत् समरे भीमे निचिय सुमहाबलः । इन्द्रो विद्याभृतान्मोशो यन्दिग्रहमुपाहृतः ॥९२॥  
 स्वामी भरतखण्डानां यत्प्रयाणां निरङ्कुलः । कैलामोद्धरणे येन विशालं सङ्गतं यशः ॥९३॥  
 सागरान्तां महो यस्य दासीवाजां प्रतीच्छति । सुरानुरैर्न यो जेतुं संहतैरपि शक्यते ॥९४॥  
 श्रेष्ठेन विदुषां तेन धर्माधर्मविवेकिना । कर्मैर्द निमित्तं क्रूरं मोहो जयति पापिनाम् ॥९५॥  
 तच्छ्रुत्वा विविध विभ्रदसं काकुत्स्थनन्दनः । अहस्पृशं ददौ सर्वं साद्र रत्नकेशिने ॥९६॥  
 देवोपगीतमज्ञे च पुरे गौत्रजमागतम् । अन्वजानादर्धारात्वं विच्छिन्नमग्निभिश्चिरम् ॥९७॥

ऐसे उस रत्नजटीको देखकर दया धारण करते हुए सुग्रीवने पूछा ॥८३॥ कि नू रत्नजटी तो पहले विद्याभासे समुन्नत था । हे भद्र ! अब ऐसी दशाको किस कारण प्राप्त हुआ है ? ॥८३॥ इस प्रकार दयाके धारक सुग्रीवने उससे सुरसमाचार पूछा तो भी भयके कारण उसका समस्त शरीर काँप रहा था तथा वह अत्यन्त दीन जान पड़ता था ॥८४॥ तदनन्तर सुग्रीवने जब उससे चार-चार कहा कि हे भद्र ! भयभीत मत हो, भयभीत मत हो तब वहीं धैर्यधारण कर उसने नमस्कार किया और स्पष्ट अश्रुओंमें कहा कि हे सत्पुरुष ! दुष्ट रावण सीताके हरनेमें तत्पर था उस समय मैंने उसका विरोध किया जिससे उसने मेरी विद्याएँ छीनकर मुझे ऐसा कर दिया ॥८५-८६॥ हे कवि श्रेष्ठ ! देवयोगसे जीवित रहनेकी आशासे मैं यहाँ इस ध्वजाको ऊपर उठाकर किसी तरह स्थित हूँ—रह रहा हूँ ॥८७॥ तदनन्तर समाचार प्राप्त हो जानेसे जो हर्षजन्य उद्वेगको धारण कर रहा था ऐसा सुग्रीव शीघ्र ही रत्नजटीको लेकर अपने नगरकी ओर गया ॥८८॥

अथानन्तर विनयसे भरे रत्नजटीने हाथ जोड़कर लक्ष्मण तथा अन्य बड़े बड़े विद्याधरोके सामने रामसे कहा कि हे देव ! अतिशय दुष्ट, लङ्कापुरीके राजा क्रूर रावणने पतिव्रता सीतादेवीको तथा क्रोध करनेवाले मुझ रत्नजटीकी विद्याको हरा है ॥८६-८७॥ जो चित्तनो हरण करनेवाली ध्वनिसे महारुदन करती हुई सृगीके समान व्याकुल हो रही थी ऐसी सीताको वह बलवान् हर कर ले गया है ॥९१॥ जिसने भयङ्कर संप्राममं अत्यन्त बलवान्, विद्याधरोके अधिपति इन्द्रको जीतकर कारागारमें टाला था ॥९२॥ जो भरतक्षेत्रके तीन खण्डोंका अद्वितीय स्वामी है, जिसने कैलाम पर्यंतके उठानेमें विशाल यश प्राप्त किया है, समुद्रान्त पृथ्वी दासीके समान जिसकी आज्ञानी प्रतीचा करती है, सुर तथा असुर मिलकर भी जिसे जीतनेके लिए समर्थ नहीं हैं, जो विद्वानोंमें श्रेष्ठ है तथा धर्म—अधर्मके विवेकसे युक्त है, उसी रावणने यह क्रूर कार्य किया है सो कहना पड़ता है कि पापी जीवोंका मोह बड़ा प्रबल है ॥९३-९४॥ यह सुनकर नाना प्रकारके स्नेहको धारण करते हुए रामने आदरके साथ रत्नजटीके लिए अपने शरीरका स्पर्श दिया अर्थात् उसका आलिङ्गन किया ॥९६॥ और देवोपगीत नामक नगरका स्वामित्व रत्नजटीके वंशपरम्परासे चला आता था पर धोचमं शत्रुओंने छीन लिया था सो उसे उसका स्वामित्व प्रदान किया—

पुन पुनरपृच्छच्च वार्तामालिग्य त नृप । पुन पुनर्जगादासी प्रमोदव्याकुलाक्षर ॥६८॥  
 तत समुसुक पद्म पर्यपृच्छदतिद्रुतम् । लङ्कापुरा क्रियद्दूरे विवेदयत मेवरा ॥६९॥  
 ह्युक्तास्ते गता मोह निश्चलाभूतप्रिप्रदा । अवाद्सुप्रा गतस्त्राया बभूवुर्वाग्विवजिता ॥१००॥  
 अभिप्राय ततो ज्ञात्वा विशार्णहृदयास्तके । अवजामन्दया दृष्ट्या राघवेन तिलोकिता ॥१०१॥  
 अथ भातिपरिरस्ता ज्ञाता स्म इति लजिता । ऊर्ध्वीर मन कृत्रा करकुड्मलमस्तजा ॥१०२॥  
 यदीय देव नामापि कथञ्चि समुदारितम् । ज्वरमानयति त्रासाद्वाहामस्त्वपुर कथम् ॥१०३॥  
 क्व वथ ध्रुदसामर्थ्या क्व च लङ्कामहेश्वर । व्यजानुबन्धमेतस्मिन् ज्ञाते सम्प्रति वस्तुनि ॥१०४॥  
 अथावरयमिद वस्तु श्रोतव्य ध्रुवता प्रभो । कोऽत्र दोष भयञ्च ते किञ्चिद्वक्तु हि शक्यते ॥१०५॥  
 अत्रयत्र लक्षणाभ्योर्धौ क्रूरप्राहसमाकुले । प्रत्यातो राक्षसद्वीप प्रभूताद्भुतसङ्कुल ॥१०६॥  
 शतानि सप्त विस्तार्गो योजनाना समन्तत । परिच्छेपेण तान्येव साधिकान्येकविंशति ॥१०७॥  
 मध्ये मन्दरतुल्योऽस्य त्रिकूटो नाम पर्वत । योजनानि नौतुङ्गपत्राशद्विपुलखत ॥१०८॥  
 हेमनानामणिसफीत शिलाजालावर्लीचिंत । आसीत्तोयदेवाहस्य दत्तो नाथेन रक्षसाम् ॥१०९॥  
 तस्य कूर्व्यदुमैश्चित्रै शिखरे वृत्तभूषणे । लङ्केति नगरी भाति मणिरत्नमरीचिभि ॥११०॥  
 विमानसदृश रम्यै प्रासादै स्वर्गसन्निभै । मनोहरै प्रदृशैश्च क्राडनादिक्रियोचिर्तै ॥१११॥  
 त्रिंशद् योजनमानेन परिच्छिन्ना समन्तत । महाप्राकारपरिखा द्वितीयेर्व वसुन्धरा ॥११२॥

वहाँका राजा बनाया ॥६७॥ राम, बार बार आलिङ्गन कर उससे यह समाचार पूछते थे और वह हर्ष से स्तब्ध होते हुए अक्षरोंमें बार-बार उक्त समाचार सुनाता था ॥६८॥

तदनन्तर अत्यन्त उत्सुकतासे भरे रामने शीघ्र ही पूछा कि हे विद्याधरो ! बतलाओ कि लका कितनी दूर है ? ॥६९॥ इस प्रकार रामके कहने पर सब विद्याधर मोहको प्राप्त हो गये उनके शरीर निश्चल हो रहे तथा वे नम्रमुग्ध, कान्तिहीन और वचनोंसे रहित हो गये ॥१००॥ तदनन्तर जिनके हृदय भयसे विशीर्ण हो रहे थे ऐसे उन विद्याधरोंका अभिप्राय जानकर रामने उनकी ओर अवज्ञापूर्ण नृष्टिसे देखा ॥१०१॥ तत्पश्चात् 'हम श्रीराम की दृष्टिम भयभात जाने गये हैं' इस विचारसे जो लज्जित हो रहे थे ऐसे उन विद्याधरोंने हाथ जोड़ मस्तकसे लगा मनको धीर कर कहा कि ॥१०२॥ हे देव ! किसी तरह उच्चारण किया हुआ जिसका नाम ही भयसे डर उत्पन्न कर देता है उसके विषयमें हम आपके सामने क्या कहें ? ॥१०३॥ छुद्र शक्तिके धारक हम लोग कहाँ और लकाका स्वामी रावण कहाँ ? अत इस समय आप इस जानी हुई वस्तुकी हठ छोड़िए ॥१०४॥ अथवा हे प्रभो ! यह सुनना आवश्यक ही है तो सुनिए कहनेमें क्या दोष है ? आपके समक्ष तो कुछ कहा जा सकता है ॥१०५॥ छुद्र मगरमच्छासे भरे हुए इस लवणसमुद्रम अनेक आश्चर्यकारी स्थानोंसे युक्त प्रसिद्ध राक्षसद्वीप है ॥१०६॥ जो सत्र ओरसे सात योजन विस्तृत है तथा कुछ अधिक इक्कीस योजन उसकी परिधि है ॥१०७॥ उसके बीचमें सुमेरु पर्वतके समान त्रिमूट नामका पर्वत है जो नी योजन ऊँचा और पचास योजन चौड़ा है ॥१०८॥ सुवर्ण तथा नाना प्रकारके मणियासे देदीप्यमान एव शिलाओंके समूहसे व्याप्त है । राक्षसाके इन्द्र नीमने मेघवाहनके लिए वह दिया था ॥१०९॥ तद पर उत्पन्न हुए नाना प्रकारके चित्र विचित्र वृत्तासे सुशोभित उस त्रिकूटाचलके शिखर पर लङ्का नामकी नगरी है जो मणि और रत्नोंकी किरणों तथा स्वर्गके विमानोंसे समान मनोहर महलों एवं मीड़ा आदिके योग्य सुन्दर प्रदेशोंसे अत्यन्त शोभायमान है ॥११०-१११॥ जो सत्र ओरसे

लङ्काया परिपारवेषु सन्धन्येऽपि मनोहरा । स्वभावावस्थिता रत्नमणिवाद्यनमूर्तम् ॥११३॥  
 प्रदेशा नगरोपेता रक्षसा क्रीडभूमय । अधिष्ठिता मद्राभोगेस्ते च सर्वे नभश्चरै ॥११४॥  
 सन्ध्याकार सुवेलश्च काञ्चनो ह्लादनस्तथा । योधनो हसनामा च हरिसागरनिस्वन ॥११५॥  
 अर्द्धस्वर्गोदयश्चान्ये द्वापा सर्वद्विभोगदा । प्रदेशा द्व्व नाकस्य काननादिभिभूषिता ॥११६॥  
 सुहृद्भिर्भ्रातृभि पुत्रै कलत्रैर्बान्धवै सह । रमते येषु लङ्केशो भूयवर्गसमावृत ॥११७॥  
 त क्रीडन्त जनो दृष्ट्वा महाविद्या रराधिपम् । देवाधिपोऽपि मन्येऽह समाशङ्का प्रपद्यते ॥११८॥ ५  
 भ्राता विभीषणो यस्य बली लोकसमु कट । परैरपि परैराजावज्जयो राजपुङ्गव ॥११९॥  
 त्रिदशस्त समो बुद्ध्या नास्ति नास्येव मानुष । तेनेकेनैव पर्याप्त रावणस्य जगत्प्रभो ॥१२०॥  
 अपरोऽप्यनुजस्तस्य विद्यते गुणभूषण । भासुकर्ण इति ख्यातस्त्रिशूलपरमायुष ॥१२१॥  
 भ्रुकुटि कुटिला पश्य भीष्मा कालकुटीमिव । न शक्नुवन्ति सप्रामे सुरा अप्यबलोकितुम् ॥१२२॥  
 महेन्द्रजितसज्जश्च चित्तो ल्यातिसुपागत । तस्यैव तनयो यस्य जगदाभासते करे ॥१२३॥  
 एवमाद्या सुयहव प्रणतास्तस्य किङ्करा । नानाविद्याद्भुतोपेता प्रतापप्रणतारय ॥१२४॥  
 यस्यातपत्रमालोक्य पूर्णचन्द्रसमप्रभम् । त्यजन्ति रिपवो दर्प समरे चिरपोषितम् ॥१२५॥  
 अमुष्य पुस्तकर्मापि<sup>३</sup> चित्र वा महमेक्षितम् । नाम चोच्चारित शक्तमराणा त्रासकर्मणि ॥१२६॥  
 एवविधममु बुद्धे क शक्तो जेतुमुद्धत । कथा चैवा न कर्तव्या चिन्मयतामपरा गति ॥१२७॥

तीस योजन चौडी हैं तथा बहुत बड़े प्राकार और परित्रासे युक्त होनेके कारण दूसरी पृथिवीके समान जान पडती है ॥११३॥ लङ्काके समीपमे और भी ऐसे स्वाभाविक प्रदेश हैं जो रत्नमणि तथा स्वर्णसे निर्मित हैं ॥११३॥ वे सब प्रदेश उत्तमोत्तम नगरोसे युक्त हैं, राक्षसांकी क्रीडा भूमि हैं तथा महाभोगोसे युक्त विद्याधरोसे सहित हैं ॥११४॥ सध्याकार, सुवेल, काञ्चन, ह्लादन, योधन, हस, हरिसागर और अर्द्ध स्वर्ग आदि अन्य द्वीप भी वहाँ विद्यमान हैं जो समस्त ऋद्धिया तथा भोगाङ्को देनेवाले हैं, वन उपवन आदिसे विभूषित हैं तथा स्वर्ग प्रदेशोंके समान जान पडते हैं ॥११५-११६॥ लङ्काधिपति रावण भूयवर्गसे आवृत हो मित्रो, भाइयो, पुत्रो, स्त्रियो तथा अन्य इष्टजनोंके साथ उन प्रदेशोंमे क्रीडा किया करता है ॥११७॥ क्रीडा करते हुए उस विद्याधरोके अधिपतिको देखकर मैं समझता हूँ कि इन्द्र भी आशङ्काको प्राप्त हो जाता है ॥११८॥ जिसका भाई विभीषण लोकमे अत्यधिक बलवान् है, युद्धमें बड़े बड़े लोगोंके द्वार भी अजेय है और राजाओंमे श्रेष्ठ है ॥११९॥ सुद्धि द्वारा उसकी समानता करनेपर, देव भी नहीं है फिर मनुष्य तो निश्चित ही नहीं है । जगत्प्रभु रावणको उसी एक भाईका ससर्ग प्राप्त होना पर्याप्त है ॥१२०॥ उसका गुणरूपी आभूषणोंसे सहित एक छोटा भाई भी है जो कुम्भकर्ण इस नामसे प्रसिद्ध है तथा त्रिशूल नामक महाशस्त्रसे सहित है ॥१२१॥ युद्धमें यमराजकी छुटीके समान जिसकी भयंकर कुटिल भ्रुकुटीको देव भी देखनेके लिए समर्थ नहीं हैं फिर मनुष्योंकी तो बात ही क्या है ? ॥१२२॥ युद्धमें ख्यातिको प्राप्त होनेवाला इन्द्रजित, उसीका पुत्र है ऐसा पुत्र कि जिसके हाथमें सारा ससार जान पडता है ॥१२३॥ इन सबको आदि लेकर रावणके ऐसे अनेक किङ्कर हैं जो नाना प्रकारकी विद्याओंके आश्चर्यसे सहित हैं तथा प्रतापसे जिन्होंने शत्रुओंको नष्टीभूत बना दिया है ॥१२४॥ पूर्ण चन्द्रके समान आभावाले जिसके छत्रको देखकर शत्रु युद्धमे अपना चिरसंचित अहंकार छोड देते हैं ॥१२५॥ सहसा दृष्टिमे आया इसका पुतला, अथवा चित्र अथवा उच्चारण किया हुआ नाम भी शत्रुओंको भय उत्पन्न करनेमे समर्थ है ॥१२६॥ इस प्रकारके इस रावणको युद्धमें जीतनेके लिए कौन बलवान्

१ मन्वन्त्यमरापते र० । २ आञ्जी = सप्रामे, अत्रत्य इतिच्छेद । ३ कर्माणि म० ।

ततोऽनादरतस्तेषामेकैक वाच्य लक्ष्मणः । अभागीदूर्जित वाच्यं घनाघनघनस्वनः ॥१२८॥  
 सप्य यदीदृशः ख्यातः शक्तिमान् दशवक्त्रकः । तत् किमश्रान्वयनाम स्वमसी स्त्रीतस्करो भवेत् ॥१२९॥  
 दाग्निभक्त्यातिभोतस्य मोहिनः पापकर्मणः । रक्षोऽधमस्य तस्यास्ति कुत स्वल्पापि श्रुता ॥१३०॥  
 अत्रवीत्पद्मनाभश्च किमुक्तेनेह भूरिणा । वार्तागमोऽपि दुःप्रापो दिष्टवा लब्धो मया स च ॥१३१॥  
 चिन्त्यमस्यपर नातः क्षोभयतां राक्षसाधमः । जायतामुचितं भावि फल कर्मानिलेरितम् ॥१३२॥  
 अधेनमूर्चिरे वृद्धा' क्षण स्थिवेव सादराः । शोक जर्हाहि पद्माभ भवास्माकमधीश्वरः ॥१३३॥  
 विद्याधरकुमारीणा गुणैरप्सरसामिव । भव भर्ता भ्रमन् लोके वियुक्ताशोपदुःखधीः ॥१३४॥  
 पद्मोऽवदन्न मेऽन्याभिः प्रमदाभिः प्रयोजनम् । विजयन्ते महालीलो यदि शक्या अपि स्त्रिय' ॥१३५॥  
 प्रीतिश्चेन्मयि युष्माकमस्ति कापि नमश्चराः । अनुकम्पापि वा सीतां ततो दर्शयत द्रुतम् ॥१३६॥  
 जाम्बूनदस्ततोऽब्रुवन्नमो मूढग्रहस्त्वया । त्यज्यतां क्षुद्रवन्मा भूमंयूर इव दुःखितः ॥१३७॥  
 अस्ति वेणातटे मेही नाम्ना सर्वेश्वि' किल । सुतो विनयदत्तोऽस्य गुणपूर्णासमुद्भवः ॥१३८॥  
 विशालभूतिसञ्जश्च वयस्योऽस्यातिवज्रमः । तद्गार्थायां समासतो गृहलक्ष्म्यां दुरात्मकः ॥१३९॥  
 तस्या पृथ च वाश्येन विदुतिच्छन्नता वनम् । नीत्वा विनयदत्त स वनरोपरि शाखिनः ॥१४०॥  
 वध्वा च त ततो गेह क्रूरकर्मा हताशयः । विधाय चोत्तर विज्जिद्वतस्थे कृतार्थवत् ॥१४१॥

समर्थ है ? अर्थात् कोई नहीं । इसलिए यह कथा ही छोड़िये कोई दूसरा उपाय सोचिये ॥१२७॥  
 तदनन्तर अनादरसे उनमें प्रत्येककी ओर देतकर मेघके समान गम्भीर शब्दको धारण करनेवाले लक्ष्मणने इस प्रकार बलपूर्ण वचन कहे कि यदि रावण सचमुच ही ऐसा प्रसिद्ध बलवान् है तो जिसका नाम भी श्रवण करने योग्य नहीं रहता ऐसा खोका चोर क्यों होता ? ॥१२८-१२९॥ वह तो कपटी, भीरु, मोही, पापकर्मा नीच राक्षस है उसमें थोड़ी भी शूर वीरता क्यों है ? ॥१३०॥ रामने भी कहा कि इस विषयमें अधिक कहनेसे क्या ? जिस समाचारका मिलना भी दुष्कर था वह समाचार दैवकी अनुकूलतासे हमने प्राप्त कर लिया है ॥१३१॥ इसलिए अब दूसरी बात सोचनेकी आवश्यकता नहीं है, अब तो उस नीच राक्षसको सोभित किया जाय । कर्मरूपी वायुसे प्रेरित हुआ उचित ही फल होगा ॥१३२॥

अथानन्तर क्षण भर ठहर कर वृद्ध लोगोंने आदर पूर्वक कहा कि पद्माभ ! शोक छोड़ो, हमारे स्वामी होओ, गुणोंसे अप्सराओंकी समानता करनेवाली विद्याधर कुमारियोंके भर्ता होओ तथा सत्र दुःख छोड़कर आनन्दसे लोकमें भ्रमण करो ॥१३३-१३४॥ रामने उत्तर दिया कि मुझे अन्य स्त्रियोंसे प्रयोजन नहीं है भले ही वे स्त्रियाँ इन्द्राणीकी महालीलाको जीतती हों ॥१३५॥ हे विद्याधरो ! यदि आप लोगोंकी मुझ पर कुछ भी प्रीति अथवा दया है तो शीघ्र ही सीताको दिखाओ ॥१३६॥ तदनन्तर जाम्बूनदने कहा कि हे प्रभो ! इस मूर्ख हठको छोड़ो जिस प्रकार कृत्रिम मयूरके विषयमें सुदृशनामा मनुष्य दुःखी हुआ था उस तरह तुम दुःखी मत होओ ॥१३७॥ मैं यह कथा कहता हूँ सो सुनो—

वेणातट नामक नगरमें सर्वर्षिच नामका एक गृहस्थ रहता था । उसके गुणपूर्णा नामक स्त्रीसे उत्पन्न विनयदत्त नामका पुत्र था ॥१३८॥ विनयदत्तका एक विशालभूति नामक अत्यन्त प्यारा मित्र था सो वह पापी, विनयदत्तकी स्त्री गृहलक्ष्मीमें आसक्त हो गया ॥१३९॥ एक दिन उसी स्त्रीके कहनेसे विशालभूति विनयदत्तको भ्रमण करनेके दृष्टसे वनमें ले गया और उसे वृक्षके ऊपर बाँध आया ॥१४०॥ दुष्ट अभिप्रायको धारण करनेवाला क्रूरकर्मा विशाल भूति



अत्रान्तरे तमुद्देश दिग्मूढः प्रच्युतः पथः । आजगाम भ्रमन् विन्नः क्षुद्रोऽपरयत्नं तं तरुम् ॥१४२॥  
घनच्छायाकृतश्रद्धस्तस्याधश्च जगाम स्वः । वृणितं वाशुगोन्मन्दमुग्धुनाश्च व्यलोकयन् ॥१४३॥  
यावत्पर्यतं तं बद्धं निविद्धं ददरज्जुभिः । अत्यन्तनुज्ञशापायो निचेष्टीकृतविग्रहम् ॥१४४॥  
आरुह्य तेन मुक्तः सोऽनुकम्पासक्तचेतसा । गतो विनयदत्तस्तु स्व तेनैव समाश्रयम् ॥१४५॥  
स्वजनस्यो सधे जातो महानन्दसमुक्त्वा । विशालभूतिरालोक्य तच्च दूरापलायितः ॥१४६॥  
क्षुद्रस्याथ शिम्बी जातु शिखिप्रममयोऽन्यथा । रमणो वाचयथा गीतः सन्प्राप्तो राजमनुना ॥१४७॥  
तन्निमित्तं महाशोकः क्षुद्रो मित्रमभाषत । मां चेद्विच्छसि जीवन्तं यच्छ तन्मे मयूरकम् ॥१४८॥  
यद्वस्तथाविधो वृद्धे मया त्वं परिमोक्षितः । अत्योपकारमुत्पत्य प्रतिदानं प्रयच्छ मे ॥१४९॥  
ततो विनयदत्तमुवाचान्यमयूरकम् । गृहाण मणिरत्नं वा कुतस्तत्तद् ददाम्यहम् ॥१५०॥  
सोऽबोचहीयतां मद्यं स एवेति पुनः पुनः । मूढस्तथाविधो जातो भवानपि नरोत्तमः ॥१५१॥  
राजपुत्रकरं प्राप्तः कृत्रिमासीं मयूरिका । कथं लभ्या वधो यस्माल्लभ्यते यत्र तत्परैः ॥१५२॥  
त्रिवर्णभोजनेप्राणां कन्यानां कनकत्वियाम् । पीवरस्तनकुम्भानां विशालजघनश्रियाम् ॥१५३॥  
वस्त्रकान्तिजितेन्दुनां पूर्णानां चारुभिर्गुणैः । पतिर्भयं महाभोगं प्रसीद रघुनन्दन ॥१५४॥

पर आकर कृतकृत्यकी तरह आनन्दसे रहने लगा तथा पृथ्वी पर विनयदत्तके विषयमें कुछ इधर-उधरका उत्तर देकर चुप हो जाता ॥१४१॥ इसी बीचमें क्षुद्र नामका एक मनुष्य दिशा भूलकर मार्गसे च्युत हो भ्रमण करता हुआ खेदपिन्न हो वहाँसे निकला और उसने उस वृत्तकी देखा ॥१४२॥ वृक्षकी सघन छाया देखकर विश्राम करनेकी इच्छासे वह वृक्षके नीचे गया । वहाँ उसने विनयदत्तके कराहनेका मन्द-मन्द शब्द सुन उपरको मुख उठाकर देखा ॥१४३॥ तो उसे अत्यन्त ऊँची शाखाके अग्रभाग पर मजबूत रस्सियोंसे बँधा हुआ निश्चेष्ट शरीरका धारक विनयदत्त देखा ॥१४४॥ जिसका चित्त वयाम आसक्त था ऐसे क्षुद्र नामक पुरुषने उपर चढ़कर उसे वन्धन मुक्त किया । तदनन्तर विनयदत्त नीचे उतर उस क्षुद्रकी साथ ले अपने घर चला गया ॥१४५॥ विनयदत्तके लानेसे उसके घरमें महान् आनन्दसे युक्त उत्सव हुआ और विशाल-भूति उसे देख दूर भाग गया ॥१४६॥ क्षुद्र, विनयदत्तके घर रहने लगा उसके पास मयूरपत्रका बना हुआ एक मयूरका रिलीना था सो वह रिलीना एक दिन हवाम उड़ गया और राजाके पुत्रको मिल गया ॥१४७॥ उस कृत्रिम मयूरके निमित्त बहुत भारी शोक करता हुआ क्षुद्र, अपने मित्रसे बोला कि हे मित्र ! यदि मुझे जीवित चाहते हो तो मेरा वह कृत्रिम मयूर मुझे देओ ॥१४८॥ मैंने तुम्हें उस तरह वृत्त पर बँधा हुआ छोड़ा था सो इस मुख्य उपकारका बदला मेरे लिए देओ ॥१४९॥ तब विनयदत्तने उससे कहा कि तुम उसके बदले दूसरा मयूर ले लो अथवा मणि या रत्न ले लो तुम्हारा वह मयूर कहाँसे दूँ ॥१५०॥ इसके उत्तरमें वह बार-बार यही कहता था कि नहीं, मेरे लिए तो वही मयूर देओ । सो क्षुद्र तो मूर्ख होकर उस प्रकार हठ करता था पर आप तो नरोत्तम होकर भी ऐसी हठ कर रहे हैं ॥१५१॥ आप ही कहो कि राजपुत्रके हाथमें पहुँची कृत्रिम मयूरी कैसे प्राप्त हो सकती थी । राजपुत्रसे तो केवल मॉगनेवालोंको गृह्य ही मिल सकती थी ॥१५२॥ इसलिए हे रघुनन्दन ! सीताकी इच्छा छोड़ो और जितके नेत्र सफेद काले तथा लाल रङ्गके हैं, जिनकी कान्ति सुरर्णके समान है, जिनके स्तनकलश अत्यन्त स्थूल हैं, जिनके जघनकी शोभा विशाल है, जिन्होंने मुखकी कान्तिसे चन्द्रमाकी जीत लिया है तथा जो अनेक सुन्दर गुणोंसे युक्त हैं ऐसी कन्याओंके पति होकर महाभोग भोगो, प्रसन्न होओ ॥१५३-१५४॥

अनुबन्धमिदं हास्यं त्यज दुःखविवर्धनम् । मयूरशण्णशोकार्तो माभूः क्षुद्रकवद् बुध ॥१५५॥  
 सर्वदा सुलभाः पुंसः शिखिशिष्योपमाः स्त्रियः । ब्रवीमि राघव त्वाह प्राज्ञैः शोको न धार्यते ॥१५६॥  
 ततो लक्ष्मीधरोऽप्योचत्परमो वाक्यवर्त्मनि । जाम्बूनदेशे नेदमिदमेतादृशं शृणु ॥१५७॥  
 आसीद्गृहपतिः ख्यातः पुरे कुसुमनामनि । प्रभवाम्बुधः प्रिया तस्य यमुनेति प्रकीर्तिता ॥१५८॥  
 धनबन्धुगृहक्षेत्रपशुप्रभृतयः सुताः । पालान्तास्तस्य संवन्ते शब्दानामन्तमागताः ॥१५९॥  
 अन्वर्थतन्नाकास्ते च कुटुम्बार्थं सव्योयताः । कुर्वन्ति कर्मविश्रान्तिं चणमप्यनुपागताः ॥१६०॥  
 आत्मश्रेयोभिधानश्च सुतोऽस्यैवाखिलाधरः । पुण्योदयादसौ भोगान् भुक्ते देवकुमारवद ॥१६१॥  
 "भ्रातृभिः स पितृभ्यां च चिरं कटुभिरक्षरैः । निर्भलितोऽप्यदा यातो मानी बाह्यां परिभ्रमन् ॥१६२॥  
 सुकुमारशरीरोऽसौ निर्वेदं परम गतः । कर्म कर्तुमशक्ताः मा मरण स्वस्य वाञ्छति ॥१६३॥  
 पूर्वकर्मानुभावेन प्रेरितः कथिकश्च तम् । समागत्वाभणीदेवं श्रूयतामयि मानव ॥१६४॥  
 पृथुस्थाधिपस्याह सुभानुरिति नन्दनः । गोत्रिकाकान्तदेशः सन् कुर्वनैमित्तभापितम् ॥१६५॥  
 पर्यटन् वसुधामेता दैवात् कूर्मपुर गतः । आचार्येणाभियोग्येन सङ्गं प्राप्नोऽस्मि तत्र च ॥१६६॥  
 अयोमयामिदं तेन दत्तं मे बलयं शुभम् । मार्गदुःखाभिभूताय कारुण्याकारवेतसा ॥१६७॥  
 एतच्च सर्वरोगाणां शमनं बुद्धिवर्धनम् । ग्रहोरगपिशाचादिवशीकरणासुप्तम् ॥१६८॥

इस हास्यजनक दुःखवर्धक हठको छोड़ो और हे विद्वन् ! क्षुद्रके समान मयूर रूपी  
 वृणके शोकसे पीड़ित नहीं होओ ॥१५५॥ मयूररूपी वृणके समान स्त्रियों पुरुषको सदा सुलभ  
 हैं इसलिए हे राघव ! मैं आपसे कह रहा हूँ । बुद्धिमान् मनुष्य कभी शोक धारण नहीं  
 करते ॥१५६॥

तदनन्तर वचनोंके मार्गमें अतिशय निपुण लक्ष्मणने कहा जि हे जाम्बूनद ! यह बात ऐसी  
 नहीं है किन्तु ऐसी है सो सुनो ॥१५७॥ कुसुमपुर नामक नगरमें एक प्रभव नामका प्रसिद्ध गृहस्थ  
 रहता था उसकी स्त्रीका नाम यमुना था ॥१५८॥ उन दोनोंके धनपाल, बन्धुपाल, गृहपाल,  
 क्षेत्रपाल और पशुपाल नामके पाँच पुत्र थे ॥१५९॥ ये सभी पुत्र सार्थक नाम वाले थे और  
 कुटुम्बके पालनके लिए सदा तत्पर रहते थे तथा चणभरके लिए भी अपने कार्यसे विश्राम नहीं  
 लेते थे ॥१६०॥ इन सबसे छोटा आत्मश्रेय नाम कुमार था सो वह पुण्योदयसे देवकुमारके  
 समान भोग भोगता था ॥१६१॥ कुल्ल करता नहीं था इसलिए भाई तथा माता पिता निरन्तर  
 कटुक अक्षरों द्वारा उसका तिरस्कार करते रहते थे । एक दिन वह मानी घरसे निकलकर नगरके  
 बाहर चला गया ॥१६२॥ अत्यन्त सुकुमार शरीरका धारक था इसलिए कुल्ल कर सकनेके लिए  
 समर्थ नहीं था अतः परम निर्वेदको प्राप्त हो आत्मघात करने की इच्छा करने लगा ॥१६३॥  
 उसी समय पूर्व कर्मादयसे प्रेरित हुआ एक पथिक उसके पास आकर बोला के हे मनुष्य ! सुन  
 ॥१६४॥ मैं पृथुस्थान नगरके राजाका पुत्र सुभानु हूँ निमित्तज्ञानीके आदेशका पालन करता  
 हुआ मैं अब तक अनेक देशोंमें भ्रमण करता हूँ ॥१६५॥ इस पृथ्वीपर भ्रमण करता हुआ मैं  
 दैवयोगसे कूर्मपुर नामा नगरमें पहुँचा वहाँ एक उत्तम आचार्यके साथ समागमको प्राप्त  
 हुआ ॥१६६॥ मैं मार्गके दुःखसे दुःखी था इसलिए दयालु चित्तके धारक उन आचार्यने मुझे  
 यह लोहेका कड़ा दिया था ॥१६७॥ यह कड़ा समस्त रोगोंको शान्त करनेवाला तथा बुद्धिको

१. शिखिशिष्योपमाः म० । २. त्रियः म० । ३. विश्रान्ति लक्ष्मण्यनु म० । ४. तिला धरा म० ।
५. मातृभिः । ६. कटुवैक्षरैः म० । ७. निमित्त व० ।

नैमिष्ठादिष्टकालस्य सम्प्राप्तश्च ममावधिः । आत्मीयमधुना राज्यं कर्तुं यामि निज पुरम् ॥१६६॥  
 राज्यस्थस्य प्रमादाश्च जायन्ते गणनोपिकृता । एतच्चक्षुद्रमासाद्य नियत नाशकारणम् ॥१७०॥  
 'गृहाणैतत्तत्तन्मुख्य यच्छामि वलय पुरम् । उपसर्गविनिर्मुक्तं यदि वाञ्छसि जीवितम् ॥१७१॥  
 लब्धस्य च पुनर्दानं संसन्ति सुमहाफलम् । यशश्च प्राप्यते लोके पूजयन्ति च सं जनाः ॥१७२॥  
 ततस्तमेवमित्युक्त्वा गृहीत्वाद्वादभायसम् । आत्मश्रेयो गतो धाम सुभानुश्च निज निजम् ॥१७३॥  
 यावत्पत्नी नरेन्द्रस्य दृष्टा श्वसनभोजिना । निश्चेष्टा दग्धुमानीता चित्तोद्देशे स पश्यति ॥१७४॥  
 कटकस्य प्रसादेन तस्य लोहमयस्य ताम् । जीवयित्वा पर प्रापदत्तो पूजां नरेन्द्रतः ॥१७५॥  
 महान्तस्तस्य सज्जाता भोगा परमसौख्यदा । सर्वबन्धुसमेतस्य पुण्यकर्मनुभावतः ॥१७६॥  
 उत्तरीयांशुकस्योक्तं निधानं वलय सरः । प्रविष्टो यावद्वादाय गोधेरोऽनश्यदुद्धतः ॥१७७॥  
 महातरोरधस्तावत् प्रविवेश विल महत् । शिलानिकरसन्द्यञ्च निर्हारं घोरनिस्वनम् ॥१७८॥  
 तेन गोधेरशब्देन किल नित्यप्रवृत्तिनः । बभूव स्थानमप्येतत्प्रलयाराकामानसम् ॥१७९॥  
 आत्मश्रेयस्ततो वृक्षमुन्मूल्य स शिलाघनम् । गोधेर नाशयित्वा त निधानं प्राप्य सांगदम् ॥१८०॥  
 आत्मश्रेयःसमः पद्म सीता वलयमूर्तिवन् । प्रमादवशं कौसीद्य शब्दस्तच्छब्दवद्विप्रोः ॥१८१॥  
 महानिधानवहलका गोधेरो दशवक्रक । जनास्त इव निर्मिता यूय भवत साम्प्रतम् ॥१८२॥

वदानेवाला है और ग्रह उरग पिशाच आदिका उत्तम वशीकरण है ॥१६८॥ निमित्तज्ञानीने मुझे भ्रमण करनेके लिए जो समय बताया था अब उसकी अवधि आ गई है इसलिए मैं अपना राज्य करनेके लिए अपने नगरको जाता हूँ ॥१६६॥ राज्य कार्यमें स्थिर रहनेवाले पुरुषके अगणित प्रमाद होते रहते हैं और किसी प्रमादको पाकर यह कडा निश्चित ही नाशका कारण बन सकता है ॥१७०॥ इसलिए यदि तू उपसर्ग रहित जीवन चाहता है तो इस उन्म कड़ेको ले ले मैं तुम्हें देता हूँ ॥१७१॥ अपने लिए प्राप्त हुई वस्तुका दूसरेके लिए दे देना महाफलकारक है, उससे यश प्राप्त होता है और लोग उसकी पूजा करते हैं ॥१७२॥ तदनन्तर उससे 'ऐसा ही हो' इस प्रकार कहकर तथा लोहेका कड़ा लेकर आत्मश्रेय अपने घर चला गया और सुभानु भी अपने नगर चला गया ॥१७३॥ इतनेमें ही राजाकी पत्नीको सोंपने डँस लिया था जिससे वह निश्चेष्ट हो गई थी तथा जलानेके लिए श्मशानमें लाई गई थी । आत्मश्रेयने उसे देखा ॥१७४॥ और देखते ही उस लोह निर्मित कड़ेके प्रसादसे उसे जिलाकर उसने राजासे बहुत सम्मान प्राप्त किया ॥१७५॥ अब पुण्य कर्मके प्रभावसे उसके लिए समस्त बन्धुओंके साथ साथ परम सुख देनेवाले यज्ञे चड़े भोग प्राप्त हो गये ॥१७६॥ एक बार उसने उस कड़ेको उत्तरीय बन्धके ऊपर रखकर जब तक सरोवरमें प्रवेश किया तब तक एक उद्दण्ड गुहेरा उसे लेकर चला गया ॥१७७॥ वह गुहेरा एक महावृक्षके नीचे बने हुए अपने बड़े विलमें घुस गया । उसका वह शिलाओंके समूह से आच्छादित, प्रवेश करनेके अयोग्य तथा भयंकर शब्दसे युक्त था ॥१७८॥ वह गुहेरा उस विलमें बैठकर निरन्तर शब्द करता रहता था जिससे उस विलको देख मनमें प्रलयकी आशंका होती थी ॥१७९॥ तदनन्तर आत्मश्रेयने शिलाओंसे सघन उस वृक्षके मूलको उखाड़कर तथा गुहेरको गारकर कड़ेके साथ साथ उसका सब राजाना ले लिया ॥१८०॥ सो राम तो आत्मश्रेयके समान हैं, सीता कड़ेके समान है, लाभकी इच्छा प्रमादके समान है, शत्रुका शब्द गुहेरेके शब्दके समान है, लंका महानिधानके समान है, रात्रण गुहेरेके समान है, इसलिए हे विद्याधरो ! तुम सब इस समय निर्भय होओ ॥१८१-१८२॥

१. गृहाण तत्तत्तन्मुख्य ज० । २. गृहीताद्वाद म० । ३. श्वसनभोजिना म० । नागेनेत्यर्थः ।

४. श्मशाने । ५. दूर्वतः म० ।

तच्छ ॥ समुपारयान जितजाम्बूनदोदितम् । बहवो विस्मयापन्ना बभूवुः स्मितकारिण ॥१८३॥  
जाम्बूनदादय सर्वे तत कृत्वा प्रधारणम् । इदमुचुः पुन पद्म शृणु राजन् समाहित ॥१८४॥  
अन-तवार्ययोगान्द्र सम्प्रणम्य पुरा मुदा । रावणेनात्मनो मृत्यु परिपृष्ट समादिशत् ॥१८५॥  
यो निर्वाणशिला पुण्यामनुलामचिता सुरैः । समुद्यता स ते मृत्यो कारणव गमिष्यति ॥१८६॥  
सर्वज्ञात्क निशम्यैतदचिन्तयदसाविदम् । भविता पुरप कोऽसौ ता यश्चालयितु क्षम ॥१८७॥  
नास्त्येव मरणे हेतुर्ममैत्युक्त भव यद् । वचोयुक्तिविचित्रा हि वितुषामर्धदेशने ॥१८८॥  
ततो लक्ष्मणाधरोऽवोचद्ब्रह्मामो न चिर हितम् । ईक्षामहे शिला सैद्धो भग्याना रोमहर्षणाम् ॥१८९॥  
रहस्यमेतत्सन्मन्य सुनिरिचय समन्तत । सर्वे ते गन्तुमुद्युक्ता प्रमादपरिवर्जिता ॥१९०॥  
जाम्बूनदो महाबुद्धि किष्किन्धाधिपतिस्तथा । विराधितोऽर्कमाली च नलनीलौ विचक्षणा ॥१९१॥  
सपुरस्कारमारोच्य विमाने रामलक्ष्मणो । सम्प्रयाता द्रुत द्योगिन राजौ तमसि गह्वरे ॥१९२॥  
अवतरे समापे च यत्र सा सुमनोहरा । शिला परमगम्भारा सुरासुरनमस्कृता ॥१९३॥  
उपसम्बुश्च ते सर्वे मस्तक-यस्तपाणय । आशारक्षानवस्थाप्य प्रयातान् सुसमाहितान् ॥१९४॥  
सुगन्धिभिर्महाभाच पूर्णेन्दुपरिमण्डलैः । अन्यैश्च कुसुमैश्चित्रैरचिता तैरसौ शिला ॥१९५॥  
सितचन्दनदिग्धामा कुकुमाशुक्धारिणा । धृतालङ्करणा भाति सा शचाव मनोरमा ॥१९६॥

इस प्रकार जाम्बूनदके कथनको खण्डित करनेवाला लक्ष्मणका उपारयान सुन बहुत लोग आश्चर्यको प्राप्त हो मन्द्हास्य करने लगे ॥१८३॥ तत्पश्चात् जाम्बूनद आदि सभी विद्याधर पर स्पर्शमे विचारकर रामसे यह कहने लगे कि हे राजन् ! एकाग्र चित्त होकर सुनिये ॥१८४॥ पहले एक बार रावणने हर्षपूर्वक अनन्तवीर्यनामा योगीन्द्रको नमस्कार कर उनसे अपनी मृत्युका कारण पूछा था सो उन योगीन्द्रने कहा था कि जो देवोंके द्वारा पूजित, अनुपम, पुण्यमयी निर्वाण शिला—कोटिशिलाको उठावेगा वही तेरी मृत्युका कारण होगा ॥१८५-१८६॥ सर्वज्ञके यह वचन सुन रावणने विचार किया कि ऐसा कौन पुरुष होगा जो उसे चलानेके लिए समर्थ होगा ॥ ८७॥ भगवान्के कहनेका तात्पर्य यह है कि मेरे मरणका कोई भा कारण नहीं है सो ठीक ही है क्याकि अर्थके प्रकट करनेमें विद्वानाकी वचन योजना विचित्र होती है ॥१८८॥

तदनन्तर लक्ष्मणने कहा कि हमलोग अभी चलते हैं विलम्ब करना हितकारी नहीं है, अन्यनीवाको आनन्द देने वाली सिद्धशिलाके अभी दर्शन करेगे ॥१८९॥ तत्पश्चात् सत्रलोग परस्परम मन्त्रणा कर तथा सत्र ओरसे निश्चय कर प्रमाद छोड़ लक्ष्मणके साथ जानेके लिए उद्यत हुए ॥१९०॥ महाबुद्धिमान् जाम्बूनद, किष्किन्धाका स्वामी—सुप्रोव, विराधित, अर्कमाली, अतिशय विद्वान् नल और नील, सन्मानके साथ राम और लक्ष्मणको विमान पर बैठ कर रात्रि के सपन अन्धकारम शीघ्र ही आकाशमार्गसे चले ॥१९१-१९२॥ और जहाँ वह अत्यन्त मनोहर परम गम्भार एव सुर असुराके द्वारा नमस्कृत सिद्धशिला पासमें थी वहाँ उतरे ॥१९३॥ तदनन्तर सावधान चित्त हो कर आगे गये हुए दिशारक्षका को नियुक्त कर वे सत्र हाथ जोड़ मस्तकसे लगा उस सिद्धशिलाने समाप गये ॥१९४॥ वहाँ जाकर उन्होंने अत्यन्त सुगन्धित तथा पूर्ण चन्द्रमाके निम्नने समान सुशोभित बड़े-बड़े कमला तथा नाना प्रकारके अय पुष्पांसे उस शिला का पूजा का ॥१९५॥ जिसके ऊपर सफेद चन्दनका लेप लगाया गया था, जो केशर रूप वस्त्रको धारण कर रहा था, तथा जो नाना अलंकारसे अलङ्कृत था ऐसी वह शिला उस समय इन्द्राग्निके

सस्यां सिद्धात्रमस्कृत्य शिरस्थंकरकुटुम्बला । भक्त्या प्रदक्षिणं चक्रुः क्रमेण त्रिधिपरिष्कृता ॥१६०॥  
 ततः परिकरं वद्ध्वा मौमित्रिविन्दय बहून् । नमस्कारपरो भक्त्यस्तुतिं वक्तुं समुद्यतः ॥१६१॥  
 जयशब्दं समुद्बोधय प्रहृष्टा वानरध्वजाः । स्तोत्रं परिपठन्तोऽमुचुस्तं मिन्द्रमन्त्रणम् ॥१६२॥  
 स्थितास्तौलोक्यशिरसि स्वयं परमभास्वरे । स्वरूपभूतया स्थित्या पुनर्जन्मविवर्जितान् ॥२००॥  
 भवार्णवममुर्त्तीर्णान्नि श्रेयसं समुद्भवान् । आशान्मुनिर्गौरवस्य केवलज्ञानदर्शनान् ॥२०१॥  
 अनन्तवीर्यसम्पन्नान् स्वभावसमवस्थितान् । सुममोर्चनतायुक्तानि शेषक्षीणकर्मणः ॥२०२॥  
 अवगाहनधर्मोक्तानमूर्त्तान् सूक्ष्मतायुजः । गुरुवलघुतायुक्तानमवपातप्रवेशिनः ॥२०३॥  
 अमयेयगुणाधारान् क्षमादिपरिवर्जितान् । साधारणान् स्वरूपेण स्वार्थकाष्ठासुपागतान् ॥२०४॥  
 सर्वथा शुद्धभावाश्च ज्ञातज्ञेयाक्षिरञ्जितान् । दग्धकर्ममहाकृपान् विशुद्धध्यानतेजसा ॥२०५॥  
 तेजःपटपरीतेन भक्तितो वज्रपाणिना । सस्तुतान् भयभीतेन चक्रवर्त्यादिभिस्तथा ॥२०६॥  
 ससारधर्मादिमुक्तान् सिद्धधर्मसमाश्रितान् । सर्वांश्च वन्दामहे सिद्धान् सर्वसिद्धिमवाहान् ॥२०७॥  
 अस्या च ये गताः सिद्धिं शिलायां शालधारिणः । उपर्याता पुराणेषु सर्वकर्मविवर्जिताः ॥२०८॥  
 जिनेन्द्रसमतां यातां वृत्तकृत्या महीजसः । मङ्गलस्मरणेनैतान् भक्त्या वन्दामहे मुहु ॥२०९॥

समान मनोहर जान पड़ती थी ॥१६६॥ उस शिलासे जो सिद्ध हुए थे उन्हें नमस्कार कर जिन्होंने हाथ जोड़ मस्तकसे लगाये थे तथा जो सब प्रकारकी सिद्धि विधानमें निपुण थे ऐसे उन सब लोगोंने भक्ति पूर्वक क्रमसे उस शिलाकी प्रदक्षिणा की ॥१६७॥

तदनन्तर विनयकी धारण करने वाले, नमस्कार करनेमें तत्पर एवं भक्तिसे भरे लक्ष्मण कमर कम कर स्तुति करनेके लिए उद्यत हुए ॥१६८॥ हर्षसे भरे वानरध्वज राजा, जय-जय शब्दका उच्चारण कर सिद्ध भगवान्के निम्नाङ्कित स्तोत्रको पढ़ने लगे ॥१६९॥ स्तोत्र पढ़ते हुए उन्होंने कहा कि हम उन सिद्ध परमेशियोंकी नमस्कार करते हैं कि जो अतिशय देवीयमान तीन लोकके शिखर पर स्थित धराजमान हैं, तथा पुनर्जन्मसे रहित हैं ॥२००॥ जो मसार सागरसे हैं, मोक्ष सुखके आधार हैं तथा केवलज्ञान और केवलदर्शनसे सहित हैं ॥२०१॥ जो अनन्त बलसे युक्त हैं, आत्मस्वभावमें स्थित हैं, श्रेष्ठतासे युक्त हैं, और जिनके समस्त कर्म क्षीण हो चुके हैं ॥२०२॥ जो अवगाहन गुणसे युक्त हैं, अमूर्तिक हैं, सूक्ष्मत्व गुणसे सहित हैं, गुरुता और लघुतासे रहित तथा असंख्यातप्रदेशी हैं ॥२०३॥ जो अपरिमित—अनन्तगुणोंके आधार हैं, क्रम आदिसे रहित हैं, आत्मस्वरूपकी अपेक्षा सब समान हैं और जो आत्म प्रयोजनकी अन्तिम सीमाकी प्राप्त हैं—कृतकृत्य हैं ॥२०४॥ जिनके भाव सर्वथा शुद्ध हैं जिन्होंने जानने योग्य समस्त पदार्थोंको जान लिया है, जो निरञ्जन—कर्म कालिमासे रहित हैं और निर्मल ध्यान शुश्लक्ष्यान रूपी अग्निके द्वारा जिन्होंने कर्मरूपी महाअटवीको भस्म कर दिया है ॥२०५॥ संसार से भयभीत तथा तेज रूपी पटसे परिधृत इन्द्र तथा चक्रवर्ती आदि महापुरुष जिनकी स्तुति करते हैं ॥२०६॥ जो संसार रूप धर्मसे रहित हैं, सिद्ध रूप धर्मको प्राप्त हैं तथा जो सब प्रकारकी सिद्धियोंको धारण करने वाले हैं ऐसे समस्त सिद्ध परमेशियोंको हम नमस्कार करते हैं ॥२०७॥ शीलको धारण करने वाले जो भी पुरुष इस शिलासे सिद्धिकी प्राप्त हुए हैं पुराणोंमें जिनका कथन है, जो मर्त्य कर्मोंसे रहित हैं, जिनेन्द्र देवकी समानताको प्राप्त हुए हैं, कृतकृत्य हैं तथा जो महा प्रतापके धारक हैं उन सबको हम भक्ति पूर्वक मङ्गल स्मरण करते हुए बार-बार वन्दना करते हैं

एव च सुचिरं स्तुत्या पुनरेव प्रभापिरे । लक्ष्मीधर समुद्दिश्य स्थापितैकाम्रमानसा ॥२१०॥  
 शिलायामिह ये सिद्धा ये चान्ये हतकलिवपा । ते विघ्नसूदना सर्वे भवन्तु तव मङ्गलम् ॥२११॥  
 अहन्तो मङ्गल मन्तु तव सिद्धाश्च मङ्गलम् । मङ्गल साथव सर्वे मङ्गल जिनशासनम् ॥२१२॥  
 इति मङ्गलनिस्वानैर्विहायस्तलचारिणाम् । शिलामचालयत् क्षिप्र लक्ष्मणो विमलयुति ॥२१३॥  
 सा लक्ष्मणकुमारेण नानालङ्कारभूषणा । केयूरकान्तब्राह्मणा धृता कुलवधूरिव ॥२१४॥  
 अधान्तरिक्षे देवाना महाशब्दो महानभूत् । सुप्रावाद्याश्च राजेन्द्रा विस्मय परम ययु ॥२१५॥  
 तत सिद्धान् प्रमोदाख्या प्रणम्य भयवजितान् । सम्मेदशिखरस्थ च जिनेन्द्र मुनिसुव्रतम् ॥२१६॥  
 निपया ऋषभादानामभ्यर्ष्य च यथापिपि । सकल भरतक्षेत्र बध्नमुस्ते प्रदक्षिणम् ॥२१७॥  
 सावाहो सोम्यवपुषो दिव्यैर्यानेर्मंगोजवै । कृताभिवन्दना शब्दैर्जयनन्दादिभिर्भृशम् ॥२१८॥  
 परिवार्य महावार्य राम लक्ष्मणसङ्गतम् । किष्किन्धननगर प्रागुर्विविशुश्च महर्ष्यम् ॥२१९॥  
 शयिताश्च यथास्थानं विस्मितेनान्तरात्मना । एकीभूय पुन प्रीता इत्यन्योन्य प्रभापिरे ॥२२०॥  
 वीर्यवध वासरे स्वर्णै पृथिव्या राष्यमेतयो । नि शोपै कण्ठकैर्मुक्त शक्तिं धारयतो पराम् ॥२२१॥  
 सा निर्वाणशिला येन चालयित्वा समुद्रधृता । उसादयस्यस्य क्षिप्र रावण नात्र सशय ॥२२२॥  
 तथापरे वच प्राहु कैलासो येन भूधर । तदा समुद्रधृत साय शिलोधारस्य कि सम ॥२२३॥  
 आहुरन्ये समुद्रार कैलासस्य कृतो यदि । विद्याबलयतस्तत्र विस्मय कस्य जायते ॥२२४॥

॥२०८-२०९॥ इस प्रकार चिर काल तक स्तुति कर एकाग्रचित्तके धारण उन विद्याधरोने लक्ष्मण को लक्ष्यकर कहा कि इस शिलासे जो सिद्ध हुए हैं तथा अन्य जिन पुराणोने पापकर्म नष्ट किये हैं वे सब विघ्न विनाशक तुम्हारे लिए मङ्गलस्वरूप हो ॥२१०-२११॥ अरहन्त भगवान् तुम्हारे लिए मङ्गलस्वरूप हो, सिद्ध परमेष्ठी मगलरूप हो । सर्वसाधु परमेष्ठी मगल स्वरूप हो और जिन शासन मङ्गलरूप हो ॥२१२॥ इसप्रकार विद्याधरोकी मङ्गलध्वनिके साथ, महातेजको धारण करने वाले लक्ष्मणने शीघ्र ही उस शिलाको हिला दिया ॥२१३॥ तदनन्तर लक्ष्मण कुमारने कुलवधूके समान नाना अलकारोंसे सुशोभित उस शिलाको बाजूबन्दोंसे सुशोभित अपनी भुजाओंसे ऊपर उठा लिया ॥२१४॥ उसी समय आकाशमें देवोंका महाशब्द हुआ और सुग्रीव आदि राजा परम आश्चर्यको प्राप्त हुए ॥२१५॥

तदनन्तर हर्षसे भरे सब लोग भयसे रहित सिद्ध परमेष्ठियों, सम्मेद शिखर पर विराजमान श्री मुनिसुव्रत नाथ जिनेन्द्रकी तथा ऋषभ आदि तीर्थकरोंके निर्वाणस्थान कैलाश आदिकी विधिपूर्वक पूजा कर समस्त भरत क्षेत्रमें घूम ॥२१६-२१७॥ तदनन्तर वन्दना करनेके बाद सौम्यशरीरके धारक तथा महा वैभवसे सम्पन्न सय लोगोंने साथकालके समय मनके समान वेग शाली दिव्य विमानों द्वारा 'जय' 'नन्द' आदि शब्दोंके साथ महापराक्रमी राम लक्ष्मणको घेर कर किष्किन्धननगरमें प्रवेश किया ॥२१८-२१९॥ सब ने यथा स्थान शयन किया । तदनन्तर आश्चर्य चकित चित्तसे एकत्रित हो सब बड़ी प्रसन्नतासे परस्पर इस प्रकार कहने लगे ॥२२०॥ कि तुम लोग परम शक्तिको धारण करने वाले इन दोनोंका बुद्ध ही दिनोंमें पृथिवी पर समस्त कण्ठकों अर्थान् शत्रुओंसे रहित राज्य देखोगे ॥२२१॥ जिसने उस निर्वाण शिलाको चला कर उठा लिया ऐसा यह लक्ष्मण शीघ्र ही रावणको मारेगा इसमें संशय नहीं है ॥२२२॥ बुद्ध लोग इस प्रकार कहते लगे कि उस समय जिसने कैलाश उठाया था ऐसा रावण क्या इस शिला उठाने वालेके समान है ? ॥२२३॥ बुद्ध अन्यलोग कहने लगे कि यदि रावणने कैलाश पर्यन्त उठाया था

एके च वचन प्रोक्तुः किं विराट्परिमृगं । जगद्धिताय मन्व्यर्थं हि नोवायो निष्पद्यते ॥२०७॥  
 तस्मादातीयतां मीतां समग्र्यर्थं दशाननम् । राघवापार्षद्विष्यामि विप्रदे किं प्रयोजनम् ॥२०८॥  
 सङ्ग्रामे तारको नष्टो मेरुकण्य महाबलः । कृतवीर्यसुतापाद्व महामैत्र्यसमन्विता ॥२०९॥  
 एते ऋणप्रयायांशा महाभागा महाजसः । अन्ये हि बद्धो नष्टा रणे मामन्ततः परम् ॥२१०॥  
 अन्योन्यमभिमन्थ्यैव विद्याविधिविशारदाः । राघव विनयोपेताः सम्भूय ययुराश्रयम् ॥२११॥  
 मुषीवाषाः समामोना नयनानन्दकारिणम् । विरेह परितो राममरेन्द्रमिवामरा ॥२१२॥  
 पद्मनाभस्ततोऽबोचत् किमद्याप्यवलम्ब्यते । मया विनान्तरे द्वीपे दुःख निष्ठनि मैथिली ॥२१३॥  
 दीर्घसूत्रमुग्धाय चिप्रमपौव सर्वथा । त्रिष्टुटगमने सद्भिः त्रियते न किमुद्यमः ॥२१४॥  
 तमूचुर्मन्त्रिणो बृद्धा नपविस्तरकोविदाः । मंशयेताम् किं देव कथ्यतामेकनिश्चयः ॥२१५॥  
 किं त्यक्त्वमि वैदेहीं विरोधमय रक्षसाम् । विजयः प्राप्यते दुःख नाय मत्स्यविप्रहः ॥२१६॥  
 भरतस्य त्रिरण्डक्य प्रतिपत्तोऽन्तः प्रभुः । सागरद्वीपत्रिप्यात एक एव दशानन ॥२१७॥  
 शङ्कितो धातकीद्वीपो चोत्पितामवि भवितुः । जाम्बूद्वीपे पर प्रसूतो महिमान स्वगात्रियः ॥२१८॥  
 शक्यंभूतोऽस्य विधस्य कृतानेकाद्भुतत्रियः । इन्द्रो राक्षसो राम कथं ससाध्यते त्वया ॥२१९॥  
 तस्माद्भुक्ति रणे त्यक्त्वा यद् वयं सर्वदामहे । प्रसीद त्रियतां देव तदेवोद्यत् शान्तये ॥२२०॥  
 मा भूत्स्मिन् कृतत्रोपे जगदेतन्महाभयम् । विष्वस्तप्राणिविहाण नष्टनिःशेषमित्रयम् ॥२२१॥

तो इससे क्या हुआ क्योंकि विशानलके रहते हुए उसके इस कार्यमें किसी आश्रय हो सकता है ? ॥२२४॥ कुछ लोग यह भी कहने लगे कि इन व्यर्थके विवाहोंसे क्या लाभ है ? जगन्ना कल्याण करनेके लिए सन्धिक्रा उपाय क्यों नहीं बताया जाता है ? ॥२२५॥ इसलिए रावणकी पूजा कर सीताको लाया जावे उसे हम रामके लिये सौंप देंगे फिर युद्ध क्या प्रयोजन है ? ॥२२६॥ संग्राममें तारक, महाबलवान् मेरुक और बड़ी-बड़ी सेनाओंसे सहित कृतवीर्यके पुत्र आदि मारे गये हैं ॥२२७॥ ये सभी तीन ऋण्डके स्वामी महाभागवान् तथा महाप्रतापी थे । इनके मित्राय और भी अनेक राजा रणमें सब ओर नष्ट हुए हैं ॥२२८॥

इस प्रकार विद्याओंके प्रयोग करनेमें निपुण सब लोग परस्पर सलाहकर विनय सहित आदर पूर्वक मिलकर रामके पास आये ॥२२६॥ नेत्रोंको आनन्द उत्पन्न करने वाले रामके चारों ओर बैठे हुए सुषीव आदि राजा उस समय उस प्रकार सुशोभित हो रहे थे जिम प्रकार कि अमरेन्द्रके चारों ओर देव सुशोभित होते हैं ॥२२७॥ तदनन्तर रामने कहा कि अब और किसकी अपेक्षा की जा रही है ? दूसरे द्वीपमें सीता मेरे विना दुःखी होती होगी ॥२२९॥ शीघ्र ही दीर्घ-सूत्रताको छोड़कर आज ही आप लोग त्रिकूटाचल पर चलनेके लिए उद्यम क्यों नहीं करते हैं ? ॥२३२॥ तब नीतिके विस्तारमें निपुण बृद्ध मन्त्रियोंने कहा कि हे देव ! इस त्रिपयमें मंशयकी क्या बात है ? निश्चय बताइए कि ॥२३३॥ आप सीताकी चाहते हैं या राक्षसोंके साथ युद्ध ? यदि युद्ध चाहते हैं तो विजय कठिनाईसे प्राप्त होगी क्योंकि राक्षसोंका और आपका यह युद्ध सट्टा युद्ध—वरावरी वालोंका युद्ध नहीं है ॥२३४॥ क्योंकि रावण द्वीप और सागरोंमें प्रसिद्ध, तीन ऋण्ड भरतका शत्रु रहित एक—अद्वितीय ही प्रभु है ॥२३५॥ धातकीण्ड नामा दूसरा द्वीप भी उससे शङ्कित रहता है, वह ज्योतिषी देवोंको भी भय उत्पन्न करने वाला है तथा जम्बूद्वीपमें परम महिमाको प्राप्त अद्वितीय विद्याधरोंका स्वामी है ॥२३६॥ जो समस्त संसारके लिए शान्त्य गुरुप है, तथा जिसने अनेक अद्भुत कार्य किये हैं ऐसा राक्षस हे राम ! तुम्हारे द्वारा कैसे जीता जा सकता है ? ॥२३७॥ इसलिए हे देव ! रणकी भावना छोड़ हम लोग जो कह रहे हैं वही कीजिए, प्रसन्न हूजिये और शान्तिके लिए उद्योग कीजिए ॥२३८॥ उसके कुपित होनेपर यह

योऽग्नौ विभीषण रथात् स्वयं ब्रह्मा स कीर्तित । क्रूरकर्मनिवृत्तात्मा भावितोऽणुप्रतीर्षदम् ॥२४०॥  
 अलध्यवचन तस्य कुरुते रोचराधिप । तयोर्हि परमा प्रातिरन्तरायविवर्जिता ॥२४१॥  
 योधितस्तेन दाक्षिण्याद् यशः पालनतोऽपि वा । लज्जया वा विदेहस्य तनया प्रेषयिष्यति ॥२४२॥  
 विज्ञापनवचोयुक्कुशलो नयपेशल । अन्विष्यतामर कश्चित्सदा रावणस्य य ॥२४३॥  
 तनो महादस्त्रिनाम्ना रथातो विद्याधराधिप । अत्रवादेप वृत्तान्तो भवता नागत ध्रुतिम् ॥२४४॥  
 यत्रैरहुजनवाद्द्वैलङ्काशम्या निरन्तरम् । कृतातिशयदु प्रेषा सुभीमात्वनतगह्वरा ॥२४५॥  
 एषा मध्ये न पर्यामि महाविद्य नभश्चरम् । लङ्का गत्वा द्रुत भूयो य समर्थो निवर्तितुम् ॥२४६॥  
 पवनञ्जयराजस्य श्राशैल प्रथित सुत । विद्यास वप्रतापाह्वो बलोत्तुङ्ग स याच्यताम् ॥२४७॥  
 सम दशाननेनास्य विद्यतेऽजयमुत्तमम् । युक्त करोत्यसौ साम्यं निविन्न पुरुषोत्तम ॥२४८॥  
 प्रतिपन्नैस्तत सर्वैरेवमस्त्विति सादरै । मारुतेरन्तिक दूत श्रीभूति प्रहितो द्रुतम् ॥२४९॥  
 शक्ति दधतापि परा प्राथ्यापि पर प्रबो उमोरभ्ये । भविष्य नयरतिनारविरिव काले स यात्युदयम् ॥२५०॥

इत्यार्षे रविपेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे काटिशिलाक्षेपणामिधानं नाम अष्टचत्वारिंशत्तम पत्र ॥४८॥

ससार महाभयसे युक्त न हो, प्राणियोंके समूहका विध्वंस न हो तथा समस्त उत्तम क्रियाएँ नष्ट न हों ॥२३६॥ रावणका भाई विभीषण अत्यन्त प्रसिद्ध है, मानो स्वयं ब्रह्मा ही है। वह दुष्टता पूर्ण कार्योंसे सदा दूर रहता है और अणुवतोंका दृढतासे पालन करता है ॥२४०॥ उसके वचन अलध्य हैं वह जो कहता है रावण वही करता है। यथार्थमे उन दोनोंमें निर्बोध परम प्रेम है ॥२४१॥ विभीषण उसे समभावसे इमलिए, अथवा उदारतासे, अथवा कीर्ति रक्षा के अभिप्रायसे अथवा लज्जाके कारण रावण सीताको भेज देगा ॥२४२॥ इसलिए शीघ्र ही किसी ऐसे पुरुषकी खोज की जाय जो निवेदन करनेवाले वचनोंकी योजनामें कुशल हो, नीति-निपुण हो और रावणको प्रसन्न करनेवाला हो ॥२४३॥

तदनन्तर महोदधि नामसे प्रसिद्ध विद्याधरोंके राजाने कहा कि क्या यह वृत्तान्त आप लोगोंके श्रवणमें नहीं आया ॥२४४॥ कि लका अनेक जनोंका विधात करनेवाले यन्त्रोंसे निरन्तर अगम्य कर दी गई है, उसका देखना भी कठिन है तथा अत्यन्त भयङ्कर गम्भार गर्तोंसे युक्त हो गई है ॥२४५॥ इन सबके बीचमें मैं महाविद्याओंके धारक एक भी ऐसे विद्याधरको नहीं देखता हूँ कि जो लका जाकर शीघ्र ही पुन लौटनेके लिए समर्थ हो ॥२४६॥ हाँ, पवनञ्जय राजाका पुत्र श्रीशैल विद्या, सत्त्व और प्रतापसे सहित है तथा अतिशय बलवान् है सो उससे याचना की जाय ॥२४७॥ इसका दशाननके साथ उत्तम सम्बन्ध भी है इसलिए यदि इसे भेजा जाय तो यह श्रेष्ठ पुरुष निर्विघ्न रूपसे शान्ति स्थापित कर सकता है ॥२४८॥ तदनन्तर सब विद्याधरोंने 'एवमस्तु' कहकर महोदधि विद्याधरका प्रस्ताव स्वीकृत कर श्रीशैल (हनुमान) के पास शीघ्र ही श्रीभूति नामका दूत भेजा ॥२४९॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि परम शक्तिने धारक रानाको भी प्रारम्भ करने योग्य कार्यके विषयमें परम विवेकको प्राप्तकर नीतिज्ञ होना चाहिए क्योंकि ऐसा राजा ही सूर्यके समान समय आनेपर अभ्युदयको प्राप्त होता है ॥२५०॥

इस प्रकार आर्ष नामस प्रसिद्ध रविपेणाचार्य कथित पद्मपुराणमें कोटिशिला उटानेका वर्णन पद्मनाला अडतालोमर्वा पर्व समाप्त हुआ ॥४८॥



## एकोनपद्माशत्तमं पर्व

ततो नमः समुपत्य जगामासी महजवः । अयुक्तुर्गृहेः पूर्णं श्रीपुर श्रीनिकेतनम् ॥१॥  
 तत्र हेमद्रव्यस्तलेयतेज समुत्पलम् । कुन्दाभवलभाशोभि रत्ननिर्मितशेखरम् ॥२॥  
 मुक्ताद्रामसमाकोर्णं वातापनविराजितम् । उद्यानाकार्णपर्यन्त प्राविशन्मास्तेगृहम् ॥३॥  
 अपूर्वलोकमहात् परयतस्तस्य साद्भुतम् । मनोगतागत भूयो गत कृच्छ्रेण धीरताम् ॥४॥  
 प्रविष्टे मारुतेर्गेहं तस्मिन् दूते ससम्भ्रमे । अनङ्गकुसुमोत्पात जगामेन्दुनखाभज्रा ॥५॥  
 सस्पन्दं दक्षिणं चक्षुरवधार्यं व्यविन्तयत् । प्राप्तव्यं विधियोगेन कम कर्तुं न शक्यते ॥६॥  
 ध्रुवशक्तिमसासफा मानुपास्तावदासताम् । न सुरैरपि कर्माणि शक्यन्ते कर्तुमन्यथा ॥७॥  
 वेदितागमनस्तावद् दूतो नमैर्दया सभाम् । प्रस्वेदकणसम्पूर्णः प्रतीहाराय प्रवेशित ॥८॥  
 जगादाथ यथावृत्त निःशेषं प्रणताननः । दण्डकाद्रिं समायाताः पद्मनाभादयः पुरा ॥९॥  
 शम्भूर्यस्य वधं युद्धं विषमं खरदूपणम् । पद्मतागमन तस्य मानवैरुत्तमै सह ॥१०॥  
 ततो निश्म्य तां वानां शोकविह्वलविग्रहा । अनङ्गकुसुमा मुहूर्तमुपेता मुकुलेशणा ॥११॥  
 चान्दनेन द्वयेगैतां सिच्यमानां त्रियोष्किताम् । बिलोच्चयान्त पुराप्रमोधि परमं क्षोभमागतः ॥२॥  
 बाणातन्त्रागदधराणां प्रास्रानां कोणताडनम् । वदन्तीनां सम रम्यो ध्वनिः स्त्रीणां समुद्गतः ॥३॥

तदनन्तर—बायुके समान वेगका धारक श्रीभूति दूत, आकाशमे उड़कर अत्यन्त ऊँचे ऊँचे महलोंसे परिपूर्ण, लक्ष्मीके घर स्वरूप श्रीपुर नगरमें पहुँचा ॥१॥ वहाँ जाकर उसने श्रीशैलके उस भवनमें प्रवेश किया जो स्वर्णमय पानीके लेपसे उत्पन्न तेजसे अत्यन्त दीदीप्यमान था, कुन्दके समान उज्ज्वल अट्टालिकाओंसे सुशोभित था, रत्नमयी शिखरोंसे जगमगा रहा था, मोतियोंकी मालाओंसे व्याप्त था, भरोरोंसे सुरोभित था, और जिसका समीपवर्ती प्रदेश बाग-धर्मीचोंसे व्याप्त था ॥२-३॥ वहाँ लोगोंकी अपूर्व भीड़ तथा आश्चर्यकारी अत्यधिक मातायात देख श्रीभूतिका मन बड़ी कठिनाईसे धीरताको प्राप्त हुआ ॥४॥ जब आश्चर्यमें पड़े हुए श्रीभूति दूतने हनुमाम्के घरमें प्रवेश किया तब चन्द्रनखाकी पुत्री अनङ्गकुसुमा उत्पातको प्राप्त हुई ॥५॥ दक्षिण नेत्रको फड़कते देख उसने विचार किया कि देख योगसे जो कार्य जैसा होना होता है उसे अन्यथा नहीं किया जा सकता ॥६॥ हीन शक्तिके धारक मनुष्य तो दूर रहें देवोंके द्वारा भी कर्म अन्यथा नहीं किये जा सकते ॥७॥ तदनन्तर अनङ्गकुसुमाकी प्रहासिका सखीने जिसके आगमन की सूचना दी थी, और स्वेदके कणोंसे जिसका शरीर व्याप्त हो रहा था ऐसे उस श्रीभूति दूतको प्रतीहारीने सभाके भीतर प्रविष्ट कराया ॥८॥

अथानन्तर नम्र मुख होकर उसने सब वृत्तान्त ज्योंका त्यों इस प्रकार सुनाया कि राम आदि दण्डक वनमें आये, शम्भूकका वध हुआ, खरदूपणके साथ विषम युद्ध हुआ, और उत्तम मनुष्योंके साथ खरदूपण मारा गया ॥९-१०॥ तदनन्तर यह वार्ता सुन अनङ्गकुसुमा शोकसे विह्वल शरीर हो मुञ्चिदत हो गई तथा उसके नेत्र निर्मोहित हो गये ॥११॥ उसका हलन चलन बन्द हो गया तथा चन्द्रनके द्रवसे उसे सौँचा जाने लगा, यह देख समस्त अन्तःपुर रूपी सागर परम क्षोभको प्राप्त हुआ ॥१२॥ अन्तःपुरकी समस्त स्त्रियों एक साथ रुदन करने लगीं सो उनके

अनङ्गकुसुमा कृच्छ्रालम्बिता प्राणसङ्गमम् । अधुसिक्तस्तनी तार विललापातिदु खिता ॥१४॥  
 हा तात क प्रयातोऽसि प्रयच्छ वचन मम । हा भ्रात किमिदं जात दीयता दर्शनं सकृत् ॥१५॥  
 वनऽतिभीषणे कष्ट रणाभिमुखता गत । भूगोचरै कथं तात मरणवमुपाहृत ॥१६॥  
 शोकाकुलचकार्णो जाते श्रीशैलवेशमनि । नीतो नर्मदया दूत प्रदेश वचनोचितम् ॥१७॥  
 पितुर्भातुश्च दु खेन तसा चन्द्रनखा मजा । कृच्छ्रेण शमन नीता सञ्चि प्रथमकोविदे ॥१८॥  
 जिनमार्गप्रवाणासी बुद्ध्वा ससारसस्थितिम् । श्लोकाचारानुकूलत्वाच्चेक्रे प्रेतक्रियाविधिम् ॥१९॥  
 अन्पेद्युर्दूतमाहूय पवनज्वननदन । अपृच्छच्छोकसस्पृष्ट मोललोकसमावृत ॥२०॥  
 नि शेष दूत यद्दृष्टं तन्निरेदय सागप्रतम् । इत्युक्त्वा कारण मृत्यो खरदूपणमस्मरत् ॥२१॥  
 ततोऽस्य श्रौयसरद्भसर्वाङ्गस्य महाद्युते । भ्रूस्तरङ्गवती रेजे तडिद्रेपेव चञ्चला ॥२२॥  
 ततस्त्रासपराताडो मुहुर्दूतं प्रतापवान् । जगाद् मधुर प्राज्ञ कोपविध्वंसकारणम् ॥२३॥  
 ज्ञातमेव हि देवस्य किष्किन्धाधिपते परम् । दयितादु खमुपन्न तत्समाकारहेतुकम् ॥२४॥  
 आर्तस्तेन स दु खेन पन्न शरणमागमत् । प्रताच्य सोऽर्तिविध्वंस किष्किन्धनगर गत ॥२५॥  
 सुग्रावाहृतिचौरेण सम तत्र महानभूत् । धिर श्रान्तमहायोध सग्राम श्वसुरस्य ते ॥२६॥  
 उत्थाय पन्नानेन ततो भूयो मर्हाजसा । तस्याहृतस्य नष्टासी वेताली स्तेयकारणम् ॥२७॥  
 तत साहसगत्याय स्वस्वभाव समाश्रित । विज्ञातो रामनिर्मुक्तैर्भृत्यु नात शिलीमुखै ॥२८॥

रुदनका शब्द ऐसा उठा मानो वीणाआके हजार तार कोणके ताडनको प्राप्त हो एक साथ शब्द करने लगे हा ॥१३॥ तदनन्तर अनगङ्गसुमा वडे कष्टसे प्राणाके समागमको प्राप्त हुई अर्थात् सचेत हुई । सचेत होने पर अधुआसे स्तनोको सिक्त करती तथा अतिशय दु ख प्रकट करती हुई वह जोर-जोरसे विलाप करने लगी ॥१४॥ वह कहने लगी कि हाय तात ! तुम कहाँ गये मुझे वचन देओ—मुझसे वार्तालाप करो । हाय भाई ! यह क्या हुआ ? एक बार तो दर्शन देओ ॥१५॥ हे तात ! अत्यन्त भयकर वनमें रणके सन्मुख हुए तुम भूमिगोचरियोंके द्वारा मरणको कैसे प्राप्त हो गये ? ॥१६॥ इस प्रकार जन श्रीशैलका भवन शोकाकुल मनुष्योंसे भर गया तब अनगङ्गसुमाकी नर्मदा—सखी दूतको वात करने योग्य स्थान पर ले गई ॥१७॥ पिता और भाईके दु खसे सतत चन्द्रनखाकी पुत्री अनगङ्गसुमा, सान्त्वना देनेमें निपुण सत्पुरुषोंके द्वारा बड़ी कठिनाईसे, शान्तिको प्राप्त कराई गई ॥१८॥ जिन मार्गमें प्रवीण अनगङ्गसुमाने ससारको स्थिति जानकर श्लोकाचारके अनुकूल पिताकी मरणोत्तर क्रिया की ॥१९॥

अथानन्तर दूसरे दिन शोकसे व्याप्त तथा मन्त्री आदि मीलजगसे परिवृत्त श्रीशैल—  
 हनुमान्ने दूतको घुलाकर पूछा कि 'हे दूत ! खरदूपणकी मृत्युका जो वृद्ध कारण हुआ है वह सम कहो, यह कह कर हनुमान् खरदूपणका स्मरण करने लगा ॥२०-२१॥ तदनन्तर बोधसे जिसका समस्त शरीर व्याप्त था ऐसे महानीतिमान् हनुमान्की पङ्कती हुई भाँह चञ्चल त्रिपली की रेखाके समान जान पडती थी ॥२२॥ तत्पश्चात् भयसे जिसका समस्त शरीर व्याप्त था ऐसे महाप्रतापी बुद्धिमान्ने हनुमान्का श्लोप दूर करनेवाले निम्नाह्वित मधुर वचन कह ॥२३॥ उसने कहा कि हे देव ! आपकी यह तो विदित ही है कि किष्किन्धाके अधिपति मुद्रावको उसीने समान रूप धारण करनेवाले साहसगति विद्याधरके कारण श्लोकाचरणी दुःख उपस्थित हुआ था ॥२४॥ उस दु खसे दुखी हुआ सुभीव रामकी शरणमें आया था और राम भी उसका दु ख नष्ट करनेकी प्रतिज्ञा कर किष्किन्धनगर गये थे ॥२५॥ वहाँ आपके श्वसुर-सुभीवका, उसका आहृतिके चौर—वृत्रिम सुभीवके साथ बड़े-बड़े योद्धाओंको थका देनेवाला चिरकाल तक महा युद्ध हुआ ॥२६॥ तदनन्तर महातेजस्वी रामने उठकर उसे ललनाग । उन्हें देखते ही चोरीका कारण जो वेतालाविद्या थी यह नष्ट हो गई ॥२७॥ तब साहसगति अपने असली स्वरूपको

तच्छुत्वा विगतक्रोधो जात पवननन्दनः । पुनरक्त जगौ तुष्ट विरग्नमुपपङ्कज ॥२६॥  
 वृत्त वृत्तमद्मे स्राष्टु प्रिय पद्मे न परम् । यमुपमावकुल मज्जदकार्तो चिप्रमुद् घृतम् ॥३०॥  
 हेमकुम्भोपम गोत्र अयश दृगदहरे । निमज्जद्गुणहस्तेन तेन सन्मतिर्नोद्घृतम् ॥३१॥  
 पृथमादिप्र भरि प्रशाम्न् रामलक्ष्मणी । करिमन्त्रि ममजातो सारसौख्यमहागणे ॥३२॥  
 ध्रुत्वा पङ्कजरागाया पितु शाकविरिचयम् । उत्सव सुमहान् जातो दानपूजादिसन्तुत ॥३३॥  
 उद्देगानन्दसम्पन्न हतच्छायसमुज्ज्वलम् । श्राशैलभजन जात रसद्वयसमुक्कटम् ॥३४॥  
 पथ विपमता प्राप्ते स्वजनने पावनत्रयि । किञ्चिसमत्वमापाय किञ्चिन्वाभिसुप ययौ ॥३५॥  
 कृध्याभिगच्छत्स्तस्य वलैनात्यर्थभूरिणा । जगादन्यदिवोद्भूतमाकाशपरिवर्तितम् ॥३६॥  
 विमान सुमहत्तस्य मणिरत्नसमुज्ज्वलम् । प्रभा दिवसरजस्य जहार स्वमरीचिभि ॥३७॥  
 गच्छन्त त महाभाग्य शतशो वन्सुपार्थिवा । अनुजग्मु सुनामीर यथा त्रिदशपुत्रवा ॥३८॥  
 अग्रत घृष्टनश्चास्य पार्श्वतश्च जयस्वने । गच्छन्तः खेचरेन्द्राणामासीच्छुद्धमथ नभ ॥३९॥  
 चित्रमासीधद्वाना विहायस्तलगामिनाम् । मनोहारी गजाना च विलस्य स्वतनूचित ॥४०॥  
 महातुरङ्गमयुक्तै रर्थैरच्छिन्नवैतुभि । विहायस्तल जात मन्ये कल्पनगाकुलम् ॥४१॥  
 मितानामातपत्राणा मण्डलेन मर्हायसा । जात कुमुदप्रण्डानामिव पूर्ण विद्यत्तलम् ॥४२॥

प्राप्त हो गया, सबकी पहिचानमें आया और रामके द्वारा छोड़े हुए पाणोसे मृत्युको प्राप्त हुआ ॥२८॥ यह सुनकर हनुमान् क्रोधरहित हो गया । प्रसन्नतामें उसका मुखकमल रिल उठा और सतुष्ट हो कर उसने बार-बार कहा कि अहो ! रामने उहुत अच्छा किया, मुझे बहुत अच्छा लगा जो उन्होंने अपकीर्तिम डूवते हुए सुग्रीवके कुलका शीघ्र ही उद्धार कर लिया । ॥२९-३०॥ स्वर्ण कलशके समान सुग्रीवका कुल अपयश रूपी कूपके गर्तमें पडकर डूब रहा था सो उत्तम बुद्धिने धारक रामने गुण रूपी रस्सी हाथमें ले उसे निकाला है ॥३१॥ इस प्रकार रामलक्ष्मणको अत्यधिक प्रशंसा करतो हुका हनुमान् किसी अद्भुत श्रेष्ठ सुपररूपी सागरमें निमग्न हो गया ॥३२॥

हनुमानकी दूसरी स्त्री सुग्रीवकी पुत्री पद्मरागा थी सो पिताके शोकका ज्ञय सुनकर उसे बड़ा हर्ष हुआ उसने दान पूजा आदिके द्वारा महा उत्सव किया ॥३३॥ उस समय हनुमान्के भजनमें एक ओर तो शोक मनाया जा रहा था और दूसरी ओर हर्ष प्रकट किया जा रहा था । वह एक ओर तो कान्तिसे शून्य हो रहा था और दूसरी ओर देदीप्यमान हो रहा था । इस प्रकार दो स्त्रियोंके कारण वह दो प्रकारके रससे युक्त था ॥३४॥ इस प्रकार जन कुटुम्बके लोग विपमताको प्राप्त हो रहे थे तब हनुमान कुछ-कुछ मध्यस्थताकी धारण कर किञ्चिन्धानगरकी ओर चला ॥३५॥ वैभवके साथ जाते हुए हनुमानकी बहुत बड़ी सेनासे उस समय ससार आकाशसे रहित होनेके कारण ऐसा जान पडता था मानो दूसरा ही उत्पन्न हुआ हो ॥३६॥ मणियों और रत्नासे जगमगाता हुआ उसका बड़ा भारी विमान, अपनी किरणसे सूर्यकी प्रभाको हर रहा था ॥३७॥ जाते हुए उस महाभाग्यशालीके पीछे सैकड़ा मित्रराजा उस प्रकार चल रहे थे जिस प्रकार कि इन्द्रके पीछे उत्तमोत्तम ऋष चलते हैं ॥३८॥ उसके आगे पीछे और दोना ओर चलने वाले विद्याधर राजाओंकी जयध्वनिसे आकाश शब्दमय हो गया था ॥३९॥ आकाशतलमें चलने वाले उसके घोडासे आश्चर्य उपन हो रहा था तथा हाथियोंकी अपने शरीरके अनुरूप मनोहारी चेष्टा प्रकट हो रहा थी ॥४०॥ जिनमें बड़े बड़े घोडे जुते हुए थे तथा जिन पर पताकाए पहरा रही थीं ऐसे रथोंसे उस समय आकाशतल ऐसा जान पडता था मानो कल्पवृक्षासे व्याप्त ही हो ॥४१॥ धवल छत्राके विशाल समूहसे आकाशतल ऐसा जान पडता था मानो कुमुदाके

गम्भीरो दौन्दुभो धीरो ध्वानो ध्वस्तापरध्वनिः । चक्रवालं दिशां व्याप्य प्रतिध्वनिघनः स्थितः ॥४३॥  
 मङ्गल चलता तेन सैन्येन गगनाद्गगम् । खण्डखण्डैरिवच्छन्नमन्तरेषु व्यलोक्यते ॥४४॥  
 भासां भ्रूयगजातानां बहुवर्गयुजां चयैः । विशिष्टशिल्पिना रक्तं नभो वक्षमिवाभवत् ॥४५॥  
 ध्वनिं माहनिर्घस्य ध्रुत्वा सन्नह्य गह्वरम् । तोषं कपिध्वजाः प्रापुः शिखिनोऽद्भुध्वनिं यया ॥४६॥  
 कृतापगमहाशोभ ध्वजमालासमाकुलम् । रत्नतोरणसंयुक्तं किङ्किन्धनगरं कृतम् ॥४७॥  
 बहुभिः पूज्यमानोऽर्षी विभवैस्त्रिदशोपमैः । विवेश नगरं सद्यः सुप्रावस्य च पुष्कलम् ॥४८॥  
 सुप्रावेण प्रतोषश्च यथाहं रचितदारुः । कथितं चाखिल तस्य पद्मनाभादिचेष्टितम् ॥४९॥  
 अनेनैव ततो युक्ताः सुप्रावाद्या नरेश्वराः । धारयन्तः परं हर्षं पद्मनाभमुपाययुः ॥५०॥  
 अपरयच्च नरधेष्टं त लक्ष्मीधरपूर्वजम् । नीलकुञ्जितसूक्ष्मातिस्निग्धदेशं मरुत्सुतः ॥५१॥  
 लक्ष्मालताविपकाद् कुमारमिव भास्करम् । शशाङ्कमिव लिम्पन्तं कान्तिपङ्केन पुष्करम् ॥५२॥  
 नयनाना समानन्द मनोहरगकोविदम् । अपूर्वकर्मणां सर्गं स्वर्गादिव समागतम् ॥५३॥  
 ज्वलद्विशुद्धरुक्मागुरहरगर्भसमप्रभम् । मनोज्ञा गतनासासं सङ्गतध्रुवणद्वयम् ॥५४॥  
 मूर्तिमन्तमिवान्नद्र पुण्डरीकनिभेक्षणम् । चापानतभ्रुवं पूर्णशारदेन्दुनिभाननम् ॥५५॥  
 त्रिविप्रवालरकोष्ठ कुन्दरवेतद्विजावलिम् । कम्बुकण्ठ मृगेन्द्राभवत्तोभाज महाभुजम् ॥५६॥

समूहसे ही व्याप हो ॥४३॥ दूसरोंकी ध्वनिको नष्ट करने वाला उसकी दुन्दुभिका धीर गम्भीर शब्द दिशाओंके मण्डलको व्याप कर स्थित था तथा उसकी जोरदार प्रतिध्वनि उठ रहा थी ॥४४॥ उसकी चलती हुई सेनासे व्याप आकाशाद्गग ऐसा दिखाई देता था मानो बीच बीचमें खण्ड-खण्डोंसे आच्छादित हो ॥४४॥ उसके नाना प्रकारके भ्रूयुगोंके समूहकी कान्तिसे रंगा हुआ आकाश ऐसा जान पड़ता था मानो किसी विशिष्ट—कुशल शिल्पीके द्वारा रंगा वस्त्र ही हो ॥४५॥ हनुमान्की तुरहीका गम्भीर शब्द श्रवण कर सब वानरवंशी इस प्रकार संतोषको प्राप्त हुए जिस प्रकार कि भेषका शब्द सुनकर मयूर संतोषको प्राप्त होते हैं ॥४६॥ उस समय किङ्किन्ध नगरके वाजारोंमें महाशोभा की गई; ध्वजाओं तथा मालाओंसे नगर सजाया गया और रत्नमयी तोरणोंसे युक्त किया गया ॥४७॥ देवोंके समान अनेक विशाघरोंने थड़े वैभवसे जिसकी पूजा की थी ऐसा हनुमान् सुभावके विशाल महलमें प्रविष्ट हुआ ॥४८॥ सुप्रावने यथायोग्य आदरकर उसका सम्मान किया तथा राम आदिकी समस्त चेष्टाएँ उसके समक्ष कहीं ॥४९॥ तदनन्तर हनुमान्से युक्त सुप्राव आदि राजा परमहर्षको धारण करते हुए रामके समीप आये ॥५०॥ तत्रश्चान् हनुमान्ने उन श्रीरामको देखा तो मनुष्योंमें श्रेष्ठ थे, लक्ष्मणके अप्रज्य थे, जिनके केश काले, पुँपराले, सूक्ष्म तथा अत्यन्त स्निग्ध थे ॥५१॥ जिनका शरीर लक्ष्मीरूपी लतासे आलिङ्गित था, जो बालसूयके समान जान पड़ते थे अथवा जो कान्तिरूपी पद्मके द्वाग आकाशको लिप्त करते हुए चन्द्रमाके समान सुशोभित थे ॥५२॥ जो नेत्रोंको आनन्द देनेवाले थे, मनके हरण करनेमें निपुण थे, अपूर्व कर्मोंकी मानो सृष्टि ही थे और स्वर्गसे आये हुएके समान जान पड़ते थे ॥५३॥ देदीप्यमान निर्मल स्वर्ण-कमलके भीतरी भागके समान जिसकी प्रभा थी, जिनकी नासाका अप्रभाग मनोहर था, जिनके दोनों कर्ण उत्तम सुहोले अथव सज्जनोंको प्रिय थे ॥५४॥ जो मूर्तिधारी कामदेवके समान जान पड़ते थे, जिनके नेत्र कमलके समान थे, जिनकी भौंह चढ़े हुए धनुषके समान नम्रामूत थी, जिनका मुख शरद् शत्रुके पूर्ण चन्द्रमाके समान था ॥५५॥ जिनका आँठ विभ्र अथवा भूंगा या किसलयके समान

श्रीवत्कान्तिमगूर्णमहाशोभस्तनान्तरम् । गम्भीरनाभिवत्काममप्यदेगविराजितम् ॥५७॥  
 प्रशान्तगुणमगूर्णं नानालङ्कारभूषितम् । सुकुमारकरं वृत्तपीवरीदृढयस्तुतम् ॥५८॥  
 कूर्मवृष्टमहातेज सुकुमारजमद्वयम् । चन्द्रातुरारणच्छायातप्यपङ्क्तिमुग्धलम् ॥५९॥  
 अचोभ्यमत्वगम्भीरं वज्रसङ्घातविप्रदम् । सर्वमुन्दरसन्देहमिव वृषा विनिमित्तम् ॥६०॥  
 महाप्रभावमप्यङ्गं न्यग्रोधपरिमण्डलम् । प्रियाङ्गनादियोगेन चालसिंहमिवाकुलम् ॥६१॥  
 शक्येव रहित शकं राहियेव विना विधुम् । रूपसौभाग्यमप्यङ्गं सर्वशास्त्रविशारदम् ॥६२॥  
 शौर्यमाहात्म्यमयुक्तं मेघादिगुणमयुतम् । एवंविधं समालोक्य माहतिः शोभमागतः ॥६३॥  
 अचिन्तयच्च सम्भ्रान्तस्तत्प्रभाववशीकृतः । तच्छरीरप्रभाजालममालिङ्गितविप्रहः ॥६४॥  
 श्रीमानयमसौ राजा रामो दशरथात्मजः । यस्येह लक्ष्मणो भ्राता लोकश्रेष्ठ स्थितो वशे ॥६५॥  
 यस्यालोक्य तदा संस्ये' ह्यत्र शीतौशुम्भिमम् । सा साहसगतैर्माया वैतान् परिनि रूना ॥६६॥  
 दृष्ट्वा वज्ररं पूर्वं हृदय यन्न कम्पितम् । तदद्य मम दृष्ट्वैन सद्योभ परम गतम् ॥६७॥  
 इति विस्मयमापन्नः समनुसृत्य तान् गुणान् । ससार' पावनिः पद्मं श्रीमदभोजलोचनम् ॥६८॥  
 दूरादुत्थाय दृष्ट्वैन पद्मलक्ष्मीधरादिभिः । असी प्रहृष्टचेतोभिः परिवृक्तो यथाक्रमम् ॥६९॥  
 परस्पर समालोक्य सम्भाष्य विनयोचितम् । उपधानविचित्रेषु <sup>५</sup>स्वासनेष्ववतस्थिरे ॥७०॥

लाल था जिसकी दाँतोंकी पंक्ति कुन्द कुसुमके समान शुक्ल थी, कण्ठ शङ्खके समान था, जो सिंहके समान विस्तृत वक्षस्यलके धारक थे, महासुजाओंसे युक्त थे ॥५६॥ जिनके स्तनोंका मध्यभाग श्रीवत्स चिह्नकी कान्तिसे परिपूर्ण महाशोभाको धारण करनेवाला था, जो गम्भीर नाभसे युक्त तथा पतली कमरसे सुशोभित थे ॥५७॥ जो प्रशान्त गुणोंसे युक्त थे, नाना लक्षणोंसे विभूषित थे, जिनके हाथ अत्यन्त सुकुमार थे, जिनकी दोनो जाँघे गोल तथा स्थूल थी ॥५८॥ जिनके दोनों चरण कछुबेके शृणुभागके समान महातेजस्वी तथा सुकुमार थे, जो चन्द्रमाकी किरणरूपी अङ्गुरोंसे लाल लाल दीपनेवाली नगावलीसे उज्वल थे ॥५९॥ जो अचोभ्य धैर्यसे गम्भीर थे, जिनका शरीर मानो वज्रका समूह ही था, अथवा समस्त सुन्दर वस्तुओंको एकत्रितकर ही मानो जिनकी रचना हुई थी ॥६०॥ जो महाप्रभावसे युक्त थे, न्यग्रोध अर्थात् वट-वृक्षके समान जिनका मण्डल था, जो प्रिय खोंके बिरहके कारण चालसिंहके समान व्याकुल थे ॥६१॥ जो इन्द्राणोंसे रहित इन्द्रके समान, अथवा रोहिणीसे रहित चन्द्रमाके समान जान पड़ते थे, जो रूप तथा सौभाग्य दोनोंसे युक्त थे, समस्त शास्त्रोंमें निपुण थे ॥६२॥ शूर-वीरताके माहात्म्यसे युक्त थे तथा मेघा-सद्बुद्धि आदि गुणोंसे युक्त थे । ऐसे श्रीरामको देखकर हनुमान् शोभको प्राप्त हुआ ॥६३॥

तदनन्तर जो रामके प्रभावसे वशीभूत हो गया था और उनके शरीरकी कान्तिके समूहसे जिसका शरीर आलिङ्गित हो रहा था ऐसा हनुमान् संभ्रममें पड़ विचार करने लगा ॥६४॥ कि यह वही दशरथके पुत्र लक्ष्मीमान् राजा रामचन्द्र हैं, लोकश्रेष्ठ लक्ष्मण जैसा भाई जिनका आशान्तरि है ॥६५॥ उस समय युद्धमें जिनका चन्द्रतुल्य ह्यत्र देखकर साहसगति की वह वैताली विद्या निकल गई ॥६६॥ मेरा जो हृदय पहले इन्द्रको देखकर भी कम्पित नहीं हुआ यह आज इन्हें देखकर परम शोभको प्राप्त हुआ है ॥६७॥ इस प्रकार आश्चर्यको प्राप्त हुआ हनुमान् इनके गुणोंका अनुसरण कर कमललोचन रामके पास पहुँचा ॥६८॥ जिनका चित्त हर्षित हो रहा था ऐसे राम, लक्ष्मण आदिने इसे देख दूरसे ही उठाकर यथाक्रमसे इसका आलिङ्गन किया ॥६९॥ परस्पर इक दूसरेको देखकर तथा विनयके योग्य वार्तालापकर सब

तत्र भद्रासने रम्ये स्थितः काकुत्स्थनन्दनः । केयूरभूपितभुजो ज्वलंक्ष्मया समन्ततः ॥७१॥  
 स्वच्छनीलाम्बरधरश्चूडामणिरिवोज्ज्वलः । राजा वरहारेण सोडुचन्द्र इवोद्गातः ॥७२॥  
 दिव्यपीताम्बरधरो हारकेयूरकुण्डली । सुमित्रातनयो रेजे सतडिङ्गलदो यथा ॥७३॥  
 वानराभोगमुकुटः सुरधारणविक्रमः । अभात्सुग्रीवराजोऽपि लोकपाल इवोजितः ॥७४॥  
 विराधितः कुमारोऽपि सौमित्रेः पृष्ठतः स्थितः । अलक्ष्यत नृसिंहस्य चक्ररत्नमिवीजसा ॥७५॥  
 हनुमान्पथल रेजे पद्मनाभस्य धीमतः । सर्मापे पूर्णचन्द्रस्य स्फीतो बुध इवोदितः ॥७६॥  
 सुगन्धिमाल्यवस्त्राद्यैरलङ्कारैश्च भूपितौ । अङ्गाङ्गदावै भासेतां यमवैश्रवणाविव ॥७७॥  
 नलनीलप्रभृतयः शतशोऽन्ये च पाधिवाः । आसीना रेजुरत्यन्तमावृत्य रघुनन्दनम् ॥७८॥  
 पद्मसद्वन्धताम्बूलगन्धसङ्गतमारुता । विभूषणकृतोद्योता सा समेन्द्रसभोपमा ॥७९॥  
 विस्मित्य सुचिरं राम प्रीतः पावनिरब्रवीत् । स्मरन् न गुणा ग्राह्या भवतो रघुनन्दन ॥८०॥  
 इहापि निखिले लोके दृश्यते स्थितिरादृशो । किमपि प्रियवक्त्राणां प्रत्यक्षगुणकीर्तनम् ॥८१॥  
 आसीद्यस्याधिमाहात्म्यं श्रुतमस्माभिरुज्जितम् । दृष्टः सखहितः स त्वं सखवान् वक्षुषा स्वयम् ॥८२॥  
 सर्वसौन्दर्ययुक्तस्य गुणरत्नाकरस्य ते । शुभ्रेण यशसा राजन् जगदेतदलङ्कृतम् ॥८३॥

नाना प्रकार तालियोंसे सुशोभित अपने-अपने आसनोंपर बैठ गये ॥७०॥ वहाँ जो उत्तम आसनपर विराजमान थे जिनकी भुजा बाजूबन्दसे सुशोभित थी, जो लक्ष्मीके द्वारा सब ओरसे देदीप्यमान थे जो स्वच्छ नीलवस्त्र धारण किये हुए थे तथा उत्तम हारसे सुशोभित थे ऐसे श्रीराम नक्षत्रसहित उदित हुए चन्द्रमाके समान जान पड़ते थे ॥७१-७२॥ दिव्य पीताम्बरको धारण करने वाले तथा हार केयूर और कुण्डलोसे अलंकृत लक्ष्मण बिजली सहित मेघके समान सुशोभित हो रहे थे ॥७३॥ जिसका सुविरल मुकुट वानरके चिह्नसे युक्त था, तथा देवगज—ऐरावतके समान जिसका पराक्रम था ऐसा सुग्रीवराजा भी अतिशय बलवान् लोकपालके समान सुशोभित हो रहा था ॥७४॥ लक्ष्मणके पीछे बैठा विराधित कुमार भी अपने तेजसे ऐसा दिखाई देता था मानो नारायणके समीप रक्खा हुआ चक्ररत्न ही हो ॥७५॥ अतिशय बुद्धिमान् रामचन्द्रके समीप हनुमान् भी ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो पूर्णचन्द्रके समीप उदित हुआ अत्यन्त देदीप्यमान बुधग्रह ही हो ॥७६॥ सुगन्धित माला तथा वस्त्रादि एवं अलंकारोंसे अलंकृत अङ्ग और अङ्गद यम तथा वैश्रवणके समान सुशोभित हो रहे थे ॥७७॥ इनके सिवाय रामको घेर कर बैठे हुए नल नील आदि सैकड़ों अन्य राजा भी उस समय अत्यधिक सुशोभित हो रहे थे ॥७८॥ नाना प्रकारकी उत्तम गन्धसे युक्त ताम्बूल तथा सुगन्धित अन्य पदार्थोंके समागमसे जहाँ वायु सुगन्धित हो रही थी तथा जहाँ आभूषणोंके द्वारा प्रकाश फैल रहा था ऐसी घट्ट सभा इन्द्रकी सभा के समान जान पड़ती थी ॥७९॥

तदनन्तर चिरकाल तक आश्चर्यमें पड़कर प्रीतियुक्त हनुमान्ने रामसे कहा कि हे राघव ! यद्यपि आपके गुण आपके ही समस्त नहीं कहना चाहिए क्योंकि इस लोकमें भी ऐसी ही रीति देयी जाती है फिर भी प्रत्यक्ष ही आपके गुण कथन करनेकी उत्कट लालसा है सो ठीक ही है क्योंकि जो प्रिय वक्ता हैं उन्हें प्रत्यक्ष ही गुणोंका कथन करना अद्भुत आङ्गाङ्कारी होता है ॥८०-८२॥ जिनका बलपूर्ण लोकोत्तर माहात्म्य हमने पहलेसे सुन रक्खा था उन प्राणि हितकारी धैर्यशाली आपको मैं स्वयं नेत्रोंसे देख रहा हूँ ॥८२॥ हे राजन् ! आप सम्पूर्ण सौन्दर्यसे युक्त हैं,

धनुलम्बोदये लम्बः सहस्रामारचिते । सीतास्वयंवरेज्ज्माभिः श्रुतस्तव पराक्रम' ॥८४॥  
 पिता दशरथो यस्य यस्य भामण्डलः सुहृन् । धाता यस्य च सीमिप्रिः स त्वं राम जगत्पतिः ॥८५॥  
 अहो शक्तिरहोरूपमेव नारायणः स्वयम् । समुद्रावर्तचापिरो यस्तान्नाकरणे रतः ॥८६॥  
 अहो धैर्यमहो त्यागो यत्पितुः पालयन् वचः । महादतिभयाकारं प्रविष्टो दण्डक वनम् ॥८७॥  
 पृथक् कुरते वन्तुमुपेक्ष त्रिदशाधिपः । अहो त्वया नाथ कृत् यदस्माकमतिप्रियम् ॥८८॥  
 सुग्रीवरूपसम्पन्नं हत्वा मयति साहसम् । यऋषिध्वजवंशस्य कलङ्को दूरमुत्थितः ॥८९॥  
 विद्यावल्विधिज्ञैर्यद्यस्य मायामयं वपुः । अस्माभिरपि नो सन्न दुर्जेयं च विशेषतः ॥९०॥  
 तेन सुग्रीवरूपेण गृहीतुं प्लावग बलम् । दर्शनादेव युष्माक तद्रूपं तस्य निःमृतम् ॥९१॥  
 वपुं प्रत्युपकार यो न शक्तोऽप्युपकारिणः । सुलमां भावशुद्धिं स तस्मै न कुरते कुतः ॥९२॥  
 का तस्य बुद्धिन्यायिषु भजेदेकमपि षण्णम् । यः कृतस्योपकारस्य विशेष नात्रबुध्यते ॥९३॥  
 स्वपाकादपि पार्षाद्यान् लुब्धकादपि निष्कृण् । असम्प्राप्यः सता नित्य योऽकृतज्ञो वराजमः ॥९४॥  
 स्वशरीरमपि त्यक्त्वा सत्य वयमनन्यगाः । सर्वे समुद्युताः कर्तुमुपकार तव प्रभो ॥९५॥  
 यत्त्वा प्रणोयन्पित्यामि सिद्धदाधिपतिं वुधम् । तव पत्नीं महाबाहो स्वरावानानयाम्यहम् ॥९६॥  
 सीताया चन्द्रनाम्भोजं प्रसन्नेन्दुमिवोदितम् । सन्देहेन विनिर्मुक्तं शीघ्रं पर्यति राघव ॥९७॥

तथा गुणरूपी रत्नोक्ती आकर अर्थात् रत्नान् अथवा समुद्र हैं । आपके शुभल यरासे यह संसार अलंकृत हो रहा है ॥८३॥ हे नाथ ! वञ्चावर्त धनुषकी प्राप्तिसे जिसका अभ्युदय हुआ था तथा एक हजार देव जिसकी रक्षा करते थे ऐसे सीताके स्वयंवरमें आपको जो पराक्रम प्राप्त हुआ था वह सब हमने सुना है ॥८४॥ दशरथ जिनका पिता है, भामण्डल जिनका मित्र है, और लक्ष्मण जिनका भाई है, ऐसे आप जगन्के स्वामी राजा राम हैं ॥८५॥ अहो ! आपकी शक्ति अद्भुत है, अहो ! आपका रूप आश्चर्यकारी है कि सागरावर्त धनुषका स्वामी नारायण स्वयं ही जिनकी आज्ञा पालन करनेमें तत्पर है ॥८६॥ अहो ! आपका धैर्य आश्चर्यकारी है, अहो ! आपका त्याग अद्भुत है जो पिताके वचनका पालन करते हुए आप महाभय उत्पन्न करनेवाले दण्डक वनमें प्रविष्ट हुए हैं ॥८७॥ हे नाथ ! आपने हम लोगोंका जो उपकार किया है वह न तो भाई ही कर सकता है और न संतुष्ट हुआ इन्द्र ही ॥८८॥ आपने सुग्रीवका रूप धारण करनेवाले साहस-गतिको युद्धमें मारकर वानरवंशका कलंक दूर किया है ॥८९॥ विद्यावल्की विधिके जाननेवाले हम लोग भी जिसके मायामय शरीरको सहन नहीं कर सकते थे तथा हम लोगोंके लिए भी जिसका जीतना कठिन था उस सुग्रीव रूपधारी साहसगतिये वानर वंशी सेनाको प्राप्त करनेके लिए कितना प्रयत्न किया परन्तु आपके दर्शनमात्रसे उसका वह रूप निकल गया ॥९०-९१॥ जो अत्यन्त उपकारी मनुष्यका प्रत्युपकार करनेके लिए समर्थ नहीं है वह उसके त्रिपयमें भावशुद्धि क्यों नहीं करता अर्थात् उसके प्रति अपने परिणाम निर्मल क्यों नहीं करता जब कि यह भावशुद्धि मिलसुल हो सुलभ है ॥९२॥ जो मनुष्य, किये हुए उपकार की विशेषताको नहीं जानता है उसको एक अज्ञके लिए भी न्यायमें बुद्धि कैसे हो सकती है ? ॥९३॥ जो नाथ मनुष्य अकृतज्ञ है वह चाण्डालसे भी अधिक पापी है, शिकारीसे भी अधिक निर्दय है और सत्पुरुषोंसे निरन्तर घावांलाप करनेके लिए भी योग्य नहीं है ॥९४॥ हे प्रभो ! हम सब किसी अन्य की शरणमें न जाकर आपकी ही शरणमें आये हैं और सचमुच ही अपना शरीर छोड़कर भी आपका उपकार करनेके लिए उद्यत हैं ॥९५॥ हे महाबाहो ! मैं जाकर राघवको समझाऊंगा । वह बुद्धिमान है अतः अवश्य समझेगा और मैं शीघ्र ही आपकी पत्नीको वापिस ले आता हूँ ॥९६॥ हे राघव !

मन्त्रा जाम्बूनदोऽशोचततो वाक्य पर हितम् । वत्स वत्स मरुपुर 'बमेकोऽस्माकमाश्रय ॥६८॥  
 अप्रमत्तेन गन्तव्य लङ्का रावणपालिताम् । न विरोध क्वचित् कार्यं कदाचित् केनचिसह ॥६९॥  
 एवमस्त्विति सम्भाष्य त सम्प्रस्थितमुन्नतम् । विलोक्य परमा प्राति पद्मनाभ समागमत् ॥१००॥  
 पुन पुन समाह्वय मार्कति चारलक्ष्णम् । सर्वादर जगादेद स्फाता राजावलोचन ॥१०१॥  
 मद्वाक्यादुच्यता साता ख्विद्योगाद् स राघव । अधुना विन्दते साध्वि न मनोनिर्वृति क्वचित् ॥१०२॥  
 अत्यन्त तदह मन्ये हृत पौरपमात्मन । प्रतिरोध प्रपन्नसि वर्तमानेऽपि यन्मयि ॥१०३॥  
 वेदि निर्मलशालाश्या यथा त्व मदनुव्रता । जावित<sup>३</sup> चान्द्रसि स्ववत्तु मद्द्वियोगेन दु खिता ॥१०४॥  
 अह तथापि सद्गच्छे दु समाधानमृद्युना । धार्यन्ता मैथिलि<sup>४</sup> प्राणा न जान त्यक्तुमर्हसि ॥१०५॥  
 दुर्लभ सद्गमो भूय पूजित संबन्तुषु । ततोऽपि दुर्लभो धर्मो विनेन्द्रवदनोद्गत ॥१०६॥  
 दुर्लभादप्यह तस्माभरण सुसमाहितम् । तस्मिन्नलति जन्मेद तुपनि सारमाहितम् ॥१०७॥  
 इद च प्रययोपादि प्रियायै मम जावत । सतत सस्तुत देवमङ्गुलीयकमुत्तमम् ॥१०८॥  
 वायुपुत्र द्रुत गवा सातायास्त महाप्रभम् । ममापि प्रत्ययकर चूडामणिमिहानय ॥१०९॥  
 यथाशापयसा युक्त्वा रत्नवानरमौलिभृत् । कृताञ्जलिपुटो नचा सौमित्रिं च समाञ्जलि ॥११०॥  
 यहिविनिययौ हृष्ट पूर्वमाणो विभूतिभि । शोभयन् तेजसा सर्व सुप्रोबभवनाजिरम् ॥१११॥

इसमे सदेह नहीं कि तुम उदित हुए चन्द्रमाके समान निर्मल सीताका मुखकमल शीघ्र ही देखोगे ॥६७॥

तदनन्तर सुग्रीवके मन्त्री जाम्बूनदने परम हितकारी वचन कहे कि हे वत्स हनुमन् । हम लोगका आधार एक तू ही है ॥६८॥ अत तुम्हें सावधान होकर रावणके द्वारा पालित लका जाना चाहिए और कहीं कभी किसीके साथ विरोध नहीं करना चाहिए ॥६९॥ 'एवमस्तु'—'ऐसा ही हो' यह कहकर उदार हनुमान् लकाकी ओर प्रस्थान करनेके लिए उद्यत हुआ सो उसे देख राम परम प्रीतिको प्राप्त हुए ॥१००॥ विदलित कमललोचन रामने सुन्दर लक्ष्णोंके धारक हनुमान्को बार बार बुलाकर बड़े आदरके साथ यह कहा कि तुम मेरी ओरसे सीतासे कहना कि हे साध्वि । इस समय राम तुम्हारे वियोगसे किसी भी वस्तुमें मानसिक शान्तिको प्राप्त नहीं हो रहे हैं—उनका मन किसी भी पदार्थमें नहीं लगता है ॥१०१-१०२॥ मेरे रहते हुए भी जो तुम अन्यत्र प्रतिरोध—रुकावटको प्राप्त हो रही हो सो इसे मैं अपने पौरुषका अत्यधिक घात समझता हूँ ॥१०३॥ तुम जिस प्रकार निर्मल शीलव्रतसे सहित हो तथा एक ही व्रत धारण करता हो उससे समझता हूँ कि तुम मेरे वियोगसे दुरी होकर यद्यपि जीवन छोड़ना चाहती होगी पर हे सुमुनि । तो भी स्रोटे परिणामासे मरना व्यर्थ है । हे मैथिलि । प्राण धारण करो । जीवनका त्याग करना उचित नहीं है ॥१०४-१०५॥ सर्व वस्तुओंका पुन उत्तम समागम प्राप्त होना दुर्लभ है और उससे भी दुर्लभ अरहन्त भगवान्के सुप्रारविन्दसे प्रकट हुआ धर्म है ॥१०६॥ यद्यपि उक्त धर्म दुर्लभ है तो भी समाधि मरण उसकी अपेक्षा दुर्लभ है क्योंकि समाधि मरणके बिना यह जीवन तुपके समान साररहित देखा गया है ॥१०७॥ और प्रियाके लिए मेरे जीवित रहनेका प्रत्यय—विश्रान्त उत्पन्न हो जाये इसलिय यह सदाकी परिचित उत्तम अगृही उसे दे देना ॥१०८॥ तथा हे पवनपुत्र । तुम शीघ्र हा जाकर मुझे विश्वास उत्पन्न करनेवाला सीताका महा कात्तिकाम् चूडामणि यहाँ ले आना ॥१०९॥ 'जैसा आज्ञा हो' यह कह कर रत्नमय वानरसे चिह्नित मुगुत्को धारण करनेवाला हनुमान राम तथा लक्ष्मणको हाथ जोड़ नमस्कार कर बाहर निवल आया । उस समय यह अत्यन्त हर्षित था, विभूतियासे युक्त था और अपने तेजसे सुमाधके भयन



सन्दिदेश च सुप्रिय यात्रदागमन मम । स्थातव्य तात्रद्वयैव प्रमादपरिवर्जिते ॥११०॥  
 विमान चारुशिखरमारुढो मारुतिस्ततः । रिभाति मत्सक मेराश्रय्यान्वय इवोज्ज्वल ॥११३॥  
 प्रथयी परया घृत्या नितरुद्रप्रोपशोभित । विलम्बस्मैसङ्काशैश्चामरैरुपनीवित ॥११४॥  
 वायुशर्वसमैरथैर्जङ्गमैर्द्रिममैर्गणैः । सैन्ध्वस्त्रिदशमङ्काशैर्नैगाम परितो वृत ॥११५॥  
 एव युक्तो महाम्यूष्या रामादिभिर्हर्षित । समाश्रय्य रवेर्मागंमघाम्यामुनिरन्तरम् ॥११६॥

### उपजातिवृत्तम्

पूर्णं जगत्क्षिति जन्तुवर्गानानाविधैरुत्तमभोगयुक्तैः ।  
 कश्चित्तु तेषां परमार्थकृत्ये नित्युज्यते षण्परम यशस्तत् ॥११७॥  
 कृत परेणाप्युपकारयोग स्मरन्ति नित्यं वृत्तिनो मनुष्याः ।  
 तेषां न तुल्या भुवने शशाङ्को नवा कुबरो न रविर्न शक्र ॥११८॥

इत्यार्षे रविपेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे हनुमत्प्रस्थान नाम एकोनपञ्चाशत्तम पर्व ॥४८॥

सम्बन्धी समस्त आगनको क्षोभयुक्त कर रहा था ॥११०-१११॥ उनसे सुभाषसे कहा कि जब तक मैं न आ जाऊँ तब तक आप सबको यहीं साजधान होकर ठहरना चाहिए ॥११२॥

तदनन्तर हनुमान् सुन्दर शिखरसे युक्त विमान पर आरूढ हुआ ऐसा सुशोभित हो रहा था जैसा कि सुमेरुके शिखर पर देदीप्यमान चैत्यालय सुशोभित होता है ॥११३॥ तत्परचान् उसने परम कान्तिसे युक्त हो प्रयाण किया । उस समय वह सफेद छत्रसे सुशोभित था और उड़ते हुए हसोकी समानता करनेवाले चमर उस पर ढोरे जा रहे थे ॥११४॥ यह वायुके समान वेगशाली घोड़ों, बलते फिरते पर्वतोंके समान हाथियों और देवाके समान सैनिकासे घिरा हुआ जा रहा था ॥११५॥ इस प्रकार जो महाविभूतिसे युक्त था, तथा राम आदि जिसे ऊपरका दृष्टिकर देख रहे थे, ऐसा वह हनुमान् सूर्यके मार्गका उल्लङ्घन कर निरन्तर आगे बढ़ा जाता था ॥११६॥ गौतमस्यामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! यह समस्त संसार नाना प्रकारने उत्तम भोगोंसे युक्त जन्तुओंसे भरा हुआ है उनमेंसे कोई बिरला पुरुष ही परमार्थरूप कार्यम लगता है तथा परम यशको प्राप्त होता है ॥११७॥ जो उत्तम मनुष्य दूसरेके द्वारा किये हुए उपकारका निरन्तर स्मरण रखते हैं इस संसारमें उनके समान न चन्द्रमा है, न कुबेर है, न सूर्य है और न इन्द्र ही है ॥११८॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविपेणाचार्य कथित, पद्मपुराणम हनुमान्के प्रस्थानका वर्णन करनेवाला उनचासवों पर्व समाप्त हुआ ॥४८॥

## पञ्चाशत्तमं पर्व

अथासावाज्ञानो गच्छन्नम्बरे परमोदयः । स्वसारमिव वैदेहीमानिनीपुरराजत् ॥१॥  
 सुहृदाज्ञाप्रवृत्तस्य विनातस्य महात्मनः । शुद्धभावस्य तस्यासीदुत्सवः कोऽपि चेतसः ॥२॥  
 परदेवत प्रौढया दृष्ट्या स्थितस्य रविगोचरे । दिशां मण्डलमस्यासीच्छरीरावयवोपमम् ॥३॥  
 एता जिगमिषोरस्य महेन्द्रनगरोपमम् । महेन्द्रनगर एतेराभिमुख्यमुपागतम् ॥४॥  
 वेदिकापुण्डरीकार्भे प्रासादे शशिपाण्डुरैः । पर्वतस्य स्थित मूर्ध्नि तद्विदूरे प्रकाशते ॥५॥  
 वज्रपाणेरिवागुप्य<sup>१</sup> तस्मिन् बालिपुरोपमे । न बभूवतरां प्रीतिः तस्मादेवमचिन्तयत् ॥६॥  
 इदं शिपरिणो मुनिं तन्महेन्द्रपुर स्थितम् । महेन्द्रको नूरो यत्र दुर्मतिः सोऽवतिष्ठते ॥७॥  
 दुःखतापितसर्वाङ्गा माता येनागता मम । निर्वासिता मयि प्राप्ते कुञ्जिवास दुरात्मना ॥८॥  
 एषाऽसौ विजनेऽरण्ये गुहा यत्र स सन्मुनिः । पर्यङ्कयोगयुक्तामा नाम्नामितरगतिः स्थित<sup>२</sup> ॥९॥  
 भस्या भगवता तेन साधुवाच्यैः कृपाकृता । माता मां जनितारवासा प्रसूता बन्धुवर्जिता ॥१०॥  
 ध्रुव वेंसरिज कृच्छ्रं ध्रुवा<sup>३</sup> मानुरूपत्वम् । सावोश्च सङ्गम सैषा रम्या रम्या च मे गुहा ॥११॥  
 मातर शरणं प्राप्तां मम निर्वास्य यः कृती । व्यसनप्रतिदानेन महेन्द्रं किन्तु<sup>४</sup> त भजेत् ॥१२॥  
 अहयुरयमत्यन्तं मा ब्रिह द्वेष्टि सन्ततम् । महेन्द्र (महेन्द्रो) गर्भमेतस्य तस्मादपनयाम्यहम् ॥१३॥

अथानन्तर परम अभ्युदयको धारण करनेवाला हनूमान् आकारामे जाता हुआ ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो वहिन सीताको लेनेके लिए भामण्डल ही जा रहा हो ॥१॥ मित्र—श्रीरामकी आज्ञामे प्रवृत्त, वितयवान्, उदाराशय एवं शुद्धभावके धारक हनुमान्के हृदयमे उस समय कोई अद्भुत आनन्द छाया हुआ था ॥२॥ सूर्यके मार्गमे स्थित हनुमान् जब प्रौढ़ दृष्टिसे दिङ्मण्डलकी ओर देखता था तब उसे दिङ्मण्डल शरीरके अवयवोंके समान जान पड़ता था ॥३॥ लङ्काकी ओर जानेके लिए इच्छुक हनुमान्की दृष्टिके सामने राजा महेन्द्रका नगर आया जो इन्द्रके नगरके समान जान पड़ता था ॥४॥ वह नगर पर्वतके शिखर पर स्थित था तथा वेदिका पर स्थित सफेद कमलोंके समान आभाको धारण करनेवाले चन्द्रतुल्य धवल भवनोंके द्वारा दूरसे ही प्रकाशित हो रहा था ॥५॥ जिस प्रकार बालिके नगरमे इन्द्रको प्रीति नहीं हुई थी उसी प्रकार राजा महेन्द्रके उस नगरमे हनुमान्को कोई प्रीति उत्पन्न नहीं हुई अपितु उसे देखकर वह विचार करने लगा ॥६॥ कि यह पर्वतके शिखर पर राजा महेन्द्रका नगर स्थित है जिसमें कि वह दुर्गुद्धि राजा महेन्द्र निवास करता है ॥७॥ मेरे गर्भवासके समय दुःखसे भरी मेरी माता इसके नगर आई पर इस दुष्टने उसे निकाल दिया ॥८॥ तब मेरी माता निर्जन वनकी उस गुफामें—जिसमें कि पर्यङ्क योगसे अमितरगति नामा मुनि विराजमान थे—रही । इसी गुफामें उन दयालु मुनिराजने उत्तम वचनोंके द्वारा उसे सान्त्वना दी और बन्धुजनोंसे रहित अकेली रहकर उसने मुझे जन्म दिया ॥९-१०॥ इसी गुफामें माताको सिद्धसे उत्पन्न पत्र प्राप्त हुआ था और इसी गुफामें उसे मुनिराजका सन्निधान प्राप्त हुआ था इसलिए यह गुफा मुझे अत्यन्त प्रिय है ॥११॥ जो मेरी शरणागत माताको निकाल कर कृतकृत्य हुआ था उस महेन्द्रको अथ मैं पत्रका बदला देकर क्या उसकी सेवा करूँ ॥१२॥ यह महेन्द्र यज्ञ अर्हपारा है तथा मुझसे निरन्तर द्वेष रखता है इसलिए इसका गर्व अवश्य ही दूर करता हूँ ॥१३॥

प्रलम्भाम्बुदुन्दुदोदनादा दुन्दुमपस्ततः । महात्म्याक्रमैर्यश्च पटहाश्च ममाइताः ॥१४॥  
 प्माताः शङ्का जगत्कम्पा भटेः स्रष्टवैष्टिवैः । युद्धशाण्डैः समुत्कृष्टं ममुत्तामिनहेनिभिः ॥१५॥  
 ध्रुवा परवलं प्राप्तं महेन्द्रः सर्वमेवया । प्रत्येकत विनिःश्रम्य मेघसुन्दरिवाचलः ॥१६॥  
 सम्प्रहारीसनतो लनेहंप्रार्थ्यादञ्जितं बलम् । चापमुद्यम्य माहेन्द्रिः प्रातरद्वयी रयस्थितः ॥१७॥  
 हनुमानिषुमिस्तस्य धनुस्तित्तिमिरायतम् । चिच्छेद गुप्तिभिर्वीर्या यथामान ममुपियन्तम् ॥१८॥  
 चापं यावद्द्विर्तापं च गृह्णायात्कृत्मानसः । शरैस्तावद्दधान्मुनाः प्रचण्डात्मस्य वाजिनः ॥१९॥  
 रयात्ते विगताः शीघ्राश्रयला बभ्रुमुत्सृजम् । हर्षोऽगोचर मनसो मुष्णानि त्रिपरपिणः ॥२०॥  
 माहेन्द्रिद्वरथ सम्भ्रान्तो विमानं वरमाश्रितः । तदल्पस्य शरैः संस मन दुष्टमनेरिष ॥२१॥  
 माहेन्द्रिसुदितो भूयो विद्याबलविकारगः । पतत्रिचक्रकनकैर्युपुषेष्ठातभामुरैः ॥२२॥  
 विद्ययाऽनिलपुत्रोऽपि तं शस्त्रौघमवारयत् । यथात्मचिन्तया योगा परीपहृद्दग्गम् ॥२३॥  
 निर्दयोन्मुक्तशस्त्रोऽम्बावामृणानो महाग्निवत् । गृह्णतो वायुपुत्रेण गरुडेनेर पत्न्याः ॥२४॥  
 प्रासरोधं सुतं हृष्टा महेन्द्रः क्षोभलोहितः । रथो मारुतिमभ्यार राम सुप्रोवरूपवत् ॥२५॥  
 अक्रामैस्त्यन्दनः सोऽपि हारिहारो धनुर्धरः । शूरागामप्रगी दीप्तो मानुः पितरमभ्यगात् ॥२६॥

तदनन्तर ऐसा विचार कर उसने धूमते हुए मेघ-समूहके समान उद्य शब्द करनेवाली दुन्दुभिर्याँ, महा विकट शब्द करनेवालीँ भेरियाँ और नगाड़े चञ्जयाये ॥१४॥ उन्मूट चेष्टाओंको धारण करनेवाले योद्धाओंने जगन्को कँपा देनेवाले शङ्क फूँके तथा शस्त्रोंको चमकानेवाले रणवीर योद्धाओंने जोरसे गर्जना की ॥१५॥ पर बलको आया सुन, राजा महेन्द्र सर्व सेनाके साथ बाहर निकला और जिस प्रकार पर्वत, मेघसमूहको रोकता है उसी प्रकार उसने हनुमानके बलको रोका ॥१६॥ तदनन्तर लगी हुई चोटोंसे अपनी सेनाको नष्ट होती देख, छत्रचारी, तथा ग्ध पर बैठा हुआ राजा महेन्द्रका पुत्र धनुष तानकर सामने आया ॥१७॥ सो हनुमान तीन बाण छोड़ कर उसके लम्बे धनुषको उस तरह छेद डाला जिस तरह कि मुनि तीन गुप्तियोंके द्वारा उठते हुए मानको छेद डालते हैं ॥१८॥ वह व्याकुल चित्त होकर जब तक दूसरा धनुष लेता है तब तक हनुमानने तीव्रण बाण चलाकर उसके चञ्चल घोड़े रथसे छुड़ा दिये ॥१९॥ सो रथसे छूटे हुए वे चञ्चल घोड़े शीघ्र ही इधर-उधर इस प्रकार धूमने लगे जिम प्रकार कि विषयाभिलाषी मनुष्यको मनसे छूटी हुई इन्द्रियों इधर-उधर धूमने लगती हैं ॥२०॥ अथानन्तर महेन्द्रका पुत्र गवड़ा कर उत्तम विमान पर आरूढ हुआ सो हनुमानके वागोंसे वह विमान भी उस तरह स्पण्डित हो गया जिस तरह कि किसी द्युदिका मत स्पण्डित हो जाता है ॥२१॥ तदनन्तर विद्याके बलसे विकारको प्राप्त हुआ महेन्द्रपुत्र पुनः हर्षित हो अलातचक्रके समान देदीप्यमान बाण चक्र तथा कनक नामक शस्त्रोंसे युद्ध करने लगा ॥२२॥ तब हनुमानने भी विद्याके द्वारा उस शस्त्र समूहको उस तरह रोका जिस तरह कि योगी आत्मध्यानके द्वारा परीपहोंके समूहको रोकता है ॥२३॥ तदनन्तर जो निर्दयताके साथ शस्त्र छोड़ रहा था और प्रचण्ड अग्निके समान सब ओरसे आच्छादित कर रहा था ऐसे महेन्द्र पुत्रको हनुमानने उस तरह पकड़ लिया जिस तरह कि गरुड़ सर्पको पकड़ लेता है ॥२४॥ पुत्रको पकड़ा देण क्रोधसे लाल होता हुआ महेन्द्र रथ पर सवार हो हनुमानके सन्मुख उस तरह आया जिस तरह कि सुप्रोवरका रूप धारण करनेवाला कृत्रिम सुप्रोव रामके सन्मुख आया था ॥२५॥

तदनन्तर जिसका रथ सूर्यके समान देदीप्यमान था, जो सुन्दर हारका धारक था, धनुर्धारी था, शूरोर्म श्रेष्ठ था तथा अतिशय देदीप्यमान था ऐसा हनुमान् भी माताके पिता राजा

तयोरभूमद्वसत्य क्रकचासिशिलीमुखै । परस्परकृताघात वायुवरयाब्दयोरिव ॥२७॥  
 सिंहाविव महारोपी तैताबुद्धतबलान्वितौ । ज्वलस्फुलिङ्गरक्षाशो श्वसन्तौ भुजगाविव ॥२८॥  
 परस्परकृताक्षेपौ गर्वाहासस्फुटस्वनौ । धिक् ते शौर्यमहोयुद्धमियादिवचनोद्यतौ ॥२९॥  
 चतसु परम युद्ध मायाबलसमन्वितो । हाकारजयकारादि कारयन्तौ मुहुनिजै ॥३०॥  
 महेन्द्रोऽथ महावीर्यो विक्रियाशक्तिसङ्गत । क्रोधस्फुरितदेहधूमिमुंमोचायुधसहतिम् ॥३१॥  
 भुपुण्डा परशुन् वाणान् शतघ्नामुद्गरान् गदा । शिखराणि च शैलानां शालन्यप्रोधपादपान् ॥३२॥  
 पतैरन्यैश्च त्रिविधैरायुधैर्मरुसुत । न विव्यथे यथा शैलो महामेघकदम्बकै ॥३३॥  
 तद्व्यमयायया सृष्ट शस्त्रवर्षं महेन्द्रजम् । उल्काविद्याप्रभावेग वायुसुनुरचूर्णयत् ॥३४॥  
 उपय च रथे तस्य निपत्य सुमहाजव । ककुप्करिकराकारकराभ्या कृतरोधनम् ॥३५॥  
 मातामह समादाय बल विभ्रदनुत्तमम् । दत्तमायु<sup>१</sup>स्वन शूरै समारोहलिज रथम् ॥३६॥  
 उत्कालाङ्गूलपाणिं त दौहित्र परमोदयम् । प्रशसितु समारब्धो महेन्द्र<sup>२</sup> सौम्यया गिरा ॥३७॥  
 अहो ते वयस माहात्म्य परमेतन्मया श्रुतम् । पूर्वभासीदिदानीं तु नियत प्रत्यङ्गोचरम् ॥३८॥  
 आसाहेवेन्द्रदु द्वेऽपि निजितो यो न केनचित् । विजयार्थंनगस्थोद्धमहाविद्यायुधाकुले ॥३९॥

महेन्द्रके सम्मुख गया ॥३६॥ तदनन्तर वायुके वशीभूत दो मेघोमे जिस प्रकार परस्पर टक्कर होगी है उसी प्रकार उन दोनोंमे करोंत, खड़ग तथा वाणोंके द्वारा परस्पर एक दूसरेका घात करनेवाला महायुद्ध हुआ ॥२७॥ जो सिंहाके समान महाक्रोधी तथा उत्कट बलसे सहित थे, जिनके नेत्र देदीप्यमान तिलगाके समान लाल थे, जो सर्पोंके समान साँसें भर रहे थे—पुँकार रहे थे, जो एक दूसरेपर आक्षेप कर रहे थे, जिनके अहङ्कारपूर्ण हास्यका स्फुट शब्द हो रहा था, 'तेरी शूर वीरताको धिक्कार है, अहो' युद्ध करने चला है' जो इस प्रकारके शब्द कह रहे थे, जो मायाबलसे सहित थे और जो अपने पक्षके लोगसे कभी हा हाकार कराते थे तो कभी जय-जयकार कराते थे ऐसे हनूमान् तथा राजा महेन्द्र दोनों ही चिरकाल तक परमयुद्ध करते रहे ॥२८-३०॥ तदनन्तर जो महाबलवान् था, विक्रिया शक्तिसे सगत था और क्रोधसे निसके शरीरकी शोभा देदीप्यमान हो रही थी ऐसा महेन्द्र हनूमान्के ऊपर शस्त्रोंका समूह छोड़ने लगा ॥३१॥ भुपुण्डा, परशु, वाण, शतघ्नी, मुद्गर, गदा, पहाड़ोंके शिखर और सागौन तथा बलके वृक्ष उसने हनूमान्पर छोड़े ॥३२॥ सो इनसे तथा नाना प्रकारके अन्य शस्त्रोंके समूहसे हनूमान् उस तरह विचलित नहीं हुआ जिस प्रकार कि महामेघोंके समूहसे पर्वत विचलित नहीं होता है ॥३३॥ राजा महेन्द्रकी दिव्यमायासे उत्पन्न शस्त्रोंकी उस वर्षाको पवन-पुत्र हनूमान्ने अपनी उल्का विद्याके प्रभावसे चूर चूर कर डाला ॥३४॥ और उसी समय वेगसे भरे, दिग्गजाके शुण्डादण्डके समान विशाल हाथासे युक्त तथा उत्तम बलको धारण करनेवाले हनूमान्ने मातामह महेन्द्रके रथपर उड़लकर उसे रोकनेपर भी पकड़ लिया। शूर वीराने उसे सायुवाद् दिया और वह पकड़े हुआ मातामहको लेकर अपने रथपर आरूढ़ हो गया ॥३५-३६॥ यहाँ निसकी विक्रियाश्रुत लाङ्गल और हाथोंसे उल्काएँ निकल रही थीं तथा जो परम अभ्युदयको धारण करनेवाला था ऐसे दौहित्र-हनूमान्की वह महेन्द्र सौम्य वाणों द्वारा स्तुति करने लगा ॥३७॥ कि अहो वत्स ! तेरा यह उत्तम माहात्म्य यद्यपि मैंने पहलेसे सुन रक्खा था पर आन प्रत्यक्ष हा देग लिया ॥३८॥ विजयार्थं पर्वतके ऊपर महाविद्याओं तथा शस्त्रोंसे आगुल इत्र

१ वायुरशमनपरिच । २ मुद्घृतसन्त्वितो म० । ३ शिपरिणि च म० । ४ मूज रान म० ।

अयी प्रसन्नकीर्तिं पुत्रो माहात्म्यमद्भतः । त्वया पराजितः प्राप्तो शेषुं धिप्रमिदं परम् ॥१०॥  
 अहो पराणमो भद्र तत्र धैर्यमहो परम् । अहो रूपमनीषम्यमहो संग्रामगीण्डता ॥११॥  
 प्रजातेन त्वया वायु मदानिश्चययोगिना । कुलमुद्योतितं सर्वमस्मदायं सुकर्मणा ॥१२॥  
 विनयाद्यैर्गुणैर्गुणो राशिः परमनेजसः । कल्पपरमगुणैर्यथं करारूपैस्तुष्टतः ॥१३॥  
 जगतो गुरुभूतस्त्वयं वान्धववानी समाश्रयः । दुःखादिव्यप्रतप्तानां सम्मत्तानां घनापनः ॥१४॥  
 इति प्रयास्य सं स्नेहाद्गुदुदृष्ट्वाचञ्चलकरः । अनिघ्नमस्तके तत्र पुलकी परिपश्यते ॥१५॥  
 प्रणम्य वायुपुत्रोऽपि तमायं विहिताञ्जलिः । अनितिश्चद्विनीतात्मा शृणाद्यातोऽन्यतामिव ॥१६॥  
 मया शिशुतया त्रिभिर्द्वार्यं यत्ते विचेष्टितम् । दोषमेवं समस्त मे प्रतीक्ष्य चन्तुमर्हसि ॥१७॥  
 समस्त च समास्थातं तेनगमनकारणम् । पद्मागमादिकं यावद्दामागमनमारतम् ॥१८॥  
 अहमायं गमित्यामि त्रिवृट्मतिकारणम् । त्वं किष्किन्धपुरं गत्वा कार्यं दाशारथेः वरु ॥१९॥  
 इत्युक्त्वा वायुसम्भूतः स्वमुपरय ययी सुगम् । त्रिवृट्मिमुष्यः चित्रं सुरलोकमिवावरः ॥२०॥  
 गत्वा महेन्द्रनेतृश्च तनयां नयकांविदः । प्रसन्नकीर्तिना सार्द्धं वामलः समरजयन् ॥२१॥  
 मातापितृसमायोगं स्तोदरस्य च दर्शयम् । अञ्जनासुन्दरी प्राप्य जगाम परमां घृतिम् ॥२२॥  
 महेन्द्रं निभृतं श्रुत्वा किष्किन्धाभिमुखोऽग्रामन् । विरापितप्रभृतयस्तोपमाययुक्तमम् ॥२३॥

विद्याधरके युद्धमें भी जो किसीके द्वारा पराजित नहीं हुआ था तथा जो माहात्म्यसे युक्त था ऐसा मेरा पुत्र प्रसन्नकीर्ति तुमसे पराजित हो चन्धनको प्राप्त हुआ, यह बड़ा आश्चर्य है ॥३६-४०॥ अहो भद्र ! तुम्हारा पराक्रम अद्भुत है, तुम्हारा धैर्य परम आश्चर्यकारी है, अहो तुम्हारा रूप अनुपम है और युद्धकी सामर्थ्य भी आश्चर्यकारी है ॥४१॥ हे वत्स ! निश्चयको धारण करनेवाले तुमने हमारे पुण्योदयसे जन्म लेकर हमारा समस्त कुल प्रकाशमान किया है ॥४२॥ तू विनयादि गुणोंसे युक्त है, परम तेजकी राशि है, कल्याणकी मूर्ति है तथा कल्पवृत्तके समान उदयको प्राप्त हुआ है ॥४३॥ तू जगत्का गुरु है, वान्धवजननोंका आधार है और दुःखरूपी सूर्यसे सन्तप्त समस्त मनुष्योंके लिए मेघस्वरूप है ॥४४॥ इस प्रकार प्रशंसा कर स्नेहके कारण जिसके नेत्रोंसे अश्रु छलक रहे थे तथा जिसके हाथ हिल रहे थे, ऐसे मातामह महेन्द्रने उसका मन्तर सूँवा और रोमाञ्चित हो उसका आलिङ्गन किया ॥४५॥ वायुपुत्र—हनुमानने भी हाथ जोड़कर उन आर्य-मातामहको प्रणाम किया तथा क्षमाके प्रभावसे विनीतात्मा होकर वह क्षणभरमें ऐसा हो गया मानो अन्य रूपताकी ही प्राप्त हुआ हो ॥४६॥ उसने कहा कि हे आर्य ! मैंने लड़कपनके कारण आपके प्रति जो कुछ चेष्टा की है सो हे पूज्य ! मेरे इस समस्त अपराधको आप क्षमा करनेके योग्य हैं ॥४७॥ उसने रामचन्द्रके आगमनको आदि लेकर अपने आगमन तकका समस्त वृत्तान्त बड़े आदरके साथ प्रकट किया ॥४८॥ उसने यह भी कहा कि हे आर्य ! मैं अत्यावरयक कारणसे त्रिवृटाचलकी जाता हूँ तब तक तुम किष्किन्धपुर जाओ और श्रीरामका काम करो ॥४९॥ इतना कह हनुमान आकाशमें उड़कर शीघ्र त्रिवृटाचलकी ओर सुगपूर्वक इस प्रकार गया जिस प्रकार कि देव स्वर्गकी ओर जाता है ॥५०॥ नीति निपुण तथा स्नेहपूर्ण राजा महेन्द्र केतुने अपने प्रियपुत्र प्रसन्नकीर्तिके साथ जाकर पुत्री—अञ्जनाका सम्मान किया ॥५१॥ अञ्जना सुन्दरी, मातापिताके साथ समागम तथा भाईका दर्शन प्राप्तकर परम धैर्यको प्राप्त हुई ॥५२॥ राजा महेन्द्रको आया सुनकर किष्किन्धाका पति सुमीव उसे लेनेके लिए सन्मुख गया तथा विरापित आदि उत्तम सन्तोषको प्राप्त हुआ ॥५३॥

## घंशस्यंबृत्तम्

पुरा विशिष्टं चरितं कृतात्मनां सुचेतसामुत्तमथास्त्रेजसाम् ।  
 महामनामुन्नतगर्वशालिनो भवन्ति वरयाः पुरया धलान्वितः ॥५४॥  
 ततः समन्तादनुपाह्वय मानसं जना यतश्च सततं सुकर्मणि ।  
 फल यदीयं समवाप्य पुष्कल श्वेः समानामुपयाथ दीप्तताम् ॥५५॥

इत्यार्षे रविपेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे महेन्द्रदुहितासमागमामिधानं  
 नाम पद्माशतमं पर्व ॥५०॥

गौतम स्वामी कहते हैं कि कृतकृत्य, सुचेता, तथा उत्तम सुन्दर तेजको धारण करनेवाले पुण्यात्मा और जीवोंका पूर्व चरित ही ऐसा विशिष्ट होता है कि उन्नत गर्वसे सुशोभित धल-शाली मनुष्य उनके आधीन—आशाकारी होते हैं ॥५४॥ इसलिए हे भव्यजनों! सय ओरसे मनको रचाकर मया उस शुभ कार्यमें यत्न करो कि जिसका पुष्कल फल पाकर सूर्यके समान दीप्तताको प्राप्त होओ ॥५५॥

इम प्रसार थार्षे नामने प्रसिद्ध रविपेणाचार्य कवित पद्मपुराणमें महेन्द्रका  
 पुर्नकि साय ममागमका वर्णन करनेवाला पचाम्यां पर्व समाप्त हुआ ॥५०॥

## एकपञ्चाशत्तमं पर्व

श्रीशैलस्य विष्णुवृत्तैर्विमानस्यस्य गच्छतः । बभूव सुगुणैर्लुको द्वीपो दधिमुत्सुतरे ॥१॥  
यस्मिन् दधिमुखं नाम प्रासादैर्दधिपाण्डुरैः । पुरं परममायामि चादकाञ्चनतोरणम् ॥२॥  
नवमेघप्रतीकाशैरुद्यानैः कुसुमोज्ज्वलैः । प्रदेशा यस्य शोभन्ते सनत्प्राग्बरोपमाः ॥३॥  
स्फटिकस्वच्छकलिला वाप्यः सोपानशोभिताः । पद्मोपलादिभिरद्वया यत्र भान्ति ह्यधिन् प्रचिन् ॥४॥  
तस्मिन् विप्रकृष्टे<sup>१</sup> तु देशे नगरगोचरात् । बृहत्तुगलतावल्लीद्रुमकण्टकसङ्घटे ॥५॥  
शुष्कापकृतसंरोधे रौद्राभापदनादिते । घोरैऽतिपरुषाकारे प्रचण्डानिलचञ्चले ॥६॥  
पतितोदारवृष्टीषु महाभयतमावहे । विशुद्धपारसरसि कङ्कगृह्णादित्सेविते ॥७॥  
<sup>२</sup>दुर्वने विजने राजन्<sup>३</sup> सायुधुग्मं नभश्चरम् । अष्टह लम्बितभुजं योगमुप्रमुपाश्रितम् ॥८॥  
तस्य श्लेशचतुर्भांगमात्रदेशे स्वब्रह्मिताः । मनोज्ञनयनाः कन्याः सितवस्त्रा जटाधराः ॥९॥  
तप्पन्धे विधिवद्घोरं तपस्वितम् सुचेतसः । शोभालोकत्रयस्येव नवभूषणतां गताः<sup>४</sup> ॥१०॥  
अथासौ सायुधुगलं प्रत्यमानं महागतिना । अञ्जनातनयोऽपश्यत् पादपद्मयनिश्चलम् ॥११॥  
असमाह्वयताः ताश्च कन्याः लावण्यपूरिताः । उर्ध्वमद्भूमजालेन स्पृष्टा बहलवतिना ॥१२॥  
अथातस्थौ सनिर्ग्रन्थौ युक्तयोगी शिवस्पृही । स्वक्तात्प्रागादिसङ्ग्रेच्छौ निरस्तांगुक्रभूपणौ ॥१३॥

अथानन्तर जब हनुमान् विमानमें बैठकर आकाशमें बहुत ऊँचे जा रहा था तब उत्तम गुणोंसे युक्त दधिमुख नामक द्वीप बीचमें पड़ा ॥१॥ उस दधिमुख द्वीपमें एक दधिमुख नामका नगर था जो वहाँके समान सफेद महलोंसे सुशोभित तथा लम्बायमान स्वर्णके सुन्दर तोरणोंसे युक्त था ॥२॥ नवीन मेघके समान श्याम तथा पुष्पोंसे उज्ज्वल उद्यानोंसे उसके प्रदेश ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो नक्षत्रोंसे सहित आकाशके प्रदेश ही हों ॥३॥ उस नगरमें जहाँ-तहाँ स्फटिकके समान स्वच्छ जलसे भरी, सीढ़ियोंसे सुशोभित एवं कमल तथा उत्पल आदिसे आच्छादित वापिकाएँ सुशोभित थीं ॥४॥ नगरसे दूर चलकर एक महाभयङ्कर वन मिला जो बड़े-बड़े वृक्षों, लताओं, वेलों, वृक्षों और कोंटोंसे व्याप्त था ॥५॥ वह वन सूखे वृक्षोंसे घिरा था, भयङ्कर जङ्गली पशुओंके शब्दसे शब्दायमान था, भयङ्कर था, अत्यन्त कठोर था, प्रचण्ड वायुसे चञ्चल था, गिरे हुए बड़े-बड़े वृक्षोंके समूहसे युक्त था, महाभय उत्पन्न करनेवाला था, अत्यन्त लारै जलके सरोवरोंसे सहित था, कङ्क, गृह्णा आदि पक्षियोंसे सेवित था तथा मनुष्योंसे रहित था । गौतमस्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! उस वनमें दो चारण ऋद्धिधारी मुनि आठ दिनका कठिन योग लेकर विराजमान थे । उनकी भुजाएँ नीचेकी ओर लटक रहीं थीं ॥६-८॥ उन मुनिवोंसे पावकोश दूरी पर तीन कन्याएँ, जिनके नेत्र अत्यन्त मनोहर थे, जो शुक्लवस्त्रसे सहित थीं, जटाएँ धारण कर रहीं थीं, शुद्ध हृदयसे युक्त थीं, तीन लोककी मानो शोभा थीं । और नूतन आमूषण स्वरूप थीं, विधिपूर्वक घोर तप कर रही थीं ॥६-१०॥

तदनन्तर हनुमान्ने देखा कि दोनों मुनि महाअग्निसे प्रस्त हो रहे हैं और वृक्ष युगलके समान निश्चल पड़े हैं ॥११॥ जिनका व्रत समाप्त नहीं हुआ था तथा जो लावण्यसे युक्त थीं ऐसी वे तीनों कन्याएँ भी निकलते हुए अत्यधिक धूमसे स्पष्ट हो रही थीं ॥१२॥ उन्हें देख

१. -मायाति म० । २. विप्रकृष्टेन म० । ३. घोरै पतिरुषाकारे म० । ४. दुर्जने म० । ५. राजन् म० । ६. गतः म० । ७. उर्ध्वमद्भूम- म० ।

## चंशस्थं वृत्तम्

पुरा विशिष्ट चरित वृत्तात्मनां मुचेतसामुत्तमचारुतेजसाम् ।  
 महात्मनामुन्नतगर्वशालिनो भवन्ति वश्याः पुरुषा बलान्विताः ॥५४॥  
 तत समन्तादनुपाख्य मानसं जना यत्तथ्व सतत सुकर्मणि ।  
 फल यदीय समगप्य पुष्कल रवे समानामुपयाथ दीप्तताम् ॥५५॥

इत्यार्षे रविपेणाचार्यश्रोत्रे पद्मपुराणे महेन्द्रदुहितासमागमाभिधानं  
 नाम पञ्चाशत्तमं पत्रं ॥५०॥



गौतम स्वामी कहते हैं कि कृतकृत्य, सुचेता, तथा उत्तम सुन्दर तेजको धारण करनेवाले पुण्यात्मा और जीवोंका पूर्व चरित ही ऐसा विशिष्ट होता है कि उन्नत गर्वसे सुशोभित बलशाली मनुष्य उनके आधीन—आज्ञाकारी होते हैं ॥५४॥ इसलिए हे भव्यजनो ! सब ओरसे मनको रक्षाकर सदा उस शुभ कार्यमें यत्न करो कि जिसका पुष्कल फल पाकर सूर्यके समान दीप्तताको प्राप्त होओ ॥५५॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध रविपेणाचार्य कथित पद्मपुराणमें महेन्द्रका पुत्रीके साथ समागमका वर्णन करनेवाला पचासवाँ पत्र समाप्त हुआ ॥५०॥





## एकपञ्चाशत्तमं पर्व

श्रांसैलस्य विद्युत्सर्वविमानस्यस्य गच्छतः । बभूव सुगुणैर्गुणो द्वीपो दधिमुण्डोऽन्तर ॥१॥  
 यस्मिन् दधिमुख नाम प्रामादुर्दधिपाण्डुरैः । पुर परममायामि<sup>१</sup> चारुकाञ्चनतोरणम् ॥२॥  
 नवमेघप्रताकाशैरद्यानैः कुमुमोऽम्बलैः । प्रदेशा यस्य शोभन्ते सनत्प्रामरपोपमाः ॥३॥  
 स्फटिकस्वच्छकलिला वाप्यः सोपानशोभिता<sup>२</sup> । पद्मोत्पलादिभिरक्षुणा यत्र भान्ति क्वचिन् क्वचिन् ॥४॥  
 तस्मिन् विप्रकृष्टे<sup>३</sup> तु देशे नगरगोचरान् । बृहत्तूणलतावर्लीद्रुमकण्टकसङ्घटे ॥५॥  
 शुष्कागतृत्तमरोधे रौद्रश्चापदनादिते । घोरेऽतिपरुषाकारे प्रचण्डानिलचञ्चले ॥६॥  
 पतितोदारवृक्षीधे महामयममावहे । विशुद्धचारसरसि बह्वृद्गादिसेविते ॥७॥  
 दुर्बने विजने राजन्<sup>४</sup> साधुयुग्मं नमश्चरम् । अष्टाह लम्बितमुजं योगमुग्रमुपाश्रितम् ॥८॥  
 तस्य श्लोथचगुर्मागमात्रदेशे ध्ववत्स्थिताः । मनोज्ञनयनाः कन्याः सितवस्त्रा जटाधराः ॥९॥  
 तप्यन्ते विधिवद्घोर तपस्तिन्मः मुचेतसः । शोभालोकप्रयस्येन नवभूषणतां गता<sup>५</sup> ॥१०॥  
 अधासी साधुयुगलं प्रस्यमान महाग्निना । भङ्गनातनयोऽपरयत् पादपद्मपनिश्चलम् ॥११॥  
 अममाह्नताः ताश्च कन्याः लावण्यपूरिताः । उद्धमद्धूमजालेन स्पृष्टा बहलवतिना ॥१२॥  
 अधातस्थौ मनिर्ग्रन्थौ युक्तयोगी शिवस्पृष्टौ । त्यक्तारागादिसङ्केष्टौ निरस्तांशुकभूपणौ ॥१३॥

अधानन्तर जब हनुमान् विमानमें बैठकर आकाशमें बहुत ऊँचे जा रहा था तब उत्तम गुणांसे युक्त दधिमुण्ड नामक द्वीप बीचमें पड़ा ॥१॥ उस दधिमुण्ड द्वीपमें एक दधिमुख नामका नगर था जो वहीके समान सफेद महलोसे सुशोभित तथा लम्बायमान स्वर्णके सुन्दर तोरणोंसे युक्त था ॥२॥ नवीन मेघके समान श्याम तथा पुष्पांसे उज्ज्वल उद्यानोंसे उसके प्रदेश ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो नक्षत्रोंसे सहित आकाशके प्रदेश ही हों ॥३॥ उस नगरमें जहाँ-तहाँ स्फटिकके समान स्वच्छ जलसे भरी, सीढ़ियोंसे सुशोभित एवं कमल तथा उत्पल आदिसे आच्छादित वापिकाएँ सुशोभित थीं ॥४॥ नगरसे दूर चलकर एक महाभयङ्कर वन मिला जो बड़े-बड़े वृक्षां, लताओं, बेलों, घुँघ्रां और कोंटोंसे व्याप्त था ॥५॥ वह वन सूर्ये वृक्षांसे घिरा था, भयङ्कर जङ्गली पशुओंके शब्दसे शब्दायमान था, भयङ्कर था, अत्यन्त कठोर था, प्रचण्ड वायुसे चञ्चल था, गिरे हुए बड़े-बड़े वृक्षांके समूहसे युक्त था, महाभय उत्पन्न करनेवाला था, अत्यन्त रगरे जलके सरोवरोंसे सहित था, कट्ट, गृद्ध आदि पक्षियोंसे सेवित था तथा मनुष्योंसे रहित था । गीतमर्यामी कहते हैं कि हे राजन् ! उस वनमें दो चारण श्रद्धिधारी मुनि आठ दिनका कठिन योग लेकर विराजमान थे । उनकी भुजाएँ नीचेकी ओर लटक रहीं थीं ॥६-८॥ उन मुनियोंसे पावकोरा दूरी पर तीन कन्याएँ, जिनके नेत्र अत्यन्त मनोहर थे, जो शुक्लवस्त्रसे सहित थीं, जटाएँ धारण कर रहीं थीं, शुद्ध हृदयसे युक्त थीं, चीन लोककी मानो शोभा थीं । और नूतन आभूषण स्वरूप थीं, विधिपूर्वक घोर तप कर रही थीं ॥९-१०॥

तदनन्तर हनुमान्ने देखा कि दोनों मुनि महाअग्निसे प्रस्त हो रहे हैं और वृत्त युगलके समान निश्चल लड़े हैं ॥११॥ जिनका व्रत समाप्त नहीं हुआ था तथा जो लावण्यसे युक्त थीं ऐसी वे तीनों कन्याएँ भी निश्चलते हुए अत्यधिक धूमसे स्पष्ट हो रही थीं ॥१२॥ उन्हें देखा

१. -मायामि म० । २. विप्रकृष्टेन म० । ३. घोरे पतिव्याकारे म० । ४. दुर्बने म० । ५. रात्र् म० । ६. गतः म० । ७. उद्गमद्गूम- म० ।

प्रलम्बितमहाबाहू प्रशान्तवदनाकृती । युगान्तापितसदृष्टी प्रतिमास्थानमाधितौ ॥१४॥  
 मृत्युर्जीवननिःकात्तावनघौ शान्तमानसौ । समप्रियाप्रियासङ्गौ समपापाणकाञ्चनौ ॥१५॥  
 दावेन<sup>२</sup> महता राजन् तेनात्यासन्नवर्तिना । अभिभूतौ समालोक्य वात्सल्य कर्तुमुद्यतः ॥१६॥  
 आकृष्य सागरजल मेघहस्तः ससम्भ्रमः । अवपंदुर्गतो व्योम्नि परम भक्तिसङ्गतः ॥१७॥  
 सुभृश तेन वद्धि स वारिपुरेण नाशितः । महाक्रोध इवोद्धतः चान्तिभावेन साधुना ॥१८॥  
 यावच्च कुरुते पूजां भक्त्या पवननन्दनः । तयोर्भेदन्तयोर्नानापुष्पादिद्रव्यसम्पदा ॥१९॥  
 तावत्ताः सिद्धससाध्या मेरु कृत्वा प्रदक्षिणम् । तत्सकाशमनुप्राप्ताः कुमार्यः सुमनोहराः ॥२०॥  
 प्रणेशुश्च सम तेन साधू ध्यानपरायणौ । विनयाम्बितया बुद्ध्या प्रशशसुश्च माहृतम् ॥२१॥  
 अहो जिनेश्वरे भक्तिर्ब्रजता कापि यद्दुतम् । त्वया तात परित्राता वय साधुसमाश्रयात् ॥२२॥  
 अस्मद्द्वारसमायातो महानयमुपप्लवः । स्तोत्रेनासौ न योगिम्यामहो नो भवितव्यता ॥२३॥  
 अथाञ्जनाःमजोऽष्टद्वेव सशुद्धमानसः । भवन्य इह निःशून्ये का वनेऽन्यन्तर्भाषणे ॥२४॥  
 अबोज्जयायसी तासा पुरे दधिमुखाह्वये । अत्र गन्धर्वराजस्य वय तिलोऽमरासुता ॥२५॥  
 प्रथमा चन्द्रलेखाख्या ज्ञेया विद्युत्प्रभा ततः । अन्या तरङ्गमालेति सर्वगोत्रस्य वल्लभा ॥२६॥

हनुमान्के हृदयमें उन सबके प्रति बड़ी आस्था उत्पन्न हुई । तदनन्तर जो योग अर्थात् ध्यानसे युक्त थे, मोक्ष की इच्छासे सहित थे, जिन्होंने रागादि परिग्रहकी इच्छा छोड़ दी थी, वस्त्र तथा आभूषण दूर कर दिये थे, भुजाएँ नीचेकी ओर लटका रखी थीं, जिनके मुखको आकृति अत्यन्त शान्त थी, युगप्रमाण दूरी पर जिनकी दृष्टि पड़ रही थी, जो प्रतिमा योगसे विराजमान थे, जीवन और मरणकी आकात्तासे रहित थे, निष्पाप थे, शान्तचित्त थे, इष्ट अनिष्ट समागममें मध्यस्थ थे, तथा पापाण और काञ्चनमें जो समभाव रखते थे ऐसे उन दोनों मुनियोंकी अत्यन्त निकटवर्ती बड़ी भारी दावानलसे आक्रान्त देख, हे राजन् ! हनूमान् वात्सल्यभाव प्रकट करनेके लिए उद्यत हुआ ॥१३-१६॥ भक्तिसे भरे हनूमान्ने शीघ्रतासे समुद्रका जल खींच, मेघ हाथमें धारण किया और आकाशमें ऊँचे जाकर अत्यधिक वर्षा की ॥१७॥ उस वरसे हुए जलप्रवाहसे वह दावाग्नि उस प्रकार शान्त हो गई जिस प्रकार कि उत्पन्न हुआ महाक्रोध, मुनिके क्षमाभावसे शान्त हो जाता है ॥१८॥ भक्तिसे भरा हनूमान् जवतक नाना प्रकारकी पुष्पादि सामग्रीसे उन दोनों मुनियोंकी पूजा करता है तब तक जिनके मनोरथ सिद्ध हो गये थे ऐसी वे तीनों मनोहर कन्याएँ मेरु पर्वतकी प्रदक्षिणा देकर उसके पास आ गईं ॥१९-२०॥ उन्होंने ध्यानमें तत्पर दोनों मुनियोंकी हनूमान्के साथ-साथ विनयपूर्वक नमस्कार किया तथा हनूमान्की इस प्रकार प्रशंसा की कि अहो ! तुम्हारी जिनेन्द्रदेवमें बड़ी भक्ति है जो शीघ्रतासे कहीं अन्यत्र जाते हुए तुमने मुनियोंके आश्रयसे हम सबकी रक्षा की ॥२१-२२॥ हमारे निमित्तसे यह महा उपद्रव उत्पन्न हुआ था सो मुनियोंको रक्षमात्र भो प्राप्त नहीं हो पाया । अहो ! हमारी भवितव्यता धन्य है ॥२३॥

अथानन्तर पवित्र हृदयके धारक हनूमान्ने उनसे इस प्रकार पूछा कि इस अत्यन्त भयङ्कर निर्जन वनमें आपलोग कौन हैं ? ॥२४॥ तदनन्तर उन कन्याओंमें जो ज्येष्ठ कन्या थी वह कहने लगी कि हम तीनों दधिमुख नगरके राजा गन्धर्वकी अमरानामक रानीकी पुत्रियाँ हैं ॥२५॥ इनमें प्रथम कन्या चन्द्रलेखा, दूसरी विद्युत्प्रभा और तीसरी तरङ्गमाला है । हम सभी

यावन्तो भुवने केचिद्विजयाद्वाद्दिसम्भवाः । त्रिधाधरकुमारैन्द्राः कुलपुष्करभास्कराः ॥२७॥  
 तेऽस्मदर्थे शिष्यं द्वापि न विन्दन्तेऽर्थिनो भृशम् । दुष्टस्यद्धारको नाम तापं धत्ते त्रिगोवतः ॥२८॥  
 अन्यद्वापरिदृष्टश्च तातेनाष्टाद्विन्मुनिः । स्थानेषु भगवन् केवु भव्या दुहितरो मन ॥२९॥  
 सोऽगोचत् साहसगतौ यो हनिष्यति संयुगे । भासां कतिपयाहोभौ रमणोऽमी भविष्यति ॥३०॥  
 निशम्यामोघवाक्यस्य मुनेस्तद्वचनं सतः । अधिन्तयत् पिताऽस्माकं विधाय श्मेरमाननम् ॥३१॥  
 कल्पसो भविता लोके नरो यज्ञायुधोपमः । विजयार्थेत्तरश्रेणीश्रेष्ठं यो हन्ति मादसम् ॥३२॥  
 अधया न मुनेर्वाक्यं कदाचिन्नायतेऽनृतम् । इति त्रिसमयमाविष्टः पिता माता जनस्तथा ॥३३॥  
 चिर प्रार्थयमानोऽपि यदासौ लब्धवाञ्छनः । तदास्मददुःखचिन्तास्थः सञ्जातोऽद्धारकेतुकः ॥३४॥  
 ततः प्रभृति चास्माकमयमेव मनोरथः । द्रव्यामस्तं कदा धीरमिति साहसमूदनम् ॥३५॥  
 एतच्च वनमायाता दारुणमुसङ्गतम् । मनोऽनुगामिनीं नाम त्रिधां साधयितुं पराम् ॥३६॥  
 दिवसो द्वादशोऽस्माकं वसन्तीनामिहान्तरे । प्राप्तस्य साधुपुण्यस्य वर्तते दिवसोऽष्टमः ॥३७॥  
 अद्धारकेतुना तेन बाधिताश्च दुरात्मना । ततस्तेनानुबन्धेन क्रोधेन पूरितोऽभवत् ॥३८॥  
 ततोऽस्माकं वधं कर्तुमेता दश दिशः क्षणात् । धूमाद्धारकवर्षेण वद्विता पिञ्जरीकृताः ॥३९॥  
 पङ्क्तिः सवत्सरैः सामैर्यद्दुःसाध्यं प्रसाध्यते । दत्त्वाद्गमुपसर्गस्य तदघैव हि साधितम् ॥४०॥  
 इहापदि महाभाग नाभविष्यद् भवान् यदि । अधषयाम हि योगिन्यां सहारण्ये ततो ध्रुवम् ॥४१॥

अपने समाप्त कुलके लिए अत्यन्त प्यारी हैं ॥२६॥ इस संसारमें अपने कुलरूपी कमलोको विक-  
 सित करनेके लिए सूर्यके समान, विजयार्थ आदि स्थानोंमें उत्पन्न हुए जितने कुछ विद्याधर  
 कुमार हैं वे सब हम लोगोंके अत्यन्त इच्छुक हो कहीं भी सुप्त नहीं पा रहे हैं । उन कुमारोंमें  
 अद्धारक नामक दुष्ट कुमार विशेष रूपसे सन्तापको धारण कर रहा है ॥२७-२८॥ किसी एक  
 दिन हमारे पिताने अष्टाद्ग निमित्तके ज्ञाता मुनिराज से पूछा कि हे भगवन् ! मेरी पुत्रियाँ किन  
 स्थानोंमें जावेगीं ॥२९॥ इसके उत्तरमें मुनिराजने कहा था कि जो युद्धमें साहसगतिको मारेगा  
 वह कुछ ही दिनोंमें इनका भर्ता होगा ॥३०॥ तदनन्तर अमोघ वचनके धारक मुनिराजका वह  
 वचन सुन हमारे पिता मुखको मन्द हास्यसे युक्त करते हुए विचार करने लगे कि ॥३१॥ संसार  
 में इन्द्रके समान ऐसा कौन पुरुष होगा जो विजयार्थ पर्वतकी उत्तर श्रेणीमें श्रेष्ठ साहसगतिको  
 मार सकेगा ॥३२॥ अथवा मुनिके वचन कभी मिथ्या नहीं होते यह विचार कर  
 माता - पिता आदि आश्चर्यको प्राप्त हुए ॥३३॥ चिरकाल तक याचना करने पर  
 भी जब अंगारक हम लोगोंको नहीं पा सका तब वह हम लोगोंको दुःख देनेवाले  
 कारणोंकी चिन्तामें निमग्न हो गया ॥३४॥ उस समयसे लेकर हम लोगोंका यही एक  
 मनोरथ रहता है कि हम साहसगतिको नष्ट करनेवाले उस धीरको कब देखेंगे ॥३५॥ हम  
 तीनों फन्याएँ मनोनुगामिनी नामक उत्तम विद्या सिद्ध करनेके लिए कठोर वृत्तोंसे युक्त इस  
 वनमें आई थीं ॥३६॥ यहाँ रहते हुए हम लोगोंका यह बारहवाँ दिन है और इन दोनों मुनियोंको  
 आये हुए आज आठवाँ दिवस है ॥३७॥ तदनन्तर उस दुष्ट अंगारकेतुने हम लोगोंको यहाँ  
 देखा और उक्त पूर्वोक्त संस्कारके कारण वह क्रोधसे परिपूर्ण हो गया ॥३८॥ तत्पश्चात् हम  
 लोगोंका वध करनेके लिए उसने उसी क्षण दशों दिशाओंको धूम तथा अंगारकी वर्षा करनेवाली  
 अग्निसे पिञ्जर वर्ण—पीत वर्ण कर दिया ॥३९॥ जो विद्या छः वर्षसे भी अधिक समयमें बड़ी  
 कठिनाईसे सिद्ध होती है वह विद्या उपसर्गका निमित्त पाकर आज ही सिद्ध हो गई ॥४०॥  
 हे महाभाग ! यदि इस आपत्तिके समय आप यहाँ नहीं होते तो निश्चित ही हम सब दोनों  
 मुनियोंके साथ-साथ वनमें जल जातीं ॥४१॥

प्रलम्बितमहाबाहू प्रशान्तवदनाकृती । युगान्तापितसद्दृष्टी प्रतिमास्थानमाश्रितौ ॥११॥  
 मृत्युजीवननिःकाशावनधौ शान्तमानसौ । समप्रियाप्रियासङ्गौ समपापाणकाङ्क्षनौ ॥१५॥  
 दानेन<sup>२</sup> महता राजन् तेनात्यासन्नवर्तिना । अभिभूतौ समालोक्य वात्सल्य कर्तुमुद्यतः ॥१६॥  
 आकृष्य सागरजल मेघहस्तः ससम्भ्रमः । भवर्षदुज्जतो व्योमिनि परम भक्तिसङ्गतः ॥१७॥  
 सुभृश तेन बद्धिः स वारिपूरेण नाशितः । महाक्रोध इवोद्भूतः क्षान्तिभावेन साधुना ॥१८॥  
 यावच्च कुरुते पूजां भक्त्या पवननन्दनः । तयोर्भदन्तयोर्नानापुष्पादिद्रव्यसम्पदा ॥१९॥  
 तावत्ता विद्वत्सत्पाया मेरु हृन्वा प्रदक्षिणम् । तत्तत्काशमनुप्राप्ताः कुमार्यः सुमनोहराः ॥२०॥  
 प्रणेमुश्च सम तेन साधू<sup>३</sup> ध्यानपरायणौ । विनयाम्बितया बुद्ध्या प्रशशसुश्च मारुतिम् ॥२१॥  
 अहो जिनेश्वरे भक्तिर्जज्ञता क्षापि यद्द्रुतम् । स्वया तात परित्राता वयं साधुसमाभ्रयात् ॥२२॥  
 अस्मद्द्वारसमायातो महानयमुपप्लवः । स्तोकेनाप्तो न योगिभ्यामहो नो भवितव्यता ॥२३॥  
 अथाङ्गनात्मजोऽष्टरुद्रदेव संशुद्धमानसः । भवन्त्य इह निःशून्ये<sup>४</sup> का वनेऽप्यन्तर्भाषणे ॥२४॥  
 अवोचञ्जयायसौ तासां पुरे दधिमुखाह्वये । अत्र गन्धर्वराजस्य वयं तिस्रोऽमरासुताः ॥२५॥  
 प्रथमा चन्द्रलोखाख्या ज्ञेया विद्युत्प्रभा ततः । अन्या तरङ्गमालेति सर्वगोत्रस्य वल्लभा ॥२६॥

हनुमानके हृदयमें उन सबके प्रति बड़ी आस्था उत्पन्न हुई । तदनन्तर जो योग अर्थात् ध्यानसे युक्त थे, मोक्ष की इच्छासे सहित थे, जिन्होंने रागादि परिग्रहकी इच्छा छोड़ दी थी, यत्र तथा आभूषण दूर कर दिये थे, मुजाएँ नीचेकी ओर लटका रखी थीं, जिनके मुखकी आकृति अत्यन्त शान्त थी, युगप्रमाण दूरी पर जिनकी दृष्टि पड़ रही थी, जो प्रतिमा योगसे विराजमान थे, जीवन और मरणकी आकांक्षासे रहित थे, निष्पाप थे, शान्तचित्त थे, इष्ट अनिष्ट समागममें मध्यस्थ थे, तथा पापाण और काङ्क्षनमें जो समभाव रखते थे ऐसे उन दोनों मुनियोंको अत्यन्त निकटवर्ती बड़ी भारी दावानलसे आक्रान्त देख, हे राजन् ! हनूमान् वात्सल्यभाव प्रकट करनेके लिए उद्यत हुआ ॥१२-१६॥ भक्तिसे भरे हनूमान्ने शीघ्रतासे समुद्रका जल खींच, मेघ हाथमें धारण किया और आकाशमें ऊँचे जाकर अत्यधिक वर्षा की ॥१७॥ उस बरसे हुए जलप्रवाहसे वह दावाग्नि उस प्रकार शान्त हो गई जिस प्रकार कि उत्पन्न हुआ महाक्रोध, मुनिके क्षमाभावसे शान्त हो जाता है ॥१८॥ भक्तिसे भरा हनूमान् जयतक नाना प्रकारकी पुष्पादि सामग्रीसे उन दोनों मुनियोंकी पूजा करता है तब तक जिनके मनोरथ सिद्ध हो गये थे ऐसी वे तीनों मनोहर कन्याएँ मेरु पर्वतकी प्रदक्षिणा देकर उसके पास आ गईं ॥१९-२०॥ उन्होंने ध्यानमें तत्पर होना मुनियोंको हनूमान्के साथ-साथ विनयपूर्वक नमस्कार किया तथा हनूमान्की इस प्रकार प्रार्था की कि अहो ! तुम्हारी जिनेन्द्रदेवमें बड़ी भक्ति है जो शीघ्रतासे कहीं अन्यत्र जाते हुए तुमने मुनियोंके आश्रयसे हम सबकी रक्षा की ॥२१-२२॥ हमारे निमित्तसे यह महा उपद्रव उत्पन्न हुआ था सो मुनियोंको रक्षमात्र भी प्राप्त नहीं हो पाया । अहो ! हमारी भवितव्यता धन्य है ॥२३॥

अथानन्तर पवित्र हृदयके धारक हनूमान्ने उनसे इस प्रकार पूछा कि इस अत्यन्त मयङ्कर निर्जन वनमें आपलोग कौन हैं ? ॥२४॥ तदनन्तर उन कन्याओंमें जो ज्येष्ठ कन्या थी यह कहने लगी कि हम तीनों दधिमुख नगरके राजा गन्धर्वकी अमरानामक रानीकी पुत्रियाँ हैं ॥२५॥ इनमें प्रथम कन्या चन्द्रलोखा, दूसरी विद्युत्प्रभा और तीसरी तरङ्गमाला है । हम सभी

यावन्तो भुवने केचिद्विजयाद्वादिस्मभवा । विद्यायाः कुमारेन्द्राः कल्पुष्करमान्करा ॥२७॥  
 तेऽस्मदर्थं शिवं कापि न विन्दन्तेऽधिनो मृगम् । दुष्टस्वप्नारको नाम तापं धत्ते विशेषत ॥२८॥  
 अन्यदापरिशुष्टश्च तातेनाष्टाङ्गविन्मुनिः । स्थानेषु भगवन् केतु भय्या दुहितरो मम ॥२९॥  
 सोऽप्योचत् साहसगतौ यो हनिष्यति सयुगे । आसा कतिपयाहोमी रमणोऽमी भविष्यति ॥३०॥  
 निशम्यामोघवाक्यस्य मुनेस्तद्वचनं तत । अचिन्तयत् पिताऽस्माकं विधाय स्मरमाननम् ॥३१॥  
 कस्वसो भविता लोके नरो वज्रायुधोपमः । विजयार्थोत्तरश्रेणीश्रेष्ठो यो हन्ति साहसम् ॥३२॥  
 अथवा न मुनेर्वाक्यं कदाचिज्जायतेऽनृतम् । इति विस्मयमाविष्टः पिता माता जनस्तथा ॥३३॥  
 चिरं प्रार्थयमानाऽपि यदासौ लब्धवात्र न । तदास्मद्दुःखचिन्तास्थं सज्जातोऽङ्गारकेतुक ॥३४॥  
 ततः प्रभृति चास्माकमयमेव मनोरथः । द्रव्यामस्तं कदा वीरमिति साहसयुद्धनम् ॥३५॥  
 एतच्च वनमायाता दास्यन्मुमसङ्कटम् । मनोऽनुगामिनीं नाम विद्या साधयितुं पराम् ॥३६॥  
 दिवसो द्वादशोऽस्माकं वसन्तीनामिहान्तरे । प्राप्तस्य सायुधुस्मस्य वर्तते दिवसोऽष्टमः ॥३७॥  
 अङ्गारकेतुना तेन धीचिन्ताश्च दुरात्मना । ततस्तेनानुबन्धेन क्रोधेन पूरितोऽभवत् ॥३८॥  
 ततोऽस्माकं वधं कर्तुमेतां दश दिशः क्षणात् । धूमाङ्गारकवर्षेण वह्निना पिञ्जरीकृता ॥३९॥  
 पद्भिः सर्वसरे सार्वैर्यद्दुःसाध्यं प्रसाध्यते । त्वाङ्गमुपसर्गस्य तदद्यैव हि साधितम् ॥४०॥  
 इहापदि महाभाग नामविष्यद् भवान् यदि । अधक्यामं हि योगिन्या सहारण्ये ततो ध्रुवम् ॥४१॥

अपने समस्त कुलके लिए अत्यन्त प्यारी हैं ॥२६॥ इस संसारमें अपने कुलरूपी कमलोकों विन्-  
 सित करनेके लिए सूर्यके समान, विजयार्थ आदि स्थानोंमें उत्पन्न हुए जितने कुछ विद्याधर  
 कुमार हैं वे सब हम लोगोंके अत्यन्त इन्त्युक हो कहीं भी सुप्त नहीं पा रहे हैं । उन कुमारोंमें  
 अङ्गारक नामक दुष्ट कुमार विरोध रूपसे सन्तापको धारण कर रहा है ॥२७-२८॥ किसी एक  
 दिन हमारे पिताने अष्टाङ्ग निमित्तके ज्ञाता मुनिराज से पूछा कि हे भगवन् ! मेरी पुत्रियाँ किन  
 स्थानोंमें जायेंगी ॥२९॥ इसके उत्तरमें मुनिराजने कहा था कि जो युद्धमें साहसगतिकी मारेगा  
 वह कुछ ही दिनोंमें इनका भर्ता होगा ॥३०॥ तदनन्तर असोघ वचनके धारक मुनिराजका वह  
 वचन मुन हमारे पिता मुक्तको मन्द हास्यसे युक्त करते हुए विचार करने लगे कि ॥३१॥ संसार  
 में इन्त्यके समान ऐसा कौन पुरुष होगा जो विजयार्थ पर्वतकी उत्तर श्रेणीमें श्रेष्ठ साहसगतिकी  
 मार सकेगा ॥३२॥ अथवा मुनिके वचन कभी मिथ्या नहीं होते यह विचार कर  
 माता - पिता आदि आश्चर्यको प्राप्त हुए ॥३३॥ चिरकाल तक याचना करने पर  
 भी जब अंगारक हम लोगोंको नहीं पा सका तब वह हम लोगोंको दुःख देनेवाले  
 कारणोंकी चिन्तामें निमग्न हो गया ॥३४॥ उस समयसे लेकर हम लोगोंका वही एक  
 मनोरथ रहता है कि हम साहसगतिकी नष्ट करनेवाले उस वीरको कब देखेंगे ॥३५॥ हम  
 तीनों कन्याएँ मनोऽनुगामिनी नामक उत्तम विद्या सिद्ध करनेके लिए कठोर वृत्तोंसे युक्त इस  
 वनमें आई थीं ॥३६॥ यहाँ रहते हुए हम लोगोंका यह वारहवाँ दिन है और इन दोनों मुनियोंको  
 आये हुए आज आठवाँ दिवस है ॥३७॥ तदनन्तर उस दुष्ट अंगारकेतुने हम लोगोंको यहाँ  
 देखा और उक्त पूर्वोक्त संस्कारके कारण वह क्रोधसे परिपूर्ण हो गया ॥३८॥ तत्पश्चात् हम  
 लोगोंका वध करनेके लिए उसने उसी क्षण दशों दिशाओंको धूम तथा अंगारकी वर्षा करनेवाली  
 अग्निसे पिञ्जर वर्षण—पीत वर्ण कर दिया ॥३९॥ जो विद्या छ' वर्षसे भी अधिक समयमें वही  
 कठिनाईसे सिद्ध होती है वह विद्या उपसर्गका निमित्त पाकर आज ही सिद्ध हो गई ॥४०॥  
 हे महाभाग ! यदि इस आपत्तिके समय आप यहाँ नहीं होते तो निश्चित ही हम सब दोनों  
 मुनियोंके साथ-साथ वनमें जल जातीं ॥४१॥

साधु साध्विति संस्मित्य ततो माहतिरमवीत् । 'भवतीनां श्रमः श्लाघ्यः फलयुक्तश्च निश्चयः ॥४२॥  
 अहो धो विमला बुद्धिरहो स्थाने मनोरथः । अहो भग्यत्वमुत्तुङ्गं येन विद्या प्रसाधिता ॥४३॥  
 आख्यातं च क्रमात् सर्वं यथावृत्तं सविस्तरम् । पद्मागमादिकं यावदात्मागमनकारणम् ॥४४॥  
 तत्तरश्च श्रुतवृत्तान्तो गन्धर्वोऽमरया सह । समागतो महातेजस्तमुद्देशं सहानुयः ॥४५॥  
 नभश्चरसमायोगे देवागमनसन्निभे । क्षणेन तद्वन जातं सर्वं नन्दनसुन्दरम् ॥४६॥  
 किष्किन्ध च पुरं गत्वा भूया दुहितृभिः समम् । शासने पद्मानामस्य गन्धर्वो रतिमाश्रयत् ॥४७॥  
 ताश्च निस्सोमसौभाग्या विभूत्या परयान्विताः । उपनिन्द्ये पराः कन्या रामायाक्विल्लकर्मणे ॥४८॥  
 पृताभिरपरामिश्च सेव्यमानो विभूतिभिः । अपश्यन् जानकीं पद्मो मेने शून्या दिशो दश ॥४९॥

### अतिरुचिरावृत्तम्

गुणान्वितैर्भवति जनैरलङ्कृता समस्तभूः शुभललितैः सुसुन्दरैः ।  
 विना 'जनं मनसि कृतास्पदं सदा प्रजल्पसौ गहनवनेन तुल्यताम् ॥५०॥  
 पुराकृतादतिनिचितात् समुत्कटाज्जनः परां रतिमनुयाति कर्मणः ।  
 ततो जगत्सकलमिदं स्वगोचरे प्रवर्तते विधिरविणा प्रकाशते ॥५१॥

इत्यार्षे रविपेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे पद्मस्य गन्धर्वकन्यालामामिधानं नाम एकपञ्चाशत्तमं पर्व ॥५१॥

तदनन्तर हनुमान्ने 'ठीक है' 'ठीक है' इस तरह मन्दहास पूर्वक कहा कि आप लोगोंका श्रम प्रशंसनीय है तथा निश्चित ही फलसे युक्त है ॥४२॥ अहो ! तुम सबकी बुद्धि निर्मल है । अहो ! तुम सबका मनोरथ योग्य स्थानमें लगा । अहो ! तुम्हारी उत्तम होनहार थी जिससे यह विद्या सिद्ध की ॥४३॥ तत्पश्चात् हनुमान्ने रामके आगमनको आदि लेकर अपने यहाँ आने तक का समस्त वृत्तान्त उ्योंका त्यों चिस्तराके साथ क्रमपूर्वक कहा ॥४४॥ तदनन्तर समाचार सुन कर महा तेजस्वी गन्धर्व राजा अपनी अमरा नामकी रानी और अनुचरोके साथ वहाँ आ पहुँचा ॥४५॥ इस प्रकार क्षण भरमें वह समस्त वन देवागमनके समान विद्याधरोंका समागम होनेसे नन्दन वनके समान हो गया ॥४६॥ तदनन्तर राजा गन्धर्व पुत्रियोंको साथ ले बड़े वैभवसे किष्किन्धपुर गया और वहाँ रामकी आज्ञामें रह कर प्रीतिको प्राप्त हुआ ॥४७॥ उसने असीम सौभाग्यकी धारक तथा परम विभूतिसे युक्त तीनों उत्कृष्ट कन्याएँ शान्त चेष्टाके धारक रामके लिये समर्पित की ॥४८॥ सो राम इन कन्याओंसे तथा अन्य विभूतियोंसे यद्यपि सेव्यमान रहते थे तथापि सीताको न देखते हुए वे दशां दिशाओंको शून्य मानते ॥४९॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि यद्यपि समस्त भूमि गुणांसे सहित, शुभ चेष्टाओंके धारक तथा अतिशय सुन्दर मनुष्योंसे अलङ्कृत रहे तो भी मनमें वास करनेवाले मनुष्यके विना वह भूमि गहन वन की तुल्यता धारण करती है ॥५०॥ पूर्वोपार्जित तथा तीव्र रूपसे बन्धको प्राप्त हुए उत्कट कर्मसे यह जीव परम रविको प्राप्त होता है और उस रविके कारण यह समस्त संसार अपने अधीन रहता है तथा कर्म रूपी सूर्यसे प्रकाशमान होता है ॥५१॥

इस प्रकार 'आर्य' नामसे प्रसिद्ध, रविपेणाचार्यकथित पद्मपुराणमें रामकी गन्धर्व कन्याओंकी प्राप्ति का वर्णन करनेवाला इक्यावनवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥५१॥

१. 'भवतीनां श्रमः' इत्यारभ्य 'अहो धो विमला बुद्धिरहो स्थाने मनोरथः' इत्यन्तः पाठः ख० पुस्तके नास्ति । २. जनैः म० ।

## द्विपञ्चाशत्तमं पर्व

असौ पवनपुत्रोऽपि प्रतापाद्यो महाबल । त्रिभूताभिमुखोऽयासाद् सोमवन्मन्दर प्रति ॥१॥  
 अथास्य व्रजतो ज्योमिन् सुमहाकामुंकाकृतिम् । यत्रमेध्याप्रताकारा जात सैन्य निरोधवत् ॥२॥  
 उवाच च गति केन मम सैन्यस्य विघ्निता । अहो विज्ञायता क्षिप्र कस्येदमनुचेष्टितम् ॥३॥  
 किं स्याद्सुरनाथोऽयं चमरो गर्वपर्वत । आखण्डल शिखण्डा वा नैवामेकोऽपि युग्यते ॥४॥  
 प्रतिमा किन्तु जैनेन्द्रा शिखरेऽस्य महीभृत् । भवेद् वा भगवान् कश्चिन्मुनिश्चरमधिग्रह ॥५॥  
 तस्य तद्वचन श्रुत्वा वितर्ककृतवर्त्तनम् । मन्त्रा पृथुमतिर्नाम वाच्यमेतदुदाहरत् ॥६॥  
 निवर्त्तस्व महाबुद्धे आशौल ननु किं तव । क्रूरयन्त्रयुतो नाय मायाशालो मतिं गत ॥७॥  
 चतुस्ततो नियुग्यासावपरयत्पत्रलोचन । दु प्रवेश महाशाल विरक्तधामन समम् ॥८॥  
 अनेकाकारवत्राण्येव भाममाशालिका मकम् । त्रिदशैरपि दुर्दृशैः सर्वभक्ष्य प्रभासुरम् ॥९॥  
 सङ्कोक्ततीव्रगाप्रक्रकचावलिचेष्टितम् । रुधिरोद्गारजिह्वाप्रसहस्रविलसत्तम् ॥१०॥  
 स्फुरद्भुजद्विविस्फारिफणाशू कारशब्दितम् । विपभूमान्धकारान्तज्वलद्द्वारदु सहम् ॥११॥  
 यस्त सर्पति मूढात्मा शौर्यमानसमुद्धत । नि कामति न भूयोऽसौ मण्डूकोऽहिमुखादिव ॥१२॥  
 लङ्काशालपरिचेष सूर्यमार्गसमुन्नतम् । दुर्लभ्य दुनिराद्य च सर्वद्विष्टु सुयोजितम् ॥१३॥  
 युगान्तकालमेघौघनिर्घोषसमभीषणम् । द्विसाग्रन्यमिवायन्तपापकर्मविनिमित्तम् ॥१४॥

अथानन्तर प्रतापसे सहित महाबलवान् हनूमान् त्रिभूटाचलके सन्मुख इस प्रकार चला जिस प्रकार कि सुमेरुके सन्मुख सोम चलता है ॥ १ ॥ तदनन्तर आकाशमें चलते हुए हनूमान् की सेना अचानक रुककर किसी बड़े धनुषके समान हो गई और ऐसी जान पडने लगी मानो कुटिल मेघाका समूह ही हो ॥ २ ॥ यह देख, हनूमान्ने कहा कि मेरी सेनाकी गति किसने रोकी है ? अहो ! शीघ्र ही मालूम करो कि यह किसकी चेष्टा है ? ॥ ३ ॥ क्या यहाँ असुराका इन्द्रचमर है, अथवा इन्द्र है या शिखण्डी है ? अथवा इनमेंसे यहाँ एकका भी होना उचित नहीं जान पडता ॥ ४ ॥ किन्तु हो सकता है कि इस पर्वतकी शिखर पर जिनेन्द्र भगवान्की प्रतिमा हो, अथवा कोई ऐश्वर्यवान् चरम शरीरी मुनिराज विराजमान हा ॥ ५ ॥ तदनन्तर हनूमान्के वितर्कपूर्ण वचन सुनकर पृथुमति मन्त्रीने यह वचन कहे कि हे महाबुद्धिमन् श्रीशौल ! तुम शीघ्र ही लौट जाओ, तुम्हें इससे क्या प्रयोजन है ? यह आगे क्रूर यन्त्रोंसे युक्त मायामयी कोट जान पडता है ॥ ६-७ ॥ तत्पश्चात् कमललोचन हनूमान्ने स्वयं दृष्टि डालकर उक्त माया मयी महाकोटको देखा । वह कोट विरक्त स्त्रीके मनके समान दुष्प्रवेश था ॥ ८ ॥ अनेक आकारके मुद्रासे सहित था, भयङ्कर पुतलियोंसे युक्त था, सन्को भक्षण करनेवाला था, वेदीप्यमान था और देवाके द्वारा भी दुर्गम्य था ॥ ९ ॥ जिनके अग्रभाग सकटसे उत्कट तथा अत्यन्त तीक्ष्ण थे ऐसी कराताकी श्रेणीसे वह कोट वैष्टित था, तथा उसके तट रुधिरकी उगलनेवाली हजारों जिह्वाओंने अग्रभागसे सुरोभित थे ॥ १० ॥ चञ्चल सर्पोंके तने हुए फणाभाकी शूकारसे शब्दायमान था तथा जिनसे विपैला धूम रूपी अंधकार षट रहा था ऐसे जलवे हुए अगारासे दु सह था ॥ ११ ॥ शूर वीरताके अहंकारसे उद्धत जो मनुष्य उस कोटके पास जाता है वह फिर उस तरह लौटकर नहीं आता जिस प्रकार कि सर्पके मुखसे मेंडक ॥ १२ ॥ यह लकाके

१ चक्रे, मेघा प्रतिकाश म० । २. तिरोभवत् म० । ३ खगति म० । ४. विघ्नता म० ।  
 ५. मुमीशरमग्निग्रह (?) म० । ६. महान् बुद्धे ख० । ७. युतेनाय म०, व० । ८. जिह्वाप्र म० ।

त इष्टा मारुतिर्दध्यावहो नाथेन रक्षसाम् । दाक्षिण्यमुज्जितं पूर्वं मायाप्राकारकारिणा<sup>१</sup> ॥१५॥  
 उन्मूलयन्नित् यन्त्र विद्याबलसमूजितम् । मानमुन्मूलयाम्यस्य ध्यानी मोहमल<sup>२</sup> यथा ॥१६॥  
 युद्धे च मानस कृत्वा तत्सैन्य<sup>३</sup> स्व महास्वनम् । गगने सागराकार समयेऽतिप्रिष्टत् सुधीः ॥१७॥  
 विद्याकवचयुक्तं च<sup>४</sup> कृत्वा मान गदाकरम् । विवेश सालिकावक्त्र राहुवक्त्र रविवर्था ॥१८॥  
 तत कुञ्चिगुहां तस्याः परीतकैकसावृताम् । विद्यानखैरल तीक्ष्णैः कैसरीं व्यपाटयत् ॥१९॥  
 निर्दयैश्च गदावातैर्घोरघोरैश्चूर्णयत् । घातिकर्मरिधति यद्बद्धवानी भावैः सुनिर्मलैः ॥२०॥  
 अधाशालिकविद्याया यात्या भेद भयावहम् । समो नीलाम्बुवाहानामभूच्चटचटाध्वनिः ॥२१॥  
 तेन सम्भाष्यमानोऽसौ शालो नष्टोऽतिचञ्चलः । स्तोत्रेणैव जिनेन्द्राणा कल्पुः कर्मसञ्चयः ॥२२॥  
 ततस्तन्नित् न श्रुत्वा युगान्तजलदोन्नतम् । इष्टा विशीर्यमाण च यन्त्रप्राकारमण्डलम् ॥२३॥  
<sup>५</sup>राजन् बज्रमुखः क्रुद्ध शालरक्षाधिकारवान् । त्वरित रथमारुह्य सिंहो दावमिवाभ्यगात् ॥२४॥  
 ततोऽभिमुखमेतस्य वीक्ष्य मारुतनन्दनम् । नानायानयुधा योधाः प्रचण्डा योद्धुमुद्यता ॥२५॥  
 बल<sup>६</sup>वान्प्रमुख इष्टा प्रबल योद्धुमुद्यतम् । परम चोभमायात हनूमत्सैन्यमुत्थितम् ॥२६॥  
 किमत्र बहुनोक्तेन प्रवृत्त तत्तथा रणम् । यथा स्वामिहृते पूर्वं<sup>७</sup> सम्माननविमानने ॥२७॥

कोटका घेरा सूर्यके मार्ग तक ऊँचा है, दुर्लभ्य है, दुर्निरीक्ष्य है, सब दिशाओंमें फैला है, प्रलय कालीन मेघसमूहकी गर्जनाके समान तीक्ष्ण गर्जनासे भयङ्कर है, तथा हिसामय शास्त्रके समान अत्यन्त पापकर्मा जनोके द्वारा निर्मित है ॥ १४ ॥ उसे देखकर हनुमान्ने विचार किया कि अहो ! मायामयी कोटका निर्माण करनेवाले रावणने अपनी पहलेकी सरलता छोड़ दी है ॥ १५ ॥ मैं विद्याबलसे यल्लिष्ट इस यन्त्रको उखाड़ता हुआ इसके मानको उस तरह उखाड़ दूँगा, जिस तरह कि ध्यानी मनुष्य मोहको उखाड़ देता है ॥ १६ ॥

तदनन्तर बुद्धिमान् हनुमान्ने युद्धमें मन लगाकर अर्थात् युद्धका विचार कर अपनी गरजती हुई समुद्राकार सेनाको तो संकेत देकर आकाशमें खड़ा कर दिया और अपने स्वयं विद्यामय कवच धारणकर तथा गदा हाथमें ले पुतलीके मुखमें उस तरह घुस गया जिस तरह कि राहुके मुखमें सूर्य प्रवेश करता है ॥ १७-१८ ॥ तत्पश्चात् चारों ओरसे हड्डियोंसे आवृत उस पुतलीकी उदररूपी गुहाको उसने सिंहकी भोंति विद्यामयी तीक्ष्ण नगोंसे अच्छी तरह चीर डाला ॥ १९ ॥ और भयंकर शब्द करनेवाले गदाके निर्दय प्रहारोंसे उसे उस प्रकार चूर-चूर कर डाला जिस प्रकार कि ध्यानी मनुष्य अपने अतिशय निर्मल भावोंसे घातिया कर्मोंकी स्थितिको चूर-चूर कर डालता है ॥ २० ॥ तदनन्तर भङ्गको प्राप्त होती हुई आशालिक विद्याका नील मेघोंके समान भयंकर चट-चट शब्द हुआ ॥ २१ ॥ उस शब्दसे यह अतिशय चंचल मायामय कोट इस प्रकार नष्ट हो गया जिस प्रकार कि जिनेन्द्र भगवान्की स्तुतिसे पापकर्मोंका समूह नष्ट हो जाता है ॥ २२ ॥

तदनन्तर प्रलयकालके मेघोंके समान उन्नत उस शब्दको सुनकर तथा यन्त्रमय कोटको नष्ट होता देख, कोटकी रक्षाका अधिकारी वज्रमुख नामका राजा कुपित हो शीघ्र ही रथ पर आरूढ़ हो हनुमान्के सन्मुख उस प्रकार आया जिस प्रकार कि सिंह दावानलके सन्मुख जाता है ॥ २३-२४ ॥ तदनन्तर हनुमान्को उसके सन्मुख देख, नाना प्रकारके चाहनों और शस्त्रोंसे सहित प्रचण्ड योधा युद्ध करनेके लिए उद्यत हुए ॥ २५ ॥ इधर वज्रमुखकी प्रबल सेनाको युद्धके लिए उद्यत देख परम क्षोभको प्राप्त हुई हनुमान्की सेना भी युद्धके लिए उठी ॥ २६ ॥ आचार्य कहते हैं कि इस विषयमें बहुत कहनेसे क्या ? उन दोनों सेनाओंमें उस तरह युद्ध हुआ जिस तरह कि पहले स्वामीके द्वारा किये हुए सम्मान और तिरस्कारमें होता है ॥ २७ ॥

१ मूर्जित म० । २. कारिणा म० । ३. मोहनल म०, ल० । ४. सुमहास्वन म० । ५. कृत्वा मान म० । ६. राजा म० । ७. वज्रमुख म० । ८. सत्मावन म०, व० ।



स्वामिनो दृष्टिमागंस्था सुभटा कृतगजिता । जावितेष्वपि विस्नेहा बभूवु किमिहोच्यताम् ॥२८॥  
 तत कपिध्वनैर्याधिश्रिरकृतमहाद्वा । वज्रायुधस्य निर्भंगना षण्णान्नेपुरितस्तत ॥२९॥  
 चत्रेणानिलसूनुश्च तेजोऽहरत् विद्विषाम् । ऋक्षविम्बमिवाकाशादपातयदरे शिर ॥३०॥  
 सरये पितृबंधं दृष्ट्वा त लङ्कामुन्दरा तदा । नियम्य कृच्छृत शोकममर्षिपदूषिता ॥३१॥  
 जवनारवरयारूढा कुण्डलोद्योतितानना । शरासनायतोरस्का कुञ्चितभ्रूलतायुगा ॥३२॥  
 उत्केव सङ्घातादित्यतेजामण्डलधारिणा । धूमोद्गारसमायुक्ता धनप्राग्भारवतिर्नी ॥३३॥  
 सरम्भवशसम्कुल्ललोहिताम्भोजलोचना । क्रूरसदृष्टविम्बोष्ठा क्रुद्धेव श्री शचापते ॥३४॥  
 अधावदियुमुद्गृह्य 'कथ्यमाना मनोहरा' । मया श्रीशैल दृष्टोऽसि तिष्ठ ते शक्तिरसि चैत् ॥३५॥  
 अद्य ते रावण मुद्धो नभश्चरमहेरवर । करिष्यति यदेतत्ते करामि हतचेष्टित् ॥३६॥  
 'इय यमालय पाप भवन्त प्रेषयाम्यहम् । दिग्मूढ इव जातस्त्वमनिष्टस्थानगोचर ॥३७॥  
 तस्यास्त्वरितमायान्त्या यावच्छत्रमपातयत् । वाणेन तावद्वैतस्य तथा चाप द्विधा कृतम् ॥३८॥  
 सा यावद्गृहाद्दक्षिं तावन्माराहतिना शरै । नभश्चक्र समायान्ता भिन्ना शक्तिश्च सान्तरे ॥३९॥  
 सा विद्यात्रलग्भीरा वज्रदण्डसमान् शरान् । परशुकुन्तचक्राणि शतघ्नीमुशलान् शिला ॥४०॥  
 वर्षर्षं वायुपुत्रस्य रथे हिमवदुक्षते । विकाले वारिणो भेदान् मेघसन्ध्या यथोन्नता ॥४१॥

जो योद्धा स्वामीकी दृष्टिके मार्गमे स्थित थे अर्थात् स्वामी जिनकी ओर दृष्टि उठाकर देखता था वे योद्धा गर्जना करते हुए प्राणोंका भी स्नेह छोड़ देते थे इस विषयमें अधिक क्या कहा जाय ? ॥ २८ ॥ तदनन्तर जिन्होंने चिरकाल तक बड़े बड़े युद्ध किये थे ऐसे वज्रायुद्धके योद्धा वानरोंके द्वारा क्षणभरमें पराजित होकर इधर उधर नष्ट हो गये—भाग गये ॥ २९ ॥ और हनुमान्ने चक्रके द्वारा शत्रुओंका तेज हर लिया तथा नक्षत्र चिम्बके समान शत्रुका शिर काटकर आकाशसे नीचे गिरा दिया ॥ ३० ॥ युद्धमें पिताका चप देर वज्रायुधकी पुत्री लकामुन्दरी कठिनाईसे शीरुको रोककर क्रोधरूपी विपसे वूषित हो हनुमान्की ओर दौड़ी । उस समय वह वेगशाली घोड़ोंके रथ पर बैठी थी, कुण्डलोक प्रकाशसे उसका मुख प्रकाशित हो रहा था, धनुषके समान उसका चक्ष स्थल आयत था, उसकी दोनों भ्रुकुटियों टेढ़ी हो रही थीं, वह ऐसी जान पड़ती थी मानो उल्का ही प्रकट हुई हो, वह सूर्यके समान तेजका मण्डल धारण कर रही थी, धूमके उद्गारसे सहित थी, अर्थात् उसके शरीरसे बुद्ध बुद्ध धुओंसा निकलता दिग्गता था और उससे ऐसी जान पड़ती थी मानो मेघसमूहके बीचमें विद्यमान थी, क्रोधके कारण उसके नेत्र फूले हुए लाल कमलोंके समान जान पड़ते थे, वह क्रोधसे अपना आठ चान रही थी, तथा ऐसी जान पड़ती थी मानो क्रोधसे भरी इन्द्रकी लक्ष्मी ही हो ॥ ३१-३४ ॥ वह देखनेमें मुन्दर थी तथा अपनी प्रशंसा कर रही थी, इस तरह धनुष पर वाण चढाकर वह दौड़ी और बोला कि अरे श्रीशैल ! मैंने तुम्हे देख लिया है, यदि तुममें कुछ शक्ति है तो रुका रह ॥ ३५ ॥ आज वृषित हुआ विद्याधरोका राजा रावण तेरा जो कुछ करेगा रे नीच ! वही मैं तेरा करती हूँ ॥ ३६ ॥ यह मैं तुम्ह पापीको यमराजके घर भेजती हूँ, तू दिग्भ्रान्तकी तरह आज इस अनिष्ट स्थानमें आ पड़ा है ॥ ३७ ॥ वेगसे आती हुई लकामुन्दरीका छत्र जब तक हनुमान्ने नीचे गिराया तब तक उसने एक वाण छोड़ कर हनुमान्के धनुषके दो टुकड़े कर दिये ॥ ३८ ॥ लकामुन्दरी जब तक शक्ति नामक शस्त्र उठाती है तब तक हनुमान्ने वाणोंसे आकाशको आच्छादित कर दिया और आती हुई उसकी शक्तिको बीचमें ही तोड़ डाला ॥ ३९ ॥ विद्यात्रलसे गम्भीर लकामुन्दरीने हनुमान्के हिमालयके समान ऊँचे रथपर वज्रदण्डके समान वाण, परशु, कुन्त, चक्र, शतघ्नी, मुसल तथा शिलाएँ उस प्रकार चरसाईं जिस प्रकार कि उत्पातके समय उच

तथा नानायुवाटोपैः सर्ववेगसमीरितैः । आच्छाद्यत महातेजा शुचिसूर्यं इवामुदे ॥४२॥  
 विक्रान्त स च शस्त्रौघमनिर्विण्णोऽन्तरस्थितम् । व्यपोहत निजैः शस्त्रैः मायाविधिविशारद ॥४३॥  
 शरा शरैरल्प्वन्त तोमराद्या स्वजातिभिः । शक्त्य शक्तिभिर्नुक्त्वा समोक्त्वा दूरमुद्यु ॥४४॥  
 चक्रक्रकचसवर्तकनकटोपपिञ्जरम् । बभूव भीषण व्योम विद्युद्भिरिव सकुलम् ॥४५॥  
 त लङ्कासुन्दरा भूयो रूपेणालम्बसन्निभा । धीरा स्वभावतो राजन् लक्ष्मी कमललोचना ॥४६॥  
 ज्ञानध्यानहरेः कावैर्दुर्द्धैरैगुणसन्नतैः । लावण्याहतसौन्दर्यमनोऽन्तर्भेदकोविदैः ॥४७॥  
 नेत्रचापविनिर्मुक्तैर्विन्ध्यधे स्मरसायकैः । तथेतरधनुर्मुक्तैः शरैराकृण्वन्सहैः ॥४८॥  
 विस्मये जगत शका सीमाभयगुणगर्विता । तस्यालसक्रियस्यैव प्रविष्टा हृदयोदरम् ॥४९॥  
 शरशक्तिशतघ्नीभिर्न तथा समपीड्यत । यथा मदनवाणीधैर्मर्मदारणकारिभिः ॥५०॥  
 इय मनोहराकारा ललितैर्विशिषैरपि । सवाह्याभ्यन्तर हन्ति मामिष्येवमचिन्तयत् ॥५१॥  
 वरमस्मिन् मृधे मृद्युः पूर्यमाणस्य सायकैः । अनया विप्रयुक्तस्य जीवित न सुरालये ॥५२॥  
 चिन्तयत्येवमेतस्मिन् साप्यनङ्गेन चोदिता । त्रिकूटसुन्दरी कन्या करणासक्तमानसा ॥५३॥  
 विकस्वरमनोदेह त पद्मच्छदलोचनम् । अवालेन्दुमुख बाल किरीटन्यस्तवानरम् ॥५४॥  
 मूर्तिद्युक्तमिवानङ्ग सुन्दर वायुनन्दनम् । हन्तु समुद्यता शक्ति सञ्जहार त्वरावती ॥५५॥

मेधावली नाना प्रकारके जल बरसाती है ॥४०-४१॥ उसके पूर्ण वेगसे छोड़े हुए नाना प्रकारके शस्त्र समूहसे महातेजस्वी हनुमान् उस तरह आच्छादित हो गया जिस प्रकार कि मेघोंसे आपाटका सूर्य आच्छादित हो जाता है ॥४२॥ इतना सब होने पर भी खेदसे रहित, पराक्रमी एव मायाके विस्तारमें निपुण हनुमान्ने अपने शस्त्रोंके द्वारा उसके शस्त्र समूहको बीचमें ही दूर कर दिया ॥४३॥ उसके बाण वाणोंसे छुद्र हो गये, तोमर आदि तोमर आदिके द्वारा, तथा शक्तियों शक्तियोंके द्वारा खण्डित होकर लकाओंके समान दूर जा गिरीं ॥४४॥ चक्र, क्रकच, सवर्तक तथा कनक आदिके विस्तारसे पीतवर्ण आकाश ऐसा भयंकर हो गया मानो बिजलियोंसे ही व्याप्त होगया हो ॥४५॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! तदनन्तर रूपसे अनुपम, स्वभावसे धीर, कमललोचना, लक्ष्मीके समान लंकासुन्दरी, नेत्ररूपी धनुपसे छोड़े हुए कामके वाणों अर्थात् कटाक्षोंसे हनुमान्की उधर जुदा भेद रही थी और इधर अन्य धनुपसे छोड़े तथा कान तक रींचे हुए वाणोंसे जुदा भेद रही थी । लङ्कासुन्दरीके वे कामवाण, ज्ञान ध्यानके हरनेवाले थे, मनोहर थे, दुर्धर थे, गुणोंसे युक्त थे, लावण्यके द्वारा सौन्दर्यको हरनेवाले थे, और मनके भीतर भेदनेमें निपुण थे ॥४६-४८॥ इस तरह जगत्की आश्चर्य करनेमें समर्थ तथा सीमाभयरूपी गुणसे गर्वित लकासुन्दरी हनुमान्के हृदयके भीतर प्रविष्ट होगई ॥४९॥ वह हनुमान्, बाण, शक्ति तथा शतघ्नी आदि शस्त्रोंसे उस प्रकार पीडित नहीं हुआ था जिस प्रकार कि सूर्यको विदारण करने वाले कामके वाणोंसे पीडित हुआ था ॥५०॥ हनुमान् विचार करने लगा कि यह मनोहराकार को धारक, अपनी ललित चेष्टा रूपी वाणोंसे मुझे भीतर और बाहर दोनों ही स्थानों पर घायल कर रही है ॥५१॥ इस युद्धमें वाणोंसे भरकर मर जाना अच्छा है किन्तु इसके बिना स्वर्गमें भी जीवन विताना अच्छा नहीं है ॥५२॥ इधर इस प्रकार हनुमान् विचार कर रहा था उधर जिसका मन दयामें आसक्त था तथा जो त्रिकूटाचलकी अद्वितीय सुन्दरी थी ऐसी कन्या लका सुन्दरीने कामसे प्रेरित हो, देदीप्यमान मन तथा शरीरके धारक, कमलदललोचन, तरुण चन्द्रवदन, मुकुट पर वानरका चिह्न धारण करनेवाले, नवयौवनसे युक्त एव मूर्तिधारी कामदेवके समान सुन्दर हनुमान्की मारनेके लिए उठाई हुई शक्ति

दुष्यौ च मारयाग्येत कथ दोषमपि ध्रितम् । रूपेणानुपमानेन द्विन्ते मर्माणि यो मम ॥१६॥  
यद्यनेन सम सत्ता कामभोगोदयद्युतिम्<sup>१</sup> । न निपेदे च लोकेऽस्मिन् ततो मे जन्म निष्फलम् ॥१७॥  
अत सपथमुद्दिश्य स्वनामाङ्क हनूमते । प्रजिघास शर मुग्धा विह्वलेनान्तरामना ॥१८॥  
पराजिता त्वया नाथ साह सम्मथसायकै । सुरैरपि न या शक्या जेतु सद्धान्प्रतिभि ॥१९॥  
प्रवारय माहतिर्वाणमङ्क स्वैरमुपागतम् । घृति परा परिप्राप्तो रथाद्वरमपातरत् ॥२०॥  
उपस्थ्य च ता वन्या मृगेन्द्रसमविव्रम । हृत्वाङ्के गाढमालिङ्गत् कामो रनिमिवापराम् ॥२१॥  
अथ प्रशान्तवैरासावसनुदिनलोचना । तातप्रयाणशोकातां जगदे वायुसूनुना ॥२२॥  
मा रोद्री सौम्यवक्त्रे<sup>२</sup> त्वमल शोकेन भामिनि । विहिता गतिरेपैव चाग्रधर्मे सनातने ॥२३॥  
ननु ते ज्ञातमेवैतद्यथा राजवधिौ स्थिता । विप्रादानपि निष्पन्ति नरा कर्मयत्नेरिता ॥२४॥  
वृथा रोदिषि किन्वेतद्वधानमातं विवर्णय । अस्मिन् हि सकले लोके विहित मुग्धते प्रिये ॥२५॥  
निहितोऽयमनेनेति द्विद्वर व्याजमात्रकम् । आयु कर्मानुभावेन प्राप्तकालो विपद्यते ॥२६॥  
वचोभिरभिरन्यैश्च मुग्धोऽपि व्यरजत । सहिता वातिनां यद्वदिन्दुना निर्वैना निशा ॥२७॥  
प्रेमनिर्भरपूर्णेन तयोरोलिङ्गनेन स । सद्भ्रामज श्रमो दूरमयायात सुचेतसो ॥२८॥

शीघ्र ही सहित करली—पीछे हटा ली ॥ १३-१५ ॥ वह विचार करने लगी कि यद्यपि यह पिताके मारनेसे दोषी है तो भी जो अनुपम रूपसे मेरे मर्मस्थान विदार रहा है ऐसे इसे किस प्रकार मारूँ ? ॥ १६ ॥ यदि इसके साथ मिलकर कामभोगरूपी अभ्युदयका सेवन न करूँ तो इस लोकमें मेरा जन्म लेना निष्फल है ॥ १७ ॥ तदनन्तर विह्वल मनसे मुग्ध उस लकामुन्दरीने समीचीन मार्गके उद्देश्यसे अपने नामसे अंकित एक बाण हनूमानके पास भेजा ॥ १८ ॥ उस बाणमें उसने यह भी लिखा था कि हे नाथ ! जो मैं इकट्ठे हुए देवाके द्वारा भी नहीं जीती जा सकती थी वह मैं, आपके द्वारा कामके बाणसे परानित हो गई ॥ १९ ॥ गोदमें आये हुए उस बाणको अच्छी तरह बॉच कर परम धैर्यको प्राप्त हुआ हनूमान् शीघ्र ही रथसे उतरा ॥ २० ॥ और उसके पास जाकर सिंहके समान पराक्रमी हनूमान्ने उसे गोदमें विठा उसका ऐसा गाढ आलिङ्गन किया मानो कामदेवने दूसरो रतिका ही आलिङ्गन किया हो ॥ २१ ॥

तदनन्तर जिसका वैर शान्त हो गया था, जिसके नेत्रोंसे दुर्दिनकी भोंति अचिरल अश्रुओंकी वर्षा हो रही थी तथा जो पिताके मरणसम्बन्धी शोकसे पीडित थी ऐसी उस लकामुन्दरीसे हनूमान्ने कहा ॥ २२ ॥ कि हे सौम्यसुरि ! रोओ मत । हे भामिनि ! शोक करना व्यर्थ है । सनातन क्षत्रिय धर्मकी तो यही रीति है ॥ २३ ॥ यह तो तुम्हें विदित ही है कि राजकार्यमें स्थित मनुष्य, कर्मबलसे प्रेरित हो पिता आदिको भी मार डालते हैं ॥ २४ ॥ व्यर्थ ही क्यों रोती हो ? इस आर्तध्यानको छोड़ो । हे प्रिये ! इस समस्त ससारमें अपना किया हुआ ही सत्र भोगते हैं अर्थात् जो जीसा करता है वैसा भोगता है ॥ २५ ॥ 'यह शत्रु इसके द्वारा मारा गया' यह कहना तो छलमात्र है यथार्थमें तो आयुकर्मके प्रभावसे समय पाकर यह जीव मरता है ॥ २६ ॥ इस प्रकार इन तथा अन्य वचनोंसे जिसका शोक छूट गया था ऐसी लकामुन्दरी हनूमान् के साथ इस प्रकार सुरोभित हो रही थी जिस प्रकार कि मेघरहित रात्रि चन्द्रमाके साथ सुरोभित होती है ॥ २७ ॥ तदनन्तर उत्तम हृदयके धारक उन दोनोंका सप्रामसे उत्पन्न हुआ श्रम, प्रेमरूपी निर्भरसे परिपूर्ण आलिङ्गनके द्वारा दूर भाग गया ॥ २८ ॥

१ द्युति म० । कामभोगोदय द्युतिम् ज० । २ प्रोवाच म० । ३ प्रशान्तवैरा + अस्ती + अखदुर्दिन ।  
४ सौम्यरत्ने म० । ५ वातस्थापत्य पुमान् याति, तेन हनूमता ।

तती यत्र नभोदेशे स्तम्भिण्या विद्यया खगा । स्तम्भिता बलमत्रैव रचितावासमाश्रितम् ॥६१॥  
 सन्ध्यारक्ताभ्रसङ्काशा गीर्वाणनगरोपमम् । श्रीशैलस्थ तदयन्त शिविर पर्यराजत ॥७०॥  
 गजवाजिविमानस्था रथस्थाश्च महानृपा । तपुर ध्वजमालाढ्य विविशु पृष्टवातय ॥७१॥  
 स्थितास्तत्र यथान्याय लङ्गोत्साहसमुत्सवा । कथाभिरतिवित्राभि सूरसद्ग्रामजन्मभि ॥७२॥  
 अथ त त्वरितामान वार्ति गन्तु समुद्यतम् । बाला विश्रब्धमप्राक्षादिति प्रेमपरायणा ॥७३॥  
 विविधागोभिरापूर्णं ध्रुतदु सहविक्रम । कान्त लङ्का किमर्थं त्व वद गन्तु समुद्यत ॥७४॥  
 तस्यै जगाद् वृत्तान्तमशेष वायुनन्दन । ह्यय प्रयुपकारस्य बान्धवैरनुमोदितम् ॥७५॥  
 सातया मह रामस्य भद्रे भद्रसमागम । इतया राक्षसेन्द्रेण कर्तव्य सर्वथा मया ॥७६॥  
 साञ्जवात् समतिक्रान्त सौहार्दं तपुरातनम् । श्रद्धास्नेहक्षये नष्टा प्रदीपस्य यथा शिखा ॥७७॥  
 ज्ञानीदं रथ्योपशोभाख्या ध्वजमालाङ्गुलाङ्गनाम् । प्राविशदादतो लङ्का भवान् दिवमिवामर ॥७८॥  
 अधुना त्वयि दोषाढ्ये रावणश्चण्डशासन । प्रकाश व्रजति क्रोध गृहीष्यति न सशय ॥७९॥  
 यदोपलभ्यते चार्वा विशुद्धि कालदेशयो । विशुद्धामानमव्यप्र तदा त दष्टुमर्हसि ॥८०॥  
 एवमेवेति सोऽञ्चोचदधर्वापि विचक्षणै । आकृत तस्य विज्ञातु गवा वाञ्छामि सुन्दरि ॥८१॥  
 कौटशा वा सता साता रूपेण प्रथिता भवेत् । चालित मेदेवदीर रावणस्य मनो यथा ॥८२॥

तदनन्तर स्तम्भिनी विद्याके द्वारा आकाशके जिस प्रदेशमें विद्याघर रोक दिये गये थे प्रदेशमें आवास बनाकर वह सेना ठहराई गई ॥६१॥ सन्ध्याके रक्त मेघके समान दिखनेवाला उसी हनूमान्का वह शिविर देवनगरके तुल्य अत्यधिक सुरोभित हो रहा था ॥७०॥ उस सेनामें जो बड़े बड़े राजा थे उन्होंने हनूमान्से पूछकर हाथियों, घोड़ों, विमानों तथा रथोंपर सवार हो ध्वजाओंके समूहसे युक्त उस नगरमें प्रवेश किया ॥७१॥ वे शूर वीरोंके सप्राप्तसे उत्पन्न नाना प्रकारकी कथाएँ करते हुए उस नगरमें उत्साह और उल्लासको प्राप्तकर यथायोग्य ठहरे ॥७२॥

अथानन्तर जिसका मन शीघ्रतासे युक्त था ऐसे हनूमान्को जानेके लिए उद्यत देख प्रेमसे भरी लङ्कासुन्दरीने एकान्तमें उससे पूछा कि ॥७३॥ हे नाथ ! आप रावणके दु सह पराक्रमकी वात सुन चुके हैं और स्वयं नाना अपराधोंसे परिपूर्ण हैं फिर किसलिए लका जानेको उद्यत हैं सो तो कहो ॥७४॥ इसके उत्तरमें हनूमान्ने उसे सब वृत्तान्त कहा और यह बताया कि प्रत्युपकारका करना बन्धुजनोंके द्वारा अनुमोदित है ॥७५॥ हे भद्रे ! राक्षसोंका इन्द्र रावण सीताको हर ले गया है सो उसके साथ रामका समागम मुझे अवश्य करना है ॥७६॥ यह सुन लका सुन्दरीने कहा कि रावणके साथ आपका जो पुराना सौहार्द था वह नष्ट हो चुका है जिस प्रकार नेत्रके नष्ट हो जानेसे दीपकी शिखा नष्ट हो जाती है उसी प्रकार आपके प्रति श्रद्धाके नष्ट हो जानेसे रावणका सौहार्द नष्ट हो गया है ॥७७॥ एक समय था कि जब आपमागोंकी शोभासे दुक्त तथा ध्वजाआकी पक्तिसे अलङ्कृत लङ्कामें बड़े आदरके साथ उस तरह प्रवेश करते थे जिस तरह कि देव स्वर्गमें प्रवेश करता है ॥७८॥ परन्तु आज आप अपराधी होकर यदि लकामें प्रकट रूपसे जाते हैं तो कठोर शासनको धारण करनेवाला रावण आपपर क्रोध ग्रहण करेगा इसमें सशय नहीं है ॥७९॥ अतः जिस समय देश और कालकी उत्तम शुद्धि-अनुकूलता प्राप्त हो तथा रावणका हृदय शुद्ध एव व्यग्रता रहित हो उस समय उसका साक्षात्कार करना योग्य है ॥८०॥ इसके उत्तरमें हनूमान्ने कहा कि विदुषि ! तुमने जैसा कहा है यथार्थमें वैसा ही है । किन्तु हे सुन्दरि ! मैं रावणका अभिप्राय जानना चाहता हूँ ॥८१॥ और यह भी देखना चाहता हूँ कि वह

एवमुक्त्वा मरुपुत्रस्तद्विन्यस्तमहाबलः । तथा मुक्तो विवेचिन्या त्रिट्टाभिमुखं यथा ॥८३॥

दोधकवृत्तम्

चित्रमिदं परमत्र मृलोके, य परिहाय भृशं रसमेकम् ।  
तत्क्षणमेव विशुद्धशरीरं जन्तुरपैति रसान्तरसङ्गम् ॥८४॥  
कर्मविचेष्टितमेतद्भुक्तिम् किन्त्वयवाद्भुतमस्ति निसर्गं ।  
सर्वमिदं स्वशरीरनिबद्धं दक्षिणमुत्तरतरच रवीहा ॥८५॥

इत्यार्षे रविपेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे हनूमल्लङ्कासुन्दरीकन्यालाभाभिधानं नाम  
द्विपञ्चाशत्तमं पर्व ॥५२॥



सती सीता कैसी रूपवती है कि जिसने मेरुके समान धीर, वीर रावणका मन विचलित कर दिया है ॥८३॥ इस प्रकार कहकर तथा अपनी सेना उसीके पास छोड़कर हनूमान् उस विचेकवतीसे छूटकर त्रिट्टाचलकी ओर चला ॥८३॥

गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! इस संसारमें यह परम आश्चर्यकी बात है कि प्राणी एक रसको छोड़कर उसी क्षण विशुद्ध रूपकी धारण करनेवाले दूसरे रसको प्राप्त हो जाता है ॥८४॥ सो इस संसारमें यह प्राणियोंके कर्मकी ही अद्भुत चेष्टा है । जिस प्रकार सूर्यकी गति कभी दक्षिण दिशाकी ओर होती है और कभी उत्तर दिशाकी ओर । उसी प्रकार प्राणियोंके शरीरसे सम्बन्ध रखनेवाला यह सब व्यवहार कर्मकी चेष्टानुसार कभी इस रसरूप होता है और कभी उस रसरूप होता है ॥८५॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविपेणाचार्य कथित पद्मपुराणमें हनूमान्को लका-  
सुन्दरी कन्याकी प्राप्तिका वर्णन करनेवाला बावनवां पर्व समाप्त हुआ ॥५२॥



## त्रिपञ्चाशत्तमं पर्व

मगधेन्द्र ततो वाति प्रभावोदयसङ्गत । लङ्का विवेश नि शङ्क स्वल्पानुगसमन्वित ॥१॥  
द्वारे च रचिताभयर्षे विभीषणनिश्चेतनम् । विवेश योग्यमेतेन सम्मान च समाहृत ॥२॥  
तत स्थित्वा षण किञ्चित् सस्यूष्टाभि परस्परम् । वार्ताभिरिति सद्वाक्य व्याजहार भरसुत ॥३॥  
उचित किमिदं कर्तुं यद्वास्यार्द्धपति स्वयम् । कुरुते क्षुद्रवक्त्रश्चिञ्चोरण परयापित ॥४॥  
मर्यादाना नृपो मूलमापगाना यथा नग । अनाचारे स्थिते तस्मिन् लोकेऽस्तत्र प्रवर्तते ॥५॥  
ईदृशे चरिते कृत्ये सर्वलोकविनिन्दिते । सहनीय समस्ताना दु खमेप्यति नो भ्रुवम् ॥६॥  
तए क्षेमङ्करमस्माक हिताय जगता तथा । उच्यता रावण शास्त्र वचो न्यायानुपालकम् ॥७॥  
यथा किल द्वये लोके निन्दनीय विचेष्टितम् । सा कार्पी जगतो नाथ कीर्तिविध्वंसकारणम् ॥८॥  
विमलं चरित लोके न केवलमिहेष्यते । किन्तु गावणिलोकेऽपि रचिताञ्जलिभि सुरै ॥९॥  
कैरुमीनन्दनोऽश्वोच्चद् बहुशोऽभिहितो मया । तत प्रभृति नैवासी मया सम्भाषते समम् ॥१०॥  
तथापि भवतो वाक्यान् श्व समये नरेश्वरम् । वक्तास्मि किन्तु दु खेन त्यज्यस्येतदसौ प्रहम् ॥११॥  
अहोऽयैकादश जात सीताया वल्यनोऽङ्गने । तथापि विरति काञ्चिद्भङ्गेन्द्रस्य न जायते ॥१२॥  
तच्छ्रुत्वा वचन सद्य महाकारुण्यसङ्गत । प्रमदाह्वयमुद्यान मारुतिर्गन्तुमुद्यत ॥१३॥  
अपश्यच्च लतानालैस्तत्र वैराकुलीकृतम् । अरुणै पङ्क्तै न्यास वरखीकरचारुभि ॥१४॥

अथानन्तर-भोतम स्वामी कहते हैं कि हे मगधराज ! प्रभाव और अभ्युदयसे सहित तथा स्वल्प अनुचरोसे युक्त हनूमान्ने नि शङ्क हीकर लङ्कामे प्रवेश किया ॥१॥ वहाँ जिसके द्वारपर सत्कार किया गया था ऐसे विभाषणके महलमे प्रवेश किया और विभीषणने यथायोग्य उनका सम्मान किया ॥२॥ तदनन्तर वहाँ परस्पर इधर उधरकी कुछ वार्ताएँ करते हुए क्षण भर ठहर कर हनूमान्ने इस प्रकारके सद्बचन कहे कि तीन खण्डका अधिपति किसी सुद्र मनुष्यकी तरह पर-स्त्रीकी चोरी करता है सो क्या ऐसा करना उचित है ? ॥३॥ जिस प्रकार पर्वत नदियोंका मूल है उसी प्रकार राजा मर्यादाओका मूल है । यदि राजा स्वय अनाचारमे स्थित रहता है तो उसकी प्रजा भी अनाचारमे प्रवृत्ति करने लगती है ॥४॥ फिर ऐसा कार्य तो सर्वलोक विनिन्दित है—सब लोगोंकी निन्दाका पात्र है । इसके करने पर सब लोगोंको दुःख सहन करना पड़ता है और हम लोगोंको तो निश्चित ही दुःख प्राप्त होता है ॥५॥ इसलिए हम सबके कल्याणके लिए तथा जगतके हितके लिए शीघ्र ही रावणसे ऐसे वचन कहिये जो न्यायकी रक्षा करनेवाले हों ॥६॥ उन्हें बतलाइये कि हे जगतके नाथ ! दोनों लोकोंमे निन्दनीय तथा कीर्तिको नष्ट करनेवाली चेष्टा मत कीजिये ॥७॥ निर्मल निर्दोष चरित्रकी न केवल इस लोकमे चाह है अपितु स्वर्गलोकमे देव भी हाथ जोड़कर उसकी चाह करते हैं ॥८॥

तदनन्तर विभीषणने कहा कि मैंने रावणसे अनेक बार कहा है पर वह उस समयसे मेरे साथ बात ही नहीं करता है ॥९॥ फिर भी आपके कहनेसे मैं कल राजाके पास जाकर कहूँगा किन्तु यह निश्चित है कि वह बड़े दु खसे ही इस हठको छोड़ेगा ॥१०॥ यद्यपि आज सीताको आहार पानी छोड़े ग्यारहवाँ दिन है तथापि लङ्काधिपतिको कुछ भी विरति है—इस कार्यसे रज्जमात्र भी विरक्तता नहीं है ॥११॥ विभीषणके यह वचन सुन महा दयाभावसे युक्त हनूमान् प्रमदोद्यानम जानेके लिए उद्यत हुआ ॥१२॥ जाकर उसने उस प्रमदोद्यानको देखा जो कि नई नई लताओंके

१ त्रिलण्डभरताधिप । २ विभीषण । ३ त्यज्यते न ह्यसौ म० । ४. पङ्क्तोऽङ्गने म० । ५. स्त्रव वेपकुलीकृतम् म० ।

ध्रमरमातृयुं चैः सुजातैर्वन्द्योत्तरम् । फलैरानतशाखाप्रं किञ्चित् पत्रनकम्पितम् ॥१५॥  
 पद्मादिच्छादितैः स्वच्छैः सरोभिः सदलङ्कृतम् । भासुर कल्पवल्लीभिः सद्गताभिर्महातरुम् ॥१६॥  
 गीर्वाणकुरदेशाभ प्रसूनरजसावृतम् । नन्दनस्य दधसाग्यमनेकाङ्गतसङ्कुलम् ॥१७॥  
 ततो लीलां वहन् रम्यां वायू राजीवलोचनः । विवेश परमोद्यान सीतादर्शनकाङ्क्षया ॥१८॥  
 प्रनिधाय च सर्वांस्तु दिक्षु चञ्चुरतिचरम् । विविधद्रुमदेशेषु गहनेषु दलादिभिः ॥१९॥  
 दृष्ट्वा च दूरतः सीतामन्यदर्शनवर्जितः । अचिन्तयद्दसी सैषा रामदेवस्य सुन्दरी ॥२०॥  
 स्निग्धज्वलनमङ्गाया वाष्पपूरितलोचना । करविन्यस्तवत्रेन्दुमुक्कदेशी केशोदरी ॥२१॥  
 अहो रूपमिदं लोके जिताशेषमनोहरम् । परमां रयातिमायात् सत्यवस्तुमिवन्धनम् ॥२२॥  
 रहिता शतपत्रेण नास्या लक्ष्मीः समा भवेत् । दुःखार्णव गतान्येषा सदृशी नान्ययोपिता ॥२३॥  
 निषय शिरसाद्देशस्य मृत्युमुपैष्यहम् । विरहे पद्मनाभस्य धारयामि न जीवितम् ॥२४॥  
 वृत्तप्रविणतनामेवं वैदेहीं पवनागमजः । निःशब्दपादसम्पातः प्राप्नो रूपान्तर दधत् ॥२५॥  
 ततोऽद्भुतीयक तस्या विससर्जाङ्गवामसि । सहसा सा तमालोत्प स्मेराभ्रपुलकाचिता ॥२६॥  
 तस्यामेवमवस्थायां गवा नार्यस्वरान्विताः । तोपादवर्धपन् दिष्ट्या रावण तपरायणम् ॥२७॥

समूहसे व्याप्त था, उत्तम स्त्रियोंके हाथोंके समान सुन्दर लाल-लाल पल्लवोंसे युक्त था, ध्रमरोंसे आच्छादित सुन्दर गुच्छोंके द्वारा जिस पर सेहरा बंध रहा था, जहाँ फलोंके भारसे शाखाओंके अप्रभाग नग्रीभूत हो रहे थे, जो वायुके द्वारा कुछ-कुछ हिल रहा था, कमल आदिसे आच्छादित स्रच्छ सरोवरोंसे जो अलंकृत था, जो वड़े-बड़े वृक्षोंसे लिपटी हुई कल्पलताओंसे वेदीयमान था, जो देवकुल प्रदेशके समान जान पड़ता था, फूलोंकी परागसे आवृत था, अनेक आश्रयोंसे व्याप्त था तथा नन्दनवनकी समानता धारण कर रहा था ॥१४-१७॥ तदनन्तर मनोहर लीलाको धारण करता हुआ कमल लोचन हनुमान सीताके दर्शनकी इच्छासे उस उत्कृष्ट उद्यानमें प्रविष्ट हुआ ॥१८॥ वहाँ जाकर उमने शीघ्र ही समस्त दिशाओंमें तथा पल्लवों आदिसे सवन नाना वृक्षोंके समूहमें दृष्टि डाली ॥१९॥ वहाँ दूरसे ही सीताको देखकर वह अन्य वस्तुओंके दर्शनसे रहित हो गया अर्थात् उसी ओर टकटकी लगाकर देखता रहा । तदनन्तर उसने विचार किया कि वह रामदेवकी सुन्दरी यही है ॥२०॥ यह स्निग्ध अग्निके समान है, इसके नेत्र आँसुओंसे भर रहे हैं, वह हथेलीपर सुखरूपी चन्द्रमाको रंगे हुई है, केश इसके गुले हुए हैं तथा उदर इसका अत्यन्त कृश है ॥२१॥ उसे देखकर हनुमान विचार करने लगा कि अहो ! लोके इसका रूप समस्त मनोहर पदार्थोंको पराजित करने वाला है, परम रयातिको प्राप्त है तथा सत्य वस्तुओंका कारण है ॥२२॥ कमलसे रहित लक्ष्मी अर्थात् कमलसे निकली हुई साक्षान् लक्ष्मी इसकी बराबरी नहीं कर सकती । अहो ! यह दुःखरूपी सागरमें निमग्न है तो भी अन्य स्त्रियोंके समान नहीं है ॥२३॥ वह इस प्रकार विचार कर रही थी कि मैं इस पर्वतके शिखरसे गिरकर मृत्युको प्राप्त कर सकती हूँ परन्तु रामके विरहमें जीवन नहीं धारण करूँगी ॥२४॥ इस प्रकार विचार करती हुई सीताके पास, हनुमान चुपचाप पैर रखता हुआ दूसरा रूप धारण कर गया ॥२५॥

तदनन्तर हनुमान्ने सीताकी गोदके वस्त्रपर अंगूठी छोड़ी उसे देखकर वह सहसा हँस पड़ी तथा रोमाञ्चांसे युक्त हो गई ॥२६॥ सीताकी ऐसी अवस्था होनेपर वहाँ जो स्त्रियों थीं उन्होंने शीघ्रतासे जाकर सीताका समाचार जाननेमें तत्पर रहनेवाले रावणको शुभ समाचार

सन्तुष्टोऽङ्गगत ताम्थो वस्त्ररत्नादिक ददौ । ध्रुवा स्मेरानना सीता सिद्ध कार्यं विचिन्तयन् ॥२८॥  
 विधातु महिमान च किञ्चिदादिशतु सुकः । सुगपूरमिव प्राप्त समुल्लासधरे हृदि ॥२९॥  
 स्वनाथवचनात् साध्वा सर्वान्त पुरसयुता । गता मन्दोदरा शीघ्र यत्रासौ जनकामजा ॥३०॥  
 विकचास्यद्युति साता इष्टा मन्दोदरा चिरात् । जगौ बाले ख्यायाऽस्माक परमोऽनुग्रह कृत ॥३१॥  
 अधुना भज लोकेश रावण शोकवज्रिता । सुराणां श्रारिवाधीश लब्धनिःशेषसम्पदम् ॥३२॥  
 इत्युक्त्वा कुपिताबोचयदाद् भवतारितम् । परम खेवरि जानाति म्रियते ते पतिर्भुवम् ॥३३॥  
 धार्ता समागता भर्तुरिति तोपमुपागता । अकार्यं वदन स्मेर भञ्जन्ती परमां घृतिम् ॥३४॥  
 इति ता वचन ध्रुवा रात्रसेशस्य योषित । ऊचु क्षुद्रवधातेन लपत्येपेति सर्मिता ॥३५॥  
 तत श्रेणिक वैदेही नितान्त तुह्यया गिरा । परम विस्मय प्राप्ता जगदैव समुसुका ॥३६॥  
 गताया व्यसन घोरमन्थिद्रापे महामये । कोऽप्य सन्निहित साधुर्बन्धुभूतोऽतिवसल ॥३७॥  
 ततो नभस्वत सूनुरेवमथितदर्शन । अभिप्रायमिम चक्रे साधुतायुक्तमानस ॥३८॥  
 परार्थं य पुरस्कृत्य पुन स्व विनिगृहति । सोऽतिगीरुतयायन्त जायते निकृतो नर ॥३९॥  
 परमापदि सादन्त जन सन्धारयन्ति ये । अनुकम्पनशालानां तेषा जन्म सुनिर्मलम् ॥४०॥  
 हानि पुरुषकारस्य न चा मनि निदर्शिते । प्रकाश्ये गुरुता याति जगति शीघ्रंशस्विना ॥४१॥

सुना हर्षसे वृद्धिगत किया ॥२७॥ रावणने सन्तुष्ट होकर उन स्त्रियोंके लिए अपने शरीरपर स्थित वस्त्र तथा रत्न आदिक दिये और सीताको प्रसन्नमुखी सुन अपना कार्य सिद्ध हुआ समझा ॥२८॥ उसके हृदयमें इतना उल्लास हुआ मानो अमृतके पूरको ही प्राप्त हुआ हो । उसी समय उसने उत्सुक हो अनिर्वचनीय उत्सव करनेका आदेश दिया ॥२९॥ अपने पतिके कहनेसे पतिव्रता मन्दोदरी भी समस्त अन्त पुरके साथ शीघ्र ही वहाँ गई जहाँ सीता विद्यमान थी ॥३०॥ बहुत दिन बाद आन जिसके मुखकमलकी कान्ति विकसित हो रही थी ऐसी सीताको देख मन्दोदरीने कहा कि हे बाले ! आज तूने हम सब पर बड़ा अनुग्रह किया है ॥३१॥ जिस प्रकार समस्त सम्पदाआसे युक्त देवेन्द्रकी लक्ष्मी सेवा करती है उसी प्रकार तू भी अब शोक रहित हो जगत्पति रावणकी सेवा कर ॥३२॥ मन्दोदरीके इस प्रकार कहनेपर सीताने कुपित होकर कहा कि हे विद्याधर ! यदि तेरा यह कहना राम जान पावें तो तेरा पति निश्चित ही मारा जावे ॥३३॥ आज मेरे भर्ताका समाचार आया है इसलिए सन्तोषको प्राप्त हो परम धैर्यको प्राप्त हुई हूँ और इसीलिए मैंने मुखकी मन्दहास्यसे युक्त किया है ॥३४॥ सीताके यह वचन सुनकर रावणकी स्त्रियाँ कहने लगीं कि लुधाके कारण इसे वायुरोग हो गया है इसीलिए यह हँसता हुई ऐसा बक रही है ॥३५॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! इसके बाद परम आश्चर्यको प्राप्त हुई सीताने अत्यन्त उत्सुक हो अतिशय उच्च वाणीमें इस प्रकार कहा कि जो समुद्रके भीतर विद्यमान महाभयदायक इस द्वीपमें कष्टको प्राप्त हुई है ऐसा मेरा कौन स्नेही उत्तम बन्धु यहाँ निकट आया है ॥३६-३७॥

तदनन्तर जिसके दर्शनकी प्रार्थनाकी गई थी तथा जिसका मन सज्जनतासे युक्त था ऐसे हनूमान्ने इस प्रकार विचार किया कि ॥३८॥ जो मनुष्य दूसरेका कार्य आगेकर अर्थात् पहलेसे स्वीकृतकर फिर अपने आपको छिपाता है वह अत्यन्त भीरु होनेके कारण नोच मनुष्य होता है ॥३९॥ और जो आपत्तिमें पड़े हुए दूसरे मनुष्यको आलम्बन देते हैं उन दयालु मनुष्योंका जन्म अत्यन्त निर्मल होता है ॥४०॥ इसके सिवाय अपने आपकी प्रकटकर देनेमें पुरुषत्वकी कुछ हानि भी तो नहीं मालूम होती अपितु प्रकटकर देनेपर यशस्विनी लक्ष्मी ससारमें गौरवको प्राप्त होती है ॥४१॥ तदनन्तर हनूमान् आमण्डलकी नौई हजारों उत्तम स्त्रियोंके बीच



उत्तमस्त्रीसहस्राणां ततो मप्यगताभिमानम् । प्रभोमण्डलकल्लोऽसौ पद्मपत्रोमुपागमन् ॥४२॥  
 नि शङ्कद्विपविशान्तः सर्गुणैन्दुसमाननः । सहस्रांशुसमो दाप्या मात्स्याम्बरविभूषितः ॥४३॥  
 रूपेणाप्रतिभो युक्तः कान्त्या निर्गुणचन्द्रमा । किरांटे वानर विश्रदामोदाहनपटुपदः ॥४४॥  
 चन्द्रनाथितसर्वाङ्गः पातचर्चाविराजितः । ताम्बूलारक्तविम्बोष्ठः प्रलम्बाशुक्रशोभितः ॥४५॥  
 चलकुण्डलविद्योतविहसद्गण्डमण्डलः । पर सहननं विभ्रद्वीर्येणान्तविवजित ॥४६॥  
 सर्पन् सीता समुद्दिश्य हनूमान् गुणभूषणः । महाप्रतापसयुक्तः शोभासुपययौ पराम् ॥४७॥  
 कान्तिभासिसुख दृष्ट्वा त युत परया श्रिया । पद्मायतेक्षणा नार्यस्ता बभूवुः समाकुलाः ॥४८॥  
 दृघर्ता हृदये कम्प मन्दोदर्यातविस्मया । समोलोकत सोताया समीपे वायुवन्दनम् ॥४९॥  
 उपगम्य ततः सीतां विनीतः पवनामजः । करकुड्मलमाधाय मस्तके नम्रतायुधि ॥५०॥  
 कुल गोत्र च सश्राप्य पितर जननीं तथा । अवेदयच्च विश्रब्ध पद्मनाथेन चोदितम् ॥५१॥  
 त्रिविष्टपसमे साप्वि विमाने विभवान्विते । रतिं न लभते रामो मग्नस्त्वद्विरहार्णवे ॥५२॥  
 त्यक्तनिःशेषकर्तव्यो मीन प्रायेण धारयन् । स त्वा मुनिरिव ध्यायश्चेकतानोऽन्वितदृष्टे ॥५३॥  
 वेशुतन्प्रांसमायुक्तं गीतं प्रवरयोपिताम् । न कर्णजाहमेतस्य कदाचिद्व्याति पावने ॥५४॥  
 सदा करोति सर्वस्मै कथा स्वामिनि ते मुदा । त्वद्गीतगणशया प्राणान् बद्ध्वा धत्ते स केवलम् ॥५५॥  
 इति तद्गुण ध्रुवा पतिजीवनवेदनम् । प्रमोद परम प्राप्ता सीता विकल्पितेक्षणा ॥५६॥  
 विपाद सद्गता भूयो जलपुरितलोचना । ऊचे शान्ता हनूमन्त विनीत स्थितमप्रतः ॥५७॥

येठी हुई सीताके समीप गया ॥४२॥ जो शङ्का रहित हाथीके समान पराक्रमी था, जिसका मुख पूर्ण चन्द्रमाके समान सुन्दर था, जो दीप्तिसे सूर्यके समान था, माला और चष्मासे सुशोभित था। रूपसे अनुपम था। कान्तिसे मृग रहित चन्द्रमाके समान जान पड़ता था, मुकुटमें वानरका चिह्न धारण कर रहा था, सुगन्धिसे जो भ्रमरोको आकर्षित कर रहा था, चन्दन से जिसका समस्त शरीर चर्चित था, जो पीत विलेपनसे सुशोभित था, जिसका विम्बोष्ठ ताम्बूलके रससे लाल था, जो नीचे लटकते हुए चक्षुसे सुशोभित था, चञ्चल कुण्डलोंके प्रकाशसे जिसका गण्डरथल सुशोभित हो रहा था, जो उत्कृष्ट संहननको धारण कर रहा था, जिसके पराक्रमकी सीमा नहीं थी, जो गुणरूपी आभूषणोंसे युक्त था, तथा महाप्रतापसे सहित था ऐसा हनूमान् सीताको लक्ष्यकर धीरे-धीरे जाता हुआ परम शोभाको प्राप्त हो रहा था ॥४३-४४॥ जिसका मुख कान्तिसे सुशोभित था, ऐसे उत्कृष्ट लक्ष्मीसे युक्त हनूमान्को देखकर वे कमललोचना स्त्रियों व्याकुल हो उठीं ॥४५॥ जिसके हृदयमें कँपकँपी छूट रही थी ऐसी मन्दोदरीने सीताके समीप हनूमान्को बड़े आश्चर्यके साथ देखा ॥४६॥

तदनन्तर सीताके समीप पहुँचकर परम विनीत हनूमान्ने मुझे हुए मस्तकपर अञ्जलि बाँध पड़े अपने कुल, गोत्र तथा माता पिताका नाम सुनाया। उसके बाद निश्चिन्त हो रामका सन्देश कहा ॥५०-५१॥ उसने कहा कि हे पतिव्रते ! तुम्हारे विरहरूपी सागरमें डूबे राम, स्वर्गके समान वैभवसे युक्त विमानमें भी रतिको प्राप्त नहीं हो रहे हैं ॥५२॥ अन्य सब कार्य छोड़कर वे प्रायः मीन धारण किये रहते हैं और मुनिको भोगति एकाग्र चित्त हो तुम्हारा ध्यान करते हुए बैठे रहते हैं ॥५३॥ हे पावने—हे पवित्र कारिणि ! वाँसुरी तथा वीणासे युक्त उत्तम स्त्रियोंका संगीत कभी भी उनके कर्णमूलमें नहीं पहुँचता है ॥५४॥ हे स्वामिनि ! वे सदा सनके सामने बड़े हर्षसे तुम्हारी ही कथा करते रहते हैं और फेजल तुम्हारे दर्शनकी अभिलाषासे ही प्राणोंको बाँधकर धारण किये हुए हैं ॥५५॥ इस प्रकार पतिके जीवनको सूचित करनेवाले हनूमान्के वचन सुन सीता परम प्रमोदको प्राप्त हुई। उसके नेत्र-कमल खिल उठे ॥५६॥

तदनन्तर विपादको प्राप्त, शान्त सीताने नेत्रोंमें जल भगकर सामने बैठे हुए विनयी

साहस्यमावस्थायां निमग्ना कपिलचण । तुष्टा किं ते प्रयच्छामि हृतेन विधिनाम्बिता ॥५८॥  
 ऊचे च वायुपुत्रेण दर्शनेनैव ते शुभे । अद्य मे सुलभं सर्वं जातं जगति पूजिते ॥५९॥  
 ततो मुक्ताफलस्थूलवाष्पविन्दुचिताधरा । सीता श्रीरिव दुःखार्ता पप्रच्छ कपिलचणम् ॥६०॥  
 मकरप्राहनक्रादिचोभितं भीममर्णवम् । भद्रं दुस्तरमुल्लंघ्य विस्तारं कथमागतः ॥६१॥  
 अवस्थां वा गतामेतां कार्यससिद्धिमागताम् । किमर्थं मामिहागम्य नयस्याश्वासमुचमम् ॥६२॥  
 लावण्यद्युतिरूपाङ्गव्यः कान्तिसागरसयुतः । श्रिया कीर्त्या च सयुक्तः प्रियो मे भद्रं बान्धवः ॥६३॥  
 प्रदेशे स त्वया कस्मिन् प्राणनाथो ममेक्षितः । सत्यं जीवति सद्गोत्रं क्वचिल्लक्ष्मणसङ्गतः ॥६४॥  
 किं नु दुःखेचरैः सख्ये भोमैः व्यापादितोऽनुज । लक्ष्मणेनैव तुल्यः स्यात्पद्मः पद्मामलोचनः ॥६५॥  
 किं वा महिरहादुद्रुख नाथः समाश्रितः । संदिश्य भवतः किञ्चिद्भवे लोकान्तरं गतः ॥६६॥  
 जिनेन्द्रविहिते मार्गे निःशेषग्रन्थवर्जितः । तपस्यन् किमसावास्ते भवनिर्वेदपण्डितः ॥६७॥  
 शिथिलीभूतनिःशेषशरीरस्य वियोगतः । अङ्गुलीतरच्युत प्राप्तं त्वया स्यादङ्गुलीयकम् ॥६८॥  
 त्वया सह परिज्ञातिर्नासीदेव मम प्रभोः । कार्येण रहितः प्राप्तः कथं त्वं तस्य मित्रताम् ॥६९॥  
 न च प्रत्युपकाराय शक्ता तुष्टाप्यहं तव । अङ्गुलीयकमेतच्च समानीतं कृपावता ॥७०॥  
 एतत्सर्वं मम भ्रातः समाचक्ष्व विशेषतः । सत्येन श्रावितः पित्रोर्देवस्य च मनोजुषः ॥७१॥  
 इति पृष्टः समाधानी शास्त्रामृगकिरीटभृन् । शिरस्थकरराजीवो जगद् विकचेक्षणः ॥७२॥

हनुमान्से कहा कि हे कपिध्वज ! मैं इस अवस्थामें निमग्न तथा दुर्भाग्यसे युक्त हूँ । सन्तुष्ट होकर तुम्हें क्या हूँ ? ॥५७-५८॥ इसके उत्तरमें हनुमानने कहा कि हे शुभे—हे मङ्गलरूपिणि ! हे पूजिते ! आज आपके दर्शनसे ही मुझे संसारमें सब कुछ सुलभ हो गया है ॥५९॥ तदनन्तर मोतियोंके समान बड़ी-बड़ी अश्रुओंकी बूँदोंसे जिसका आँठ ब्याप्त हो रहा था तथा जो दुःखसे पीड़ित लक्ष्मीके समान जान पड़ती थी ऐसी सीताने हनुमानसे पूछा कि हे भद्र ! मकर—प्राह तथा नाक आदिसे चोभित इस भयंकर दुस्तर तथा लम्बे-चौड़े समुद्रको लॉचकर तू किस प्रकार आया है ? ॥ इस अवस्था अथवा कार्यकी सिद्धिको प्राप्त हुई जो मैं हूँ सो मुझे यहाँ आकर तू किसलिए उत्तम धैर्य प्राप्त करा रहा है ॥६०-६२॥ हे भद्र ! तू लावण्य-कान्ति तथा रूपसे सहित, कान्तिरूपी सागरसे घिरा, तथा लक्ष्मी और कीर्तिसे युक्त मेरा प्यारा भाई ही है ॥६३॥ तूने मेरे प्राणनाथको कहाँ देखा था ? हे कुलीन ! क्या सचमुच ही मेरे प्राणनाथ, लक्ष्मणके साथ कहीं जीवित हैं ? ॥६४॥ ऐसा तो नहीं है कि उन भयंकर दुष्ट विद्याधरोके द्वारा युद्धमें छोटा भाई लक्ष्मण मारा गया हो और उस दुःखसे दुःखी ही कमललोचन राम भी उसीकी तुल्य अवस्थाको प्राप्त हो गये हों ॥६५॥ अथवा तुम्हें सन्देश देनेके बाद मेरे विरहसे अत्यन्त उग्र दुःखको प्राप्त हो नाथ, किसी वनमें लोकान्तरको प्राप्त हो गये हो ? ॥६६॥ अथवा वे संसारसे विरक्त रहनेमें निपुण थे अतः समस्त परिग्रहका त्यागकर जिनेन्द्र प्रणीत मार्गमें दीक्षित हो कहीं तपस्या करते हुए विद्यमान हैं ? ॥६७॥ अथवा वियोगके कारण जिनका समस्त शरीर शिथिल हो गया है ऐसे श्रीरामकी अँगुलीसे यह अँगुठी कहीं गिर गई होगी सो तुम्हें मिली है ? ॥६८॥ तुम्हारे साथ मेरे स्वामीका परिचय पहले नहीं था फिर बिना कारण तू उनकी मित्रताको कैसे प्राप्त हो गया ? ॥६९॥ तू दयालु होकर यह अँगुठी लाया है सो सन्तुष्ट होकर भी मैं तेरा प्रत्युपकार करनेके लिए समर्थ नहीं हूँ ॥७०॥ हे भाई ! तू अपने माता-पिता अथवा हृदयमें विद्यमान श्रीजिनेन्द्रदेवके कारण सत्य ही कथन करेगा ॥७१॥ इस प्रकार पूछे जानेपर चित्तकी एकाग्रतासे युक्त, वानर-चिह्नित मुकुटको धारण करनेवाला, तथा विकसित नेत्रोंसे सहित

सायके रविहामाख्ये लक्ष्मणेन निर्जाहृते । गवा चन्द्रनम्यानिष्टा रमणं समरोपयन् ॥७३॥  
 यावदाहूयते स्वामी रक्षमां सुमहाबलः । दूषणस्नावदायातो योद्बुं दाशरथि द्रुतम् ॥७४॥  
 लक्ष्मणो दूषणेनामा युष्यते यावद्बुद्धतम् । तावद्दशमुखः प्रासस्तमुद्देशं बलान्वितः ॥७५॥  
 धर्माधर्मविनेकज्ञः सर्वशास्त्रविशारदः । भवतीं वीक्ष्य स क्षुद्रो भूयूव मनसो वयः ॥७६॥  
 भ्रष्टनिःशेषनातिश्र निरमारीभूतचेतनः । मायामिहृस्वनं चक्रे भवतींस्तेनकारणम् ॥७७॥  
 श्रुत्वा सिंहस्वनं पशो ययौ यावद्गणस्थितम् । लक्ष्मणं तावदेतेन पापेन त्वमिहाहृता ॥७८॥  
 प्रेषितः पद्मनाभश्च लक्ष्मणेन त्वरावता । गन्वा भूयस्तमुद्देशं न त्वामैषत सत्तमे ॥७९॥  
 ततश्चिरं वनं भ्रान्त्या त्वद्गणवेशणकारणम् । ईषाहक्रे रक्ष्यमाणं मृत्प्वामन्न जटायुपम् ॥८०॥  
 तस्मै दात्वा स जैनैर्न्द्रां त्रियमाणाव वेशनाम् । अवतस्थे वने दुःखी भवतींगतमानसः ॥८१॥  
 गतश्च लक्ष्मणः पद्म निहृत्य क्षरदूषणम् । आनीता रत्नजटीना त्वप्रवृत्तिः प्रियस्य ते ॥८२॥  
 सुप्रोवरूपसंयुक्तः पद्मनाभेन साहसः । बल हन्तु समुद्युक्ते विषया वञ्जितो हतः ॥८३॥  
 कृतस्याशोषकारस्य कुलपावनकारिणः । अहं प्रत्युपकाराय प्रेषितो गृहवान्धवैः ॥८४॥  
 श्रीश्या विमोचयामि त्वां विप्रहो निःप्रयोजनः । कार्यसिद्धिरिहाभीष्टा सर्वथा नयशालिभिः ॥८५॥  
 सोऽयं रङ्गापुरीनाथो षूणावान् विनयान्वितः । धर्मायैकामवान् धीरो हृदयेन मृदुः परम् ॥८६॥  
 सौम्यः क्रौर्यविनिमुक्तः सत्यव्रतवृत्तस्थितिः । करिष्यति वचो नून मम त्वामर्पयिष्यति ॥८७॥

हनुमान्, हस्त-कमल जोड़ मस्तकसे लगा इस प्रकार कहनेलगा ॥७२॥ कि जय लक्ष्मणने सूर्यहास रङ्ग अपने आधीनकर लिया और चन्द्रनम्याको जय राम-लक्ष्मणने चाहा नहीं तब उसने अपने पति ररदूषणको रोपयुक्त कर दिया अर्थात् विपरीत भिड़ाकर उसे कुपित कर दिया ॥७३॥ सहायताके लिए जब तक महाबलवान् राक्षसोंके स्वामी—रावणको बुलाया तबतक ररदूषण शीघ्र ही युद्ध करनेके लिए रामके समीप आया ॥७४॥ उधर लक्ष्मण जब तक ररदूषणके साथ विकट युद्ध करता है तब तक इधर अतिशय बलवान् रावण उस स्थान पर आता है ॥७५॥ यद्यपि रावण धर्म अधर्मके विवेकको जाननेवाला एवं समस्त शास्त्रोंका विशारद था, तो भी वह क्षुद्र आपकी देव मनके वशीभूत हो गया ॥७६॥ तदनन्तर जिसकी समस्त नीति भ्रष्ट हो गई थी और चेतना निःसार हो चुकी थी ऐसे उस रावणने आपकी चुरानेके लिए मायामय सिंहनाद किया ॥७७॥ उस सिंहनादको सुन जय तक राम, युद्धमें स्थित लक्ष्मणके पास गये तब तक वह पापी तुम्हें हरकर यहाँ ले आया ॥७८॥ उधर लक्ष्मणने शीघ्र ही युद्धक्षेत्रसे रामको वापिस किया सो यहाँसे आकर जय वै पुनः उस स्थानपर आये तब हे पतिव्रते ! लक्ष्मणने तुम्हें नहीं देखा ॥७९॥ तदनन्तर तुम्हें रोजनेके लिए चिरकाल तक वनमें भ्रमण कर उन्होंने शिथिल प्राण एवं मरण-सन्न जटायुको देखा ॥८०॥ तदनन्तर उस मरणोन्मुखके लिए जिनेन्द्र धर्मका उपदेश देकर वे दुःखी हो वनमें बैठ गये । उस समय उनका मन एक आपमें ही लग रहा था ॥८१॥

लक्ष्मण, ररदूषणको मारकर रामके पास आये और रत्नजटी तुम्हारे पतिके लिए तुम्हारा वृत्तान्त ले आया ॥८२॥ इसी बीचमें सुमीषके रूपसे युक्त साहस गति नामका विद्याधर रामको मारनेके लिए उद्यत हुआ परन्तु रामके प्रभावसे विद्यासे रहित होनेके कारण वह स्वयं मारा गया ॥८३॥ इस प्रकार रामने हृत्कारे कुलको पवित्र करनेवाला यह जो महान् उपकार किया था उसका बदला चुकानेके लिए ही गुरुजनोंने गुमे भेजा है ॥८४॥ मैं तुम्हें प्रीतिपूर्वक झुड़वाता हूँ । युद्ध करना निष्प्रयोजन है क्योंकि नीतिव्रत मनुष्योंको सब तरहसे कार्यकी सिद्धि करना ही संसारमें इष्ट है ॥८५॥ यह लंकापुरीका राजा रावण दयालु है, विनयी है, धर्म-अर्थ-कामरूप त्रिवर्गसे सहित है, धीर है, हृदयसे अत्यन्त कीमल है ॥८६॥ सौम्य है, क्रूरतासे रहित है और सत्यव्रतका पालनेवाला है, अतः निरिचत ही मेरा कहा करेगा और तुम्हें मेरे

कातिरस्य निजा पाल्या धवला लोकविश्रुता । लोकापवादतश्चैव विभेति नितरा कृता ॥८८॥  
 तत पर प्ररिप्राप्ता प्रमोद जनकामजा । हनूमन्तमिद वाच्य जगाद विपुलेक्षणा ॥८९॥  
 पराक्रमेण धैर्येण रूपेण विनयेन च । कपिध्वजास्त्वया तुल्या कियन्तो मत्प्रियाश्रिता ॥९०॥  
 मन्दोदरी ततोऽधोचक्षुरा सध्वयशोऽन्विता । गुणोत्कृता न शसन्ति धारा स्व स्वयमुत्तमा ॥९१॥  
 वैदेहि तव न ज्ञात किमय येन पृच्छसि । कपिध्वज समानोऽस्य वास्येऽयस्मिन्न विद्यते ॥९२॥  
 विमानवाहनघण्टासघटपरिमण्डले । रणे दशमुखस्याय प्राप्त साहाय्यक परम् ॥९३॥  
 दशाननसहायत्वं कृत येन महारणे । स हनूमानितिरियातश्चाञ्जनातनय पर ॥९४॥  
 महापदि निमग्नस्य दशवज्रस्य विद्विप । खेगामनोऽप्यघामित्या एकैकानेन निजिता ॥९५॥  
 अनङ्गकुसुमा लब्धा येन चन्द्रनखामजा । गम्भीरस्य जनो यस्य सदा वाञ्छति दर्शनम् ॥९६॥  
 अस्य पौरसमुद्रस्य य कान्त शिशिराशुवत् । सहोदरसम वेत्ति य लङ्कापरमेधर ॥९७॥  
 हनूमानिति विख्यात सोऽय सकलविष्टे । गुणै समुच्चतो नातो दूतत्वं चित्तिगोचरं ॥९८॥  
 अहो परमिद चित्र निन्दनाय विशेषत । नात प्राकृतवत्कश्चिद्गौर्यैर्दंष्ट्रयतामयम् ॥९९॥  
 इयुक्ते वचन वातिजगाद स्थिरमानस । अहो परममुदत्वं भवत्येदमनुष्ठितम् ॥१००॥  
 सुख प्रसादतो यस्य जीव्यते विभवान्वित । अकार्यं वाञ्छतस्तस्य दीयते न मति कथम् ॥१०१॥  
 आहार भोक्तुकामस्य विज्ञात विपमिश्रितम् । मित्रस्य कृतकामस्य कथ न प्रतिपिष्यते ॥१०२॥

लिए सौप देगा ॥८५॥ इसे अपनी लोकप्रसिद्ध उज्ज्वल कीर्तिकी भी तो रक्षा करना है अत  
 यह विद्वान् लोकापवादसे बहुत डरता है ॥८८॥

तदनन्तर परम हर्षको प्राप्त हुई विशाल लोचना सीता हनूमान्से यह वचन बोली कि  
 पराक्रमसे, धैर्यसे, रूपसे और विनयसे तुम्हारी सटशता धारण करनेवाले कितने वानरध्वज  
 हमारे प्राणनाथके साथ हैं ? ॥८६-९०॥ तत्र मन्दोदरी बोली कि जो शूरवीर है, सत्त्व और  
 यशसे सहित हैं, गुणोंसे उत्कट हैं तथा धीर वीर हैं ऐसे उत्तम पुरुष स्वयं अपनी प्रशंसा नहीं  
 करते ॥९१॥ हे वैदेहि ! तू इसे क्या जानती नहीं है जिससे ऐसा पूछ रही है ? इस भरत  
 क्षेत्र भरमे इसके समान दूसरा वानर ध्वज नहीं है ॥९२॥ विमाना तथा नाना प्रकारके वाहनोंके  
 समूहकी जहाँ अत्यधिक भीड़ होती है ऐसे सग्राममे यह रावणकी परम सहायता करता  
 है ॥९३॥ जिसने महायुद्धमे रावणकी सहायता की है ऐसा यह हनूमान् इस नामसे प्रसिद्ध  
 अञ्जनाका उत्कृष्ट पुत्र है ॥९४॥ एक बार रावण महा विपत्तिमे फँस गया था तब उसके ऐसे  
 अनेक शत्रु विद्याधरोंको इसने अकेले ही मार भगाया था जिनके कि नाम सुननेमात्रसे मनको  
 पीडा होती थी ॥९५॥ जिसने चन्द्रनखाकी पुत्री अनंग कुसुमा प्राप्त की है । जो इतना  
 गम्भीर है कि मनुष्य सदा जिसके दर्शनकी इच्छा करते हैं ॥९६॥ जो यहाँके नागरिक जन  
 रूपी समुद्रको वृद्धिद्वत करनेके लिए चन्द्रमाके समान मनोहर है और लङ्काका अधिपति रावण  
 जिसे भाईके समान समभक्ता है ॥९७॥ ऐसा यह हनूमान् समस्त ससारमें प्रसिद्ध, उत्कृष्ट  
 गुणाका धारक है फिर भी भूमि गोचरियाने इसे दूत बनाया है ॥९८॥ यह बड़े आश्चर्यकी बात  
 है । इससे अधिक निन्दनीय और क्या होगा कि इसे साधारण मनुष्यके समान, भूमि गोचरियाने  
 दासता प्राप्त करायो है अर्थात् अपना दास बनाया है ॥९९॥ मन्दोदरीके इस प्रकार कहनेपर  
 दृढचित्तके धारक हनूमान्ने इस प्रकार कहा कि अहो ! तुमने जो यह कार्य किया है सो परम  
 मूर्खता की है ॥१००॥ जिसके प्रसादसे वैभवके साथ सुखपूर्वक जीवन बिताया जा रहा है  
 यह यदि अकार्य करना चाहता है तो उसे सद्बुद्धि क्यों नहीं दी जाती है ? ॥१०१॥ इच्छा  
 नुसार काम करनेवाला मित्र यदि विपमिश्रित भोजन करना चाहता है तो उसे मना क्या नहीं

भवितव्यं कृतज्ञेन जनेन सुखमीयुषा । वेत्ति स्वार्थं न यस्तस्य जीवितं पशुना समम् ॥१०३॥  
 मन्दोदरि पर गर्वं नि सार वहसे मुधा । यदग्रमहिषी भूत्वा दूतीत्वमभि सञ्चिता ॥१०४॥  
 क यातमधुना तत्ते सौभाग्य रूपमुत्तमम् । अन्यस्त्रीगतचित्तस्य दूतीरय सञ्चितासि यत् ॥१०५॥  
 प्राकृता परमा सा त्व वत्ससे रतिवस्तुनि । महिषीत्व न मन्येऽह जाता गौरसि दुर्भगे ॥१०६॥  
 मन्दोदरी ततोऽश्वोच्च कौपालिङ्गितमानसा । अहो तव सदोपस्य प्रगल्भत्व निरर्थकम् ॥१०७॥  
 दूत येनागत सीता यदि त्वा वेत्ति रावण । भवेत्प्रकरण तत्ते जात यत्नैव कस्यचित् ॥१०८॥  
 येनैवेन्दुनखानाथो दैवयोगेन मारित । पुरस्कृत्य तमेवास्व कथं सुग्रीवकादय ॥१०९॥  
 भूयैव दशवक्रस्य विस्मृत्य स्वल्पचेतस । स्थिता किमथरा कुटुंबराका कालचोदिता ॥११०॥  
 अतिमूढहतात्मानो निर्लज्जा ह्युदवृत्तय । अकृतज्ञा वृथोल्लिखता स्थितास्ते मृत्युसन्निभौ ॥१११॥  
 इत्युक्ते वचन सीता जगौ कोपसमाश्रिता । मन्दोदरि सुमन्दा त्वमेव या कथसे वृथा ॥११२॥  
 शूरकोविदगोष्ठीषु कीर्त्यमानो न कि त्वया । प्रियो मे पञ्चनाभोऽसौ भुतोऽयद्भुतविक्रम ॥११३॥  
 वज्रावर्तधनुर्धोषं ध्रुत्वा यस्य रणागमे । भयऽवरितऋषाङ्गा सीदन्ति रणशालिन ॥११४॥  
 लक्ष्मीधरोऽनुजो यस्य लक्ष्मीनिलयविग्रह । शत्रुपक्षय कर्तुं समर्थो वीक्षणादपि ॥११५॥  
 किमत्र बहुनोक्तेन समुत्सर्ष्य महार्णवम् । पतिरेप समायाति लक्ष्मणेन समन्वित ॥११६॥

किया जाता है ? ॥१०२॥ सुख प्राप्त करनेवाले मनुष्यको कृतज्ञ होना चाहिए । जो सुखदायकके लाभको नहीं समझता है उसका जीवन पशुके समान है ॥१०३॥ हे मन्दोदरि ! तुम व्यर्थ ही नि सार गर्व धारण करती हो जो पटराज्ञी होकर भी दूतीका कार्य कर रही हो ॥१०४॥ तुम्हारा वह सौभाग्य तथा उन्नतरूप इस समय कहीं गया जो परस्त्रीसक्त पुरुषकी दूती बनने वीठी हो ? ॥१०५॥ जान पड़ता है कि तुम रतिकार्यके विषयमें अत्यन्त साधारण स्त्री हो गई हो । अब मैं तुममें महिषीत्व (पट्टरानीपना) नहीं मानता, हे दुर्भगे ! अब तो तुम गौ हो गई हो ॥१०६॥

तदनन्तर जिसका मन क्रोधसे आलिङ्गित हो रहा था ऐसी मन्दोदरीने कहा कि अहो ! अपराधी होकर भी तू निरर्थक प्रगल्भता घटा रहा है—बढ़ बढ़कर बात कर रहा है ॥१०७॥ तू दूत बनकर सीताके पास आया है यदि यह बात रावण जान पायेगा तो तेरी वह दशा होगी जो किसीकी नहीं हुई होगी ॥१०८॥ जिसने दैव योगसे चन्द्रनक्षत्रके अति-प्रसङ्गको मारा है उसीको आगे कर ये जुद्धचेता सुग्रीवादि रावणकी दासता भूल एकत्रित हुए हैं, सो यमके प्रेरे ये नीच कर ही क्या सकते हैं ? ॥१०९-११०॥ जान पड़ता है कि जिनकी आत्मा अत्यन्त मूढतासे उपहत है, जो निर्लज्ज हैं, जुद्धचेष्टाके धारक हैं, अकृतज्ञ हैं, और व्यर्थ ही अहंकारमें फूल रहे हैं ऐसे वे सद्य मृत्युके निकट आ पहुँचे हैं ॥१११॥ मन्दोदरीके इस प्रकार कहने पर सीताने कुपित होकर कहा कि हे मन्दोदरि ! तू अत्यन्त मूर्ख है जो इस तरह व्यर्थ ही अपनी प्रशंसा कर रही है ॥११२॥ शूरवीर तथा विद्वानोंकी गोष्ठीमें जिनकी अत्यन्त प्रशंसा होती है तथा जो अद्भुत पराक्रमके धारक हैं ऐसे मेरे पति रामका नाम क्या तूने नहीं सुना है ? ॥११३॥ रणके प्रारम्भमें जिनके वज्रावर्त धनुषका शब्द सुनकर युद्धमें निपुण मनुष्य ज्वरसे कँपते हुए डूरी होने लगते हैं ॥११४॥ जिसके शरीरमें लक्ष्मीका निवास है ऐसा लक्ष्मण जिनका छोटा भाई है ऐसा भाई कि जो देखनेमात्रसे शत्रुपक्षका क्षय करनेमें समर्थ है ॥११५॥ इस विषयमें बहुत कहनेसे क्या ? हमारा पति लक्ष्मणके साथ समुद्रको तैरकर

पश्यामीय पति युद्धे स्वल्पकैरेव वासरे । निहत मम नाथेन जगदुत्कटतेजसा ॥११७॥  
 एषा शान्तासि वैधव्यं क्रन्दस्येषा चिरोज्जिता । या त्व पापरतेर्भर्तुरनुकूलत्वमागता ॥११८॥  
 मयर्दत्यात्मजा तीव्रमेवमुक्तातिकोपगा । परम शोभमायाता कम्पमानाञ्चराधरा ॥११९॥  
 एका नानासपनीना सहस्रैः सम्भ्रमस्पृशाम् । अष्टादशभिरभ्युग्रैः कोपकम्पितमूर्तिभि ॥१२०॥  
 सम करतलैर्हन्तुमुद्यता वेगधारिभि । निर्भस्त्रनमतिक्रूरैराक्रोशैः कुर्वती भृशम् ॥१२१॥  
 श्रीमास्तावभ्ररत्नसुत्र समुत्थाय जवान्वित । अवस्थितोऽन्तरे तासा सरितामिव भूधर ॥१२२॥  
 ता दु खहेतव सर्वा वैदेहीं हन्तुमुद्यता । वेदना इव वैद्येन श्रीशैलेन निवारिता ॥१२३॥  
 पादताडितभूभागा विभूपादरवजिता । ययुः क्रूराशया सर्वा घनितास्ता दशाननम् ॥१२४॥  
 आजनेन तत सीता प्रणिपत्य महादरम् । विज्ञापिता सुवाक्येन भोजन प्रति साधुना ॥१२५॥  
 समथितप्रतिज्ञासौ सुनिर्मलमनोरथा । अभ्युपागच्छदाहार कालदेशज्ञमानसा ॥१२६॥  
 ससागरा महीं देवि रामदेवस्य शासने । वर्त्तते तेन नैवेदमन्न सत्यवक्तुमर्हसि ॥१२७॥  
 एव हि बोधिता तेन वैदेही कश्यावनि । ऐच्छदन्न यत साध्वी सर्वाचारविचक्षण ॥१२८॥  
 इरा नाम ततस्तेन चोदिता कुलपालिता । यथात्र प्रवर श्लाघ्य द्रुतमानीयतामिति ॥१२९॥  
 मुक्ता कन्या स्वशिविर श्रीशैलेन चपाचये । भानावभ्युदिते जातो विभाषणसमागम ॥१३०॥

अभी आता है ॥११६॥ तू कुछ ही दिनोंमें लोकोत्तर तेजके धारक मेरे पतिके द्वारा अपने पतिको युद्धमें मरा हुआ देखेगी ॥११७॥ जो तू पापमें प्रीति रखनेवाले पतिकी अनुकूलताको प्राप्त हुई है सो इसके फलस्वरूप वैधव्यको प्राप्त होगी और पतिरहित होकर चिरकालतक रुदन करेगी ॥११८॥ इस प्रकार कठोर वचन कहनेपर जो अत्यन्त कोपको प्राप्त हो रही थी तथा जो कौपते हुए ओंठको धारण कर रही थी । ऐसी मन्दोदरी परम शोभको प्राप्त हुई ॥११९॥ यद्यपि मन्दोदरी एक थी तो भी वह सभ्रमको प्राप्त तथा क्रोधसे कम्पित शरीरको धारण करनेवाली अपनी अठारह हजार सपत्नियोंके साथ सीताको वेगशाली करतलोंसे मारनेके लिए उद्यत हुई । वह उस समय अत्यन्त क्रूर अपशब्दोंसे उसका अत्यधिक तिरस्कार कर रही थी ॥१२०-१२१॥ उसी समय लक्ष्मीसे सुशोभित तथा वेगसे युक्त हनूमान् उठकर उन सबके बीचमें उस प्रकार खड़ा हो गया जिस प्रकार कि नदियोंके बीच कोई पर्वत आ खड़ा होता है ॥१२२॥ दुःपत्नी कारण, तथा सीताको मारनेके लिए उद्यत उन सब स्त्रियोंको हनूमान्ने उस प्रकार रोक दिया जिस प्रकार कि वैद्य वेदनाओंको रोक देता है ॥१२३॥ तदनन्तर जो पौरोंसे पृथिवीके प्रदेश ताडित कर रही थीं तथा जिन्होंने आभूषण धारण करनेका आदर छोड़ दिया था ऐसी दुष्ट अभिप्रायको धारण करनेवाली वे सब स्त्रियों रावणके पास गई ॥१२४॥

तदनन्तर साधु स्वभावके धारक हनूमान्ने बड़े आदरके साथ सीताको प्रणाम कर उत्तम वचनोंके द्वारा भोजन करनेकी प्रार्थना की ॥१२५॥ सो जिसकी प्रतिज्ञा पूर्ण हो चुकी थी । जिसका मनोरथ निर्मल था और जिसका मन देश कालका ज्ञाता था ऐसी सीताने आहार ग्रहण करना स्वीकृत कर लिया ॥१२६॥ प्रार्थना करते समय हनूमान्ने इस प्रकार समभाषा था कि हे देवि ! यह समुद्र सहित पृथिवी राम देवके शासनमें है इसलिए यहाँका यह अन्न छोड़नेके योग्य नहीं है ॥१२७॥ इस प्रकार समभाषे जाने पर दयाकी भूमि सीताने अन्न ग्रहण करनेकी इच्छाकी थी, सो ठीक ही है क्योंकि वह पतिव्रता सब प्रकारका आचार जाननेमें निपुण थी ॥१-८ तदनन्तर हनूमान्ने इरा नामकी कुलपालितासे कहा कि शीघ्र ही उत्तम तथा प्रशसनीय अन्न लाओ ॥१२८॥ इस प्रकार कहने पर कन्या अपने शिविर अर्थात् डेरेमें गई और रात्रि समाप्त होने तथा सूर्योदय होने पर हनूमान्का विभीषणके साथ समागम हुआ ॥१३०॥

आहारो वायुप्रेग तत्र भुक्ती मनोहरः । एवं कर्तव्ययोगेन मुहूर्तास्ते त्रयो गताः ॥१३१॥  
 मुहूर्तं चतुर्थं तु समानांतमिरास्त्रिया । आहारं मैथिलीभुक्तमिति जानन्ति कौविदाः ॥१३२॥  
 चन्दनादिभिरालिहे भूतले दर्पणप्रभे । पुष्पोपकारसम्पन्ने नलिनीपत्रसोभिनि ॥१३३॥  
 सद्गन्धं विपुलं स्वच्छं पल्प्य पेयादिपूर्वकम् । स्थास्यादिभिर्महापात्रैः सौवर्णादिभिराहतम् ॥१३४॥  
 घृतसूपानिभिः काश्चिपाप्यो राजन्ति पूरिताः । कुन्दपुष्पसमच्छायाः शालीनां काश्चिदोदनी ॥१३५॥  
 पद्मसैठपद्मैश्च काश्चिद्रोचनकारिभिः । व्यञ्जनैस्तरलैः काश्चित्पिण्डीबन्धोचितैस्तया ॥१३६॥  
 पयसा सस्कृतैः काश्चिदन्याः परमदाधिकैः । लेह्यैः काश्चिन्महास्वादैरन्याः पश्चात्पिपेतैः ॥१३७॥  
 एवं परममाहारमिरा परिजतान्विता । हनूमन्त पुरस्कृत्य भ्रातृभावेन वसला ॥१३८॥  
 महाश्रद्धान्वितस्त्वान्ता प्रणिपत्य जिनेश्वरान् । समाप्य नियम धीरा ध्यातातिथिसमागमा ॥१३९॥  
 निधाय हृदये राममभिरामं पतिप्रता । पवित्राहा दिने मुहूर्ते साधुलोकप्रजितम् ॥१४०॥  
 रविरश्मिभूतोद्योतं सुपवित्रं मनोहरम् । पुण्यवर्धनमारोग्य दिवाभुक्त प्रशस्तये ॥१४१॥  
 निवृत्तभोजनविधिः किञ्चिद्विध्वयता गता । विज्ञापितेति भूयोऽपि सोता पवनसूनुना ॥१४२॥  
 आरोह देवि मे स्कन्धे पवित्रे गुणभूषणे । समुल्लस्य नदीनाथ नेप्यामि भवतीं चणात् ॥१४३॥  
 परय त विभवैर्लुक्तं राघवं स्वपरायणम् । भवद्योगसमानन्दं जनोऽनुभवतु प्रियः ॥१४४॥

हनूमान्ने विभोषणके घर ही मनोहर आहार ग्रहण किया । इस प्रकार कर्तव्य कार्य करते हुए तीन मुहूर्त निकल गये ॥१३१॥ तदनन्तर चतुर्थ मुहूर्तमें इरा, सीताके भोजनके योग्य आहार ले आई ॥१३२॥ वहाँकी भूमि चन्दनादिसे लोपकर दर्पणके समान स्वच्छ की गई, फूलोंके उपलरसे सजाई गई जिससे वह कमलनी पत्रके समान सुशोभित हो उठी ॥१३३॥ स्वर्ण आदिसे बने हुए स्थाली आदि बड़े-बड़े पात्रोंमें सुगन्धित, अत्यधिक, स्वच्छ और हितकारी पेय आदि पदार्थ लाये गये ॥१३४॥ वहाँ कितनी ही थालियाँ थीं, दाल आदिसे भरी हुई सुशोभित हो रहीं थीं, कितनी ही कुन्दके फूलके समान उज्ज्वल घानके भातसे युक्त थीं ॥१३५॥ कितनी ही थालियों रचि बढानेवाले पट्टरसे भोजनोंसे परिपूर्ण थीं, कितनी ही पतलीं तथा कितनी ही पिण्डबंधनेके योग्य व्यञ्जनोंसे युक्त थीं ॥१३६॥ कितनी ही दूधसे निर्मित, कितनी ही वहीसे निर्मित पदार्थोंसे युक्त थीं, कितनी ही चाटनेके योग्य रवड़ी आदिसे, कितनी ही महास्वादित्प्र भोजनोंसे तथा कितनी ही भोजनके वाद् सेवन करने योग्य पदार्थोंसे परिपूर्ण थीं ॥१३७॥ इस प्रकार इरा अपने परिजनके साथ उत्तम आहार ले आई, सो हनूमान्को आगे कर जिसके भाईका स्नेह उमड़ रहा था, ऐसी सीताने हृदयमें महाश्रद्धा धारण कर जिनेन्द्र भगवान्को नमस्कार किया, 'जब तक पतिका समाचार नहीं मिलेगा तब तक आहार नहीं लूँगी' यह जो नियम लिया था उसको बड़ी धीरतासे समाप्त किया । अतिथियोंके समागमका विचार किया, स्नानादिकसे शरीरको पवित्र किया । तदनन्तर अभिराम ( मनोहर ) रामको हृदयमें धारणकर उस पतिप्रताने दिनके समय साधुजनोंके द्वारा प्रशंसित उत्तम आहार ग्रहण किया, सो ठीक ही है क्योंकि जो मूर्खकी किरणोंसे प्रकाशित है, अतिशय पवित्र है, मनोहर है, पुण्यको बढानेवाला है, आरोग्यदायक है और दिनमें ही ग्रहण किया जाता है ऐसा भोजन ही प्रशंसनीय माना गया है ॥ १३८-१४१॥

तदनन्तर भोजन करनेके बाद जब सीता कुछ विश्रामको प्राप्त हो चुकी तब हनूमान्ने जाकर उससे पुनः इस प्रकार निवेदन किया कि हे देवि ! हे पवित्रे ! हे गुणभूषणे ! मेरे कन्धे पर चढ़ो मैं समुद्रको लौंकर अभी क्षण भरमें आपको ले चळूँगा ॥१४२-१४३॥ तुम वैभवसे युक्त एवं तुम्हारे

ततोऽञ्जलिपुट बद्ध्वा रुदती जनकात्मजा । जगादादरसयुक्ता विचिन्तितयथास्थिति ॥१४५॥  
 'अ-तरेण प्रभोराज्ञा गमन मे न युज्यते । इत्यवस्था गता दास्ये तस्मै किमहमुचरम् ॥१४६॥  
 प्रत्येति बाधुना लोक शुद्धि मे मृत्युना विना । नाथ एव तत कृ य मम ज्ञास्यति सांप्रतम् ॥१४७॥  
 यावन्नोपद्रव कश्चिज्जायते दशवक्त्रकात् । तावद्द्वज द्रुत भ्रातर्नालम्बनमिह क्षणम् ॥१४८॥  
 त्वया मद्बचनाद् वाच्य सम्यक् प्राणमहेश्वर । अभिधानैरिमैर्मूर्ध्नि विधाय करकुड्मलम् ॥१४९॥  
 तस्मिन् देव मया सार्द्धं मुनयो व्योमचारिण । वन्दिता परम भक्त्या त्वया स्तवनकारिणा ॥१५०॥  
 विमलाम्बसि पद्मिन्या नितरामुपशोभिते । सरसि क्राडिता स्वेच्छ्रमस्माकमतिमुन्दरम् ॥१५१॥  
 आरण्यकस्तदा हस्ती समायातो भयङ्कर । ततो मया समाहृतस्वमुन्मद्यो जलान्तरात् ॥१५२॥  
 'उद्दामोऽसी महानागश्चास्काडनकारिणा । समस्त त्याजितो दर्पं भवता निश्चलीकृत ॥१५३॥  
 आसाक्ष नन्दच्छ्लाये बने पुष्पभरानते । शापा पल्लवलोभेन नमयन्ता प्रयातिनी ॥१५४॥  
 भ्रमद्भिश्चञ्चलैर्भृंगैरभिभूता ससम्भ्रमा । भुजाभ्या भवतारिण्यप्य जनिताकुलतोऽभक्ता ॥१५५॥  
 उद्यन्तमन्यदा भानु माहेन्द्रादिविभूषणम् । अहमम्भोजपण्डस्य त्वया सह तटे स्थिता ॥१५६॥  
 अशसिप तत किञ्चिदाप्यारसमुपेयुषां । बालेनो पलनालेन मधुर ताडिता त्वया ॥१५७॥  
 अन्यदा रतिसौलस्य प्राग्भारस्य मया प्रिय । पृष्टस्वमिति विभ्रन्या कौतुक परशोभया १५८॥  
 एतस्मिन् कुसुमे पूर्णा विपुला स्निग्धताञ्जुप । किन्नामानो द्रुमा नाथ मनोहरणकोविदा ॥१५९॥

ध्यानमे तत्पर रहनेवाले रामके दर्शन करो तथा प्रेमी जन—मित्रगण आप दोनोंके समागमसे उत्पन्न होनेवाले हर्षका अनुभव करें ॥१४४॥ तदनन्तर सब स्थितिका यथायोग्य विचार करने वाली एव आदरसे सयुक्त सीताने हाथ जोडकर रोती हुई यह कहा कि स्वामीकी आज्ञाके बिना मेरा जाना योग्य नहीं है । इस अवस्थामे पडी हुई मैं उन्हें क्या उत्तर दूंगी ॥१४५-१४६॥ इस समय लोग मृत्युके बिना मेरी शुद्धिका प्रत्यय नहीं करेंगे, इसलिए प्राणनाथ ही आकर मेरे कार्यको योग्य जानेंगे ॥१४७॥ हे भाई ! जब तक रावणकी ओरसे कोई उपद्रव नहीं होता है तब तक तू शीघ्र ही यहाँसे चला जा । यहाँ त्वणभर भी विलम्ब मत कर ॥१४८॥ तू हाथ जोड मस्तकसे लगा, इन परिचायक कथानकोके साथ साथ मेरे वचनोमे प्राणनाथसे अच्छी तरह कहना कि हे देव ! उस वनमे एक दिन स्तवन करते हुए आपने मेरे साथ बडी भक्तिसे आकाशगामी मुनियोकी वन्दना की थी ॥१४९-१५०॥ एक बार निर्मल जलसे युक्त तथा कमलिनियोसे सुरोभित सरोवरमे हमलोग इच्छानुसार सुन्दर क्रीड़ा कर रहे थे कि इतनेमे एक भयङ्कर जङ्गली हाथी यहाँ आ गया था, उस समय मैंने आपको पुकारा था सो आप जलके मध्यसे तत्काल ऊपर निकल आये थे ॥१५१-१५२॥ और सुन्दर क्रीड़ा करते हुए आपने उस उदण्ड महाहस्तीका सब गर्व छुडाकर उसे निश्चल कर दिया था ॥१५३॥ एक बार नन्दनवनके समान सुन्दर तथा फूलके भारसे भुके हुए वनमे, मैं नूतन पत्रोके लोभसे प्रयत्नपूर्वक वृक्षको एक शाखाको मुका रही थी । तब उडते हुए चञ्चल भ्रमरोने धावा बोलकर मुझे आकुल कर दिया था, उस समय मुझ घबडायी हुईको आपने अपनी भुजाओसे आलिङ्गन कर छुडाया था ॥१५४-१५५॥ एक बार मैं आपके साथ कमलवनके तटपर बैठी थी उसी समय पूर्व दिशाके आभूषणस्वरूप सूर्यको उदित होता देख मैंने उसकी प्रशंसाकी थी तब आपने बुद्ध ईर्ष्यारसको प्राप्त हो मुझे नीलकमलकी एक छोटी सी दडीसे मधुर रीतिसे ताडित किया ॥१५६-१५७॥ एक बार रतिगिरिके शिरपर पर अत्यधिक शोभाके कारण कौतुकको धारण करती हुई मैंने आपसे पूछा था कि हे प्रिय ! इधर फूलोंसे परिपूर्ण, विशाल, स्निग्धताको धारण करनेवाले एव मनके हरण करनेमे निपुण ये कौनसे वृक्ष हैं ? ॥१५८-१५९॥ तब इस प्रकार



सतस्त्वयेति वृष्टेन प्रसन्नमुखशोभिना । आख्यातमिति देव्येते पथा नन्दिद्रुमा इति ॥१६०॥  
 कर्णकुण्डलनवाश्र स्थितास्तारे वय यद्वा । तदा सखिहिती जाती मध्याह्ने च्योमगौ मुनी ॥१६१॥  
 त्वया मया च भिचार्यं तयोरागतयोस्ततः । अभ्युत्थाय महाश्राद्ध रचित पूजन महत् ॥१६२॥  
 अन्न च परम ताभ्या दत्त त्रिधिसमन्वितम् । पत्र चातिशया जातात्स्वप्नभावेन सुन्दरा ॥१६३॥  
 पात्रदानमहोदान महादानमिति ध्वनिः । अन्तरिक्षेऽभरैश्चके साधु सम्यग्ध्वनिश्रितः ॥१६४॥  
 अदृष्टतनुमिदं वैदुन्दुभिः सध्वनिः कृतः । पपात गगनाद्दृष्टि कौसुमी भृङ्गनादिता ॥१६५॥  
 सुव्यशीतो बवी वायुः सुगन्धिर्नारजो मृदुः । मणिरत्नसुवर्णाङ्गा धाराश्रममपूरयत् ॥१६६॥  
 चूडामणिमिम चोद्धृष्टप्रत्ययकारणम् । दर्शयिष्यसि नाथाय तन्त्यात्यन्तमय प्रिय ॥१६७॥  
 जानामि नाथ ते भाव प्रसादिनमल मयि । तथापि यत्नतः प्राणा पाल्या सद्गमनाशया ॥१६८॥  
 प्रमादाद्भवतो जातो वियोगोऽय मया सह । साम्प्रत त्वयि यत्नस्थे सद्गमो नौ विसशय ॥१६९॥  
 इत्युक्ते रुद्रांतीं सीतां समाश्रास्य प्रयत्नतः । यथाज्ञापयसीत्युक्त्वा निरैस्सीताप्रदेशतः ॥१७०॥  
 पाण्यङ्गुलीयक सीता तदाशक्तारारिका । मानसस्य कृताश्रास मेने पत्युः समागमम् ॥१७१॥  
 अयोद्यानगता नाप्येच्छतसारङ्गलोचनाः । वायुनन्दनमालोक्य स्मितविरमितसद्गता ॥१७२॥  
 परस्परं समालापमिति कर्तुं समुद्यताः । अस्य पुष्पनगरयोद्धुं कोऽय्यहो नरपुङ्गव ॥१७३॥  
 अवतीर्णः किमेव स्वान्निग्रही कुमुमासुधः । देव कोऽपि तु शीलस्य शोभा दृष्टु समागतः ॥१७४॥

पृष्ठे जाने पर आपने प्रसन्नमुख मुद्रासे सुशोभित हुए कहा था कि हे देवि ! ये नन्दि वृक्ष हैं ॥१६०॥ एक बार हम सब कर्णकुण्डल नदीके तीर पर ठहरे हुए थे, उसी समय मध्याह्न कालमें दो आकाशगामी मुनि निकट आये थे ॥१६१॥ तब आपने और मैंने उठकर, भित्ताके लिए आये हुए उन मुनियोंकी बड़ी श्रद्धाके साथ विशाल पूजा की थी ॥१६२॥ तथा विधिपूर्वक उन्हें उत्तम आहार दिया था, उसके प्रभावसे वहाँ अत्यन्त सुन्दर पञ्च आरच्य हुए थे ॥१६३॥ आकाशमें देवाने यह मधुर शब्द किये कि अहो ! पात्रदान ही दान है, यही सबसे बड़ा दान है ॥१६४॥ जिनका शरीर दीप्त नहीं रहा था ऐसे देवाने दुन्दुभि वाजे बजाये, आकाशसे जिसपर भ्रमर शब्द कर रहे थे ऐसी पुष्पवृष्टि हुई ॥१६५॥ सुलकारी, शीतल, सुगन्धित एवं धूलि रहित कोमल वायु चली थी और मणि, रत्न तथा सुवर्णकी धाराने उस आश्रमको भर दिया था ॥१६६॥ हे भाई ! इनके बाद दृढ़ विदवासका कारण यह उत्तम चूडामणि प्राणनाथको दिखाना, क्योंकि यह उन्हें अत्यन्त प्रिय था ॥१६७॥ ऊपरसे यह सन्देश कहना कि हे नाथ ! आपका मुखपर अतिशय प्रसन्नतासे भरा जो भाव है उसे मैं यद्यपि जानती हूँ तो भी पुनः समागमकी आशासे प्राण प्रयत्नपूर्वक रक्षा करने योग्य हैं ॥१६८॥ प्रमादके कारण मेरे साथ आपका यह वियोग हुआ है परन्तु इस समय जब कि आप प्रयत्न कर रहे हैं तब हम दोनोंका समागम निःसन्देह होगा ॥१६९॥ इतना कह कर सीता रोने लगी, तदनन्तर उसे प्रयत्नपूर्वक सान्त्वना देकर और 'जैसी आज्ञा हो' यह कहकर हनुमान्, सीताके उस स्थानसे बाहर निकल आया ॥१७०॥ उस समय जिसना शरीर अशक्त हो रहा था ऐसी सीताने अङ्गुलिको हाथमें पकड़कर ऐसा माना था मानो मनको आनन्द देनेवाला पतिका समागम ही प्राप्त हुआ हो ॥१७१॥

अथानन्तर उस उद्यानमें भयभीत मृगके समान नेत्रोंको धारण करनेवाली जो स्त्रियाँ थीं वे हनुमान्को देव मन्द मुसकान और आश्चर्यसे युक्त हो परस्पर इस प्रकार वार्त्तालाप करने लगीं कि अहो ! इस पृच्छके पर्वतके ऊपर यह कोई श्रेष्ठ पुरुष अवतीर्ण हुआ है सो क्या यह शरीरधारी कामदेव है ? अथवा पर्वतकी शोभा देखनेके लिए कोई देव आया है ? ॥१७२-१७४॥

तासामाकुलिका काचिन्निधाय शिरसि खजम् । उपवीणनमारिणे कर्तुं किन्नरनिस्वना ॥१७५॥  
 काचिदिन्दुमुखा वाम हस्तेऽवस्थाप्य दर्पणम् । दिदृक्षन्ती समालोक्य त भूव्यान्वयामना ॥१७६॥  
 ईषं काचिदभिज्ञाय वधूरिदमचिन्तयत् । अलम्बद्वारसन्मानं वृत्तो मारुतिरागत ॥१७७॥  
 वरखाजनमुद्याने कृत्वा सम्भ्रान्तमानसम् । हारमाल्याम्बरधरो भास्वान् बद्धिकुमारवन् ॥१७८॥  
 निसर्गकांतया गत्या प्रदेश किञ्चिदभ्यगात् । तथाविधा व तं वार्त्तामशृणोद्ग्राहसाधिप ॥१७९॥  
 क्रोधससृष्टश्चित्तेन निरपेक्षवमायुषा । तावदाज्ञापिता शूरा रावणोऽग्रकिङ्करा ॥१८०॥  
 विचारेण न व कृत्य पुष्पोद्यानाक्षिरिति य । मद्रोहा कोऽप्यय चित्र नीयतामन्तमायुष ॥१८१॥  
 अमा तत समागत्य दृष्युविस्मयमागता । किमिन्द्रजिह्वरैश स्याद्भास्कर श्रवणोऽथवा ॥१८२॥  
 परयामस्तावदि युक्त्वा तैरियुक्त समन्तत । भो भो शृणुत नि शेषा उद्यानस्थाभिरक्षका ॥१८३॥  
 किं तिष्ठत सुविभ्रन्था किङ्करा कृतिता श्रिता । किमिति धृतमस्मामि कथ्यमानमिदं बहि ॥१८४॥  
 कोऽप्युद्यामत्तयोद्यानं प्रविष्टो वृष्टलेखर । स चित्र मार्यतामेप गृह्यता दुर्विनातक ॥१८५॥  
 धावन्धमसङ्गो कोऽसौ सोऽयमेव यत कुत । कस्य कस्तादृश क्वेति किङ्करध्वनिरुद्गत ॥१८६॥  
 तत कार्मुकिकान् दृष्ट्वा शक्तिकान् गदिकाश्च तान् । खट्टिकान् कौन्तिकान्, बद्धसङ्घातानायतो बहून् १८७  
 किञ्चित् सम्भ्रान्तयोर्वातिर्मुग्धाधिपपराक्रम । रत्नशाखामृगच्छायासमुदापितपुष्कर ॥१८८॥  
 अवरोहस्ततो देशात्तैरदृश्यत किङ्करै । आकुलवचिनिर्मुक्तं प्रलम्ब विभ्रदम्बरम् ॥१८९॥

उन स्त्रियामें कामसे आकुल होकर कोई स्त्री शिर पर माला रख किन्नरके समान मधुर स्वरसे वीणा बजाने लगी ॥१७५॥ कोई चन्द्रमुखी बोंये हाथमें दर्पण रख उसमें हनुमानका प्रतिबिम्ब देखने की इच्छा करती हुई अन्यथा चित्त हो गई ॥१७६॥ कोई स्त्री कुङ्कु-कुङ्कु पहिचान कर यह विचार करने लगी कि जिसे द्वारपर सन्मान प्राप्त नहीं हुआ ऐसा यह हनुमान् यहाँ कहाँ आ गया ? १७७॥ इस प्रकार वनमें स्थित उत्तम स्त्रियोंको सम्भ्रान्त चित्त कर हार, माला तथा उत्तम बस्त्रोंको धारण करनेवाला एव अनिकुमारके समान देदीप्यमान हनुमान्, अपनी स्वभावसुन्दर चालसे किसी स्थानकी ओर जा रहा था कि रावणने यह सब समाचार सुना ॥१७८-१७९॥ सुनते ही जिसका चित्त आगबबूला हो गया था तथा जो निरपेक्ष भावको प्राप्त हो चुका था—सब प्रकारका स्नेह भुला चुका था ऐसे रावणने उसी समय अपने शूरवीर प्रधान किङ्करोंको आज्ञा दी कि तुम लोगोको विचार करनेसे प्रयोजन नहीं है । पुष्पोद्यानसे जो पुरुष बाहर निकल रहा है वह कोई द्रोही है उसे शीघ्र ही आयुका अन्त कराया जाय—मारा जाय ॥१८०-१८१॥

तदनन्तर किङ्कर आकर आश्चर्यको प्राप्त हो इस प्रकार विचार करने लगे कि क्या यह इन्द्रको जीतनेवाला कोई राजा है, या सूर्य है अथवा श्रवण नक्षत्र है ? ॥१८२॥ अथवा कुङ्कु भी हो चलकर देखते हैं इस प्रकार कह कर उन्होंने सब ओर आवाज लगायी कि हे उद्यानके समस्त रक्षको ! सुनो, तुम लोग निश्चिन्त होकर क्यों बैठे हो ? हमने उद्यानके बाहर चर्चा सुनी है कि कोई एक वृष्ट विद्याधर अपनी उद्वेगतासे उद्यानमें प्रविष्ट हुआ है सो यह क्या बात है ? उस दुर्विनातको शीघ्र ही मारा जाय अथवा पकड़ा जाय ॥१८३-१८४॥ रावणके प्रधान किङ्करोंकी बात सुनकर उद्यानके रक्षक किङ्करोंने 'दीडो, कौन है वह, यहीं कहीं होगा, वह किसका कौन है ? उसके समान कौन कहाँ है ?' इस प्रकारका हल्ला मचाया ॥१८५॥ उन किङ्करोंमें कोई धनुष लिए हुए थे, कोई शक्ति धारण कर रहे थे, कोई गदाके धारक थे, कोई तलवारोंसे युक्त थे, कोई भाले सभाले हुए थे, और कोई मुण्ड के भुण्ड बनाकर बहुसङ्ख्यामें आ रहे थे । उन सबको देकर हनुमान्के मनमें कुङ्कु सम्भ्रम उत्पन्न हुआ परन्तु वह तो सिद्धके समान पराक्रमी था उसने रत्नमयी बानर जैसी कान्तिसे आकाशको देदीप्यमान कर दिया ॥१८६-१८८॥ तदनन्तर आकुलता

ततस्तमुचदादित्यमण्डलप्रतिमत्विषम् । प्रदृष्टाधरमालोक्य विशीर्णाः किङ्करा गणाः ॥११६०॥

ततः किलापरैः नरैः प्रत्ययनैः किङ्कराविपैः । तन्किङ्करबलं गच्छदितश्चेनश्च धारितम् ॥११६१॥

शक्तिनोमरचक्रान्निगदान्मुंस्पागयः । सर्वतो वास्तुगोष्ठेत् सुपराः किङ्करास्ततः ॥११६२॥

मुमुबुध घन शस्त्र उपेष्टवाना यथा बुभुधम् । अदृष्टभास्करोद्योताः पर सहातवत्तिनः ॥११६३॥

उत्पाश्र्य वायुपुत्रोऽपि नि शक्नो धीरपुङ्गवः । संघात तुङ्गवृक्षाणां शिलानां धारमक्षिपत् ॥११६४॥

मौमभोगिमहद्भोगभान्बद्धुजजवेरितैः । पादपादिभिराहिसन् कालमेव ह्यवोद्यतः ॥११६५॥

अश्वस्थान् शालन्यप्रोधाश्रन्दिचम्पकत्रैमरान् । नीपाशोऽरुद्रम्बांश्च पुत्तागानर्जुनान् धवान् ॥११६६॥

आत्रानात्रातनांज्ञोष्ठा ( स्तूयराजान् ) स्थर्वापसैः । विशालान् पनसाद्यांश्च विचेप क्षेपवर्जितैः ॥११६७॥

बभूज्परितं कांश्चिदपरानुदमूलयत् । सुष्टिपाद्ग्रहारेण पिपेपान्यान् महाबलः ॥११६८॥

आकृष्टारमम तेन मैत्र्यमेकेन तच्छ्रुतम् । ममाकुल गतं क्वापि क्षणेन प्रियजीवितम् ॥११६९॥

यथायैर्भृंगराजस्य कुर्वन्तो मृगशासनम् । क्वियद्विरपरैः कृत्यं त्यक्त्वा सत्त्वं सहोद्भवम् ॥२००॥

पुत्पाट्रेवर्तार्णस्य कंकुच्चलवरोधनम् । भूयो युद्धमभू दुष्टं प्रान्तविध्वस्तकिङ्करम् ॥२०१॥

मे रहित एवं लटकते हुए लम्बे बम्बको धारण करनेवाला हनुमान् जब उद्यानके उस प्रदेशसे नीचे उतर रहा था तब किङ्करोंने उसे देखा ॥१८६॥ उस समय क्रोधके कारण हनुमानकी कान्ति उदित होते हुए सूर्यमण्डलके समान देदीप्यमान हो रही थी तथा वह अपना ओठ चत्रा रहा था । उसे देख किङ्करोंके मुण्ड भाग खड़े हुए ॥१८७॥ तदनन्तर जो किङ्करोंमें प्रधान कूर एवं प्रसिद्ध दृमरे किङ्कर थे उन्होंने इधर-उधर भागते हुए किङ्करोंके दलको इकट्ठा किया ॥१८८॥ तदनन्तर जिनके हाथमें शक्ति, तोमर, चक्र, रत्न, गदा और धनुष थे ऐसे उन किङ्करोंने चिल्ला कर सब ओरमें हनुमानको घेर लिया ॥१८९॥ वे किङ्कर इतनी अधिक भीड़ इकट्ठी कर विद्यमान थे कि उनके कारण सूर्यका प्रकाश भी अदृष्ट हो रहा था । तदनन्तर जिस प्रकार जेठ मासकी वायु भूमा उड़ानी है उसी प्रकार वे अत्यधिक शस्त्र छोड़ने लगे ॥१९०॥ धीरशिरोमणि पथन-पुत्र हनुमान् यद्यपि शस्त्र रहित था परन्तु तो भी उसने बड़े-बड़े वृक्षां और शिलाओंके समूह उखाड़-उखाड़कर फेंके ॥१९१॥ भयंकर शेषनागके शरीरके समान सुशोभित भुजाओंके वेगमें फेंके हुए धूल आदिसे प्रहार करता हुआ हनुमान् उस समय प्रलयकालके उन्नत मेघके समान जान पड़ता था ॥१९२॥ हनुमान् बिना किसी विलम्बके पीपल, सागीन, बट, नन्दी, चम्पक, बकुल, नीम, अशोक, कदम्ब, नागफेसर, कोहा, धवा, आम, मिलमों, लोध्र, खजूर तथा कटहल आदिके बड़े मोटे तथा ऊँचे-ऊँचे वृक्षांको उखाड़कर फेंक रहा था ॥१९३-१९४॥ उस महाबलवानने कितने ही लोर्गांकी शीघ्र ही खण्डित कर दिया, कितने ही योधाओंको उखाड़ टाला—पर पकड़कर पड़ाइ दिया और कितने ही किङ्करोंको लात तथा घुँसोंके प्रहारसे पीस टाला ॥१९५॥ हम अनेकेने ही समुद्रके समान भारी सेनाकी वह दशा की कि जिससे वह ध्याकुल हो क्षण भरमें प्राण बचाकर कहीं भाग गई ॥१९६॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! मृगांपर शासन करनेवाले मृगराज—सिंहको अन्य सहायकोंकी क्या आवश्यकता है ? और जो व्याभाधिक तेजको छोड़ चुके हैं उन्हें दूसरे सहायकोंसे क्या लाभ है—निर्नेज मनुष्यका अन्य महायक क्या भला कर सकते हैं ? ॥२००॥

तदनन्तर पुष्पगिरिसे नीचे उतरे हुए हनुमानका दिङ्मण्डलको रोकनेवाला तथा जिसमें

१. वातुण्जैर्न म० । २. यथागुदम् म० । ३. अनिस्थान् । ४. सागरसदृशम् । ५. चकुर्यलप-  
रंशनम् म० ।

सभावापीविमानानामुद्यानोत्तगसन्ननाम् । चूर्णितानां तदावातैर्भूमयः केवलाः स्थिताः ॥२०२॥  
 पादमार्गप्रदेशेषु ध्वस्तेषु वनवेरमसु । महारथ्यापथा जाताः शुष्कसागरसन्निभाः ॥२०३॥  
 भद्रोत्तुङ्गापणश्रेणिः पातिताऽनेककिङ्करः । वभूव राजमार्गोऽपि महासमामभूसमः ॥२०४॥  
 पतद्भिस्तोरणैस्तुङ्गैः कम्पितध्वजपक्तिभिः । बभूवाम्यरमुत्पातादिव भ्रयस्तुरायुधम् ॥२०५॥  
 जङ्घावेगा-समुद्यद्गी रजोभिर्बहुवर्णकैः । इन्द्रायुधसहस्राणि रचितानां विपुलकरैः ॥२०६॥  
 पादावष्टम्भसिद्धेषु भूभागेषु निमज्जताम् । वभूव गृहशैलानां पातालेष्विव निस्वनः ॥२०७॥  
 दृष्ट्वा कञ्चिद्विस्फेराण्य कञ्चिदपादेन किङ्करम् । उरसा कञ्चिदसेन वानेनान्यं जघान सः ॥२०८॥  
 आलीयमानमात्राणां किङ्कराणां सहस्रशः । पततामुत्करै रथ्या जाता पूरसमागता ॥२०९॥  
 हाहाहीकारगम्भीरः पीराणामुद्गतो ध्वनिः । ऋचिच रत्नकूटानां भद्रात्कणकणस्वनः ॥२१०॥  
 वेगेनोपनतस्तस्य समाकृष्टमहाध्वजाः । कोपादिवोद्युः पश्चात्कृतघण्टादिनिस्वनाः ॥२११॥  
 उन्मूलितमहालाना वध्रमुः परमा गजाः । वायुमण्डलपर्णानामश्वस्तुल्यत्वमागताः ॥२१२॥  
 अधस्तात् स्फुटिता वाप्यः प्राप्ताः पङ्कवरोपताम् । चक्रारूढेव निःशेषा जाता लङ्का समाकुला ॥२१३॥  
 लङ्काकमलिनीखण्डं ध्वस्तराजसमीनकम् । श्रीशैलवारणो यावद्विचोभ्य बहिराश्रितः ॥२१४॥

निकटवर्ती किङ्कर मारे गये थे ऐसा भयंकर युद्ध पुनः हुआ ॥२०१॥ उस समय हनूमान्के प्रहारसे जो चूर-चूर किये गये थे ऐसे सभा, वापिका, विमान तथा वाग वगोचोसे सुशोभित मकानोंमें केवल भूमि ही शेष रह गई थी ॥२०२॥ उसके पैदल चलनेके मार्गोंमें जो वाग-वगोचे तथा महल थे उन सबको उसने नष्ट कर दिया था, जिससे वे लम्बे-चौड़े मार्ग सूखे समुद्रके समान हो गये थे ॥२०३॥ जहाँ अनेक ऊँची-ऊँची दुकानोंकी पंक्तियों तोड़ कर गिरा दी गई थीं, तथा अनेक किङ्कर मारकर गिरा दिये गये थे ऐसा राजमार्ग भी महायुद्धकी भूमिके समान हो गया था ॥२०४॥ गिरते हुए ऊँचे-ऊँचे तोरणों और कोंपती हुई ध्वजाओंकी पंक्तिसे उस समय आकाश ऐसा जान पड़ता था मानो उत्पातके कारण उससे वज्र ही गिर रहा हो ॥२०५॥ जङ्घाओंके वेगसे उड़ती हुईं रत्न विरङ्गी धूलियोंसे ऐसा जान पड़ता था मानो आकाशमें हजारों इन्द्रधनुष ही बनाये गये हों ॥२०६॥ चरणोंके प्रहारसे विदीर्ण हुई भूमिमें महलरूपी पर्वत नीचेको धँस रहे थे जिससे ऐसा भारी शब्द हो रहा था मानो वे महल रूपी पर्वत पातालमें ही धँसे जा रहे हों ॥२०७॥ वह किसी किङ्करको दृष्टिसे मार रहा था, किसीको हाथसे पीस रहा था, किसीको पैरसे पीट रहा था, किसीको वज्र-स्थलसे मार रहा था, किसीको कन्धेसे नष्ट कर रहा था और किसीको वायुसे ही उड़ा रहा था ॥२०८॥ आते ही साथ गिरनेवाले हजारों किङ्करोंके समूहसे वह लम्बा चौड़ा मार्ग ऐसा हो गया था मानो उसमें पूर ही आ गया हो ॥२०९॥ कहीं नागरिक जनोंका हा हा ही आदिका गम्भीर शब्द उठ रहा था तो कहीं रत्नमयी शिरारोंके टूटनेसे कण-कण शब्द हो रहा था ॥२१०॥ जब हनूमान् ऊपरको छलंग भरता था तब उसके वेगसे बड़ी-बड़ी ध्वजाएँ खिंची चली जाती थीं जिसमें वे ऐसी जान पड़ती थीं मानो घण्टाका शब्द करती हुईं क्रोधसे उसके पीछे ही उड़ी जा रहीं हों ॥२११॥ बड़े-बड़े हाथी सम्भे उखाड़ कर इधर-उधर घूमने लगे और घोड़े वायु मण्डलसे उड़ते हुए पत्तोंकी तुल्यताकी प्राप्त हो गये ॥२१२॥ वापिकाएँ नीचेसे फूटकर बह गईं जिससे उनमें कीचड़ मात्र ही शेष रह गया तथा सम्पूर्ण लंका चक्र पर चढ़ी हुईके समान व्याकुल हो उठी ॥२१३॥ जिसमें राजसहृषी मीन मारे गये थे ऐसे लंकारूपी कमलवनको क्षोभितकर ज्योंही हनूमान्रूपी हाथी बाहर आया ॥२१४॥

तावत्तोयदवाहेन सम सनद्य वेगत । पश्चादिन्द्रजितो एतौ द्विपस्थन्दनमध्यग ॥२१५॥  
 हनूमान्यावदैतेन सम योद्धु समुद्यत । प्राप्त तावदित तस्य बल यन्मेघपृष्ठगम् ॥२१६॥  
 बाह्याथा भुवि लङ्काया महाप्रतिभय रणम् । जात हनूमत गे<sup>१</sup> लक्ष्मणस्येव द्वापणम् ॥२१७॥  
 युक्त सुचतुरैररुं रथमाच्छ्रय पात्रिणि । समुद्ध्य य शर सैन्य राजसानाम रायत ॥२१८॥  
 अथेन्द्रचित्तवारेण पाशैर्माहोरं गैस्सित<sup>२</sup> । चिरमाधोषितो नत पुर किञ्चिद्विचिन्तयन् ॥२१९॥  
 ततो नगरलोक्रेण विश्रब्ध म निराचित । कुर्वन् भङ्गनमार्थाद्यो विद्युद्वण्डवदीक्षित ॥२२०॥  
 प्रवेशितस्य चास्थान्या तस्य द्रोपान् दशानन । कथ्यमानान् शृणोति स्म तद्विद्धि पुरपैनिजै ॥२२१॥  
 दूताहूत समायात किष्किन्ध स्वपुरादयम् । महेन्द्रनगरध्वस्त चक्रे त च वश रिपो ॥२२२॥  
 साधूपसर्गमथने द्वीपे दधिमुखाह्वये । गन्धर्वकन्यकास्तिस्र पत्नस्याभ्यनुमोदिता ॥२२३॥  
 विध्वंस वज्रशालस्य चक्रे वज्रमुलस्य च । कन्यामाभिलपत्तस्य वहिरस्थाययद् बलम् ॥२२४॥  
 भग्न पुष्पनगोद्यान तत्पाल्य<sup>३</sup> विह्वलाकृता । बहव किङ्करा ध्वस्ता प्रपादि च विनाशितम् ॥२२५॥  
 घन्तनत्रिमुष्णेन पुनस्नेहाक्षिरन्तरम् । पयसा पोषिता स्त्रीभिरृक्षका ध्वममाहता ॥२२६॥  
 वृक्षैर्विवाजिता बक्ष्यस्तरलायितपल्लवा । धरण्या पतिता भान्ति विषवा इव योषिता ॥२२७॥  
 पत्न्युत्पभरानम्रा त्रिविधास्तरजातय । श्मशानपादपच्छाया एतेन ध्वसिता स्थिता ॥२२८॥

त्याही हाथियोने रथपर सवार इन्द्रजित मेघवाहनके साथ तैयार होकर शीघ्र हा उसके पाछे लग गया ॥२१५॥ हनूमान् जब तक इसके साथ युद्ध करनेके लिए उद्यत हुआ तब तक मेघवाहन के पीछे लगी सेना आ पहुँची ॥२१६॥ तदनन्तर लम्बी बाह्यभूमिमें हनूमान्का विद्याधराके साथ उस तरह महाभयद्वर युद्ध हुआ जिस प्रकार कि लक्ष्मणका ररदूषणके साथ हुआ था ॥२१७॥ हनूमान् चार घोडासे जुते रथ पर सवार हो वाण चींचकर राजसौकी सेनाको ओर दौडा ॥२१८॥

अथानन्तर चिरकाल तक युद्ध करनेके बाद जो वीर इन्द्रजितके द्वारा नागपाशासे पँध लिया गया था ऐसा हनूमान् कुछ विचार करता हुआ नगरके भीतर ले जाया गया ॥२१९॥ जो पहले तौड फौड करता हुआ विद्युद्दण्डके समान देखा गया था वही हनूमान् अब नगरवासियोंके द्वारा निश्चिततापूर्वक देखा गया ॥२२०॥ तदनन्तर वह रावणकी सभामें ले जाया गया वहाँ रावणने अपने विद्व पुरुषोंके द्वारा कहे हुए उसके अपराध श्रवण किये ॥२२१॥ विद्व पुरुषाने उसके विषयमें बताया कि यह दूतके द्वारा बुलाये जाने पर अपने नगरसे किष्किन्ध नगर गया । वहाँसे लका आते समय इसने राजा महेन्द्रका नगर ध्वस्त किया साथ उसे शत्रुके आधीन किया ॥२२२॥ दधिमुखनामक द्वीपमें मुनियुगलका उपसर्ग दूर किया और गन्धर्वराजका तीन कन्याएँ रामको चरनेके लिए उत्सुक थीं सो उनका अनुमोदन किया ॥२२३॥ राजा वज्रमुखके वज्रकोटका विध्वंस किया तथा उसकी कन्या लकामुन्दरीको रीरुत कर उसके नगरके बाहर अपनी सेना रकरी ॥२२४॥ पुष्पगिरिका उद्यान नष्ट किया, उसकी रक्षक स्त्रियाका विह्वल किया, बहुतसे किंकर नष्ट किये और प्रपा-पानी पाने आदिके स्थान धिनष्ट किये ॥२२५॥ स्त्रियोंने जिन्ह पुनके समान स्नेहसे घट रूपी स्तनांसे छोड़े हुए जलके द्वारा निरन्तर पुष्ट किया था वे छोटे-छोटे वृक्ष इसने नष्ट कर दिये हैं ॥२२६॥ जिनने पल्लव चञ्चल हो रहे हैं ऐसी लताएँ इसने वृक्षांसे अलग कर पृथिवीपर गिरा दी हैं जिससे वे विधवा स्त्रियोंके समान जान पडती हैं ॥२२७॥ फल और फलोंके भारसे भुँकी हुई नाना वृक्षाकी जानियों इसके द्वारा नष्ट भ्रष्ट कर दी गई हैं जिससे वे

१ महोरगमन्त्रविधि । २. वद क्षिन र० । ३ ताल्या विह्वला कृता २० । ४ प्रपा पानीय शालिका तत्प्रभृति ।

अपराधानिमान् श्रुत्वा रावण कोपमागतः । अग्रन्धयत्तमाहूय विनाग रोहश्चक्रे ॥२२६॥  
 उपविष्टोऽर्कसङ्काशो दशास्य सिंहविष्टरे । पूजायोग्य पुरा वातिमात्रोशदिति निर्दयम् ॥२२७॥  
 उद्वृत्तोऽयमसौ पाप निरपेक्षपोषितम् । अधुनैतस्य का छाया धिगेतेनेचितेन त्रिम् ॥२२८॥  
 न्यापाद्यते न किं दुष्ट कर्ता नानागमामयम् । कथं न गणितं पूर्वं मम दक्षिण्यमुन्नतम् ॥२२९॥  
 ततस्त-मण्डलप्रान्तस्थिता प्रवरविभ्रमा । महाभाग्या विलासिन्यो नवयावनपूजिता ॥२३०॥  
 कोपस्मितसमायुक्ता निमालितविलोचना । विराय शिरस कम्पमेवमसुरनादरात् ॥२३१॥  
 प्रसादाद्यस्य यातोऽभि प्रभुता क्षितिमण्डले । पृथिव्या विचरन् स्वैच्छ समस्तबलव्रजित ॥२३२॥  
 प्तत्तस्वामिनः प्रातेर्भवता दशित फलम् । भूमिगोचरदूत वयं प्राप्सोऽस्यनिनिन्दितम् ॥२३३॥  
 सुदृढ दशवक्त्रस्य वधमाधाय पृष्टत । वसुधाहिण्डनविलघो भवता तौ पुरस्कृतौ ॥२३४॥  
 पवनस्य सुतो न त्वं जातोऽयम्येन केचिन् । अदृष्टमकुलानस्य निवदयति चेष्टितम् ॥२३५॥  
 चिह्नानि विटजातस्य सन्ति नाह्वेषु कानिचित् । अनायमाचरन् किञ्चिज्जायते नाचगोचर ॥२३६॥  
 मत्ता केमरिगोऽग्रण्ये शृगालानाश्रयन्ति किम् । नहि नाच समाश्रित्य जावन्ति कुलजा नरा ॥२३७॥  
 सर्वस्वेनापि यं पूज्यो यद्यप्यसकृदागतः । सुचिरादागतो द्रोही त्वं निप्रायस्तु वर्तसे ॥२३८॥  
 इमैर्निगदितैः क्रोधात् प्रहस्योवाच माहति । को जानाति विना पुण्यैर्निप्राह्य को विधेरिति ॥२३९॥

श्मशानके वृत्तोंके समान जान पडने लगी हैं ॥२००॥ हनूमानके इन अपराधोंको सुनकर रावण क्रोधको प्राप्त हुआ तथा विशिष्ट प्रकारके नागपाशसे वेष्टित हुए उसे समीपमें चुलाकर लोहेको सॉकलोंसे बंधवा दिया ॥२०१॥

तदनन्तर सिंहासनपर बैठा, सूर्यके समान देदीप्यमान रावण, पहले जिसको पूजा करता था ऐसे हनूमानके प्रति निर्दयताके साथ इस प्रकार कठोर वचन बकने लगा ॥२०३॥ कि यह दुराचारी है, पापी है, निरपेक्ष है, निर्लज्ज है, अब इसकी क्या शोभा है ? इसे धिक्कार है, इसके देखनेसे क्या लाभ है ? ॥२३१॥ नाना अपराधोंको करनेवाला यह दुष्ट क्या नहीं मारा जाय ? अरे ! मेने पहले इसके साथ जो अत्यन्त उदारताका व्यवहार किया इसने उसे कुछ भी नहीं गिना ॥२३२॥ तदनन्तर रावणके समीप ही उत्तम चेष्टाओंसे युक्त महाभाग्यशाली एव नवयौवनसे सुशोभित जो विलासिनो स्त्रियों खडो थीं वे क्रोध तथा मन्द हास्यसे युक्त हो नेत्र बन्द करती तथा शिर हिलाती हुई अनादरसे इस प्रकार कहने लगीं कि हे हनूमान् ! तू जिसके प्रसादसे पृथिवीमण्डलपर प्रभुताको प्राप्त हुआ है तथा समस्त प्रकारके बलसे रहित होकर भी पृथिवीपर इच्छानुसार सर्वत्र भ्रमण करता है ॥२३३-२३४॥ उस स्वामीकी प्रसन्नताका तूने यह फल दिखाया है कि भूमिगोचरियोंकी अतिशय निन्दनीय दूतताको प्राप्त हुआ है ॥२३६॥ रावणके द्वारा किये हुए उपकारको पीछे कर तुमने पृथिवीपर परिभ्रमण करनेसे रोदको प्राप्त हुए राम लक्ष्मणको कैसे आगे किया ॥२३७॥ जान पडता है कि तू पवनजयका पुत्र नहीं है, किसी अन्यके द्वारा उत्पन्न हुआ है, क्योंकि अकुलीन मनुष्यकी चेष्टा ही उसके अदृष्ट कार्यको सूचित कर देती है ॥२३८॥ आरसे उत्पन्न हुए मनुष्यके शरीरपर कोई चिह्न नहीं होते, किन्तु जब वह रोटा आचरण करता है तभी नोच जान पडता है ॥२३९॥ वनमें क्या मदीनमत्त सिंह सियाराकी सेवा करते हैं ? ठीक ही कहा है कि कुलीन मनुष्य नोचका आश्रय लेकर जीवित नहीं रहते ॥२४०॥ तू यद्यपि पहले अनेक बार आया फिर भा सर्वस्वके द्वारा पूज्य रहा परन्तु अबकी बार बहुत बाल बाद आया और राजद्रोही बनकर आया अतः निप्राह्य करनेके योग्य है ॥२४१॥ इन वचनसे हनूमानको क्रोध आ गया जिससे वह हँस कर वाला फि कौन जानता है पुण्यके बिना विधाताका

स्वयं दुर्मतिना साहसमेनासन्नमृत्युना । इतो दिने कतिपर्यैर्द्रव्याम क प्रयास्यय ॥२४३॥  
 सोमिन्नि सह पद्मेन बलोलुङ्ग समापतन् । न मेघ इव सराद्भु नगं शक्या भवेत्तृप ॥२४४॥  
 अतुष्ट परमाद्दरै कामिकैरमृतोपमै । चाति कश्चिद्यथा नाशमेकेन विपश्चिन्दुना ॥२४५॥  
 अतुष्ट खासद्वैतोपैरिन्धनैरिव पावक । परस्मानुगया सोऽप्य विनाश सिप्रमेधयति ॥२४६॥  
 या येन भाविता बुद्धि शुभाशुभगता दृढम् । न सा शक्याऽन्यथाकृत्तं पुण्ड्रसमैरपि ॥२४७॥  
 निरर्थकं प्रियशतैर्दुर्मती दायते मति । नून विहितमस्यैतद्विहितेन हतो हत ॥२४८॥  
 प्राप्ते विनाशकालेऽपि बुद्धिर्नतोर्विनश्यति । विधिना प्रेरितस्तेन कर्मपाक विचेष्टने ॥२४९॥  
 मर्याधमां यथा कश्चिन्मुगन्धि मधुर पय । प्रमादा विपसन्मिथ्र पावा ध्वस प्रपद्यते ॥२५०॥  
 तथाविधो दशास्य स्व परस्मानुगलोलुप । वचनेन विना सिप्र विनाश प्रतिपस्यते ॥२५१॥  
 गुरून् परिजन वृद्धान् मित्राणि प्रियवान्धवान् । मात्रादीनपकण्यं त्वं प्रवृत्त पापवस्तुनि ॥२५२॥  
 कदाचारसमुद्रे त्व मदानवर्तमभ्यग । प्राप्तो नरकपाताल कण्ठ दु खमनाप्स्यसि ॥२५३॥  
 त्वया दशास्य जातेन महारत्नश्रयो नृपात् । अवयोऽत्रमपुत्रेण रक्षया क्षयमाह्वत ॥२५४॥  
 अनुपालितमर्यादां चित्ती पूजितचेष्टिता । पुङ्गवा भवतो वरयात्स्य तुं तेषां पुलाकवत् ॥२५५॥  
 इत्युक्तं क्रोधसरत्न खड्गमालोक्य रावण । जगाद दुविनातोऽप्य सुदुर्वचननिर्भरं ॥२५६॥  
 त्यन्मृत्युभयो विभ्रप्रगल्भत्व ममाप्रत । द्राक् खलाम्रियतां मध्ये नगरस्य दुराहित ॥२५७॥

निग्राह्य दण्ड देने योग्य कौन है ॥२४२॥ जिसकी मृत्यु निकट है ऐसे इस दुर्बुद्धिके साथ स्वयं ही यहाँ कुछ दिनोंमें देखेंगे कहों जाओगे ॥२४३॥ प्रचण्ड बलका धारी लक्ष्मण रामके साथ आ रहा है सो जिसप्रकार पर्वत मेघकी नहीं रोक सकते उसी प्रकार राजा उसे नहीं रोक सकते ॥२४४॥ जिस प्रकार इच्छानुसार प्राप्त हुए अमृत तुल्य उत्तम आहारासे वृत्त नहीं होने वाला कोई मनुष्य विपकी एक बूँदसे नाशको प्राप्त हो जाता है उसी प्रकार जो ईधनासे अग्निके समान हजारों स्त्रियोंके समूहसे वृत्त नहीं हुआ ऐसा यह दशानन परस्त्रीकी वृष्णासे शीघ्र ही नाशकी प्राप्त होगा ॥२४५-२४६॥ जिसने जो शुभ अशुभ बुद्धि प्राप्त की है उसे इन्द्रके समान पुरुष भी अन्यथा करनेके लिए समर्थ नहीं हैं ॥२४७॥ दुर्बुद्धि मनुष्यके लिए सैकड़ा प्रियवचनोंके द्वारा हितका उपदेश व्यर्थ ही दिया जाता है । जान पड़ता है कि इसकी यह होनहार निश्चित ही है अत वह अपनी होनहारसे ही नष्ट होता है ॥२४८॥ विनाशका अवसर प्राप्त होनेपर जीवकी बुद्धि नष्ट हो जाती है । सो ठीक है, क्योंकि भवितव्यताके द्वारा प्रेरित हुआ यह जीव कर्मोदयके अनुसार चेष्टा करता है ॥२४९॥ जिस प्रकार कोई प्रमादी मनुष्य विपमिश्रित सुगन्धित मधुर दुग्ध पीकर विनाशको प्राप्त होता है वसी प्रकार हे रावण ! तू परस्त्री सुखका लोभी हुआ विना बुद्ध कहे ही शीघ्र ही विनाशको प्राप्त होगा ॥२५०-२५१॥ गुरु, परिजन, वृद्ध, मित्र, प्रियवन्धु तथा माता आदिकी अनमुना कर तू पापकर्मम प्रवृत्त हुआ है ॥२५२॥ तू दुराचार रूपी समुद्रमें कामरूपी भ्रमरके बीच फँसकर नीचे नरकमें जावेगा और वहाँ अतिशय दुःख प्राप्त करेगा ॥२५३॥ हे दशानन ! महाराजा रत्नभवासे उत्पन्न हुए तुम्हें अधम पुत्रने राक्षसाका वश नष्ट कर दिया ॥२५४॥ तुम्हारे वशज पृथिवीपर मर्यादाका पालन करनेवाले प्रशान्त चेष्टाके धारक उत्तम पुरुष हुए परन्तु तू उन सबमें झिलकेके समान नि सार हुआ है ॥२५५॥

इस प्रकार कहनेपर रावण क्रोधसे लाल हो गया । वह कृपाणकी ओर देखकर बोला कि यह उद्दण्ड अत्यधिक दुर्वचनोंसे भरा है तथा मृत्युका भय छोड़कर मेरे सामने बडप्पन धारण कर रहा है अत नगरके बीच ले जाकर इस दुष्ट की शाप ही दुर्दशा की जाय ॥२५६-२५७॥

सशब्देरायते स्थूलैर्बद्धो रज्जुभिरायसै । ग्रीवाया हस्तपादे च रेणुरूक्षितविग्रह ॥२५८॥  
 वेष्टित किङ्करै रुरैर्भ्राम्यता च गृहे गृहे । हास्यमान रुरैर्वायसै वृतमण्डलपूरुवृत ॥२५९॥  
 इमक वनिता दृष्ट्वा नराक्ष पुरवासिन । शोचन्ति कृतधिकारा विकृता कम्पितानना ॥२६०॥  
 चिनिगोचरदूतोऽय सोऽय दूत प्रपूजित । पश्यतैनमिति स्वान पुरे सर्वत्र घोष्यताम् ॥२६१॥  
 ततस्तैविधाक्रोशै सप्राप्त कोपमुत्तमम् । अयासीद् बन्धन छित्वा मोहपाश यथा यति ॥२६२॥  
 पादविन्यासमात्रेण भव वा गोपुरमुद्धतम् । द्वाराणि च तथान्यानि खमुत्प्लव ययौ मुदा ॥२६३॥  
 शक्रप्रासादसङ्काश भवन रत्नसा विभो । हनूमत्पादघातेन विस्तीर्ण स्तम्भसङ्कुलम् ॥२६४॥  
 पतता वेरमना तेन यन्त्रितापि महानरी । धरणी कम्पमानीता पादवेगानुघातत ॥२६५॥  
 भूमिसम्प्राप्तसौवर्णप्राकार रश्मिगह्वरम् । वज्रचूणितशैलाभ जात दाशमुख गृहम् ॥२६६॥  
 कपिमौलिभृतामीश श्रुत्वैवविधक्त्रिमम् । प्रमोद जानकी प्राप्ता विपाद च मुहुर्मुहुः ॥२६७॥  
 वज्रोदरी ततोऽबोधत् किं वृथा देवि रोदिति । सन्त्रोटव शृङ्खल पश्य यात मारुतिमम्बरम् ॥२६८॥  
 निशम्य वचन तस्या विकसस्रोत्रपङ्कजा । गच्छन्त मारुतिं दृष्ट्वा निजसैन्यसमागतम् ॥२६९॥  
 अचिन्तयद्य वार्तां मद्य नाथस्य मे ध्रुवम् । कथयिष्यति यस्यैव गच्छत प्रवरो जव ॥२७०॥  
 पृष्टतश्चास्य सानन्दा पुष्पाञ्जलिमुञ्जत । समाधानपरा भू वा श्रारिवेशस्य तेजसाम् ॥२७१॥  
 उवाच च प्रहा सर्वे भवन्तु सुखदास्तव । हतविघ्नधिरजीव भोगवान् वायुनन्दन ॥२७२॥

शब्द कग्नेवाली लम्बी मोटी लोहेकी साकलोंसे इसे गरदन तथा हाथों और पैरोंमें कसकर बाँधा जाय, धूलिसे इसकी शरीर धूसर किया जाय, दुष्ट किंकर इसे घेर कर कठोर वचनोंसे इसकी हँसी करे तथा घर घर घुमावे । इस दुर्दशासे यह रो उठेगा ॥२५८-२५९॥ इसे देख लियों तथा नगरके लोग धिक्कार देते तथा मुखको विकृत और कम्पित करते हुए इसके प्रति शोक प्रकट करेंगे ॥२६०॥ इसके आगे-आगे नगरमें सर्वत्र यह घोषणा की जाय कि यह वही सम्मानको प्राप्त हुआ भूमिगोचरीका दूत है इसे सब लोग देखें ॥२६१॥

तदनन्तर उन विविध प्रकारके अपशब्दोंसे परम क्रोधको प्राप्त हुआ हनूमान बन्धनको छेड़कर उस प्रकार चला गया जिस प्रकार कि यति मोहरूपी पाशको छेड़ कर चला जाता है ॥२६२॥ वह पैर रखने मात्रसे उन्नत गोपुर तथा अन्य दरवाजोंको तोड़कर हर्ष पूर्वक आकाश में जा उडा ॥२६३॥ रावणका जो भवन इन्द्रभवनके समान था वह हनूमानके पैरकी आघातसे इस प्रकार विदार गया कि उसमें खाली खम्भे ही खम्भे शेष रह गये ॥२६४॥ यद्यपि वहाँकी पृथिवी बड़े बड़े पर्वतोंसे जकडी हुई थी तथापि चरणोंके वेगके अनुपातसे गिरते हुए उस भवनके द्वारा हिल उठी ॥२६५॥ जिसका स्वर्णमय कोट भूमिमें मिल गया था तथा जिसमें अनेक गहरे गड्ढे हो गये थे ऐसा रावणका घर वज्रसे चूर-चूर हुए पर्वतके समान हो गया ॥२६६॥ मुकुटमें कपिका चिह्न धारण करने वाले वानरवशियोंके राजा हनूमानको इस प्रकारका पराक्रमी सुन सीता हर्षको प्राप्त हुई तथा बन्धनका समाचार सुन बार बार विपादको प्राप्त हुई ॥२६७॥ तदनन्तर पासमें बैठी हुई वज्रोदरीने कहा कि हे देवि ! व्यर्थ ही क्यों रुदन करती हो ? देखो, यह हनूमान बन्धन तोड़कर आकाशमें उडा जा रहा है ॥२६८॥ उसके उक्त वचन सुन तथा अपनी सेनाके साथ हनूमानको जाता देख सीताके नयन कमल खिल उठे ॥२६९॥ यह विचार करने लगी कि जिसका जाते समय यह तीव्र वेग है ऐसा यह हनूमान अवश्य ही मेरे लिए मेरे नाथकी वार्ता कहेगा ॥२७०॥ इस प्रकार विचार कर सावधान चित्त की धारक सीताने हर्ष पूर्वक हनूमानके पीछे उस प्रकार पुष्पाञ्जलि छोड़ी जिस प्रकार कि लक्ष्मी तेजके स्वामीके पीछे छोडती है ॥२७१॥ साथ ही उसने यह कहा कि हे पवन



मालिनीवृत्तम्

इति सुबिहितृत्ता पूर्वान्मन्युदाराः सरुलमुचनराधि व्याप्यकातिप्रधाना ।  
 अभिसरपरिमुक्ता कर्म तन्कुरुमीशा जनयति परम तद्विस्मय दुर्विचिन्त्यम् ॥२७३॥  
 भगत मुकृतसङ्ग तेन निसुं च्य सर्ग विरसफलविपाधि धुद्रकर्म प्रयत्नान् ।  
 भवत परमसोस्यास्वादलोभप्रसक्ता परिनितरविभासो जन्तव कान्तलाला ॥२७४॥

इत्यार्षे रविपेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे हनूमत्पत्याभिगमन नाम त्रिपञ्चाशत्तम पर्व ॥५३॥

पुत्र । समस्त ग्रह तैरे लिए सुप्तदायक हा तथा तू विघ्नोको नष्ट कर भोग युक्त होता हुआ चिरकाल तक जीवित रह ॥२७२॥ गीतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् । जिन्हाने पूर्वान्ममे उत्तम आचरण किया है, जो सदा रहै, तथा चिनकी कार्तिका समूह समस्त ससारमें व्याप्त है ऐसे मनुष्य परिभ्रमणसे रहित हो वह कर्म करनेके लिए समर्थ होते हैं जो कि बहुत भारी अचिन्तनीय आश्चर्य उत्पन्न करता है ॥२७३॥ इसलिए नीरस फल देनेवाले समस्त क्षुद्र कर्मको प्रयत्न पूर्वक छोड़ कर एक पुण्यका ही समागम प्राप्त करो जिससे परम सुखके आश्वादके लोभी हो, पुरुष अपनी प्रभासे सूर्यकी प्रभाको जीतने वाला एव मनोहर लीलाभाका धारक होता है ॥२७४॥

इम प्रकार आर्ष नामस प्रसिद्ध, रविपेणाचार्य कथित पद्मपुराणमें हनूमान्के लौटने आदिक्ता वर्णन करनेवाला तिरपनर्ग पर्व समाप्त हुआ ॥५३॥

## चतुःपञ्चाशत्तमं पर्व

अथाससाद् कैक्लिन्ध हनूमान् यत्नमप्रतः । विधाय<sup>१</sup> पुरिविध्वस्तज्वज्जत्रादिचारुतम् ॥१॥

बहिर्निष्पान्तकैक्लिन्धजनसागरवीक्षितः । विवेश नगरं धीरो निसर्गोद्गारविभ्रमः ॥२॥

विचिताद्धान् महायोधान् दृष्टुं नगरयोपिताम् । गवाक्षापितवत्राणां सन्नमः परमोऽभवत् ॥३॥

प्राप्य च वाग्ममाग्नीयं हितो भूत्वा पिता यथा । वातिरावासयत्<sup>२</sup> सैन्यं यथायोग्यं समन्ततः ॥४॥

ततः सुग्रीवराजेन संगम्य ज्ञापितक्रियः । जगाम पद्मनाभस्य पादमूलं निवेदितुम् ॥५॥

प्रिया जीवति ते भद्रेत्येवमागत्य सारुतिः । वेदयिष्यति मे साधुरिति चिन्तामुपागतम् ॥६॥

क्षीणमख्यभिगमाङ्गं क्षीयमाणं निरङ्कुशम् । वियोगवह्निना नागं दाघेनैवाकुलीकृतम् ॥७॥

वर्तमानं महाशोकप्राताले द्विष्टविष्टम् । पद्मं वातिरुपासयन्<sup>३</sup> मूर्धन्यस्तकराम्बुरुदं ॥८॥

प्रथमं वातिना हर्षधियमाणोरुचक्षुषा । वक्त्रेण जानकीवार्तां शिष्टावाचां<sup>४</sup> ततोऽखिला ॥९॥

अभिज्ञानादिकं सर्वं निवेद्येकं स सीतया । चूडामणिं नरेन्द्राय समर्प्यांगान् कृतार्थताम् ॥१०॥

चिन्तयेव हस्तच्छायः । निपण्णं श्रान्तवक्त्रे<sup>५</sup> । शोकमलान्तं द्वासीत्स वेणोर्बन्धनमलीमसः ॥११॥

अथानन्तर—जिसकी ध्वजाओं और छत्रादिकी सुन्दरता नष्ट हो गई थी ऐसी सेना आगे कर हनूमान् क्रिक्लिन्धा नगरीको प्राप्त हुआ ॥१॥ तदनन्तर क्रिक्लिन्धा निवासी मनुष्योंकी सागरके समान अपार भीड़ने बाहर निकल कर जिसके दर्शन किये थे, जो धीर था तथा स्वभावसे ही उत्तम चेष्टाओंका धारक था ऐसे हनूमानने नगरमें प्रवेश किया ॥२॥ उस समय क्षत-विक्षत शरीरके धारक महायोधाओंको देखनेके लिए जिन्होंने भरोखोंमें मुटु लगा रक्खे थे, ऐसी नगर-निवासीनी स्त्रियोंमें बड़ा क्षोभ उत्पन्न हुआ ॥३॥ तत्पश्चात् अपने निवास स्थान पर आकर हनूमानने पिताकी तरह हितकारी हो सेनाको सब ओर यथायोग्य ठहराया ॥४॥ तदनन्तर राजा सुग्रीवके साथ मिलकर, लंकामें जो कार्य हुआ था वह उसे बतलाया । तत्पश्चात् समाचार देनेके लिए रामके चरणमूलमें गया ॥५॥ उस समय श्रीराम इस प्रकारकी चिन्ता करते हुए बैठे थे कि सत्पुरुष हनूमान् आकर मुझसे कहेगा कि हे भद्र ! तुम्हारी प्रिया जीवित है ॥६॥ अत्यन्त सुन्दर शरीरके धारक राम क्षीण हो चुके थे तथा उत्तरोत्तर क्षीण होते जा रहे थे । वे वियोगरूपी अग्निसे उस तरह आकुलित हो रहे थे जिस तरह कि दावानलसे कोई हाथी आकुलित होता है ॥७॥ वे महा शोकरूपी पातालमें विद्यमान थे तथा समस्त संसारसे उन्हें द्वेष उत्पन्न हो रहा था । हनूमान हस्तकमल जोड़कर तथा मस्तकसे लगाकर उनके पास गया ॥८॥ प्रथम तो हनूमानने, जिसके विशाल नेत्र, हर्षसे युक्त थे ऐसे मुखके द्वारा जानकीका समाचार कहा और उसके बाद उत्तम वचनोंके द्वारा सब समाचार प्रकट किया ॥९॥ सीताने जो कुछ अभिज्ञान अर्थात् परिचय कारक वृत्तान्त कहे थे वे सब कह चुकनेके बाद उसने राजा रामचन्द्रके लिए चूडामणि दिया और इस तरह यह कृतकृत्यताको प्राप्त हुआ ॥१०॥ वह चूडामणि कान्ति रहित था, सो ऐसा जान पड़ता था मानो चिन्ताके कारण ही उसकी कान्ति जाती रही हो । वह रामके हाथमें इस प्रकार विद्यमान था मानो थककर ही बैठा हो और सीताकी चौटीमें बंधे रहनेसे मलिन हो गया था सो ऐसा जान पड़ता था मानो शोकसे ही दुःखी होकर मलिन हो

१. पुरिविध्वस्तध्यज क० । पुरि विध्वस्त ल० । २. वीक्षिताद्धान् म० । ३. राश्यासयन् म० । ४. शिष्टावाचा म० । ५. शान्तवक्त्रकः म० ।

पद्मस्याञ्जलिवातोऽम्बौ पतद्वाप्यो हृतप्रभः । दशा दृष्टो नु पांसो नु वार्ता घृष्टानु सन्नमात् ॥१२॥

आर्सानमञ्जलावेनं दीर्घव्यविरलाङ्गुली । गलकिरणधारीष शुशोच धरणीपतिः ॥१३॥

पूरिताञ्जलिमद्गुनामालोकेन तमानने । चक्रे सोऽपि रंदिरेवैव मरेशः सलिलाञ्जलिम् ॥१४॥

प्रियायास्तदभिज्ञान यत्राप्यङ्गे नियोजितम् । तेन तस्यापि वैदेहीपरिष्वङ्ग इवामभवत् ॥१५॥

सर्वव्यापी समुद्भिन्नो रोमाञ्चः कर्करो घनः । भङ्गेष्वस्रमवस्तस्य प्रमोद इव निर्भरः ॥१६॥

अपृच्छच्च परिष्वग्य भारति कृतसम्भ्रमः । अपि सत्यं प्रिया प्राणान् धारयत्यतिकोमला ॥१७॥

जगाद् प्रणतो वातिः नाथ जीवति नान्यथा । मया वार्त्ता समानीता सुखी भव इलापते ॥१८॥

किन्तु त्वद्विरहोदारदावमध्यविवर्तिना । गुणौघनिद्रगा बाला नेत्राम्बुकृतदुर्दिना ॥१९॥

वेगोघनच्युतिच्छायंमूर्द्धजारयन्तदुःखिता । मुहुर्निश्चसती दीन चिन्तासागरवर्तिनी ॥२०॥

तनूदरी स्वभावेन विरोपेण त्रियोगतः । आराध्यमानिका स्त्रीभिः क्रुद्धाभी रचसां विभोः ॥२१॥

सतत चिन्तयन्ती त्वां त्यक्तमवर्तनुस्थितिः । दुःख जीवति ते कान्ता कुरु देव यथोचितम् ॥२२॥

मार्मारणिवचः श्रुत्वा म्लानपद्मेक्षणश्चिरम् । चिन्तयाकुलित पद्मे बभूवात्यन्तदुःखितः ॥२३॥

दीर्घमुण च निरवस्य सस्तालसशरीरभृत् । निनिन्द जीवित स्वस्य जन्म चानेकया भृशम् ॥२४॥

गया हो ॥११॥ वह प्रभाहीन चूडामणि रामकी अञ्जलिमे पहुँच कर ऐसा लगने लगा मानो अश्रु ही छोड़ रहा हो । रामने उसे बड़ी उत्सुकताके कारण नेत्रोंसे देखा था, या प्रिया था, या उससे कुशल समाचार पूछा था सो कहनेमें नहीं आता ॥१२॥ दुर्बलताके कारण जिसकी अंगुलियों विरल हो गई थीं ऐसी अञ्जलिमें विद्यमान तथा जिससे किरणरूपी धाराओका समूह भर रहा था ऐसे उस चूडामणिके प्रति रामने शोक प्रकट किया ॥१३॥ तदनन्तर किरणोंके प्रकाशसे जिसने अञ्जलि भर दी थी ऐसे उस चूडामणिकी रामने भक्तक पर धारण किया । उस समय ऐसा जान पड़ता था मानो उस चूडामणिने स्वयं रोकर ही जलकी अञ्जलि भर दी हो ॥१४॥ प्रियाके उस अभिज्ञानकी रामने अपने जिस अङ्गपर धारण किया उसीने मानो सीताका आलिङ्गन प्राप्त कर लिया था ॥१५॥ उस समय उनके समस्त अङ्गोंमें जिसकी संभावना भी नहीं थी ऐसा सर्वव्यापी, कठोर तथा सघन रोमाञ्च निःकल आया मानो हर्षका निर्भर ही फूट पड़ा हो ॥१६॥ रामने बड़े संभ्रमके साथ हनुमानका आलिङ्गन कर उससे पूछा कि क्या सचमुच ही मेरी कोमलाङ्गी प्रिया प्राण धारण कर रही है—जीवित है ? ॥१७॥ इसके उत्तरमें हनुमानने नर्घाभूत होकर कहा कि हे नाथ ! जीवित है । मैं अन्यथा समाचार नहीं लाया हूँ, हे राजन् ! सुर्यो हाँस्य ॥१८॥ किन्तु इतना अचर्य है कि गुणोंके समूहकी नदी स्वरूप वह बाला तुम्हारे विरहरूपी शायानलके मध्यमें वर्तमान है, अश्रुओंके द्वारा दुर्दिन बना रही है—निरन्तर वर्षा करती रहती है ॥१९॥ वेगोघनचने छूट जानेसे उसके केश कान्तिहीन हो गये हैं, वह अत्यन्त दुःखी है, बार-बार दीनतापूर्वक सांसे भरती है और चिन्तारूपी सागरमें डूबी है ॥२०॥ वह कुरोदरी तो स्वभावसे ही थी पर अथ आपके वियोगसे और भी अधिक कुरोदरी जान पड़ती है । रावणकी व्राँघभरी स्त्रियों उसकी निरन्तर आराधना करती रहती हैं ॥२१॥ वह शरीरकी सर्व चिन्ता छोड़ निरन्तर आपकी ही चिन्ता करती रहती हैं । इस तरह हे देव ! आपको प्रियवल्लभा दुःखमय जीवन व्यतीत कर रही है अतः यथायोग्य प्रयत्न कीजिए ॥२२॥ हनुमानके उक्त वचन सुन कर रामके नेत्रकमल म्लान हो गये । ये बहुत देर तक चिन्तासे आकुलित हो अत्यन्त दुःखी हो उठे ॥२३॥ शिथिल एवं अलसाये शरीरकी धारण करनेवाले राम लम्बी तथा गरम साँत

१. जातोऽम्बौ म० । २. घृष्टानुसन्नमात् म० । ३. रदित्वा च० म० । ४. हे महीपते ! ।

५. च्युत्स्थाय म० ।

ततस्तद्विद्वित ज्ञा वा सौमित्रिरिदमब्रवीत् । कि शोचसि महाबुद्धे कर्तव्ये दीयता मन ॥२५॥  
 लपयते दार्घसूत्र व क्रिष्किन्धनगरप्रभो । कृताह्वानश्च भूयोऽपि सीताभ्राता चिरायति ॥२६॥  
 दशास्य कस्य नगरी श्वो गन्तास्म विसशयम् । नोभिरणं वसुतोर्वं वाहुन्यामेव वा मुत्तम् ॥२७॥  
 अधोचे सिहनादात्पो मधुरो खेचरो महान् । अभिमानिसम मैव भापिष्ठा कोविदो भवान् ॥२८॥  
 भवतो या गति सैव जातास्माकमिहाधुना । अतो निरूप्य कर्तव्य सर्वेभ्यो हितमादरात् ॥२९॥  
 गवा पवनपुत्रेण सप्ताकाराहिं गोपुरा । लङ्का विध्वंसिता तेन सोद्यानोपवनान्विता ॥३०॥  
 अधुना रावणे क्रुद्धे महाविद्याधराधिपे । सहातमृ युरस्माक सप्ताप्तोऽय विधेर्वशात् ॥३१॥  
 उचे चन्द्रमरीचिश्च पर वचनमुजितम् । कि त्व हरेरिव प्राप्त सन्त्रास मृगवत्परम् ॥३२॥  
 विभेति दसवक्त्राह्व को वासी किं प्रयोजनम् । अन्यायकारिणस्तस्य वर्तते मृत्युरप्रत ॥३३॥  
 अस्माक बहव सन्ति खेचरेन्द्रा महारथा । विद्याविभवसम्पत्ता कृताश्रया सहस्रश ॥३४॥  
 रपातो घनगतिर्स्तामो भूतनादो गजस्वन । क्रूर केली किलो भीम कुण्डो गोरतिरद्भट ॥३५॥  
 नलो नालो तडिद्वक्त्रो मन्दरोऽशानिर्णव । चन्द्रज्योतिर्मृगेन्द्राह्वो वज्रदट्टो दिवाकर ॥३६॥  
 उल्कालङ्गूलदिव्याद्यप्रत्युहोत्क्रिप्तपोरप । हनूमान् सुमहाविद्य प्रभामण्डलसुन्दर ॥३७॥  
 महेन्द्रकेतुरयुप्रसमारणपराक्रम । प्रसन्नकीर्तिरद्व्युत्त सुतास्तस्य महाबला ॥३८॥

भरकर अपने जीवनकी अनेक प्रकारसे अत्यधिक निन्दा करने लगे ॥२४॥ तदनन्तर उनकी चेष्टा जानकर हनूमान्ने यह कहा कि हे महाबुद्धिमान ! शोक क्या करते हो ? कर्तव्यमे मन दीजिए ॥२५॥ किष्किन्ध नगरके राजा सुग्रीवकी दीर्घसूत्रता जान पडती है और सीताका भाई भामण्डल बार-बार बुलाने पर भी देर कर रहा है ॥२६॥ इसलिए हम लोग नौकाओं अथवा भुजाओंसे ही शीघ्र समुद्रको तैर कर कल ही नि सन्देह नीच रावणकी नगरी लकाको चलेंगे ॥२७॥

तदनन्तर सिहनाद नामक महाबुद्धिमान् विद्याधरने कहा कि इस तरह अभिमानिके समान मत कहो । आप विद्वान् पुत्र हैं ॥२८॥ आपकी जो दशा लकामे हुई है वही इस समय यहाँ हम लोगोकी होगी इसलिए आदरपूर्वक सब कुछ निश्चयकर हितकारी कार्य करना चाहिए ॥२९॥ पवन पुत्र हनूमान्ने कोट, अट्टालिकाएँ तथा गोपुरोंसे सहित एक बाग बगीचोंसे सुशोभित लकापुरीको नष्ट किया है ॥३०॥ इसलिए महाविद्याधरोंका अधिपति रावण इस समय क्रुद्ध हो रहा है और उसके क्रुद्ध होनेपर दैव वश हम सबको यह सामूहिक मृत्यु प्राप्त हुई है ॥३१॥

तदनन्तर चन्द्रमरीचि नामक विद्याधरने अत्यन्त ओजपूर्ण वचन कहे कि क्या तुम सिहसे हरिणके समान अत्यन्त भयको प्राप्त हो रहे हो ? ॥३२॥ भयभीत तो रावणको होना चाहिए अथवा वह कौन है और उससे क्या प्रयोजन है ? उसने अन्याय किया है इसलिए मृत्यु उसके आगे नाच रही है ॥३३॥ हमारे पास ऐसे बहुत विद्याधर राजा हैं जो महावेग शाला हैं तथा जिन्होंने हजारों बार अपने चमत्कार दिखाये हैं ॥३४॥ उनके नाम हैं घनगति, तीम्र, भूतनाद, गजस्वन, क्रूर, केलीकिल, भीम, कुण्ड, गोरति, अद्भट, नल, नील, तडिद्वक्त्र, मन्दर, अशानि, अर्णव, चन्द्रज्योति, मृगेन्द्र, वज्रदट्ट, दिवाकर, उल्का और लङ्गूल नामक दिव्य अस्त्रोंके समूहमे निर्वाध पौरुषको धारण करनेवाला हनूमान्, महाविद्याओंका स्वामी भामण्डल, तीम्र पवनके समान पराक्रमका धारक महेन्द्रकेतु, अद्भुत पराक्रमी प्रसन्नकीर्ति और उसके महाबलवान् पुत्र । इनके सिधाय किष्किन्धनगरके स्वामी राजा सुग्रीवके और भी अनेक

१. 'दशास्य नगरी श्वो दि गन्तास्मेति विसशयम्' म० । २ भापिष्ठा म० । ३ सप्ताकाराद्विगोपुरा म० । ४. वक्त्राख्यः ८० । ५. गोरतिरगद ज० ।

किष्किन्धस्वामिनोऽप्येऽपि सामन्ता परमौजस । विद्यन्तेऽर्चतः क्रमांशो निर्भृया शासनैरपि ॥३६॥  
 ततस्तद्वचनं श्रुत्वा खेचराश्वभुरानतम् । लक्ष्मीधराग्रज तेन निदधुर्विनयान्वितम् ॥३७॥  
 अथेच्छात्रिरे तस्य वदनेऽयत्तसौम्यके । भृकुटीनालक भीम मृ योरिव लतागृहम् ॥३८॥  
 लङ्काया तेन विन्यस्ता दृष्टि शोणस्फुरचिपम् । केतुरेग्वामिबोधात्मा राक्षसचयशसिनाम् ॥३९॥  
 तमेव च पुनर्यस्ता चिरमध्यस्थता गते । दृष्टस्थामिनिजे चापे कृतान्तभ्रूलतोपमे ॥४०॥  
 कोपकम्पलथ चास्य केशभार स्फुरद्युतिम् । निधानमिव कालस्य निरादुषु तमसा जगत् ॥४१॥  
 तथाविध च तद्वक्त्र ज्योतिर्वलयमध्यगम् । ज्वरदाभवदुपातप्रभाभास्करसश्विभम् ॥४२॥  
 गृह्णातगमनच्येद रक्षसा नाशनायतम् । दृष्ट्वा ते गमने सन्ना जाता सम्प्रातमानसा ॥४३॥  
 राघवाकृतनुद्धास्ते सम्पृश्येन्दुधुतेगिराम् । चलिता व्योमगाश्विग्रहेतय सम्पदान्विता ॥४४॥  
 प्रयागतूर्यसहात नाद्रूपरितगह्वरम् । द्वापयिवा रणौ सुक्यौ प्रस्थितौ रघुनन्दनौ ॥४५॥  
 बहुले मार्गशापस्य पञ्चम्यामुदिते रवौ । सोमाहै शकुनैरेभिस्तेषा ज्ञेय प्रयाणकम् ॥४६॥  
 दक्षिणावर्त्तनिर्भूमज्जाला रम्पस्वन शिखा । परमालङ्कृता नारा सुरभिप्रेरकोऽनिल ॥४७॥  
 निर्यन्मयतरङ्गत्र गम्भीर वाचिद्वेषितम् । घणानिस्वनित कान्त कलशो द्रुपिपूरित ॥४८॥

महापराक्रमी सामन्त हैं जो कार्यको प्रारम्भकर बीचमें नहीं छोड़ते, आज्ञाकारी हैं और आदेशकी प्रतीक्षा कर रहे हैं ॥ ३५-३६ ॥

तदनन्तर चन्द्रमरीचिके वचन सुनकर विद्याधरोंने अपने नीचे नेत्र विनयपूर्वक रामके उपर लगाये अर्थात् उनकी ओर देखा ॥४०॥ तत्परचात् जिसका सौम्यभाज अव्यक्त था ऐसे रामके मुखपर उन्होंने वह भयङ्कर भृकुटीका जाल देखा जो कि यमराजके लतागृह निकुञ्जके समान जान पड़ता था ॥४१॥ उन्होंने देखा कि श्रीराम लङ्काकी ओर जो लाल लाल दृष्टि लगाये हुए हैं, वह राक्षसाका क्षय सूचित करनेके लिए उन्नित केतुकी रेखाके समान जान पड़ती है ॥४२॥ तदनन्तर उन्होंने देखा कि रामने वही दृष्टि अपने उस सुन्दर धनुष पर लगा रखी है जो चिरकालसे मध्यस्थताकी प्राप्त हुआ है, तथा यमराजकी भृकुटीरूपी लताकी उपमा धारण करनेवाला है । ॥४३॥ उनका केशोंके समूह क्रोधसे कम्पित तथा शिथिल होकर बिखर गया था और ऐसा जान पड़ता था मानो अन्धकारके द्वारा जगत्को व्याप्त करनेके लिए यमराजका राजाना ही खुल गया था ॥४४॥ तेजोमण्डलके बीचमें स्थित उनका उस प्रकारका मुख ऐसा जान पड़ता था माने प्रलय कालका देहाप्यमान तरुण सूर्य ही हो ॥४५॥ इस तरह राक्षसोंका नाश करनेके लिए जो गमन सम्बन्धी उतावली कर रहे थे ऐसे रामको देखकर उन सब विद्याधरोंके मन लुभित पड़े तथा सब शीघ्र ही प्रस्थान करनेके लिए उद्यत हो गये ॥४६॥

अथानन्तर रामकी चेष्टाओंसे प्रेरित हुए समस्त विद्याधर चन्द्रमरीचिकी वाणीका समझ कर आकाशमार्गसे चल पड़े । उस समय वे सब विद्याधर नानाप्रकारके शस्त्र धारण किए थे और उत्तमोत्तम सम्पदाआसे सहित थे ॥४७॥ युद्धकी उत्कण्ठासे युक्त राम और लक्ष्मण धनिने द्वारा गुफाओंकी पूर्ण करनेवाले प्रयाणकालिक वाजे बजवा कर प्रस्थान किए ॥४८॥ मार्गशीर्ष वदी पञ्चमीके दिन सूर्योदयके समय उन सबका प्रस्थान हुआ था और प्रसन्न होनेवाले निम्नाङ्कित शुभ राहुनासे उनका उत्साह बढ़ रहा था ॥४९॥ उस समय ही देखा कि 'निर्भूम अग्निनी ज्जाला दक्षिणावर्त्तसे प्रज्वलित हो रही है, समीप ही मयूरधर शब्द कर रहा है, उत्तमोत्तम अलंकारोंसे युक्त रत्नी सामने लडी है, सुगन्धिकी फैलावट वायु बह रही है ॥५०॥ निर्भय-मुनिराज सामनेसे आ रहे हैं, आकाशमें छत्र फिर रहा है' की गम्भीर

१ कृतमार्गो ज०, व० । २ चतुरानल ज० । ३ दृष्ट्वा म० । ४ जडौ । ५ गमने ज० । ६ सामाहं च दापयिवा म० ।

उत्क्रान्तितरां दष्टो वामतो गोमयं नवम् । वायसो विस्फुरत्पक्षो निर्मुक्तमधुरस्वरः ॥५२॥  
 भेरीशङ्खरवः सिद्धिर्जयं नन्दं व्रजं द्रुतम् । निर्विघ्नमिति शब्दाश्च तेषां मङ्गलमुद्ययुः ॥५३॥  
 चतुर्दिग्भ्यः समायातैः पूर्यमाणो नभश्चरैः । सुग्रीवो गन्तुमुद्युक्तः सितपद्मविधूपमः ॥५४॥  
 नानायागविमानास्ते नानावाहनकेतनाः । व्रजन्तो द्योग्नि वेगेन बभुवुः खेचरपुङ्गवाः ॥५५॥  
 किष्किन्धाधिपतिर्वर्तिः शल्यो दुर्मर्षणो नलः । नीलः कालः सुपेणश्च कुमुदाद्यास्तथाः नृपाः ॥५६॥  
 पृते ध्वजोपरिन्ध्यस्तमहाभासुरवानराः । असमाना इवाकाशं प्रवृत्ताः सुमहाबलाः ॥५७॥  
 रेजे विराधितस्यापि हारो निर्भरभासुरः । जाम्बवस्य महावृद्धो व्याघ्रो सिंहवत्स्य च ॥५८॥  
 वारणो मेघकान्तस्य शोपाणामन्वयागताः । ध्वजेषु चिह्नतां याता भावारक्षत्रेषु चोज्ज्वलाः ॥५९॥  
 तेषां बभूव तेजस्वी भूतनादः पुरस्सरः । लोकपालोपमस्तस्य स्थितः पश्चान्महसुतः ॥६०॥  
 वृताः सामन्तचक्रेण यथास्वं परमोजसः । लङ्कां प्रति व्रजन्तस्ते रेजुः सजातसम्मदाः ॥६१॥  
 सुकेशतनयाः पूर्वं लङ्कां माल्यादयो यथा । विमानशिखारूढारचेलुः पद्यादयो नृपाः ॥६२॥  
 पार्वस्थः पद्मनाभस्य विराधितनभश्चरः । पृष्ठतो जाम्बवस्तथौ सचिवैरन्वितो निजैः ॥६३॥  
 वामे मुजे सुपेणश्च सुग्रीवो दक्षिणे स्थितः । निमेषेण च सम्प्राप्ता वेलन्धरमर्हीपरम् ॥६४॥  
 वेलन्धरपुरस्वामी समुद्रो नाम तत्र च । नलस्य परमं युद्धमातिथ्यं समुपानयन् ॥६५॥

हिनहिनाहट फ़ैल रही है, घण्टाका मधुर शब्द हो रहा है, दहीसे भरा कलश सामनेसे आ रहा है ॥५१॥ बायीं ओर नवीन गोबरको बार-बार विखेरता तथा पङ्कोंको फ़ैलाता हुआ काक मधुर शब्द कर रहा है ॥५२॥ भेरी और शङ्खका शब्द हो रहा है, सिद्धि हो, जय हो, समृद्धिमान् होओ, तथा किसी विघ्न-बाधाके बिना ही शीघ्र प्रस्थान करो । इत्यादि मङ्गल शब्द हो रहे हैं ॥५३॥ इन मङ्गलरूप शुभशक्तियोंसे उन सबका उत्साह वृद्धित हो रहा था । चारों दिशाओंसे आये हुए विद्याधरोसे जिसकी सेना बढ़ रही थी और इसीलिए जो शुक्ल पक्षके चन्द्रमाकी उपमा धारण कर रहा था ऐसा सुग्रीव चलनेके लिए उद्यत हुआ ॥५४॥ जो नाना प्रकारके यान और विमानोंसे सहित थे तथा जिनका वाहनो पर नाना प्रकारकी पताकाएँ फहरा रही थीं ऐसे वे सब विद्याधर राजा वेगसे आकाशमें जाते हुए अत्यधिक सुरोभित हो रहे थे ॥५५॥ किष्किन्ध-नगरके राजा सुग्रीव, हनूमान्, शल्य, दुर्मर्षण, नल, नील, काल, सुपेण तथा कुमुद आदि राजा आकाशमें उड़े जा रहे थे, सो जिनकी ध्वजाओंमें अत्यन्त देदीप्यमान वानरके चिह्न थे ऐसे ये महाबलवान् विद्याधर ऐसे जान पड़ते थे मानो आकाशको प्रसनेके लिए ही उद्यत हुए हैं ॥५६-५७॥ विराधितकी ध्वजामें निर्भरके समान हार, जाम्बवके ध्वजामें महावृद्ध, सिंहवकी जामें व्याघ्र, मेघकान्तकी ध्वजामें हाथी तथा अन्य विद्याधरोंकी ध्वजाओंमें वंश-परम्परासे आये अनेक चिह्न सुरोभित थे । ये सभी उज्ज्वल छात्रोंके धारक थे ॥५८-५९॥ अत्यन्त तेजी भूतनाद उनके आगे चल रहा था और लोकपालके समान हनूमान् उसके पीछे स्थित था ॥६०॥ यथायोग्य सामन्तोंके समूहसे घिरे, परम तेजस्वी तथा हर्षसे भरे वे सब विद्याधर लङ्काके लिए अत्यधिक सुरोभित हो रहे थे ॥६१॥ जिस प्रकार पहले सुकेशके पुत्र माल्य आदि ने लङ्का और प्रयाण किया था उसी प्रकार राम आदि राजाओंने विमानोंके अग्रभागपर आरूढ लङ्काकी ओर प्रयाण किया ॥६२॥ विराधित विद्याधर रामकी बगलमें स्थित था और अपने हाथोंसे सहित जाम्बव उनके पीछे चल रहा था ॥६३॥ बायें हाथकी ओर सुपेण और दाहिने हाथकी ओर सुग्रीव स्थित था । इस प्रकार व्यवस्थासे चलते हुए वे सब निमेष मात्रमें वेलन्धर नगरके पर्वतपर आ पहुँचे ॥६४॥ वेलन्धर नगरका स्वामी समुद्र नामका विद्याधर था

ततो नलेन सत्पदं जिवा निहतसैनिक । बद्धो बाहुबलाद्येन समुद्र खेचर पर ॥६६॥  
 सम्पूज्य च पुनमुक्तं पद्मनाभस्य शासने । स्थापितोऽवस्थिताश्चैते पुरे तत्र यथोचितम् ॥६७॥  
 सत्यश्री कमला चैव गुणमाला तथापरा । रत्नचूला तथा कन्या समुद्रेण प्रमोदिता ॥६८॥  
 कल्पिता पुरुरोभाश्री योषिदुगुणविभूषिता । लक्ष्मीधरकुमाराय सुरखीसमविभ्रमा ॥६९॥  
 तत्रैका रचनीं स्थित्वा सुवेलमचल गता । सुवेलनगरे तत्र सुवेलो नाम खेचर ॥७०॥  
 जिवा तमपि सहस्रान्मे हेलामात्रेण खेचरा । चिक्रीडुमुदितास्तत्र त्रिदश इव नन्दने ॥७१॥  
 तत्राचयवने रम्ये सुखेनाक्षेपितचपा । अन्येद्युरुद्यता गन्तु लङ्का तेन मुविभ्रमा ॥७२॥  
 तुङ्गप्राकारयुक्ता ता हेमसन्नसमाकुलाम् । कैलासशिखराकारं पुण्डरीकैविराजिताम् ॥७३॥  
 विचित्रं कुट्टिमतलैरालोकेनावभासतीम् । पद्मोद्यानसमायुक्ता प्रपादिकृतिभूषणाम् ॥७४॥  
 पैयालयैरलनुङ्गैर्नानावर्णसमुज्ज्वलैः । विभूषिता पवित्रा च महेंद्रनगरीसमाम् ॥७५॥  
 लङ्का द्यूता समासन्ना सर्वे खेचरपुङ्गवा । हसद्वापकृतावसा बन्धुन परमोदया ॥७६॥  
 युद्धे हसरथ तत्र विजित्य सुमहाबलम् । रम्ये हसपुरे क्रीडा चक्रुरिच्छानुगामिनीम् ॥७७॥  
 मुहुः प्रेषितदूतोऽयमद्य रवो वा विशसयम् । भामण्डल समायातीयेवमाकाचस्थासिधता ॥७८॥

मन्दाक्रान्ता

य य देश विहितमुकृता प्राणभाज श्रयन्ते तस्मिस्तस्मिन् विजितरिपवो भोगसङ्ग भजन्ते ।  
 नद्योतेषां परजनमत किञ्चिददापद्युतानाम् सर्वं तेषां भवति मनसि स्थापित हस्तसक्तम् ॥७९॥

सो उसने परम युद्धके द्वारा नलका आतिथ्य किया ॥६५॥ तदनन्तर बाहुबलसे युक्त नलने  
 स्पृष्टाके साथ उसके सैनिक मार डाले और उसे बाँध लिया ॥६६॥ तदनन्तर रामका आज्ञाकारी  
 होनेपर उसे सन्मानित कर छोड़ दिया तथा उसी नगरका राजा बना दिया । राम आदि सन्त  
 लोग भी उसके नगरमें यथायोग्य ठहरे ॥६७॥ राजा समुद्रकी सत्यश्री, कमला, गुणमाला और  
 रत्नचूला नामकी कन्याएँ थीं जो उत्तम शोभासे युक्त थीं, स्त्रियोंके गुणोंसे विभूषित थीं तथा  
 देवाङ्गनाओंके समान जान पड़ती थीं । हर्षसे भरे राजा समुद्रने वे सब कन्याएँ लक्ष्मणके लिए  
 समर्पित कीं ॥६८-६९॥ उस नगरमें एक रात्रि ठहरकर सब लोग सुवेलगिरिको चले गये ।  
 वहाँ सुवेल नगरमें सुवेल नामका विद्याधर राज्य करता था ॥७०॥ सो उसे भी युद्धमें अनायास  
 जीतकर विद्याधरोंने हर्षित हो वहाँ उस प्रकार क्रीडा की जिस प्रकार कि देव नन्दन वनमें रहते  
 हैं ॥७१॥ वहाँ अक्षय नामक मनोहर वनमें कुशलता पूर्वक रात्रि व्यतीत कर दूसरे दिन उत्तम  
 शोभाको धारण करनेवाले विद्याधर लङ्का जानेके लिए उद्यत हुए ॥७२॥

तदनन्तर जो ऊँचे प्राकारसे युक्त थी, सुवर्णमय भवनोंसे व्याप्त थी, कैलासके शिखरके  
 समान सपेद कमलोंसे सुशोभित थी, नाना प्रकारके फलों और प्रकाशसे देदीप्यमान थी, कमल  
 वनोंसे युक्त थी, प्याऊ आदिकी रचनाआसे अलङ्कृत थी, नाना रङ्गोंसे उज्ज्वल ऊँचे ऊँचे जिन  
 मन्दिरोसे अलङ्कृत तथा पवित्र थी और महेंद्रकी नगरीके समान जान पड़ती थी ऐसी लङ्काकी  
 निरुद्धवर्तिनी देव परम वैभवके धारक विद्याधर हसदीपमें ठहर गये ॥७३-७६॥ वहाँके हसपुर  
 नामा नगरमें महाबलवान् राजा हसरथको जीतकर सवने इच्छानुसार क्रीडा की ॥७७॥ जिसके  
 पास धार-नार दूत भेजा गया है ऐसा भामण्डल आज या कल अवश्य आ जावेगा इस प्रकार  
 प्रतीक्षा करते हुए सब वहाँ ठहरे थे ॥७८॥

गौतम स्वामी कहते हैं कि पुण्यात्मा प्राणी जिस जिस देशमें जाते हैं उसी-उसी देशमें वे  
 शत्रुओंको जातकर भोगोंका समागम प्राप्त करते हैं । उद्यमशील पुण्यात्मा जीवके लिए कोई भी

तस्माद् भोग भुवनविकट भोक्तुकामेन कृत्यः । श्लाघ्यो धर्मो जितवरमुखादुद्रातः सर्वसारः ।  
 आस्तां तावन्नैपरिचिनो भोगसङ्घोऽपि मोक्षम् । धर्माद्स्माद्भ्रजति रवितोऽप्युज्ज्वलं भव्यलोकः ॥८०॥

इत्यार्षे रविपेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे लङ्काप्रस्थानं नाम चतुःपञ्चाशत्तमं पर्व ॥५४॥



वस्तु परके हाथमें नहीं रहती । समस्त मनचाही वस्तुएँ उनके हाथमें आ जाती हैं ॥७६॥ इसलिए जो भव्य संसारमें उत्तम भोग भोगना चाहता है उसे जिनेन्द्रदेवके मुखारविन्दसे उदित सर्वश्रेष्ठ प्रशंसनीय धर्मका पालन करना चाहिए । क्योंकि भोगोका नश्वर संगम तो दूर रहा वह इस धर्मके प्रभावसे सूर्यसे भी अधिक उज्ज्वल मोक्षको प्राप्त कर लेता है ॥८०॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविपेणाचार्य कथित पद्मपुराणमें लङ्काके लिए प्रस्थानका वर्णन करनेवाला चौवनवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥५४॥





## पञ्चपञ्चाशत्तमं पर्व

अथाभ्यर्णस्थित ज्ञात्वा प्रतिसैन्ययत्नं पुरु । युगान्ताम्भोधिवेलेव लङ्का क्षोभमुपागतम् ॥१॥  
सम्भ्रातमानसं किञ्चित्कोपमाप दशानन । चक्रे रणकथा लोको वृद्धवधस्यवन्धित ॥२॥  
महाधरवा मेघस्ताडिता सुभयावहा । त्वयंशङ्करानस्तुद्रो वभ्राम गगनाद्गणे ॥३॥  
रणभेराग्निनादेन परं प्रमुदिता भटा । सन्नद्धा रावण तेन प्राप्ता स्वामिहितैपिण ॥४॥  
भारचोऽमलचन्द्रश्च भास्करं स्पन्दनो विभु । तथा हस्तप्रहस्ताद्यां सन्नद्धा स्वामिनं ध्रिता ॥५॥  
अथ लङ्केश्वरं वीरं सङ्ग्रामाय समुद्यतम् । विभीषणोऽभ्युपागम्य प्रणम्य रचिताञ्जलि ॥६॥  
शास्त्रानुगतमैयुद्धं शिष्टानामतिसम्मतम् । भाषत्या च तदाद्ये च हितं स्वस्य जनस्य च ॥७॥  
शिवं सौम्याननो चानयं पदवाचयविशारदं । प्रमाणकोविदो धीरं प्रशान्तमिदमववाच ॥८॥  
विस्तोर्णां प्रवरां सम्पन्नमहेन्द्रस्येव ते प्रभो । स्थिता च रोदसा व्याप्य कीर्तिं कुन्ददलामला ॥९॥  
कीर्हेतो क्षणमात्रेण सेयं माया परिचयम् । स्वामिन् सन्ध्याभ्ररेखेव प्रसादं परमेश्वर ॥१०॥  
क्षिप्रं समर्थतां सीता तव किं कार्यमेतया । दरयते न च दोषोऽत्र प्रस्पष्टं केवलो गुण ॥११॥  
सुखोदधौ निमग्नस्व स्वस्थस्तिष्ठ विचक्षण । भववद्यो महाभोगस्तवात्मायं समन्तत् ॥१२॥

अथानन्तर शत्रुकी बड़ी भारी सेनाको निकटमें स्थित जानकर लका, प्रलयकालीन समुद्रकी वेलाके समान क्षोभको प्राप्त हुई ॥१॥ जिसका चित्त सभ्रान्त हो रहा था ऐसा रावण कुछ क्रोधको प्राप्त हुआ और मुण्डोके बीच बैठे हुए लोग रणकी चर्चा करने लगे ॥२॥ जिनका शब्द महासागरकी गर्जनाके समान था ऐसी भय उत्पन्न करने वाली भेरिया बजाई गई तथा तुरही और शङ्खोका विशाल शब्द आकाशरूपी अङ्गणमें घूमने लगा ॥३॥ उस रणभेरीके शब्दसे परम प्रभोदको प्राप्त हुए, स्वामीके हितचिन्तक योद्धा तैयार होकर रावणके समाप आने लगे ॥४॥ मारीच, अमलचन्द्र, भास्कर, स्पन्दन, हस्त, प्रहस्त आदि अनेक योद्धा कवच धारण कर स्वामीके पास आये ॥५॥

अथानन्तर लकाके अधिपति चार रात्रणको युद्धके लिए उद्यत देख विभीषण उसके समीप गया और हाथ जोड़ प्रणामकर शास्त्रानुसूल, अत्यन्त श्रेष्ठ, शिष्ट मनुष्याके लिए अत्यन्त इष्ट, आगामी तथा वर्तमान कालमें हितकारी, आनन्दरूप एव शान्तिपूर्ण निम्नाङ्कित वचन कहने लगा । विभीषण, सौम्यमुखका धारी, पदवाच्यका विद्वान्, प्रमाणशास्त्रमें निपुण एव अत्यन्त धीर था ॥६-८॥ उसने कहा कि हे प्रभो ! आपकी सपदा इन्द्रकी सपदाके समान अत्यन्त विस्तृत तथा उत्कृष्ट है और आपकी कुन्दकलोके समान निर्मल कीर्ति आकाश एव पृथिवीको व्याप्त कर स्थित है ॥९॥ हे स्वामिन् ! हे परमेश्वर ! परस्त्रीके कारण आपकी यह निर्मल कीर्ति सध्याकालीन मेघकी रेखाके समान क्षणभरमें नष्ट न हो जाय अतः प्रसन्न होओ ॥१०॥ इसलिए शीघ्र ही सीता रामके लिए सौंप दी जाय । इससे आपको क्या कार्य ही है ? सौंप देनेम दोष नहीं दिखायी देता किन्तु गुण ही स्पष्ट दिखायी देता है ॥११॥ हे बुद्धिमन् ! तुम तो सुग्न रूपी सागरमें निमग्न हो सुप्तसे बैठो । तुम्हारे अपने सब महाभोग सप्त ओरसे निर्दोष

समाने जानकी तस्मिन् पद्मनाभे नियुज्यताम् । निजः प्रकृतिसम्बन्धः सर्वथैव प्रशस्यते ॥१३॥  
 श्रुत्वा तदिन्द्रजिह्वात्रय जगाद पितृचित्तवित् । स्वभावात्यन्तमानाङ्गमागमप्रतिकूलनम् ॥१४॥  
 साधो केनासि पृष्टस्त्वं कोऽधिकारोऽपि वा तव । येनैव भापसे वात्रयमुन्मत्तगदितोपमम् ॥१५॥  
 अत्यन्त यद्यधीरस्व भीरुश्च बलीब्रह्मनासः । स्वबैरमविवरे स्वस्थस्तिष्ठ किं तव भापितैः ॥१६॥  
 'यदर्थं मत्तमात्तद्महाह्वन्द्वानकारिणि । पतद्विधिघशखौधे सद्ग्रामेऽप्यन्तर्भाषणे ॥१७॥  
 हत्वा शत्रून् समुद्रदृत्तास्तीक्ष्णया खड्गधारया । भुजेनोपाज्यते लक्ष्मीः सुकृच्छ्राद् वीरसुन्दरी ॥१८॥  
 सुदुर्लभामिदं प्राप्य तस्मीरत्नमनुत्तनम् । मूढवन्मुच्यते कस्मात् स्वया व्यर्थमुदाहृतम् ॥१९॥  
 ततो विभीषणोऽवोचदिति निर्भेत्संनोद्यतः । पुत्रनामासि शशुस्त्वमस्य दुःस्थिनचेतसः ॥२०॥  
 महाशीतपरीतरुवमजानन् हितमात्मनः । अन्यचिन्तानुरोधेन हिमवारिणि मज्जसि ॥२१॥  
 उद्वृतं भवने वह्निं शुष्कैः पूरयसीन्धनैः । अहो मोहघ्रहातंस्य विपरीतं तवेहितम् ॥२२॥  
 जान्बूनदमयो यावत्सप्रकारविमानिका । लक्ष्मणेन शरैस्तीर्णलंका न परिच्युप्यते ॥२३॥  
 तावन्तृषसुतां सार्धं पद्माप स्थिरचेतसे । क्षेमाय सर्वलोकस्य युक्तमर्पयितुं द्रुतम् ॥२४॥  
 नैषा सीता समानोवा पित्रा तव कुबुद्धिना । रघोभोगिविलं लङ्कामेपानोता विपौपधिः ॥२५॥  
 सुमित्रानन्दन क्रुद्धं तं लक्ष्मीधरः स्रग्वम् । सिंहं रणमुखे शक्ता न यूयं व्यूहितुं गजाः ॥२६॥

हैं ॥१२॥ श्रीराम यहाँ पधारे हैं सो उनका सन्मानकर सीता उन्हें सौंप दी जाय क्योंकि अपने स्वभावका सम्बन्ध ही सर्व प्रकारसे प्रशंसनीय है ॥१३॥

तदनन्तर पिताके चित्तको जाननेवाला इन्द्रजित् विभीषणके उक्त वचन सुन, स्वभावसे ही अत्यन्त मानपूर्ण तथा आगमके विरुद्ध निम्नाङ्कित वचन बोला ॥१४॥ उसने कहा कि हे भले पुरुष ! तुमसे किसने पूछा है ? तथा तुम्हें क्या अधिकार है ? जिससे इस तरह उन्मत्तके वचनोंके समान वचन बोले जा रहे हो ? ॥१५॥ यदि तुम अत्यन्त अधीर-डरपोक या नपुंसक जैसे दीनहृदयके धारक हो तो अपने घरके बिलमें आरामसे बैठो । तुम्हें इस प्रकारके शब्द कहनेसे क्या प्रयोजन है ? ॥१६॥ जिसके लिए मदीन्मत्त हाथियोंके भुण्डसे अन्धकार युक्त, पड़ते हुए अनेक शस्त्रोंके समूहसे सहित एवं अत्यन्त भयदायक संग्राममें तलवारकी पैनी धारासे उद्वण्ड शत्रुओंको मारकर अपनी भुजाओं द्वारा बड़े कष्टसे वीर सुन्दरी लक्ष्मीका उपार्जन किया जाता है ऐसे उस सर्वोत्कृष्ट अत्यन्त दुर्लभ स्त्री-रत्नको पाकर मूर्ख पुरुषकी तरह क्यों छोड़ दिया जाय ? इसलिए तुम्हारा यह कहना व्यर्थ है ॥१७-१६॥

तदनन्तर डॉट दिखानेमें तत्पर विभीषणने इस प्रकार कहा कि तू मलिनचित्तको धारण करनेवाले इस रावणका पुत्र नामधारी शत्रु है ॥२०॥ तू अपना हित नहीं जानता हुआ महाशीत की बाधासे युक्त हो दूस्त्रेकी इच्छानुसार शीतल जलमें डूब रहा है गोता लगा रहा है ॥२१॥ तू गृहमें लगी अग्निको रूखे इन्धनसे पूर्ण कर रहा है, अहो ! मोहरूपी पिशाचसे पीड़ित होनेके कारण तेरी विपरीत चेष्टा हो रही है ॥२२॥ इसलिए यह कोट तथा उत्तम भवनोंसे युक्त सुवर्णमयी लङ्का जबतक लक्ष्मणके चाणोंसे चूर नहीं की जाती है तबतक गम्भीर चित्तके धारक रामके लिए शीघ्र ही पतिव्रता राजपुत्री-सीताका सौंप देना सब लोगोंके कल्याणके लिए उचित है ॥२३-२४॥ तेरा दुर्बुद्धि पिता यह सीता नहीं लाया है किन्तु राक्षसरूपी सर्पोंके रहनेके लिए बिलस्वरूप इस लङ्का नगरीमें विपकी औपधि लाया है ॥२५॥ लक्ष्मीधरोंमें श्रेष्ठ एवं क्रोधसे युक्त लक्ष्मण सिंहके समान है और तुम लोग हाथियोंके तुल्य हो अतः रणके अग्रभागमें उसे

अर्णवाह धनुर्नस्य यस्यादित्यमुखा शरा । पद्मे भामण्डलो यस्य स कथं जीयते जनै ॥२७॥  
 ये तस्य प्रणतास्तुङ्गा खेचरागा महाधिपा । महेन्द्रा मलयार्तारा धीपर्वततनूरा ॥२८॥  
 किष्किन्वास्त्रिपुरा रत्नद्वीपवेलन्धरालका । कैलीकिला खतिलका सन्ध्याहा हेहयास्तथा ॥२९॥  
 प्राग्भारदधिवत्राश्व तथान्ये सुमहाबला । विद्याविभवसम्पन्नास्ते तु विद्याधरा न किम् ॥३०॥  
 एव प्रवदमान स क्रोधप्रेरितमानस । उल्हास रावण रत्नमुद्रतो हन्तुमुद्यतः ॥३१॥  
 तेनापि कोपवर्येण दृष्टान्तेनोपदेशने । उन्मूलित प्रचण्डेन स्तम्भो वज्रमयो महान् ॥३२॥  
 युद्धार्थमुद्रतात्रेती आतराबुप्रतेजसौ । सचिवैर्वारितौ कृच्छ्राद्रतो स्व स्व निवेशनम् ॥३३॥  
 कुम्भकर्णेन्द्रजिन्मुखैरैते प्रत्यापितस्तत । जगाद् रावणो विभ्रन्मानस पीरुपाशयम् ॥३४॥  
 आश्रयाश इव स्वस्य स्थानस्याहिततपर । दुरात्मा मत्पूरीतोऽप्य परिनि कामतु द्रुतम् ॥३५॥  
 अनर्थाद्यतचित्तेन स्थितेन किमिहामुना । स्वार्त्तेनापि न मे कृत्य प्रतिकूलप्रवृत्तिना ॥३६॥  
 तिष्ठन्तमिह मृत्युं चेदेतन्न न नयाम्यहम् । ततो रावण एवाहम् न भवामि विमशयम् ॥३७॥  
 श्रारत्नश्रवस पुत्र सोऽप्यह न भवामि किम् । इत्युक्त्वा निर्ययौ मार्ता लङ्कातोऽप्य विभीषण ॥३८॥  
 साम्राभिश्चोच्छ्राभि ३ शिराङ्गि परिवारित । अशौहिणाभिरक्षुको गन्तु पन्नस्य सध्रयम् ॥३९॥  
 विद्युद्घनेभवज्रेन्द्रप्रचण्डचपलाभिश्च । उद्रताशनिस्तङ्काता कालाद्याश्च महाबला ॥४०॥  
 शूरा परमसामन्ता विभीषणसमाश्रया । सान्त पुरा ससर्वेशा नानाशस्त्रविरामिता ॥४१॥

घेरनेके लिए तुम समर्थ नहीं हो ॥२६॥ जिसके पास सागरावर्त धनुष और आदित्यमुख वाग हैं तथा भामण्डल जिसके पक्षमे है वह तुम्हारे द्वारा कैसे जीता जा सकता है ? ॥२७॥ जो महेन्द्र, मलय, तीर, धीपर्वत, किष्किन्वा, त्रिपुर, रत्नद्वीप, वेलन्धर, अलका, कैलीकिल, गगनतिलक, संध्या, हेहय, प्राग्भार तथा दधिमुख आदिके बड़े बड़े अभिमानी राजा तथा विद्याविभवसे सम्पन्न अतिशय बलवान् अन्य नृपति उन्हें प्रणाम कर रहे हैं—उनसे जा मिले हैं, सो क्या वे विद्याधर नहीं हैं ॥२८-३०॥ इस प्रकार उच्च स्वरसे कहनेवाले विभीषणको मारनेके लिए उधर क्रोधसे भरा रावण तलवार उभार कर खड़ा हो गया ॥३१॥ और उधर उपदेश देनेके लिए जिसका दृष्टान्त किया जाता था ऐसे महाबलवान् विभीषणने भी क्रोधके वशीभूत हो एक वज्रमयी बड़ा स्तम्भा उखाड़ लिया ॥३२॥ युद्धके लिए उद्यत, उम तेजके धारक इन दोनों भाइयोंको मन्त्रियोंने बड़ी कठिनाईसे रोक । तदनन्तर रोके जाने पर वे अपने-अपने स्थान पर चले गये ॥३३॥

तत्परचात् कुम्भकर्ण, इन्द्रजित् आदि मुख्य-मुख्य आप्त जनोंने जिसे विरगास दिलाया था ऐसा रावण कठार चित्तको धारण करता हुआ बोला कि जो अग्निके समान अपने ही आश्रयका अहित करनेमें तत्पर है ऐसा यह दुष्ट शीघ्र ही मेरे नगरसे निकल जावे ॥३४ ३५॥ जिसका चित्त अनर्थ करनेमें उद्यत रहता है ऐसे इसके यहाँ रहनेसे क्या लाभ है ? मुझे तो विपरीत प्रवृत्ति करनेवाले अपने अङ्गसे भी कार्य नहीं है ॥३६॥ यहाँ रहते हुए इसे यदि मैं मृत्युको प्राप्त न कराऊँ तो मैं रावण हो नहीं कहलाऊँ ॥३७॥

अयानन्तर 'क्या मैं भी रत्नश्रवाका पुत्र नहीं हूँ' यह कहकर मानी विभीषण लङ्कासे निकल गया ॥३८॥ वह सुन्दर शस्त्रोंको धारण करनेवाली ब्रुद्ध अधिक तीस अशौहिणी सेनाआसे परिवृत्त हो रामके समीप जानेके लिए उद्यत हुआ ॥३९॥ विद्युद्घन, इभवज, इन्द्रप्रचण्ड, चपल, काल, महाकाल आदि जो बड़े बड़े शूरवीर सामन्त विभीषणके आश्रयमे रहनेवाले थे वे वयमय शस्त्र उभारकर अपने-अपने अन्त पुर और सारभूत श्रेष्ठ धन लेकर नाना शस्त्रोंसे सुशो-

वजन्तो बाहनैश्चिग्रैरुद्धादिवत्वा नभस्तलम् । परिच्छद्दसमायुक्ताः हंसद्वीपं समागताः ॥४२॥  
 द्वीपस्य तस्य पर्यन्ते सुमनोज्ञे ततस्तटे । ते सरिच्चुम्बिते तस्थुः सुरा नन्दीश्वरे यथा ॥४३॥  
 विभीषणागमे जाते जातो वानरिणां महान् । हिमागमे दरिद्राणामिवाक्म्पः समन्ततः ॥४४॥  
 समुद्रावर्तभृत्सूर्यहास लक्ष्मीभृद्दक्षत । वज्रावर्तं धनुः पद्मः परामृशदुदादरः ॥४५॥  
 अमन्त्रयन्त सम्भूय मन्त्रिणः स्वैरमाकुलाः । सिंहादिभूमिव प्रस्त वृन्दबन्धमगाद् बलम् ॥४६॥  
 युवा विभीषणेनाथ दण्डपाणिविचक्षणः । प्रेषितः पद्मनाथस्य सकाश मधुराक्षरः ॥४७॥  
 समायामुपविष्टोऽसौ कृतप्रणतिराहृतः । निजगादानुपूर्वेण विरोधं भ्रातृसम्भवम् ॥४८॥  
 इति चावेद्यन्नाथ तव पद्म विभीषणः । पादौ विज्ञापयत्येव धर्मकार्यसमुद्यतः ॥४९॥  
 भ्रान्त शरण भक्तः प्रतोऽहं श्रितवत्सल । आज्ञादानेन मे तस्मात्प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥५०॥  
 प्रदेशान्तरमेतस्मिन् प्रतोहारेण भाषिते । सन्मन्त्रो मन्त्रिभिः सार्द्धं पद्मस्यैवमजायत ॥५१॥  
 मतिकान्तोऽप्रवर्थापन्नं कदाचिच्छद्मनैपकं । प्रेषितः स्याद्दशास्येन विचित्रं हि नृपेहितम् ॥५२॥  
 परस्परविधाताद्वा कलुषत्वमुपागतम् । प्रसादं पुनरप्येति कुलं जलमिव ध्रुवम् ॥५३॥  
 ततो मतिसमुद्रेण जगदे मतिशालिना । विरोधो हि तयोर्जातः श्रूयते जनवन्त्रतः ॥५४॥  
 धर्मपक्षो महानीति शास्त्राश्चुञ्चालिताशयः । अनुग्रहपरो नित्यं श्रूयते हि विभीषणः ॥५५॥  
 सौन्दर्यकारणं नात्र कर्महेतुः पृथक् पृथक् । सतत तत्प्रभावेण स्थिता जगति चित्रता ॥५६॥

भित होते हुए चल पड़े ॥४०-४१॥ नाना प्रकारके वाहनोसे आकाशको आच्छादित कर अपने परिवारके साथ जाते हुए वे हंसद्वीपमें पहुँचे ॥४२॥ और नदियोंसे सुशोभित उस द्वीपके सुन्दर तट पर इस प्रकार ठहर गये जिस प्रकार कि देव नन्दीश्वर द्वीपमें ठहरते हैं ॥४३॥ जिस प्रकार शीतकालके आनेपर दक्खिने शरीरमें सब ओरसे कँपकँपी छूटने लगती है उसी प्रकार विभीषणका आगमन होते ही वानरोंके शरीरमें सब ओरसे कँपकँपी छूटने लगी ॥४४॥ सागरावर्त धनुषको धारण करनेवाले लक्ष्मणने सूर्यहास खड्गकी ओर देखा तथा उत्कृष्ट आदर धारण करनेवाले रामने वज्रावर्त धनुषका स्पर्श किया ॥४५॥ घबड़ाये हुए मन्त्रों एकत्रित हो इच्छानुसार मन्त्रणा करने लगे तथा जिस प्रकार सिंहसे भयभीत होकर हाथियोंकी सेना भुण्डके रूपमें एकत्रित हो जाती है उसी प्रकार वानरोंकी समस्त सेना भयभीत हो भुण्डके रूपमें एकत्रित होने लगी ॥४६॥

तदनन्तर विभीषणने अपना बुद्धिमान् एवं मधुरभाषी द्वारपाल रामके पास भेजा ॥४७॥ धुलाये जानेपर वह सभामें गया और प्रणाम कर बैठ गया । तदनन्तर उसने यथाक्रमसे दोनों भाइयोंके विरोधकी बात कही ॥४८॥ तत्पश्चात् यह कहा कि हे नाथ ! हे पद्म ! सदा धर्म कार्यमें उद्यत रहनेवाला विभीषण आपके चरणोंमें इस प्रकार निवेदन करता है कि हे आश्रितवत्सल ! मैं भक्तिसे युक्त हो आपकी शरणमें आया हूँ, सो आप आज्ञा देकर मुझे कृतकृत्य कीजिए ॥४९-५०॥ इस प्रकार जब द्वारपालने कहा तब रामके निकटस्थ मन्त्रियोंके साथ इस तरह उत्तम सलाह हुई ॥५१॥ मतिकान्त मन्त्रीने कहा कि कदाचित् रावणने छलसे इसे भेजा हो क्योंकि राजाओंकी चेष्टा विचित्र होती है ॥५२॥ अथवा परस्परके विरोधसे कलुषताको प्राप्त हुआ कुल, जलकी तरह निश्चित ही फिरसे प्रसाद ( पक्षमें स्वच्छता ) को प्राप्त हो जाता है ॥५३॥ तदनन्तर बुद्धिशाली मतिसागर नामक मन्त्रीने कहा कि लोगोंके मुखसे यह तो सुना है कि इन दोनों भाइयोंमें विरोध हो गया है ॥५४॥ सुना जाता है कि विभीषण धर्मका पक्ष ग्रहण करनेवाला है, महानीतिमान् है, शास्त्ररूपी जलसे उसका अभिप्राय धुला हुआ है और निरन्तर अनुग्रह-उपकार करनेमें तत्पर रहता है ॥५५॥ इसमें भाईपना कारण नहीं है किन्तु अपना पृथक्-पृथक् कर्म ही

प्रहृतेऽस्मिन् स्वमाप्याग भ्रुती कुट्टन नैषिक<sup>१</sup> । गिरिगोभूतिनामानावभूता वटुकीं चि<sup>२</sup> ॥५३॥  
 तस्मिन् सूर्यदेवस्य राजा नाज्ञा मतिप्रिया । अद्दाद् प्रतक ताभ्यामिदं मुष्टमभ्यान्दया ॥५४॥  
 भोदनच्छादिते हेमपूर्णं पृथुकपालिक । गिरि सुरगमालोक्य लामादितरगच्छिगा<sup>३</sup> ॥५५॥  
 अन्यथ खलु कौशान्या यणिगुनाम्ना वृहद्घन । तत्रार्यां कुट्टिन्द्राण्या तस्य पुत्री यभूवतु ॥५६॥  
 अहिदेवमहादेवी तीं मृते जनके गर्ता । मुषधनी पानपात्रेण तिमवच्छद्भायकीं ॥५७॥  
 सर्वमाण्डेन तीं रत्नमेकमानयता परम् । धस्य तत्रायन हस्ते स त्रिघासति होतरम् ॥५८॥  
 परस्परं च दुश्चिन्ता तीं विषेच सम गर्ता । मात्रे चानाय तद्वद विरागाभ्या समरितम् ॥५९॥  
 माता त्रिप्रेग तीं हन्तुर्मच्छद्दुषोऽमिता पुन । कौलिण्या तैर्विरक्तैश्चद्रव चिस क्रोडगिलत् ॥६०॥  
 आनायिऋहीतोऽमी विक्रातस्तद्गृहे पुन । ततस्तया स्वमा मस्य द्विदाना रत्नमेवत ॥६१॥  
 नातरं भ्रातरौ चैषा विष्यान्कन्तुं ततोऽन्यत् । लोभमाह्रभावेण स्नेहाद्य शममागत<sup>४</sup> ॥६२॥  
 प्राण्णा निरचूर्णं तद्वलु ज्ञातादृता परस्परम् । ससारभावनिविण्णा समन्तास्ते प्रववतु ॥६३॥  
 तस्माद्दृन्त्यादिलामेन भ्रात्रादीनामपि स्फुग्म् । ससारे नायते वैरं यानवन्तो न कारणम् ॥६४॥  
 दृश्यते वैरमेतस्मिन् नैवयोगान्पुन शम । गोभूति सोदरो लोभाद्विरिणा हत एव स ॥६५॥  
 तस्मात्प्रेषितदूतोऽय महाबुद्धिर्विर्भाषण । आनायता न योनायदृष्टा ताऽत्र परिरक्तु<sup>५</sup> ॥६६॥

कारण है। कर्मके प्रभावसे ही ससारमे यह विचित्रता स्थित है ॥५६॥ इस प्रकरणमें तुम एक कथा सुनो—नैषिक नामक ग्राममें गिरि और गोभूति नामक दो ब्राह्मणोंके बालक थे ॥५३॥ उमा ग्राममें राजा सूर्यदेवकी रानी मतिप्रियाने पुण्यकी इच्छासे एक व्रतके रूपमें उन दोनों बालकोंके लिए मिट्टीके बड़े-बड़े कपालोंमें स्नान करवा कर तथा ऊपरसे भात ढककर दान दिया। उन दोनों बालकोंमें से गिरि नामक बालकने देखा लिया कि इन कपालोंमें स्नान है तब उसने स्नानके लोभ से दूसरे बालकको मार डाला और उसका स्नान स्वयं ले लिया ॥५४-५६॥ दूसरी कथा यह है कि कौशान्धी नामा नगरीमें एक बृहद्घन नामका यणिक रहता था। कुट्टिन्द्रा उसकी स्त्रीका नाम था और उससे उसके अहिदेव और महोदेव नामके दो पुत्र हुए थे। जब उन पुत्रोंका पिता मर गया तब वे जहाजमें बैठकर कहीं गये। 'सूनेमें कोई धन चुरा न ले' इस भयसे वे अपना सारभूत धन साथ ले गये थे। यहाँ सब वर्तन आदि बेचकर वे एक उत्तम रत्न लाये। वह रत्न दोनों भाइयोंमें से जिसके हाथमें जाता था वह दूसरे भाईको मारनेका इच्छा करने लगता था ॥५७-५९॥ दोनों भाई अपने छोटे विचार एक दूसरेको बताकर साथ-ही-साथ घर आये और दोनोंने विरक्त होकर वह रत्न माताके लिए दे दिया ॥६०॥ माताने भी विष देकर पहले उन दोनों पुत्रोंको मारनेकी इच्छा की परन्तु पीछे चलकर वह धानकी प्राप्त हो गई। तदनन्तर माता और दोनों पुत्राने विरक्त होकर वह रत्न यमुना नदीमें फेंक दिया जिसे एक मच्छने निगल लिया ॥६१॥ उस मच्छको एक घोर पकड़ लाया जो इन्हीं तीनोंके घर बेचा गया। तदनन्तर इनकी बहिनने मच्छको काटते समय वह रत्न देखा ॥६२॥ सो लोभ और मोहके प्रभावसे वह माता तथा दोनों भाइयोंको विष देकर मारनेका इच्छा करने लगी, परन्तु स्नेहवशा पीछे शान्त होगई ॥६३॥ तदनन्तर परस्पर एक दूसरेका अभिप्राय जानकर उन्होंने उस रत्नको पत्थरसे चूर-चूरकर फेंक दिया और उसके बाद ससारका दशासे विरक्त हो सभी ने दीक्षा धारण कर ली ॥६४॥ इस कथासे यह स्पष्ट सिद्ध है कि द्रव्य आदिके लोभमें नाई आदिके बीच भी ससारमें वैर होता है इसमें यानि सम्बन्ध कारण नहीं है ॥६५॥ इस कथामें वैर दिव्याई तो दिया है परन्तु दैवयोगसे पुन शान्त हाता गया है और पूर्व कथामें गिरिने अपने सुने भाई गोभूतिको मार ही डाला है ॥६६॥ इसलिए दूत भेजनेवाले इन महाबुद्धिमान् विभी

ततो दण्डिनमाहूय अगुरेत्विति तेन च । राधा निवेदिते प्राप्नो पद्म रत्नश्रव सुत ॥७१॥  
 ऊचे विभीषणो नत्वा प्रभु खमिह जन्मनि । परत्र जितनाथश्च ममाय निश्चय प्रभो ॥७२॥  
 समये हि कृते तेन प्रोचे रामो विसशयम् । योजयामि त्वक लङ्का भव सन्देहवजित ॥७३॥  
 विभाषणसमायोगे वर्त्तते यावदुरसव । तावत्सिद्धमहाविद्य प्राप्त पुष्पवतीसुत ॥७४॥  
 प्रभामण्डलमायात विजयार्द्धखगाधिपम् । पद्माद्य पर दृष्ट्वा समानर्तुं प्रभाविणम् ॥७५॥  
 निर्वाहं दिवसानष्टौ नगरे हसनामनि । सम्यग्निश्चितकर्तव्या लङ्काभिमुखमवजन् ॥७६॥  
 स्यन्दनैर्विविधैर्यानि स्थूरापृष्टैर्मरुजवै । प्रावृषेण्यघनच्छ्वायैरनेकपकदम्बकै ॥७७॥  
 अनुरागोत्कटैर्भूयै वीरै सन्नाहभूषणै । ययु खेचरसामन्ता समन्ताञ्छुन्नपुष्करा ॥७८॥  
 अग्रप्रयाणकन्यस्ता प्रवीरा कपिकेतव । सङ्ग्रामधरणीं प्रापुस्तद्योग्यत्वमुदाहृतम् ॥७९॥  
 विंशतिर्योजनान्यस्या रुन्द्रतापरिकारित । आयामस्य तु नैवास्ति परिच्छेदो रणक्षिते ॥८०॥  
 नानायुधैर्विविधाना सहस्रैरुपलक्षिता । मृ युचक्रमणिश्चमेव ममवर्त्तत युद्धम् ॥८१॥  
 ततो नागार्ष्वसहाना दुन्दुभीना च नि स्वनम् । श्रत्वा हर्षं दशास्योऽगाचिरागैतरणोत्सव ॥८२॥  
 आज्ञादानेन चाशेषान् सामन्ताःसर्मन्नाभवत् । नहि ते वञ्चितस्तेन युद्धानन्देन जातुचित् ॥८३॥  
 भास्कराभाः पयोदाह्वा काञ्चना व्योम्बल्लभा । गन्धर्वगातनगरा कम्पना शिवमन्दिरा ॥८४॥

पणको बुलाया जाय । इसके विषममे योनि सम्बन्धी छटान्त स्पष्ट नहीं होता अर्थात् एक योनिसे उत्पन्न होनेमे कारण जिस प्रकार रावण दुष्ट है उसी प्रकार विभीषणको भी दुष्ट होना चाहिये यह बात नहीं है ॥७०॥

तदनन्तर द्वारपालको बुलाकर सवने कहा कि विभीषण आवे । तत्पश्चात् द्वारपालके द्वारा जाकर रावण दी जानेपर विभीषण रामके पास आया ॥७१॥ उसने आते ही प्रणामकर कहा कि हे प्रभो ! मेरा यह निश्चय है कि इस जन्ममें आप मेरे स्वामी हैं और पर जन्ममे भी श्री जिनेन्द्र देव ॥७२॥ जब विभीषण निरञ्जलताको शपथ कर चुका तब रामने सशय रहित होकर कहा कि तुम्हें लकाका राजा बनाऊँगा, सन्देह रहित होओ ॥७३॥ इधर विभीषणका समागम होनेसे जब तक उत्सव मनाया जा रहा था तब तक उधर अनेक महाविद्याओंको सिद्ध करनेवाला पुष्पवतीका पुत्र भामण्डल आ पहुँचा ॥७४॥ विजयार्धके अधिपति, परम प्रभावशाली भामण्डल को आया देख राम आदिने उसका अत्यधिक सन्मान किया ॥७५॥ तदनन्तर उस इस नामक नगरमे आठ दिन बित्ताकर और अपने कर्तव्यका अच्छी तरह निश्चितकर सवने लकाकी ओर प्रयाण किया ॥७६॥

अथानन्तर रथों, नाना प्रकारके वाहनों, वायुके समान वेगशाली घोडों, वर्षाकालीन मेवोंके समान कान्तिवाले हाथियोंके समूहा, अनुरागसे भरे भृत्यों और कवचरूपी आभूषणोंसे विभूषित घोर योद्धाओंके द्वारा जिन्होंने आकाशको सब ओरसे आच्छादित कर लिया था ऐसे विद्याधर राजा बड़े उत्साहसे आ रहे थे ॥७७-७८॥ वे सबके आगे चलनेवाले अत्यन्त वीर वानरवशी राजा युद्धकी भूमिमे सबसे पहले जा पहुँचे सो यह उनके लिये उचित ही था ॥७९॥ इस रणभूमिकी चौडाई बीस योजन थी और लम्बाईका कुछ परिमाण ही नहीं था ॥८०॥ नाना प्रकार शस्त्र और विविध चिह्नोंकी धारण करनेवाले हजारों योद्धाआसे सहित वह युद्धकी भूमि मृत्युके चक्ररत्नकी भूमिके समान जान पड़ती थी ॥८१॥ तदनन्तर जिसे चिरकाल बाद रणका उत्सव प्राप्त हुआ था ऐसा रावण हाथी, घोड़े, सिंह और दुन्दुभियोंका शब्द सुन परम हर्षको प्राप्त हुआ ॥८२॥ उसने आज्ञा देकर समस्त सामन्तोंका आदर किया सो ठीक ही है क्याकि उसने उन्हें युद्धके आनन्दसे कभी वंचित नहीं किया था ॥८३॥ सूर्याभपुर, मेघपुर;

सूर्योदयामृतमिदया शोभाभिहपुरामिधा । नृत्यगीतपुराण्मूर्च्छिचररसनमनका ॥२५॥  
 बहुनादा महाशैलाधकाढा सुरनपुरा । श्रामन्तो मलयानदा आगुडा श्रीमनोहरा ॥२६॥  
 रिपुनया शशित्याना मार्तण्डाभिरालका । ज्योतिर्दण्ड परिचोदा अक्षरसररावया ॥२७॥  
 एवमाद्या पुरामिदया महान्मेरुसाधिवा । सचिवैरन्विता प्रीता इशाननमुनागता ॥२८॥  
 अस्त्रवाहनमश्राइप्रभृतिप्रतिपत्तिभि । रावणोऽप्युच्यतेभूषात् सुप्रामा प्रिदशानिर ॥२९॥  
 अर्क्षीहिगामहृश्याणि चवारि प्रिकृत्तु प्रभो । स्वराकिर्नित प्रोक बलम्य प्रमित सुर्षे ॥३०॥  
 एकमर्क्षीहिर्गोना तु किष्किन्धनगरप्रभो । सहस्र माप्रनेक तु भामण्डलविभोरपि ॥३१॥  
 सुप्रव सचिवै साक तथा पुत्रवतामुत । आशुप परमाद्युर्ना तस्यनु<sup>१</sup> पदलक्ष्मणी ॥३२॥  
 अनेकगोप्रचरणा नानानाग्युनलक्षणा । नानागुणक्रियात्पयाता नानारब्दा नमरचरा ॥३३॥  
 पुण्यानुभावेन महानराणा भवति शशोरपि पाधिवा स्वा ।  
 कुपुष्यभात्रा तु चिर सुराणा<sup>१</sup> विनाशकाले परता भवते ॥३४॥  
 भ्राता ममाप सुहृदप वरयो ममैव वपु सुवद मदेनि ।  
 ससारवैचिभ्यविदा नरेण नैतन्मनीषारविणा विचिन्वया ॥३५॥

इत्यार्षे रविपेणाचार्यश्लोके पद्मपुराणे विभीषणमहागनामिधान नाम पञ्चपञ्चाशत्तम पर्व ॥३५॥

काञ्चनपुर, गगनवल्लभपुर, गन्धर्व गीतनगर, कपनपुर, शिवमन्दिरपुर, सूर्योदयपुर, अमृतपुर, शोभापुर, सिंहपुर, नृत्यगीतपुर, लक्ष्मीगातपुर, किररगीतपुर, बहुनादपुर, महाशैलपुर, चक्रपुर, सुवपुर, श्रीमन्तपुर, मलयानन्दपुर, आशुहापुर, श्रीमनोहरपुर, रिपुनयपुर, शशित्यानपुर, मार्तण्डाभपुर, विरालपुर, ज्योतिर्दण्डपुर, परिचोदपुर, अरजपुर, रत्नपुर और परानयपुर आदि अनेक नगराके बडे बडे विद्याधर राजा, प्रसन्न हो, अपने-अपने मन्त्रियाडे साथ राजणके समाप आ गये ॥२४-२८॥ रावणने अस्त्र, वाहन तथा कवच आदि देकर उन सत्र राजाआका षस तरह सन्मान किया जिस तरह कि इन्द्र देवोका सन्मान करता है ॥२६॥ विद्वानोंने राजकी सेनाका प्रमाण चार हजार अक्षौहिणा दल उतलाया है । उनका यह दल अपनी सामर्थ्यसे परिपूर्ण था ॥३०॥ किष्किन्धनगर के राजा सुभीषकी सेनाका प्रमाण एक हजार अक्षौहिणी और भामण्डलकी सेनाका प्रमाण कुछ अधिक एक हजार अक्षौहिणी दल था ॥३१॥ परम नयोगी सदा साजधान रहनेवाले सुभीष और भामण्डल, अपने-अपने मन्त्रियोंके साथ सदा राम लक्ष्मणके समीप रहते थे ॥३२॥ उम समय युद्ध भूमिमे नानाश, नानाजातियो, नानागुण तथा नानाक्रियाआसे प्रसिद्ध एत्र नानाप्रकारके श दाका उच्चारण करनेवाले विद्याधर एकत्रित हुए थे ॥३३॥ गीतमन्त्रामा कहने हैं कि हे राजन् ! पुण्यके प्रभावसे महापुण्यके शत्रु राजा भी आत्मीय हो जाते हैं और पुण्यहीन मनुष्योंके चिरकालीन मित्र भी विनाश के समय पर हो जाते हैं ॥३४॥ यह मेरा भाई है, यह मेरा मित्र है, यह मेरे आधीन है, यह मेरा पन्धु है और यह मेरा सदा सुख देनेवाला है, इस प्रकार बुद्धिरूपी सूर्यसे सहित तथा ससारका विचित्रताको जाननेवाले मनुष्यको कभी नहीं विचारना चाहिए ॥३५॥

इस प्रकार आर्य नामसे प्रसिद्ध रविपेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमे विभीषणके समागमका वर्णन करनेवाला पञ्चपनवौ पर्व पूर्ण हुआ ॥३५॥

## पट्टपञ्चाशत्तमं पर्व

मगधेन्द्रस्ततोऽपृच्छत् पुनरेव गणेश्वरम् । अक्षोहिण्या प्रमाण मे वक्तुमर्हसि सन्मुने ॥१॥  
 शक्रभूतिरथागादाच्छणु श्रेणिक पार्थिव । अक्षोहिण्या प्रमाण ते सक्षेपेण वदाम्यहम् ॥२॥  
 अष्टाविमे गता रथाति प्रकारा गणनाकृता । चतुर्णां भेदमद्भाना कीर्त्यमान विशोध्यताम् ॥३॥  
 पत्ति प्रथमभेदोऽत्र तथा सेना प्रकीर्तिता । सेनामुख ततो गुल्म वाहिना पृतना चम् ॥४॥  
 अष्टमोऽनाकनासज्ञस्तत्र भेदो बुधै स्मृत । यथा भवन्त्यमी भेदास्तथेदानीं वदामि ते ॥५॥  
 एको रथो गजश्रैकस्तथा पञ्च पदातय । त्रयस्तुरङ्गमा सैपा पत्तिरित्यभिधायते ॥६॥  
 पत्तिस्त्रिगुणिता सेना तिष्ठ सेनामुख च ता । सेनामुखानि च त्राणि गुल्ममिचनुकीर्त्यते ॥७॥  
 वाहिना त्राणि गुल्मानि पृतना वाहिनात्रयम् । चमूच्छिपृतना ज्ञेया चमूरधमनीकिनी ॥८॥  
 अनाकिन्यो दश प्रोक्ता प्राज्ञैरक्षोहिणाति सा । तत्राद्भाना पृथक् सत्या चतुर्णां कथयामि ते ॥९॥  
 अक्षोहिण्या प्रकाश्यानि रथाना सूर्यवर्चसाम् । एकविंशतिसङ्ख्यानि सहस्राणि विचक्षणै ॥१०॥  
 अष्टौ शतानि सत्या सहितान्यपराणि च । गजाना कथित ज्ञेय सङ्ख्यायान रथसङ्ख्यायाम् ॥११॥  
 एकलक्ष सहस्राणि नव, पञ्चाशदन्वितम् । शतत्रय च विज्ञेयमक्षोहिण्या पदातय ॥१२॥  
 पञ्चपष्टिसहस्राणि पञ्चशता च दशोत्तरा । अक्षोहिण्यामिय सङ्ख्या वाजिना परिकीर्तिता ॥१३॥  
 एव मत्पयवलोपेत विज्ञायापि दशाननम् । बल कैष्किन्धमभ्यार त भयेन विवञ्जितम् ॥१४॥  
 तस्मिन्नासत्रता प्राप्ते पद्मनाभप्रभोरले । जनानामिचभूद्वर्णाणां नानापक्षगतामनाम् ॥१५॥

अथानन्तर मगधपति राजा श्रेणिकने गौतम गणधरसे इस प्रकार पूछा कि हे सन्मुने ! मेरे लिए अक्षोहिणीका प्रमाण कहिए ॥१॥ इसके उत्तरमे इन्द्रभूति—गौतम गणधरने कहा कि हे राजन् श्रेणिक ! सुन, मैं तेरे लिए सक्षेपसे अक्षोहिणीका प्रमाण कहता हूँ ॥२॥ हाथी, घोड़ा, रथ और पयादे ये सेनाके चार अङ्ग कहे गये हैं । इनकी गणना करने के लिए नाचे लिखे आठ भेद प्रसिद्ध हैं ॥३॥ प्रथम भेद पत्ति, दूसरा सेना, तीसरा सेनामुख, चौथा गुल्म, पाँचवाँ वाहिनी, छठवाँ पृतना, सातवाँ चमू और आठवाँ अनीकिनी । अब उक्त चार अङ्गमे ये जिस प्रकार होते हैं उनका कथन करता हूँ ॥४-५॥ जिसमें एक रथ, एक हाथी, पाँच पयादे और तीन घोड़े होते हैं वह पत्ति कहलाता है ॥६॥ तीन पत्तिकी एक सेना होती है, तीन सेनाओंका एक सेनामुख होता है, तीन सेनामुखाका एक गुल्म कहलाता है ॥७॥ तीन गुल्मोंकी एक वाहिनी होती है, तीन वाहिनियाका एक पृतना होती है, तीन पृतनाओंकी एक चमू होती है और तीन चमूकी एक अनीकिनी होती है ॥८॥ विद्वानोंने दस अनीकिनाकी एक अक्षोहिणी कही है । हे श्रेणिक ! अब मैं तेरे लिए अक्षोहिणीके चार अङ्गोंकी पृथक् पृथक् सख्या कहता हूँ ॥९॥ विद्वानों ने एक अक्षोहिणीमे सूर्यके समान देदीप्यमान रथोंकी सख्या इक्कीस हजार आठसौ सत्तर बतलाई है । हाथियाकी सख्या रथोंकी सख्याके समान जानना चाहिये ॥१०-११॥ पदाति एक लाख नौ हजार तीनसौ पचास होते हैं और घोड़ोंकी सख्या पैंसठ हजार छह सौ दस कहा गई है ॥१२-१४॥ इस प्रकार चार हजार अक्षोहिणी राजणके पास थीं । सो इस प्रकारकी सेना से सहित रावणने अतिशय बलवान् जानकर भा किष्किन्धपति—सुग्रीवकी सेना निर्भय होकर रावण के सन्मुख चली ॥१४॥ जय रामकी सेना निकट आई तब नाना पक्षमें विभक्त लोगाम इस प्रकारकी चर्चा होने लगी ॥१५॥



परयताम्बरयानोद्दुगणेश शास्त्रधीकर । दशास्यचन्द्रमारुद्ग्न परस्त्रीच्छायालाहकै ॥१६॥  
 अष्टादश सहस्राणि पत्नीनां यस्य सुनिपात् । सीताया परस्यतैकस्या कृते त शोकशाल्यितम् ॥१७॥  
 रक्षसा वानराणा च कस्य नाम क्षयो भवेत् । एव बभूव सन्देह सैन्यद्वितययनिनाम् ॥१८॥  
 बलेऽस्मिन्मारुदशायो मारुतिनां भोषण । विस्फुरन्दीर्घैतिग्माशु सूर्यतुल्योऽत्र शनजित् ॥१९॥  
 सागरोदारमयुग्म साक्षादितियलोपमम्<sup>१</sup> । साऽत्र रावणस्येति नरा केचिद् वभाषिरे ॥२०॥  
 अन्तर वित्यशूरस्याशूरस्य च न जातचित् । न त ज्ञातमतिप्रान्त कि न वो धीरबोधतम् ॥२१॥  
 यद्ब्रूत दण्डकारण्यस्य वनस्य महतोऽतरे । अत्यन्तदारुण युद्ध लक्ष्मणस्य महात्मनः ॥२२॥  
 चन्द्रोदरसुत प्राप्य तुल्य स्वाङ्गेन केवलम् । मृत्योरातिथ्यमानीतो येनासौ खरकूपण ॥२३॥  
 अतिप्रकटवीर्यस्य लक्ष्मानिलयवचस । भवता तस्य न ज्ञात कि वा चलमनुत्तमम् ॥२४॥  
 एतेन वायुयुगेण निर्भर्यं मयमभवात् । रामपरनीं समाश्रवाय परार्थासक्तचित्ना ॥२५॥  
 रावणस्य महासैन्य विजित्यात्यन्तदारुणम् । लङ्कापुरी परिध्वस्ता भग्नप्राकारतोरेणा ॥२६॥  
 एव विदिततत्त्वाना स्फुट वचसि निर्गते । जगाद् प्रहसन् चाप्य सुवचन गवनिर्भर ॥२७॥  
 गोप्यदप्रमित वयैतद्व्यल वानरलक्ष्मणाम् । क्व चैतसागरोदार सैन्य त्रैदृष्टमुद्धतम् ॥२८॥  
 इन्द्रेण साधितो यो न पतिविद्याभूतामयम् । एवस्य चापिन साध्वो रावण सजायते ॥२९॥  
 सर्वतेजस्विभूर्धान विभोरस्यागितिष्ठन । श्रोतु नामापि क शक्यश्चेतनध्वजपतिन ॥३०॥

कोई कहता था कि देवो जो विद्याधररूपी नक्षत्रोके समूहका स्वामी है और जो शास्त्र ज्ञानरूपी किरणोंसे सहित है ऐसा यह रावणरूपी चन्द्रमा परनारीकी इच्छारूपी मेधासे आच्छादित हो रहा है ॥१६॥ जिसकी उत्तम कान्तिको धारण करने वाली अठारह हजार स्त्रियाँ हैं वह एक सीताके लिए देवो शोकसे शल्य युक्त हो रहा है ॥१७॥ देवो राक्षसी और वानरामसे किसका क्षय होता है ? इस प्रकार दोना सेनाओंके लोगोंको सन्देह हो रहा था ॥१८॥ उधर वानरोंकी सेनाम कामदेवके समान जो हनुमाग् है वह अत्यन्त भयकर है, उसका शौर्यरूपी सूर्य अतिशय देवीप्यमान हो रहा है और इधर राक्षसोंकी सेनामे इन्द्रजित् सूर्यके समान है ॥१९॥ कोई कह रहे थे कि रावणकी यह सेना समुद्रके समान विशाल, अत्यन्त उग्र तथा साक्षात् देवियोंकी सेनाके समान है ॥२०॥ क्या तुम कभी शूर वीर और अशूर-वीरका अन्तर नहीं जानते ? क्या तुम्हें पिछली बात याद नहीं है ? और क्या तुम सबको धीर-वीर मनुष्यकी पहिचान नहीं है ? ॥२१॥ कोई कह रहे थे कि विशाल दण्डकवनके मध्यमे महाउलवान् लक्ष्मणका जो युद्ध हुआ था और उसमे केवल अपने शरीरके तुल्य चन्द्रोदरके पुत्र—विराधितको पाकर उसने सर दूषणमें यमका अतिथि घना दिया था । इस प्रकार अत्यन्त प्रकट पराक्रमके धारक लक्ष्मणका उत्कृष्ट चल क्या आपलोगोंको विदित नहीं है ? ॥२२-२४॥ कोई कह रहा था कि उस समय परहितमे लगे हुए अनेके हनुमान्ने मन्दोदरीकी डाँटकर तथा सीताने सान्त्वना देकर रावणकी अत्यन्त उग्र सेना जीत ली थी तथा जिसके कोट और तोरण तोड़ दिये गये थे ऐसी लङ्काको ज्ञत विजित कर दिया था ॥२५-२६॥

इस प्रकार तत्पुत्र मनुष्योंके स्पष्ट वचन निश्चलने पर गर्वसे भरा समुग्र राक्षस हँसता हुआ निम्न प्रकारके वचन बोला ॥२७॥ वह कहने लगा कि वानर चिह्नको धारण करने वाले वानरवशिष्याकी यह गोरुरके समान तुच्छ सेना कहीं ? और यह त्रिशूलासियोंकी समुद्रके समान विशाल एव उत्कट सेना कहीं ? ॥२८॥ जो विद्याधराका अधिपति रावण इन्द्रके द्वारा भी धरामे नहीं किया जा सका वह एक धनुर्धारीके वश कैसे हो सकता है ? ॥२९॥ जो समस्त

सुर्पावरमुजो वारो दुर्द्धरस्त्रिदशैरपि । भुवने कस्य न ज्ञातः कुम्भकर्णो महाबलः ॥३१॥  
 यस्त्रिशूलधरः सदृश्ये कालाग्निरिव दीप्यते । सोऽयं विजीयते केन जगदुत्कटविक्रमः ॥३२॥  
 यस्यातपत्रमालोक्य शरदिन्दुमिवोद्गतम् । शत्रुसैन्यतमोऽध्वंसमुपयाति समन्ततः ॥३३॥  
 उदात्ततेजसस्तस्य स्थातु यस्याभ्रतोऽपि कः । समर्थः पुरुषो लोके निजजीवितनिस्पृहः ॥३४॥  
 इति बहुविधवाचां द्वेपरागाश्रितानां प्रकटितनिजचितप्रार्थनासङ्कटानाम् ।  
 द्वितयबलजनानां दृष्टमानाक्रियाणाम् अजनि जनितशक्नो भावमार्गो विचित्रः ॥३५॥  
 चरितजननकालाऽभ्यस्तरागोतराणां भवमपरमिर्तानामप्यय चित्तमार्गः ।  
 भवति खलु तथैव व्यक्तमेतं हि लोक स्वचरितरविरेव प्रेरयत्यात्मकार्ये ॥३६॥

इत्यार्षे रविपेशाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे—उभयबलप्रमाणविधान नाम षट्पञ्चाशत्तमं पर्व ॥५६॥

तेजस्वी मनुष्योंके मस्तकपर अधिष्ठित है अर्थात् समस्त प्रतापी मनुष्योंमें श्रेष्ठ है ऐसे ( अर्थ )  
 चन्द्रवर्ती रावणका नाम भी सुननेके लिए कौन समर्थ है ? ॥३०॥ जिसकी भुजाएँ अत्यन्त स्थूल  
 हैं एवं जो देवोंके द्वारा भी दुर्धर है—रोका नहीं जा सकता ऐसे महाबलवान् कुम्भकर्णको कौन  
 नहीं जानता ? ॥३१॥ जो त्रिशूलका धारक, युद्धमें प्रलयकालकी अग्निके समान देदीप्यमान होता  
 है तथा जिसका पराक्रम संसारमें सबसे अधिक है ऐसा यह कुम्भकर्ण किसके द्वारा जीता जा  
 सकता है ? ॥३२॥ उदित हुए शरत्कालीन चन्द्रमाके समान जिसका छत्र देखकर शत्रुओंकी  
 सेनारूपी अन्धकार सब ओरसे नष्ट हो जाता है उस प्रबल पराक्रमी कुम्भकर्णके सामने संसारमें  
 ऐसा कौन समर्थ मनुष्य है जो अपने जीवनसे निःस्पृह हो खड़ा होनेके लिए भी समर्थ हो  
 ॥३३-३४॥ इस प्रकार जो नाना भौतिके वचन बोल रहे थे, जो राग और द्वेषके आधार थे,  
 जिन्होंने अपने मनोगत विचारोंके संकट प्रकट किये थे, तथा जिनकी नाना प्रकारकी क्रियाएँ  
 देखी गई थीं । ऐसे उभयपक्षके लोगोंकी विचारधारा विचित्र एवं शङ्काको उत्पन्न करनेवाली  
 हुई थी ॥३५॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि जो मनुष्य संयम उत्पत्तिके योग्य समयमें भी रागी,  
 द्वेषी बने रहते हैं अन्य भवमें पहुँच जानेपर भी उनका मनोमार्ग वास्तवमें वैसा ही रहा आता  
 है—राग द्वेषका अभ्यासी बना रहता है सो उचित ही है क्योंकि मनुष्यका अपना चारित्ररूपी  
 सूर्य ही उसे आत्म-कार्यमें प्रेरित करता रहता है ॥३६॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध रविपेशाचार्य कथित पद्मपुराणमें राम और रावणकी  
 सेनाओंके प्रयाणका कथन करनेवाला छपनवों पर्व समाप्त हुआ ॥५६॥

## सप्तपञ्चाशत्तमं पर्व

परमैव्यसमारलेयममृष्यन्तोऽथ मानवा । उद्गच्छद्दर्पमन्धोऽप्या दृष्टा गगनध्रुमुपता ॥१॥  
 उद्वेष्टेय दयिताग्राहुपाश कृच्छ्रेण कंचन । मधुग्य मिहमद्वाशा लङ्कानो नियंतुमंग ॥२॥  
 वीरपत्नी प्रिय काचिदालिग्यैवमभापत । धृतानेकमहोयोधपरमाहवभिर्भ्रमा ॥३॥  
 सद्ग्रामे विषत पृष्टे यदि नायागमिष्यमि । दुर्गशस्तद्वद् प्रागान् मोक्षयामि धुतिमात्रत ॥४॥  
 किङ्कराणामत पान्यो वारागामंतिगविता । धिक्शब्द मे प्रदान्यन्ति कि नु कण्ठम परम् ॥५॥  
 रणप्रत्यागत धीरसुरोद्योगविभूषणम् । विशीर्णकवच प्राप्तत्रयलक्ष्यमग्नवम् ॥६॥  
 द्रक्षयामि यदि धन्याह भ्रन्तमविकथनम् । जिनेद्भानर्चिष्यामि सता जाम्बूनदागुनै ॥७॥  
 आभिसुख्यगत मृधु वर प्राप्ता महाभाग । पराङ्मुग्या न जीवन्तो धिक्शब्दमलिनाङ्गना ॥८॥  
 स्तनद्वयसमुर्पीड काचिदालिग्य मानवम् । जगाद् पुनरेव सा प्रदीप्यामि जवान्वितम् ॥९॥  
 भवद्द्रवस्थलस्थानरत्नचन्दनचर्चया । परां स्तनद्वय शोभां मम यास्यति सर्वथा ॥१०॥  
 प्रातिवेशिमक्रयोधानामपि पत्नीं त्रितप्रियाम् । न सहे कुत पृथेरा महिष्ये त्वा विनिनितम् ॥११॥  
 काचिन्नगाद ते नाथ हताश व्रगभूषणम् । पुराण रुढक जात ततो नैवातिशोभम ॥१२॥  
 अतो नवमग्न्यस्तस्तनमण्डलसीत्यदम् । द्रक्ष्येऽह वारपत्नाभिविकामिमुष्यपङ्कजा ॥१३॥

अथानन्तर परचक्रके आक्रमणको नहीं सहन करनेवाले मनुष्य नठते हुए अहंकारसे लुभित हो हर्ष पूर्वक कच आत्रिक धारण करनेके लिए उद्यत हुए ॥१॥ तिहकी समानता करनेवाले कितने ही शूर-वीर योद्धा गलेमें पड़े हुए प्राणरत्नभाके बाहुपाशको बची कठिनाईसे दूरकर लुभित हो लङ्कासे बाहर निकल आये ॥२॥ जिसने महायुद्धमें अनेक बड़े-बड़े योद्धाओंकी चेष्टाओंका वर्णन सुन रक्त्वा था, ऐसी किसी वीरपत्नाने पतिका आलिङ्गनकर इस प्रकार कहा कि ॥३॥ हे नाथ ! यदि सप्राणमें पायल होकर पीछे आओगे तो बड़ा अपयश होगा और उसके सुनने मात्रसे ही मैं प्राण छोड़ दूँगी ॥४॥ क्याकि ऐसा होनेसे वीर किङ्कराका गर्जली पत्रियाँ मुझे धिक्कार देंगी । इससे बढकर कष्टकी बात और क्या होगी ? ॥५॥ तिनके वक्षस्थलमें घाव आभूषणके समान सुशोभित हैं, तिनका कच टूट गया है, प्राप्त हुई विजयमें योद्धागण जिनकी स्तुति कर रहे हैं, जो अतिशय धीर हैं तथा गम्भारताके कारण जो अपनी प्रशाना स्वयं नहीं कर रहे हैं ऐसे आपको युद्धसे लौटा हुआ यदि देखूँगी तो मैं सुवर्णमय कमलोंसे जिनेन्द्रदेवका पूजा करूँगी ॥६-७॥ महायोद्धाओंका सम्मुखगत मृत्युको प्राप्त हो जाना अच्छा है किन्तु पराङ्मुखको धिक्कार शब्दसे मलिन जीवन त्रिताना अच्छा नहीं है ॥८॥ कोई स्त्री दोना स्वनोंसे पतिका आलिङ्गनकर बोली कि जब आप विजयी हो लौटकर आवेंगे तब फिर ऐसा ही आलिङ्गन करूँगी ॥९॥ आपके वक्षस्थलके गाँठे गाँठे रक्तरूपी चन्दनोंकी चर्चासे मेरे दोना स्तन सब प्रकारसे परम शोभाको प्राप्त हूँगे ॥१०॥ हे स्वामिन् ! जिसका पति हार जाना है ऐसी पड़ोसी योद्धाओंका पत्नाकी भी मैं सहन नहीं करती फिर हारे हुए आपको किस प्रकार सहन करूँगी ? ॥११॥ कोई स्त्री बोली कि हे नाथ ! आपका यह अभाग्य पुराना घावरूपी आभूषण रुढ हो गया है—पुरकर सूख गया है, इसलिए आप अधिक सुशोभित नहीं हो रहे हैं ॥१२॥ अत्र नूतन घावपर रचे हुए स्तनमण्डलको सुख पहुँचानेवाले आपको जब देखूँगा ता मेरा

काचिदूचे यथैतत्ते वदनं सुभित्तमया । तथा<sup>१</sup> वसति सञ्जातं सुमित्रव्यामि व्रगाननम् ॥१४॥  
 अनतिप्रौढिका काचिद्दूरभिमबोढिका । सप्रामे प्रोचते नाथे प्रौढत्व ससुपागतम् ॥१५॥  
 चिराय रक्षितं मानं काचिन्नाथे रणोन्मुखे । तयाजैकपदे कान्ता काम्तसरलेपतपरा ॥१६॥  
<sup>२</sup>अवितृप्त भटा काचिन्नर्तुपत्रासवपपौ । तथापि मदनप्राप्ता रणयोग्यमशिञ्जयत् ॥१७॥  
 काचिदुत्तानितं<sup>४</sup> भर्तुर्वेदनं वनजेष्टगम् । नैमिपोऽभक्तमद्राणात् सुचिरं कृतचुम्बना ॥१८॥  
 काचिद्वक्षस्तदे भर्तुं करजत्रणमुज्ज्वलम् । भविष्यच्छुद्धपातस्य सत्यङ्कारमिवापयत् ॥१९॥  
 इति सञ्जातचेष्टासु दयिता यु यथायथम् । भटानामित्यभूद्वाणी महासप्रामशालिनाम् ॥२०॥  
 नरास्ते दयिते श्लाघ्या ये गता रणमस्तकम् । त्यजन्यभिमुखा जीव शत्रूणा लब्धकीर्तय ॥२१॥  
 उद्भिन्नवन्तिदन्ताप्रदोलादुल्लङ्घितभटा । कुर्वन्ति न विना पुण्यै शत्रुभिर्घोषितस्तवा ॥२२॥  
 गजदन्ताग्रभिन्नस्य कुम्भदारणकारिण । यसुखं नरसिंहस्य तत् कथयितुं क्षम ॥२३॥  
 तस्त शरणमायात् दत्तपृष्ठं च्युतायुधम् । परित्यज्य पतिष्णामो दयिते शत्रुमस्तके ॥२४॥  
 भवत्या वान्द्वित कृत्रा प्रत्यागय रणाजिरात् । प्रार्थयिष्ये समारलेपं भवन्तीं तोपकारिणीम्<sup>५</sup> ॥२५॥  
 पृवमादिभिरालापं परिसान्ध्यं निजप्रिया । धीरा निर्गन्तुमुद्युक्तां सङ्घयसौरयससुसुका ॥२६॥

मुखकमल खिल उठेगा और वीर पत्त्रियों सुभे वडे गौरवसे देखेगी ॥१३॥ कोई स्त्री बोली कि मैंने जिस प्रकार आपके इस मुखका चुम्बन किया है उसी प्रकार वत्सस्थल पर उत्पन्न हुए घायके मुखका चुम्बन करूँगी ॥१४॥ कोई नवविवाहिता स्त्री यद्यपि अधिक प्रौढ नहीं थी तथापि पतिके युद्धके लिए उद्यत होनेपर वह प्रौढताको प्राप्त हो गई ॥१५॥ कोई स्त्री चिरकालसे मानकी रक्षा करता बेठी थी परन्तु जब पति युद्धके सन्मुख हो गया तब उसने सब मान एक साथ छोड़ दिया और पतिका आलिङ्गन करनेमें तत्पर हो गई ॥१६॥ यद्यपि किसी योद्धाकी स्त्री पतिके मुखकी मदिरा पीता पीती तृप्त नहीं हुई थी तथापि कामाकुलित हो उसने पतिके लिए रणके योग्य शिक्षा दी थी ॥१७॥ कोई कमललोचना स्त्री पतिके ऊपर उठायें हुए मुखको टिमकार रहित नेत्रसे चिरकाल तक देखती रही और उसका चुम्बन करती रही ॥१८॥ किसी स्त्रीने पतिके वत्सस्थलपर नखका उज्ज्वल धाव बना दिया मानो आगे चलकर जो शस्त्रपात होगा उसका ब्याना ही दे दिया था ॥१९॥ इस प्रकार जब स्त्रियोंमें नाना प्रकारकी चेष्टाएँ हो रही थीं तब महायुद्धसे सुशोभित योद्धाभाकी इस प्रकार वाणी प्रकट हुई ॥२०॥ कोई बोला कि हे प्रिये ! ये मनुष्य प्रशसनीय हैं जो रणाग्रभागमें जाकर शत्रुओंके सन्मुख प्राण छोड़ते हैं तथा सुवरा प्राप्त करते हैं ॥२१॥ शत्रु भी जिनका विरद बखान रहे हैं, ऐसे योद्धा पुण्यके विना भद्रीनच हाथियोंके दौतोंके अग्रभागसे मूला नहीं मूल सकते ॥२२॥ हाथीदौतके अग्रभागसे विदीर्ण तथा हाथीके गण्डस्थलको विदीर्ण करनेवाले श्रेष्ठ मनुष्यको जो सुख होता है उसे कहनेके लिए कौन समर्थ है ? ॥२३॥ कोई कहने लगा कि हे प्रिये ! मैं भयभीत, शरणागत, पीठ दिखानेवाले एव शस्त्र डाल देनेवाले पुरुषको छोड़ शत्रुके मस्तकपर दूट पड़ूँगा ॥२४॥ कोई कहने लगा कि मैं आपकी अभिलाषा पूर्णकर तथा रणाङ्गसे लौटकर जब आपको सन्तुष्ट कर दूँगा तभी आपसे आलिङ्गनकी प्रार्थना करूँगा ॥२५॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि इस प्रकारके वार्तालापसे अपना प्राणवत्त्वभाओंको सान्त्वना देकर युद्धसम्बन्धी सुख प्राप्त करनेमें उत्सुक वीर मनुष्य घरासे बाहर निकलनेके लिए उद्यत हुए ॥२६॥ किसीका पति हाथमें शस्त्र लेकर जब जाने लगा तब वह उसके गलेमें दोनो भुजाएँ डालकर ऐसी मूल गई मानो किसी गजराजके गलेमें कमलिना हा

१ यथा म० । २ अवितृप्तभृगी म० । ३. मदन प्राप्ता म० । ४ दुत्तानितु म० । ५ प्रापकिये म० ।  
 ६ तोपकारिणीम् ज० । ७ सत्ये ज० ।

धियातोः शस्त्रहस्तस्य कण्ठार्पितमुजद्वया । काचिद्दोलायनं चक्रे गजेन्द्रस्येव पद्मिनी ॥२७॥  
 काचिसघाहरेदस्य पयुर्देहस्य सन्नमम् । अत्राप्य परमं प्राप्ता पीडामद्भुतमपि भिता ॥२८॥  
 अर्द्धबाहुलिकां दृष्ट्वा काचिन्कान्तस्य वचसि । ईर्ष्यांसेन सस्पृष्टा किञ्चिदुच्चित्तलोचना ॥२९॥  
 अर्द्धसन्नाहनामायं मया परिहिता प्रिये । इति पुशद्दयोगेन पुनस्तोपमुपागता ॥३०॥  
 ताम्बूलप्रार्थनव्यङ्गात् काचिन् प्राप्य प्रियाधरम् । अमुञ्चन् सुखिनीं कृच्छ्रात् कृत्वा मगविभूषितम् ॥३१॥  
 काचिन्नित्यर्थमानापि प्रियेण रणकाञ्चिणा । सन्नाहकण्ठसूत्रस्य बन्धव्याजेन गच्छति ॥३२॥  
 एकतो दयितादृष्टिरन्यतः त्वयनिस्वनः । इति हेतुद्वयाद्दोलामारुढं भटमानसम् ॥३३॥  
 स्त्रीणां परिहरन्तीनां वाष्पपातमगद्गलम् । सत्यामपि दिदृक्षायां निमेषो नाभवत् दशाम् ॥३४॥  
 अगृह्णावैन सन्नाहं केचित् त्वरितमानसाः । ययालब्धवामुर्धं योधा निययुर्दृग्शतलिनाः ॥३५॥  
 रणसज्जाततोपेण शरीरे पुष्टिमागते । कस्यचिद् रणसौन्दर्यस्य वर्नं माति स्म नो निजम् ॥३६॥  
 श्रुत्वा परचमूर्त्यस्वन कश्चिद् भटोत्तमः । चिररुद्धैर्मणैः रक्तं मुमोचोद्वासविप्रदः ॥३७॥  
 पिनद्धं कस्यचिद् धर्मं सुदृढं तोपहारिणः । धर्द्धमानं ततः शशां पुराण कक्यायितम् ॥३८॥  
 विश्रब्धं कस्यचिन्नाया समाधानपरायणा । सारयन्ती मुहुस्तस्यो शिरस्त्राणं सुभाषिता ॥३९॥  
 प्रियापरिमलं कश्चिद्विमानार्नः स्ववचसः । कञ्चट प्रति नी चक्रे मनः सद्ब्राम्मणलालसः ॥४०॥  
 एष विनिर्गता योधाः कृच्छ्रतः सान्निवतप्रियाः । आकुर्लीभूतचित्ताश्च शयनोयेषु ताः स्थिताः ॥४१॥

मूल रही हो ॥२७॥ किसी स्त्रीके पतिने कवच पहिन रखना था इसलिए उसके शरीरका संगम न प्राप्त होनेसे वह गोदमें स्थित होनेपर भी परम पीड़ाको प्राप्त हो रही थी ॥२८॥ कोई एक स्त्री पतिके वचःस्थलपर अर्द्धबाहुलिका देव ईर्ष्यासे भर गई तथा उसके नेत्र बुद्ध-बुद्ध संकुचित हो गये ॥२९॥ उसे अप्रसन्न जान पतिने कहा कि हे प्रिये ! यह आधा कवच मैंने पहिना है । इस प्रकार पतिके कहनेसे पुनः सन्तोषको प्राप्त हो गई ॥३०॥ किमी सुरिया स्त्रीने ताम्बूल वाचनके वहाने पतिका अधरोष्ठ पाकर उसे दन्ताघातसे विभूषितकर बड़ी कठिनाईसे छोड़ा ॥३१॥ रणके अभिलाषी किमी पुरुषने यद्यपि अपनी स्त्रीको लौटा दिया था तथापि वह कवचके कण्ठका सूत्र बाँधनेके वहाने चली जा रही थी ॥३२॥ एक ओर तो धल्लभाकी दृष्टि और दूसरी ओर तुरहीका शब्द, इस प्रकार योद्धाका मन दो कारण रूपी दोलाके ऊपर झारुद्ध हो रहा था ॥३३॥ अमाङ्गलिक अश्रुपातको वचानेवाली स्त्रियोंके यद्यपि पतिको देखनेकी इच्छा थी तो भी वे नेत्रोंका पलक नहीं म्पाती थी ॥३४॥ जिनके मन उतावलीसे भर रहे थे ऐसे कितने ही अहंकारी योद्धा, कवच पहिने बिना ही जो शस्त्र मिला उसे ही लेकर निकल पड़े ॥३५॥ किसी रणवीरका शरीर रणसे उत्पन्न संतोषके कारण इतना पुष्ट हो गया कि उसका निजका कवच भी शरीरमें नहीं माता था ॥३६॥ किसी उत्तम योद्धाका शरीर पर-चक्रकी तुरहीका शब्द सुनकर इनना फूट गया कि वह चिरकालके भरे घायोंसे रक्त छोड़ने लगा ॥३७॥ किमी योद्धाने नया मज्जुत कवच पहिना था परन्तु हर्षित होनेके कारण उसका शरीर इतना बढ़ गया कि कवच फटकर पुराने कवचके समान जान पड़ने लगा ॥३८॥ किसीका टोप ठीक नहीं बैठ रहा था सो उसे ठीक करनेमें तत्पर उसकी स्त्री निश्चिन्ततापूर्वक मधुर शब्द कहती हुई बार-बार टोपको चला रही थी ॥३९॥ किमीकी स्त्रीने पतिके वचःस्थलपर मुगन्धिका लेप लगा दिया था सो उसकी रक्षा करते हुए उमने युद्धकी अभिलाषा होते हुए भी कवच धारण करनेकी ओर मन नहीं किया था—कवच धारण करनेका विचार नहीं किया था ॥४०॥ इस प्रकार जो बड़ी कठिनाईसे प्रियाओं

१. सन्नदनी (दि०) । २. दृत्ता म० । ३. शीर्षं पुराणं कंटकायितम् म० । ४. दीवमानः न० ।  
 ५. कंटकं म०, र० ।

भयाप्रकीर्तिनाम्बोरसारवादनलालसौ । द्विरदस्वन्दनारूढायसोर्दारिचलस्थनी ॥४२॥  
 प्रथम निर्गतादाक्षप्रतापी शौर्यशालिनी । हस्तप्रहस्तनामानौ लङ्कातो निर्गता मृषी ॥४३॥  
 अनाष्टुष्टाऽपि तत्काले स्वामिनो राजते तयोः । दोषोऽपि हि गुणीभावं प्रस्तावे प्रतिपद्यते ॥४४॥  
 मारीचः सिंहजवनः स्वयम्भूः शम्भुरत्तमः । पृथुः पृथुबलोपेतश्चन्द्रार्का शुक्सारणौ ॥४५॥  
 गजर्वाभयनामानौ वज्राणो वज्रभृद्द्युतिः । गम्भीरगिनदो नक्रो मकरः कुलिशस्वनः ॥४६॥  
 उप्रनादस्तथा सुन्दः निकुम्भकुम्भशब्दितः । सन्ध्याचो विभ्रमक्षुरो माल्यवान् खरनिस्वनः ॥४७॥  
 जम्बूमाली शिरावीरो दुर्द्वेषश्च महाबलः । एते केसरिभियुक्तैः सामन्ता नियंयू रथैः ॥४८॥  
 वज्रोदरोऽप्य शत्राभ कृतान्तो विघटोदरः । महाशनिरवश्चन्द्रनखो मृत्युः सुभीपणः ॥४९॥  
 कुलिशोदरनामा च धूम्राचो मुदितस्तथा । विद्युज्जिह्वो महामाली कनकः क्रोधनध्वनिः ॥५०॥  
 क्षोभणो धुन्धुरद्दामा डिण्डिमडिमडम्बराः । प्रचण्डो डमरश्चण्डकुण्डहालाह्लादयः ॥५१॥  
 व्याघ्रपुनैरिमेस्तुङ्गै रथैरङ्गासिताम्बरैः । अहयवो विनिर्याताः शत्रुविध्वंससुद्वयः ॥५२॥  
 विद्याकौशिकविद्यार्तिः सर्पवाहुर्महाद्युतिः । शंखप्रशस्त्रनामानौ रागो भिद्राञ्जनप्रभाः ॥५३॥  
 पुण्यचूडो महारक्तो घटाक्षः पुण्यखेचरः । अनङ्गकुसुमः कामः कामावर्त्तस्मरायणौ ॥५४॥  
 कामाग्निः कामराशिश्च कनकामः शिलीमुखः । सौम्यवक्त्रो महाकामो हेमगौरादयस्तथा ॥५५॥  
 एतेऽपि वातरहोभौ रथैर्युक्ततुरङ्गमैः । यथायथ विनिर्जंमुरालयेभ्यो रसद्वलाः ॥५६॥  
 कदम्बत्रिपती भीमो भीमनादो भयानकः । शार्दूलक्रीडितः सिंहश्वलाद्रो विद्युदम्बुक ॥५७॥

को समन्ता-नुमा सके थे ऐसे योधा तो बाहर निकले और उनकी स्त्रियों व्याकुल चित्त होती हुई शय्याओंपर पड़ रही ॥४१॥

अथानन्तर उत्तम कीर्तिरूपी मधुरसके आस्वादनमें जिनका मन लग रहा था, जो हाथियोंके रथ पर आरूढ थे, जिन्होंने शत्रु सेनाका शब्द सहन नहीं किया था, जिनका उत्कट प्रताप पहले ही निम्न चुका था, और जो शूरवीरतासे सुशोभित थे, ऐसे हस्त और प्रहस्त नामके दो राजा लंकासे सर्वप्रथम निस्ले ॥४२-४३॥ यद्यपि वे दोनों स्वामीसे पूछकर नहीं निकले थे तथापि उस समय इनका स्वामीसे नहीं पूछना शोभा देता था क्योंकि अचसरपर दोष भी गुणरूपताको प्राप्त हो जाता है ॥४४॥ मारीच, सिंहजवन, स्वयंभू, शम्भु, उत्तम, विशाल सेना से सुशोभित पृथु, चन्द्र, सूर्य, शुक, सारण, गज, वीभत्स, इन्द्रके समान कान्तिको धारण करनेवाला वज्राक्ष, गम्भीरनाद, नक्र, मकर, वरुणाद, उप्रनाद, सुन्द, निकुम्भ, कुम्भ, सन्ध्याच, विभ्रम, क्षुर, माल्यवान्, रगनाद, जम्बूमाली, शिरावीर और महाबलवान् दुर्द्वेष ये सब सामन्त सिंहासे जुते हुए रथोंपर सवार हो बाहर निकले ॥४५-४८॥ उनके पीछे वज्रोदर, शत्राभ, कृतान्त, विघटोदर, महावक्त्ररथ, चन्द्रनख, मृत्यु, सुभीपण, वज्रोदर, धूम्राक्ष, मुदित, विद्युज्जिह्व, महामाली, कनक, क्रोधनध्वनि, क्षोभण, धुन्धु, उद्दामा, डिण्डिम, डम्बर, प्रचण्ड, डमर, चण्ड, कुण्ड और हालाहल आदि सामन्त, जिनमें व्याघ्र जुते थे, जो ऊँचे थे तथा आकाशको दँदाप्यमान करनेवाले थे ऐसे रथोंपर सवार हो बाहर निकले । ये सभी सामन्त महा अहंकारी तथा शत्रु नाशकी भावना रखनेवाले थे ॥४९-५२॥ उनके पीछे विद्याकौशिक, सर्पवाहु, महाद्युति, शङ्ख, प्रशङ्ख, राग, भिद्राञ्जनप्रभ, पुण्यचूड, महारक्त, घटाक्ष, पुण्यखेचर, अनङ्गकुसुम, काम, कामावर्त्त, स्मरायण, कामाग्नि, कामराशि, कनकाभ, शिलीमुख, सौम्यवक्त्र, महाकाम तथा हेमगौर आदि सामन्त, चापुके समान वेगशाली पोंदोंके रथोंमें सवार हो यथायोग्य अपने-अपने घरोंसे निकले । इन सबकी सेनाएँ प्रचण्ड शब्द कर रही थी ॥५३-५६॥ तदनन्तर कदम्ब, विटप, भीम, भीमनाद, भयानक,

१. -यमेटी विरलस्थनी म० । २. प्रपाये म० । ३. सिंहजवनः म०, रत्न० । ४. दमादो म० । ५. गम्भीरो निन्दो म० । ६. विभ्रमः म०, म० । ७. -प्रभी म० ।

ह्लादनचपलश्चोलश्चलश्चलकादयः । राजादिभिरिमेयुक्तैर्निर्ययुर्मास्त्रै रथैः ॥५८॥  
 कियन्तः कथयिष्यन्ते नाम्ना प्राग्रहराः नराः । अध्यर्द्धपद्मकोट्यः कुमारानां स्मृता बुधैः ॥५९॥  
 विशुद्धराक्षसानूकाः कुमारस्तुल्यविभ्रमाः । प्रच्योतयशसः सर्वे विज्ञेया गुणमण्डनाः ॥६०॥  
 आवृतास्ते समुद्युक्तैः कुमारैर्मारविभ्रमाः । बलिनो मेघवाहदाः कुमारैन्द्रा विनिर्ययुः ॥६१॥  
 अर्ककीर्तिममो भूया दशाननमहाप्रियः । इन्द्रजिह्विर्ययो कान्तो जयन्त इव धीरधीः ॥६२॥  
 विमानमर्कमङ्गाश नाम्ना ज्योतिःप्रभ महत् । कुम्भकर्णः समारूढस्त्रिशूलाद्यो विनिर्ययुः ॥६३॥  
 मेरुद्वारप्रतीकाश्च लोकत्रितयशब्दितम् । विमान पुष्पकाभिखयामारूढः शक्रविभ्रमः ॥६४॥  
 सन्ध्याय रोदसी सैन्यैर्भास्वरायुवपाणिभिः । निष्पान्तो रावणस्तिग्मकिरणप्रतिमशुतिः ॥६५॥  
 स्थन्दनैर्वाणैः सिंहचैराहैः रुहभिर्गुणैः । स्मरैर्विहगैश्चित्रैः सौरभैर्यैः क्रमेलकैः ॥६६॥  
 ययुभिर्माहिपैरन्यैर्जलयलसमुद्रवैः । सामन्ता निर्ययुः शीघ्र वाहनैर्बद्धरूपकैः ॥६७॥  
 भामण्डलं प्रतिक्रुद्धाः किष्किन्धाधिपति तथा । हिता राक्षसनाथाय निर्ययुः खेवराधिपाः ॥६८॥  
 अथ दक्षिणतो दृष्टा भयानकमहास्वनाः । प्रयाणवारणोद्युक्ता भल्लूका बद्धमण्डलाः ॥६९॥  
 बद्धान्वतमसा पक्षैर्गुदा विवृत्तनिस्वनाः । भ्राम्यन्ति गगने भीमाः कथयन्तो महाजयम् ॥७०॥  
 अन्येऽपि शकुनाः क्रूरं मन्दन्तो भयशसिनः । बभूवुराकुलीभूता मौमा वैहायसास्तथा ॥७१॥  
 शीर्षातिगर्भमूढा विदन्तोऽप्यशुभानिमान् । महासैन्योद्धता योद्धुं रक्षोवर्गा विनिर्ययुः ॥७२॥

शार्दूलविक्रीडित, सिंह, चलाङ्ग, विद्युदम्बुक, ह्लादन, चपल, चोल, चल और चञ्चल आदि सामन्त हाथियों आदिसे जुते हुए देदीप्यमान रथों पर आरूढ होकर निकले ॥५८-५९॥ गीतमस्त्रामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! नाम ले-ले कर कितने प्रधान पुरुष कहें जावेंगे ? उस समय सब मिला कर साढ़ेचार करोड़ कुमार वाहर निकले थे ऐसा विद्वज्जन कहते हैं ॥५९॥ ये सभी कुमार विशुद्ध राक्षसवंशी, समान पराक्रम के धारी, प्रसिद्ध यशसे सुशोभित एवं गुणरूपी आभूषणोंको धारण करनेवाले थे ॥६०॥ युद्धके लिए उद्यत इन सब कुमारोंसे घिरे, कामके समान सुन्दर, महाबलवान् मेघवाहन आदि श्रेष्ठ राजकुमार भी वाहर निकले ॥६१॥ तदनन्तर जो विभूतिसे सूर्यके समान था और रावणको अतिशय प्यारा था, ऐसा धीर वीर युद्धिका धारक सुन्दर इन्द्रजित, जयन्तके समान वाहर निकला ॥६२॥ विशुल शक्रका धारी कुम्भकर्ण, सूर्यके समान देदीप्यमान ज्योतिः-प्रभ नामक विराल विमान पर आरूढ होकर निकला ॥६३॥ तदनन्तर जो तीनों लोकमें प्रसिद्ध मेरुका शिपरके समान सुशोभित पुष्पक नामक विमानपर आरूढ था, इन्द्रके समान पराक्रमी था और सूर्यके समान कान्तिका धारक था ऐसा रावण हार्थोंमें नानाप्रकारके शस्त्र धारण करनेवाले सैनिकोंसे आकाश और पृथ्वीके अन्तरालको आच्छादितकर निकला ॥६४-६५॥ तत्परचातुर्य, हाथी, सिंह, सूकर, कृष्णमृग, सामान्यमृग, सामर, नानाप्रकारके पक्षी, बिल, ऊँट, घोड़े, भैंसे आदि जलयलमें उत्पन्न हुए नानाप्रकारके वाहनोंपर सवार होकर सामन्त लोग वाहर निकले ॥६६-६७॥ जो भामण्डल और सुधीय के प्रति क्रुद्ध थे तथा रावण के हितकारी थे ऐसा विद्याधर राजा वाहर निकले ॥६८॥ अथानन्तर जो महाभयङ्कर शब्द कर रहे थे, जो प्रयाणके रोकनेमें तत्पर थे तथा जो मण्डल बाँधकर रड़े हुए थे ऐसे रीड दक्षिणकी ओर दिशायी दिये ॥६९॥ जिन्होंने अपने पक्षोंसे गाढ़ अन्धकार उत्पन्न कर रक्खा था, जिनका शब्द अत्यन्त विवृत था तथा जो महाविनाशकी सूचना दे रहे थे ऐसे भयंकर गीघ आकाशमें उड़ रहे थे ॥७०॥ इम प्रकार क्रूर शब्द करते तथा भयकी सूचना देते हुए पृथ्वी तथा आकाशमें चलनेवाले अन्य अनेक पक्षी व्याकुल हो रहे थे ॥७१॥ शूरवीरताके बहुत भारी गर्वसे मूढ़ तथा बड़ी-बड़ी सेनाओं से उद्यत राक्षसोंके समूह यद्यपि इन अशुभ स्वप्नों जानते थे तो भी यत्न करने के लिए बराबर

प्राप्ते काले कर्मणामानुरूप्यादात्तु योग्यं तत्फलं निश्चयाप्यम् ।  
 शक्तो रोद्धु नैव शत्रोऽपि लोके वार्तान्येषा केव वाङ्मात्रभाजाम् ॥७३॥  
 वीरा योद्धु दत्तचित्ता महान्तो वाहारूढा, शस्त्रभाराजिहस्ता ।  
 वृवावशा वारकाणा समेषा<sup>१</sup> यान्यप्युद्ग्राही रवि प्रचभीताः ॥७४॥

इत्यार्षे रविपेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे रावणबलनिर्गमन नाम सप्तपञ्चाशत्तम पर्व ॥५७॥

नगरीसे बाहर निकल रहे थे ॥७३॥ गौतमस्वामी कहते हैं कि जब कर्मोंकी अनुकूलताका समय आता है तब देनेके योग्य समस्त पर्यायकी प्राप्ति निश्चयसे होती है उसे रोकनेके लिए लोकमें इन्द्र भी समर्थ नहीं है । फिर दूसरे प्राणियोंकी तो वार्ता ही क्या है ॥७३॥ जिनका चित्त युद्धमें लग रहा था, जो स्वयं महान् थे, वाहनों पर सवार थे और शस्त्रोंकी कान्तिका समूह जिनके हाथ में था अथवा जिनके हाथ शस्त्रोंकी कान्तिसे सुराभित थे ऐसे शूरवीर मनुष्य निर्भीक हो निपेध करनेवाले इन समस्त अशक्तोंकी उपेक्षा करते हुए उस प्रकार आगे बढ़े जाते थे जिस प्रकार राहु सूर्यमण्डलके प्रति बढ़ता जाता है ॥७४॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविपेणाचार्य कथित पद्मपुराणमें रावणकी सेना लङ्कासे बाहर निकली इस बातका वर्णन करनेवाला सतावनवा पर्व समाप्त हुआ ॥५७॥



## अष्टपञ्चाशत्तमं पर्व

आस्तृणुद्वीच्य तसैन्यमुद्वेलमिव सागरम् । नलनालमस्तृपुप्रनाम्बवाद्या सुखेचरा ॥१॥  
 रामकार्यममुचुक्ता परमोदारचेष्टिता । महाद्विपयुतैर्दीप्ति स्यन्दनैर्निर्ययुर्वरै ॥२॥  
 सम्मानो जयमित्रश्च चन्द्रामो रतिवर्द्धन । कुमुदावर्तसञ्जश्च महेन्द्रो भानुमण्डल ॥३॥  
 अनुद्धरो दृढरथ प्रीतिकण्ठो महाबल । समुद्रतवल सूर्यज्योति सर्वप्रियो बल ॥४॥  
 सर्वमारश्च दुर्बुद्धि सर्वद सरभो भर । अभृष्टो निर्विनष्टश्च सत्रासो विघ्नसूदन ॥५॥  
 नादो वर्वरक पापो शैलपाटनमण्डली । सङ्ग्रामचपलाद्याश्च परमा खेचराधिपा ॥६॥  
 शार्दूलसङ्गतैस्तुङ्गै रथै परमसुन्दरै । नानायुधधृताटोपा निर्घम्भु पृथुतेजस ॥७॥  
 प्रस्तरो हिमवान् भङ्ग प्रियरूपाद्यस्तथा । एते द्विपयुतैर्वीक्ष्य निर्ययु सुमहारथै ॥८॥  
 द्रुमेच पूर्णचन्द्रश्च विधि सागरनि स्वन । प्रियविग्रहनामा च स्कन्दश्च दनपादपा ॥९॥  
 चन्द्राश्रुप्रतापातो महाभैरवकीर्तन । दुष्टसिंहकटि क्रुष्ट समाधिबहुलो हल ॥१०॥  
 इन्द्रायुधो गतत्रास सङ्ग्रामाहारादय । एते हरियुतैस्तूर्ण सामन्ता निर्ययु रथै ॥११॥  
 विद्युत्कर्णो बल शील स्वपत्नरचनो घन । सम्मेदो विचल साल काल चित्तिवरोङ्गद ॥१२॥  
 विकालो लालक कालिभङ्गश्चण्डोमिरुजित । तरङ्गस्तिलक काल सुपेणस्तरलो बलि ॥१३॥  
 भामा भामरथो धर्मा मनोहरमुख सुख । प्रमत्तो मर्दको मत्त सारो रत्नजग्य शिव ॥१४॥  
 दूषणो भापण कोण विघ्नराष्टयो विराधित । मेरु रणरत्नि क्षेम वेलाक्षेपी महाचर ॥१५॥  
 नक्षत्रलब्धसञ्जश्च सङ्ग्रामो विजयो जय । नक्षत्रमालक क्षोद तथातिविजयादय ॥१६॥

अथानन्तर लहराते हुए सागरके समान ज्योति होती हुई रावणकी उस सेनाको देख, श्रीरामके कार्य करनेमें उद्यत परम उदार चेष्टाओंके धारक नल, नील, हनुमान, जाम्बव आदि विद्याधर, महागजोंसे जुते देहीप्यमान उत्तम हाथियोंसे युक्त रथोंपर सत्रार हो कटकसे निकले ॥१-२॥ सम्मान, जयमित्र, चन्द्राम, रतिवर्द्धन, कुमुदावर्त, महेन्द्र, भानुमण्डल, अनुद्धर, दृढरथ, प्रीतिकण्ठ, महाबल, ममुद्रतवल, सूर्यज्योति, सर्वप्रिय, बल, सर्वसार, दुर्बुद्धि, सर्वद, सरभ, भर, अभृष्ट, निर्विनष्ट, सत्रास, विघ्नसूदन, नाद, वर्वरक, पाप, लाल, पाटनमण्डल और सग्रामचपल आदि उत्तमोत्तम विद्याधर राजा व्याघ्रासे जुते हुए परम सुन्दर ऊँचे रथापर सवार हो बाहर निकले । ये सभी विद्याधर नाना प्रकार के शस्त्रोंके समूहको धारण कर रहे थे तथा त्रिशूल तेजने धारक थे ॥३-७॥ प्रस्तर, हिमवान्, भङ्ग तथा प्रियरूप आदि ये सत्र हाथियोंसे जुते उत्तम रथापर सत्रार हो युद्धके लिए निकले ॥८॥ दुष्प्रेक्ष, पूर्णचन्द्र, विधि, सागर नि स्वन, प्रियविग्रह, स्कन्द, चन्दनपादप, चन्द्राश्रु, अप्रतीचात, महाभैरव, दुष्ट, सिंहकटि, क्रुष्ट, समाधिबहुल, हल, इन्द्रायुध, गतत्रास और सङ्ग्रामाहारा आदि, ये सत्र सामन्त सिंहासे जुते रथापर सत्रार हो शीघ्र ही निकले ॥९-११॥ विद्युत्कर्ण, बल, शील, स्वपत्नरचन, घन, सम्मेद, विचल, साल, काल, चित्तिवर, अङ्गद, विकाल, लोलक, कालि, भङ्ग, चण्डोर्मि, ऊर्जित, तरङ्ग, तिलक, कील, सुपेग, तरल, बलि, भीम, भीमरथ, धर्म, मनोहरमुख, मुख, प्रमत्त, मर्दक, मत्त, सार, रत्नजटी, शिव, दूषण, भोपण, कोण, विघ्न, विराधित, मेरु, रणरत्नि, क्षेम, वेलाक्षेपी,

एते वाजियुतै कान्तैर्मनोरथजयै रथै । महासैनिकमध्यस्थैरध्यामत रणाजिरम् ॥१७॥  
 विद्युद्वाहो मरुद्वाहु सानुर्जलदवाहन । रवियान प्रचण्डालिरिमेऽपि घनसन्निभै ॥१८॥  
 महारथवरैर्नानावाहनोद्गासिताम्बरै । युद्धश्रद्धासमायुक्ता दधाद्युर्मासुतै समा ॥१९॥  
 विमानमुत्तमाकार नाम्ना रत्नप्रभ महत् । आरूढो यत्नवानस्थात् पद्मपक्षो विभीषण ॥२०॥  
 युद्धावर्त्तो वसन्तश्च कान्त कौमुदिनन्दन । भूरि कोलाहलो हेडो भावित साधुवत्सल ॥२१॥  
 अर्द्धचन्द्रो जिनप्रेमा सागर सागरोपम । मनोज्ञो जिनसज्ञश्च तथा जिनमतादय ॥२२॥  
 नानावर्णविमानाप्रभूमिकास्थितमूर्त्तय । दुर्द्धरा नियंयुर्वोद्ध्यु बद्धसन्नाहविप्रहा ॥२३॥  
 पद्मनाभ सुमित्राज सुप्रावो जनकाम्बज । एते हसविमानस्था विरेजुर्गंगानन्तरे ॥२४॥  
 महाभयुदप्रताकाशा नानायानसमाश्रिता । लङ्काभिमुखमुद्युक्ता गन्तु खेचरपाधवा ॥२५॥  
 संधारलम्बिताम्भोदवृन्दनिर्वोपभैरवा । शङ्खकोण्ठिस्वनोन्मिश्रास्तूर्याणामुद्यु स्वना ॥२६॥  
 भम्भाभेर्षो मृदद्वाश्च लम्पाका धुन्धुमण्डुका । मन्लाग्लातकहृक्कारश्च हुङ्कारा दुन्दुकाणका ॥२७॥  
 कर्भरा हेतुकगुञ्जरा काहला ददुरादय । समाहता महानाद सुमुचु कर्णघूर्णकम् ॥२८॥  
 वेणुनादाटहासाश्च ताराहलहलारवा । ययु सिंहाद्विपस्वाना महिपस्वन्दनस्वना ॥२९॥  
 क्रमेलकमहारावा निनादा मृगपक्षिणाम् । उत्तस्थु पिहितारोपाशोपविष्टपनि स्वना ॥३०॥  
 तयोर-योन्मयासङ्गे जाते परमसैन्ययो । लोक सशयमारूढ समस्तो जीवित प्रति ॥३१॥  
 क्षोणा क्षोभ पर प्राप्ता विकम्पितमहीधरा । प्रशोप गन्तुमारटय प्रक्षुब्ध चौरसागर ॥३२॥

महाधर, नक्षत्रलुब्ध, सप्राम, विजय, रथ, नक्षत्रमालक,, क्षौद्र तथा अतिविजय आदि घोडासे जुते मनोहर, इच्छानुसार वेग वाले, तथा महासैनिका के मध्य स्थित रथोंपर सवार हो रणाङ्गणमें पहुँचे ॥१२-१७॥ विद्युद्वाह, मरुद्वाहु, सानु, मेघवाहन, रवियान और प्रचण्डालि ये सब सामन्त भी मेघाके समान नाना प्रकारके वाहनोसे आकाशको देखीव्यमान करनेवाले उत्तमोत्तम रथापर सवार हो युद्ध की अभिलाषासे दौड़े । ये सब वायुके समान तीव्रवेग वाले थे ॥१८-१९॥ जिसे गमकी पक्ष रथी ऐसा यत्नवान् विभीषण रत्नप्रभ नामक उत्तम विमानपर आरूढ हुआ ॥२०॥ युद्धावर्त्त, वसन्त, कान्त, कौमुदिनन्दन, भूरि, कोलाहल, हेड, भावित, साधुवत्सल, अर्द्धचन्द्र, जिनप्रेमा, सागर, सागरोपम, मनोज्ञ, जिनसज्ञ तथा जिनमत आदि योद्धा युद्ध करनेके लिए घाहर निकले । ये सब नाना वर्णों वाले विमानोंकी अप्रभूमिमें स्थित थे, दुर्द्धर थे और सबके शरीर कचचोंसे कसे हुए थे ॥२१-२३॥ पद्मनाभ—राम, लक्ष्मण, सुमीव और भामण्डल ये सब हमें विमानामें बँठे हुए आकाशके बीचमें अत्यधिक सुशोभित हो रहे थे ॥२४॥ जो महामेघके समान जान पड़ते थे तथा नाना प्रकारके वाहनोपर आरूढ थे, ऐसे त्रिवाधर राजा लकाकी और जानेके लिए तत्पर हुए ॥२५॥ प्रलयकालीन घनघटाकी गर्जनाके समान जिनके भयकर शत्रु थे, तथा जो करोड़ों शङ्खाके शब्दसे मिले हुए थे ऐसे तुरही वादित्राके शब्द उत्पन्न होने लगे ॥२६॥ भभा, भेरी, मृदङ्ग, लम्पाक, धुन्धु, मण्डुक, मन्ला, अम्लातक, हृक्का, हुकार, दुन्दुकाणक, कर्भर, हेतुकगुञ्जा, काहल और ददुर आदि जाते ताड़ित होकर कानोंको घुमानेवाले महाशब्द छोड़ने लगे ॥२७-२८॥ बँसोंके शब्द, अट्टहासकी ध्वनि, तारा तथा हलहलाके शब्द, सिंहा और हाथियोके शब्द, भँसाओं और रथोंके शब्द, ऊँगोंके विशाल शब्द तथा मृग और पक्षियोंके शब्द उठने लगे । इन सबके शब्दाने शेष समस्त ससारके शब्दोंको आच्छादितकर दिया ॥२९-३०॥ जब इन दोना विशाल सेनाओंका परस्परमें समागम हुआ तब समस्त लोक अपने जीवनेके प्रति मशयम पड़ गये ॥३१॥ पृथिवी अत्यन्त क्षोभकी प्राप्त हुई, पर्यन्त हिलने लगे और क्षुभित हुआ

सदपैर्निर्गतैर्योधिरेस हैनिजवर्गत । दन्तुरीभूतमत्युध बलद्रयमलघयत ॥३३॥  
 चक्रकचक्रन्तासिगदाशक्तिशिलीमुखैः । भिण्डिमान्नादिभिश्चोप प्रवृत्त युद्धमेतयो ॥३४॥  
 औद्ध्यन्तः सुमन्द्राः शस्त्रज्वलितबाहवः । समुत्पेतुर्भटाः शूराः परसैन्य विवचनः ॥३५॥  
 अतिवेगममुत्पाताः प्रविष्टाः शात्रव बलम् । शस्त्रसन्नारमार्गार्थमरसन्तु । पुनर्मनाम् ॥३६॥  
 लङ्कानिवासिभिर्योवैल्लग्नैरतिभूरिभिः । सिंहैरिव गजा भद्र नीता वानरपक्षिणः ॥३७॥  
 पुनरन्यैर्मतैः शोभ्रमसीदन्तः समुज्वला । रक्षोयोधान् विनिर्जघ्नुर्भासुरा वानरध्वजाः ॥३८॥  
 मेघमान बलं द्रुप राक्षसेन्द्रस्य सर्वतः । स्वामिरागतमावृष्टौ महाजलममावृष्टौ ॥३९॥  
 गजध्वजममालक्ष्यै गजस्यन्दनवर्तिनी । मा भैषेति कृतस्वानी परमोक्तविपद्दौ ॥४०॥  
 हस्तप्रहस्त्रमामन्तावुत्पाय्य सुमहाजवी । निन्यतुः परम भद्र बल वानरलक्ष्मणाम् ॥४१॥  
 शास्त्रामुग्वज्रौ तात्र प्रतापं निध्नतो परम् । क्रोडवारणसवृत्तबाह्व्यूढमहारथौ ॥४२॥  
 शौर्यगर्वाविवायुक्तशरीरौ परमयुतौ । नलनीली परिहृद्धौ भीषणौ योद्धुमुद्यतौ ॥४३॥  
 ततो बहुविधै शम्भैश्चिरि जाने महाह्वे । क्रमात्समावुनिस्वाने निपतद्दृढमङ्कटे ॥४४॥  
 नलेनोपत्य इस्तो वा विह्वले विरभीष्टतः । प्रहस्त इव नीलेन कृतश्च गतर्त्नवित् ॥४५॥  
 तावालोक्त्य ततो राजन् विद्ययस्तीं महीतले । विनायका बभूवैतद्दाहिनीय पराङ्मुखा ॥४६॥

लवण समुद्र शोषणको प्राप्त होने लगा ॥३२॥ अपने-अपने वर्गसे निकलकर बाहर भाये हुए, असह्यनशील, अहंकारी योद्धाओंसे व्याप्त हुई दोनों सेनाएँ अत्यन्त भयंकर दिखने लगीं ॥३३॥ कुछ ही समय बाद दोनों सेनाओंमें चक्र, ककच, कुन्त, रज्ज, गदा, शक्ति, वाण और भिण्डिमाल आदि शस्त्रोंसे भयंकर युद्ध होने लगा ॥३४॥ जो एक दूसरेको घुला रहे थे, जो कवचोंसे युक्त थे, जिनका मुजाएँ शस्त्रोंसे देदीप्यमान हो रही थीं और जो पर-चक्रमे प्रवेश करना चाहते थे ऐसे शूर वीर योद्धा उद्वल रहे थे ॥३५॥ ये योद्धा अत्यन्त वेगसे उल्लङ्घन करते तो शत्रुओंके दलमें जा चुके अनन्तर शस्त्र चलानेके योग्य मार्ग प्राप्त करनेकी इच्छासे पुनः कुछ पीछे हट गये ॥३६॥ लंका निवासी योद्धा अधिक संख्यामें थे तथा अत्यधिक शक्तिशाली थे इसलिए उन्होंने वानर-पक्षके योद्धाओंको उस तरह पराजितकर दिया जिस तरह कि सिंह हाथियोंको पराजितकर देते हैं ॥३७॥ तदनन्तर शीघ्र ही जो अन्य योद्धाओंके द्वारा नहीं दबाये जा सकते थे ऐसे प्रतापी तथा देदीप्यमान वानर राजाओंने राजस्य योद्धाओंको मारना शुरू किया ॥३८॥ तत्पश्चात् रावणको सेनाको सब ओरसे नष्ट होती देख स्वामीके प्रेमसे खिंचे तथा बड़ी भारी सेनासे घिरे हस्त और प्रहस्त नामके सामन्त उठकर आगे आये । ये हाथियोंके चिह्नसे सुशोभित ध्वजासे पृथक् ही जान पड़ते थे, हाथियोंके रथपर आरूढ़ थे, 'ढरो मत, ढरो मत' यह शब्दकर रहे थे, अत्यन्त उत्कट शरीरके धारक थे और महावेगशाली थे । इन्होंने आते ही वानरोंकी सेनामें तीव्र मार्ग-काट मचा दी ॥३९-४१॥ यह देख जो परम प्रतापको धारण कर रहे थे, मूक, हाथी तथा घोड़े जिनके बड़े-बड़े रथ खींच रहे थे, जो शरीरधारी शूर वीरता और गर्वके समान जान पड़ते थे, परमदीप्तिके धारक थे, अत्यन्त क्रुद्ध एवं भयंकर थे, ऐसे वानरवशी नल और नील युद्ध करनेके लिए उद्यत हुए ॥४२-४३॥

तदनन्तर जिसमें क्रम क्रमसे साधु-साधु बहुत अच्छा बहुत अच्छाका शब्द हो रहा था तथा जो गिरते हुए योद्धाओंसे व्याप्त था ऐसा महायुद्ध जब चिरकाल तक नाना प्रकारके शस्त्रोंसे हो चुका तब नलने उद्वलकर हस्तको रथ रहित तथा विह्वल कर दिया और नीलने प्रहस्यको निर्जान बना दिया ॥४४-४५॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे राजन् ! तदनन्तर

## चंशस्थवृत्तम्

त्रिभर्तिं तावद् दृढनिश्चय जन प्रभोर्मुत्प पश्यति यावदुद्धतम् ।  
 गतविनाश स्वपत्नी विशीर्यते यथारचक परिशीर्णुन्वकम् ॥४७॥

## उपेन्द्रवज्रावृत्तम्

सुनिश्चितानामपि सन्नराणा विना प्रधानेन न कार्ययोग ।  
 शिरस्यपेते हि शरीरबन्धः प्रपद्यते सर्वत एव नाशम् ॥४८॥  
 प्रधानसम्बन्धमिद् हि सर्वं जगद्यथेष्ट फलमभ्युपैति ।  
 राहूपसृष्टस्य रवेर्विनाश प्रयाति मन्दो निकरः करणाम् ॥४९॥

इत्यापि श्रीरविपेणाचार्यभोक्ते पद्मपुराणे हस्तप्रहस्तवधामिधान नामाष्टपञ्चाशत्तमं पर्व ॥५८॥



हस्त और प्रहस्तको पृथ्वीपर पडा देस रावणकी सेना, नायकसे रहित होनेके कारण विमुख हो गई—भाग खड़ी हुई ॥४६॥ सो ठीक ही है क्योंकि जब तक यह मनुष्य, स्वामीके ऊँचे उठे मुखको देखता रहता है तभी तक दृढ़ निश्चयको धारण करता है और जब अपना स्वामी नष्ट हो जाता है तब समस्त सेना जिसका पुट्टा बिखर गया है ऐसी गाडोंके पहियेके समान बिखर जाती है ॥४७॥ आचार्य कहते हैं कि यद्यपि निश्चित किये हुए मनुष्योंका कार्य किसी प्रधान पुष्प के विना नहीं होता है क्योंकि शिर नष्ट हो जानेपर शरीर सब ओर से नाश ही को प्राप्त होता है ॥४८॥ प्रधानके साथ सम्बन्ध रखनेवाला यह समस्त जगत् यथेष्ट फलको प्राप्त होता है, सो ठीक ही है क्योंकि राहुके द्वारा आम्रान्त सूर्यकी किरणोंका समूह मन्द होता हुआ विनाशको ही प्राप्त होता है ॥४९॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविपेणाचार्य विरचित पद्मपुराणमें हस्त प्रहस्तके वधका कथन करनेवाला अठावनवां पर्व समाप्त हुआ ॥५८॥



## एकोनपष्टितमं पर्व

उवाच श्रेणिकोऽर्धत्र विद्याविधिबिषारदी । हस्तप्रहस्तसामन्तौ जितपूर्वा न केनचिन् ॥३॥  
 महदाश्रयमेतन्मे ताम्था तौ निहन्तौ कथम् । अत्र मे कारण नाथ गणध्वञ्जनुमहंसि ॥२॥  
 ततो गणधरोऽवोचच्छ्रुतं तस्वविषारद । राजन् कर्माभिनुज्ञाना जन्मूता गतिरादशा ॥३॥  
 पूर्वकर्मनुभावेन स्थितिर्दुः कृतिनामियम् । असौ मारयिता तस्य यो येन निहित पुरा ॥४॥  
 असौ मोचयिता तस्य बन्धनव्यसनादिषु । यो येन मोचित पूर्वमनर्थे पतितो नर ॥५॥  
 भासंलौकिकमर्यादा प्रतिवेशिमकवानिन । नि स्वा कुटुम्बिन स्थाने कुशस्थलकनामनि ॥६॥  
 इन्धक पल्लवश्चैव तत्रैकोदरमम्भवी । पुत्रदारपरिविलिष्टौ विप्रौ लाङ्गल्यर्मकी ॥७॥  
 सानुक्रम्यै स्वभावेन साधुनिन्दापराड्मुखौ । जैनमित्रपरिष्वङ्गाद् विचादानादिसेविनौ ॥८॥  
 द्वितीय नि स्वयुगल प्रतिवेशमोपित तयो । स्वभावनिर्दय क्रूर लौकिकोन्मार्गमोहितम् ॥९॥  
 वग्नौ रात्रदानस्य सज्जाते कलहे सति । ताम्भयान्यन्तरीदाभ्या हताविन्धनपल्लवी ॥१०॥  
 साधुदानाद्धरिक्षेत्रे जाती सज्जोगभोचिनी । पल्यद्वयस्ये जाती देवलोकनिवेशिनी ॥११॥  
 अधर्मपरिणामेन क्रूरी नु प्राप्तपञ्चती । शरीर कालेज्जराण्ये जाती दुःखान्तिसङ्घटे ॥१२॥  
 मिथ्यादर्शनयुक्ताना साधुनिन्दनकारिणाम् । प्राणिना पापकृताना भक्त्येवेदशा गति ॥१३॥

अथानन्तर रात्रा श्रेणिकने गीतमस्वामीसे इस प्रकार कहा कि हे भगरन् ! विद्याभाकी विधिमे निपुण जो हस्त और प्रहस्त नामक सामन्त पहले किसीके द्वारा नहीं जीते जा सके वे चड़ा आश्रय है कि नल और नील के द्वारा कैसे मारे गये ? हे नाथ ! आप मेरे लिए इसका कारण कहिए ॥१-२॥ तदनन्तर श्रुत रहस्यके ज्ञाता गीतम गणधरने कहा कि हे राजन् ! कर्मसे प्रेरित प्राणियोंकी ऐमी ही गति होती है ॥३॥ पूर्ण कर्मके प्रभावसे पापी जीवोंकी यह दशा है कि पहले जो जिसके द्वारा मारा जाता है वह उसे मारता है ॥४॥ पहले जिसने विपत्तिमे पड़े हुए जिम मनुष्यको उस विपत्तिसे छुड़ाया है वह उसे भी बन्धन तथा व्यसन-सकट आदिके समय छुड़ाता है ॥५॥

इनकी कथा इस प्रकार है कि कुशस्थल नामक नगरमे लौकिक मर्यादाको पालनेवाले कृत्त दरिद्र कुटुम्बी पास पासमे रहते थे ॥६॥ उनमे इन्धक और पल्लवक नामक दो भाई थे जो एक ही माताके उदरसे उत्पन्न थे, पुत्रों तथा स्त्रियोंके कारण क्लेशको प्राप्त रहते थे, जातिके ब्राह्मण थे, हल चलानेका काम करते थे, स्वभावसे दयालु थे, साधुआकी निन्दासे विमुख थे, तथा अपने एक जैन मित्रकी संगतिसे आहारदान आदि कार्योंमे तत्पर रहते थे ॥७-८॥ उन दोनोंकी पत्नीसमे ही एक दूसरा दरिद्र कुटुम्बियोंका युगल रहता था जो स्वभावसे निर्दय था, दुष्ट था और लौकिक मिथ्या प्रवृत्तियोंसे मोहित रहता था ॥९॥ एक बार रात्राकी ओरसे जो दान वैदता था उसमे कलह हो गई जिससे अत्यन्त क्रूर परिणामोंके धारक उन दरिद्र कुटुम्बियोंके द्वारा इन्धक और पल्लवक मारे गये ॥१०॥ मुनि दानके प्रभावसे दोनों, हरिक्षेत्रमे उत्तम भोगोंको भोगनेवाले आर्य हुए । वहाँ दो पत्न्यकी उनकी आयु थी । उसके पूर्ण होनेपर दोनों ही देवलोकमे उत्पन्न हुए ॥११॥ दूसरे जो क्रूर दरिद्र कुटुम्बी थे वे अधर्म रूप परिणामसे मर कर दुःखोंसे परिपूर्ण कालेज्जर नामक वनमे चरगोश हुए ॥१२॥ सो ठीक

ततस्तिथ्यंशु सुचिर भ्रान्त्वा विविधयोनिषु । कृच्छ्रान्मनुष्यता प्राप्ती तापसख्यमुपागतौ ॥१४॥  
 बृहज्जी बृहकायी फलपर्णादिभोजिनौ । तपोभि कशितौ तीर्षे कुशाने द्वौ मृतौ च तौ ॥१५॥  
 वामादरिभ्ये जातावरिवन्वा कुक्षिसम्भवी । पुत्री वह्निकुमारस्य विजयादस्य दक्षिणे ॥१६॥  
 आशुकारासुराकाराश्रिमी जगति विश्रुतौ । हस्तप्रहस्तनामानौ सचिधौ रक्षसा विभो ॥१७॥  
 पूर्वा तु प्रस्थुती नाकात् सुमनुष्यत्वमागतौ । गृहाश्रमे तप कृ वा पुनर्जातौ सुरोत्तमौ ॥१८॥  
 पुण्यश्याम् परिभ्रष्टो स्वर्गादिन्धकपल्लवौ । किष्कुसज्ञे पुरे जातौ नलनीली महाबलो ॥१९॥  
 यत्तद्दस्तप्रहस्तभ्यां नलनीली भवान्तरे । निहती फलमेतरस्य पराटुख्य तदागतम् ॥२०॥  
 हतवान् हन्यते पूर्वं पालक पादयतेऽधुना । औदासीन्यमुदासीने जायते प्राणधारिणाम् ॥२१॥  
 य वाष्य जायते कोपो दृष्टकारणवजित । नि सन्दिग्ध परिज्ञेय स रिपु पारलौकिक ॥२२॥  
 य वाष्य जायते चित्त प्रह्लादि सह चक्षुषा । असन्दिग्ध सुविज्ञेयो मित्रमन्यत्र जन्मनि ॥२३॥  
 धु-रोमिणि जले सिन्धो शीर्णपोत भूपादय । स्थले म्लेच्छाश्च बाधन्ते यत्तद्दु कृतज फलम् ॥२४॥  
 मत्तैगिरिनिभैर्नागैर्वीरैर्बहुविधायुधै । सुवेगैर्वाजिभिर्दंष्ट्रैश्चैश्च कत्रचातृते ॥२५॥  
 विप्रदेऽविप्रहे वापि नि प्रमादस्य सन्ततम् । जन्तो स्वपुण्यहीनस्य रक्षा नैवोपजायते ॥२६॥  
 निरस्तमपि निर्यन्त यत्र तत्र स्थित परम् । तपोदानानि रक्षन्ति न देवा न च बान्धवा ॥२७॥

ही है क्योंकि मिथ्यादर्शनसे युक्त तथा साधुआंकी निन्दा करनेवाले पापी प्राणियों की ऐसी ही गति होती है ॥१३॥ तदनन्तर निर्यञ्जोकी नाना योनियोंमें चिरकाल तक भ्रमणकर दोना बड़ी कठिणतासे मनुष्य पर्याय प्राप्तकर तापस हुए ॥१४॥ वहाँ वे बड़ी-बड़ी जटाएँ रसाये हुए थे, डील डीलके विशाल थे, फल तथा पत्ते आदिका भोजन करते थे और तीव्र तपस्यासे दुर्बल हो रहे थे । मिथ्याज्ञानके समय ही दोनोंकी मृत्यु हुई ॥१५॥ दोनों ही मरकर विजयार्थ पर्वतके दक्षिणमें वह्निकुमार विद्याधरकी अरिपत्नी नामा स्त्रीकी कुक्षिसे दो पुत्र हुए ॥१६॥ ये दोना ही शीघ्रतासे कार्य करने वाले असुरोंने समान आकारके धारक थे, जगत्तम अतिशय प्रसिद्ध थे तथा आगे चलकर रावणके हस्त, प्रहस्त नामक मन्त्री हुए थे ॥१७॥ पहले जिनका कथन कर आये हैं ऐसे इन्धक और पल्लवकस्वर्गसे च्युत हो कर उत्तम मनुष्य पर्यायको प्राप्त हुए । तदनन्तर गृहस्थाश्रममें ही तपकर दोनों उत्तम देव हुए ॥१८॥ फिर पुण्यका क्षय होनेसे स्वर्गसे च्युत हो किष्कु नामक नगरमें महाबलके धारक नल और नील हुए ॥१९॥ हस्त और प्रहस्तने भवान्तरमें जो नल और नीलको मारा था इसका फल लौटकर इस भव में उन्हींको प्राप्त हुआ अर्थात् उनके द्वारा वे मारे गये ॥२०॥ पूर्वभयमें जो जिसे मारता है वह इस भयमें उसके द्वारा मारा जाता है, पूर्वभयमें जो जिसको रक्षा करता है वह इस भयमें उसके द्वारा रक्षित होता है तथा पूर्वभयमें जो जिसके प्रति उदासीन रहता है वह इस भयमें उसके प्रति उदासीन रहता है ॥२१॥ जिसे देखकर अकारण क्रोध उत्पन्न होता है उसे नि सन्देह परलोक सम्बन्धी शत्रु जानना चाहिए ॥२२॥ और जिसे देखकर नेत्रोंके साथ-साथ मन आह्लादित हो जाता है उसे नि सन्देह पूर्वभयका मित्र जानना चाहिए ॥२३॥ समुद्रके लहराते जलम जर्जर नाकवाले मनुष्यको जो मगर, मच्छ आदि घाधा पट्टुंवाते हैं तथा स्थलमें म्लेच्छ पीड़ा पट्टुंवाते हैं वह सब पापकर्मका फल है ॥२४॥ पर्वतों के समान मद्दोन्मत्त हाथियां, नाना प्रकारके राक्ष धारण करनेवाले योद्धाओं, तीव्र वेगने धारक घोड़ों एवं क्वच धारण करनेवाले अठकानी भृत्योंके साथ युद्ध हो अथवा नहीं हो और आप स्वयं सदा प्रमादरहित साधधान रहे तो भी पुण्यहीन मनुष्यको रक्षा नहीं होती ॥२५-२६॥ इसके विपरीत पुण्यात्मा

१. आशुकाराशुकारौ ब० त०, आशुकारशुकारौ क० । २. उदासीन- म० । ३. चक्षुषाम् म० ।

४. शीर्णे वां म० । ५. निपा म० । ६. शिरं म० ।

दृश्यते बन्धुमध्यस्थ विघ्राप्यालिङ्गितो धनी । त्रियमाणोऽतिशूरश्च कोऽन्य शक्तोऽभिरक्षितुम् ॥२८॥  
पात्रदानैः व्रतैः शालैः सम्यक्त्वपरितापितैः । विग्रहेऽविग्रहे वापि रक्ष्यते रक्षितैर्नर ॥२९॥  
दयादानादिना येन धर्मो नोपाजित पुरा<sup>१</sup> । जावित् चेष्यते दीर्घं वाञ्छा तस्यातिनि कला ॥३०॥

न विनश्यन्ति कर्माणि जनाना तपसा विना ।

इति शारदा क्षमा कार्या विपश्चिद्भिरपि ॥३१॥

### दोधकवृत्तम्

एष ममोपकरोति सुचेता दुष्टतरोऽपकरोति ममायम् ।

बुद्धिरिय निपुणा न जनाना कारणमत्र निजाजितकर्म ॥३२॥

इत्यधिगम्य विचक्षणसुरैर्वाङ्गसुखानुखगौणनिमित्तैः ।

रागतर कलुष च निमित्त कृयमपोऽम्भितकुसितचेष्टैः ॥३३॥

भूविषयेषु निपातमुपैति प्रावणि सज्जति गच्छति सर्पम् ।

सन्तमसापिहिते पथि नेत्री नो रविणा जनितप्रकृत्ये ॥३४॥

इत्याप्ये रनिपेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे हस्तप्रहस्तनलनीलपूर्वभनानुकीर्त्तन नामैकोनपष्टितम पर्व ॥५६॥



मनुष्य जहाँसे हटता है, जहाँसे बाहर निकलता है अथवा जहाँ स्थिर रहता है वहाँ तप तथा दान ही उसकी रक्षा करते हैं, यथार्थमें न देव रक्षा करते हैं और न भाई नन्धु ही ॥२७॥ देखा जाता है कि जो भाई नन्धुओंके मध्यमें स्थित है, पिता जिसका आलिङ्गन कर रहा है, जो धनी और अत्यन्त शूरवीर है वह भी मृत्युको प्राप्त होता है, कोई दूसरा पुरुष उसकी रक्षा करनेमें समर्थ नहीं होता है ॥२८॥ युद्ध हो चाहे न हो सम्यग्दर्शनके साथ-साथ अच्छी तरह पाले हुए पात्रदान, व्रत तथा शील ही इस मनुष्यकी रक्षा करते हैं ॥२९॥ जिसने पूर्व पर्यायमें दया दान आदि के द्वारा धर्मका उपार्जन नहीं किया है और फिर भी दीर्घ जीवनकी इच्छा करता है सो उसकी यह इच्छा अत्यन्त निष्फल है ॥३०॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि 'तपके विना मनुष्योंके कर्म नष्ट नहीं होते' यह जानकर विद्वत् पुरुषोंको शत्रुओं पर भी क्षमा करनी चाहिए ॥३१॥ यह उत्तम हृदयका धारक पुरुष मेरा उपकार करता है और यह अतिशय दुष्ट मनुष्य मेरा अपकार करता है । लोगोंको ऐसा विचार करना अच्छा नहीं है क्योंकि इसमें अपने ही द्वारा अजित कर्म कारण हैं ॥३२॥ ऐसा जानकर जिन्होंने सुर दु रके बाह्य निमित्तोंको गौण कर खोटी चेष्टाओंका परित्याग कर दिया है ऐसे श्रेष्ठ विद्वानाको निमित्त कारणामे तीव्र राग अथवा दोष नहीं करना चाहिये ॥३३॥ गाढ अन्धकारके द्वारा आन्ध्रद्विध मार्ग जह सूर्यके द्वारा प्रकाशित हो जाता है तब नेत्रजाम् मनुष्य न तो पृथ्वीके गड्ढामे गिरता है, न पत्थर पर टकराता है और न सर्प ही को प्राप्त होता है ॥३४॥

इस पत्रार श्रार्थ नामसे प्रसिद्ध, रनिपेणाचार्य कथित पद्मपुराणमें हस्त प्रहस्त और नल-नीलके पूर्वभयोंका वर्णन करनेवाला उनसठवां पर्व समाप्त हुआ ॥५६॥



## षष्ठितमं पर्व

हस्तप्रहन्तसद्गौरी विज्ञाय निहती तत । अन्येद्युद्धधुरक्रोधा बहवो योद्धुमुद्यता ॥१॥  
 मारीच सिंहजघन स्वयम्भु शम्भुरूजित । शुकसारणचन्द्रकजगद्गौमसनि स्वना ॥२॥  
 ज्वरोप्रनमनमरा वज्राटयोद्यामनिष्ठुरा । गम्भीरनिनदाद्याश्च सन्नद्धारभसान्विता ॥३॥  
 सिंहसगृह्णवाहोदस्यन्दनापितमूर्तय । घोभयन्त परिप्रासा कपिकेतुवर्धुधिनीम् ॥४॥  
 तान् सनापततो दृष्ट्वा राक्षसान् पार्थिवान्वरान् । इमे वानरवशाया पाथिवा योद्धुमुद्यता ॥५॥  
 मदनानुरसन्तापप्रस्थितामोशनन्दना । दुरितानवधुष्पास्त्रविघ्नप्रोतिङ्करादय ॥६॥  
 श्नवोन्वाहृतमेतेपामभवत् परम रणम् । कुर्वन्निर्जटिल व्योम शस्त्रैर्वहुविधैर्धनम् ॥७॥  
 अभिलष्यति सन्तापो मारीच समरे तदा । प्रथित सिंहजघनमुद्यान विघ्नसञ्जक ॥८॥  
 आक्रोश सारण पाप शुक्रास्यं नन्दनो ज्वरम् । तेषा स्पर्द्धवतामेव युद्ध जात नियन्त्रितम् ॥९॥  
 तत क्लिष्टेन सन्तापो मारीचेन निपातित । नन्दनेन हत कृच्छ्राञ्ज्वरः कुन्तेन वरुसि ॥१०॥  
 प्रथित सिंहकटिना विघ्नश्रीहामकीतिना । हतोऽथ युद्धमहार सवितास्त समागमत् ॥११॥  
 ध्रुत्वा स्व स्व हत नाथ निमग्ना शोकसागरे । स्त्रियो विभावरामेतामनन्तामिव मेनिरे ॥१२॥  
 अन्येद्यु सन्ततक्रोधा सामन्ता योद्धुमुद्यता । वज्राट्यं क्षपितारिश्च मृगेन्द्रदमनो विधि ॥१३॥  
 शम्भु स्वयम्भुरचन्द्राक्रीस्तथा वज्रोदरादय । राक्षसाधिपवर्गीयास्तेभ्योऽन्ये वानरध्वजा ॥१४॥

अथानन्तर हस्त और प्रहस्त वीरोको मरा सुन दूसरे दिन उत्कट क्रोधसे भरे बहुतसे योद्धा युद्ध करनेके लिए उद्यत हुए ॥१॥ जिनके कुल्ल नाम इस प्रकार हैं—मारीच, सिंहजघन, स्वयंभु, शम्भु, अर्जित, शुक, सारण, चन्द्र, अर्क, जगद्गौमत्स, नि स्वन, वर, उग्र, नकर, मरु, वज्राट्य, वद्याम, निष्ठुर और गम्भीर, निनद आदि । ये सभी योद्धा कवच धारणकर युद्धके लिए तैयार थे, वेगसे सहित थे, सिंहां और परिपुष्ट घोडोंसे जुते हुए रथोंपर आरूढ थे तथा वानर वशियोंकी सेनाको क्षोभित करते हुए आ पहुँचे ॥२-८॥ उन राक्षस वशी उत्तमोत्तम राजाओंकी आते देख वानरवशाके प्रधान राजा युद्ध करनेके लिए उद्यत हुए ॥५॥ इनमेंसे कुल्लके नाम इस प्रकार हैं—मदन, अंजुर, सताप, प्रस्थित, आक्रोश, नन्दन, दुरित, अनव, पुष्पास्त्र, विघ्न और प्रीतिकर आदि ॥६॥ आक्रोशको अत्यन्त जटिल करनेवाले नाना प्रकारके शस्त्रोंसे दोनों पक्षके लोगोका एक दूसरेको ललकार-ललकार कर भयंकर युद्ध हुआ ॥७॥

उस समय युद्धमें सताप, मारीचको चाह रहा था, प्रथित, सिंह जघनको; विघ्न, वद्यामको, आक्रोश, सारणको, पाप, शुकको और नन्दन, वरको, वेग रहा था । इस प्रकार स्वर्णसे भरे हुए इन सत्र योद्धाओंका विषट युद्ध हुआ ॥९-१४॥ तदनन्तर क्लेशसे भरे हुए मारीचके स ताप को गिरा दिया । नन्दनेन वल्ल स्थलमें भालेका प्रहारकर घडे कष्टसे वरको मार डाला ॥१०॥ सिंह जघनने प्रथितरौ और वद्यामने विघ्नको मार गिराया । तदनन्तर सूर्य अस्त हुआ और उस दिनके युद्धका उपसंहार हुआ ॥११॥ अपने अपने पतिको मरा सुन स्त्रियों शोकरूपी सागरमें निमग्न हुईं और उस रात्रिको अनन्त—बहुत भारी मानने लगीं ॥१२॥

तदनन्तर दूसरे दिन तीव्र क्रोधसे भरे वज्राट्य, क्षपितारि, मृगेन्द्रदमन, विधि, शम्भु, स्वयंभु, चन्द्र, अर्क तथा वज्रोदर आदि राक्षम पक्षके और उनसे भिन्न दूसरे वानर पक्षके योद्धा



जन्मा तराजितक्रोधकर्मबन्धोद्भयेन ते । योद्धु परममासक्ता निजजावितनिर्यूहा ॥१५॥  
 क्षपितारि समाहृत सक्रोधेन महारुपा । शृगारिद्रमनो बलिना सहृतो बाहुशालिना ॥१६॥  
 विधिर्वितापिनाऽयोयमेव जात महाहृद्ये । भटेवज्ञातसञ्ज्ञेपु निपत सुपलेष्विव ॥१७॥  
 शार्दूलस्ताडित पूर्व बज्रोदरमताडयत् । सक्रोध सुचिर युद्ध क्षपितारिरमारयत् ॥१८॥  
 विशालद्युतिनामा च शम्भुना विनिपातित । मृत्यु स्वयम्भुवा नातो विजयो यष्टिताडित ॥१९॥  
 वितापिविधिना ध्वस्तो गदाघातेन कृच्छृत । साम तैरिति ह्यन्यन्ते सामता शतशस्तदा ॥२०॥  
 अवसोदत्ततो दृष्ट्वा इव क्रिष्किन्धपतिर्वलम् । परमक्रोधसम्भारो यावत्सन्नदधुमुद्यत ॥२१॥  
 अङ्गनातनयस्तावत्त स्वसैन्येन युग्महाम् । चारणोऽथ रथ हेमनास्त्रो योद्धुमुद्यतौ ॥२२॥  
 रथ सामन्तसङ्घातो दृष्ट्वैव पवनामजम् । गवामिव गणो भ्रान्तध्वस्त केशरिदर्शनात् ॥२३॥  
 ऊचुश्च राक्षसा सोऽप्य हनुमान् वानरध्वज । अद्यैव विधवा योषा पर बह्वी करिष्यति ॥२४॥  
 माला तस्याप्रतो भूतो युद्धार्थं राक्षसोत्तम । समुद्ध्य शर तस्य पुरो वातिरजायत ॥२५॥  
 तयारभून्महद्युद्ध शरैराकर्णसहितै । उपात्तसाधुनिस्वान क्रमेण परमोद्धतम् ॥२६॥  
 सचिवा सचिवै साक रथिनो रथिभिस्तथा । सादिनो सादिभि सत्रा लग्ना सुकरणोद्यता ॥२७॥  
 मालिन नष्टमालोत्थय शक्या पवनजन्मन । बज्रोद्रोऽभवत्तस्य पुर परमविग्रम ॥२८॥  
 चिरकृतरणोऽप्याय वातिना विरथाकृत । रथमन्य समारुह्य मारुति समधावत ॥२९॥  
 हृत्वा त विरथ भूयो मारुति परमोद्य । उपर्यैवाह्वयत्तस्य रथ माहतरहसम् ॥३०॥

युद्ध करनेके लिए उद्यत हुए ॥१३-१४॥ जन्मातरां सचित क्रोध कर्मके तीव्र उच्यसे वे अपने जीवनमें नि एह हो भयकर युद्ध करनेमें जुट पड़े ॥१५॥ महाक्रोधसे भरे सक्रोधने क्षपितारिको ललकारा, भुवाआसे मुशोभित बलीने सिंह दमनको बुलाया और वितापिने विधिको पुकारा । इस प्रकार परस्पर महायुद्ध होनेपर चिनके नामोंका पता नहीं था ऐसे अनेक योद्धा मर मरकर ऐसे गिरने लगे मानो पत्थर ही बरस रहे हों ॥१६-१७॥ जिसपर पहले प्रहार किया गया था ऐसे शार्दूलने बज्रोदरको मारा । दीर्घकाल तक युद्ध करनेवाले सक्रोधको क्षपितारिन मार डाला ॥१८॥ शम्भुने विशालद्युतिको मार गिराया, स्वयम्भूने यष्टिकी चोटसे विजयको मृत्यु प्राप्त करा दी और विधिने गदाके प्रहारसे वितापिकी बड़ी कठिनाईसे मार पाया । इस प्रकार उस समय सामन्ताके द्वारा सैकड़ा सामन्त मारे गये थे ॥१९-२०॥

तदनन्तर अपनी सेनाको नष्ट होती देख परमक्रोधसे भरा सुग्रीव जयतक कण्व धारण करनेके लिए उद्यत हुआ तबतक अपनी सेनासे पृथिवीको व्याप्त करनेवाला हनुमान् हाथियासे जुने स्पर्णमय रथपर सवार हो युद्ध करनेके लिए उठ खड़ा हुआ ॥२१-२२॥ जिस प्रकार सिंहको देगन्तर गायाका समूह भयभीत हो इधर उधर भागने लगता है, उसी प्रकार हनुमान्को देख गान्धस सामन्ताका समूह भयभीत हो इधर उधर भागने लगा ॥२३॥ राक्षस परस्पर कहने लगे कि यह हनुमान् आन ही अनेक स्त्रियाको निधवाएँ कर देगा ॥२४॥ तदनन्तर युद्धका अभिलाषी राममाका शिरोमणि, माली हनुमान्के आगे आया सो हनुमान् भी बाण निकालकर उसके सामने जा पहुँचा ॥२५॥ वानावन रीच-रीचकर चढाये हुए बाणासे उन वीनाका ऐसा महायुद्ध हुआ कि त्रिमम क्रम क्रमसे ठीक ठीक शब्दका उच्चारण हो रहा था, तथा जो परम उद्धततासे युक्त था ॥२६॥ योग्य युद्ध करनेमें तत्पर सचिव, सचिवाके साथ, रथी रथियोंके साथ और घुड़सवार घुड़सवारके साथ जूझ पड़े ॥२७॥ हनुमान्की शक्तिसे मालीको नष्ट हुआ देख परम पराक्रमी यन्त्रादर उससे सामान आया ॥२८॥ चिरकाल तक युद्ध करनेके बाद हनुमान् ने जय उसे रथ रहितकर दिया तब यह दूसरे रथपर सवार हो हनुमान्की ओर दौड़ा ॥२९॥ परम अभ्युद्यक

स्पन्दनोद्वाहिवागाहिचूणित स रणाजिरे । अमुञ्चत द्रुत प्राणान् हुङ्कारेणापि वज्रित ॥३१॥  
 ततोऽस्याभिमुख तस्थौ स्वपञ्चवधकोपित । जम्बूमालीति विख्यातो रावणस्य सुतो बली ॥३२॥  
 असातुयितमात्रश्च ध्वज वानरलान्धनम् । चिच्छेद वायुपुत्रस्य चन्द्रार्द्धसदृशोपुणा ॥३३॥  
 केतुकल्पनद्वयेन तस्य मासुतिना धनु । कवच च ततो नीत पुराणवृणशोणताम् ॥३४॥  
 'ततस्तनुदरोसूनुर्वध्वान्य कवच दृढम् । अताडयन्मरुत्सूनु 'तीक्ष्णैर्वज्रसि सायकै ॥३५॥  
 बालनीलो पलम्लाननालस्पर्शसमुद्भवै । असेवत 'स तै सौर्य धरणीधरधारर्था ॥३६॥  
 अधास्य वायुपुत्रेण रथयुक्त महोद्धतम् । मुक्त सिंहशत पृष्ठीचन्द्रवक्रेण पत्रिणा ॥३७॥  
 दृष्टाकरालवदनै स्फुरद्गोहितलोचनै । तैरुपत्य निज सैन्य सकल विह्वलीकृतम् ॥३८॥  
 महाकह्लोलसङ्काशास्तस्य सैन्यार्णवस्य ते । क्रूरनक्रसमाना वा जाता प्रबलमूर्तय ॥३९॥  
 षण्डसौदामिनीदण्डमण्डलाकारहारिण । सैन्यमेघसमूह ते परम क्षोभमानयन् ॥४०॥  
 रणसमारचक्रेऽसौ सैन्यलोक समन्तत । सिंहकर्मभिरत्यर्थमहादु खवशीकृत ॥४१॥  
 वाजिनो वारणा मत्ता रघारोहाश्च विह्वला । रणव्यापारनिर्मुक्तानेशुर्दश दिशस्तत ॥४२॥  
 ततो नष्टेषु सर्वेषु सामन्तेषु यथायथम् । अपश्यद्वावण यातिर्द्वरेऽवस्थितमप्रत ॥४३॥  
 आरक्ष च रथ सिंहैर्युक्त परमभासुरै । अधावद्वाणमुद्दृष्ट्य विशयन्दमुत्स प्रति ॥४४॥

धारक हनूमान्ने उसे पुन रथरहित कर दिया और उसके ऊपर वायुके समान वेगशाली अपना रथ चढा दिया ॥३०॥ जिससे रथको खींचनेवाले हाथियोंके पैरोंसे चूर-चूर होकर उसने रणाङ्गणमें शीघ्र ही प्राण छोड़ दिये । अब हुंकारसे भी रहित हो गया ॥३१॥

तदनन्तर रावणका जम्बूमाली नामका प्रसिद्ध बलवान् पुत्र, अपने पक्षके लोगोंकी मृत्युसे कुपित हो हनूमान्के सामने खड़ा हुआ ॥३२॥ इसने खड़े होते ही, अर्धचन्द्र सदृश वाणके द्वारा हनूमान् की वानरचिह्नित ध्वजा छेद डाली ॥३३॥ तदनन्तर ध्वजाके छेदसे हर्षित हुए हनूमान्ने उसके धनुष और कवचको जीर्ण तृणके समान जर्जरता प्राप्त करा दी अर्थात् उसका धनुष और कवच दोनों ही तोड़ दिये ॥३४॥ तदनन्तर मन्दोदरीके पुत्र जम्बूमालीने तत्काल ही दूसरा मजजुत कवच धारण कर तीक्ष्ण वाणों द्वारा हनूमान्के वक्षस्थलपर प्रहार किया ॥३५॥ सो पहाड़के समान अत्यन्त धीर बुद्धिको धारण करनेवाले हनूमान्ने उन वाणोंसे ऐसे मुखका अनुभव किया मानो बाल नीलकमलके मुरभाये हुए नालोंके स्पर्शसे उत्पन्न हुए मुखका ही अनुभव कर रहा हो ॥३६॥ तदनन्तर हनूमान्ने पृष्ठीके चन्द्रमाके समान कुटिल वाणके द्वारा जम्बूमालीके रथमें जुते हुए महा उद्धत सौ सिंह छोड़ दिये अर्थात् एक ऐसा वाण चलाया कि उससे जम्बूमालीके रथमें जुते सौ सिंह छूट गये ॥३७॥ जिनके मुख दाढ़ोंसे भयकर थे तथा लाल-लाल आँसु चमक रही थीं ऐसे उन सिंहोंने उद्दलकर अपनी समस्त सेनाको विह्वलकर दिया ॥३८॥ उस सेनारूपी सागरके मध्यमें वे सिंह बड़ी बड़ी तरङ्गोंके समान जान पड़ते थे अधवा अतिशय बलवान् क्रूर मगर-भच्छोंके समान दिखायी देते थे ॥३९॥ चमकते हुए विद्युद्दण्डके समूहका आकार धारण करनेवाले उन सिंहोंने सेनारूपी मेवाँके समूहको अत्यन्त क्षोभ प्राप्त कराया था ॥४०॥ युद्धरूपी ससारचक्रके बीचमें सैनिकरूपी प्राणी, सिंहरूपी कर्मोंके द्वारा सन ओरसे अत्यन्त दुःखी किये गये थे ॥४१॥ घोड़े, भदोन्मत्त हाथी और रथोंके सवार—सभी लोग विह्वल हो युद्ध सम्बन्धी कार्य छोड़ दशां दिशाओंमें भागने लगे ॥४२॥ तदनन्तर यथायोग्य रीतिसे सन सामन्ताके भाग जानेपर हनूमान्ने कुछ दूर सामने स्थित रावणको देखा ॥४३॥ तदनन्तर वह अत्यन्त वैदीप्यमान सिंहोंसे युक्त रथपर सवार हो वाण खींचकर रावणकी

दशास्यस्त्रासित वीच्य निज वेसरिभिर्नैलम् । समीप चाङ्गनासुनु कृतान्तमिज दुर्धरम् ॥४५॥  
 चक्रे योद्घुमभिप्राय यात्रस्तत्राहतपर । तान्महोदरोऽस्वान्ते सरभेगे समुद्ययी ॥४६॥  
 महोदरस्य च वातेश्च वचंते यात्रदाहव । तावत्ते हरय प्राङ्गैर्गृहीता स्वामिभि शनै ॥४७॥  
 वर्षाभूतेषु सिंहेषु जाता सन्तो महारुप । वायुपुत्र समुपेत समस्ता राक्षसध्वजा ॥४८॥  
 तथाप्यनिलसुनुस्तान् सुब्रत शरसहती । दधार मण्डलाभूवान् पत्रत्रिसधिवै कृता ॥४९॥  
 ते शिलीमुखसङ्घाता प्रहितास्तस्य राक्षसै । सयतस्य यथाऽऽशेषा नाभवन्कम्पकारिण ॥५०॥  
 रक्षोभिर्वेष्टित दृष्ट्वा तैस्तमतिभूरिभि । इमे वानरवर्गीणा समराय समुद्यु ॥५१॥  
 सुपेणो नलनीलो च प्रीतिङ्करो विराड्रित । सन्नासको हरिकटि सूर्यज्योतिर्महाखल ॥५२॥  
 जाम्बूनदमुतायाश्च सिद्धमारवयुतै रथै । कृच्छ्राद्रावणसैन्यस्य निवारयितुमुद्यता ॥५३॥  
 तै समापतितै सैन्य दशम्रावस्य सर्वत । परीपहैरिव ध्वस्त महातुच्छेष्ट व्रतम् ॥५४॥  
 आर्त्मीयानाकुलान् दृष्ट्वा युयुसु च दशाननम् । आदित्यश्रवणो योद्घुमुदगतो सुमहाबल ॥५५॥  
 दृष्ट्वा तमुदगत वीर ज्वलन्त रणतेजसा । सुपेणादानिमे प्रापु साधारयितुमाकुला ॥५६॥  
 इन्द्ररिमर्गयस्कन्दश्चन्द्राभो रतिवर्धन । अङ्गोऽङ्गदोऽथ समेद कुमुद शशिमण्डल ॥५७॥  
 बलिश्चण्डतरङ्गश्च सारो रत्नजग जय । वेलाक्षेपी वसन्तश्च तथा कोलाहलाद्य ॥५८॥  
 ततस्ते बहुबलनेन प्रवारा पद्मपञ्चिग । लग्ना महाहव कर्तु शयुमार्गन्तदु सहम् ॥५९॥

और दीड़ा ॥४४॥ अपनी सेनाको सिंहोंके द्वारा त्रासित तथा यमराजके समान दुर्धर हनूमानको पास आया देख, कञ्च आदि धारण करनेमें तत्पर रावणने ज्योही युद्धका विचार किया त्याही उसके पास बैठा महोदर क्रोधपूर्वक उठ खड़ा हुआ ॥४५-४६॥ इधर जन तक्रु महोदर और हनूमानका युद्ध होता है तब तक वे छूटे हुए सिंह धीरे धीरे बुद्धिमान् स्वामियाके द्वारा पकड़ लिये गये ॥४७॥ सिंहोंके वर्षाभूत होने पर जिनका तीव्र क्रोध बढ रहा था ऐसे समस्त राक्षस यद्यपि पवन पुत्र पर दृढ़ पडे ॥४८॥ तथापि अतिशय कुशल हनूमानने, वाण समूहको छोडने वाले उन समस्त राक्षसोंको वाणरूपी मन्त्रियोंके द्वारा रोक लिया ॥४९॥ जिस प्रकार दुर्जन मनुष्यों के द्वारा कहे हुए दुर्जचन सयमी मनुष्यके कम्पन उत्पन्न करने वाले नहीं होते उसी प्रकार राक्षसों के द्वारा छोडे हुए वाणोंने समूह हनूमानके कम्पन उत्पन्न करने वाले नहीं हुए अर्थात् धीर वीर हनूमान्, राक्षसोंके वाणोंसे कुछ भी विचलित नहीं हुआ ॥५०॥

तदनन्तर हनूमानको बहुतसे राक्षसोंके द्वारा घिरा देख वानर पक्षके ये योद्धा युद्धके लिए उद्यत हुए ॥५१॥ सुपेण, बल, नील, प्रीतिकर, विराधित, सन्नासक, हरिकटि, सूर्यज्योति, महाबल और जाम्बूनदके पुत्र आदि । ये सब सिंह, हाथी और घोड़ोंसे जुते हुए रथा पर सजार हो बड़ी कठिनार्थोंसे रावणकी सेनाको रोकनेके लिए उद्यत हुए ॥५२-५३॥ जिसप्रकार किसी अत्यन्त तुच्छ पुरुषके द्वारा धारण किया हुआ व्रत परिपदाके द्वारा ध्वस्त—नष्ट भ्रष्ट हो जाता है उसी प्रकार सब ओरसे आते हुए वानर पक्षके योद्धाओंसे रावणकी सेना ध्वस्त हो गई ॥५४॥ अपने पक्षके लोगोंको व्याकुल देख रावण युद्ध करनेका अभिलाषी हुआ, सो उसे देख महानलजान् भानुकर्ण (कुम्भकर्ण) युद्ध करनेके लिए उठा ॥५५॥ रणके तेजसे देदीप्यमान धीर भानुकर्णको उठा देख, ये लोग सुपेण आदिको महारा देनेके लिए पहुँचे ॥५६॥ चन्द्ररिम, जयस्कन्द, चन्द्राभ, रतिवर्धन, अङ्ग, अङ्गद, समेद, कुमुद, चन्द्रमण्डल, बलि, चण्डतरङ्ग, सार, रत्नजगी, जय, वेलाक्षेपी, वसन्त, तथा कोलाहल आदि ॥५७-५८॥ ये सब राम पक्षके अत्यन्त बलवान् योद्धा,

क्रुद्धेन कुम्भकर्णेन ततस्ते रणपामनाः । विद्यया स्वापिताः सर्वे देशानावरणी जया ॥६०॥  
 निद्राप्रणितनेत्राणां तेषां शस्त्रावसङ्गिनाम् । करेभ्यः सायकाः पेतुः शिथिलेभ्यः समन्ततः ॥६१॥  
 निद्राविद्राणसङ्प्रामानेतानव्यकचेतनान् । दृष्ट्वाऽमुञ्जत सुप्रीवो विद्यां द्राक्प्रतिबोधिनीम् ॥६२॥  
 प्रतिबुद्धस्तया तेऽथ सुतरा जाततेजसः । हनूमदादयो योद्भुं प्रवृत्ताः सङ्कलं परम् ॥६३॥  
 शास्त्रोत्तरिचिह्नानां बलमत्यर्थपुष्कलम् । छत्रासिपत्रसङ्कीर्णमच्छिन्नरणलालसम् ॥६४॥  
 स्पर्द्धमान समालोच्य ध्रुव्यसागरसन्निभम् । अवस्थां च स्ववाहिन्याः परिप्राप्तामसुन्दरीम् ॥६५॥  
 उन्नेहे रात्रणो योद्भु प्रणम्य च तमिन्द्रजित् । कृताञ्जलिरिद वाक्यममापत महाद्युतिः ॥६६॥  
 तात तात न ते युक्त सम्प्राप्त मयि तिष्ठति । निष्कलन्वं हि मे जन्म सर्वेषु प्रतिपद्यते ॥६७॥  
 नखच्छेद्ये तृणे कि वा परशुरुचिता गतिः । सतो भव सुविश्रब्धः करोम्येव तवेषिसतम् ॥६८॥  
 इयुत्वा मुदितोऽथन्तमारस गिरिसन्निभम् । त्रैलोक्यकण्टकाभिरुच्यं गजेन्द्रं परमप्रियम् ॥६९॥  
 गृहीतादरसर्वस्वो महासचिवमद्गतः । क्रुद्धवाखण्डलसङ्काशः प्रवीरो योद्भुमुद्यतः ॥७०॥  
 कपिध्वजबल तेन विविधायुधसङ्कटम् । प्रस्तमुत्थितंमात्रेण महावीर्येण मानिना ॥७१॥  
 किञ्चिन्वाधिपतेः सैन्ये न सोऽस्ति कपिकेतनः । यो न शक्यिता विद्धः शरैराकर्णसहितैः ॥७२॥  
 किमथ शक्यिन्नाय शक्यो वह्निरथं नु किम् । उतायमपरो भानुरिति वाचः समुद्ययुः ॥७३॥

ऐसा महायुद्ध करने लगे कि जो शत्रु-सामन्ताको अत्यन्त दुःसह था ॥५६॥ तदनन्तर रणको राजसे युक्त उन सब वीरोंको क्रोधसे भरे भानुकर्णने निद्रा नामा विद्याके द्वारा मुला दिया ॥६०॥ तत्पश्चान् निद्रासे जिनके नेत्र धूम रहे थे ऐसे शस्त्रोंको धारण करनेवाले उन वीरोंके हाथ सब ओरसे शिथिल पड़ गये तथा उनसे अस्त्र-शस्त्र नीचे गिरने लगे ॥६१॥ निद्राके कारण जिनका युद्ध बन्द हो गया था तथा जिनकी चेतना अव्यक्त हो चुकी थी ऐसे उन सबको देख सुप्रीवने श्रीप ही प्रतिबोधिनी नामकी विद्या छोड़ी ॥६२॥ तदनन्तर उस विद्याके प्रभावसे प्रतिबुद्धि होनेके कारण जिनका तेज अत्यन्त बढ़ गया था ऐसे हनूमान् आदि वीर अत्यन्त भयङ्कर युद्ध करनेके लिए प्रवृत्त हुए ॥६३॥ वानर वंशियों की वह सेना बहुत बड़ी थी, छत्र, रत्न तथा वाहनोंसे व्याप्त थी, उसकी युद्ध की लालसा समाप्त नहीं हुई थी, उत्तरोत्तर स्पर्धा करनेवाली थी, और क्षोभ को प्राप्त हुए सागरके समान जान पड़ती थी । इसके विपरीत रावणकी सेनाकी दशा अत्यन्त अशोभनीय हो रही थी सो वानर वंशियोंकी सेना तथा अपनी सेनाकी दशा देख रावण युद्धके लिये उत्साही हुआ सो महादीप्तिका धारक इन्द्रजित् प्रणाम कर तथा हाथ जोड़कर यह कहने लगा कि ॥६४-६६॥ हे तात ! हे तात ! मेरे रहते हुए इस समय आपका युद्धके लिए तत्पर होना उचित नहीं है क्योंकि ऐसा होने पर मेरा जन्म निष्कलताको प्राप्त होता है ॥६७॥ अरे ! जो तृण नररके द्वारा छेदा जा सरता है वहाँ परशुका प्रयोग करना क्या उचित है ? इसलिए आप निश्चिन्त रहिये आपका मनोरथ मैं पूर्ण करता हूँ ॥६८॥ इतना कहकर अत्यधिक प्रसन्नतासे भरा इन्द्रजित् पर्वतके समान त्रैलोक्यकण्टक नामक अपने परम प्रिय गजेन्द्र पर सवार होकर युद्धके लिये उद्यत हुआ । उस समय जिसने आदर रूपी सर्वस्व ग्रहण किया था, ऐसा वह इन्द्रजित् महामन्त्रियोंसे सहित था, सम्पदासे इन्द्रके समान जान पड़ता था तथा अतिशय घोर-घोर था ॥६९-७०॥ उस महाबलवान् मानी इन्द्रजित्ने उठते ही नाना शस्त्रोंसे भरी वानरोंकी सेना क्षणमात्रमें प्रस ली—दबा दी ॥७१॥ सुप्रीवकी सेनामें ऐसा एक भी वानर नहीं था जिसे इन्द्रजीतने पान तक बिचे हुए वागोंसे घायल नहीं किया हो ॥७२॥ उस समय लोगोंके मुग्धसे

प्रसवमान निज सैन्य वीक्ष्य शकनित्ता तत । सुग्रीव स्वयमुवाच प्रभामण्डल एव च ॥७४॥  
 तद्गणानामभूद्युद्धमन्योन्याह्वानसङ्कुलम् । शस्त्रान्वकारिताकाशमनपेक्षितजीवितम् ॥७५॥  
 'अश्वैरश्वा सम एव्ना नाना नागै रथा रथै । निजनाथानुरागेण महोत्साहो भग भर्त' ॥७६॥  
 जगादेन्द्रजित क्रुद्ध किष्किन्धेरा पुर स्थितम् । अपूर्वशस्त्रभूतेन स्वरेण गगनस्पृशा ॥७७॥  
 दशोत्स्यशासन त्यक्त्वा शास्त्रामृगपशो त्वया । क्वायुना गम्यते पाप मयि कोपमुपागते ॥७८॥  
 इन्द्रीवरनिभेनाथ सायकेन तवामुना । शिरश्छिनद्मि सरत्वा कुरता क्षितिगोचरी ॥७९॥  
 किष्किन्धेशस्ततोऽघोचन् किमेभिर्गजितैर्मुधा । मानशृङ्गमिद् भग्न तत्तु परय मयायुना ॥८०॥  
 इयुक्ते कोपसम्भार वहन्निन्द्रजितोऽद्भुतम् । चापमास्फालयन्नस्य समीपत्वमुपागत ॥८१॥  
 शशिमण्डलसङ्घाशच्छत्रद्यायामुमेवित । सुमोघ शरसङ्घात किष्किन्धारापतिं प्रति ॥८२॥  
 सौऽन्याकर्णतमाहृष्टान् वाणासादोपलचितान् । निजरक्षामहादृशश्चिक्षेपेन्द्रजित प्रति ॥८३॥  
 तेन वाणसमूहेन सन्ततेन निरन्तरम् । ज्ञात नभस्तल सर्वं भूतियुक्तामिवापरम् ॥८४॥  
 मेघवाहनवारेण प्रभामण्डलमुन्दर । आहृतो वज्रनक्रश्च विराधितमहोभृता ॥८५॥  
 विराधितनरेन्द्रेण वज्रनक्रनरोत्तम । राजन् वक्षसि चत्रेण भानुरेणाभिवारित ॥८६॥  
 ताडितो वज्रनक्रेण सोऽपि चत्रेण वक्षसि । विना हि प्रतिदानेन महर्ता जायते त्रपा ॥८७॥  
 चक्रवृत्ताहनिष्येपजन्मवह्निकणोत्करै । चक्रतुल्कास्फुलिङ्गौषपिङ्गतां गगन गतम् ॥८८॥

इसप्रकारके वचन निरुल रहे थे कि—यह इन्द्रजित नहीं है ? किन्तु इन्द्र है ? अथवा अग्निकुमार देव है, अथवा कोई दूसरा सूर्य ही उदित हुआ है ॥७३॥ तदनन्तर अपनी सेनाको इन्द्रजीतूके द्वारा दृष्टी देकर स्वयं सुग्रीव और भामण्डल युद्धके लिए उठे ॥७४॥ तत्पश्चात् उनके योद्धाओंमें ऐसा युद्ध हुआ कि जो परस्परके बुलनिके शब्दमें व्याप्त था, शस्त्रोंके द्वारा जिसमें आकाश अन्धकारयुक्त हो रहा था और जिसमें प्राणोंकी अपेक्षा नहीं थी ॥७५॥ घोड़े घोड़ासे, हाथी हाथियोंसे, रथ रथोंसे और अपने स्वामाके अनुरागके कारण महोत्साहसे युक्त पैदल सैनिक पैदल सैनिकोंसे भिड गये ॥७६॥

अथानन्तर क्रोधसे भरा इन्द्रजित् सामने रखे हुए सुग्रीवको लक्ष्य कर अपूर्व शस्त्रभूत गगनस्पर्शांस्वरसे बोला ॥७७॥ कि अरे ! पशु तुल्य नीच बानर ! पापी ! रावणकी आज्ञा छोड़ कर अब तू मेरे लुपित रहते हुए कहीं जाता है ? ॥७८॥ आन मैं इस नील कमलके समान श्याम तलवारसे तेरा मस्तक काटता हूँ, भूमिगोचरी राम लक्ष्मण तेरी रक्षा करें ॥७९॥ तदनन्तर सुग्रीवने कहा कि इन व्यर्थको गर्वनाओंसे क्या लाभ है ? देख तेरा मान रूपी शिखर मैं अभी ही भग्न करता हूँ ॥८०॥ इतना कहते ही क्रोधके भारको धारण करने वाला इन्द्रजित् अद्भुत रूपसे घनुपका आस्फालन करता हुआ सुग्रीवके समीप पहुँचा ॥८१॥ तत्पश्चात् इधर चन्द्रमण्डलके समान छत्र की छायासे सेवित इन्द्रजित्ने सुग्रीवको लक्ष्य कर वाणोंका समूह छोड़ा ॥८२॥ उधर अपनी रक्षा करनेमें अत्यन्त चतुर सुग्रीवने भी कान तक खिंचे तथा शब्दसे युक्त वाण इन्द्रजित् की ओर छोड़े ॥८३॥ उन विस्तृत वाणोंके समूहसे निरन्तर व्याप्त हुआ समस्त आकाश ऐसा हो गया मानो मूर्तिधारी दूसरा ही आकाश हो ॥८४॥ उधरसे घोर मेघवाहने भामण्डलको लक्ष्य कर और इधरसे राजा विराधितने वज्रनक्रको पुकारा ॥८५॥ गौतम स्वामी श्रेणिकसे कहते हैं कि हे राजन ! राजा विराधितने वज्रनक्र राजाकी छाती पर देदीप्यमान चक्रकी चोट देकर उसे गिरा दिया ॥८६॥ इसके वल्ले वज्रनक्रने भी सभलकर विराधितकी छाती पर चक्रका प्रहार किया मो टीरु ही है क्योंकि वल्ले चक्राये विना वही लज्जा उत्पन्न होती है ॥८७॥ उस समय

१. श्रुतीरश्वे म० । २ महात्सादभग म० । ३ समाकृष्यन् म० । ४ निजरक्षामहार म० ।  
 ५ राजनक्षमि म० ।

लङ्कानाथस्य पुत्रेण निरस्र सूर्यनन्दनः । कृतं सद्भ्रामशौण्डेन सद्भ्रामादनिवर्तकं ॥८८॥

तेनापि तस्य वज्रेण सर्वशस्त्र निराकृतम् । पुण्ड्रानुकूलितानां हि नैरन्तर्यं न जायते ॥९०॥

अपतीर्य ततः क्रुद्धो नागादिन्द्रजितो द्रुतम् । सिंहस्यन्दनमारुह्य पिञ्जरीकृतपुष्करम् ॥९१॥

समाहितमतिर्नानाविधास्त्रप्रतिपण्डितः । योद्धुमभ्युद्यतो विभ्रमसज्जवनिवाहये ॥९२॥

अस्र घनौघनिर्घोषं सम्प्रयुज्य सवारणम् । दिशः किङ्किणधराजस्य चकारालोऋवर्जिताः ॥९३॥

तेनापि पवनाखेण कृत्तयुगध्वजादिना । तदस्र वारुण्यं क्वापि नांत तूलोक्त्रोपम् ॥९४॥

घनवाहनवीरोऽपि प्रभामण्डलभूभृत् । आग्नेयास्त्रनियोगेन चकार धनुस्त्रिव्यनम् ॥९५॥

तस्य स्फुल्लिङ्गससर्गोद्ग्येवामपि चापिनाम् । धूमोद्गारानमुद्यन्त धनूषि भयवीक्षितम् ॥९६॥

नितान्तमद्भुयोद्धृणां जीवितप्रमनादिव । प्राप्तानां परमार्जोषं धनुषां ते तदाभवन् ॥९७॥

वारुणेन ततोऽखेण शरित जनकात्मजः । आग्नेयास्त्र निरास्रक्रे स्यचक्रे कृतपालनः ॥९८॥

ततो मन्दोदरीसूनुश्चक्रे त रथवज्रितम् । तथाग्निधमहासत्वमाकुलत्वविवर्जितम् ॥९९॥

प्रयोगकुशलश्चास्त्रमस्र तामसमधिपत् । तेनान्धकारित सैन्यं सर्वं जनकजन्मनः ॥१००॥

३स नाजानाद् द्विप न च्मा नात्मीय न च शारवम् । अन्धध्वान्तपरिच्छदो मूर्च्छामिव समागतः ॥१०१॥

चक्र और कयचकी टक्करसे जो आग्निके कण उत्पन्न हुए थे, उनके समूहसे आकारा इस प्रकार पीला हो गया मानो चमकती हुई उल्काओंके तिलगोके समूहसे ही पीला हो रहा हो ॥८८॥ युद्ध-निपुण लङ्कानाथके पुत्र इन्द्रजित्ने सुग्रीवको नि शस्त्र कर दिया फिर भी यह संभ्रामसे पीछे नहीं हटा ॥८९॥ प्रत्युत इसके विपरीत सुग्रीवने भी वज्रके द्वारा इन्द्रजित्के सर्वशस्त्र दूर कर दिये सो ठीक हो है क्याकि पुण्यात्मा जीवोंके किसी कार्यमें अन्तर नहीं पड़ता ॥९०॥ तदनन्तर शौच से भरा इन्द्रजित् शीघ्र ही हाथीसे उतर कर आकाराको पीला करने वाले सिंहोंके रथपर आरुढ़ हुआ ॥९१॥ तत्पश्चात् जिसकी बुद्धि स्थिर थी, जो नाना विद्यामय अस्त्र-शस्त्रोंके चलानेमें निपुण था और जो युद्धमें मानो नवीन रस धारण कर रहा था ऐसा इन्द्रजित् मायामय युद्ध करनेके लिए उद्यत हुआ । ९२॥ प्रथम ही उसने मेघ-समूहके समान गर्जना करने वाला वारुण अस्त्र छोड़ कर सुग्रीवकी दिशाओंको प्रकाशसे रहित कर दिया ॥९३॥ इसके बदले सुग्रीवने भी ध्वज तथा ध्वजा आदिको छेदने वाला पवन घाण चलाया जिससे इन्द्रजित्का वारुण अस्त्र रुईके समूहके समान फही चला गया ॥९४॥

उधर शीघ्र मेघवाहनने भी आग्नेय घाण चलाकर राजा भ्रामण्डलके धनुषको दग्धन बना दिया अर्थात् जला दिया ॥९५॥ उस धनुषके तिलगोके सम्प्रन्धसे अन्य धनुष धारियोंके धनुष भी धूम छोड़ने लगे जिसे मन सेनाने बड़े भयसे देखा ॥९६॥ उन धनुषोंने अनेक योद्धाओंके प्राण प्रसित किये थे इसलिए ऐसा जान पड़ता था मानो उन्हें अत्यधिक अजीर्ण ही हो गया हो । ९७॥ तदनन्तर अपने चक्र—सेनाको रक्षा करते हुए भ्रामण्डलने शीघ्र ही वारुण अस्त्र छोड़ कर आग्नेय अस्त्रना निराकरण कर दिया ॥९८॥ तत्पश्चात् मन्दोदरीके पुत्र मेघवाहनने उस प्रकारके महाराजकी एवं आकुलतासे रहित भ्रामण्डलको रथ रहित कर दिया अर्थात् उसका रथ तोड़ टाला ॥९९॥ यही नहीं प्रयोग करनेमें कुशल मेघवाहनने मन्तर तामस घाण भी चलाया जिसमें भ्रामण्डलकी समस्त सेना अन्धकारसे युक्त हो गई ॥१००॥ यह उस समय अन्धकारके कारण न अपने हाथी तथा पृथिवीको जान पाता था, न शयु सम्बन्धी हाथी तथा पृथिवी ही को जान पाता था । गाढ़ अन्धकारसे आन्ध्रादित हुआ यह मानो मूर्च्छाको ही प्राप्त हो रहा था

अर्थाभूतो दशास्यस्य मुतेन जनकामन । विमुक्तविपधर्मोषैः वेष्टितो नागसायकै ॥१०२॥  
 तै रमी व्याससर्वाङ्गो विस्फुरन्नोगभासुरै । चन्दनद्रुममङ्गारा पपात वसुधातले ॥१०३॥  
 पृबमिन्द्रनितेनापि कृता किङ्किण्यभ्यूत । भवस्याध्वान्तनागाखद्वयव्यापारकारिणा ॥१०४॥  
 तदा विभाषणो विद्वान् विद्याखरणवस्तुनि । कृवा करपुट मूचिन् वभापे पद्मन्त्रमणौ ॥१०५॥  
 पद्म पद्म महाबाहो वीर लक्ष्मण लक्ष्मण । एता परय दिशरद्वया शरैरिन्द्रनितेरितै ॥१०६॥  
 वियत्तल धरित्रो च तस्य चाणैरिन्द्रतै । उत्पातभूतनागाभैरातेनेऽन्यन्तदु खद्वै ॥१०७॥  
 कृता सुमाववैदेहो निरखी<sup>२</sup> नागमायकै । वद्वी निपातितो भूमौ<sup>३</sup> भयनासुतनि<sup>४</sup>सृतै ॥१०८॥  
 उदारै विनितै देव<sup>५</sup> श्रीभामण्डलपण्डितै । वारै सुप्रोवरात्रे च बहुविद्याधराधिपे ॥१०९॥  
 सद्घातमृयुमरमाक्रमसन्न विद्धि राघव । एतौ द्वि नायकावुत्प्रावसन्त्यचस्य केवली ॥११०॥  
 एतामनायकामूना विद्याधरवरधिनाम् । पलायनोद्यता परय समाश्रित्य दिशो दश ॥१११॥  
 आदित्यध्रवणेनामौ परय मारतनन्दन । विनिय समुहायुद्धे कराम्या वद्विमह ॥११२॥  
 शरनैरितच्छूयहेतुकामुक्कच्छू । गृहात प्रसभ वीर इवध्रवणपुद्गव ॥११३॥  
 यात्रसुप्रोवमाचैर्षौ पतितौ धरणोत्तले । न सम्भावयते क्षिप्र रावणो रणकोविद ॥११४॥  
 तावन्तौ स्वय गत्वा निमग्नैवानयाम्यहम् । त्व साधारय निनायामिना खेचरवाहिनाम् ॥११५॥  
 यावदेवममौ पद्म लक्ष्मण चाभिभाषने । सुनारातनयस्तावद् गत्वा स्वैरमलक्षित ॥११६॥

॥१०१॥ जन भामण्डल उस तामसवाणसे अन्धा हो रहा था तत्र मेघनाहनने उसे विपरूपी धूम का समूह छोड़ने वाले नागपाशोंसे वेष्टित कर लिया ॥१०२॥ उठते हुए फलासे सुशोभित जन नागोंसे निभना समस्त शरीर व्याप्त था और इसीलिए जो चन्दन वृक्षके समान जान पड़ता था ऐसा भामण्डल पृथिवी पर गिर पड़ा ॥१०३॥ इसी प्रकार तामस और नाग पाश इन दो अस्त्रों को चलाने वाले इन्द्रजितने भी सुप्रोवकी दशाकी अर्थात् उसे तामसास्त्रसे अन्धा कर नागपाशसे बँध लिया ॥१०४॥

तदनन्तर त्रिशामय शस्त्रोंसे युद्ध करनेमें कुशल विभीषणने हाथ जोड़ मस्तकसे लगा गम-लक्ष्मणसे कहा कि हे महाबाहो ! राम ! राम ! हे वीर ! लक्ष्मण ! लक्ष्मण ! देसो, ये दिशाएँ इन्द्रजित के द्वारा छोड़े हुए वाणोंसे आच्छादित हो रही हैं ॥१०५-१०६॥ उत्पातकारी नागोंके समान आभावाले, अत्यन्त दु रदायी उसके निरन्तर वाणोंसे आकाश और पृथिवी व्याप्त हो रही है ॥१०७॥ मन्टोदरीके पुत्रोंने सुप्रोव और भामण्डलको अस्त्र रहित कर दिया है, तथा अपने द्वारा छोड़े हुए नाग वाणोंसे उन्हें जँधकर पृथिवी पर गिरा दिया है ॥१०८॥ हे देव ! अतिशय चतुर भामण्डल और अनेक त्रिशाधरोंके राजा वीर सुप्रोवके पराजित होने पर हे राघव ! समझ लीजिये कि हम लोगोंकी सामूहिक मृत्यु निम्नटवर्ती है, क्योंकि ये दोनों ही हमारे पक्षके प्रमुख नायक हैं ॥१०९-११०॥ इधर देसो, यह त्रिशाधरोंकी सेना नायकसे रहित होनेके कारण दशा विशाओमें भागनेके लिए उद्यत हो रही है ॥१११॥ उधर देसो कुम्भकर्णने महायुद्धमें हनुमान्को जीतकर अपने हाथोंसे उसे कैदकर रक्खा है ॥११२॥ जिसका छत्र, ध्वज, धनुष और कन्ध वाणोंमें जँवर कर दिया गया है, ऐसा यह वीर हनुमान बलात् कैद किया गया है ॥११३॥ रण विशाग्द राजपत्नी पुत्र, जय तक पृथिवी पर पड़े हुए सुप्रोव और भामण्डलके समीप शीघ्रतासे नहीं पहुँचना है तब तक निश्चय पड़े हुए इन दोनोंको मैं स्वय जाकर ले आता हूँ, तुम नायक-रहित हम त्रिशाधर सेनाको आश्रय दो ॥११४-११५॥ इस तरह जन तक विभीषण राम और लक्ष्मण

१ म पुत्रने त्रैय पाठ 'सर्वाङ्गे विस्फुरन्नोगभासुरैश्चन्दनद्रुम । यथा तथाय तैर्षुक्त पपात वसुधातले ॥' २ निरखी म० । ३ मन्टोदरीपुत्र । ४ देवे म० । ५ भामण्डली ।

अभ्रंरं भानुकर्णस्य परिधानममुञ्चत । हीभाराकुलितो जातः सेतुद्वरणविह्वलः ॥११७॥  
 यावद्वासः समाधानपरोऽसौ राष्ट्रसोऽभवत् । भुजपाशोदरादस्य निःसृतस्तावदानिलः ॥११८॥  
 नवो बद्धो यथा पद्मां निर्गतः पञ्जरोदरात् । भासीत्सुचकितो वातिः प्रत्युप्रद्युतिसङ्गतः ॥११९॥  
 ततो मुदितसम्प्रीती विमानशिखरस्थितौ । हनूमदङ्गदौ वीरौ रेजतुः सुरसन्निभौ ॥१२०॥  
 ताभ्यामङ्गकुमारेण चन्द्रोदरमुतेन च । सम लक्ष्मीधरः सेनां समारवासित्यु स्थितः ॥१२१॥  
 मन्दोदरीसुत तावदभिधाय विभीषणः । स पितृव्यं समालोच्य चिन्तामेतामुपागतः ॥१२२॥  
 तातस्यास्य च को भेदो न्यायो यदि निरीक्ष्यते । ततोऽभिमुखमेतस्य नावस्थातुं प्रशस्यते ॥१२३॥  
 नागपाशैरिमौ बद्धौ मृत्यु यातौ विशस्यम् । पृतावच्चेह कर्तव्यं युक्तं तदवसर्पणम् ॥१२४॥  
 इति सञ्चिन्त्य निर्वाताविन्द्रजिन्मेघवाहनौ । गहनाहवमेदिन्याः कृतार्थत्वाभिमानिनौ ॥१२५॥  
 अन्तर्द्वौ सेविते ताभ्यां सम्भ्रान्तात्मा विभीषणः । त्रिशूलहेतिरामुक्कङ्कटस्तरलेखणः ॥१२६॥  
 उत्तार्यै स्वरथाद्वीरस्तयोर्निकम्पदेहयोः । अवस्थान्तरमद्राज्ञान्नागसायकनिर्मितम् ॥१२७॥  
 ततो लक्ष्मीधरोऽबोचत् पद्मनाभ विचक्षणः । श्रयतां नाथ यत्रेमौ महाविद्याधराधिपौ ॥१२८॥  
 अत्युजितौ महासैन्यौ महाशक्तिसमन्वितौ । धीभामण्डलसुग्रीवौ र्नातावस्त्रविमुक्तताम् ॥१२९॥  
 रावणस्य कुमारभ्यां ३स्युतावुरगमार्गणैः । तत्र त्वया मया वापि साध्यते किं दशाननः ॥१३०॥  
 ततः पुण्योदयात्पद्मः स्मृत्वा लक्ष्मणमब्रवीत् । तदा स्मर वर लब्ध योग्युपद्रवनाशने ॥१३१॥

से कहता है तब तक सुताराके पुत्र अङ्गदने छिपे-छिपे जाकर कुम्भकर्णका अधोवस्त्र रोल दिया जिससे वह लज्जासे व्याकुल हो वस्त्रके संभालनेमें लग गया ॥११६-११७॥ जब तक कुम्भकर्ण वस्त्रके संभालनेमें लगता है, तब तक हनूमान् उसकी भुजपाशके मध्यसे निकल भागा ॥११८॥ जिस प्रकार नया बंधा पक्षी पिजड़ेके मध्यसे निकलने पर चकित हो जाता है, उसी प्रकार हनूमान् भी कुम्भकर्णके भुजबन्धनसे निकलने पर चकित तथा उग्र तेजसे युक्त हो गया ॥११९॥ तदनन्तर प्रसन्नता और संतोषसे युक्त वीर हनूमान् और अङ्गद विमानके अप्रभाग पर बैठ देवोंके समान सुशोभित होने लगे ॥१२०॥ उधर अंगदके भाई अंग और चन्द्रोदरके पुत्र विराधितके साथ लक्ष्मण, विद्याधरोंकी सेनाको धैर्य बंधानेके लिए जा डटे ॥१२१॥ अब विभीषण, मन्दोदरी के पुत्र इन्द्रजित्के सामने गया सो वह काकाको देख इस चिन्ताको प्राप्त हुआ ॥१२२॥ कि यदि न्यायसे देखा जाय तो पितामें और इसमें क्या भेद है ? इसलिए इसके सन्मुख खड़ा रहना अच्छा नहीं है ॥१२३॥ ये सुग्रीव और विभीषण नागपाशसे बंधे हैं सो निःसन्देह मृत्युको प्राप्त हो चुके हैं, इसलिए इस समय यहाँसे चला जाना ही उचित है ॥१२४॥ ऐसा विचार कर कृतकृत्यताके अहंकारसे भरे इन्द्रजित् और मेघवाहन दोनों ही युद्धभूमिसे बाहर निकल गये ॥१२५॥ उन दोनोंके अन्तर्हित हो जाने पर जिसकी आत्मा घबड़ा रही थी, जो त्रिशूल नामक शस्त्र धारण कर रहा था, जिसने कवच पहिन रखा था, तथा जिसके नेत्र अत्यन्त चञ्चल थे ऐसा वीर विभीषण अपने रथसे उतर कर वहाँ गया जहाँ सुग्रीव और भामण्डल निश्चेष्ट पड़े हुए थे । वहाँ जाकर उसने नागपाशसे निर्मित दोनोंकी चिन्तनीय दशा देती ॥१२६-१२७॥

तदनन्तर युद्धिमान् लक्ष्मणने रामसे कहा कि हे नाथ ! सुनिये, जहाँ वे महाविद्याधरोंके स्वामी, अतिशय बलवान्, बड़ी-बड़ी सेनाओंसे सहित और महाशक्तिसे सम्पन्न ये भामण्डल और सुग्रीव भी रावणके पुत्रों द्वारा अत्र रहित अवरथाको प्राप्त हो नागपाशसे बंध लिये गये हैं यहाँ क्या तुम्हारे या हमारे द्वारा रावण जीता जा सकता है ? ॥१२८-१२९॥ तब पुण्योदयसे स्मरण कर रामने लक्ष्मणसे कहा कि भाई ! उस समय देशभूषण-कुलभूषण मुनियोंका उपसर्ग दूर



महालोचनदेवस्य तदभिधानमात्रत । मुखारथस्य सहसा सिंहासनमकम्पत ॥१३२॥  
 आलोचनाधिनेत्रेण ततो विज्ञाय सम्ग्रमा । विद्याप्या प्राहिणोयुक्त चिन्तावेग निज गुरुम् ॥१३३॥  
 गत्वा कथित स क्षेम सन्देश सादर सुर । तान्यामुन्ने ददौ विष्टे परिवारसमन्विते ॥१३४॥  
 १सह पद्मावदातस्य यानमर्पयदद्भुतम् । समुद्योतितदिकृचक्र सौमित्राय च गारुडम् ॥१३५॥  
 ३विद्येस प्राप्य सम्मान्य धीरी चिन्तागति मुदा । पृष्टवार्ता जिनेन्द्राणां पूजा तौ चन्तु परम् ॥१३६॥  
 पर साधुप्रसाद च प्रस्तावे सङ्गतोदयम् । सशसतुर्मुदोदारगुणग्रहणत परी ॥१३७॥  
 ४अद्राश्र च सुराक्षाणि भासुराणि सहस्रश वारणाग्निमरत्पृष्टिप्रभृतीनि सुविभ्रमी ॥१३८॥  
 चन्द्रादित्यसमे द्युत्रे चारुचामरमण्डिते । रत्नानि च प्रदत्तानि विहितानि निर्जाजसा ॥१३९॥  
 गदाप्रहरण विद्युद्बज्र लक्ष्मीधर श्रिता । हल समुसल पत्र दैयामा भयकारणम् ॥१४०॥  
 महिमान पर प्राप्य तान्मा सम्मदसङ्गत । आशा शतानि दत्त्वासौ गतो देवस्त्रिविष्टपम् ॥१४१॥

### मन्दाक्रान्तावृत्तम्

धर्मस्यैतद्विधियुतकृतस्यानवद्यस्य धीरैर्ज्ञेयं स्तुय फलमनुपम युक्तकालोपजातम् ।  
 यत्सम्प्राप्य प्रमदकलिता दूरमुक्तोपसर्गा सञ्जायन्ते स्वपरकुशल कर्तुमुद्भूतवार्या ॥१४२॥

करने पर हृम्लोगोको जो घर प्राप्त हुआ था उसका स्मरण करो ॥१३१॥ उसी समय रामके स्मरण मात्रसे मुखसे बैठे हुए महालोचन नामक गरुडेन्द्रका सिंहासन सहसा कम्पायमान हुआ ॥१३२॥ तदनन्तर अधिज्ञान रूपी नेत्रके द्वारा सन समाचार जान कर गरुडेन्द्रने शीघ्र ही दो विद्याओं के साथ अपना चिन्तावेग नामका देव भेजा ॥१३३॥ वहाँ जाकर जिसने आदरके साथ कुशल सदेश सुनाया था ऐसे उस देवने राम-लक्ष्मणके लिए परिवारसे सहित दो प्रशस्त विद्याएँ दी ॥१३४॥ रामके लिए तो आश्चर्य उत्पन्न करने वाली सिंहवाहिनी विद्या और लक्ष्मणके लिए दिक्समूहकी देदीप्यमान करने वाली गरुडवाहिनी विद्या दी ॥१३५॥ धीर धीर राम लक्ष्मणने, दोनों विद्याएँ प्राप्तकर चिन्तागति देवका बड़ा सन्मान किया, उससे कुशल समाचार पूछा और तदनन्तर जिनेन्द्रदेवकी उत्तम पूजा की ॥१३६॥ उत्तम गुणोंके ग्रहण करनेमें तत्पर रहनेवाले राम लक्ष्मणने योग्य अवसरपर प्राप्त हुए गरुडेन्द्रके उस उत्तम प्रसादकी बड़े हर्षसे स्तुतिकी प्रशंसा की ॥१३७॥ उत्तम शोभाको धारण करनेवाले राम-लक्ष्मणने उसी समय बाहुगात्र, आग्नेयात्र तथा वायव्यात्र आदि हजारों देवोपनीत देदीप्यमान शस्त्र सामने रखे देखे अर्थात् उस देवने वे सन शस्त्र उन्हें दिये ॥१३८॥ सुन्दर चमरोसे सुशोभित चन्द्रमा और सूर्यके समान छत्र तथा अपनी कान्तिसे आच्छादित अनेक रत्न भी उस देवने प्रदान किये ॥१३९॥ विद्युद्बज्र नामक गदा लक्ष्मणकी प्राप्त हुई और देवोंकी भय उत्पन्न करनेवाले हल तथा मुसल नामक शस्त्र रामकी प्राप्त हुए ॥१४०॥ इस प्रकार वह देव राम-लक्ष्मणके साथ हर्षपूर्वक मिलकर तथा परम महिमाको प्राप्तकर उन्हें सैकड़ों आशीर्वाद देता हुआ वह देव अपने स्थानको चला गया ॥१४१॥

गीतम रामो राजा श्रेणिकसे कहते हैं कि हे राजन् । जो योग्य समय पर प्रशसनीय एव अनुपम फलकी प्राप्ति होती है वह विधिपूर्वक किये हुए निर्दोष धर्मका ही फल है ऐसा धीर धीर मनुष्योंको जानना चाहिये । धर्मसे वह फल प्राप्त होता है जिसे पाकर मनुष्य उत्तम हर्षसे युक्त होते हैं, उनके उपसर्ग दूरसे ही झूट जाते हैं और वे महाशक्तिसे सम्पन्न हो स्वपरका

१. गत्वा कथित. क्षेम सन्देशः म० । २. तयो म० । ३. विद्येस प्राप्य । ४. चिन्तागति म० । ५. आन्ता म० ।

भास्तां तात्रन्मनुजजनिताः<sup>१</sup> सम्पदः कांचिलानां यच्छ्रन्तोऽष्टाधिकमतुलं वस्तु नाकथितोऽपि ।  
तस्मात्पुण्यं कुरुत सतत हे जनाः सौख्यकांक्षा येनानेक रविसमरुचः प्राप्नुताश्चर्ययोगम् ॥१४३॥

इत्यार्षे रविपेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे विद्यालाभो नाम पठितम पर्व ॥६०॥



कल्याण करनेमें समर्थ होते हैं ॥१४२॥ अथवा मनुष्य पर्यायमें उत्पन्न होनेवाली सम्पदाओंकी वात दूर रहे, स्वर्ग सम्बन्धी सम्पदाएँ भी इसे इच्छासे भी अधिक अनुपम सामग्री प्रदान करती हैं । इसलिए सुप्तकी इच्छा रखनेवाले हे भव्यजनो ! निरन्तर पुण्य करो जिससे सूर्यके समान कान्तिके धारक होते हुए तुम अनेक आश्चर्यकारी वस्तुओंके संयोगको प्राप्त हो सको ॥१४३॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविपेणाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें राम-लक्ष्मणको विद्याओंकी प्राप्ति करनेवाला साठवें पर्व समाप्त हुआ ॥६०॥



## एकपष्टितमं पर्व

एतस्मिन्नन्तरे दिव्यकवच-द्वयविग्रही । लक्ष्मीश्राव-सलक्ष्माणौ तेजोमण्डलमध्यगौ ॥१॥  
 नागारिवाहनारूढो सुकान्तौ पद्मलक्ष्मणौ । सैन्यसागरमध्यस्थौ सिंहगारुडनेतवौ ॥२॥  
 परपञ्चय कर्तुमुद्यतो परमेश्वरी । समामधरगोमध्य तेन सद्यतुष्ट-कटी ॥३॥  
 अमृतस्वरितो जात सौमित्रिभिर्भवत्सल । दिव्यातपत्रिद्विसदूरभास्करदाधिति ॥४॥  
 श्रीशैलप्रमुखेर्वीरिभूत इवगनेतनै । दधानस्रैश्च रूपमशक्यपरिवर्णनम् ॥५॥  
 अग्रन प्रस्थिते तस्मिन् द्वादशादित्यभास्वरम् । दष्ट विभीषणेनेद् जगद्धिस्मिततेजसा ॥६॥  
 गरुडनेतने तस्मिन् सग्रासे तत्तथायनम् । अद्य सान्तमस वापि गत गरुडनेजसा ॥७॥  
 गरुमपञ्चवातेन चोभितचारसिन्धुना । नाता विपथरा नाश कुभावा इव साधुना ॥८॥  
 ताक्ष्यपञ्चविनिर्मुक्तमयूत्रालोकमङ्गतम् । जाम्बूनदरसेनेव जगदासीद्विनिमित्तम् ॥९॥  
 ततो नभश्चराधीशो गतपद्मगन्धनी । प्रभामण्डलसुग्रावौ समाश्वासनमापतु ॥१०॥  
 मुखेन प्राप्य निद्रा च रवाशुक्कसमावृती । अलगदलतारैस्वासमलङ्कृतविग्रहौ ॥११॥  
 अधिक भासमानाङ्गी व्यक्तोच्छ्वासविनिर्गमी । निद्राचये पर कान्ती स्वस्थसुप्ताविवोत्थितौ ॥१२॥  
 ततो विस्मयमापन्ना श्रीवृक्षप्रथितादय । विद्याधरगणाधीशा पप्रन्दु कृतपूजना ॥१३॥  
 नाथावापसु वामेया दष्टपूर्वा न जागुचिद् । विभूतिरद्भुता जाता कुतश्चिदिति कथ्यताम् ॥१४॥

अथानन्तर इसी बीचमें जिनके शरीर दिव्य कवचांसे आच्छादित थे, जो लक्ष्मी और श्रीवत्स चिह्नके धारक थे, तेजोमण्डलके मध्यमें गमन कर रहे थे, सिंह तथा गरुड वाहनपर आरूढ थे, अत्यन्त सुन्दर थे, सेनारूपी सागरके मध्यमें स्थित थे, सिंह तथा गरुड चिह्नसे चिह्नित पताकाओंसे युक्त थे, पर-पञ्चका क्षय करनेके लिए उद्यत थे और उत्कट बलके धारक थे, ऐसे परममहिमा सम्पन्न राम और लक्ष्मण विभीषणके साथ रणभूमिके मध्यमें आये ॥१-३॥ जिन्होंने दिव्यद्वय के द्वारा सूर्यकी किरणें दूर हटा दी थीं तथा जो मित्रोंके साथ स्नेह करनेवाले थे ऐसे शांप्रतासे भरे लक्ष्मण आगे हुए ॥४॥ उस समय लक्ष्मण हनुमान् आदि प्रमुख वानरवशी वीरोंसे विदे थे तथा जिसका वर्णन करना अशक्य था ऐसे देवसदृश रूपको धारण कर रहे थे ॥५॥ लक्ष्मणके आगे प्रस्थान करने पर आश्चर्यजनक तेजके धारक विभीषणने देखा कि यह संसार एकसाथ उन्नत हुए गारह सूर्यसे ही मानो देदीप्यमान हो रहा है ॥६॥ लक्ष्मणके आते ही वह उस प्रकारका सयन तामस अत्र गरुडके तेजसे न जाने कहीं चला गया ॥७॥ लज्जण समुद्रके जलको चोभित करनेवाली गरुडके पट्टोंकी वायुसे सब नाग इस प्रकार नष्ट हो गये जिस प्रकार कि साधुके द्वारा खोटे भाव नष्ट हो जाते हैं ॥८॥ गरुडके पट्टोंसे छोड़ी हुई किरणोंके प्रकाशसे युक्त संसार ऐसा जान पड़ने लगा मानो स्पर्णरससे ही बना हो ॥९॥

तदनन्तर जिनके नागपाशके बन्धन दूर हो गये थे ऐसे विद्याधरोंके अधिपति सुग्रीव और भामण्डल धैर्यको प्राप्त हुए ॥१०॥ जो सुप्तसे निद्रा प्राप्तकर रत्नमयी कम्बलोंसे आवृत थे, सर्परूपी लताओंकी रैत्राओंसे जिनके शरीर अलङ्कृत थे अर्थात् जिनके शरीरमें नागपाशके गडरा पड गये थे, जो पहलेसे कहीं अधिक सुशोभित थे, और जिनके श्वासोच्छ्वासका निकलना अब स्पष्ट हो गया था, ऐसे दोनों ही राजा इस प्रकार उठ बैठे, जिस प्रकार कि सुप्तसे सोये पुरुष निद्राक्षय होनेपर उठ बैठते हैं ॥११-१२॥ तदनन्तर आश्चर्यको प्राप्त हुए श्रीवृक्ष आदि विद्याधर राजाओंने

वाहनावस्त्रसम्पत्तिरावपत्रे परा सुति । ध्वजो रत्नानि चित्राणि श्रूयते दिव्यमादशम् ॥१५॥  
 पद्मनाभस्तताऽगादाक्षयो ह्रिण्डनमामन । उपसर्गे च शैलाग्रे देशगोत्रविभूषयो ॥१६॥  
 चतुराननयागेन स्थितयोर्देवनिमित्तम् । प्रातिहार्यं समुद्भूतं केवलं च सुरागमम् ॥१७॥  
 गरुडे द्रस्य तोष च परिप्राप्तिं वरस्य च । अनुध्यानप्रयोगेन महाविद्यासनागमम् ॥१८॥  
 ततस्तेऽपहृता ध्रुवा परमा योगिसङ्घयाम् । इदमूक्तु परिप्राप्ता प्रमोद विक्रान्तना ॥१९॥

### चशस्थवृत्तम्

इहैव लोके विकट पर यशो मतिप्रगल्भवमुदारचेष्टितम् ।  
 भवाप्यते पुण्यविधिश्च निर्मलो नरेण भवयापितसापुसवया ॥२०॥  
 तथा न माता न पिता न वा सुहृत् सहोदरो वा कुरुते नृणां प्रियम् ।  
 प्रदाय धर्मे मतिमुत्तमा यथा हित पर साधुजन शुभोदयाम् ॥२१॥  
 इतिप्रशसापितमाविताश्चिरं जिनेन्द्रमार्गोन्नतिविस्मिता परम् ।  
 दल सनारायणमाश्रिता दधुर्माहाविभूषा समुपाश्रिता वृषा ॥२२॥

### शार्दूलविक्रीडितम्

भय्याम्भोजमदासगुप्तवर्कनीं ध्रुवा पवित्रां कथा  
 सर्वे हर्षमहारसोदधिगता प्राप्तिं दधाना पराम् ।  
 तौ निद्रोऽज्जितपुण्डराकनयनीं सम्प्राप्तदेवार्चनीं  
 ते विद्याधरपुङ्गवा सुरसमा सर्वात्मनापूजयन् ॥२३॥

पूजा कर राम लक्ष्मणसे पूजा कि दे नाथ । आप दोनाकी विषत्तिके समय जो पहले कभी देवने  
 म नही आइ ऐसी यह अद्भुत विभूति किस कारण प्राप्त हुई है सो कहिये ॥१३-१४॥ वाहन,  
 अस्त्ररूपा सपत्ति, द्रष्ट, परम कान्ति, ध्वजाएँ और नाना प्रकारके रत्न जो कुछ आपको प्राप्त हुए  
 हैं वे सब दिव्य हैं, तैवोपनात हैं ऐसा सुना जाता है ॥१५॥ तदनन्तर रामने उन सबके लिए  
 कहा कि एकवार चशस्थविल पर्यन्तके अग्रभाग पर देशभूषण और कुलभूषण मुनियाकी उपसर्ग  
 हो रहा था सो मैं वहाँ पहुँच गया ॥१६॥ मैंने उपसर्ग दूर किया, उसी समय दोनों मुनिराजाकी  
 वेचल स्नान उपत्र हुआ, चतुर्मुखाकार होकर दोना विराजमान हुए, देवनिर्मित प्रातिहार्य  
 उत्राण हुए, दवाका आगमन हुआ, गरुडेन्द्र हमसे सतुष्ट हुआ और उससे हम घरका प्राप्ति हुई ।  
 इस समय उसी गरुडद्रुपे ध्यानसे इन महाविद्याआकी प्राप्ति हुई है ॥१७-१८॥ तदनन्तर  
 सावधान हो मुनियाकी उत्तम कथा श्रवण कर, जो परम प्रमोदको प्राप्त हो रहे थे और चित्तके  
 सुखसमल हर्षसे विकसित हो रहे थे । ऐसे उन सब विद्याधर राजाआने कहा कि ॥१९॥ भक्ति  
 पूर्वकना हुई साधुसेवाने प्रभावसे मनुष्य इसाभवम विशाल उत्तम यश, बुद्धिका प्रगल्भता,  
 उदार चेष्टा और निर्मल पुण्य विधिकी प्राप्त होता है ॥२०॥ मुनिचन उत्तम बुद्धिकी धर्मम लगा  
 कर मनुष्याका जैसा भादयसे सपन्न परम प्रिय हित करते हैं वैसा हित न माता करती है, न  
 पिता करना है, न मित्र करता है और न सगा भाई हा करता है ॥२१॥ इस प्रकार चिरकाल  
 तप प्रशसा कर निहाने अपना भावनाएँ समर्पित का थीं और चिनेन्द्रमार्गना उन्नतिमे जा परम  
 आश्रयका प्राप्त हा रहे थे, ऐसे महावीरभरसे युक्त राजा, राम और लक्ष्मणका आश्रय पाकर अत्यन्त  
 सुराभत हा रहे थ ॥२२॥ इस तरह मन्व्य जाय रूपा कसलादे उत्तवका करने घाला पवित्र

वंशस्यवृत्तम्

उपात्तपुण्यो जननान्तरे जन करोति योग परमैरिहोमवै ।  
न केवल स्वस्य परस्य भूयसा रविर्यया सर्वपदार्थदगंनान् ॥२७॥

इत्यार्षे रविपेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराण्ये सुग्रीवभामरुडनसमाश्वासन नामैकपदिनम पत्रं ॥६१॥



कथा सुनकर जो हर्ष रूपी महारसके सागरमें निमग्न हो परम प्रीतिमें धारण कर रहे थे, तेमें देवोंके समान समस्त विद्याधर राजाओंने, विकसित कमलोंके समान नेत्रोंमें धारण करने वाले उन देव पूजित राम-लक्ष्मणकी सत्र प्रकारसे पूजा की ॥२३॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि जन्मान्तर्गम पुण्यका सचय करने वाला मनुष्य, इस सत्कारमें न केवल अपने आपका ही उत्तम न्मत्सासे सयोग करता है किन्तु सूर्यके समान समस्त पदार्थोंको द्रिशाकर अन्य लोगका भी अत्यधिक वैभवके साथ सयोग करता है अर्थात् पुण्यात्मा मनुष्य स्वयं वैभवको प्राप्त होता है और दूसरा को भी वैभव प्राप्त कराता है ॥२४॥

इस प्रकार आर्ष नाममें प्रसिद्ध, रविपेणाचार्य कथित पद्मपुराणमें सुग्रीव और भामरुडनना नागपारा से युक्त हो आश्वासन प्राप्तिका वर्णन करने वाला इकमठवा पत्र समाप्त हुआ ॥६१॥



## द्वापष्टितमं पर्व

धपरेसुर्महोद्भूतविक्रमोऽनमोविदा । युद्धार्थोपात्तसम्भारा रणशौण्डाः समुद्युतः ॥१॥  
 वानरीयैः खमालोऽय सैन्यैर्व्याप्त निरन्तरम् । शङ्खदुन्दुभिसन्निभं ध्रुवभस्वध्वनिं तथा ॥२॥  
 भ्रम्युजितमतिर्मानं सादरोऽमरविभ्रमः । सत्प्रतापसयुक्तः सैन्याणवसमावृतः ॥३॥  
 तेजसा शस्त्रजातेन ज्वलयन्निव विष्टपम् । कैलासोद्धार्वारोऽपि निरैद्भ्रात्रादिभिः समम् ॥४॥  
 उद्रता बद्धकवचाः सङ्ग्रामात्यर्थलालसाः । नानायानसमारूढा नानाविधमहायुधाः ॥५॥  
 पूर्वानुबन्धमङ्गोधमहारीरवसन्निभाः । परस्पर भटा धीराः लग्नास्ताडनकर्मणि ॥६॥  
 चक्ररश्चपाशामिषष्टवाशिघनमुद्गरैः । कनकैः परिघातैश्च गगन गहनीकृतम् ॥७॥  
 लग्नमर्धायैमर्धायैर्गजता गजतामगात् । रथिनश्च महाधोरा उद्यता रथिभिः समम् ॥८॥  
 सैह सैह न पादानं पादातेन च चञ्चलम् । सम महाहव कर्तुमुद्यत समविज्रम् ॥९॥  
 ततः कापिध्वज सैन्य रघोयोधैः पराजितम् । नीलादिभिः पुनर्नीत शस्त्रसम्पातयोग्यताम् ॥१०॥  
 भूयोऽजलधिरलोललोलङ्केन्द्रपाथिवाः । इमे समुद्युर्दृष्टा निजसैन्यपराभवम् ॥११॥  
 विद्युद्गदनमारीचचन्द्रार्कशुभ्रसारणाः । प्रतान्तमृयुजीमूतनादसङ्गोधनाद्यः ॥१२॥

अधानन्तर दूसरे दिन जिन्हें महापराक्रम उत्पन्न हुआ था, जो क्रमको जाननेमें निपुण थे, एवं युद्धके लिए जिन्होंने सब सामग्री ग्रहण की थी ऐसे रणवांकुरे धीर युद्धके लिए उद्यत हुए ॥१॥ वानरीकी सेनासे समस्त आकाशको निरन्तर व्याप्त देख तथा शङ्खों और दुन्दुभियोंके शब्दोंसे मिली हाथियों और घोड़ोंकी आवाज सुन कैलासको उठानेवाला धीर रावण भी भाइयों आदिके साथ निरला । रावण अत्यन्त धलधती बुद्धिका धारक था, मानो था, आदरसे युक्त था, देवोंके समान शोभासे सहित था, सत्त्व और प्रतापसे युक्त था, सेनारूपी सागरसे घिरा हुआ था, और शम्भसे उत्पन्न तेजके द्वारा संसारको जलाता हुआ-सा जान पड़ता था ॥२-४॥ तदनन्तर जिन्होंने उठकर कवच बाँध रक्थे थे, जिन्हें संग्रामकी उत्तर लालसा भरी हुई थी, जो नाना प्रकारके वाहनोंपर आरुढ़ थे, नाना प्रकारके बड़े बड़े शस्त्र जिन्होंने धारण कर रक्थे थे और जो पूर्वानुबद्ध षोडशके कारण महानारथोंके समान जान पड़ते थे, ऐसे धीर वीर योद्धा परस्पर मार-काट करनेमें लग गये ॥५-६॥ चक्र, शक्र, पाश, रज्ज, यष्टि, वज्र, घन, मुद्गर, फनक तथा परिष आदि शस्त्रोंसे आकाश सघन हो गया ॥७॥ घोड़ोंका समूह घोड़ोंके समूहके साथ जुट पड़ा, हाथियोंका समूह हाथियोंके समूहके सम्मुख गया, महा धीर-वीर रथोंके सवार रथसवारोंके साथ रखे हो गये ॥८॥ सिंहोंके सवार सिंहोंके सवारोंके साथ और चञ्चल तथा समान पराक्रमकी धारण करनेवाला पैदल सैनिकोंका समूह पैदल सैनिकोंके साथ महायुद्ध करनेके लिए उद्यत हो गया ॥९॥

तदनन्तर प्रथम तो रत्नम योद्धाओंने वानरीकी सेनाको पराजित कर दी, परन्तु उसके बाद नील आदि वानरोंने उभे पुनः शस्त्रवर्षा करनेकी योग्यता प्राप्त कर दी, अर्थात् वानरीकी सेना पहले तो वृद्ध पीछे हटी, परन्तु ज्योंही नील आदि वानर आगे आये कि वह पुनः रात्रसंग शस्त्र वर्षा करने लगी ॥१०॥ पश्चान् अपनी सेनाका पराभव देख, समुद्रकी तरफोंके समान चञ्चल लट्टाके निम्नाङ्गित राजा पुनः युद्धके लिए उद्यत हुए ॥११॥ विद्युद्गद, मारीच, चन्द्र

१. विज्रम् म० । २. अश्वाणां मन्द । ३. गजानां मन्द । ४. भोग्य म० । ५. कश्चित्कर्मणं म० । ६. विद्युद्गद म० ।

भज्यमान निजं सैन्यं वीक्ष्य तैः राक्षसोत्तमैः । कपिपञ्चमहायोधाः परिप्रापुः सहस्रशः ॥१३॥  
 प्रस्ता राक्षससैन्यास्तैरञ्छितैर्विधिप्रापुधैः । महाप्रतिभयैर्वाहैर्युदात्तविचेष्टितैः ॥१४॥  
 निजसैन्यार्णवं हृष्ट्वा पीयमानं समन्ततः । शस्त्रज्वालाविलासेन कपिप्रलयवद्विन्ना ॥१५॥  
 लङ्घेः कोपनो योद्धु बलवान् स्वयमुत्थितः । शुष्कपत्रोपमान् दूरं विक्षिपन् शत्रुमैनिकान् ॥१६॥  
 ततः पलायनोद्युक्तान् परिपाल्य तदा द्रुतम् । स्थितो विभीषणो योद्धुं महायोधविभीषणम् ॥१७॥  
 आह्वयेऽभिमुखोभूतं भ्रातरं वीक्ष्य रावणः । यन्माण पृथुकजोषो वाक्यमादरवर्जितः ॥१८॥  
 कनीयानसि स त्वं मे भ्राता हन्तुं न युज्यते । अपसर्पाप्रतो मात्था' न त्वां शनोऽस्मि वीक्षितुम् ॥१९॥  
 विभीषणकुमारेण जगदे पूर्वजस्ततः । कालेन गोचरत्व मे नीतः किमत्रमर्प्यते ॥२०॥  
 ततः कुमारकोपस्त पुनरप्याह रावणः । ह्रीं विक्षिप्य धिगस्तु त्वां नरकाक कुचेष्टितम् ॥२१॥  
 त्वया व्यापादितेनापि नैव मे जन्यते घृतिः । भवद्विधा हि नो योग्याः कर्तुं हर्षं न दीनताम् ॥२२॥  
 यद्विद्याधरस्तन्तान त्यक्त्वा मृदोऽन्यमाश्रितः । कर्मणांमतिदौराभ्याज्जैन त्यक्त्वावैव शासनम् ॥२३॥  
 ततो विभीषणोऽवोचत् किमत्र बहुभाषितैः । शृणु रावण कल्याण भण्यमानमनुत्तमम् ॥२४॥  
 एवं गतोऽपि चेत् कर्तुं स्वस्व श्रेयः स मेच्छसि । रावणेण सम प्रीतिं कुरु सीतां समर्पय ॥२५॥  
 अभिमानोद्धतिं त्यक्त्वा प्रसादय रघूत्तमम् । मा कलङ्क स्ववशस्य कार्यां विनिमित्तकम् ॥२६॥  
 अथवा मनुंसिधे तु रूपे यत्र मद्रुचः । मोहस्य दुस्तरं किं वा बलिनो बलिनामपि ॥२७॥

अर्क, शुक, सारण, कृतान्त, मृत्यु, मेघनाद और संक्रोधन आदि ॥१०॥ इन राक्षस योद्धाओंके द्वारा अपनी सेनाको नष्ट होते देख वानर पक्षके हजारों महायोद्धा आ पहुँचे ॥१३॥ और आते ही उन्नत, नाना प्रकारके शस्त्र धारण करनेवाले, महाभयकर, वीर और अत्यन्त उदात्त चेष्टाओंको धारक उन वानर योद्धाओंने राक्षसोंकी सेनाको धर दिया ॥१४॥ तदनन्तर शस्त्ररूपी ज्वालाओंसे सुशोभित वानर रूपी प्रलयानिके द्वारा अपनी सेना रूपी सागरको सब ओरसे पिया जाता देख क्रोधसे भरा बलवान् रावण, शत्रु सैनिकोंको सुने पत्तोंके समान दूर फेरता हुआ युद्ध करनेके लिए स्वयं उद्यत हुआ ॥१५-१६॥ तदनन्तर महायोद्धाओंको भयभीत करनेवाला विभीषण भागनेमें तत्पर वानरोंको शीघ्र ही रक्षा कर युद्ध करनेके लिए रड़ा हुआ ॥१७॥ युद्धमें भाईको सन्मुख रड़ा देख जिसका क्रोध भड़क उठा था ऐसा रावण निरादरताके साथ वह वचन बोला कि तू छोटा भाई है अतः मुझे तेरा मारना योग्य नहीं है, तू सामनेसे हट जा, रड़ा मत रह मैं तुम्हें देखनेके लिए भी समर्थ नहीं हूँ ॥१८-१९॥ तदनन्तर विभीषणने वड़े भाई—रावणसे कहा कि तू उसके द्वारा मेझे सामने भेजा गया है अतः अब पीछे क्यों हटता है ? ॥२०॥ परन्तु विभीषणकुमारपर क्रोध प्रकट करते हुए रावणने उससे पुन' कहा कि रे नपुंसक ! संश्लिष्ट ! नरकाक ! तुम कुचेष्टीको धिम्कार है ॥२१॥ तुम्हें मार डालनेपर भी मेरा यत्न नहीं होगा, क्योंकि तेरे समान तुच्छ मनुष्य न मुझे हर्ष उत्पन्न कर सकते हैं और न दीनता ही उन्नत करनेके योग्य हैं ॥२२॥ जिस प्रकार कोई, कर्मोंका अत्यन्त अशुभ उदय होनेमें त्रिन शासनको छोड़ अन्य शासनको ग्रहण करता है, उसी प्रकार तुम मूर्खने भी विद्यावरकी मन्त्रानको छोड़ अन्य भूमिगोचरीको ग्रहण किया है ॥२३॥

तदनन्तर विभीषणने कहा कि इस विषयमें बहुत कहनेसे क्या ? हे रावण ! मेरे कल्याण के लिए जो उत्तम वचन कहे जा रहे हैं उन्हें सुन ॥२४॥ इस स्थितिमें उन्नत पर भी वचन श्रपना भला करना चाहता है तो रामके साथ मित्रता कर और मीमांसक मूर्खता कर दे ॥ अहंकार छोड़कर रामको प्रसन्न कर रानीके निमित्त अपने वंशधरों को प्रसन्न कर ॥२५॥ तुम्हें मरना ही इष्ट है इसीलिए मेरी बात नहीं मान रहा है मैं ही हूँ ही है, क्योंकि कि

त्रिनिशम्य वचस्तस्य तरुणप्रोषसद्गत' । निशात वाणमुद्घृत्य समपावत रावणः ॥२८॥  
 रथाश्ववारणाः स्वामितोषे हि तत्पराः । अन्येऽपि पाथिवा लम्ना रणे सुभटदारणे ॥२९॥  
 भायातोऽभिमुख तस्य राक्षसेन्द्रस्य रहसा । अष्टमीचन्द्रवक्रेण ध्वज भ्रान्तेपुगाऽच्छिन्नत् ॥३०॥  
 तेनापि तस्य' सरभसम्भारात्रान्तचेतसा । धनुर्द्विधाकृत चिपवा सायकं निशिताननम् ॥३१॥  
 ततोऽपरमुपादाय चापमाशु विभोपणः । द्विधाकरोदनुस्तस्य प्रतिकारविचक्षणः ॥३२॥  
 एव तयोर्महायुद्धे प्रवृत्ते वीरसङ्घये । जनकस्य पर भक्त- शक्रजिवोद्भुमुद्ययी ॥३३॥  
 लक्ष्मीधरेण रद्धोऽसौ पर्वतेनेव सागर- । पद्मनेत्रेण पद्मेन भानुकर्णोऽप्रत' कृत- ॥३४॥  
 ययी सिंहकटि नीलो युद्धशम्भु तथा नलः । स्वयम्भु दुर्मति- क्रुद्धो दुर्मर्षोऽपि घटोदरम् ॥३५॥  
 दुष्ट शक्राशनि कालिस्तथा चन्द्रनख नृपम् । स्कन्दो भिन्नाञ्जन विघ्न विराधितनराधिपः ॥३६॥  
 ख्यात मयमहादैत्यमङ्गदो भासुराङ्गद । कुम्भकर्णसुत कुम्भ समीरणसमुद्भव- ॥३७॥  
 किष्किन्धेश- समात्पात्य वेतु जनकनन्दनः । काम हृदयः क्षुब्ध सौभगाभित्प्रयुर्जितम् ॥३८॥  
 अन्येऽप्येव महायोधा यथायोग्य परस्परम् । आरेभिरे रण कर्तुमाह्वानमुखरानना ॥३९॥  
 गृहाण प्रहरागच्छ जहि स्यापादयोद्भिर । छिन्धि भिन्धि क्षिपोक्षिप्त क्षिप्त दारय धारय ॥४०॥  
 यथान स्फोटयाकर्षं मुञ्च चूर्णय नाशय । सहस्व दस्व नि सर्प सन्धास्त्रोच्छ्रय कल्पय ॥४१॥  
 किं भीतोऽसि न हस्मि त्वा धिक् त्वा कातरको भवान् । कस्व विभेसि नष्टोऽसि मा कस्मिपिष्ठा क्व गम्यते ॥४२॥

मनुष्योंको भी इस बलवान् मोहका तिरना अत्यन्त कठिन है ॥२७॥ तदनन्तर विभीषणके वचन सुन तीव्र क्रोधसे युक्त हुआ रावण तीव्र वाण चढाकर दौड़ा ॥२८॥ स्वामीको संतुष्ट करनेमें तत्पर रहने वाले, रथों, घोड़ों और हाथियों पर बैठे हुए अन्य राजा लोग भी योद्धाओंको भय उत्पन्न करने वाले युद्धमें लग गये ॥२९॥ तदनन्तर वड़े वेगसे सन्मुख जा कर विभीषणने अष्टमी के चन्द्रके समान कुटिल घूमने वाले वाण से रावणकी ध्वजा छेद डाली ॥३०॥ और क्रोधके मार से जिसका चित्त व्याप्त था ऐसे रावणने भी एक तीव्रणमुत्पन्न वाण चला कर विभीषणके धनुषके दो टुकड़े कर दिये ॥३१॥ पश्चात् प्रतिकार करनेमें निपुण विभीषणने शीघ्र ही दूसरा धनुष लेकर रावणके धनुषके दो टुकड़े कर दिये ॥३२॥ इस प्रकार जब रावण और विभीषणके बीच अनेक वीरोंका क्षय करने वाला महायुद्ध चल रहा था तत्र पिताका परमभक्त इन्द्रजित् युद्ध करनेके लिए उद्यत हुआ ॥३३॥ सो जिस प्रकार पर्वत समुद्रको रोकता है उसी प्रकार लक्ष्मणने उसे रोकना और कमललोचन रामने भानुकर्णको अपने आगे किया अर्थात् उससे युद्ध करना प्रारम्भ किया ॥३४॥ नोल, सिंहकटि (सिंहजघन)के सन्मुख गया, नलने युद्ध शम्भुका, दुर्मतिने स्वयम्भुका, क्रोधसे भरे दुर्मर्षने कुम्भोदरका, दुष्टने इन्द्रवज्रका, कान्तिने चन्द्रनखका, स्कन्धने भिन्नाञ्जनका, विराधित राजाने विघ्नका, देवीप्यमान केयूरके धारक अङ्गदने प्रसिद्ध, मय नामक महा दैत्यका, हनुमान्ने कुम्भकर्णके पुत्र कुम्भका, सुप्रोवने सुमालीका, भामण्डलने वेतुका, हृदयने कामका और क्षुब्धने सौभग नामक बलवान् सामन्तका सामना किया ॥३५-३८॥ इनके सिवाय बुलानेके शब्दमें जिनके मुख शब्दायमान हो रहे थे ऐसे अन्य महायोधाओंने भी परस्पर यथायोग्य युद्ध करना प्रारम्भ किया ॥३९॥ उस समय योद्धाओंमें परस्पर इस प्रकारके शब्द हो रहे थे कोई किसीसे पहता था कि लो, इसके उत्तरमें दूसरा कहता था कि मारो, आओ, मारो, जानसे मारडालो, छेरो, भेरो, फेंक दो, उठो, बैठो, रखे रहो, विदागण करो और धारण करो ॥४०॥ बांधो, फाँड़ डालो, पसीटो, छोड़ो, चूर-चूर कर डालो, छोड़ो, नष्ट करो, सहन करो, देओ, पीछे हटो, मंथि करो, उग्रत हो ओ, समर्थ बनो । तू क्यों टर रहा है ? मैं तुम्हे नहीं मारता, तुम्हे धिक्कार है, तू बड़ा पातर है, तुम्हे धिक्कार है, तू क्यों धम्पित हुआ जा रहा है ? क्या तू भूल गया है ? धम्पित मत हो,



अथ स वर्तते कालः शूराशूरविचारकः । भुज्यतेऽथ यथा मृष्टं न तथा सुप्यते रणे ॥४३॥  
 गजितैरिति धीराणां तूर्यानादैस्तथोन्नतैः । गर्दन्तीषु दिशो मत्ताः सतजातान्वकारिताः ॥४४॥  
 चक्रशक्तिगदायष्टिकनकाष्टिचनादिभिः । दृष्टालमिव सज्जानं गगनं भीषणं परम् ॥४५॥  
 रत्नाशोक्त्वन किं तत् किं वा क्रियुक्काननम् । परिभेदनुमारण्यमुत जातं सत बलम् ॥४६॥  
 कश्चिद्विधित दृष्ट्वा कङ्कटं द्विजवन्धनम् । मन्धसे त्वरिण भूयः स्नेहं साधुजनो यथा ॥४७॥  
 कश्चिन्सन्धार्य दन्ताग्रैः स्वद्वय परिकरं दृढम् । यथा दीपः पुनर्योद्बुध्रममुक्त्वा प्रवर्तते ॥४८॥  
 मत्तधारणदन्ताग्रवृत्तवक्ष्यलोऽपरः । बलकर्णसमुद्भूतैर्धीगितः कर्णचामरैः ॥४९॥  
 उत्तीर्णस्वामिकर्तव्यो निराकुलमतिः परम् । दन्तो मन्त्रे ततः शिरसे सम्प्रसायं भुजद्वयम् ॥५०॥  
 धानुपर्वतमङ्गाशाः केचित् सततनिर्मराः । मुमुचः शोकरासारसेक्योवितमृच्छिताम् ॥५१॥  
 पर्यस्ता भूतले केचिद्दृष्टोः शास्त्रपाणयः । कुञ्चितभ्रूदुरीष्यास्या वीरा मुञ्चन्ति जीवितम् ॥५२॥  
 उपमह्यस्य सरम्भ त्यक्तशास्त्रस्तथापरे । मुञ्चन्ति जीवितं धीरा प्यायन्तः परमाचरम् ॥५३॥  
 विपाणकोटिसत्तपाणयः केचिदुक्कटाः । भान्दोऽन गन्नेन्द्राणामप्रतः समुपासिरे ॥५४॥  
 रक्तद्वयं विमुञ्चन्तश्चञ्चला शस्त्रपाणयः । कत्रन्या नर्त्तन चक्रुः शतशोऽनिधयानकम् ॥५५॥  
 केचिद्विनिर्मुक्ता जर्जरीभूतकङ्कटाः । प्रविष्टाः सलिल त्रिष्टा जीवितारापराद्मुप्या ॥५६॥

तू अरेला कहाँ जायगा ? ॥४१-४२॥ यह वह समय है जिसमें शूर और कायरका विचार किया जाता है । जैसा मीठा अन्न खाया है वैसा रणमें युद्ध नहीं कर रहे हो ॥४३॥

इस प्रकार धीर-वीरोंकी गर्जना और तुरहीके उन्नत शब्दोंसे दिशाएँ ऐसी जान पड़ती थीं मानो रुधिरकी वर्षासे अन्धकार युक्त तथा पागल हो चिल्ला ही रही हो ॥४४॥ चक्र, शक्ति, गदा, यष्टि, कनक, आर्षि और घन आदि शस्त्रोंसे आकाश उस प्रकार अत्यन्त भयंकर हो गया मानो सबको निगलनेके लिए दाढ़ि ही धारण कर रहा हो ॥४५॥ खूनसे लथपथ घायल सेनाको देख कर ऐसा संदेह होता था कि क्या यह अशोकका लाल वन है ? या पलाशका कानन है, या पारिमत्र वृक्षोंका वन है ? ॥४६॥ किसीका कवच टूट गया तथा उसके बन्धन खुल गये, इसलिए उसने शीघ्र ही दूसरा कवच उसप्रकार धारण किया जिस प्रकार कि साधु पुरुष एक वार स्नेहके टूट जाने पर उसे शीघ्र ही पुनः धारण कर लेते हैं ॥४७॥ कोई तेजस्वी योद्धा दाँतोंके अग्रभागसे तलवार तथा हाथोंसे कमर कस कर अग्ररहित हो फिरसे युद्ध करने के लिए तैयार हो गया ॥४८॥ मदनोन्मत्त हाथोंके दन्ताग्रसे जिसका वक्षःस्थल घायल हो गया था ऐसा कोई योद्धा हाथोंके कर्त्तव्य पूरा किया था ऐसा कोई एक योद्धा निराकुल चित्त हो दोनों हाथ पसार कर हाथोंके दाँतोंके बीच सो रहा था ॥४९॥ जिनसे खूनके निर्मल मर रहे थे तथा जो गोरुके पर्वतके समान जान पड़ते थे ऐसे कितने ही योद्धाओंने जलकणोंकी वर्षाके सिञ्चनसे सचेत हो मूर्च्छा छोड़ी थी ॥५०॥ जो ओठ हस रहे थे, हाथोंमें शस्त्र लिये थे और देदी मौँहोंसे जिनके मुख भयंकर दिग्ग रहे थे ऐसे कितने ही योद्धा पृथिवी पर पड़कर प्राण छोड़ रहे थे ॥५१॥ कितने ही धीर वीर योद्धा ऐसे भी थे जो क्रोधका संकोच तथा शस्त्रोंका त्याग कर परब्रह्मका ध्यान करते हुए प्राण छोड़ रहे थे ॥५२॥ कितने ही प्रचण्ड धीर वीरोंके अग्रभागको हाथोंसे पकड़ कर हाथियोंके आगे मूला मूला रहे थे ॥५३॥ जो रक्तकी छटा छोड़ रहे थे तथा हाथोंमें गम्र धारण किये हुए थे, ऐसे सैकड़ों दृढलते कवच—शिररहित घड़ अत्यन्त भयंकर नृत्य कर रहे थे ॥५४॥ जिनके कवच जर्जर हो गये थे ऐसे कितने ही दुःखी योद्धा, जीवनकी आशासे विमुक्त हो शस्त्र

१. भुञ्जतेऽन म० । २. तदुन्नतेः म० । ३. पारिमत्रकुमारण्या म० । ४. सद्भूतैः म० ।

५. निमुञ्चन्ति म० ।

इंशे ममरे जाने लोकसन्त्रासकारिणि । परस्परममुद्भूतमहाभटपरिचये ॥५७॥  
 महेंद्रजिद्वयौ वाणैर्लक्ष्मीमन्त सिताननैः । लघ्वरद्वाद्यितु वीरस्तथा तमपि लक्ष्मणः ॥५८॥  
 महातामसरात्र च भीम शत्रुजिद्विचिपत् । विनाशं भानवीयेन तदस्त्रेणाणयद्रिपुः ॥५९॥  
 तमुग्रै शत्रुजिद्वभूयः शरैराशीविषामकैः । आरब्धो वेष्टितु क्रुद्धः सरथं शस्त्रवाहनम् ॥६०॥  
 यैततेयास्त्रयोगेन नागास्त्रं स निरासरोत् । पूर्वोपास यथा पापजाल योगी महातपाः ॥६१॥  
 ततोऽमत्यगणान्तस्थ हस्तिवृन्दस्यलावृत्तम् । विरथ लक्ष्मणश्चक्रे दशवक्त्रसमुद्भवम् ॥६२॥  
 पालयन् स निज सैन्य वचसा कर्मणा तथा । प्रायुङ्क्त्वास्त्र महाप्वान्तपिहितारिद्रशास्यकम् ॥६३॥  
 विधया तपनास्त्र च हत्वा तस्य विचिन्तितम् चिक्षेपेच्छाष्टताकारानाशीमुखशिलांमुखात् ॥६४॥  
 मद्ग्रामाभिमुखो नागैः कुटिल व्यासविग्रहः । इन्द्रजित्पतितो भूमौ पुरा भामण्डलो यथा ॥६५॥  
 पद्मेनाऽऽदित्यकर्णोऽपि सुयुद्धे<sup>३</sup> विरथङ्कृतः । आदित्यास्त्र शनैर्हत्वा नागास्त्रं संप्रयुज्य च ॥६६॥  
 सम्प्रेष्ट्य सर्वतो नागैः पतितो धरणीतले । पुरेव बाहुबलना श्रीकण्ठो नमिनन्दनः ॥६७॥  
 चित्र श्रेणिक ते वाणाः भवन्ति धनुराश्रिता । उल्कामुखास्तु गच्छन्तः शरीरे नागमूर्त्तयः ॥६८॥  
 स्रग वाणा स्रग दण्डाः स्रगं पाशात्वमागताः । आमरा द्वास्त्रभेदास्ते यथा चिन्तितरूपगाः ॥६९॥  
 कर्मपातैर्यथा जांबो नागपाशैः स वेष्टितः । भामण्डलेन पद्मज्ञां प्राप्याऽऽर्त्तयि रथे कृतः ॥७०॥

छोड़ा पानांमे घुस गये ॥५६॥ इस तरह जब परस्पर महायोद्धाओंका क्षय करने वाला, लोक संत्रासकारी महायुद्ध हो रहा था तब इन्द्रजित् तीक्ष्ण वाणोंसे लक्ष्मणको और लक्ष्मण इन्द्रजित्को आच्छादित करनेमें लीन थे ॥५७-५८॥ इन्द्रजित्ने अत्यन्त भयंकर महातामस नामक रात्र छोड़ा जिसे लक्ष्मणने सूर्यास्त्रके द्वारा नष्ट कर दिया ॥५९॥ तदनन्तर क्रोधसे भरे इन्द्रजित्ने नाग वाणोंके द्वारा रथ, शस्त्र तथा वाहन के साथ लक्ष्मणको वेष्टित करना प्रारम्भ किया । तब लक्ष्मणने गरुडास्त्रके द्वारा उस नागास्त्र को उस तरह दूर कर दिया जिस प्रकार कि महातपसी योगी पूर्वोपार्जित पापोंके समूहको दूर कर देता है ॥६०-६१॥

तदनन्तर भन्त्रिसमूहके मध्यमें स्थित तथा हाथियोंके समूहसे वेष्टित इन्द्रजित्को लक्ष्मण ने रथरहित कर दिया ॥६२॥ तब वचन तथा क्रियासे अपनी सेनाको रक्षा करते हुए इन्द्रजित्ने ऐसा तामसास्त्र छोड़ा कि जिसने महा अन्धकारसे रावणको छिपा लिया ॥६३॥ इसके बदले लक्ष्मण ने सूर्यास्त्र छोड़कर इन्द्रजित्ना मनोरथ नष्ट कर दिया और इन्द्रजित्नुसार आकृतिको धारण करने वाले नागराज छोड़े ॥६४॥ इनके फलस्वरूप संग्रामके लिए आते हुए इन्द्रजित्का समस्त शरीर नागोंके द्वाग व्याप्त हो गया और उनके कारण जिस प्रकार पहले भामण्डल पृथिवीपर गिर पड़ा था वसी प्रकार वह भी पृथिवीपर गिर पड़ा ॥६५॥ लघ्वरामने भी धीरेसे सूर्यास्त्रको नष्ट कर तथा नागास्त्रों चलाकर युद्धमें भानुकर्णको रथ रक्षितकर दिया ॥६६॥ पहले जिस प्रकार बाहुबलोंने नमिके पुत्र श्रीकण्ठको जीतकर नागपाशसे बाँध लिया था, उसी प्रकार रामने भी भानुकर्णको सय ओरसे नागपाशसे वेष्टित कर लिया जिससे वह पृथिवीतल पर गिर पड़ा ॥६७॥ गीतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! वे वाण चड़े हो विचित्र थे । जब वे धनुषपर चढ़ाये जाते थे तब वाणरूप रहते थे, चलते समय उल्काके समान मुगवाले हो जाते थे और शरीरपर जाकर नागरूप हो जाते थे ॥६८॥ वे वाण स्रग भरके लिए वाण हो जाते थे, स्रग भरमें दण्डरूप हो जाते थे और क्षय भरमें नागपाशरूप हो जाते थे, यथार्थमें ये सय शस्त्रोंके भेद देवोंपनीज थे तथा मग्न पाहू रूपों धारण करनेवाले थे ॥६९॥ आचार्य कहते हैं कि जिस प्रकार संसारी प्राणी कर्मरूपों पाशसे वेष्टित रहता है, उसी प्रकार भानुकर्ण भी नागपाशसे वेष्टित

१. रिपुम् म० । २. दन्ता म० । ३. सुयुद्धो म० । ४. म० पुस्तके ६८-६९तत्परन्तर्हर्षेर्भेदे

'निरभैःपानैर्वं दृष्ट्वा वीरान्तरं मनन्तः । शस्त्रगणलतिलामेन वनिदन्त्यसद्रिना ॥' एष श्लोकोऽपिभी कर्त्तव्ये ।

मन्दोदरीसुनोऽप्येव बह्वो नारायणाज्ञया । विराधिनेन याने स्वे स्थापित इत्यन्तविग्रह ॥७१॥  
 तावद्गणमुत्तेऽभागोद् दशवक्त्रा विभीषणम् । सहस्रुदोऽभिसुखाभूत् चिर 'सोडारणत्रियम् ॥७२॥  
 प्रहारमिममेक मे प्रतीच्छ यदि मन्यस । सत्य पुरपमानान रणकण्ठप्रचण्डकम् ॥७३॥  
 इयुक्त्वा विस्फुरपिङ्गुलिङ्गालिङ्गिताम्बरम् । शूल चिक्षेप लुप्तोऽसौ लक्ष्मणेनान्तरे शरै ॥७४॥  
 त भस्माकृतमालोक्य शूलमस्युग्रमायुधम् । अधिक रावण क्रुद्ध शक्ति तन्नाह दाहनाम् ॥७५॥  
 याव परयति सज्ञातमप्रतो गरुडप्वनम् । प्रदिन्द्रीवरसङ्काश भासुर पुण्योत्तमम् ॥७६॥  
 प्रलयाम्मोदसम्भारगम्भीरोदारनिस्वन । विशयर्द्धमुखोऽवोचत् तमेव साडयस्त्रिय ॥७७॥  
 अन्पस्यैव मया शस्त्रमुद्यत वधकारणम् । यदि तत्कोऽधिकारस्ते स्थातुमासन्नता मम ॥७८॥  
 अभिवाञ्छसि मत्तुं वा यदि दुर्मत लक्ष्मण । प्रतीच्छेम प्रहार मे तिष्ठ प्रगुणविग्रह ॥७९॥  
 विभीषण समुत्सार्य मोऽपि वृचष्ट्रेण मानवान् । दशास्यमभिदुदाव चिर सहस्रामवेदितम् ॥८०॥  
 नि मर्षत्तारकाकारस्कुलिङ्गनिकरा तत । चिक्षेप रावण शक्ति कापयम्भारसङ्गत ॥८१॥  
 वचस्तस्य तथा भिन्न महाशीलत्वोपमम् । अमोघक्षेपया शक्या दिव्ययायन्तर्दीप्रया ॥८२॥  
 लक्ष्मणोरसि मा सक्ता भासुराङ्गमनोहरा । परमप्रेमसम्बद्धा शोभने स्म वयूरिव ॥८३॥  
 गाढप्रहारट्ट खार्त्त स परायत्तविग्रह । महीतल परिप्राप्तो गिरिवज्राहतो यथा ॥८४॥

हो गया । तदनन्तर रामकी आज्ञा पाकर भामण्डलने उसे अपने रथपर डाल लिया ॥७०॥ उधर जिसका शरीर बेचैन हो रहा था ऐसे नागपाशसे बँधे हुए इन्द्रजित्को भी लक्ष्मणकी आज्ञासे विराधितने अपने रथपर रख लिया ॥७१॥

उसी समय रणके मैदानमें क्रोधसे भरे रावणने, चिरकाल तक रणत्रियाको सहन करने वाले त्रिभीषणने कहा कि ॥७२॥ यदि तू अपने आपको सचमुच ही रणकी रोजसे प्रचण्ड पुरुष मानता है तो मेरे इस एक प्रहार की मेल ॥७३॥ इतना कहकर उसने निकलते हुए पीले तिलगोसे आभाशको व्याप्त करने वाला शूल चलाया, सो लक्ष्मणने उसे अपने वाणासे बीचमें ही समाप्त कर दिया ॥७४॥ उस अत्यन्त भयङ्कर शूल नामक शस्त्रको भस्मीकृत देकर रावणने अत्यन्त कुपित हो भयानक शक्ति उठायी ॥७५॥ रावण शक्ति उठाकर ज्योंही सामने देवता है तो उसे आगे रखे हुए, तरुण नील कमलके समान श्याम, देदीप्यमान पुण्योत्तम, लक्ष्मण दिव्यार्थी दिये ॥७६॥ लक्ष्मणको देकर प्रलय कालीन मेघ समूहके समान गम्भीर शब्द करनेवाला रावण ताडन करते हुए के समान इस प्रकार बोला ॥७७॥ कि जत्र मैंने दूसरेका ही वध करनेके लिए शस्त्र उठाया है तत्र तुम्हे मेरे निकट रखे होनेका क्या अधिकार है ? ॥७८॥ अथवा रे मूर्ख लक्ष्मण ! यदि तू मरना ही चाहता है तो सीधा खड़ा हो और मेरा यह प्रहार मेल ॥७९॥ यह सुन मानी लक्ष्मण भी कठिनायीसे त्रिभीषणको अलग कर जो चिरकाल तक युद्ध करनेसे रूढ़ खिन्न हो गया था ऐसे रावणके सन्मुख दीडा ॥८०॥

तदनन्तर क्रोधके भारसे भरे रावणने जिससे ताराओके समान तिलगाका समूह निकल रहा था ऐसी शक्ति चलायी और जिसका चलाना कभी व्यर्थ नहीं जाता तथा जो अत्यन्त देदीप्यमान थी ऐसी उस शक्तिसे महापर्वतके चटके समान लक्ष्मणका वक्ष स्थल खण्डित हो गया ॥८१-८२॥ लक्ष्मणके वक्ष स्थलपर लगी देदीप्यमान आकृतिसे मनोहर वह शक्ति, परम प्रेमसे लिपटी स्त्रीने समान सुशोभित हो रही थी ॥८३॥ जो गाढ प्रहारजन्य दुःखसे दुःखी थे तथा जिनका शरीर विवश हो गया था ऐसे लक्ष्मण वक्षसे ताडित पर्वतके समान पृथिवी पर गिर

द्रुपु त पतित भूमौ पद्म पद्माभलोचन । विनियम्य पर शोक शत्रुघातार्थमुच्यत ॥८५॥  
 सिंहयुक्तसमारूढस्यन्दनक्रोधपरित । शत्रुमायातमात्रेण चकार विरध बला ॥८६॥  
 रथान्तरसमारूढदिल्लपर्वशरासन । यावच्चापसमादत्ते भूयोऽथ विरधीकृत ॥८७॥  
 पद्माभस्य शरैर्प्रस्तो दशास्यो विह्वलीकृत । न समर्थो बभूवपु ग्रहातु न च कार्मुकम् ॥८८॥  
 लोठितोऽपि शरैस्तैर्प्रैस्तथापि धरणांतले । रथे विलोक्यते भूयो रावण खेदमद्गत ॥८९॥  
 विच्छिन्नचापकवचपट्टारविरथीकृत । तथापि शक्यते नेव स साधयितुमद्भुत ॥९०॥  
 प्रोक्तश्च पद्माननेन परप्राप्तेन विस्मयम् । नात्पायुष्को भवानव यो न प्राप्नोऽसि पञ्जताम् ॥९१॥  
 मद्वाहुप्रेरितैर्वाणैर्वैगवज्जि शिताननै । महाभृताऽपि शर्यन्ते मन्येऽन्यत्र किमुच्यताम् ॥९२॥  
 तथापि रक्षित पुण्यैर्जन्मान्तरसमजितै । शृणु जल्पामि किं क्षित्ते वचन खेचराधिप ॥९३॥  
 सद्रामेऽभिमुखो भ्राता यो मे शक्या त्वया हत । प्रेतस्याभिमुख तस्य चाक्षे यद्यनुमन्यसे ॥९४॥  
 एवमस्त्विति सम्भाष्य प्रार्थनाभङ्गदुर्विध । यथौ दशाननो लङ्कामृद्वायाऽऽखण्डलसङ्गिभ ॥९५॥  
 एकस्तावदय ध्वस्तो मया शत्रुर्महा कट । इति किञ्चिदुच्यते प्राप्नो विवश भवन निजम् ॥९६॥  
 अन्विष्य विचितास्तत्र योधान् विमान्तवत्सल । विवेशान्तपुरधरो दर्शनभ्रमनोदन ॥९७॥  
 निरद्भ्रतारश्चु वा पुत्राचरणकारिणी । शोचन् प्रियजनपश्यन्नाशा चक्रे दशानन ॥९८॥

पडे ॥८४॥ उन्हें भूमिपर पडे देस कमल लोचन राम, तीत्र शोकको रोककर शत्रुका घात करनेके लिए उद्यत हुए ॥८५॥ सिंह जुते रथपर बैठे एव क्रोधसे भरे बलवान् रामने सामने जाते हा शत्रुको रथरहित कर दिया ॥८६॥ जन तक वह दूसरे रथ पर चढता है तब तक रामने उसका धनुष तोड दिया । तदनन्तर वह जन तक दूसरा धनुष उठाता है तब तक उसे पुन रथरहित कर दिया ॥८७॥ रामके वाणासे म्रत हुआ रावण इतना विह्वल हो गया कि वह न तो वाण ग्रहण करनेके लिए समर्थ था और न धनुष ही ॥८८॥ यद्यपि रामने तीत्र वाणोंके द्वारा रावणको पृथिवीपर लुटा दिया था तथापि वह रोद रित्र हो पुन दूसरे रथपर आरूढ हो गया ॥८९॥ इस प्रकार यद्यपि रामने छह बार उसका धनुष तोडा तथा छह बार उसे रथरहित किया तथापि आश्चर्यसे भरा रावण जीता नहीं जा सका ॥९०॥ तब परम आश्चर्यको प्राप्त हुए रामने उससे कहा कि आप जब इस तरह मृत्युको प्राप्त नहीं हुए तब अल्पायुष्क नहीं हो, यह निश्चित है ॥९१॥ मैं समझता हूँ कि मेरी भुजाओंसे छोडे हुए वेगशाली तीक्ष्णमुद्ग वाणोंसे पहाड भी ढह जाते हैं फिर दूसरेकी तो बात ही क्या है ॥९२॥ इतना होनेपर भी जन्मान्तरमे सञ्चित पुण्य कर्मने तेरी रक्षा की है । अब हे विद्याधरराज ! सुन, मैं तुमसे कुछ वचन कहता हूँ ॥९३॥ समामने सामने आये हुए मेरे जिस भाईको तूने शक्तिके द्वारा पायल किया है वह मरनेके सन्मुख है, यदि तू अनुमति दे तो उसका मुख देस लें ॥९४॥ तदनन्तर जो प्रार्थना भङ्ग करनेमे दरिद्र था और इन्द्रके सन्तान जिसकी शोभा बढ रही थी ऐसा रावण 'एवमस्तु' वह कर वैभयके साथ लङ्काही ओर चला गया ॥९५॥ 'यह एक महानलवान् शत्रु तो मेरे द्वारा मारा गया' इस प्रकार हृदयमें बुद्ध धैर्यको प्राप्त हुए रावणने अपने भवनमे प्रवेश किया ॥९६॥ पराक्रमी मनुष्योंके साथ स्नेह रखनेवाले धीर वीर रावणने पायल योद्धाआकी खोज कराकर उनकी ओर प्रेमपूर्ण दृष्टिमे देखा तथा इस तरह उनका रोद दूर कर अन्त पुरमे प्रवेश किया ॥९७॥ भाई बुम्भकर्ण और युद्ध करनेवाले इन्द्रजित् तथा मेघवाहन नामक दो पुत्रोंको शत्रुके पास नका सुन रावण शोक करने लगा परन्तु प्रियजनोंकी ओर देसते हुए उसने उन्हें शीघ्र ही छुड़ानेका आशा की ॥९८॥

मालिनीवृत्तम्

इति निजचरितस्यानेकरूपस्य हेतोर्व्यतिगतभवजत्वावश्यलभ्योदयस्य ।  
इह जनुषु विचित्र कर्मणो भावयन्ते फलमविरतयोगाज्जन्तवो भूरिभावा १ ॥६६॥  
व्यति विधिनियोगात्क्षिदेवेह नाश इतरिपुरपरश्च स्व पद याति धीर ।  
विफलितपृथुशक्तिर्वन्धन सेवतेऽन्यो रविरचितपदार्थोद्भासने हि प्रवाण ॥११००॥

इत्यार्षे श्रीरविपेणाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे शक्तिसत्तापामिधान नाम द्वापष्टितम पर्न ॥६२॥



गौतम स्वामी ऋहते हैं कि हे श्रेणिक ! नाना प्रकारके भावोंको धारण करनेवाले जीव, अपने त्रिविध आचरणोंके अनुरूप पूर्णभवामें जो कर्मका सञ्चय करते हैं उन्हें उसका उदय अवश्य ही भोगना पडता है और उसके उदयके अनुरूप ही वे इस जन्ममें निरन्तर नाना प्रकारका फल भोगते हैं ॥६६॥ इस ससारमें कर्मयोगसे कोई नाशको प्राप्त होता है, कोई धीर धीर शत्रुको नष्ट कर अपने पदको प्राप्त होता है, कोई अपनी विशाल शक्तिके निष्फल हो जानेसे बन्धनको प्राप्त होता है और कोई सूर्यके समान योग्य पदार्थोंको प्रकाशित करनेमें समर्थ होता है ॥१००॥

इस प्रकार आर्ष नाममें प्रसिद्ध, रविपेणाचार्य कथित पद्मपुराणमें लक्ष्मणके शक्ति लगनके दुःखना वर्णन करनेवाला वासठना पर्न समाप्त हुआ ॥६२॥



## त्रिपष्टितमं पर्व

तत समाकुलस्वान्त पद्म शोकेन ताडित । परिप्राप तमुद्देश यत्र तिष्ठति लक्ष्मण ॥१॥  
 निविचेष्ट तमालोक्य चित्तिमण्डलमण्डनम् । शक्याऽऽलिङ्गितवक्षस्क पद्मो मूर्च्छामुपागत ॥२॥  
 सम्प्राप्य च धिरात् सज्ञा महाशोकसमन्वित । दुःखाग्निदीपितोऽयन्त विप्ररापमसेवत ॥३॥  
 हा वत्स विधियोगेन महादुर्लभमर्णवम् । उत्तार्य सङ्गतोऽस्येतामवस्थामतिदारुणाम् ॥४॥  
 अयि मद्भक्तिसत्त्वेणो मदर्थं सततोद्यत । त्रिप्र प्रयच्छ मे वाच किं मौनेनावतिष्ठसे ॥५॥  
 जानास्येव वियोगे त मुहूर्त्तमपि नो सहे । कुर्वालिङ्गनमुत्तिष्ठ क्व गतोऽसौ तवादर ॥६॥  
 अद्य केयूरदृष्टो मे भुजावेत्ती महायती । भावमात्रकरौ जातो निष्क्रियौ निष्प्रयोजनौ ॥७॥  
 निक्षेपो गुरभिस्त्व मे प्रयत्नेन समपित । ग वा किमुत्तर तेष्यो दास्यामि त्रययोऽस्मिन् ॥८॥  
 ष् सौमित्रि क्व सौमित्रिरिति गाढ समु सुक । लोकोऽपि हि समस्तो मे प्रययति प्रेमनिर्भर ॥९॥  
 रन पुरुषवाराणा हारयिवा त्वकामहम् । मन्ये जीवितमा मीय हत निहतपीरप ॥१०॥  
 दुष्कृतस्योदयस्थस्य रचितस्य भवान्तरे । फलमेतन्मया प्राप्त सीतया मे किमन्यथा ॥११॥  
 यस्या कृते क्षतोरस्क शक्या निर्दयनुत्तरया । भवन्त भूतले सुप्त पश्यामि दृढमानस ॥१२॥  
 कामार्थां सुलभा सर्वे पुरपस्यागमास्तथा । विविधाश्चैव सम्बन्धा विष्टपेऽस्मिन् यथा तथा ॥१३॥  
 पर्यव्य पृथिवीं सर्वां स्थान परयामि तत्रनु । यस्मिन्नवाप्यते भ्राता जननी जनकोऽपि वा ॥१४॥

अथानन्तर जिनका चित्त अत्यन्त व्याकुल हो रहा था तथा जो शोकसे पीड़ित हो रहे थे ऐसे श्रीराम उस स्थानपर पहुँचे जहाँ लक्ष्मण पड़े थे ॥१॥ जिनका वक्षस्थल शक्तिसे आलिङ्गित था ऐसे पृथिवीतलके अलंकार स्वरूप लक्ष्मणको निश्चेष्ट देख राम मूर्च्छाको प्राप्त हो गये ॥२॥ चिरकाल बाद जब सचेत हुए तब महाशोकसे युक्त एव दुःखरूपी अग्निसे जलते हुए अत्यन्त विलाप करने लगे ॥३॥ वे कहने लगे कि हाय वत्स ! तू कर्मयोगसे इस दुर्लभ्य सागर को उल्लंघ कर अब इस अत्यन्त कठिन दशाको प्राप्त हुआ है ॥४॥ अये वत्स ! तू सदा मेरी भक्तिमें सचेष्ट रहता था और मेरे कार्यके लिए सदा तत्पर रहता था, अब शीघ्र ही मुझे वचन दे-मुझसे वार्तालाप कर मौनसे क्यों बैठा है ? ॥५॥ तू यह तो जानता ही है कि मैं तेरा वियोग मुहूर्त्त भरके लिए भी सहन नहीं कर सकता हूँ अब उठ आलिङ्गन कर, तेरा वह आदर कहाँ गया ? ॥६॥ आब वाजूवन्दसे सुशोभित मेरी ये लम्बी भुजाएँ नाममात्रकी रह गईं, तेरे बिना सर्वथा निष्फल और निष्क्रिय हो गईं ॥७॥ माता पिता आदि गुरुजनोंने तुझे धरोहरके रूपमें प्रयत्न पूर्वक मेरे लिए सौंपा था, अब मैं लज्जा रहित हुआ जाकर उन्हें क्या उत्तर दूँगा ? ॥८॥ प्रेमसे भरे समान लोग अत्यन्त उत्सुक हो मुझसे पूछेंगे कि लक्ष्मण कहाँ है ? लक्ष्मण कहाँ है ? ॥९॥ तू घोर पुरुषोत्तम रत्नके समान था सो तुझे हराकर मैं पुरुषार्थ हीन हुआ अपने जीवनको नष्ट हुआ समझता हूँ ॥१०॥ भवान्तरमें जो मैंने दुष्कृत-पाप कर्म किया था वह इस समय उदय में आ रहा है । और उसीका फल मुझे प्राप्त हुआ है, हे भाई ! मुझे तेरे बिना सीतासे क्या प्रयोजन है ? ॥११॥ मुझे उस सीतासे क्या प्रयोजन है जिसके लिए निर्दय-राजगणने द्वारा चलायी हुई शक्तिसे तेरा वक्षस्थल विद्योर्ण हुआ है तथा मैं कठोर हृदय हो तुझे पृथिवी पर सोया हुआ देव रहा हूँ ॥१२॥ इस समारामे पुरुषको फाम और अर्थ तथा नाना प्रकारके सम्बन्ध सर्वत्र सुप्त हैं ॥१३॥ समस्त पृथिवीमें घूम कर मैं यह स्थान नहीं देख सका जिसमें भाई माता तथा

हे सुग्रीव सुहृद्व ते दक्षित खेचराधिप । वनाऽनुना निज वेश भामण्डल भवानपि ॥१५॥  
 जीवितारा परिपश्य दक्षिता जानकीमिव । ज्वलन श्च प्रवेशास्मि सम भ्रात्रा विसशयम् ॥१६॥  
 विभीषण न मे शोकस्तथा साताऽनुजोद्धव । यथा निरपकारित्व मम सम्प्राप्यते त्वयि ॥१७॥  
 उत्तमा उपवृत्तिं पूर्व पश्चात्तु मध्यमा । पश्चादपि न ये तेषामधमव हतात्मनाम् ॥१८॥  
 कृतपूर्वोपकारस्य साधोर्न्युविरोधिन । दत्ते नोपकृत किञ्चित्तेन दक्षेतरामहम् ॥१९॥  
 भो भामण्डलसुग्रीवी चिता रचयता दुनम् । परलोक गमिष्यामि कुरुत युक्तमात्मन ॥२०॥  
 ततो लक्ष्माधर स्पष्टमिच्छन्त रघुनन्दनम् । अवारयन्महाबुद्धिर्जाम्बूनदमहत्तर ॥२१॥  
 मा स्त्राचारलक्ष्मण देव दिव्यास्त्रपरिमूच्छितम् । प्रमादो जायते श्रेव प्रायो हि स्थितिरीदृशा ॥२२॥  
 प्रपद्यस्व च धीरास्व कातरत्व परित्यज । भवन्तीह प्रतीकारा प्रायो विपदमायुषाम् ॥२३॥  
 प्रताकारो विलापोऽत्र नानुदात्तजनोचित । परमार्थानुसारेण न्ययता धीरमानसम् ॥२४॥  
 उपाय सर्वथा कश्चिद्विद् देव भविष्यति । जाविष्यति तव भ्राता ननु नारायणो ह्ययम् ॥२५॥  
 ततो विपादिन सर्वे पर विधापराधिपा । उपायचिन्तनास्तत्तश्चक्रुरिचमन्तरामनि ॥२६॥  
 दिव्या शक्तिरिय शक्या न निराकर्तुं भीषणै । उद्गते ऽधोतिपामारां दुःख जावति लक्ष्मण ॥२७॥  
 अधोस्तायं कवन्धादासिनिवाहेन सा मही । किङ्करैर्विहितेऽनुद्भूद्यप्रकारमण्डपा ॥२८॥

पिना पुन प्राप्त हो सकते हो ॥१५॥ हे विधापरोके राजा सुग्रीव ! तुमने अपनी मित्रता दिखाई ।  
 अब अपने देश जाओ । इसी तरह हे भामण्डल ! तुम भी अपने देश जाओ ॥१६॥ इतने सशय  
 नहीं कि मैं प्रिया जानकीके समान जीवनकी आशा छोड़ कर भाईके साथ अग्निमे प्रवेश करूँगा  
 ॥१६॥ हे विभीषण ! मुझे सीता तथा छोटे भाईके वियोगसे उत्पन्न हुआ शोक उस प्रकार  
 पीडा नहीं पहुँचा रहा है जिस प्रकार कि तुम्हारा कुछ उपकार नहीं कर सकना ॥१७॥ उत्तम  
 मनुष्य कार्यके पूर्व तथा मध्यम मनुष्य कार्यके पश्चात् उपकार करते है परन्तु जो कार्यके पीछे  
 भी उपकार नहीं करते हैं उन दुष्टोंमे मोक्षताका ही निवास समझना चाहिये ॥१८॥ हे विभीषण !  
 तू साधु पुण्य है । तूने मेरा पहले उपकार किया और मेरे पीछे वन्धुसे विरोध किया है फिर भी  
 मैं तेरा कुछ भी उपकार नहीं कर सका इससे मन ही मन जल रहा हूँ ॥१९॥ हे भामण्डल और  
 सुग्रीव ! शीघ्र ही चिता बनाओ । मैं पर लोक जाऊँगा, आप दोनों अपने योग्य कार्य करो ।  
 जिसमे तुम्हारा कल्याण हो सो करो ॥२०॥

तदनन्तर रामने लक्ष्मणके स्पर्श करनेकी इच्छा की सो उन्हे महाबुद्धिमान् जाम्बूनदने  
 मना किया ॥२१॥ उसने कहा कि हे देव ! दिव्यअस्त्रसे मूर्छित लक्ष्मणको मत छुओ क्यों कि ऐसा  
 करनेसे प्राय प्रमाद हो जाता है । इन दिव्य अस्त्रोंकी ऐसी ही स्थिति है ॥२२॥ आप धीरताको  
 प्राप्त होओ, कातरता छोड़ो, विपत्तिमे पड़े हुए लोगोंके प्रतीकार इस ससारमे अधिकाश विद्यमान  
 हैं ॥२३॥ छुट्ट मनुष्योंके योग्य विलाप करना इसका प्रतीकार नहीं है, हृदयको यथार्थमे धैर्य युक्त  
 किया जाय ॥२४॥ हे देव ! इसका कोई न कोई उपाय अवश्य होगा और तुम्हारा भाई जावित  
 होगा क्यों कि यह नारायण है नारायणका असमयम मरण नहीं होता ॥२५॥ तदनन्तर विपादसे  
 भरे सत्र विधाधर राजा उपायके चिन्तनमे तत्पर हो मनमे इस प्रकार विचार करने लगे कि यह  
 दिव्य शक्ति औपधियोने द्वारा दूर नहीं की जा सकता और सूर्योदय होने पर लक्ष्मण वड़ी  
 कठिनाईसे जीवित रह सकेंगे अर्थात् सूर्योदयके पूर्व इसका प्रतीकार नहीं किया गया तो जीवित  
 रहना कठिन हो जायगा ॥२६-२७॥

तदनन्तर किङ्कराने आगे निमेषम ही शिर रहित धड आदिको हटा कर उस युद्धभूमिको  
 शुद्ध किया और वहाँ कपड़ेके ऊँचे ऊँचे डेरे कनाते तथा मण्डप आदि सज्जे कर दिये ॥२८॥ उस

सप्तरुप्यादसम्पन्ना कृतद्विचयनिर्गमा<sup>३</sup> । वहिः क्वचित्तैर्योधैर्गुप्ता कामुं कथारिभिः ॥२१॥  
 प्रथमे गोपुरे नीलश्रापपाणि, प्रतिष्ठितः । द्वितीये तु नलस्तस्थौ गदाहस्तो घनोपमः ॥३०॥  
 निर्भीपणमृतोये तु शूलपाणिमहामनाः । स्रग्माल्यचित्ररत्नांशुरांशानवदशोभत ॥३१॥  
 संघद्वयदत्तूर्णारस्तुतोये कुमुद, स्थितः । सुपेणः पञ्चमे ज्ञेयः कुन्तहस्त, प्रतापवान् ॥३२॥  
 सुर्पावरभुजो वीरः सुर्माव, स्वयमेव च । रराज भिण्डमालेन पथे वज्रधरोपमः ॥३३॥  
 प्रदेशे सप्तमे राजमहारिपुबलान्तक । मण्डलाग्र समाकृत्य स्वयं भामण्डलः स्थितः ॥३४॥  
 पूर्वद्वारेण सचारे शरभ शरभध्वजः । रराज पश्चिमे द्वारे कुमारो जाम्बवो यथा ॥३५॥  
 प्रदेशमौत्तरद्वार व्यापामाल्यौघसकुलम् । स्थितश्चन्द्रमरीचिश्च बालिपुत्रो महाबलः ॥३६॥  
 एव विरचिता षोणो खेचरेशैः प्रयतिभिः । रराज द्यौरिवात्यर्थं निर्मलैरहुमण्डलैः ॥३७॥  
 यावन्तः केचिदन्ये तु समरादनिवर्तिनः । ते स्थिता दक्षिणामाशां व्याप्य वानरकेतवः ॥३८॥

### उपजातिवृत्तम्

एव प्रयत्नाः कृतयोग्यरथा, सदेहिनो लक्ष्मणजीवयोगे ।  
 सविस्मया सोऽस्तुचः भ्रमाना स्थिता, समस्ता गगनाद्यनेशाः ॥३९॥  
 न तन्नरा नो वयैवो न नागा न चापि देवा विनिवारयन्ति ।  
 यदाभना सज्जनितस्य लम्प-फल नृणां कर्मरवे, प्रकाशम् ॥४०॥

इत्यार्षे श्रीरविप्रेषाचार्यप्रोक्ते पद्मपुराणे शक्तिभेदरामविलापाभिधान नाम निपठितं पर्व ॥६३॥

भूमिको सात चौत्रियोसे युक्त किया, दिशाओंमें आवागमन चन्द किया और क्वच तथा धनुष की धारण करने वाले योद्धाओंने वाहर सड़े रह कर उसकी रक्षा की ॥२६॥ पहले गोपुर पर धनुष हाथमें लेकर नील बैठा, दूसरे गोपुरमें गदा हाथमें धारण करने वाला मेघ तुल्य नील सड़ा हुआ, तीसरे गोपुरमें हाथमें शूल धारण करने वाला उदारचेता विभीषण सड़ा हुआ । वहाँ जिसकी मालाओंमें लगे नाना प्रकारके रत्नोंकी किरणें सब ओर फैल रही थीं ऐसा विभीषण ऐशानेन्द्रके समान सुशोभित हो रहा था ॥३०-३१॥ क्वच और तरकसको धारण करनेवाला कुमुद चौथे गोपुर पर सड़ा हुआ । पांचवें गोपुरमें भाला हाथमें लिये प्रतापी सुपेण सड़ा हुआ ॥३२॥ जिसकी भुजाएँ अत्यन्त स्थूल थीं और भिण्डमाल नामक शस्त्रसे इन्द्रके समान जान पड़ता था ऐसा वीर सुर्माव स्वयं छठवें गोपुरमें सुशोभित हो रहा था । तथा सातवें गोपुरमें यड़े वड़े शयुगजाओंकी सेनाको मौतके घाट उतारने वाला भामण्डल स्वयं तलवार रखी कर सड़ा था ॥३३-३४॥ पूर्व द्वारके मार्ग में शरभ चिह्नसे चिह्नित ध्वजाको धारण करने वाला शरभ पहला दे रहा था, पश्चिम द्वारमें जाम्बव कुमार सुशोभित हो रहा था और मन्त्रि समूहसे युक्त उत्तर द्वारकी घेर कर चन्द्ररश्मि नामका वालिका महाबलवान् पुत्र सड़ा हुआ था ॥३५-३६॥ इस प्रकार प्रयत्नशील विद्याधर राजाओंके द्वारा रची हुई यह भूमि, निर्मल नक्षत्रोंके समूहमें आकाश के समान अत्यन्त सुशोभित हो रही थी ॥३७॥ इनके सिवाय युद्धसे नहीं लौटने वाले जो अन्य वानरध्वज राजा थे वे सब दक्षिण दिशाको व्याप्त कर सड़े हो गये ॥३८॥ गीतम रामी कहते हैं कि हे श्रेणिक । जिन्होंने इस प्रकार प्रयत्न कर ये म्य रक्षा की थी, जिन्होंने लक्ष्मणके जीवित होने में संदेह था, जो आश्चर्यसे युक्त थे, बहुत भारी शोकसे सक्षित थे एवं मानो थे ऐसे सब विद्याधर राजा यथा स्थान सड़े हो गये ॥३९॥ अपने ही द्वारा अर्जित कर्म रूपी सूर्यने प्रकाश स्वरूप जो पल मनुष्योंकी प्राप्त होने वाला है उसे न मनुष्य दूर कर सकते हैं, न छोड़े, न हाथी, और न देव भी ॥४०॥

इस प्रकार ज्ञाप्य नामने प्रसिद्ध, रविप्रेषाचार्य द्वारा कथित पद्मपुराणमें शक्तिभेद एव रामांशुनापरा वर्णन करनेवाला तिरगटाँ पर्व समाप्त हुआ ॥६३॥



## चतुःपष्टितमं पर्व

नियत मरण ज्ञात्वा लक्ष्मणस्य दशानन । पुत्रभ्रातृवध बुद्धी चकारात्यन्तदुःखित ॥१॥  
 हा भ्रात परमोदार भगवत्यन्तहितोद्यत । कथमेतामवाप्नोसि बन्धावस्थामसङ्गताम् ॥२॥  
 हा पुत्रो मुमहाचार्यो भूत्वाविव ददौ मम । विधेनियोगत प्राप्तो भवन्तो बन्धन नवम् ॥३॥  
 किं करिष्यति व शत्रुरित्याकुलितमानसः । न वेद्मि दुरितामाह विरस वा करिष्यति ॥४॥  
 भवद्भक्तमे प्रातैर्बन्धु ख समागतै । चाप्येऽहं नितरा कष्ट किमिदं मम वर्त्तते ॥५॥  
 एत गजेन्द्रवद्धनिजयूथमहागज । अप्रकारा पर शोकमसेवत स सन्ततम् ॥६॥  
 शक्या हत गत भूमिं श्रुत्वा लक्ष्मीधर परम् । सम्प्राप्ता ज्ञानका शोकमकरोत्परिदेवनम् ॥७॥  
 हा भद्र लक्ष्मण प्राप्तस्वमवस्थामिमां हताम् । कृते मे मन्दमागवाया विनात गुणभूषण ॥८॥  
 ईदृशमपि चाप्यामि भवन्तमहमीच्छितुम् । विमुक्ता हतदैवेन न लभे पापकारिणो ॥९॥  
 भवन्त तादृश वीर धृता पापेन शत्रुणा । इ मे कृतो न सन्देह प्रवारे मरण प्रति ॥१०॥  
 वियुक्तो बन्धुभिः शत्रुरिष्टे ससक्तमानसः । अवस्थामागतोऽस्थेता कृच्छ्रादुत्तार्य सागरम् ॥११॥  
 अपि नाम पुनः श्रीढाकोविद विनयान्वितम् । परयेय चारवाक्यं त्वा परमाद्भुतकारिणम् ॥१२॥

अथानन्तर रावण लक्ष्मणका मरण निश्चित जान अत्यन्त दुरती होता हुआ मनमें पुत्रा और भाईके वधका विचार करने लगा । भावार्थ—रावणको यह निश्चय हो गया कि शक्तिके प्रहारसे लक्ष्मण अजरय मर गया होगा और उसके प्रतिकार स्वरूप रामपक्षके लोगोने कैद किये हुए इन्द्र-चित्त तथा मेघवाहन इन दो पुत्रों और कुम्भकर्ण भाईको अवश्य मार डाला होगा । इस विचारसे यह मन ही मन बहुत दुःखी हुआ ॥१॥ वह विलाप करने लगा कि हाय भाई ! तू अत्यन्त उदार था और मेरा हित करनेमें सदा उद्यत रहता था सो इस अयुक्त बन्धनकी अवस्थाको कैसे प्राप्त हो गया ? ॥२॥ हाय पुत्रो ! तुम तो महा बलवान् और मेरी भुजाआके समान दृढ थे । कर्मके नियोग से ही तुम इम नूतन बन्धनको प्राप्त हुए हो ॥३॥ शत्रु तुम लोगोका क्या करेगा ? यह सोचकर मेरा मन अत्यन्त व्याकुल हो रहा है । मैं पापी शत्रुके कर्तव्यको नहीं जानता हूँ अथवा निश्चित ही है कि वह अनिष्ट ही करेगा अर्थात् तुम्हें मारेगा ही ॥४॥ आप जैसे उत्तम, प्रीतिके पात्र पुरुष बन्धनके दुःखको प्राप्त हुए हैं इसलिये मैं अत्यधिक पीड़ाको प्राप्त हो रहा हूँ । हाय, यह कष्ट मुझे क्या रहा है ? ॥५॥ इस प्रकार जिसके यूथ—मुण्डका महागज पकड़ लिया गया है ऐसे अन्य गजराजनी तरह वह रावण निरन्तर अप्रकट रूपसे मन ही मन शोकका अनुभव करने लगा ॥६॥

तदनन्तर जन सीताने सुना कि लक्ष्मण शक्तिसे घायल हो पृथिवी पर गिर पड़े हैं तब वह शोकको प्राप्त हो विलाप करने लगी ॥७॥ वह कहने लगी कि हाय भाई लक्ष्मण ! हाय विनोद ! हाय गुण रूपी आभूषणसे सहित ! तुम मुझ अभागिनीके लिए इस अवस्थाको प्राप्त हुए हो ॥८॥ यद्यपि मैं इस तरह संकटमें पड़ी हुई भी तुम्हारा दर्शन करना चाहती हूँ तथापि मैं अभागिनी पापिनी आपका दर्शन नहीं पा रही हूँ ॥९॥ आप जैसे वीरको मारते हुए पापी शत्रुने किस वीरके मारनेका सन्देह मुझे उत्पन्न नहीं किया है ? अर्थात् जब उसने आप जैसे वीरको मार डाला है तब वह प्रत्येक वीरको मार सकता है ॥१०॥ तुम भाईका भला करनेमें चिन्ता लगा पहले बन्धुजनासे विद्रोहको प्राप्त हुए और अब बड़ी कठिनाईसे समुद्रको पारकर इस अवस्थाको प्राप्त हुए हो ॥११॥ क्या मैं पीड़ा करनेमें निपुण विनयी, सुन्दर वचन बोलने वाले एवं

कुर्वन्तु सर्वथा देवास्तव जायितपालनम् । विशदयता द्रुत गच्छ सर्वलोकमनोहर ॥१३॥  
 पृथ्विलापिना कृच्छ्रान्छोकिनी जनकारमजा । भावप्रतिभिरानाता खेचरीभि प्रसात्वनम् ॥१४॥  
 जायते देवि नाथापि निश्चयो देवरस्य ते । अतो न वर्तते कर्त्तुमेतस्मिन् परिदेवनम् ॥१५॥  
 भव धीरा प्रवीराणा भवत्येवेदश गति । भवन्ति च प्रतीकाराश्चिर हि जगताहितम् ॥१६॥  
 इति विद्याधरावाक्यकिञ्चिन्नासाऽमृदनाकुला । शृण्विदानो यदेतस्मिन्नात लक्ष्मणपर्वणि ॥१७॥  
 प्राप्सो दृष्यगृहद्वार पुरुषश्चाहदर्शन । प्रभामण्डलवारेण प्रविशन्ति नोदिता ॥१८॥  
 कस्व कस्य कुतो वाऽसि किमर्थं वा विविक्षसि । तिष्ठ तिष्ठ समाचक्ष्व नात्राविदितसगम ॥१९॥  
 सोऽवोचदद्य मे मास साग्र प्राप्तस्य वर्तते । पद्म समाश्रयामीनि प्रस्तावो न चलय्यत ॥२०॥  
 अयुना दर्शये शीघ्र जीवन्त यदि लक्ष्मणम् । द्रष्टुं भवति वाञ्छा वस्तत्रोपाय वदाम्यहम् ॥२१॥  
 इत्युक्ते परितुष्टेन भामण्डलमर्हभृता । दत्त्वा प्रतिनिधिं द्वारे नीतोऽमी पद्मगोचरम् ॥२२॥  
 सप्रयुज्य प्रणाम च स जगाद् महाराज । मा किंस्थास्व महाराज कुमारो जावति ध्रुवम् ॥२३॥  
 सुप्रभा नाम मे माता जनक शशिमण्डल । देवगाने पुरेऽह च चन्द्रप्रतिमसञ्जक ॥२४॥  
 जातुचिद्विक्रमं व्योम्नि वेलाप्यक्षस्य सूनुना । सहस्रविजयारयेन वैरिणाऽह निराश्रित ॥२५॥  
 ततो मैथुनिकावैर सृष्ट्वा क्रोध समायुज्य । तस्य जात मया साह्यं रणं सुभङ्गदारुणम् ॥२६॥

परम आश्चर्यके कार्य करने वाले तुम्हें फिर भा देव सक्की ? ॥१७॥ देव सत्र प्रकारसे तुम्हारे जीवनकी रक्षा करे और सत्र लोगोंके मनको हरण करने वाले तुम शीघ्र ही शल्य रहित अवस्थाको प्राप्त होओ ॥१४॥ इस प्रकार यिलाप करने वाली शोकवती सीताको भावसे स्नेह रखने वाला विद्याधरियोंने सात्वनना प्राप्त कराई ॥१४॥ उन्हाने समभाते हुए कहा कि हे देवि ! तुम्हारे देवरका अभीतक निश्चय नहीं जान पडा है इसलिए इसके विषयमे यिलाप करना उचित नहीं है ॥१५॥ धैर्य धारण करो, वीरोंकी तो ऐसी गति होती ही है । जो हो चुकता है उसको प्रतीकार होते हैं यथार्थमें पृथिवीकी चेष्टा विचित्र है ॥१६॥ इस प्रकार विद्याधरियोंके कहनेसे सीता कुछ निराकुल हुई । गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! अब इस लक्ष्मण पर्वमें जो कुछ हुआ उसे श्रवण कर ॥१७॥

अथानन्तर इसी बीचमें एक सु दर मनुष्य डेरेके द्वार पर आकर भीतर प्रवेश करने लगा तब भामण्डलने उसे रोकते हुए कहा कि तू कौन है ? किसका आदमी है ? कहाँसे आया है ? और किस लिए प्रवेश करना चाहता है ? खडा रह खडा रह सत्र बात ठीक ठीक बता, यहाँ अपरिचित लोगोंका आगमन निषिद्ध है ॥१८-१९॥ इसके उत्तरमें उस पुरुषने कहा कि मुझे यहाँ आये कुछ अधिक एक मास हो गया । मैं रामका दर्शन करना चाहता हूँ परन्तु अब तक अवसर ही प्राप्त नहीं हुआ ॥२०॥ इस समय उनका दर्शन करता हूँ । यदि आप लोगोंकी लक्ष्मणकी शीघ्र ही जीवित देरनेकी इच्छा है तो मैं आपको इसका उपाय बताता हूँ ॥२१॥ उसके इतना कहते ही राजा भामण्डल बहुत सन्तुष्ट हुआ । वह द्वार पर अपना प्रतिनिधि बैठाकर उसे रामके समीप ले गया ॥२२॥ उस पुरुषने बड़े आदरसे रामको प्रणाम कर कहा कि हे महाराज ! रोद मत कीजिये, कुमार निश्चित ही जीवित हैं ॥२३॥ मेरी माताका नाम सुप्रभा तथा पिताका नाम चन्द्रमण्डल है । मैं देवगीतपुरका रहने वाला हूँ तथा चन्द्रप्रतिम मेरा नाम है ॥२४॥ किसी समय मैं आकाशमें घूम रहा था उसी समय राजा वेलाप्यक्षके पुत्र सहस्रविजयने जो कि हमारा शत्रु था मुझे देख लिया ॥२५॥ तदनन्तर स्त्री सम्बन्धी वैरका स्मरणकर वह क्रोधको प्राप्त हो गया

तत्रोऽहं चन्द्रवत्वा रक्षया तेन ममाहृतः । म्यान्महेन्द्रोद्गोदाने नक्तं निरुत्तरो ऽने ॥२०॥  
 पतन्तं नां मनान्तेव तारकादिन्दनद्विभम् । साकेतधिरतिस्तर्की<sup>१</sup> भरतः समदौकृत ॥२१॥  
 शक्तिगल्पितवपुश्च<sup>२</sup> निरुद्धन्दनवारिणा । तेनह् कल्याणैतं साधुदा जं वदशयिवा ॥२२॥  
 गक्तिः परादिता काश्ये जातं रूपं च पूर्वकम् । अधिकं च सुखं जन तेन मे गन्धर्वरिणा ॥२३॥  
 तेन मे पुण्येन्द्रेण भरतेन महानना । जन्मान्तरनिर्दं दत्त फलं वस्य स्वदोषदम् ॥२४॥  
 जगन्तरे म मन्थ्रान्तः सुकुरो रघुनन्दनः । प्रपद्य भद्रं जानामि तद्गन्धोदकमन्मवन् ॥२५॥  
 सोऽज्जोवहेव जानामि श्रपतां वेदयामि ते । वृष्टो हि स नचा राखा तेन चेति निवेदितम् ॥२६॥  
 यथा किल मनस्योऽय देयः पुरसमन्वितः । अनिमृत्तो महारोगीरामोदमनिकारकैः ॥२७॥  
 दरोवातमहाशाहचरलापरिखावाः । सर्वशूलारविच्छुर्दिश्वचपुरस्कैःकाश्यः ॥२८॥  
 क्रुद्धा इव पर तीव्राः सर्वे रोगास्तदाऽभवन् । दैत्र विरपे प्राणो वैकोऽपतित न पान्तिः ॥२९॥  
 केवलो द्रोणमेघाङ्कः सानान्यपशुबान्धवः । कुरो देव इवारोगः क्षुतो निजपुरे मया ॥३०॥  
 आहाय न नयाऽश्वचि माम त्व नोरजो यथा । काण्डेश्वरविनिमुक्तं तथा ना कर्तुं महसि ॥३१॥  
 ततः सीरभमस्वदूरदिग्बलयं जलम् । तेन निवृत्तोऽइमानायय प्राहृष्टोऽहावतां परान् ॥३२॥

जिमसे उमका मेरे साथ योद्धाओंको भय उत्पन्न करनेवाला—कठिन युद्ध हुआ ॥२६॥ तत्पश्चात् उसने मुझे चण्डरवा नामक शक्तिसे मारा जिससे मैं रात्रिके समय आकाशसे अयोध्याके महेन्द्रोदय नामक सयन वनमें गिरा ॥२७॥ आकाशसे पड़ते हुए ताराविम्बके समान मुझे देव अयोध्याके राजा भरत तर्क करते हुए मेरे समीप आये ॥२८॥ शक्ति लगनेसे जिसका चक्षुःशल शल्यमुक्त था ऐसे मुझको देव राजा भरत दयासे दुखी हो उठे । तदनन्तर जीवन दान देनेवाले उन सत्युदपने मुझे चन्दनके जलसे सींचा ॥२९॥ उसी समय शक्ति कहीं भाग गई और मेरा रूप पहलेके समान हो गया तथा उस सुगन्धित जलसे मुझे अत्यधिक सुख उत्पन्न हुआ ॥३०॥ पुरोधसे दन्द्रके समान श्रेष्ठ उन महात्मा भरतने मुझे यह दूसरा जन्म दिया है जिसका कि फल आपका दर्शन करना है । भावार्थ—शक्ति निकालकर उन्होंने मुझे जीवित किया उसीके फलस्वरूप आपके दर्शन पा सका हूँ ॥३१॥

इसी बीचमें परम हर्षको प्राप्त हुए, सुन्दर रूपके धारक रामने उससे पूछा कि हे भद्र ! उस गन्धोदककी उत्पत्ति भी जानते हो ? ॥३२॥ इसके उत्तरमें उसने कहा कि हे देव ! जानता हूँ सुनिये मैं आपके लिए बताता हूँ । मैंने राजा भरतसे पूछा था तब उन्होंने इस प्रकार कहा था ॥३३॥ कि नगर ग्रामादिसे सहित यह देश एक बार जिनका प्रतिकार नहीं किया जा सकता था ऐसे अनेक महारोगोंसे आक्रान्त हो गया ॥३४॥ उरोपात—जिसमें चक्षुःशल-पसली आदिमें दर्द होने लगता है, महादाहज्वर—जिसमें महादाह उत्पन्न होना है, लालापरिखाध—जिसमें मुँहसे लार बहने लगती है, सर्व-शूल—जिसमें सर्वाङ्गमें पीडा होती है, अरविचि—जिसमें भोजनादिकी रुचि नष्ट हो जाती है, छर्दि—जिसमें वमन होने लगते हैं, श्वयथु—जिसमें शरीर पर सूजन आ जाता है, और स्फोटक—जिसमें शरीर पर फोड़े निकल आते हैं, इत्यादि समस्त रोग उस समय मानो परम क्रुद्ध हो रहे थे । इस देशमें ऐसा एक भी प्राणी नहीं बचा था जो कि इन रोगों द्वारा गिराया न गया हो ॥३५-३६॥ केवल, द्रोणमेघ नामका राजा मन्त्रियों पशुओं तथा बन्धु आदि परिवारके साथ अपने नगरमें देवके समान नीरोग बचा था ऐसा मेरे सुननेमें आया ॥२७॥ मैंने उसे बुलाकर कहा कि हे माम ! जिस प्रकार तुम नीरोग हो उसी प्रकार मुझे भी अचिन्मय नीरोग करनेके योग्य हो ॥३८॥ तदनन्तर उसने बुलाकर अपनी सुगन्धिसे दूर-दूर तकके दिग्मण्डलको व्याप्त करनेवाला जल मुझ पर सींचा और मुझे परम नीरोगता प्राप्त करा

न केवलमह तेन वारिणांस्तपुर मम । पुर देशश्च सजात सर्वरोगविवर्जितम् ॥४०॥  
 कर्ता रोगसहस्राणा वायुरत्यन्तदुःसह । प्रणष्टो वारिणा तेन मर्मसम्भेदकोविदः ॥४१॥  
 मयैव सतत पृष्टो मामैतदुदक कुतः । येनाऽऽश्चर्यमिद शीघ्र कृत रोगविनाशनम् ॥४२॥  
 सोऽजोचच्छ्रुयता राजन्नस्ति मे गुणशालिनी । विशल्या नाम दुहिता सर्वविज्ञानकोविदा ॥४३॥  
 यस्या गर्भप्रपन्नायामनेकव्याधिपीडिता । देवी ममोपकाराऽभूत्सर्वरोगविवर्जिता ॥४४॥  
 जिनेन्द्रशासनासक्ता नित्य पूजासमुद्यता । शोषेव सर्ववन्धूना पूजनीया मनोहरा ॥४५॥  
 स्नानोदकमिद तस्या महासौरम्यसद्गतम् । कुरते सर्वरोगाणा तत्क्षणेन विनाशनम् ॥४६॥  
 ततस्तदहमाकर्ण्य द्रोणमेघस्य भाषितम् । पर विस्मयमापन्नं सम्पदा तामपूजयम् ॥४७॥  
 नगरीतश्च निष्कन्य नाम्ना सत्त्वहित मुनिम् । गणेश्वर समप्राक्त प्रणम्य विनयान्वितः ॥४८॥  
 तत खेचरपृष्टोऽसौ समाख्यासोन्महायति । वैशल्या चरित दिव्य चतुर्ज्ञानी सुवत्सल ॥४९॥  
 विदेहे पौण्डरीकाख्ये विपैवै स्वर्गसन्निभे । चक्रो त्रिभुवनानन्द पुरे चक्रधरोऽभवत् ॥५०॥  
 नाम्नाऽनन्तरा तस्य तनया गुणमण्डना । अपूर्वा कर्मणा सृष्टिर्वाण्यत्त्वकारिणी ॥५१॥  
 ता प्रतिष्ठपुराधोऽशः सामन्तोऽस्य पुनर्वसुः । दुर्धाराहरदारोप्य विमान स्मरचोदितः ॥५२॥  
 क्रुद्धाच्चक्रधरादाज्ञा सम्प्राप्यामुप्य किङ्करैः । चिर कृतवतो युद्ध विमान चूणित भृशम् ॥५३॥  
 चूर्ण्यमानविमानेन मुक्ता तेनाकुलात्मना । पपात नभस कान्तिरिव चन्द्रस्य शारदी ॥५४॥

दी ॥२६॥ उस जलसे न केवल मैं ही नीरोग हुआ किन्तु मेरा अन्त पुर, नगर और समस्त देश रोग रहित हो गया ॥४०॥ हजारों रोगोंको उत्पन्न करनेवाली, अत्यन्त दुःसह, एव मर्मघात करनेमें निपुण दूषित वायु ही उस जलसे नष्ट हो गई ॥४१॥ मैंने राजा द्रोणमेघसे बार-बार पूछा कि हे माम ! यह जल कहाँसे प्राप्त हुआ है जिसने शीघ्र ही रोगोंको नष्ट करनेवाला यह आश्चर्य उत्पन्न किया है ॥४२॥ इसके उत्तरमें द्रोणमेघने कहा कि हे राजन् ! सुनिये, मेरी, गुणोंसे सुशोभित तथा सब प्रकारके विज्ञानमें निपुण विशल्या नामकी पुत्री है ॥४३॥ जिसके गर्भमें आते ही अनेक रोगोंसे पीड़ित मेरी स्त्री सर्व रोगोंसे रहित हो मेरा उपकार करने वाली हुई थी ॥४४॥ वह जिन शासनमें आसक्त है, निरन्तर पूजा करनेमें तत्पर रहती है, मनोहारिणी है और शोषात्तके समान सर्व बन्धु जनोकी पूज्या है ॥४५॥ यह महा सुगन्धिसे सहित उसीका स्नान-जल है जो कि क्षण भरमें सब रोगोंका नाश कर देता है ॥४६॥ तदनन्तर द्रोणमेघके वह वचन सुन मैं परम आश्चर्यको प्राप्त हुआ और बड़े वैभवसे मैंने उस पुत्रीकी पूजा की ॥४७॥ नगरीसे निकलकर जब वापिस आ रहा तब सत्यहित नामक मुनिराज जो कि मुनिसंघके स्वामी थे वे मिले। मैंने विनयपूर्वक प्रणाम कर उनसे विशल्याका चरित्र पूछा ॥४८॥ राजा भरत विद्याधर से कहते हैं कि हे विद्याधर ! तदनन्तर मेरे पूछने पर चार ज्ञानके धारी, महानेही मुनिराज विशल्याका दिव्य चरित्र इस प्रकार कहने लगे कि—॥४९॥

विदेह क्षेत्रमें स्वर्गके समान पुण्डरीक नामक देश है उसके चक्रधर नामक नगरमें त्रिभुवनानन्द नामका चक्रवर्ती रहता था ॥५०॥ उसकी अनंगशरा नामकी एक कन्या थी जो गुण रूपों आभूषणोंसे सहित थी, कर्मोंकी अपूर्व सृष्टि थी और सौन्दर्यका प्रवाह वहाने वाली थी ॥५१॥ चक्रवर्ती त्रिभुवनानन्दका एक पुनर्वसु नामका सामन्त था जो कि प्रतिष्ठपुर नगरका स्वामी था। कामसे प्रेरित हो उस दुर्बुद्धिने विमान पर चढ़ाकर उस कन्याका अपहरण किया ॥५२॥ क्रोधसे भरे चक्रवर्तीकी आज्ञा पाकर सेवकोंने उसका पीछा किया और बहुत काल तक युद्ध कर उसके विमानको अत्यधिक चूर कर डाला ॥५३॥ तदनन्तर जिसका विमान चूर चूर किया

विद्यया पर्णलक्ष्याऽस्ती पुनर्वसुनियुक्तया । अटवामागता स्वैर नाम्ना श्वपदरौरवाम् ॥५५॥  
 महाप्रतिभयाकारा महाविद्याभृतामपि । दुःप्रवेशा कुतश्चान्ता महाविटपसङ्घट्टे ॥५६॥  
 नानाबल्लीसमारिल्लष्टविधिभोक्तृपादपाम् । पल्लवोद्गासितैर्मुक्ता भातैरिव रवे करै ॥५७॥  
 तरङ्गशरमर्द्रापिण्यार्घसिंहादिसैविताम् । उच्चान्तरक्षरक्षोणी महाविवरसङ्घताम् ॥५८॥  
 अरण्यानीं गता सेय महाभयममागता । कान्ता शिखेव दापस्य सीदति स्म वराक्किा ॥५९॥  
 नदातीर समागम्य कृत्वा दिगवलोकनम् । महाग्नेदसमायुक्तः स्मृतचन्द्रो स्म रोदिति ॥६०॥  
 तेनाह लोकपालेन देवैन्द्रप्रतिभासिता । सुचक्रवर्तिना जाता महादुर्ललितामिका ॥६१॥  
 विधिना वारणेनेमामवस्थामनुसारिता । किं करोमि परिप्राप्ता वन दुःखनिराणम् ॥६२॥  
 हा मात सकल लोक त्व पालयमि विद्रमा ! कथं मामपरिप्राणा विधिने नानुकरुषसे ॥६३॥  
 हा मातस्तादृश दुःख कुञ्चिधारणपूर्वकम् । विपद्य साम्प्रत कस्मात् कुरुषे नानुकरुष्यमम् ॥६४॥  
 हा मेऽन्त करणञ्चायपरिवर्गगुणोत्तम । अमुक्ता षणमप्येक कथं त्यजसि साम्प्रतम् ॥६५॥  
 जातमात्रा मृता नाऽह कस्माद्दुःखस्य भूमिका । अधवा न विना पुण्यैरभिवन्द्भिर्जन्तमाप्यते ॥६६॥  
 किं करोमि क्व गच्छामि दुःखिनीं सध्रयामि कम् । क पर्यामि महाऽरण्ये कथं तिष्ठामि पापिना ॥६७॥  
 एतन् किमेव सम्प्राप्त जन्मेदं नरके मया । सैव किं स्यादह कोऽय प्रकार सहस्रोद्गत ॥६८॥  
 पृवमादि चिर कृत्वा विप्रलाप मुचिह्वला । पशूनामपि ताम्राणा मनोद्वेषणकारणम् ॥६९॥

जा रहा था ऐसे उस पुनर्वसुने कन्याको विमानसे छोड़ दिया जिससे वह चन्द्रमाका शरद कालीन कान्तिके समान आकाशसे नीचे गिरी ॥५४॥ पुनर्वसुके द्वारा नियुक्त की हुई पर्णलक्ष्या नामक विद्याके सहारे स्वच्छासे उतरती हुई वह श्वपद नामक अटवीमें आई ॥५५॥

तदनन्तर जो बड़े बड़े विश्वाधरोके लिए भी भय उत्पन्न करने वाली थी, जिसमें प्रवेश करना कठिन था, बड़े बड़े वृक्षोंकी सघन भाङ्गियोंसे जिसमें अन्धकार फैल रहा था, जहाँ विविध प्रकारके ऊँचे वृक्ष नाना लताओंसे आलङ्कित थे, पल्लवोंकी सघन ढायासे दूर का हुई सूर्यके निरणोने भयभीत होकर ही मानो जिसे छोड़ दिया था, जो भेड़िये, शरभ, चीते, तेंदुए तथा मिहो आदिसे सेवित थी, जहाँकी कठोर भूमि ऊँची नीची थी, और जो बड़े उड़े त्रिलासे सहित थी ऐसी उन महा अटवीमें जाकर महाभयको प्राप्त हुई बेचारी अनगसेना दीपककी शिराके समान काँपने लगी ॥६६-६८॥ नदीके तीर आकर और सप्त दिशाओंकी ओर देख महाग्नेदसे युक्त होनी हुई यह बुधुःराजनोंकी चितार चितार कर रोने लगी ॥६०॥ वह कहती था कि हाय मैं लोकनी रक्षा करने वाले, इन्द्रके समान सुशोभित उन चक्रवर्ती पितासे उत्पन्न हुई और महाग्नेदसे लालित हुई । आज प्रतिपूल देवसे—भाग्यकी विपरीततासे इस अवस्थाको प्राप्त हुई हूँ । हाय जिसका देवता भी कठिन है ऐसे इस वनमें भा पड़ी हूँ क्या करूँ ? ॥६१-६२॥ हाय पिता ! तुम तो महापराक्रमी, सप्त लोककी रक्षा करते हो फिर वनमें असहाय पड़ी हुई मुझ पर क्या क्यों नहीं करते हो ? ॥६३॥ हाय माता ! गर्भ धारणका वैसे दुःख सहकर इस समय क्या क्यों नहीं कर रही हो ? ॥६४॥ हाय मेरे अन्त करणके समान प्रवृत्ति करने वाले तथा उत्तम गुणासे युक्त परिजन ! तुमने तो मुझे एक लक्षणके लिए भी कभी नहीं छोड़ा फिर इस समय क्यों छोड़ रहे हो ? ॥६५॥ मैं दुःखिया क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? किसका आश्रय लूँ ? किसे देखूँ और इस महावनमें मैं पापिनो कैसे रहूँ ? ॥६६॥ क्या यह स्वप्न है ? अथवा नरकमें मेरा जन्म हुआ है ? क्या मैं वही हूँ अथवा यह कौनसी दशा सहसा प्रकट हुई है ? ॥६७-६८॥ इस प्रकार चिरकाल तक विलापकर वह अत्यन्त विह्वल हो गई । उसका वह विलाप नूर पशुओंके

क्षुत्तृष्णापरिदग्धाद्वा शोकसागरवत्तिनी । फलपर्णादिभिरृत्तिमकरोद्दीनमानसा ॥७०॥  
 अरण्याम्बु जखण्डानां शोभासर्वस्वमर्दनं । हिमकालस्तया निन्ये ध्रुव कर्मानुभावात् ॥७१॥  
 श्वसत्पशुगणस्तांश्रु शोपितानेकापादपः । सोढस्तथैव रूचाद्गो ग्रीष्मसूर्यातपस्तया ॥७२॥  
 स्फुरच्चण्डाचिरञ्ज्योतिः शीतधारान्धकारितः । घनकालोऽपि निस्तूर्णः प्रवृत्तौघो यथा तथा ॥७३॥  
 निरुद्याय स्फुटित चामं शोणंक्षेशं मलावृतम् । वर्षोपहतधित्राम स्थितं तस्याः शरीरकम् ॥७४॥  
 सूर्यालोकहतच्छाया स्त्रीणैव शशिनः कला । जाता तन्वी तनुस्तस्या लावण्यपरिवर्जिता ॥७५॥  
 कपित्थवनमानघ्न फलैः पाकाभिधूसरैः । श्रित्वा तातमनुध्याय करुण सा स्म रोदिति ॥७६॥  
 जाता चक्रधरेणाऽह प्रासावस्थामिमं वने । ध्रुव कर्मानुभावेन सुपापेनान्यजन्मना ॥७७॥  
 इत्यधुदुर्दिनीभूतवदना वीक्षितचित्तिः । फलान्यादाय सा शीता पतितानि स्वपातः ॥७८॥  
 उपवासैः कृशोभूता पर पष्ठाष्टमादिभिः । अम्बुना वाकरोद् बाला पारणामेकवेलिकाम् ॥७९॥  
 शयनीयगतैः पुष्पैर्यां स्वकेशच्युतैरपि । अप्रहृत् खेदमेवासी स्थण्डिलेऽश्रोत केवले ॥८०॥  
 पितुः सङ्घातक ध्रुवा या प्रबोधमसेवत । सेय शिवादिनिर्मुक्तैरधुना भीषणैः स्ववैः ॥८१॥  
 एव वर्षसहस्राणि क्षाणि दुःखमहासहा । अकरोस्ता तपो बाह्य प्रासुकाहारपारणा ॥८२॥  
 ततो निर्वेदमापत्ता त्यक्त्वाहार चतुर्विधम् । निराशतां गता धीरा श्रिता सल्लेखनामसौ ॥८३॥

भी मनको पिघला देने वाला था । ६६॥ तदनन्तर भूख व्यासकी बाधासे जिसका शरीर भुलस गया था, जो निरन्तर शोक रूपी सागरमें निमग्न रहती थी और जिसका मन अत्यन्त दीन हो गया था ऐसी अनंगसेना फल तथा पत्रोंसे निर्वाह करने लगी ॥७०॥ वनके कमल समूहकी शोभाका सर्वस्व हरने वाला शीत काल आया सो उसने कर्माका फल भोगते हुए व्यतीत किया ॥७१॥ जिसमें पशुओंके समूह सासे भरते थे, अनेक वृक्ष सूख गये थे, तथा जिससे शरीर अत्यन्त रूक्ष पड़ गया था ऐसे ग्रीष्म ऋतुके सूर्यका आतप उसने उसी प्रकार सहन किया ॥७२॥ जिसमें तीक्ष्ण विजली कौंध रही थी, शीतल जलधारासे अन्धकार फैल रहा था, और नदियोंके प्रवाह बढ़ रहे थे ऐसा वर्षा काल भी उसने जिस किसी तरह पूर्ण किया ॥७३॥ कान्ति हीन, फटा, दुबला, बिल्वरे बालोंसे युक्त एवं मलसे आवृत उसका शरीर वर्षासे भीगे चित्रके समान निष्प्रभ हो गया था ॥७४॥ जिस प्रकार चन्द्रमाकी क्षीण कला सूर्यके प्रकाशसे निष्प्रभ हो जाती है उसी प्रकार उसका दुर्बल शरीर लावण्यसे रहित हो गया ॥७५॥ परिपाकके कारण धूसर वर्ष से युक्त फलोंसे मुक्ते हुए कैधाओंके वनमें जाकर वह चार चार पिताका स्मरण कर रोने लगती थी ॥७६॥ मैं चक्रवर्तीसे उत्पन्न हो वनमें इस दशाको प्राप्त हो रही हूँ सो निश्चित ही जन्मान्तरसे किये हुए पापकर्मके उदयसे मेरी यह दशा हुई है ॥७७॥ इस प्रकार अचिरल अश्वर्षासे जिसका मुख दुर्दिनके समान हो गया था ऐसी वह अनंगसेना नीची दृष्टिसे पृथिवीकी ओर देख पक जानेके कारण अपने आप गिरे हुए फल लेकर शान्त हो जाती थी ॥७८॥ बेला तेल आदि उपवासोंसे जिसका शरीर अत्यन्त कृश हो गया था ऐसी वह बाला जब कभी केवल पानीसे ही पारणा करती थी सो भी एक ही चार ॥७९॥ जो अनंगसेना पहले अपने केशोंसे च्युत हो शय्या पर पड़े फलोंसे भी खेदको प्राप्त होती थी आज वह मात्र पृथिवी पर शयन करती थी ॥८०॥ जो पहले पिताका संगीत सुन जागती थी वह आज शृगाल आदिके द्वारा छोड़े हुए भयंकर शब्द सुनकर जागती थी ॥८१॥ इस प्रकार महादुःख सहन करती तथा वीच वीचमें प्रासुक आहारकी पारणा करती हुई उस अनंगसेनाने तीन हजार वर्ष तक बाह्य तप किया ॥८२॥ तदनन्तर जब वह निराशताको प्राप्त हो गई तब विरक्त हो उस धीर धीराने चारों प्रकार

बाह्यं हस्तशताद्भूमि न गन्तव्यं मयेति च । जप्राह नियमं पूर्वं श्रुतं जैनेन्द्रशासने ॥८५॥  
 नियमावधितोऽन्ते पद्मराशेऽथ नभश्चर । लब्धिदास इति स्वधातो वदित्वा मेरुमाप्रजन् ॥८५॥  
 तामपश्यत्तो नेतुमारभे तां समुद्यतः । पितुः स्थानं निपिद्वश्र तया सहैग्नोन्तितः ॥८६॥  
 लब्धिदासो लघु प्राप्तः सकाशं चक्रवर्तिनः । सप्त तेन समायातस्तमुद्देशमसौ गतः ॥८७॥  
 अथ तामतिरीद्रेण शैयुनाऽतिस्थवीयसा । भय्यमाणामसौ दृष्ट्वा समाधानप्रदोऽभवत् ॥८८॥  
 प्राप्तसञ्ज्ञेयतां चीणां सवृत्तामपरामिव । तादृशीं तां सुतां दृष्ट्वा चर्त्वा निर्वेदमागतः ॥८९॥  
 समं पुत्रसहस्राणां द्वाविंशत्या गतस्मृहः । महावैराग्यसम्पन्नः श्रमणत्वमुपागतः ॥९०॥  
 कन्या त्वथे क्षुयात्तेन प्राप्तेनातिस्थवीयसा । भक्तिताऽऽजगरेणागात्सती सानकुमारताम् ॥९१॥  
 जानयाऽपि तया मृत्युं न समुसारितः शयु । माभूत्स्वल्पापि पांढाऽस्य काचिदित्यनुत्सृज्यसा ॥९२॥  
 उत्सार्यं चेकारान् मख्ये समस्तान्श्च पुनर्वसुः । तदानङ्गशरामिष्टामपरयन्त्रिहावनी ॥९३॥  
 दुमसेनमुनेः पार्श्वे गृहीतं श्रमणव्रतम् । अत्यन्तदुःखितस्तत्पत्न्या तपः परमदुश्चरम् ॥९४॥  
 कृत्वा निदानमेतस्याः कृतेऽथ प्रोक्तपञ्चतः । सुरो जातश्च्युतश्चाप्यं जातो लयमणसुन्दरः ॥९५॥  
 प्रअथा सुरलोकाच्च जाताऽनङ्गशराचरी । मुनेय द्रोणमेवस्य विशाल्येति प्रकीर्त्तिता ॥९६॥  
 सैतस्मिन्नगरे देसो भरते वा महागुणा । पूर्वकर्मानुभावेन सञ्जाताऽऽयन्तमुत्तमा ॥९७॥  
 परमं स्थानवारीद तेन तस्या महागुणम् । सोपसर्गं कृतं पूर्वं तया येन महातप ॥९८॥

का आहार त्याग कर सल्लेपना धारण कर ली ॥८३॥ उसने जिन-शासनमें पहले जैसा सुन रक्खा था वैसा नियम ग्रहण किया कि मैं सौ हाथसे बाहरकी भूमिमें नहीं जाऊँगी ॥८४॥

अथानन्तर उसे सल्लेपनाका नियम लिये हुए जब छह रात्रियों व्यतीत हो चुकीं तब लब्धिदास नामक एक पुत्र मेरु पर्वतकी चन्द्रना कर लौट रहा था सो उसने उस कन्याकी देखा । तदनन्तर जब लब्धिदास उसे पिताके घर ले जानेके लिए उद्यत हुआ तब उसने यह कह कर मना कर दिया कि मैं सल्लेपना धारण कर चुकी हूँ ॥८५-८६॥ तत्पश्चात् लब्धिदास शीघ्र ही चक्रवर्तीके पास गया और उसके साथ पुनः उस स्थान पर आया ॥८७॥ जत्र वह आया तब अत्यन्त भयंकर एक बड़ा मोटा अजगर उसे खा रहा था यह देख उसे समाधान करनेमें तत्पर हुआ ॥८८॥ तदनन्तर जिसने सल्लेपना धारण की थी, और दुर्बलताके कारण जो ऐसी जान पड़ती थी मानो दूसरी ही ही ऐसी उस पुत्रीको देख चक्रवर्ती वैराग्यको प्राप्त हो गया ॥८९॥ जिससे उसने सद्य प्रकारकी इच्छा छोड़ महावैराग्यसे युक्त हो वाईस हजार पुत्रोंके साथ दीक्षा धारण कर ली ॥९०॥ भूमसे पीड़ित होनेके कारण सामने आये हुए उस अत्यन्त स्थूल अजगरके द्वारा खाई हुई वह कन्या मर कर ईशान स्वर्गमें गई ॥९१॥ यद्यपि वह जानती थी कि इस अजगरसे मेरी मृत्यु होगी तथापि उसने उसे इस दया भावसे कि इसे थोड़ी भी पीड़ा नहीं हो दूर नहीं हटाया था ॥९२॥

तदनन्तर जब पुनर्वसु युद्धमें समस्त विशाधरोंको परास्त कर आया तब वह अपनी प्रेमपात्र अनंगशराको नहीं देख विरहकी भूमिमें पड़ बहुत दुःखी हुआ । अन्तमें उसने द्रुमसेन नामक मुनिराजके समीप दिग्मन्त्र दीक्षा धारण कर ली और अत्यन्त कठिन तप तप कर इसीका निदान करता हुआ मरा जिससे स्वर्गमें देव हुआ और वहाँसे च्युत हो यह अत्यन्त सुन्दर लक्ष्मण हुआ है ॥९३-९४॥ पहिलेकी अनङ्गशरा देवलोकसे च्युत हो राजा द्रोणमेचकी यह विशाल्या नामकी पुत्री हुई है ॥९५॥ महागुणांकी धारण करने वाली विशाल्या इस नगर देश अथवा भरत क्षेत्रमें पूर्वकर्माके प्रभावसे अत्यन्त उत्तम हुई है ॥९६॥ यतश्च उसने पूर्व भवमें उत्सर्ग महित महातप

अनेन वारिणाऽमुस्मि देशेऽय विपमोऽनिल । महारोगकरो यात ह्य शासितविष्टप ॥६६॥  
 कुतोऽयमादशो वायुरिति पृष्टेन भापितम् । मुनिना भरतायैव तदा कौतुकयोगिने ॥१००॥  
 गजाद्वाह्नगरादेय विन्ध्यो नामा महाधन । अयोध्या सार्धवाहेश खरोष्ट्रमहिपादिभि ॥१०१॥  
 मासानेकादशामुष्या वन्नैर्गयांसौ स्थित । तस्यैकमहिपस्तीव्ररोगभारेण पाडित ॥१०२॥  
 पुरमध्ये महादु ख कृ वा काल व्रगान्वित । अकामनिर्जरायोगादेवभूयमशिश्रियत् ॥१०३॥  
 जातो वायुकुमारोऽसावश्वकेतुर्महाबल । वाय्वावर्त्त इति रयातो वायुदेवमहेश्वर ॥१०४॥  
 श्रेयस्करपुरस्वामी रसातलगतो महान् । असुरो मामुर क्रूरो मनोयातक्रियासह ॥१०५॥  
 अज्ञासा सावधिज्ञान प्राप्तपूर्वपरामभवम् । सोऽह महिपकोऽभूत् प्रासाऽयोध्यां तदा व्रजा ॥१०६॥  
 क्षुत्क्षणापरिदिग्वाह्नो महारोगनिपाडित । रथ्याकर्द्धमनिर्मग्नस्ताडितो जनसपदा ॥१०७॥  
 कृवा मे मस्तके पाद् तदाऽयासाऽज्जनेऽखिल । पतितस्य विचेष्टस्य निर्दयो विडमलाञ्छितम् ॥१०८॥  
 अचिरान्निग्रह घोर तस्य चेत्त करोम्यहम् । अनर्धक सुर व मे तदेव जायते महत् ॥१०९॥  
 इति ध्यावा पुरेऽमुष्मिन् सदेशे क्रोधपूरित । प्रावर्त्तयदसौ वायु नानारोगसमावहम् ॥११०॥  
 सोऽय नातो विशल्याया वारिणा प्रलय क्षणात् । भवति हि बलायासो बलिनामपि विष्टपे ॥१११॥  
 यथा सत्त्वहितेनेद भरताप निवेदितम् । भरतेनापि म तद्व-मया ते पद्म वदितम् ॥११२॥

किया था इसलिए उसका यह स्नानजल महागुणासे सहित है ॥६८॥ इस देशम जिसने सब लोग पर शासन जमा रक्खा था तथा जो महारोग उत्पन्न करने वाली थी ऐसी विषय वायु इस जलसे क्षयको प्राप्त हो गई है ॥६९॥ 'यह वायु ऐसी क्या हो गई ?' इस प्रकार पूछने पर उस समय मुनिराजने कौतूहलको धारण करने वाले भरतके लिए इस प्रकार कहा कि ॥१००॥

वि ध्या नामका एक महा धनवान् व्यापारी गधे, ऊँट तथा भैंसे आदि जानवर लदाकर गजपुर नगरसे आया और तुम्हारी उस अयोध्यानगराम ग्यारह माह तक रहा । अनेक वर्षासे सहित उसका एक भैंसा तोत्र रोगके भारसे पीड़ित हो नगरके बीच मरा और अकाम निर्जराके योगसे देव हुआ ॥१०१ १०३॥ वह अश्वचिह्नसे चिह्नित महाबलवान् वायुकुमार जातिका देव हुआ । वाय्वावर्त्त उसका नाम था, वह वायुकुमार देवाका स्वामी था, श्रेयस्करपुर नगरका स्वामी, रसातलमें निवास करने वाला देदीप्यमान, क्रूर और इन्द्रानुसार क्रियाआक्रो करने वाला वह बहुत बड़ा भवनवासी देव था ॥१०४-१०५॥ अवधिज्ञानसे सहित होनेके कारण उसने पूर्णभवम प्राप्त हुए पराभवको जान लिया । उसे विदित हो गया कि मैं पहले भैंसा था और अयोध्यामें आकर रहा था । उस समय मेरे शरीर पर अनेक घाव थे । भूल प्यास आदिसे मेरा शरीर लिप्त था, अनेक रोगासे पाडित हुआ मैं मार्गकी कीचडमे पडा था, लोग मुझे पीटते थे । उस समय मैं गोबर आदि मलसे व्याप्त हुआ निश्चेष्ट पडा था और सब लोग मेरे मलक पर पैर रखकर जाते थे ॥१०६-१०८॥ अब यदि मैं शीघ्र ही उसका भयकर निग्रह नहीं करता हूँ—बदला नहीं चुकाता हूँ तो मेरा यह इस प्रकारका बडप्पन युक्त देव पर्याय पाना व्यर्थ है ॥१०९॥ इस प्रकार विचारकर उसने क्रोधसे पूरित हो उस देशमें नाना रोगाक्रो उत्पन्न करने वाली घायु चलाई ॥११०॥ यह वही देव विशल्याके स्नान जलके द्वारा क्षण भरम विनाशको प्राप्त कराया गया है सो ठीक ही है क्योंकि लोकमें बलवानाके लिए भी उनसे अधिक बलवान् होते हैं ॥१११॥ चन्द्रप्रतिम विद्याधर, रामसे कहता है कि यह कथा सत्त्वहित नामा मुनिन राजा भरतसे जिम प्रकार कही और भरतने जिस प्रकार मुझसे कही उसी प्रकार है राम । मैं



अभिपेकनल तस्या तदा नेतुमतिव्वरम् । यत्न कुरत नास्यन्या गतिलक्ष्मणजीविते ॥११३॥

उपेन्द्रवज्रा

इति स्थितानामपि मृत्युमार्गे जनैरशेषैरपि निश्चितानाम् ।  
महाभमना पुण्यकरोदयेन भवत्युपायो विदितोऽसुंदाया ॥११४॥

उपजातिः

अहो महान्त परमा जनास्ते येषा महापत्तिमागतानाम् ।  
जनो वदन्त्युद्भवनाभ्युपाय रवे समस्तत्वनिवेदनेन ॥११५॥

इत्यापे श्रीरविपेणाचार्यमोक्षे पद्मपुराणे विशल्यापूर्वमभिधान नाम चतु पष्टितम पर्व ॥२४॥

आपसे कही है ॥११२॥ इसलिये शीघ्र ही विशल्याका स्नान जल खानेका यत्न करो । लक्ष्मणके जिवित होनेका और दूसरा उपाय नहीं है ॥११३॥

गौतम स्वामी कहते हैं कि जो इस तरह मृत्युके मार्गमें स्थित रहे तथा समस्त लोग जिनके मरणका निश्चय कर चुके हैं ऐसे महापुरुषोंके पुण्यकर्मके उदयसे जाग्न प्रदान करने वाला कोई न कोई उपाय विदित हो ही जाता है ॥११४॥ अहो ! वे पुरुष अत्यन्त महान् तथा उत्कृष्ट हैं कि महात्रिपत्तिमें पड़े हुए जिनके लिए सूर्यके समान उज्ज्वल पुरुष यथार्थ तत्त्वका निवेदन कर विपत्तिसे निकलनेका उपाय बतलाते हैं—प्रकट करते हैं ॥११५॥

इस प्रकार आर्ष नामसे प्रसिद्ध, रविपेणाचार्य कथित पद्मपुराणमें विशल्याके पूर्वभवका वर्णन करने वाला चौसठवां पर्व समाप्त हुआ ॥६४॥

## पञ्चषष्टितमं पर्व

प्रतान्दोर्वचनं श्रुत्वा राघवोऽत्यन्तसमद । समं विद्याधराधोरीविस्मितस्तमपूजयत् ॥१॥  
 अञ्जनाजविदेहाजसुताराजास्तत कृता । अयोध्या गमिनं कृत्वा सन्मत्र निश्चितं द्रुतम् ॥२॥  
 ततश्चित्तितमात्रेण ते ययुर्ग्रंथं पाथिव । भरत प्रवरं कीर्त्यां प्रतापी गुणसङ्गत ॥३॥  
 सुसस्थो थाप्यमानस्य सहसास्यासुखासिका । मा भूदिति सुखं गीतं वैदेहादिभिराश्रितम् ॥४॥  
 ततः सङ्गीतमाकर्ण्य दिव्यं श्रुतिमनोहरम् । शनैर्भावसमारूढमुत्तस्थौ कोशलेश्वर ॥५॥  
 ज्ञापिता सेवितद्वारास्ततस्तस्मै समागता । वैदेह्या हरणं प्रीचुर्निपातं लक्ष्मणस्य च ॥६॥  
 भयं शोकरसादुप्रात् क्षणमात्रभुव परम् । राजा क्रोधरस भेजे परमं भरतश्रुति ॥७॥  
 महाभेरीध्वनिं चाशु रणप्रीतिमकारयत् । सकला येन साकेता सप्रस्रासाऽऽकुलता परम् ॥८॥  
 लोको जगाद् किं न्येतद्वृत्तं राजसङ्गति । महान् कलकलं शब्दं श्रूयतेऽत्यन्तभोषण ॥९॥  
 किन्तु रात्रौ निशीथेऽस्मिन् काले दुष्टमति पर । अतिवार्यसुत प्राप्सो भवेदापातपडित ॥१०॥  
 कश्चिदङ्गता कान्ता त्यक्त्वा सन्नद्धमुद्यत । सन्नाहनिरेपसोऽन्य सायके करमर्पयत् ॥११॥  
 सुग्धबालकमादाय वाचिदङ्के मृगोक्षणा । हस्तं स्तनतटे न्यस्य चक्रे दिगवलोकनम् ॥१२॥  
 काचिदाप्याकृतं त्यक्त्वा निद्रारहितलोचना । सुसमाश्रयते कान्तं शयनायैकपार्श्वगम् ॥१३॥

अथानन्तरं प्रतिचन्द्र विद्याधरके वचनं सुनं जिनहें अत्यन्त हर्ष हो रहा था ऐसे श्रीरामने आश्चर्यचकित हो विद्याधर राजाओंके साथ-साथ उसका बहुत आदर किया ॥१॥ और शीघ्र ही निश्चित मन्त्रणाकर हनुमान् भामण्डल तथा अङ्गदको अयोध्याकी ओर रवाना किया ॥२॥ तदनन्तर इच्छा करते ही वे सब वहाँ पहुँच गये जहाँ उत्तम कीर्तिके धारक प्रतापी एवं गुणवान् राजा भरत विराजमान थे ॥३॥ उस समय भरत सोये हुए थे इसलिए सहसा उठानेसे उन्हें दुःख न हो ऐसा विचार कर भामण्डल आदिने सुखदायी संगीत प्रारम्भ किया ॥४॥ तदनन्तर कर्ण और मनको हरण करने वाले उस भावपूर्ण दिव्य संगीतको सुनकर भरत महाराज धीरे-धीरे जाग उठे ॥५॥ हनुमान आदि द्वारके पास तो खड़े ही थे इसलिए जागते ही खबर देकर उनके पास जा पहुँचे । वहाँ पहुँचकर उन्होंने सीताका हरा जाना तथा शक्ति लगानेसे लक्ष्मणका गिर जाना यह समाचार कहा ॥६॥

अथानन्तरं क्षणमात्रमे उत्पन्नं हुए, अतिशय उग्र शोकरससे राजा भरत परम क्रोधको प्राप्त हुए ॥७॥ उन्होंने उसी समय रणमे प्रीति उत्पन्न करानेवाली रणभेरीका महाशब्द कराया जिसे सुनकर समस्त अयोध्या परम आकुलताको प्राप्त हो गई ॥८॥ लोग कहने लगे कि राजभवनमें अत्यन्त भय उत्पन्न करने वाला महान् कलकल शब्द सुनाई पड रहा है सो यह क्या कारण है ? ॥९॥ क्या इस अर्धरात्रिके समय दुष्ट बुद्धिका धारक तथा आक्रमण करनेमें निपुण अतिवीर्यका पुत्र आ पहुँचा है ? ॥१०॥ कोई एक योद्धा अकम् स्थित कान्ताको छोड़ कर च धारण करनेके लिए उद्यत हुआ और कोई दूसरा योद्धा कवचसे निरपेक्ष हो तलवार पर हाथ रखने लगा ॥११॥ कोई मृगनयनी स्त्री, सुन्दर बालकको गोदमे ले तथा स्तन तट पर हाथ रखकर दिशाओंका अवलोकन करने लगी अर्थात् भयसे इधर उधर देखने लगी ॥१२॥ कोई एक स्त्री ईर्ष्या वशा पतिसे हटकर पडी हुई थी और उसके नेत्रामें नींद नहीं आ रही थी । रणभेरीका शब्द सुन वह स्तनी भयभीत हुई कि ईर्ष्याभाव छोड़ शय्याके एक ओर पडे हुए निद्रातिमग्न पतिसे जा

पाथिवप्रतिभं<sup>१</sup> कश्चिद्दानीं कान्तामुदाहरन् । कान्ते पुद्गलपथ किं गेरे किमर्पादमशोभनम् ॥१५॥  
 राजालये समुद्योतो लक्ष्यते जालवद्धित । सखद्वा रथिनो भक्ता करिणोऽमी च महिना ॥१६॥  
 नीतिज्ञैः सतत भाग्यमप्रमरी सुपण्डितैः । उत्तिष्ठतिष्ठ गोपाय स्वार्थेय प्रयत्न ॥१६॥  
 शानकौम्भानिमान्कुम्भान् कल्पोतमयास्तथा । मगिरसकरदांश्च कुक् भूमिगुहातरै ॥१७॥  
 पट्टवस्त्रादिमण्डूनिमान् गमालपाय्नु द्रुतम् । तालयान्यदपि द्रव्यं दुग्धिन्य सुस्थिन कुक् ॥१८॥  
 शत्रुभोपि सुमश्रान्तो निद्वारणितलोचन । भारद्वा द्विरद् गाम्भ घण्टाङ्कारान्निनम् ॥१९॥  
 सचिवैः परमैर्युक्तं शम्भ्राधिष्ठितपाणिभि । विमुञ्चन् वकुलामोद चलयद्वरपङ्क्त ॥२०॥  
 भरतस्यालय प्राप्तस्तथाऽन्ये नरपुङ्गवा । शङ्खहस्ता सुमनद्धा नरेन्द्रहिततन्त्रा ॥२१॥  
 यत्पञ्चाना नरेशाना सुदाय स्वयमुद्यतः । विनाताधिपति प्रोक्तं नावा ममान्द्व्यादिभि ॥२२॥  
 दूरे लङ्कापुरी देव गन्तु नार्हति ता विमु । क्षुब्धोमिजलजो घोरो वधंत सागराऽन्तरे ॥२३॥  
 मया किं तर्हि कर्तव्यमिति शनि कृतस्वने । उच्चारित विशल्यायाश्चरित तैर्मनोहरम् ॥२४॥  
 अधप्रमथन नाथ पुण्य जावितपालनम् । द्रोणमेघमुनास्तानवाग्निदान द्रुत भव ॥२५॥  
 प्रसादं कुरु यास्यामो यावन्नाश्रैति भास्कर । इतोऽरिमयन शक्या दूर तिष्ठति लक्ष्मण ॥२६॥  
 भरतेन ततोऽन्वाचि किं वा इदृणमम्भसा । स्वय मा सुभगा तत्र यानु द्रोण्यनामजा ॥२७॥  
 मुनीशान ममादिष्टा तस्यैवासी सुभामिना । क्षारलमुत्तम सा हि कर्य वाऽन्यस्य युग्यते ॥२८॥

मिठी—उससे सटकर पड़ रही ॥१३॥ राजा की तुलना प्राप्त करने वाला कोई घना मनुष्य अपनी छाँसे कहने लगा कि हे प्रिये ! जागो, क्या सो रही हो ? यह कोई अशोभनीय बात है ॥१४॥ राजभजनमें जो कभी दिखाई नहीं दिया ऐसा प्रकाश दिखाई दे रहा है । रथोंमें सवार तैयार खड़े हैं और ये मनुष्यमत्त हाथी भी एकत्रित हैं ॥१५॥ नीतिके जानकार पण्डित जनाका सदा सावधान रहना चाहिये । लठो उठो घनको प्रयत्न पूर्वक द्विपा दो ॥१६॥ ये सुवर्ण और चाँदीके घट तथा मणि और रत्नाके पिटारै तलगुहके भीतर कर दो ॥१७॥ रेशमी पत्र आदिसे भरे हुए इन गर्भगुहोंको शीघ्र ही बन्द कर दो तथा और जो दूसरा सामान अस्त-व्यस्त पड़ा है उसे ठीक तरहसे रखने ॥१८॥ जिसके नेत्र निद्रासे लाल-लाल हो रहे थे ऐसा घनझाया हुआ शत्रु भी घंटाका शब्द करने वाले हाथी पर शीघ्र ही सवार हो भरतके महलमें जा पहुँचा । शत्रु, हाथोंमें शस्त्र धारण करनेवाले उत्तमोत्तम मन्त्रियासे सहित था, वकुलसी सुगन्धिको छोड़ रहा था तथा उसके वस्त्र चञ्चल-चञ्चल हो रहा था । शत्रुके सिवाय दूसरे अन्य राजा भी जो हाथोंमें शस्त्र धारण किये हुए थे, कनचोंसे युक्त थे तथा राजाका हित करनेमें तत्र थे भरतके महलमें जा पहुँचे ॥१९-२०॥ अयोध्याके राजा भी भरत, राजाओंको आज्ञा देते हुए स्वयं युद्धके लिए उद्यत हो गये तत्र भामण्डल आदिने नमस्कार कर कहा कि ॥२१॥ हे देव ! लकापुरी दूर है, वहाँ जानेके लिए आप समर्थ नहीं है, जिसकी लहरें और शङ्ख क्षोभको प्राप्त हो रहे हैं ऐसा भयकर समुद्र बीचमें पड़ा है ॥२२॥ तो मुझे क्या करना चाहिए, इस प्रकार राजा भरतने कहने पर उन सजने विशल्याका मनोहर चरित कहा ॥२३॥ उन्होंने कहा कि हे नाथ ! द्रोण-मेघकी पुत्रीका स्नानचल पापको नष्ट करने वाला, पवित्र और जीवनकी रक्षा करने वाला है सो उसे शीघ्र ही दिखाओ ॥२४॥ प्रसाद करो, जब तक सूर्य उदित नहीं होता है उसके पहले ही हम चले जायेंगे । शत्रुओंका संहार करने वाले लक्ष्मण शक्तिसे घायल हो दुःखमें पड़े हैं ॥२६॥ तब भरतने कहा कि जलका क्या ले जाना, वह द्रोणमेघकी सुन्दरी पुत्री रख्य ही वहाँ जावे अर्थात् उसे ही ले जाओ ॥२७॥ मुनिराजने कहा है कि यह लकीकी वल्लभा होगी । यथार्थमें वह उत्तम स्त्रीरत्न है सो अन्य किसने योग्य हो सकती है ? ॥२८॥

ततो द्रोणयनाहस्त सकाश प्रेषितो निज । स चाऽपि कुपितो योद्धु मानस्तम्भसमुद्यत ॥२६॥  
 सध्रुवधास्तनयास्तस्य सन्नद्धा सचिवै सह । परमाकुलता प्राप्ता महादुर्लभित्रिया ॥३०॥  
 भरतस्य ततो मात्रा स्वय ग वा महादरम् । प्रतिगोधमुपगनात स<sup>१</sup> तेन तनयामद्रात् ॥३१॥  
 सा भामण्डलचन्द्रेण विमानशिखर निजम् । आरोपिता महारथ्य कान्तिपूरितदिङ्मुखा ॥३२॥  
 महत्स्रमधिक कन्याया सुमनोहरम् । राजगोत्रप्रसूताना क्लृप्त गामि सम तथा ॥३३॥  
 ततो निमेषमात्रेण प्राप्ता सप्राममेदिनाम् । अर्घ्यादिभि कृताभ्यर्चा सर्वं खेचरपुङ्गव ॥३४॥  
 अवतारणां विमानाप्राप्तत कन्याभिरावृता । चारुचामरसद्भातै र्वाङ्ग्यमाना शनै सुखम् ॥३५॥  
 पश्यन्ता तुरगान् द्वारे भक्ताश्च वरवारणान् । महत्तरै कृतानुज्ञा पुण्डरीकनिभानना<sup>३</sup> ॥३६॥  
 यथा यथा महाभाग्या विशल्या सोपसर्पति । तथा तथाऽभज सौम्य सुमित्रातनयोऽद्भुतम् ॥३७॥  
 प्रभापरिकरं शक्तिस्ततो लक्ष्मणवत्स । चकित्ता द्रुष्टयोपेव कामुकात् परिनि स्तता ॥३८॥  
 स्फुरस्फुरिङ्गज्वाला च लङ्घयन्ता द्रुत नभ । उत्पत्य वायुपुत्रेण गृहाता वेगशालिना ॥३९॥  
 दिव्यस्वरूपसम्पन्ना तत सङ्गतपाणिना । सा जगाद् हनूमन्त सम्भ्रान्ता बद्धवेपथु ॥४०॥  
 प्रसाद नाथ मुखस्य न मे दोषोऽस्ति कश्चन । कुसितास्मद्विद्याना हि प्रेम्णाणां स्थितिरीदृशी ॥४१॥  
 अमोघविजया नाम प्रज्ञत्नेरहक स्वसा । विद्या लोकत्रये रयाता रावणेन प्रसाधिता ॥४२॥  
 कैलासपर्वते पूर्वं बाली प्रतिमया स्थिते । सन्निधौ जिनविद्याना गायता भावितामना ॥४३॥

तदनन्तर भरतने द्रोणमेघके पास अपना आदमी भेजा सो मान दमन करनेमें उद्यत वह द्रोणमेघ भी युद्ध करनेके लिए कुपित हुआ ॥२६॥ प्रचण्ड बलको धारण करने वाले उसके जो पुत्र थे वे भी परम आकुलताको प्राप्त हो लुभित हो उठे तथा युद्ध करनेके लिए मन्त्रियाके साथ साथ तैयार हो गये ॥३०॥ तत्र भरतकी माता केकयाने स्वयं जा कर उसे बड़े आदरसे सम्भ्राया जिससे उसने अपनी पुत्री देदी ॥३१॥ कान्तिसे दिशाओको पूर्ण करने वाली उस कन्याकी भामण्डलने अपने शीघ्रगामी विमानके अग्रभाग पर बैठाया ॥३२॥ इसके सिवाय राजकुलमें उत्पन्न हुई एक हजारसे भी अधिक दूसरी मनोहर कन्याएँ विशल्याके साथ भेजीं ॥३३॥ तदनन्तर निमेष मात्रमें वह युद्धभूमिमें पहुँच गई सो समस्त विद्याधरोंने अर्घ्य आदिसे उसका योग्य सम्मान किया ॥३४॥ तत्परश्चात् जो कन्याओसे विरी थी और जिसपर सुन्दर चमराके समूह धीरे धीरे मुख पूर्वक मेले जा रहे थे ऐसी विशल्या विमानके अग्रभागसे नीचे उतरी ॥३५॥ द्वार पर खड़े घोडा और मदनोन्मत्त हाथियाको देखती, हुई वह आगे वढी । बड़े बड़े ओम उसकी आज्ञा पालन करनेमें तत्पर थे तथा कमलके समान उसका मुख था ॥३६॥ महा भाग्यशालिनी विशल्या जैसे जैसे पास आती जाती थी वैसे वैसे लक्ष्मण आश्चर्यकारी मुखदर्शा को प्राप्त होते जाते थे ॥३७॥

तदनन्तर जिस प्रकार द्रुष्ट स्त्री चकित हो पतिके घरसे निकल जाती है उसी प्रकार कान्तिके मण्डलको धारण करने वाली शक्ति लक्ष्मणके वत् स्थलसे बाहर निकल गई ॥३८॥ जिससे तिलगे और ज्वालाएँ निकल रही थीं ऐसी वह शक्ति, शीघ्र ही आकाशको लायती हुई जाने लगी सो वेगशाली हनूमानने उड़ल कर उसे पकड़ लिया ॥३९॥ तत्र वह दिव्यस्त्रीके रूपमें परिणत हो हाथ जोड कर हनूमानसे बोली । उस समय वह घबड़ाई हुई थी तथा उसके शरीर से कँपकँपी छूट रही थी ॥४०॥ उसने कहा कि हे नाथ ! प्रसन्न होओ मुझे छोडो इसमें मेरा दोष नहीं है हमारे जैसे सेवकोकी ऐसी ही निन्द्य दशा है ॥४१॥ मैं तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध अमोघ विजया नामकी विद्या हूँ, प्रज्ञत्तिकी वदिन हूँ और रावणेन मुझे सिद्ध किया है ॥४२॥ कैलास

निजे मुने समुत्कृत्य शिरातन्त्रीं मनोहराम् । उपरोगयता दिव्य जिनेन्द्रचरित शुभम् ॥४२॥  
 लघाऽह दशावश्रेण धरगात्रागारात्रत । कम्पितामनत प्राप्ताप्रमोद विभ्रत २ परम् ॥४३॥  
 अनिच्छ्यप्रप्यसी तेन रक्षमा परमेस्वर । सा परिप्राहित कृत्वात् स हि प्रदणदुविध ॥४६॥  
 साऽह न कस्यचिद्भया भुवनेऽत्र व्यपोहितम् । विशल्यामुन्द्रारामेका मुक्त्वा दुःसहनेतमम् ॥४७॥  
 मन्ये परानये देवान् बलिनो नितरामपि । अनया तु विर्कोणाह महया कूरगोचरा ॥४८॥  
 अनुष्ण भास्कर कुर्यादर्शन शशलक्षमगम् । अनया हि तपाऽयुष चरित पूर्वमन्मनि ॥४९॥  
 शिरीषकुमुमासार शरीरमनया पुरा । निर्युक्त तपसि प्रायो मुनीनामपि दुःसह ॥५०॥  
 एतावतैव समार सुमार प्रतिमाति मे । ईदृशानि प्रमाप्यन्ते यत्तपोमाह जन्मुनि ॥५१॥  
 वर्षाशीतातर्पणैर्देवैर्गन्धानामुदु सहै । एषा न कम्पिता तन्वा मन्दरस्येव चूलिका ॥५२॥  
 अहो रूपमहो सत्वमहो धर्मदृढ मन । भगवय प्यातुमप्यस्या सुतपोऽन्याद्गनात्तै ॥५३॥  
 सर्वथा जितचन्द्राणा मतेनोद्गृहते तप । लोकत्रये जययैक यस्पेद षण्मादशम् ॥५४॥  
 अथवा नैव विज्ञेयमाश्चर्यमिदमीदृशम् । प्राप्यते येन नित्रांग किमन्यत्तस्य दुष्करम् ॥५५॥  
 पराधानक्रिया साऽह तपमा निचिताऽनया । वनामि स्व पत्र साग्रे क्षम्यता बुविचण्णिनम् ॥५६॥  
 एव कृतममालाया तपवत् शक्तिदेवताम् । विम्ब्यावस्थितो वोति स्वमन्येऽद्भुतचण्डित ॥५७॥

पर्वत पर पहले जत्र वालिमुनि प्रतिमा योगसे विराजमान थे तत्र रावणने चिन-प्रतिमाआये समीप भावनिमग्न हो मधुरगान किया था और अपनी भुजाकी नाडी रूपी मनोहर तन्त्री निकाल कर जिनेन्द्र भगवान्‌का दिव्य एव शुभचरित वीणाद्वारा गाया था । रावणकी भक्ति के प्रभावसे धरणेन्द्रका आसन कम्पायमान हुआ था जिससे परम प्रमोदको धारण करते हुए उमने वहाँ आकर रावणके लिए मुझे दिया था । यद्यपि राक्षसोंका इन्द्र रावण मुझे नहीं चाहता था तथापि धरणेन्द्रे प्रेरणा कर बड़ी कठिनाईसे मुझे स्वीकृत कराया था । ययार्थमे रावण किसीसे कोई बलुप्रदण करनेमे सदा सजुचित रहता था ॥४३-४८॥ वह मैं, इस समारमे दु सह तेजकी धारक एक विशल्याको छोड़ और किसीका पकड़में नहीं आ सकता ॥४७॥ मैं अतिशय बलवान् देवोंको भी पराजित कर देती हूँ किन्तु इस विशल्याने दूर रहने पर भी मुझे प्रयत्न कर दिया ॥४८॥ यह सूर्यको ठण्डा और चन्द्रमाको गरम कर सकती है क्याकि इसने पूर्वभजने ऐसा ही अत्यन्त कठिन तपधरण किया है ॥४९॥ इसने पूर्वभवमे अपना शिरीषके फूलके समान सुकुमार शरीर ऐसे तपमे लगाया था कि जो प्राय मुनियोंके लिए भा कठिन था ॥५०॥ मुझे इतन हा कार्यसे ससार सारभूत जान पड़ता है कि इसमे जीना द्वारा ऐसे ऐसे कठिन तप सिद्ध किये जाते हैं ॥५१॥ तीन वायुसे जिनका सहन करना कठिन था ऐसे भयकर वर्षा शीत और घामसे यह कृशाङ्गो सुमेरुकी चूलिकाके समान रक्षमात्र भा कम्पित नहीं हुई ॥५२॥ अहा उसका रूप घन्य है, अहो इसका धैर्य घन्य है और अहो धर्ममे दृढ रहनेवाला इमका मन घन्य है । इसने जो तप किया है अन्य त्रिषोँ उसका ध्यान भी नहीं कर सकती ॥५३॥ सर्वथा चिनेन्द्र भगवान्‌के मतमे ही ऐसा विशाल तप धारण किया जाता है कि जिसका इस प्रकारका फल तीन लाखोंमे एक जुदा ही जयपत रहता है ॥५४॥ अथवा इसे कोई आश्चर्य नहीं मानना चाहिये क्याकि जिससे भोग प्राप्त हो सकता है उसके लिए और दूसरा कौन कार्य कठिन है ? ॥५५॥ मेरा काम तो पराधीन है देखिए न, इमने मुझे तपसे जीत लिया । हे सन्तुम्प ! अत्र मैं अपने स्थान पर जाती हूँ—मेरी दुश्चेष्टा क्षमाकी जाय ॥५६॥ इम प्रकार वार्तालाप करन वाला उस शक्तिरूपा देवताको छोड़ कर तत्पराका जानकार तथा अद्भुत चेष्टाका धारक हनुमान् अपना सेनामे स्थित हो गया ॥५७॥

सुता तु द्रोणमेवस्य द्वियालकृतद्वेहिका । पादपद्मद्वयं पाद्मं प्रणम्य विहिताङ्गलिः ॥५८॥  
 विद्याधरमहामन्त्रिवचोभिः कृतशसना । वन्दिता खेचरैरन्यैराशीर्भिरभिनन्दिता ॥५९॥  
 शत्रुस्येव शची पार्श्वे लक्ष्मणस्य सुलक्ष्मणा । अवस्थिता महाभोग्या सखीवचनकारिणी ॥६०॥  
 मुग्धा मुग्धमृगानेत्रा पूर्णचन्द्रनिभानना । महानुरागसम्भारप्रेरितोदारमानसा ॥६१॥  
 परिध्वज्य रहो नाथ सुखसुप्तं महीतले । सुकुमारकराम्भोजसवाहनसुचारुणा ॥६२॥  
 गोशीर्षचन्दनेनैवमन्वलिम्पत सर्वतः । तथा पद्ममपि व्रीडाकिञ्चिक्वपितपाणिका ॥६३॥  
 शेषा. कन्या यथायोग्य शेषाणां खेचरेशिनाम् । चन्द्रनेनासृष्टशन्गात् विशल्याहस्तसङ्गिना ॥६४॥  
 विशल्याहस्तसस्पृष्टं चन्दन पद्मवाक्यत\* । कान्तमिन्द्रजितादीनामुपनीत यथाक्रमम् ॥६५॥  
 शीतल त समाधाय कृत्वाङ्गेषु च सादरम् । निर्वृति परमां प्राप्ताः शुद्धामानो गतञ्जराः ॥६६॥

### उपजातिवृत्तम्

अन्ये च योधाः क्षतविक्षताङ्गा द्विपास्तुरङ्गाः पदचारिणश्च<sup>१</sup> ।

अभ्युचितास्तत्सलिलेन जाता प्रणष्टशल्या नवभास्कराङ्गाः ॥६७॥

बन्मान्तर प्राप्त इवाथ कान्तः स्वभावनिद्रामिव सेवमानः ।

उत्थाप्यते स्म प्रवरंनितान्त सङ्गीतकैर्वैष्णुनिनाद्गताैः ॥६८॥ ।

तत शनैरुत्सृप्तितोरुवचा नेत्रे समुन्मील्य तिगिल्ङ्गताम्रे ।

विद्विषबाहु. शनकैर्निकुञ्च्य लक्ष्मीधरोऽमुञ्जत मोहशय्याम् ॥६९॥

अथानन्तर जिसका शरीर लज्जासे अलङ्कृत था, जिसने श्रीगामके चरण-कमलमें प्रणाम कर हाथ जोड़े थे, विद्याधर महामन्त्रियोंके वचनोंसे जिसकी प्रशंसा की गई थी, अन्य विद्याधरों ने जिसे वन्दना कर शुभाशीर्वादसे अभिनन्दित किया था, जो उत्तम लक्ष्मणोंको धारण करने वाली थी; महाभाग्यवती थी, और सखियोंकी आज्ञाकारिणी थी ऐसी द्रोणमेवकी पुत्री विशल्या लक्ष्मणके पास जाकर उस प्रकार खड़ी हो गई जिस प्रकार मानो इन्द्रके पास उन्दाणी ही खड़ी हो ॥५८-६०॥ जो अत्यन्त सुन्दरी थी, भोली मृगीके समान जिसके नेत्र थे, पूर्णचन्द्रके समान जिसका मुख था, और महा अनुरागके भारसे जिसका उदार हृदय प्रेरित था ऐसी विशल्याने एकान्तमें पृथिवी तल पर सुखसे सोये हुए प्राणनाथ लक्ष्मणका आलिङ्गन कर उन्हें सुकोमल हस्त कमलमें स्थित होनेसे अत्यन्त सुन्दर दिखने वाले गोशीर्ष चन्दनसे खूब अनुलिप्त किया तथा लज्जासे कुछ कुछ कोंपते हुए हाथसे श्रीरामको भी चन्दनका लेप लगाया ॥६१-६३॥ शेष कन्याओं ने विशल्याके हाथमें स्थित चन्दनके द्वारा अन्य विद्याधरोंके शरीरका स्पर्श किया ॥६४॥ श्रीरामकी आज्ञा अनुसार विशल्याके हाथका छुआ सुन्दर चन्दन यथाक्रमसे इन्द्रजित आदिके पास भी भेजा गया ॥६५॥ सो उस शीतल चन्दनको सूँघकर तथा आदर के साथ शरीर पर लगाकर वे सब परम सुखको प्राप्त हुए । सबकी आत्माएँ शुद्ध हो गईं तथा सबका ज्वर जाता रहा ॥६६॥ इन सबके सिवाय क्षत-विक्षत शरीरके धारक जो अन्य योधा हाथी, घोड़े और पैदल सैनिक थे वे सब उसके जलसे सींचे जा कर शल्यरहित तथा नूतन सूर्य—प्रातःकालीन सूर्यके समान देदीप्यमान शरीरमें युक्त हो गये ॥६७॥ अथानन्तर जो दूसरे जन्मको प्राप्त हुए के समान सुन्दर थे और मानो स्वाभाविक निद्राका ही सेवन कर रहे थे ऐसे लक्ष्मणको वांसुरीकी मधुर तानसे मिश्रित उत्तम संगीतके द्वारा उठाया गया ॥६८॥ तदनन्तर जिनका विशाल चक्र-स्थल धीरे धीरे उच्छ्वसित हो रहा था और जिनकी भुजाएँ फैली हुई थीं ऐसे लक्ष्मणने कमलके समान लाल नेत्र खोल कर तथा भुजाओंको संकोचित कर मोहरूपी शय्याका परित्याग किया ॥६९॥

१. पद्मस्येद पद्म रामसम्बन्धि, पद्म म०, च० । २. पदचारिणश्च म०, ज० ।

१ रयन्शोषपादाङ्गुलिमिवाम्नी रगचिन्ति देव इवोद्यकायः ।  
 उच्यते ऋष्टः ककुभो निरोष्य क्षामी गतो राजग इत्युराच ॥७०॥  
 ततः प्रकुङ्काम्बुजलोचनेन महाभिनन्द भजनाऽप्रजेन ।  
 उदाररोमाद्भुजकङ्केन प्रोक्तः परिध्वज्य लम्बुजेन ॥७१॥  
 कृतार्थवत्तात दशाननोऽम्बी हवा भवन्तं विजहार शक्या ।  
 स्वमप्यमुष्याग्दरितेन जीवं मूयोऽभजेः संस्तुनकन्यकायाः ॥७२॥  
 निःशेषनश्चाम्य निवेदिनं तच्छ्रुत्याहृतिप्रेरगवस्तुतम् ।  
 अपूर्वमादवयंमुदारभाज सुविस्मिताम्यवमुन्दराद्यैः ॥७३॥  
 तावत् त्रिवर्गोऽजविलापिनेनां शरत्पमृद्वेन्दुसमानवक्त्राम् ।  
 शतोदरीं दिग्गजकुम्भरोभिस्तनद्वयां नूतनयीवनस्याम् ॥७४॥  
 शरीरवद्भामिव मन्मपस्य क्रीडां विशालाग्न्यमखिनग्न्याम् ।  
 संगृह्य शोभामिव मारुलोकां विनिर्मितां कर्मभिरैकतानैः ॥७५॥  
 तां वीक्ष्य लक्ष्मीनिलयोऽन्तिकाम्यामचिन्तयद् विस्मयगन्धचित्तः ।  
 लक्ष्मीरिय किन्तु सुरेश्वरस्य कान्तिर्तुं चन्द्रस्य तु भानुदीप्तिः ॥७६॥  
 ध्यायन्तमेव परिगम्य योषास्तमेवभूजुः कुशलप्रधानाः ।  
 स्वामिन् विवाहोऽयमेतया ते इष्टं जनो वान्द्यन्ति मङ्गलौघ्यम् ॥७७॥  
 हृत्स्मितोऽम्बावगदत् सर्भापे समंशये पुनर्मिदं कथं नु ।  
 ऊचुः पुनस्ते ननु वृत्त एव स्वर्गोऽनया ते प्रकृतस्तु नार्मान् ॥७८॥

जिस प्रकार उपपाद् शक्याको छोड़ कर उत्तम शरीरका धारक देव उठ कर खड़ा होता है उसी प्रकार लक्ष्मण भी रणभूमिमें छोड़ रखे हो गये और दिशाओंकी ओर देख ग्ये होते हुए बोले कि यह रावण कहाँ गया ? ॥७०॥ तदनन्तर जिनके नेत्रकमल विकसित हो रहे थे जो महान् आनन्दको प्राप्त थे, उत्कट रोमाञ्छोंसे जिनका शरीर कर्करा हो रहा था और जिनकी भुजाएँ अतिशय शोभायमान थीं ऐसे बड़े भाई श्रीरामने आलिङ्गन कर कहा कि हे तात ! रावण तो शक्तिके द्वारा आपको मार कृतकृत्यकी तरह चला गया है और तुम भी इस प्रशान्त कन्याके चरित्रसे पुनर्जन्मको प्राप्त हुए हो ॥७१-७२॥ तत्परचान् अत्यन्त आश्चर्यको प्राप्त हुए जाम्बव और मुन्दर आदिने शक्ति लगनेसे लेकर समस्त वृत्तान्त लक्ष्मणके लिए निवेदन किया-सुनाया तथा उदार भावनासे युक्त अपूर्व आश्चर्य प्रकट किया ॥७३॥

तदनन्तर जिनके नेत्र लाल सफेद और नीले इन तीन रङ्गके कमलोंके समान सुरोभित थे, जिसका मुख शरद्वस्तुके पूर्णचन्द्रमाके समान था, जिसका उदर कृशा था, जिसके दोनों स्तन दिग्गजके गण्डस्थलके समान सुशोभित थे, जो नूतन यौवन अचर्यामे स्थित थीं जो, मानो शरीर-धारिणी कामकी क्रीड़ा ही थीं, जिसके उत्तम नितम्ब विशाल तथा अलसाये हुए थे, और जिमे कर्मां ने एकाग्र चित्त हो सर्व संसारकी शोभा ग्रहण कर ही मानो बनाया था ॥७४-७५॥ ऐसी समापमें स्थित उस विशाल्याको देख लक्ष्मणने आश्चर्यसे अवरुद्ध चित्त हो विचार किया कि क्या यह इन्द्रकी लक्ष्मी है ? या चन्द्रमाकी कान्ति है ? अथवा सूर्यकी प्रभा है ? ॥७६॥ इस प्रकार चिन्ता करते हुए लक्ष्मणको देख, मङ्गलाचार करनेमें निपुण स्त्रियाँ उनसे बोली कि हे स्वामिन् ! यहाँ इकट्ठे हुए सब लोग इसके साथ आकर विवाहोत्सव देखना चाहते हैं ॥७७॥ यह सुन लक्ष्मणने मुसकराते हुए कहा कि जहाँ प्राणोंका संशय विद्यमान है ऐसे युद्ध क्षेत्रमें यह किस प्रकार

भवत्प्रभावत्तसर्वविघ्नं पाणिग्रहं नाथ भज स्वमस्याः ।  
इत्यर्थनाद्वीरवतश्च वाक्यादियेष लक्ष्मीनिलयो विवाहम् ॥७३॥

### मालिनीवृत्तम्

क्षणविरचितसर्वशलाप्यकृत्तन्वयोगः पवनपथविहारिस्कोतभूतिप्रपञ्च ।  
अभवदमरसम्पत्कल्पितानन्दतुल्यः प्रथमभुवि विशाल्यालक्ष्मणोद्वाहकल्पः ॥८०॥  
इति विहितसुचेष्टाः पूर्वजन्मभ्युदाराः परमपि परिजित्य प्राप्तमायुर्विनाशम् ।  
द्रुतमुपगतचारुद्रव्यसम्बन्धभाजो विधुरविगुणतुल्यां स्वामवस्थां भजन्ते ॥८१॥

इत्यापै श्रीरविपेणाचार्यमोके श्रीपद्मचरिते विशाल्यासमागमाभिधानं नाम पञ्चपष्ठितमं पर्व ॥६५॥

उचित हो सकता है ? इसके उत्तरमें सबने पुनः कहा कि इसके द्वारा आपका स्पर्श तो हो ही चुका है परन्तु आपको प्रकट नहीं हुआ है ॥७८॥ हे नाथ ! आपके प्रभावसे जिसके समस्त विघ्न नष्ट हो चुके हैं ऐसा इसका पाणिग्रहण आप स्वीकृत करो । इस प्रकार लोगोंकी प्रार्थना तथा गौरवपूर्ण वचनोंसे लक्ष्मणने विवाह करनेकी इच्छा की ॥७९॥ तदनन्तर जिसमें क्षणभरमें समस्त प्रशासनीय कार्योंका योग किया गया था, विद्याधरोने जिसमें विशाल वैभवका विस्तार प्रदर्शित किया था, और जो देव सम्पदासे कल्पित आनन्दके समान था ऐसा विशाल्या और लक्ष्मणका विवाहोत्सव युद्धभूमिमें ही सम्पन्न हुआ ॥८०॥ गौतम स्वामी कहते हैं कि हे श्रेणिक ! जिन्होंने पूर्वजन्ममें उत्तम आचरण किया है ऐसे उदार पुरुष प्राप्त हुए मरणको भी जीतकर शीघ्र ही उत्तम पदार्थोंके समागमको प्राप्त होते हैं और चन्द्रमा तथा सूर्यके गुणोंके समान अपनी अवरथा को प्राप्त करते हैं ॥८१॥

इस प्रकार आर्षे नामसे प्रसिद्ध, श्री रविपेणाचार्य विरचित पद्मचरितमें विशाल्याके समागमका वर्णन करने वाला पैंसठवाँ पर्व समाप्त हुआ ॥६५॥

द्वितीयो भागः समाप्तः





## श्लोकानामकाराद्यनुक्रमः

[ अ ]					
अष्टकान्तेन हृदय	२६५	अचिन्तयच्च चौरया	१३७	अतिगन्धोऽहमप्यग्र	१०८
अशुक्लेन वर कण्ठ	१४८	अचिन्तयच्च भो माघी	४५	अतिप्रशङ्घोर्यस्य	३५६
अशुकैः समालम्ब्य	१४६	अचिन्तयच्च पद्मोऽज	२७५	अतिभूतिप्रभृतयो	६३
अशुकैनाम्बुपङ्क्तौ	१४६	अचिन्तयच्च पर्यामि	२३	अनिभूतिश्च तद्वेतोः	६२
अकरोच्चन्द्ररश्मिश्च	२७४	अचिन्तयच्च मे काश्या	२३८	अतिमत्तङ्गनाङ्ग-	५०
अकल्मष स्वभावेन	२६१	अचिन्तयच्च रामग्री	२५३	अनिमधुररव कराभिघातौ	२२०
अकल्मात् सेधमुत्तुङ्ग	१३७	अचिन्तयच्च सम्भ्रान्त-	३०३	अतिमूढतात्मानो	३३१
अकीर्तिरिति निन्द्येय	२७३	अचिन्तयच्च मुञ्च	२७४	अनिमृदुमुजमाला	१४
अकृष्टपच्यरीनेन	१०१	अचिन्तयच्च हा कष्ट काम	२६५	अतिनीर्यं समस्तेषु	१५५
अक्षीणसर्पकोशोसा-	६४	अचिन्तयच्च हा कष्ट प्राप्ते	२३	अतिनीर्यं किमेतत्ते	१६३
अक्षेभ्यस्तरगम्भीर	३०३	अचिन्तयच्च ही साधु	१५२	अतिनीर्यमुनिं हृष्टा	१६८
अक्षोद्दिष्टस्तत् सप्त	२७४	अचिन्तयच्च वार्ता	३४२	अतिनीर्यस्तनोऽनोचन्न	१६५
अक्षोदिएया प्रकीर्त्यानि	३५८	अचिन्तयच्च वृष्णाद्रे	२४१	अतिनीर्या तथा बुद्धौ	१५७
अक्षौदिणोमहत्वाग्नि	३५७	अचिराजिग्रह धोर	४०६	अतिनीर्याऽतिदुर्वार	१५६
अगावटिच भृङ्गाण्या	२१२	अज्ञातचित्तिता नून-	१४६	अतिवीर्याऽतिवीर्याऽय	१५६
अगृह्यत्सैव सजाह	३६३	अज्ञानानो विशेष वा	२७०	अतिनीर्याऽत्र पद्मेन	१६४
अग्निक्वेतुर्नियोगेन	२०७	अज्ञिन्द्रामर गन्ध	२२३	अतिनीर्याऽनि दूतेन	१५८
अग्रतः प्रपतश्नास्य	३०१	अज्ञातमिदमप्राप्त	१४१	अतिनीर्या महाधन्य	१६७
अग्रतः प्रस्थिते तस्मिन्	३८५	अज्ञातलोकावृत्तान्ता	५	अतिनीर्या रया कम्पा	१६४
अग्रतः स्वपिती जातः	३८५	अज्ञाता एव ये कार्यं	१६१	अतिवेगसमुत्पाता	३६६
अग्रतो भृगुरत्युग्रः	१८५	अज्ञातैरिदमस्माभिः	१५६	अतिशयनरम विनिहत	३१
अग्रतोऽत्रग्रहं तस्य	६६	अज्ञातो मन्त्रिवर्गस्य	२७२	अतीतागामिशोकाभ्या	३८
अग्रप्रयाणस्त्र्यस्ता.	३५६	अज्ञानदायतो नाश	२७७	अतीने गगरारे च	२०३
अग्रान्न यन्भयाना	७३	अज्ञानयोगमेतस्य	१६१	अतीत नीनित कोशा	१०२
अग्रप्रमथन नाथ	४०६	अज्ञानाऽमौ विलङ्घः स	२०७	अतृप्त परमाहारै	३४१
अङ्ग इन्द्रिममुषीर	२७३	अज्ञासीतानाविज्ञानः	४०६	अतृप्त स्त्रीनहस्यौघे	३४१
अङ्गनाजनदृष्टीना	४६	अङ्गनाजत्रिदेहाञ्च	४०८	अतो जनकमग्न्य	१
अङ्गारेतुना तेन	३१५	अङ्गनाजनपस्तात्र-	३७५	अता न दा स्वय देवि	२५६
अचलो नाम विद्ययातो	२०६	अट्टहासार्त्त निमुञ्चन्तः	२६१	अतो नमस्त्वयन्त	३६१
अचिन्तयच्च किं नाम	२३६	अणुव्रतधरः साधु	११५	अतो ब्रवीमि राजस्त्वा	१६
अचिन्तयच्च किं न्येत	२६	अणुव्रतधरो यो ना	१३८	अतो ब्रवीमि राजस्त्वा यद्-	१०८
अचिन्तयच्च किं सीता	२८१	अणुव्रतानि सगृह्य	६१	अत्यन्त तदह मन्ये	३०६
अचिन्तयच्च को न्येष	५८	अतः सत्यधमुद्दिश्य	३२१	अत्यन्त दुर्बरादिष्टा	७५
अचिन्तयच्च विघ्नारमा	२३०	अतस्त्रिजंघे ताद्य	१५६	अत्यन्त यशधीरस्त्व	३५२
अचिन्तयच्च ते नून-	३१	अतिजामिह काले	२२१	अत्यन्तानुद निर्लेज	२५५
		अतिदीनहृतायवा	२२६	अत्यन्तधनत्रयैव	३४

अत्यन्तदीनवदनः	२४२	अथ रत्नजटी व्रस्तः	२४८	अथाशालिकविद्याया	३१८
अत्यन्तदुर्लभा लोके	२७३	अथ राजसुतासमीरित	२१६	अथाससाद कैष्किन्ध	३४४
अन्यन्तदुस्महा चेष्टा	६६	अथ लङ्केश्वर वीरं	३५१	अथासन्नत्वमागच्छद्	३३१
अत्यन्तमधुरैर्वाक्यैः	१२८	अथ लब्धाम्बुदव्रात	१७५	अथासांवाज्जो गच्छ	३०८
अत्यन्तविपमीभावं	४३	अथवा किं मनो व्ययं	४२	अथासौ शतसद्भावा	२
अत्यन्तस्निग्धया तन्व्या	१२७	अथवा क्षयमप्राप्ते	१८	अथासौ साधुयुगल	३१३
अत्युग्रमूर्धनिर्मोकै	६८	अथवात्यन्तमेवेद	११३	अथास्य व्रजतो व्योम्नि	३१७
अत्यूर्जिता महासैन्यौ	३८२	अथवा दयितो रत्या	२४६	अथास्य वायुपुत्रेण	३७६
अन किं कियते साधो	१०७	अथवा न मुनेर्वाक्य	३१५	अथास्य शतदुःखेन	२०४
अत्र विभाति योमगावृन्द	२१८	अथवा निखिले लोके	२५५	अथाहूतः पुनः प्राप्तः	२७७
अत्राग्निहोत्रशालाया-	१३३	अथवानेकशो दृष्टो	२६६	अथेत्ताचक्रिरे तस्य	३४७
अत्रान्तरे जगादैवं	८	अथवा नैव विशेष	४११	अथेत्ताचक्रिरे तुङ्ग	६०
अत्रान्तरे तमुद्देश	२६१	अथवा मयि विश्वस्ते	३८	अथेन्द्रजितवीरेण	३३६
अत्रान्तरे वृषो मूर्च्छा	७६	अथवा मर्तुमिष्टं ते	३८६	अथेनुवारिधाराभि	२३६
अत्रान्तरे परिप्राप्तः	२३६	अथवा रामशोकेन	२६८	अथैकान्ते गृहस्थास्य	२५१
अत्रान्तरे प्रियाः प्राप्ता	४७	अथवा विरहव्याघ्र	१२३	अथैनमूचिरे वृद्धाः	२६०
अत्रान्तरे निदेहाजः	६२	अथवा शुद्धतत्वस्य	१२१	अथैयं दुःखमापन्ने	६३
अत्रान्तरे समागत्य	२३७	अथवा सर्पसैन्येन	१६	अथैवमिति तत्सर्वं	१७
अत्रान्तरे स सम्भ्रान्त-	४०१	अथ शोकरमादुद्रात्	४०८	अथोचो सिंहनादाख्यो	३४६
अत्रान्तरे सुरूपान्व्यो	१२५	अथ सुग्रीवमाहृत्य	२७६	अथोत्तार्य कन्नधादीन्	३६७
अत्रावसीदतो देव	१२१	अथ सद्धानमासुदौ	१८०	अथोद्यानगतानार्य	३३५
अथ वृष्टमटाद्योपः	२६६	अथ सेनापतिर्नाम्ना	२४६	अथोद्यानस्य सम्भ्रान्ताः	१८५
अथ गेहेऽपि लभ्येत	७७	अथाग्रकृतिमाप्चीक-	३६४	अथोपालान्तस्य	२८१
अथ त स्वतिरत्मान	३२२	अथाज्जनात्मजोऽपुच्छ	३१४	अथोद्धत्यं चिर पादौ	१८१
अथ तत्त्वज्ञसम्भृत-	१८३	अथातरथौ सनिर्ग्रन्थौ	३१३	अथः पश्यति कैलास-	१७२
अथ तत्र क्षण नीत्वा	८६	अथान नगरे राजा	१४७	अदत्तादाननिर्मुक्तो	६६
अथ तामतिरीद्रेण	४०५	अथानैव वनोद्देशे	२०१	अदीघोपेक्षिता तेन	२२८
अथ ते त्रिदशाभिस्त्रयाः	१३३	अथानरण्यनतारी	१६६	अदृष्टमाननः पश्यन्	२४
अथ तौ परमारण्ये	६४	अथानरण्यराजस्य	६१	अदृष्टतनुभिर्देवै-	३३५
अथ त्व साधयस्येय	१६१	अथान्तरिक्षे देवाना	२६६	अदृष्टवानिचचार्यं	५६
अथ दक्षिणतो दृष्टा	३६५	अथान्ते तस्य निम्बिश	२२७	अदृष्टैर्जितमूर्धानो	६४
अथ नात्यन्तदूरस्य	२४१	अथाप्येकविदारस्य	६१	अथ वेयूरदष्टौ मे	३६६
अथ नानाद्रुमचामु	१७८	अथाम्यर्णस्थित शत्या	३५१	अथ ते निशितैर्वाणै-	२४५
अथ पद्म समानोऽस्य	२७७	अथार्कज्जटिनः सुनु-	२४८	अथ ते रावणः क्रुद्धो	३१६
अथ पद्मोऽतिरीर्यस्य	१६७	अथाश्चमिद्र वस्तु	२८८	अथश्चवीनममुं फाय	४६
अथ प्रशान्तवैरासा-	३२१	अथायोचत सनिशः	२२७	अथाप्यस्योऽरुदायस्य	२०५
अथ प्रत्येपि नो राजन्	११२	अथायोचततः पद्मो	११४	अथेन्द्रगृहमः यस्य	२३२
अथ भीतिपरिप्रस्ताः	२८८	अथायोचततः सीता	१२६	अथैव त दुगाचार	२३२
अथ भेरीनिनादेन	५२	अथाशङ्काभिनुनात्मा	२७२	अथाश च मुगन्वापि	३२३

अवसत य पुरा शक्ति	४६	अनिच्छयाप विघ्नते	२३२	अत्र च परम ताम्बा	३३५
अवर्षपरिणामेन	३७१	अनिवार्यं समालोक्य	१६	अन्नं वरगुण भुङ्क्ता	१७१
अवसत्स्या क्षितेरथा	७	अनीक्रिया दश प्रोक्ता	३५८	अपच पण्ड कौशम्बां	३५५
अवस्तात् स्फुलिता वाप्य	३३८	अनुत्कारिमि पापे	२०१	अपजमसु ये दारा	६२
अघानदिमुमुक्षुष्य	३१६	अनुगत्य सुनुर तौ	१६७	अपथा क्व महीचारा	२५४
अघानलक्ष्मणस्तपा	२०	अनुजा लक्ष्मणा यम्य	३५	अपथा तिथिवेलाया	१६६
अधिक मामभानाङ्गी	३८५	अनुद्धरो दृढरथ	३६७	अन्यथा तमुद्देश	२४
अधिन्ये न कृते तस्मिन्	३७	अनु वरस्तु विहर	१६०	अन्यथा महीपाल	१६७
अधिष्ठिते देवगणैश्च चापे	६६	अनुवमगुणधरमनुपमकाय	३२	अन्यथाय सुखासीन	१५५
अधीश्वर स यज्ञाणा	१३६	अनुपालितमथादा	३४१	अपथा परिप्रयश्च	३१५
अधुना त्व मया ज्ञात	१४४	अनुप्रयातुनामस्य	८३	अपथा प्रथित क्षोषा	१८६
अधुना त्वयि दाषादधे	३२२	अनुवचमहाबाहा	२६४	अपथा योगमाश्रिय	६१
अधुना दशये शीघ्र	४००	अनुवचमिदं हास्य	२६२	अपथा रतिशैलस्य	३३४
अधुना धेनुभिज्यात्	१४५	अनुमायस्व मां तात	७७	अन्यथा वज्रकर्णाय	१०६
अधुना भज लक्ष्मि	३२६	अनुरागा त्कटैर्भूलै	३५६	अपथावधिना शस्त्रा	१६३
अधुना रावण क्रुद्ध	३४६	अनुलम्बश्च तस्याग्नि	२०४	अन्यथा सा पुर सत्या	१११
अध्वर्युं तस्य पत्नाना	६६	अनुष्ठितं तस्या मातु	२२८	अन्यथा सिंहनगर	६६
अध्यात्मान गुरुणा	६३	अनुष्ण भास्कर कुया	४११	अन्यथैव मया शस्त्र	३६३
अध्वुव देहभागादि	६०	अनुद्धरेति विख्याता	१८५	अपथा गुणपती नाम	२ ६
अप्राय घटैर्भूमौ	१०४	अनुसस्युश्च त नाम्ना	६०	अन्यायनीदृश क्तु	८१
अनङ्गमुमा कृत्रा	३००	अनेकभोत्रचरणा	३५७	अन्या सुरवती नाम	२७६
अनङ्गमुमा लब्धा	३३०	अनेकशुद्धनिभग्न	२६५	अन्यास्तत्रोचुरे कोऽपि	११८
अनतिप्रतिष्ठा वाचि	३६२	अनकरत्नसम्पूर्णं	२२०	अप्ये च याथा क्षत	४१२
अनसुषैर्धनञ्जयै	१६६	अनेकशो मथा प्राप्ता	६२	अन्ये जगुरिय किमस्माक	४०
अनन्तफलमानोति	६८	अनेकाकारवक्त्रादथ	३१७	अन्ये जगुरिय नून	४०
अनन्तर नृपादेशात्	११२	अनेन भूभृता श्रेष्ठै	१६७	अप्येद्यु सन्ततमाधा	३७४
अनन्तनीर्षणभावा	१६३	अनेन क्षारिणाऽऽकुपित्	५०६	अन्येऽशूतमाह्वय	३००
अनन्तनीर्षयागात्र	२६८	अनेन माधुना पश्य	१०६	अप्येऽपि शकुना क्रूर	३६५
अनन्तप्रायसम्पन्नान्	२६५	अनेनामृतकल्पेन	११५	अन्येऽप्येव महायथा	३६०
अनयमानसाम्नी हि	२८१	अननेत्र ततो युक्ता	३०२	अपथा य दत्तनेत्र च	५६
अनयशरणजन	५७	अत कृत्वा शिशुगण	२१४	अपथान्यभक्षणानान	६२
अनरण्ये च रा पश्य	४	अत्तर पितृ शरस्या	३५६	अपथो यमभिमन्यैव	२६७
अनर्षत्रसदृश	६६	अन्तरङ्ग प्रतीशारा	१२६	अपथो यस्य वय द्राह	२७६
अनथात्तचित्तन	३५३	अत्तरेण प्रभोराद्या	३३४	अपथोऽयाहूतमेतेवा	३७४
अनादत प्रभूत च	२३०	अस्तदां सेविते ताम्बा	३८२	अवगायति लक्ष्मी	१८१
अनाग्रमन्तनिर्मुक्त	६८	अतर्दस्य च सनुद्धा	२३०	अवधयतमस्माक	५०
अनाग्रच्छापि त म्नात्रे	३६४	अते तस्या महारण्ये	७६	अन्वर्षसप्तशरते च	२६२
अनाग्रमिति ध्यायन्	२६	अते लक्ष्मणस्तन	१२७	अन्विष्यती प्रभाते नौ	१७६
अनिच्छत्रयमी तेन	४११	अधीभूतो दशास्यस्य	३८१	अन्विष्य विद्यतास्तन	३६४

अपहारिणि कारुण्य	१२२	अब्रवीदस्ति कौशाम्बी	१३०	अमुष्मिन् वल्लभवने	१२६
अपमानेन दम्भस्य व्याकुलस्य	११२	अब्रवीद् ब्राह्मणैकान्ते	१३४	अमुष्य व्यसन कृत्वा	२३७
अपमानेन दम्भस्य हृदयस्या-	४६	अब्रवीत् पद्मनाभश्च	२६०	अमृतस्वरसज्ञोऽस्य	१८४
अपरः कृतसनेता	८६	अब्रवील्लब्धसशश्च	२७७	अमृतादपि सुखादैः	२६४
अपराधविमुक्तस्य	११५	अमग्नमानशृङ्गेय	१७३	अमोघविजया नाम	४१०
अपराधानिमान् श्रुत्वा	३४०	अमग्न्याना गतिः क्लिष्टा	६८	अम्भ मा गाद् विपाद	७६
अपराधाधिगमनं सन्	२६८	अमाव्या च तथा भाव्या	६७	अम्बरं भानुवर्णस्य	३८२
अपरे प्रपया देवि-	८८	अभिज्ञानादिक सर्वं	३४४	अम्भोविहारविज्ञान-	८६
अपरेतुर्महाद्भूत	३८८	अभिमानोन्नतिं त्यक्त्वा	३८६	अयं कुङ्कुमपङ्केन	२२७
अपरे शबरा रेजु	२०	अभिप्राय ततो ज्ञात्वा	२८८	अयं कश्चित्फलभरनम्रागदपः	२१६
अपरोत्तरदिग्भागे	१४७	अभिलक्ष्य शिराज्जाल	४८	अयं प्रयत्नादिव चित्रिताङ्गो	२१४
अपरा मानमुत्सृज्य	८६	अभिलष्यति सन्तापो	३७४	अयं प्राप्तोऽयमायातो-	११६
अपश्यश्च समुत्थाय	१५०	अभिवाञ्छसि मत्सु वा	३६३	अयं मदालसेक्षणः	२१३
अपश्यच्च तरुच्छन्न	२२६	अभिपिञ्चत मे पुन	७३	अयं मृग इवोद्विग्नो	१५०
अपश्यच्च नरधेष्ट	३०२	अभिपेक्षं जिनोन्द्राणा कृत्वा	६७	अयं शरणमायातो	२७५
अपश्यच्च परिस्फीता.	२६	अभिपेक्षं जिनोन्द्राणा विधाय	६७	अयं स वर्तते कालः	२६१
अपश्यच्च मनश्चौरी	४६	अभिपेक्षजल तस्या	४०७	अयं स लक्ष्मणः खगातो	२३७
अपश्यच्च महामोह-	२३६	अभिपेक्षप्रभावेण	६८	अयं सस्यमुच मुक्त्वा	२२१
अपश्यच्च लताजालै-	३२४	अभीतिदानपुण्येन	६७	अयत्नेनेष सा तेन	१७४
अपश्यच्च विसाराणा	२२७	अभूत सर्वशोक्स्त-	२२५	अयमन्यश्च विवशो	१४५
अपश्यत्वा च तस्यान्ते	१७८	अभूता चूर्णने देव	४८	अयमस्य महान लाभो	२३६
अपसर्गामुतो देशा-	११६	अभ्यङ्गोद्भव्यं सुसनातं	१३१	अयमायामि देवेति	१५०
अपि चानुमान्मुक्ति-	७७	अभ्युत्थानादिकामस्य	२७२	अयमिद्वान्कुसम्भूतो	३६
अपि दिनकरदोषिः कौमुदी	१४	अभ्युत्थानाभियानाभि-	२००	अयास्यद्यदि नैताभ्या	८७
अपि द्रष्टुं न ये शक्ये	५५	अभ्यूजितमतिमानी	३८८	अयि देवि वयं यातासि	२३६
अपि नाम पुनः क्रोडा	३६६	अमन्त्रयन्त सम्भूय	३५४	अयि पापे किमित्येषा	१३४
अप्रीत्यन्त प्रजाः सर्वाः	३३	अमात्य धूर्तमाहूय	३	अयि भद्रतिलमद्योऽ	३६६
अपुण्यया मया नून	२२८	अमात्ययदन धीक्ष्य	१७३	अयि मुग्धे मुक्कण्ठेऽस्मिन्	१४६
अपृथलोकसङ्घात	२६६	अमी ततः समागत्य	३३६	अयि मूढे न पुण्येन	१००
अपृच्छच्च परिष्कृत्य	३४५	अमी निरागसः क्षुद्रा	१०८	अयि सुन्दरि हर्षस्य	२५७
अपृच्छत्त ततः पद्मः	१०६	अमी भयाकुला म्नेच्छा	२१	अयोगमोहितं चेत	२३१
अपृच्छत्तस्य कृत्वात्त-	६५	अमीभिरनुयातेऽद्	१५६	अयोगवामिद तेन	२६२
अप्येनाक्षरनिर्गति	४८	अनीभिरद्वरैः पद्मः	२७६	अरण्यदेवतातूषा	१४८
अप्रनश्यं गगनगी-	२२४	अमी लङ्काभिता राजन्	२२५	अरण्यमपि रम्यं	२५०
अप्रनस्तेन गन्तव्य	३०६	अमीपामन्य आकारो	२६६	अरण्यात् विज्ञानः प्रातो	६१
अप्रनेपगुणापाशान्	२६५	अमीपु रजाटचारुणि	१६६	अरण्याना गिरेर्मूर्धनि	१५२
अप्राप्तानेव धोरीऽमी	११७	अमी ममीगणेरिते बरोष्ठि	२१६	अरण्यानी गता सेष	४०३
अगनेन्दुनुपा बाण	५५	अनुमिन्द्रनीत्यर्गं	२१३	अरण्यानुब्रज्यद्वानो	४०४
अनर्चन्ती सुरो नाथा	१३१	अनुष्य पुस्तकानि चिध	२८६	अरण्ये तत्र निर्मां ये	१३३

अरण्ये निर्मनुष्येऽस्मिन्	२४१	अनतीर्थं ततो वृक्षाद्	२६	अशानिमे गता. क्वयति	३५८
अरत्या कर्षिताङ्गोऽमी	५४	अनतीर्थं तुरङ्गाद्य	६४	अशहोषोपित कृत्वा	४५
अरुण धगल कविल हरितं	२१५	अनतीर्थंम्बराद्यारू	२७	अशौ शतानि समत्या	३५८
अर्कं कीर्तिममो भृत्या	३६५	अवतीर्णंभरादाशु	६५	अमदना अरि मातङ्गा	३४
अर्कमिस्फटनः सोऽग्नि	३०६	अवनेरुः समीपे च	२६४	अमस ह्य त द्रष्टु-	८३
अर्णंवाह धनुयंस्य	३५३	अवद्वारस्ततोऽवोचद्	२५	अममातनताः ताश्च	३१३
अर्थेन विप्रदीनस्य	१४४	अवद्वारेण निर्गत्य	८७	अममातोन्द्रियमुग्र	८४
अर्थाऽय दुन्तरोऽत्यन्त	२७१	अग्नी पूर्णकलशाः	१६५	अममातोपयोग्य	२२६
अर्षद्वग्गतकृच्छ्रात्	४	अगरुदा च सधेष्टा	१६१	अमातुल्यितमाग्रन	३०६
अर्षरात्रे तदा स्पष्टे	१५०	अग्रोहस्ततो देशा-	३३६	अगारोऽपनरोऽत्यन्त	१६०
अर्द्धचन्द्रो जिनप्रेमा	३६८	अग्रलोक्य मुनीमित्य	१८६	अग्निनाभिः सिताभिश्च	१३६
अर्षितः पोगयावासी	१२	अग्रश्च यदि भोक्ष्या	१६६	अग्निपत्रन याता	७
अर्द्धभागुलिका दृष्ट्वा	३६३	अग्रसर्पं ममाङ्गानि	२५२	अग्निपत्रनच्छ्रुताः	७
अर्द्धसन्नादनामाय	३६३	अवसीदस्ततो दृष्ट्वा	३७५	अतो दृताऽन्वदा राशा	१८४
अर्द्धस्वर्गोदयश्चान्ये	२८६	अग्रस्था वा गतामेता	३२८	अमो पत्रनपुत्रोऽग्नि	३१७
अर्षितः पुण्यवत्यै च	६०	अग्रस्थितोऽग्रमत्रेति	१४३	अगो प्रमन्नकीर्तिर्मे	३११
अर्भकं च दृष्ट्वाति	११	अग्निश्च च प्रिये करुमात्	४६	असौ मोक्षयिता तस्य	३७१
अर्हच्छासनदेवीन	६६	अप्यार्यवोर्यसंप्राप्तः	१५६	अस्मि ब्रौह्मपुर नाम	२८३
अर्हन्त समतिग्रम्य	१४०	अपितृन भटी काचिद्धर्तृ-	३६२	अस्ति ते दुहित्वा राजन्	३२
अर्हन्तस्त्रिभगत्सूत्रा	३५	अपिदितपरमार्थैरेवमर्थेन	२३१	अस्ति वेणातटे मेही	२६०
अर्हन्तो मङ्गल सन्तु	२६६	अविदित्वानयोर्भेद-	२७५	अस्त्यन कनको नाम	४२
अर्हं कान्ते रुदित्वा ते	३८	अवोचञ्जपायसी तासा	३१४	अस्त्यन प्रनरो नाम	२०७
अलम्पनचन तस्य	२६८	अवोचलक्ष्मणः पद्म	१२०	अस्त्यन मिथिला नाम	२५
अल तथापि सद्रक्त्रे	३०६	अव्यापारेण तातस्य	७४	अस्त्यन लण्णाममोधी	२८८
अल प्रतिभयाकारा	१८२	अशसिप ततः किञ्चिदी	३३४	अस्त्र धनोऽग्निर्वीर्यं	३८०
अल रुदित्वा नान्येन	२३२	अशुचिः सर्पमासादो	२०२	अस्त्रनाहनमन्नाह	३५७
अर्थं वत्से रुदित्वा ते	२५४	अशुचेः कायतोऽन्वोऽह	६३	अस्मद्द्वारसमायातो	३१४
अशुक्लारोदय नाम	२२४	अशोपनस्तुनम्यला	१३६	अस्मरच भन पूर्वं	६०
अश्यातचक्रसकाशः	४१	अशोकमालिनी नाम	२६३	अस्माक बहवः सन्ति	३४६
अशुगत्य ततस्तरमात्	१३०	अश्रद्धधाना सरम-	६८	अस्माकमन वसता	१६७
अशुगम्य कुमारैर्वं	५५	अश्रुदुर्दिनवक्रनाथाः	१५२	अस्माकमपि नारीणा	८२
अशुगम्य ततो धर्मं	१३८	अश्वमीरो महासैन्यः	२६७	अस्माभिः सह युष्माक-	८८
अशुगानधर्मोन्ना	२६५	अश्वत्यैस्तिन्तिडीकाभि-	२११	अस्मिन् अगतये राजन्	६७
अशुगोऽस्मद्वीर्यः क्व	२०६	अश्वत्थान् शालम्यप्रोधा	३३७	अस्मिन् महीधरे रम्ये	१७६
अशुवारितनीर्तिक	४१	अश्वकल्दः स तं दृष्ट्वा	१०७	अस्मिन् राघव नाकामे	१३४
अशुतीर्णः क्रिमेयः स्या-	३५५	अश्वैरश्या सम लम्नाः	३७६	अस्मिन् सुगन्धेऽरण्ये	२०६
अशुतीर्णा विमानाया-	४१०	अष्टमोऽग्नीर्नीसज-	३५८	अस्मिन्नगोचरेऽन्वेषा	२२०
अशुतीर्थं गञ्जात्तन	१६४	अष्टदशसहस्राणि घेनूना	१४६	अस्मिन्नुच्चैर्निर्जराः	२१५
अशुतीर्थं ततः क्रुद्धो	३८०	अष्टदशसहस्राणि पत्नीना	३५६	अस्य गाढदेशेषु	२१५

अथ पौरसमुद्रथ	३३०	अग्रतः प्रोष्ठिमो राजा-	१५६	आत्मीयबल्युमश्च	२५१
अस्याः पुरः समासत्रा	१३८	आकारमात्रमनैत	२५	आत्मीयानाकुलान् दृष्ट्वा	३७३
अस्याः शृणु यदावृत्त-	१६०	आकुला रक्षता चैता	२४८	आदरेण च तैः वृष्टः	२५
अन्या च ये गताः सिद्धिं	२६६	आकुलो मन्त्रिभिः साक	२६३	आदरेणानुवृत्तश्च	१२६
अस्या भगवता तेन	३०८	आकूपारसर्पं तेन	३३७	आदित्यश्रवणेनासौ	३८१
अस्या द्वारत्रयं पुण्यां	१३८	आकृष्टो नगरीमथ	१५८	आदिनेय स रामेण	२७७
अस्याहेरा, शुभ्राः केचित्	२१६	आकृष्य कार्मुकं कूर	४१	आनयाम्येष सत्कन्या	५६
अस्थोपरि परिब्रूय	२४८	आकृष्य ह्युरिका केचि-	११७	आनयेयमितः क्षिप्र	१०५
अहं त्वा शोचयिष्यामि	२८३	आकृष्य सागरजल	३१४	आनागिकगृहीतोऽमी	३५५
अहं पुनरवृत्तात्मा	१०६	आक्रोशः सारण पापः	३७४	आनादितः पिता मृत्या	१२१
अहं युगमत्यन्त	३०८	आख्यातं च क्रमात् सर्वे	३१६	आनन्दं सर्वलोकासु	१६६
अहं सलक्ष्मणो मुख	१४६	आगन्धुम्यश्मित्युक्त्या	१५६	आनन्दोद्यानमाश्रित्य	२७८
अहं नार्यं गमिष्यामि	३११	आगन्धुशु ममाग्वाश	११३	आपतरमणीयानि	५०
अहं विहङ्गलः कन्या	६३	आगतं जनकं शत्रु	७०	आपूर्वमाणपर्यन्तौ	८३
अहिंसानिमिषं सार	१४०	आगतश्च द्रुतं भूयः	२३३	आशुच्युता न मे किञ्चि	७४
अहिंसा प्रर मूल	८	आगतो यश्च सैन्येन	२१	आशुप्रपारणन्याय-	२८
अहिंसा ननादाय	६६	आगत्य नाक्तः केऽपि	१३५	अभिमुख्यगतं मृत्युं	३६१
अहिंसेयमहीदेवी	३५५	आगन्तव्यं त्वया प्रीत्या	१५६	आधानाघातकालोभा-	३३३
अहा कान्तिरसुष्येय	८६	आगमिष्यति मे पुत्रो	२२६	आयातोऽभिमुखं तस्य	३६०
अहो जिनेश्वरे भक्ति-	३१४	आघातः स चिरामोहा	६२	आयान्त्येन सती कस्माद्	२३०
अहा ते वरुण माहात्म्य	३१०	आचार्यमार्यगुप्तं च	३	आयान्द्रुचिषा ग्लेच्छा-	१५५
अहोऽद्यैकादशं जात	३२४	आचार्यस्तु निविकैपी	५१	आरण्यरक्षता हृत्वी	३३४
अहो धर्ममहो त्यागो	३०५	आचार्येणैरमित्युक्ते-	१६६	आरण्यतृणयानीय	१०८
अहो परमधन्येय	८२	आशादानेन चाशोपाद्	३५६	आरब्धुं प्रसन्नं कार्यं	२२६
अहो परमाहात्म्यो	३	आशादानेन तृष्टोऽमी	२७	आरब्धं च रथं मिहै-	३७६
अहो परमिदं विन	३३०	आशापयति नगरे	१५५	आरब्धं तेन मुक्तः सो-	२६१
अहो पराक्रमो मद्र	३११	आशापयत्यमी देवा	११६	आरब्धं वासिता मद्रा	५२
अहो प्रीतिरहो भक्ति-	८२	आशापयत्यमी देवो भवन्त	१५७	आरुढा विचरन्त्येन	२११
अहो प्रीतिरुमायां	४२	आज्ञानेन ततः सीता	२३२	आरोह देवि मे रक्ष्ये	३३६
अहो महानुभावोऽयं	८१	आयोः समीहया दृष्ट्वा	१७	आरोहन्ती गिरिं देवी	१८०
अहो महान्तः परमा ब्रजास्ते	४०७	आहुतीकृत् हुतं चाह	८१	आर्तं स्तेन सद्गुः सेन	३००
अहो मे ययुना तेन	३०	आतिथेया, स्वभावेन	१०१	आर्षदेशाः परिपन्ना	१६
अहो रूपमहो सत्त्र-	४११	आतं चानुगतं मृत्यु	१६२	आर्षानेताञ्जनवदात्	१५
अहो रूपमिदं लोके	३२५	आत्मभेषं समः पद्यः	२६३	आर्षे विद्याभूता कन्याः	२७
अहो वीर्यमहो रूपं	१७५	आत्मभेषमनो वृद्ध	२६३	आर्षेण यदि नो यष्टि-	४६
अहो यो विमला बुद्धि-	३१६	आत्मभेषोऽभिधानश्च	२६२	आत्मभेषोऽभिधानश्च	११६
अहो शक्तिरहो रूप	३०५	आत्मार्थं पूर्यतः कर्म	२५७	आत्मभेषोऽभिधानश्च	६७
[ आ ]		आत्मार्थं निरतयवन-	१६६	आर्षोपमानमाशा	३१८
आः पापं दविषादुःख-	२८२	आत्मोप रागनापाय	५८	आर्षोप रागनापाय	११६

आलोक्यावधिनेत्रेण	३८३	आस्ता स्वामिनि ते वाक्या	१६५	इति ता तुरंतोमुच्ये	१२
आनयोः किल दारार्थं	१८८	आस्तुणद् योक्ष्य तस्मिन्-	३६७	इति ता वचनं श्रुत्वा	३२६
आवयोरधुना भ्रात्रोः	२०७	आस्तुगानमयो ह्युवा	११८	इति दीनमना गच्छन्	१३१
आनास्यतिर्गतोऽपश्य-	१६१	आस्नात्यमारयाम्येन	१०	इति ध्यात्वा पुरेऽमुष्मिन्	४०६
आवृतास्ते समुत्सृष्टेः	३६५	आस्नादिति महावीर्यं	६२	इति ध्यात्वाऽग्नोऽग्निना	२३७
आशा च भजमानस्ता	२४८	आस्नादमानो निजयेऽव्ययासी	२१०	इति ध्यात्वाऽग्नोऽग्निना	२४७
आशापरायण नित्य-	१४१	आह्वेऽभिमुखीभूत	३८८	इति ध्यायन् मदाभीत्या	१०५
आशीनिपाग्निभूतेय	२६०	आहार भोक्तुनामस्य	३३०	इति ध्यायन् विनिश्चित्य	६१
आशुकारामुराकारा	३७२	आहारदानपुर्येन	६७	इति निगदति पत्रे केऽप्यी	२२२
आश्चर्यं मोक्षतः कथ	१६२	आहारो वायुपुत्रेण	३३३	इति निगदति राघवोऽसने	२१८
आश्लिष्य जानकीं देवि	१७५	आहार्यैर्विनिधेः शास्त्र-	२००	इति निजचरितम्यानेऽस्म्य	३६५
आश्रयस गच्छ विश्रब्धः	२०६	आहिताग्निद्विजस्तन	१३३	इति निर्वृष्टदेशेऽसु	८७
आश्रयसितश्च जगदीश-	१८	आह्वयन्ते समन्ततः	२६६	इति निर्वेदमापन्ना	६०
आश्रयित्वोत्तर तीर	२२४	आहूताऽथ हितैः पुष्पि	१२०	इति पूर्वभन ध्यानात्	२०१
आश्रयाश इव स्वस्य	३५३	आहो वयस्यऽङ्घ्रित्वा	२३५	इति प्रथः ममाधानी	३२८
आपादधवलप्रम्याः	४५	आह्वयन्ते सुमन्ततः	३६६	इति प्रथो महातेजा	६७
आसौलौकिकमर्यादाः	३७१	आह्वय स मयाऽनाचि	४०१	इति प्रशसापितभाजिता	३८६
आसन्न च परिज्ञाय	२८६	इ		इति प्रशस्य त स्नेहा	३११
आसन्नाना च वल्लीना	१८१	इत्ताचने च देनेन्द्र	५६	इति प्रसजता प्राप्ते	२२३
आसन्नोऽय महाप्राप्तो	१३३	इत्ताकुवशसम्भूता	३५	इति बहुविधवाचा	३६०
आसन्नश्चेन्द्रश्यामे	२५५	इत्ताकृणा कुल श्रीमद्	७६	इति मङ्गलनिस्त्वाने	२६६
आसीच नन्दनच्छ्राये	३३४	इच्छामानादग्निं ह्युद	२५३	इति मनयमाणस्य	१६१
आसीत् दृष्टेःवष्टम्भ	४८	इच्छामि विशद आतु	१५७	इति राठः पुरः कृत्वा	५
आसीदतिगुमे तस्मिन्	४०	इतः क्षमापत्न मेरो-	६	इति वनगहनान्यपि प्रयाताः	१५४
आसीदस्तु कुमारेषु	४०	इतरोऽपि खलीकतुं	१६५	इति विहाय निरसं	२०५
आसीदन्नन्तवीर्यस्य	२५६	इतश्चेतश्च निस्तीर्णं	११८	इति विद्याधरी वाक्या	४००
आसीदनुममालोक्य	२८६	इतश्चेतश्च निस्तीर्णां	५६	इति निरमयमापन्नं	३०३
आसीद् गृहपति श्यातः	२६२	इतस्ततश्च तत्रार्चां	२५१	इति विहितमुचेष्टाः	४१४
आसीद्देनेन्द्रमुद्वेऽपि	३१०	इति कृत्वा स्तुतिं कानु	१४२	इति सन्नेगमापन्नः	३०३
आसोऽप्यत्रिमाहात्म्य	३०४	इति केचित् समाधाय	१४१	इति सच्चिन्त्यन्ऽद्भुतः	१०
आसौद् रथ्योऽपशोभाञ्ज्या	३२२	इति गत्या गतीः श्रुत्वा	१६४	इति सच्चिन्त्यन्ती सा	१५०
आसीन्नमज्जलावेन	३४५	इति गाग्रति दैत्येन्द्रे	३२	इति सच्चिन्त्य कामार्तः	२३७
आसं नम वपुः शैल-	४८	इति चात्रेदयनाथ	१५४	इति सच्चिन्त्य जगद्	१०६
आसीन्मया कृता बाह्या	१६५	इति चिन्त्यवलस्य कुमारी	१८	इति सच्चिन्त्य जायायै	१५२
आसीन्मे शीर्णवति	१४५	इति चिन्त्यवस्तस्य प्रसन्ने	११०	इति सच्चिन्त्य तामङ्गा	२३६
आस्ता तावदिदं राज्य	६४	इति चिन्त्यवस्तस्य सम्प्राप्तो	२८६	इति सच्चिन्त्य निर्याता	३२२
आस्ता तावदिदं वक्ष्ये	४	इति शाल्वा क्षम कर्तुं	१०	इति सच्चिन्त्य निश्शब्दा	१४६
आस्ता तावन्नानन	१४४	इति शाल्वा महादु ख	८	इति सच्चिन्त्य ससाधु	२२६
आस्ता तावन्मनुजनिताः	३८४	इति तद्वचनं श्रुत्वा	३२७	इति सच्चिन्त्य सन्त्ययन्	१६०

इति सञ्चिन्त्य सम्भ्रान्त	२४८	इत्युक्ते परिषन्ना	११७	इत्युक्त्वा मोचयित्वा त	१३५
इति सञ्चिन्त्य सा बाला	१४८	इत्युक्ते पादयार्तुतो	१५८	इत्युक्त्वा रथमावह्य	१४६
इति सञ्जातचेगसु	३६२	इत्युक्ते पाथिवोऽवोचत्	३७	इत्युक्त्वालिङ्गितु क्षिप्र	१६२
इति सम्भाषिते तरया	१६२	इत्युक्तऽभिदधे तात किं	७६	इत्युक्त्वावस्थित व्योम्नि	२४५
इति सुमितम्भला	२२०	इत्युक्तेऽभिदधे तात हृषीक	७७	इत्युक्त्वा वायुसम्भूत	३११
इति सुविहितवृत्ता	३४३	इत्युक्ते मुञ्चती वाग्ध	७५	इत्युक्त्वागार्यमाणापि	१३३
इति स्थितानामपि मृत्युमार्गे	४०७	इत्युक्त रघुचन्द्रेण	३००	इत्युक्त्वागार्यमाणाऽपि	२१७
इतो दृष्टाप्रिता दृष्टौ	६४	इत्युक्ते रहसि स्थित्वा	३५	इत्युक्त्वा त्रिकथा क्तुं	२९१
इत्यग्निगम्य निचक्षणमुख्यै	३७३	इत्युक्ते रामदेवोऽपि	१४७	इत्युक्त्वा विररामाक्षौ	५७
इत्यधुदुर्दिनीभूत	४०४	इत्युक्ते वदती सीता	३३५	इत्युक्त्वा विस्फुरतिह्न	३६३
इत्याचार्यस्य वचन	६	इत्युक्ते लोकवक्त्रेभ्य	१२२	इत्युक्त्वा शिरसा पाणौ	१३६
इत्यादिवर्णनायुक्ता	३६	इत्युक्ते वचन वाति	३३०	इत्युक्त्वा समिधामार	१३७
इत्याद्यालापससक्त	१७०	इत्युक्त वचन सीता	३३१	इत्युक्त्वा साञ्जलिं वृत्वा	१६८
इत्यार्तध्यानयुक्तस्य	५४	इत्युक्ते विस्मय प्राप्ता	६२	इत्युक्त्वासी सुसनह्य	५६
इत्यासन्न तथारासी	२४५	इत्युक्ते वैरसम्पन्ना	२४४	इत्युक्त्वा स्मष्टुकाम त	२५८
इत्युक्त करुण यावत्	२२७	इत्युक्ते सीतया सार्धं	१२६	इत्युक्त्वा स्वग्रह गत्वा	१६१
इत्युक्त कुपिता राजा	१७३	इत्युक्ता धृतिमासाद्य	६३	इद कर्मविचित्रत्वाद्	२०६
इत्युक्त द्राघसरत्त	३४१	इत्युक्तऽप्यनुकम्पेन	२८७	इद च प्रत्ययेत्यादि	३०६
इत्युक्त प्रकृत्काथ	११६	इत्युक्तोऽप्यपरित्यक्त	११३	इद बभौ य मुविशुद्धचेता	६६
इत्युक्त साञ्जलिं पक्षी	२०६	इत्युक्तऽभिदधे तात	७७	इद तदण्डकारण्य	२१५
इत्युक्तस्तेन यातोऽसी	२२४	इत्युक्ता मस्तने कृत्वा	१६५	इद ते कथित देव	११३
इत्युक्ता सम्मदोपता	२४८	इत्युक्ता लक्ष्मणोऽभाषीत्	२४७	इद नाथ महाशर्चं	२२५
इत्युक्ता कुपितावाच	३२६	इत्युक्त्वा कङ्कच्छन्न	२३५	इद पर चेष्टितमाति	१६६
इत्युक्ता लिप्यती क्षाणी	७५	इत्युक्त्वा क्षमयित्वा त	१६६	इद वाच्यमिदं वाच्य	११५
इत्युक्ता वापसम्भार-	२५७	इत्युक्त्वा चरितार्थं सन्	२६	इद शिखरिणो मूर्ध्नि	३०८
इत्युक्तास्ते गता मोह	२८८	इत्युक्त्वा दक्षमानाव	१५८	इदमेव शरीर मे	१५७
इत्युक्ते करुणाक्लिष्ट	११३	इत्युक्त्वा दुःखभारेण	१२८	इन्दीवरनिभेनाय	३७६
इत्युक्ते क्रौरमायात	११७	इत्युक्त्वा दौषण सैव	२४४	इन्द्रश्चिर्मर्जयक्षन्द	३७७
इत्युक्ते कपसम्भार	३७६	इत्युक्त्वागन्दवाप्येण	६५	इन्द्रायुषा गन्त्रास	३६७
इत्युक्त षोडशि नाऽप्यर्थ	३४	इत्युक्त्वा निरपेक्षौ तौ	८६	इन्द्रिययभर सौख्य	१०८
इत्युक्ते चतुरेश्वरै	२५०	इत्युक्त्वा परमं मित्र	२३४	इन्द्रियाण्यमल सन्	२०६
इत्युक्ते जनकेनेता	३२	इत्युक्त्वा परमाश्रिमा	२४१	इन्द्रियैरचितान् प्रवृद्ध	१०७
इत्युक्तेऽत्यन्तमज्ज्वलि	६६	इत्युक्त्वा पादय कान्ता	१८३	इन्द्रेण साधिता यो न	३५८
इत्युक्ते द्वित्र उरथाय	३	इत्युक्त्वा पाशमंतस्या	१४६	इत्येक पक्षरचैव	३७१
इत्युक्ता मया देवि	२४६	इत्युक्त्वा पुनरप्यासीत्	२४१	इमकण्ठो गगन्नेया	१३५
इत्युक्ते सर्वान् नत्वा	२८५	इत्युक्त्वा पुनरप्यस्य	६५	इम चन्द्रगति भुक्त्वा	५८
इत्युक्ते निभिता श्रुत्वा	७३	इत्युक्त्वा प्रगति कुर्वन्	१३१	इमकं यमिता इन्द्रा	३४३
इत्युक्ते परमं तप	१२८	इत्युक्त्वा भावत पाणौ	७६	इमरैर्दुःपुत्रतमै	११४
इत्युक्ते परिपुष्टेन	४००	इत्युक्त्वा मुष्टिऽन्त	३७८	इमानवनिनाकारां	२१६



इमानप्रतिमाकारा	२३६	उत्तोऽपि मुञ्च मुञ्चेति	२३३	उत्साह परमं विभ्र-	२७४
इमे द्विये पल्लुकुमुमैरल-	२१८	उप्रभाटस्तथा मुन्दगः	३६४	उत्साहयन् ह्यन्तेद्वृत्तं	१५६
इमे वाणासने कर्तु-	३६	उचित किमिदं कर्तुं	३२४	उत्सेहे रायगो वेद्यु	३७८
इमैर्मिगदितैः क्रोधत्	३४०	उच्चारयति नो शब्द-	१७२	उदात्तेनेत्रसलस्य	३६०
इय च तत्र शोकेन	७८	उच्चायवा द्विति वेगात्	४८	उदारभट्टकामिनो	११८
इय च पुनरशोकेन	७५	उन्नगाम ततो लोःक	१६४	उदारे विविने देव	३८१
इय च शाक्यभ्राज्ञा	७८	उन्नयिन्या ददावर्ध-	१२२	उदारे सति शौभाग्ये	३७
इय ते प्राणतुल्येति	२४१	उडुगतः किनेप स्याद्	११	उदाहृतमिदं श्रुत्वा	७१
इय नः सुमनी माता	८७	उत्किरन्नितरा दृष्टो	३४८	उदीचीन प्रतीचीन	२५४
इयं मनोहराकारा	३२०	उत्तमन्त्रगणक्षिगदेह	३१	उद्गतं भवने वह्नि	३५२
इय यमालर्षं पाप	३१६	उत्तमज्ञीसहस्राणा	३२७	उद्गता बद्धकवचाः	३८८
दपन यत्र मे काल	१३०	उत्तभा उपकुर्वन्ति	३६७	उद्गीर्णमानने नैव	६४
इयमेतदय बल्श्री	१७८	उत्तराश्रास्येद्व्यं	२६३	उद्घातितकपाटानि	२५६
इरा नाम तवत्सेन	३३२	उत्तिष्ठति पुनः शून्यः	२६४	उद्दामान मनोवेग	२७
इष्टमस्तुविज्ञातेन	२३८	उत्तिष्ठ भव नि शेषाः	३७	उद्दामाऽग्नौ मशानाग-	३३४
इह चमरीगणोऽयमति	२१६	उत्तिष्ठ स्वपुरीं यामः	६४	उदैरित्युपदेशोऽथै-	१०८
इह तावदल भोगै-	१६७	उत्तिष्ठैव यद्वायुं	१०५	उद्भिन्नदन्तिदन्ताप	३६२
इह यन् क्रियते कर्म	१६७	उत्तिष्ठेत्तिष्ठ मद्र त्व	१०५	उद्यन्तमन्मदा भानु	३३४
इह संप्रेरितः कालः	१६७	उत्तिष्ठेत्तिष्ठ मा भैयी	१३१	उद्यम्य नर्तकी खड्ग	१६४
इहादि महाभाग	३१५	उत्तीर्णः सरित पद्मो	८६	उद्यान मुनद्वृष्ट	५१
इहापि निविष्टे लोके	३०४	उत्तीर्णस्वामिकर्तव्यो	३६१	उद्यानमिष निषांता	१०३
इहासीदु भारते वास्ये	७०	उत्तीर्णं प्रसृतः सते	१०८	उद्यानानि सुमभ्याणि	१३७
इहैव लोके विष्टं पय यथो	३८६	उत्तीर्णं विहितक्रीडा	१०६	उद्याने निक्टे तस्य	१७०
		उत्तीर्णं स जनो नागात्	१२५	उद्योगेन विमुक्ताना	२६६
		उत्तीर्णं स्वरधाद्वीर-	३८२	उद्दुत्तनकसूक्तार	८८
		उत्थाय पद्मनाभेन	३००	उद्दुत्तोऽपममौ पापः	३४०
		उत्थाय सहसा दृष्ट्वा	२४६	उद्देगकारण भद्र	५
		उत्थायान्तिकमागत्य	२२६	उद्देगविपुलावर्ते	५४
		उत्थायान्यापदेशेन	२३०	उद्देगानन्दसम्भ्र	३०१
		उत्तस्य च रथे तस्य	३१०	उद्देष्ट्य दनितागुह-	३६१
		उत्सन्नः कनकाभावा	१८८	उन्मत्तवक्त्रप्राह-	८८
		उत्सन्नो विमलाख्याया	१८६	उन्मत्तवारणस्वन्ध-	१०२
		उत्सन्ध वायुपुनोऽपि	३३७	उन्मूयन्नदि यन्त्र	३१८
		उत्सृज्यनयनो लोक-	१६८	उन्मूलितमहात्मना	३३८
		उत्सृज्यनेत्रराजीवाः	१५१	उपकरोतेऽस्य नगर	२२०
		उत्सृज्यमुखराजीवाः	१६२	उपकारः कृतस्तस्याः	३२७
		उत्सर्गः स महाज्ञाता	१५३	उपचारो यथायोग्य	१५३
		उत्सार्य खेचरान् सल्ये	४०५	उपनिन्ये शुभा कन्या	१६७
		उत्सार्य चोरदलना ता	१०४		

[ ई ]

ईदंकराकरामाष्टो	२३
ईदंश्रील्लगुणापेता	११५
ईदंत्वमपि वाञ्छामि	३६६
ईदंशामपि श्लाघा	६०
ईदयो नाम नाथय	४७
ईदयो चरिते कृत्ये	३२२
ईदयो समरे जाते	३६२
ईदंकाचिदमिहाय	३३६
ईदंनोघपरीरच	५६

[ छ ]

उक्तं च गुरुणा भद्र	२०८
उक्तं च रामिना तस्य	१२८
उक्तं तातेन यत्सत्य	६५
उक्तप्रत्युक्तमालाभिः	५५

उपमानविनिर्मुक्त	१८१	उवान गौतमो राजा	१	ऋद्धया परमया युक्त.	१०६
उपयोगा जगद्वैद्य	१८४	उवाच च गणस्वामी	१३६	ऋष्याभिरगच्छतस्तस्य	३०१
उपयोगेति भार्यास्य	१८४	उवाच च गतिः केन	३१७	ऋषभ सतत परम वरद	३१
उपरिधात् करिष्यामि	६६	उवाच च ग्रहाः सर्वे	३४२	ऋषितन्मन्थमुद्गान	५८
उपर्युपरि सरक्तो	२६३	उवाच च चिरात् सोऽह	२४४	[ ए ]	
उपलब्धप्रवृत्तिश्च	२८७	उवाच च परिक्रिन्न-	१७४	एकक भीमणेऽरण्ये	२२८
उपलभ्य च वृत्तान्तं	१५१	उवाच च प्रिये नून	२३४	एकनेनैव सा तेन	२३५
उपलम्बास्य वैराग्य	१४६	उवाच चेदमेक मे	२८३	एकतो दयिताहृष्टि-	३६३
उपवासपरिश्रान्त	१४०	उवाच जनका धीः	३४	एकदेशानह तस्य	२६२
उपवासादिहीनस्य	८	उवाच पथिको देव	१०६	एकमत्तौहिणीना तु	३५७
उपवासं कुर्याभुता	४०४	उवाच राक्षसो देवि	२५८	एकलङ् सदस्तापि	३५८
उपविशश्च विधिना	२७१	उवाच सद्धमणः शक्या	१७३	एकस्तावदय ध्वस्तो	३६४
उपविशोऽर्कसङ्कारो	३४०	उवाच श्रेणिकोऽथैव	३७१	एकस्तु पुरुषादारो	१०५
उपविश्य चिन्तास्ता	२७६	उवाच श्रेणिको भूपः	६७	एकरिमसुपितः कुक्षी	५६
उपविश्याङ्कमारोग्य	७६	उवाचासावहो वृद्धा	२६६	एकस्नादपि बैनेन्द्र-	६८
उपसङ्ख्य सरम्भ	३६१	उपितोऽनेकशो बीवो	१८६	एका रात्रि वसामीति	१११
उपसर्गादिवरते	१८२	उपित्वा गच्छतां तेषा	१०१	एका वेलामिह ततो	१२३
उपससृश्च ते सर्वे	२६४	उष्णरीर्षातिनि श्वासान्	३६	एकाकिनमसी ज्ञाता	२४४
उपसृज्य च ता कथा	३२१	[ क ]		एका नानासपत्नीना	३३२
उपसृज्य ततः स्वैर	१८१	ऊचिरे तस्य भृत्यास्त	११४	एकान्तब्रह्मचर्यं वा	२०८
उपसृज्य भय त्यक्त्वा	१४३	ऊचुःप्रयेऽन्वनारीभिः	४०	एकसने च तेनाति	१२५
उपाचपुण्यो जननान्तरे जनः	३८७	ऊचुःप्रये विवेकस्था	२३४	एकीभूय च ते सर्वे	२७३
उपाचसुमनोठामा	४२	ऊचुश्च देव गुञ्जैन	१२०	एके च वचन प्रोचु	२६७
उपादाय च ते शरा	३६	ऊचुश्च राक्षसाः सोऽय	३७५	एकेन वायुपुत्रेण	३५६
उपाध्यायेन चानीतो	१८६	ऊचे न कुन्दसकाशौः	१४३	एकेन साधुना तत्र	२५६
उपायः सर्वथा कश्चि-	३६७	ऊचे च तेष्विमानेन	२८५	एको रथो गजश्चैव	३५८
उपायश्चिन्तयतामाशु	३६	ऊचे चन्द्रपरीविश्च	३४६	एत मुञ्चन्त्यमी दोषा	१६६
उपायारम्भमुत्स्य	१५१	ऊचे च वायुपुत्रेण	३२८	एतयोः स्तुवतोरेवं	३४५
उपालिङ्गमिदं किं स्यात्	१३७	ऊचेऽपराभिता श त्व	७६	एतश्च वनमाधाता	२६२
उपासीनस्य चात्थशत	१०६	ऊचे रघुहृल्लोचोत्	१६४	एतश्च सर्वरीगाथा	२६२
उपास्तिर्देहि देहीति	६६	ऊचे निर्भीषणो नरता	३५६	एतच्चाप्यभिमानेन	२५६
उपायाणा पति किं स्यात्	३२	ऊचे वेता द्रुतस्मान	११	एतत् चैत् कुप्ये त्वं	१३१
उपायातमहादाह	४०१	ऊच्यंवादमयोम्रीष	१३४	एतत्तस्मान्निः प्रीते	३४०
उल्काभिर्नु जगद्भ्यास्त	२०५	ऊयो माना सह प्रातः	६२	एतत्तद्विवात्सिन्य	१४६
उल्कालाद्गुलदिव्यास्त-	३४६	[ घ ]		एतत् पश्यसि यद् धिप	१३०
उल्कालाद्गुलानि त	३१०	ह्यनुनेन च रूपेण	२०३	एतत् प्राणदटासक्तात्	२४७
उल्लेखं सन्नवाप्त्य	३१६	ह्यणता तच्चिरं नीत	६८	एतत्सर्वं मम भ्रातः	३२८
उल्लङ्घयस्तेऽति दुष्टेऽपु	७	शब्दमा च परया युक्तो	१८४	एतन्न कुपते चन्द्र	३०५
उल्लङ्घ्य सुमहास्य	१४७			एतन्नवरनामस्य	१७१

एतस्मिन् कुमुदैः पूर्णा	३३४	एव चिन्तयन्तस्तस्य	२८२	एवं स गदितो दख्यो	११०
एतस्मिन्नन्तरे प्रातः	२४४	एव चिन्ता परे तस्मिन्	३१	एव सद्धान् सावसानान्	२५१
एतस्मिन्नन्तरे ज्ञाने	२५८	एव चिन्तामुपेक्षया.	७४	एव मुहु खिलमति	३
एतस्मिन्नन्तरे दिव्य	३८५	एव जन. परा भक्ति	४५	एव हि बाधिता तेन	३३२
एतस्मिन्नन्तरे प्रातः	२७२	एव तयो. सनात्पत्र	५६	एवमद्यु शुच मुञ्च	७५
एतस्मिन्नन्तरे प्रातः पद्मः	१८	एव तथार्थशासुद्धे	३६०	एवमस्त्विति तेनोक्ते तार	५८
एतस्मिन्नन्तरे प्रातः स्वयं	२४८	एवं तिरस्कृतो माया	२५८	एवमस्त्विति तेनोक्ते दध्नु	१६४
एतस्मिन्नन्तरे मायु	६	एव तौ चारुधानानि	१८८	एवमस्त्विति भाषित्वा	१२२
एतस्य वचनस्थान्ते	२७१	एव तौ विदिताल्यावी	१८७	एवमस्त्विति सभाष्य त	३०६
एतस्यां म निरूपयति	२८१	एव दुर्गन्तरे जाते	२६७	एवमस्त्विति सभाष्य देवो	१२
एतस्याङ्गुलिनाभिर	२७१	एव धर्मिणि देहेऽस्मिन्	१८६	एवमस्त्विति सभाष्य वृषो	११४
एताभिरवराभिरन	३१६	एव ध्यात्वानुवाधानै.	२७५	एवमस्त्विति सभाष्य प्र	३६४
एतामनापहीभूतो	३८१	एवं नानाविधैर्दमै	२५६	एवमस्त्विति सभाष्य	
एतावतीव सभाषः	४११	एव निगद्य शास्त्राद्यो	१४६	मण्यम्	२०७
एतावत्या परित्यज्या	१६३	एव निश्चिन्तित्वा	८५	एवमस्त्वित्यभीष्टाया	१६७
एते हि स्त्रे. वने तस्या	०८०	एव परमनाहार	३३३	एवमाङ्कित्वात्याया.	११६
एते मन्त्रनार्थोऽप्या	२६७	एव प्रमातममये	५२	एवमादि गदन्तले	८८
एते चान्ये च भूतान्तरात्	१६५	एवं प्रभो करोमीति	१३१	एवमादि चिर कृत्वा	४०३
एते धर्मं तस्मिन्	३४८	एव प्रयत्नीकृतयोग्य	३६८	एवमादितर भूरि	३०१
एतेऽन्ये च महासत्ता-	१५६	एव प्रयत्नमान त	३५३	एवमाङ्कित्वात्याया	३६३
एतेऽन्ये च महासत्ता महा	३६	एवं प्रशान्तमरम्भे	१६५	एवमादिमहादाया	६६
एतेऽपि बभूवुः सर्वे	२६६	एव मगताः वक्र	२५६	एवमादीनि वस्तुनि	१४२
एतेऽपि काव/इभी	३६४	एवंभूतानि नो वाक्त्	२३०	एवमाद्या निग्या विष्ठा	२६५
एते काविकु. का ी	३६८	एव मनोरथं मिद्ध	२२६	एवमाद्या पुराभिवद्याः	३५७
एते. वेद्य विधि	३१०	एवं महर्षीगानां	२०८	एवमाद्या. मुञ्चन	२८६
एते प्रकाशि शुभ्य	२०१	एव मुक्तो महाभूत्या	३०७	एवमाद्या महाबोध	२५०
एवं युक्त म धेते	१६३	एवं सर्वमहर्ष्याणि	४०४	एवमित्युदिते याता	११४
एवं कृतवनिर्घांभ्यन्	०२६	एवं वायुमती. एते	१५७	एवमित्प्रजितेनापि	३८१
एवं कृतमालाता	४११	एव विचिन्तयन्तीभिः	१२३	एवमुक्तः स तीक्ष्णे	११६
एव कृते न ते मेद	१६७	एवं विदितान्तरानां	३५६	एवमुक्तं देव्या नाथ	१४६
एवं गतेऽत्राद्बद्ध	३६६	एवमित्प्रमत्तं युद्धे	२८६	एवमुक्त समाकृत्यं क्रुद्धः	२६०
एवं गतेऽपि विद्यायाः	१६३	एव विषयमव्याप्यन्	११७	एवमुक्त समाकृत्यं सीता	२६०
एवं गतेऽपि येन कर्तुं	३८६	एवं विनिर्गतं कथाः	३६३	एवमुक्तस्तथा साक	१६२
एवं च वि तो मायं प्रामो	१००	एवं विमुक्त्य विद्वांस	२६८	एवमुक्ता विमुक्त्यासी	२३२
एवं च पर्युत्साही	००१	एवं विमुक्त्य सज्जत	२७०	एवमुक्ता गती सीता	२५२
एवं च मानये चक्रे	७१	एवं विरचिता बाणी	३६८	एवमुक्ते पुमासीनां	१२३
एवं च मातां मेने	१६६	एवं विद्यानिनी कृत्वा	४०७	एवमुक्ते तथा स्वैरं	१३३
एवं च मुनिर्. मृ ग	२६६	एवं विद्यमानां प्राप्ते	३०१	एवमुक्ते विमुक्तः सन्	८०
		एवं गंगवत्संघेन	३१८	एवमुक्तेऽस्तस्यपूर्णं	३८

एवमुक्तो जगादासौ	७५	कदम्बत्रिविधौ भीमो	३६४	कर्मभारगुरुभूता	१४१
एवमुक्त्वा तथा कृत्वा	१४२	कदम्बैस्त्रिभुजैश्चैत्रै-	२११	कर्मविचेष्टितमेतदमुद्दिमन्	३२३
एवमुक्त्वाभिमानेन	१६३	कदाचारसमुद्रे त्व	३४१	कर्मानुभावतस्तच्च	३७
एवमुक्त्वा मरुत्पुत्र-	३२३	कदानु विषयास्त्यक्त्वा	५०	कलं प्रवरनारीभि-	५८
एवमुक्त्वा शुचा शस्त	१४५	कनकस्याम्रजो राजा	५८	कलाकलापनिष्णातो	४२
एवमुग्रान् विमुञ्चन्तं	२८३	कानने सीतया साक-	१२५	कल्पोद्यानसमन्ध्याय-	१८५
एवमुद्गतसद्दृष्टि-	१४१	कनीयास्तस्य धर्मोऽय-	६६	कल्पिताः पुरुशोभादयाः	३४६
एवमुद्वेगमापन्नो	१४३	कनीयानसि स त्वं मे	३८६	कल्लोला इव निर्जग्मुः	१२७
एवमेवाकिना तेन	११७	कन्दमूलफलाहारा	२१	कश्चित् परगृहं प्रातो	८६
एवमेवेति सोऽवोचद्यद्	३२२	कन्यया मुदितश्चौरः	२	कश्चित् सुरतखिन्नाङ्गो	८६
एव राज्ञधनुच्छाय-	११८	कन्या त्वय च्छुधाचैन	४०५	कश्चित् सन्ध्यायं दन्ताग्रैः	३६१
एव प्रत्युपकारं मे	२७५	कन्याभिर्घटकैः स्वादु	१०१	कश्चिदङ्कगता कान्ता	४०८
एव ममोपकरोति सुचेताः	३७३	कन्यामेकामुपादाय	१६७	कश्चिद्विघटितं हृष्ट्वा	३६१
एवा मध्ये न पश्यामि	२६८	कन्या स्वयंवरा साध्वी	५५	कष्टं चिन्तितमेतन्मे	२६६
एवा क्रीडारवा नाम	२१६	कपिकेतुख्याचेद	२७६	कष्टमेककयोर्जाति	१६०
एवा गन्तासि वैधव्यं	३३२	कपित्थवनमानम्र	४०४	कष्टावस्था ततः प्राप्तं	१३१
एवा नीला शिला स्यात्तिमिर-	२१६	कपिध्वजबल तेन	३७८	कस्त्वं कस्य कुतो वाऽसि	४००
एवा यातानेकविलासा-	२१८	कपिमौलिभृतामीशं	३४२	कस्त्वसौ भविता लोके	३१५
एवाऽसौ विजनेऽरण्ये	३०८	कपोतभृङ्गराजश्च	२१२	कस्मादयं जनोऽस्माकं	२७२
एवोऽपि तुङ्गः परमो महीध्रः	१६८	कमण्डलुशिखावूर्च-	१३३	कस्मैचित् पूर्णवैगुण्यं	८६
एहि वस्त निज रूप	२२८	कमलजालकराजितमस्तकः	२१४	कस्य पुण्यवतो गोत्र-	१७०
एष्यागच्छ क्व यातोऽसि	१५०	कमलनिकरेष्यत्र स्वेच्छ कृता	२१७	काश्चिन्स्त्रेह्येद भाणोषैः	२०
एष्यागच्छ ( प्र ) यातोऽसि	२३६	कम्बोजेन सताकारि	७०	काश्चिदग्न्याग्न्यघातेन	११७
[ ओ ]		कयानः कमशो भूत्वा	६३	काश्चिदभ्रुतवृत्तान्तान्	२८५
ओदनच्छादिते हेम-	३५५	कयानोऽय सुरो हर्ता	६३	काश्चिद् विज्ञातवृत्तान्तान्	२८५
[ क ]		करञ्जकुण्डकालीयै-	२१२	काको नदा इति ख्याता	१३०
कचिद्वावेन निर्दग्ध-	१२६	करवालीकरानूर-	१८२	का क्व कामिस्त्वया दृष्टा	३६
कचेपु काश्चिदादृष्य	११७	कराञ्जकुण्डमूलाङ्केन	१६६	काचिज्जगाद ते नाथ	३६१
कटकस्य प्रसादेन	२६३	करिवालकरुर्णान्त-	१८६	काचित् सन्नाहरुद्धस्य	३६३
कटिस्तमणिप्रायाः	१६	करुणं बहु कुर्वन्त्यः	१२०	काचिदिन्दुमुत्ती वामे	३३६
कथं जानासि देवीति	१५०	करेण हृदय माष्टिं	२६४	काचिदीर्घां कृतं त्यक्त्वा	४०८
कथं त्रिभुवनख्यातो	३४	करेणोरपतीर्थाऽसौ	५२	कचिदुत्तानित भर्तु-	३६२
कथं निरुत्तया युय-	२४०	कर्णकुण्डलनयाश्च	३३५	काचिदूचे मथैततो	३६२
कथं मे न भवेद्भर्ता	७४	कर्णकुण्डलनामान	२०३	काचिद्वत्सुते भर्तुः	३६२
कथं वा तत्र मन्त्रोऽयं	१११	कर्णयोरतिदुःखानि	१४३	काचिन्नित्यमानानि	३६३
कथं या मुच्यते पारै-	६	कर्ता रोगसदृक्षाणा	४०२	कातरस्य विषादोऽसि	५६
कथामिः स्मिन्पुत्राभिः	१५१	कर्तुं प्रायुक्तार यो	३०५	का तस्य बुद्धिर्न्यायेतु	३०५
कथिनं ते मदाराम	२८५	कर्मपाशैर्यथा जीवो	३६२	कान्तापियेगशवेन	२०५
		कर्मभक्त्या जिनेन्द्राणा	६८	कान्तिभासि मुप्यं दृष्ट्वा	३२७

कान्ते रामपुरी किं नो	१४१	किं वा दुर्गं समाश्रितम्	१६	किञ्चिद्वेद्यस्ततो भ्राम्यन्	२६६
कामदाहृद्दीप्तारामा	२३७	किं वा दुष्टं द्विजा केचि	२३५	किञ्चिद्वेद्यस्ततोऽनोचन्	३७६
कामार्गिनः कामराशिश्च	३६४	किं वा मन्दिरहादुष्टम्	३२८	कीदृश्याम मया नाथ	३८
कामार्गिणा पर दाह	७७	किं वृथा गर्जति क्षुद्र	२४५	कीदृशो वा सनी सीता	३२२
कामार्थाः मुद्धमा सर्वे	३६६	किं स्वामुखायाऽप्य	३१७	कीर्तन्ती गुणान् भूय	२३८
काय म्नेच्छो महाशयु	१३१	किङ्कपागामन पत्न्यो	३६१	कीर्तिस्व निजा पालना	३३०
कारण यदतिक्रान्त	५६	किङ्किणीशालयुनानि	१६५	कुञ्जिनातोऽपि पुत्रम्	१२
कारणायूर्ध्विका स्वार्गी	११०	किञ्चिन् किल त्रयभाज	२२६	कुङ्कुमप्रविशिताङ्गा	७२
कार्मुक स्त्रिय मुञ्चाश्च	११६	किञ्चिन् पञ्चविधागेन	६१	कुङ्कुममेदने दत्तैः	११३
काल कर्मेश्वरो दिन	८२	किञ्चिन् सम्प्रान्तधीर्भति	३३६	कुत किं राजपुत्रोति	२१२
काल देशे च विज्ञाय	१७६	किञ्चिदाहुयने दत्त	२६४	कुत भद्रानिनुत्तस्य	६८
काले तत्रैव नेघ्नन्ते	१२३	किन्तु त्वद्विरहोदार	३४५	कुत ममागत कल्प	१७३
कालेनाथ मुत देवी	१०	किन्तु रामी निशायेऽस्मि	४०८	कुत समागतवितौ	१७०
काले मर्त्यविरान्ते	२०५	किन्त्वय धर्तरेऽत्रैव	१६१	कुतोऽप्यपुण्यत्र क्षिप्रं	१६०
कालो नाम यमो वायु	११६	किमद्गदो गणो मेघ	२७२	कुतोऽत्रमीदृशो वासु	४०२
कालो नैव निपादस्य	२४६	किमञ्जनासुत गत्वा	२६६	कुन्तामितोमरुद्धय	२६१
कारिचक्षुःकण्ठया युना	१०२	किमत्र बहुनात्तेन प्र	३१८	कुन्दावितुस्तकण्ठा	१६५
कायायमावृता चाह	१६२	किमत्र बहुनोत्तेन समु०	३३१	कुमनेस्तन धीरेया	१२१
काष्ठान्दानयनामत्ता	७२	किमत्रैव करोम्यन्या	८१	कुमारा परमात्माहा	३६
किं करिष्यति व. शयु	३६६	किमधीतैरिहानर्था	१८८	कुमाराम्या सम गन्तु	८२
किं करोमि क्व गच्छामि	४०३	किमनेन विचारेण	८१	कुमारे च हृता माता	१६३
किं करोमि क्व गच्छामि		किमय वनदेवीभि	१५०	कुमरकण्ठेन्द्रजिन्मुख्यै	३५३
विश्वर	१४३	किमय शनजिनाय	३७८	कुम्भीयाकाप्यमाख्यात	७
किं कार्यं पशुमजैमै	१७	किमिति स्वविनाशाय	१६३	कुम्भादारुणारावा	७
किं किं भो ब्राह्मण इति	१३६	किमितमिह मनो मे किं	२३१	कुम्भन्तीर लनालीला	२६३
किं किमेतद्दो नाम	२३४	किमित्य जानकी नैया	२८१	कुम्भन्ती सा महाकठ	२८७
किं तद्धर्मार्थकामेयु	१६२	किमेतदिति प्रष्टश्च	२६६	कुम्भन्तु सर्वथा देवा	४००
किं तिष्ठन् मुप्रिःकाः	३३६	किमेव रमने सुदं	११६	कुर्वेन मुत्तक मद्र	१६५
किं त्वमिच्छामि वैदेही	२६७	किमेवा नगरी नाका-	१३७	कुल गोन च सथाय	३२७
किं न प्रतिमये शीघ्र	२८६	किमेवा नर्दति क्षोणी	२४६	कुम्भर्षतकुक्षेयु	२८५
किं न स्पष्ट न किं दृष्ट	६२	किपन्त कथयिष्यन्ते	३६५	कुम्भर्षतसमुत्तरा	२५२
किं नाथादुन्ता घसे	२५४	किपत्यपि सनाऽनीते	५०	कुम्भगत निमज्जन्त	८४
किं नु दु मेचरे. सख्ये	३०८	किञ्चिन् च पुर गत्या	३१६	कुम्भक विनाप्येक	४२
किं नो गृहेण किं भोगे	८६	किञ्चिन्स्वामिनोऽन्येऽपि	३४७	कुम्भियोदरनामा च	४६३
किं पुनश्नम्य माहात्म्य	१५	किञ्चिन्वाधितियाति.	३४८	कुम्भाम्नगरेशोऽप्य	१३६
किं मोनोऽपि न हृमि त्वा	३६०	किञ्चिन्वाधितियेः सैन्ये	३७८	कुम्भमन्थ परित्यज्य	३४
किं वा कृतार्थना प्राप्त	२८२	किञ्चिन्वाधितिपुरारक्ष	३५३	कुम्भमर्षण याजात्	१६१
किं वाऽप्यन्तज्जुगत्तेन	२४२	किञ्चिन्वेद्रेन्द्रजिद्वीरौ	२५०	कुम्भान्छादितवत्क्षो	१०५
किं वात्र कृत्य बहुभाषिने	२२	किञ्चिन्वेष्टाः समालयादर्थं	३६०	कुम्भप्रमदतिञ्ज	३०३

कृत्सेषु सरितामद्रेः	१३५	केचिज्जगराकुलाः पेतुः	४०	क्रमेण मानिनस्ते च	४०
कृच्छ्राश्रयिण्यथ शोक च	१२६	केचित् रेवलयमासाद्य	६०	क्रमेणातीत्य शिविरं	११६
कृत कृतमहो साधु	३०१	केचित्पन्नगवातेन	४०	क्रमेलकमहारावा	३६८
कृत तैरात्-न श्रेयो	१०८	केचिदध्वजखेदेन	८७	क्रम्यादा विरस रेसुः	१८२
कृत परेणाप्युपकारयोग	३०७	केचिदस्त्रविनिर्मुक्ता	३६१	क्रीडास्वपि त्रया देव	८६
कृत सौमित्रिणा गून	१७५	केचिदूर्चुर्यदि स्थान	४०	क्रुद्धः सिहोदरो यत्ते	११०
कृतपूर्वोपकारस्य	३६७	केचिद्भिन्नाञ्जनच्छायाः	१६	क्रुद्धा इव पर तीव्राः	४०१
कृतप्रचिन्तनमेव	३२५	केतकीवृत्तिरजसा	२२३	क्रुद्धाचक्रधरादाशा	४०२
कृतसमस्तजनप्रतिमानानाः	४४	केतुकल्पनदृष्टेन	३७६	क्रुद्धेन कुम्भकर्णेन	३७८
कृतसान्त्वनमधुघ्नै	६१	केतुतोरखमालाभि	४३	क्रुद्धो जगर्ज सुग्रीवः	२७३
कृतस्मितोऽसावगदस्त्रमीपे	४१३	केयूररत्नजग्लि	२५५	क्रूरकर्मभिरन्यैश्च	२०४
कृतस्वार्थोपकारस्य	३२६	केवलज्ञानसम्भृति	१८३	क्रूरश्वापदयुक्तेषु	१६६
कृतान्तमेव निरुद्ध	३७	केवलो द्रोणमेघाह्वः	४०१	क्रोधसस्यष्टचित्तेन	३३६
कृतान्तापकृत कि ते	२२८	केवल्यास्यात् समुद्भूता	१८८	क्रोश क्रोश शनैस्त्व	१६६
कृतापणमहाशोभ	३०२	केशभार मयूरीषु	२८२	कथ गतास्ता नु नर्तक्य	१६८
कृता मया प्रतिश्रेय	११३	केसरैश्चन्दनैनापै-	२११	कथचित्तालादिभिर्दुर्वै-	१२६
कृतार्थवत्तातदशाननोऽसौ	४१३	कैकसीनन्दनोऽवोचद्	३२४	कथचिदिदमतिथनवरनग	२१५
कृतार्थभाषणव्यास्य	२४४	कैकसेयी सुतस्नेहाद्	२२६	कथचिदुक्तमदगजातित-	२१५
कृतावग्रहमेव तमुवाच	६६	कैलासपर्यते पूर्व	४१०	कथचिदिनं कथचिरत्न	२११
कृती चपलनेगश्च	३०	कैव वार्ता प्रथिंया नु	२८	कथचिद्भ्रमरसञ्जातै-	१७८
कृतौ सुग्रीववैदेही	३८१	को दोषः कर्मसामर्थ्या	१६४	कथचिद् वह्निशिखाकार-	२१०
कृत्य किंचिद्विशदमनसा	२६८	को दोष इति सञ्चिन्त्य	१२५	कथचिद्विद्रुमसकाश	१७८
कृत्वा करपट मूर्धनि	२५३	कोऽन्ध-कृप समापन्नो	२३२	कथचिद् विभ्रान्तसत्त्वक	२१५
कृत्वा चैत्ये नमस्कार	६	कोपकम्परलध चास्य	३४७	कथचिन्नाश्रय कथचिद् गीत	१६६
कृत्वा त विरथ भूयो	३७५	कोऽपराधो यदास्माक	८६	कथचिन्नाशोपरीभाति	१६६
कृत्वा निदानमेतस्याः	४०५	कोपस्मितसमायुक्ता	३४०	कथचिन्नील कथचित् पीत	१०३
कृत्वापराधक पूर्व	८६	कापेन तप्यमानस्य	२०४	कथ तत् क तत् प्रिये साधि	२००
कृत्वा पुरस्सरान् पद्म	६४	कोऽप्युद्दामतयोद्यान	३३६	कथ महासम्पदो देवैः	३४
कृत्वा पुराणवन्दुनि	१६२	कोऽप्येव पुरुषो नाथ	११८	कथ मे पापाधुना याति	२४
कृत्वा पूजां जिनेन्द्राणा	१६१	कोलाहलेन रम्येण	२१२	कथ यातमधुना तत्ते	३३१
कृत्वा धालतपः कष्ट	१८८	को वा नृपतेर्दोष-	४६	कथ वयं क्षुद्रसामर्थ्याः	२८८
कृत्वा मे मस्तने पाद	४०६	को वा प्राप्रज्यक्कालोऽस्या	३	कथ सौमित्रिः कथ सौमित्रि-	३१६
कृत्वा मुनिभूत भृत्य	१३२	कोऽसौ नाथेति तेनोक्ते	२०७	कथासौ महामुनिः कथासा	१६७
कृत्वास्य महती पूजा	१६८	कीतुक्त्वात्किञ्चार्ण-	१६७	कथेदानीं गम्यते साधु	२४४
कृत्वेदमीदृशं सैन्यं	११६	कमाच यीजन विभ्रद्	१११	क्षण चिन्तागतः शिथला	१६४
कृत्वाण यानदादत्ते	२०	कमादरिञ्जये जाता	३७२	क्षण क्षणाः क्षण दण्डाः	३६२
कृशोदरि गवाक्षेण	२५२	क्रमेण गच्छन्श्चास्य	१७५	क्षण शिथला च कृतान्तै	३२
कृष्णसर्पां मृतस्तस्य	२०३	क्रमेण तात्रमस्थन्त-	६०	क्षण शिथलाऽद्विरम्याणि	१६६
केकयानन्दन- धीमान्	१५८	क्रमेण प्रणमन् साधू	१८६	क्षणविरचितसंज्ञाप्यकर्त्तव्य	४१४

क्षणादग्निमित्रालोचय	२०२	[ ग ]	गिरिः सतमिदृशामै	२६२	
क्षणात्रियर्तते यानत्	२३६	गच्छु क्षिप्र निज धाम	१३१	गीतत्रल्लिप्यमुक्तानि	२७२
क्षणेन प्राप्य संज्ञा च	३०	गच्छन्ता तं महाभाग्य	३०१	गीतनर्तनगादित्रै	६८
क्षन्तस्य दुरित किञ्चि-	१६८	गच्छतस्तस्य वातेन	२८२	गीतनृत्यादिसम्प्राप्ता	७२
क्षन्तस्य देव यत्किञ्चि-	१४७	गजदन्ताग्रभिन्नस्य	३६२	गीतानुगममभ्यञ्ज	१८२
क्षपितारिः समाहृतः	३७५	गजध्वजसमालक्ष्यौ	३६६	गीर्वाणकुफदेशाभ	३२५
क्षान्तयार्या वृन्दमभ्यस्था	३	गजनाजिविमानस्था	३२२	गुडेन सर्पिणा दध्ना	१६६
क्षितिगोचरदूतोऽथ	३४२	गजवीभक्तनानापीनी	३६४	गुणश्रुत्यनुरागेण	२७६
क्षिप्रं समर्थता सीता	३५१	गजाह्वान्नगरादेत्य	४०६	गुणाश्रितैर्भवंति जनैरलङ्	३१६
क्षीणमत्यमिरामाङ्ग	३४४	गजोऽयमस्य शैलाभ-	३६	गुणोच्चारणसत्रोद्यः	११५
क्षुत्तृष्यापरिदग्धाङ्गा	४०४	गत्याविपसमेतोऽनौ	२०४	गुप्ता बहुविधैः सैन्धै	१५
क्षुत्तृष्यापरिदग्धाङ्गो	४०६	गतश्च लक्ष्मणः पद्म	३२६	गुरुः प्राधाच वचन	६
क्षुदतिमुद्धशादूर्ल-	१०२	गताऽऽगता च सा तस्मै	२६३	गुरुणा च यथादिष्ट	२०८
क्षुद्रशक्ति समासत्ता	२६६	गताया व्यसन घोर-	३२६	गुरुपूजा परा कृत्वा	६१
क्षुद्रस्याय शिखी जातु	२६१	गते साधौ तपोयोग्य	१०६	गुरुभिवार्यमाणोऽपि	२२६
क्षुभः स्वासनकम्पेन	१६०	गत्वा कृत्वाङ्गलिर्दत्तः	१२५	गुरुरुचे न यो मास	८
क्षुब्धकूपारनिर्घोषा	२११	गत्वा कथितमक्षेमः	३८३	गुरुशक्त्यातुरोपेन	२३४
क्षुब्धकूपारनिस्त्रानं	४१	गत्वा पवनपुत्रेण	३४६	गुरुपदेशयुक्तोऽभी	१३८
क्षुब्धोर्मिणि जले सिन्धोः	३७२	गत्वा पवनवेगेन	६४	गुरून् परिजन वृद्धान्	३४१
क्षेत्रस्यसमुद्रभूताः	२२५	गत्वा प्रजोषयिष्यामि	३०५	गुरोस्तस्य प्रसादेन	१०
क्षेपिष्ठं प्रमदारलं	२६	गत्वा महेंद्रकेतुश्च	३११	गृह प्लावितुमारुक्त्वा	१२७
क्षेमङ्करनरेशस्तु	१६०	गत्वा स यावदन्विष्य	४६	गृहाण तदिदं देवि	४६
क्षौणीक्षीम पर प्राप्ता	३६८	गदाप्रहरण विद्युद्भक्ता	३८३	गृहाण्य प्रहरागच्छ	३६०
क्षोमणो धुन्वुरुद्धामा	३६४	गम्भीरो दौन्दुभो घोरौ	३०२	गृहाणैतत्तत्स्तुभ्य	२६३
क्षमागोचरस्य निवर्ष	२७	गरुडाधिपतिश्चासौ	१६०	गृहाश्रमे महाव्रत	७६
[ ख ]		गरुडेन्द्रस्य तोष च	३८६	गृहिसर्मसमाप्तता	६६
खञ्जगतस्य खण्डोऽथ	२४२	गरुत्मकेतने तरिमन्	३८५	गृहीतगमनक्षेत्रे	३४७
खट्वागुलीददेहश्च	२४५	गरुत्मपद्मरातेन	३८५	गृहीतबलराष्य र्त	५
खट्वा खड्गसमुष्णोद	१०३	गर्जितैरिति धीराणां	३६१	गृहीतश्चापमेतेन	२२७
खरदूपणनामा लं	२३३	गर्मनासपरिक्लेश-	२२५	गृहीतसायकं दृष्ट्वा	२२७
खरदूपणशोकेन	२५६	गर्मस्य एव चैतरिमन्	१६३	गृहीतादरसर्वस्वो	३७८
खरेण सह सप्राम	२४५	गर्मं च तौ विदेहाया	६	गृहीत्वा च परा पूजा	३०
खर्चुरैरिष्टगुदैर्गमै-	२००	गले तदशुनेनैव	११६	गृहीत्वा च प्रमोदेन	११
खडीकारात्ततः पूर्व-	१८६	गतमरण्यजाताना	२००	गृहीत्वा समपेनास्य	१६५
खिन्नोऽसौ धरणीं दुःख	६१	गवेपयत यत्नेन	२४७	गृहीत्वासौ ततो रागा	१५५
खेचरा भूचराश्चैते	५६	गहनान् कोक्किलायान्	२६३	गृहोपकरण भूरि	११३
खपात मयमहादैस्य	३६०	गहनेषु समस्नेषु	२८५	गृह्णानु रुचितस्तुभ्य	१२०
खपाते शशिपुरे स्थाने	६६	गाढप्रहारदुःखार्तः	३६३	गृह्यता गृह्यना कोऽयं	२३
खपातो घनगतिरतीवो	३४६	गायनोर्ध्वराष्येन	१८१	गोपण्यारवसम्पूर्ण	१०४

गोत्रक्रममायात-	४६	चक्षुस्तत्र द्रुत केचि	४०	चलिताश्चञ्चलश्रीवाः	२६१
गोपुर च समासीद	११४	चण्डपिक्रमसम्पन्ना	२०३	चान्दनेन द्रवेणैता	२६६
गामायुमावृत्तान् काश्चिन्	२६६	चण्डसौतामिनीदण्ड-	३७६	चापं यावद्द्वितीयां स	३०६
गोशार्पचन्दनेनैव	४१२	चण्डातक तमुद्भिद्य	१२७	चारणप्रियमुयानं	२६२
गण्डप्रमदित वनैद्	३५६	चण्डोर्मिमालयाऽयन्त	२४१	चारुपुरनिधवाना	१७
ग्रस्ताराक्षमसैन्धवौ	३८६	चतस्रो यस्य सम्पन्नाः	३५	चारुशरप्रभूताना	२५८
ग्रस्यमान निज सैन्य	३७६	चन्द्रनादिभिरालिते	३३३	चारुश्रीरिति विदुशता	२७६
ग्रहण वा भवद्भिः कि	३५	चन्द्रनार्चितसर्वाङ्गः	३२७	चित्तोत्सवकरी पद्म	२५०
ग्रहनक्षत्ररश्मि-	१३५	चन्दनेन विलितस्य	६५	चित्तोत्सवा समायुक्त	५
ग्रामयेतमरभ्येपु	८७	चन्दनेन स दिग्धाङ्गौ	२१०	चित्रं श्रेणिक ते वागाः	३६२
ग्रामाश्रायतशशमिः	१०५	चन्द्रनैररङ्गैश्च	२१२	चित्र सुश्रीरराजो मा	२७०
ग्रामे तत्रैव जातोऽस्मि	१४५	चन्द्रकान्तेद्रनीलान्तः	१८०	चित्रकूटः सुदुर्लभ्यः	१०२
ग्राणा निश्चूर्ण्य तद्रक्त	३५५	चन्द्रविम्बमियाचूर्ण्य	११५	चित्रपादपसङ्घातै	२१२
ग्राहमहस्य चारविपना	२१७	चन्द्रम कान्तरदना	२३६	चित्रमासीत्प्रश्वाना	३०१
ग्रीमहामरक धार	१३५	चन्द्राशुरप्रतीघातो	३६७	चित्रमिद परमज नूलोके	३२३
[ घ ]		चन्द्रादित्यसमे छने	३८३	चित्रयत्पादरी सीमा	२६५
घटस्तनरिमुक्तेन	३३६	चन्द्राभा नाम चन्द्रास्या	२७६	चिन्तयत्येवमेतस्मिन्	३२०
घृतिता सा ततस्नेन	११०	चन्द्रोदरमुत. सोऽथ	२४७	चिन्तयत्येवमेगरिम्न	७१
घनकालस्तनः प्रातो	१३५	चन्द्रोदरमुत प्राप्य	३५६	चिन्तयत्येवमेगरिम्न	७१
घनच्छायावृत्तध्रुव	२६१	चरपकै कर्णिकारैश्च	२११	चिन्तयत्येवमेगरिम्न	७१
घनराहनरीतोऽपि	३०८	चरमागधरं दृष्ट्वा	१६३	चिन्तयत्येवमेगरिम्न	७१
घनानामिप सङ्घास्ते	११८	चरित निरगायणा	५६	चिन्तयत्येवमेगरिम्न	७१
घृणावान् सप्रथापेद	१०	चविमिर्वातसोभिश्व	२१२	चिन्तयत्येवमेगरिम्न	७१
घृतक्षीरमिद जात	११५	चतु.पट्टिसहस्राणि	१६०	चिन्तयत्येवमेगरिम्न	७१
घृतयुषादिभिः काश्चित्	३३३	चतुर्लङ्कलेपेती	१८	चिन्तयत्येवमेगरिम्न	७१
[ च ]		चतुरङ्गस्य देशस्य	१२२	चिन्तयत्येवमेगरिम्न	७१
चकार ध्यातुलीभूता	२३२	चतुराननयोगेन	३८६	चिन्तयत्येवमेगरिम्न	७१
चरायोरने चन्द्र-	२४	चतुर्दशसहस्राणि	२२५	चिन्तयत्येवमेगरिम्न	७१
चननकचतुन्तामि-	३६६	चतुर्दिग्ग्यः समायातैः	३४८	चिन्तयत्येवमेगरिम्न	७१
चननकचराशामि-	३८८	चतुर्विधमशुसैन्य-	२५०	चिन्तयत्येवमेगरिम्न	७१
चननकचसर्त-	३२०	चतुर्विधास्ततो देवा	३८३	चिन्तयत्येवमेगरिम्न	७१
चनतुः परम युद्ध	३१०	चतुर्विधेन महता	२४७	चिन्तयत्येवमेगरिम्न	७१
चनराकृतच्छाया	५५	चतुर्विधिराति युक्ता	१४७	चिन्तयत्येवमेगरिम्न	७१
चनराति गदापट्टि	३६१	चरितजननकालाऽयन्त	३६०	चिन्तयत्येवमेगरिम्न	७१
चनमहाहनिपेय	१७६	चरना पलत्रेनेय	२१३	चिन्तयत्येवमेगरिम्न	७१
चनेण महता युक्ता	१५८	चरुवृष्टिद्विद्योत-	३२७	चिन्तयत्येवमेगरिम्न	७१
चनेणानिलयुद्ध	३१६	चरुनेतुमहावण्ड	२५३	चिन्तयत्येवमेगरिम्न	७१
चने यं शुभमिष्टाय	३७७	चरुनेतुमहावण्ड	२५६	चिन्तयत्येवमेगरिम्न	७१
चतुःपत्न्या निपुःसामा-	३१७	चरुर्वातेतावच्छाये	१६१	चिन्तयत्येवमेगरिम्न	७१



चैत्यालय प्रभाते तं	१२३	जनमुत्तारययेप	१४१	जानथाऽपि तथा मृत्यु	१०५
चैत्यालयैले तुङ्गै-	३४६	जनस्याश्राप्तिकस्यापि	१८२	जानन् सकलमर्षादा	२६०
न्युतोऽन. पुम्भ्रजवरथा	६६	जनस्योत्तार्यमाणस्य	८३	जानन्नपि कथ सर्वं	२६१
न्युती ती सुन्दरी नासा	१८८	जनाना निम्नयकरं	१४५	जानामि नाथ ते माय	३३५
[ छ ]		जनोऽनिदितपूर्वां यो	२३०	जानात्येव त्रियाग ते	३६६
छत्रनामलेम्बुप	६७	जन्तुरेक पक्षाय	७४	जानु क्षितिन्ले न्नस्य	२८४
छायथा तुङ्गशृङ्गाणा	१७८	जन्तूना दुःखभूयिष्ठ-	२५६	जानुम्यस्तमुदुःखस्त	१७५
छेकहसारिबरं वस्ता	१२७	जन्मन. प्रभृति क्रूः	१०६	जामाता लक्ष्मणाऽप्य ते	१५१
[ ज ]		जन्ममृत्युजरात्युग्र	२७२	जामात्रेऽपि मुसम्पद्य	११५
जगतो गुहभूतस्व	३११	जन्ममृत्युजराव्याधै	८४	जाम्भूनदमयान् कुम्भान्	१७
जगद्गुरुरैरमन्वाऽप्य	२५	जन्मान्तर प्राप्त इनाथ	४१२	जाम्भूनदमयो यावन्	३५२
जगाद च किमथापि	१७३	जन्मान्तःकृतस्थास्य	१६५	जाम्भूनदमुनायारच	३७७
जगाद च कुदूतस्य	१५८	जन्मान्तराजितनाथ	३७५	जाम्भूनदस्ततोऽवाचत्	२६०
जगाद च न देव त्सा	१२०	जम्बूद्वीपमहीश्रस्य	२८६	जाम्भूनदादय सर्वे	२६४
जगाद जाननीनाथ	१५६	जम्बूद्वीपस्य जगतो	२२४	जाम्भूनदो महाबुद्धि.	२६४
जगाद मद्र नो वेधि	२४६	जम्बूगाली शिखानीगो	३६४	जायते शान्तानेन	६७
जगाद प्रगतो वातिः	३४५	जय चर्षस्य नन्देति	२५३	जायते प्राप्तकम्पाना	५३
जगाद मुनिमुखवस्त	१८६	जयशब्दसमुद्रबोध्य	२६५	जाया न्यग्रोधजा भित्वा	१०४
जगाद रावणः किं नु	२३५	जराधोनस्य मे नाथ	४८	जायावैरप्रदीतोऽय-	२३७
जगाद वज्रकर्णश्च	११४	जरागामविहीनाश्च	२२५	जिप्रासन्त तमालोक्य	१८७
जगाद वाऽतिद्वष्टस्ता	१३६	जल प्रार्थयमानाना	७	जितपद्मा ततो मीता	१७६
जगाद विहसन् भूमृद-	१०७	जलजुदुदनिस्सार	५०	जितपद्मा ततः प्राप	१७४
जगाद व्याकुलः किञ्चि	२५६	जननाश्वरथारुढा	३१६	जितहसगति कान्त	२१०
जगाद श्रेणिं नो नाथ	१	जातमात्रा मृता नाह	४०३	जित्वा तमपि रङ्गग्रामे	३४६
जगादाथ यथावृत्त	२६६	जातमुर्वातल सम्यक्	५३	जिनमार्गप्रवीणसी	३००
जगादानी मनसु भो	७३	जातरूपधरो कान्ति-	१८०	जिनशासनवर्गो	११३
जगादेति च तर्कः	३	जातश्चाग्निमुखः शक्तेः	१७१	जिनानर्चति यो भक्त्या	६६
जगादेन्द्रजितः क्रुद्धः	३७६	जातस्य नियतो मृत्यु-	६२	जिनेन्द्रविहिते मार्गे	३२८
जगाम च तमुद्देश	२४१	जाता चक्रवरेणाऽह	४०४	जिनेन्द्रशासनासत्ता	४०२
जगौ च वाणभूषांश्या	२६०	जाता मनरिजनीदिव्याः	६३	जिनेन्द्रसमता याताः	२६५
जगान जानुना वाक्षित्	११७	जाताया सुप्रसजाया	१४७	जीमूतमलनिमुक्तं	२२३
जह्नानेगासमुग्रद्वी	३३८	जाता मिश्रद्वयशेषु	१६३	जीव जीवन्मोक्षद्व-	२१२
जननः जनकं हृष्टा	१८	जाता सा निपथे कस्मिन्	२३१	जीवन् पश्यति मद्राशि	२४६
जनक. कुत्रिमाश्रयेन	६०	जातुचिद्विचरन् ऋग्नि	४०७	जीवत्येवानरण्यस्य	१६३
जनस्सु सनेदाङ्गः	३६	जातेन ननु पुत्रेण	७६	जीवराशिजन्तोऽप्य	६८
जननेन च मातेता	१५	जातेऽस्य वाग्मर्तिनि रौद्र	१३२	जीवलोकमिम वेधि	२४२
जननेन ममासंख्यै-	१११	जातो वायुमुनारोऽसा-	४०६	जीवित वनितामिष्ट	७७
जनने चालस्याया	५५	जातो हेमप्रभो पत्नी	१०२	जीवितलेहमुत्सृज्य	२०४
जननेऽनोचदत्यन्त-	३४	जानन्वा सह सन्गन्ध	१६६	जीवितस्य स्वमेवैकः	८०

नीविताशा परित्यज्य	३६७	तं लङ्कासुन्दरी भूयो	३२०	ततः क्षणमसौ सङ्घ-	२०४
नीविताशा समाग्न्य	२८७	त विपर्ययमदामोद	११०	ततः क्षणात् परित्यज्य	२२६
नीर्णमस्त्रावशेषाङ्का	६२	त दृष्ट्वा सुन्दराकार	१७३	ततः क्षुब्धापगानाथ	१७५
नीर्मन्तानाकृतोरस्को	२६५	तक धूसरसर्वाङ्ग-	२८६	ततः खेचरपृष्ठेऽसौ	४०२
जैन व्याकरण श्रुत्या	१८७	तच्छ्रुत्वा भूपतिवत्स्यै	१६१	ततः पञ्चमुखोऽवोच-	२६६
शतनिश्शेषवर्तव्या	१५०	तच्छ्रुत्वा रावणोऽवोचत्	२६१	ततः पद्मः समुच्चर्यो	४०
शतनिश्शेषवृत्तात्तै-	१५१	तच्छ्रुत्वा वचन सद्यः	३२४	ततः पद्मप्रमोऽवोच-	१७७
शतमेव हि देवस्य	३००	तच्छ्रुत्वा विगतक्रोधो	३०१	ततः पद्मो जगादेद	८६
शतश्चानुमति प्राप्य	२७१	तच्छ्रुत्वा विविध विभ्र-	२८७	ततः पद्मो जगादैता	२२६
शास्त्रा तदीदृश कर्म	२०४	तच्छ्रुत्वा समुपाख्यात	२९४	ततः पद्मो जगादैर् कि न	६५
शास्त्रापहृतमात्मान	२३८	तच्छ्रुत्वा सुतरा पद्मी	२०८	ततः पद्मो जगादैव ता न-	१४३
शानत्रितयसम्पन्नो	२००	तच्छेन कथितं रम्य	१६८	ततः पद्मो जगादैव विभ्र-	७६
शानभयानहरेः कान्तै	३२०	ततः कपिवन्नावेव	२७४	ततः पद्मो निवार्येता	१६०
शानविजानरहित-	२	ततः कपिभ्वजैर्घोषा	३१६	ततः पद्मोऽपि तत्पाणौ	७८
शापिताः सेवितद्वारा	४०८	ततः कर्मणि निर्हुंते	१२६	ततः परं परिप्रासा-	३३०
शापते देवि नाद्यापि	४००	ततः कर्मानुभोवन	१६३	ततः परममित्युक्त्वा धनुषी	३६
ज्योतिर्वरे गते तस्मिन्	१८३	ततः करतलासङ्घ-	१५	ततः परमात्म्युक्त्वा धार्ता	४२
ज्योतिरस्त्रेव काव्येषा	१४८	ततः करिणमावह्य	१६४	ततः पराङ्मुखीभूता	१६
ज्योतिरस्त्राट्टाट्टासाया	६२	ततः कलाकलाप्रज्ञा	७४	ततः परिकरं शब्धा	२६५
ज्योतिरस्त्रा सदितधन्द्रो	१५१	ततः कल्याणमालया	१२६	ततः पर्यथ्य विपिने	२४२
ज्योतिरस्त्रममकर-	३७४	ततः क्रान्तकरस्पर्श-	११	ततः पलायनोद्युक्तान्	३८६
ज्योतिरस्त्रावकुटिले	७	ततः कपिध्वज सैन्य	३८८	ततः पक्षवकान्ताभ्या	१५०
ज्योतिरस्त्रावद्वयमान्धु	३०२	ततः कार्मुकिकाञ्च दृष्ट्वा	३३६	ततः पुण्योदयात्पद्मः	३८२
ज्योतिरस्त्रावद्विभ्रभीमाक्षै	२५६	ततः कालानलाकारो	२०४	ततः प्रकुपितोऽवोचद्	४७
[ भ ]		ततः कालो गतः वनापि	५४	ततः प्रणम्य भूयोऽसौ	२०४
भर्भसाहेतुक गुह्याश्च	३६८	ततः किञ्चिन्मनुम्बाद	२५७	ततः प्रत्युपकारं कं	३३
[ ड ]		ततः किलापरैः मुरैः	३३७	ततः प्रदुर्भागजलोचनेन	४१३
डुटीकिरे च भस्त्राव्या	१८०	ततः कुमारकोपस्त	३८६	ततः प्रदुर्बुद्धिचिेन	१५२
[ ढ ]		ततः कुद्विगुहा तस्याः	३१८	ततः प्रभृति चारपाक-	३१५
दोक्षितश्च स मायाश्चः	२८	ततः वृत्तमहाशोभ	३६	ततः प्रभृति सत्तोऽसौ	२०३
दोक्षित्वा यन्नकर्णताः	२७४	ततः कृत्वा जिनोन्द्राणा	३६	ततः प्रमदसम्भार-	२००
[ त ]		ततः कृत्वा जिनोन्द्राणा पूजा	१६७	ततः प्रददती माता	७६
त कपिपञ्जमालोभ्य	१२२	ततः कृत्वा रणकीडा	२७८	ततः प्रनमितु याच्छ्र	२०८
त कौन्त जनो दृष्ट्वा	२८६	ततः कैरपि ते दृष्टाः	१५१	ततः शत्रुदमोऽप्येन	१७४
त च विराय श्रुत्वा	१४८	ततः मोक्षपरीताङ्गः	१५७	ततः शनैश्च्युमितो वरदा	४१२
त च सिद्धय धृत्या	२३७	ततः मोक्षपरीताङ्गो	२४६	ततः शरद्वुर्मित्या	२२३
त दष्टं धनुःपायि	७०	ततः मोक्षपरीनेन	२४५	ततः शाल्येदमः युता-	१२५
त दृष्ट्वा मादतिदंष्ट्या-	३१८	ततः क्रिष्टेन सन्तापो	३७४	ततः शुद्धममोः सन्	२८
त भस्मं वृत्तमानेभ्य	३६३	ततः क्षय विस्मयैतौ	१२६	ततः शोचति दिःश्रातान्	२४

ततः शोणितधारामि-	२३३	ततः सौरमसद्वद	४०१	ततस्तयैवमित्युक्ते	२५५
ततः श्रुत्वा कुमारं त-	२५	ततः स्थित्वा वृष क्रिञ्चिद्	३२४	ततस्ता गुणुलवण्य	८४
ततः श्रेणिक वैदेही	३२६	ततः स्थित्वा पुरस्तस्य	३६	ततस्तान् रावयोऽनेच	८८
ततः सहा समासाथ	२२८	ततः स्पन्दनमारोप्य	१७५	ततस्तानसता प्राप्य	१६३
ततः सचारयन् सैन्य	२०	ततः स्वपुरुषातक-	२३८	ततस्त्रिपञ्च सुभिर	३०२
ततः संवेगमापद्य	४	ततः रमन्पथाभूत-	२०२	ततस्तुष्टः प्रयातोऽसौ	११४
ततः सख्या विद्रुजासौ	२८४	ततः स्वयंवरोदन्त	५६	ततस्तुष्टोऽवदत्तद्मः	११५
ततः सङ्गीनमाकर्ष्य	४०८	ततः स्वैर भवाद् प्रदो	२४	ततस्ते कथयाश्नु-	५५
ततः सदनयातामै	४५	ततश्चन्द्रगतिः श्रुत्वा	२७	ततस्ते कस्युग्माञ्ज	१८१
ततः स विज्ञानारुणोऽपि	२	ततश्चन्द्रायणोऽनोचदीप	३२	ततस्तेऽल्प-तवित्रस्ता	१३०
ततः सतिद्विपारुद-	१५३	ततश्चन्द्रापयोऽवोचद्वीमान्	३२	ततस्तेन सुभ्रुवेन	५
ततः सध्रावृक् पथं	२७८	ततश्चपलत्रेगाण्य	२७	ततस्तेन सगुद्विष्ट	१२८
ततः समन्तादनुपाल्य	३१२	ततश्च माधवीतुङ्ग	२६	ततस्ते निम्नगा दृष्ट्वा	८८
ततः समाकुलस्वान्तः	३६६	ततश्च श्रुतवृत्तान्तो	३१६	ततस्ते पुनरित्युक्तु	८६
ततः समुत्सुकः पथः	२८८	ततश्च विनयी गत्वा	१२१	ततस्ते बहुनल्पेन	३७०
ततः समुद्रवातेन	२४६	ततश्चामीकरानेक	२११	ततस्ते भूमदीप्राप्त	१०२
ततः सम्भाषण प्राप्य	२२६	ततश्चालीकमुग्रीरः	२७६	ततस्तेऽवहिताः श्रुत्वा	३८८
ततः सरमस्तत्र	११८	ततश्चित्तमात्रेण	४०८	ततस्ते मुदासम्पन्न	१२६
ततः सर्वममृदीना	४५	ततश्चिर वन भ्रान्त्वा	३२६	ततस्तेः पश्यैवाक्यैः	२४५
ततः सर्वहितोऽवोचन्	६२	ततस्त वादश शल्वा	२५७	ततस्तेर्विधिषाक्रोशैः	३४२
ततः सर्वोन्वमुशली	१८	ततस्त बालक वान्त	११५	ततस्ते तदिगरो भाःत्वा	१६०
ततः समग्रमग्रान्तः	२८२	ततस्त शोकमारोण	५६	ततस्ते परया श्रुत्वा	१८६
ततः समार पद्माभः	२७७	ततस्तं विद्रुदुचोत्	२८३	ततस्ते सम्भ्रमी ज्ञात्वा	१८३
ततः स हृष्टरोमाद्रो	१८	ततस्तदनुमानेन	१३६	ततस्त्वयेति प्रष्टेन	३३५
ततः सागरागर्भीरः	१५८	ततस्तदहमाकष्य	४०२	ततस्त्वासपरीताङ्गो	३००
ततः साप्यससम्पूर्णा	२३०	ततस्तद्विद्धितं ज्ञात्वा	१४६	ततो गणधरोऽवोचच्छृणु	२८३
ततः साहसगत्यादगः	३००	ततस्तद्वचन श्रुत्वा खेचरा	३४७	तो गणधरोऽवोचच्छृणुत	३७१
ततः सिद्धोदरं पद्मो	१२०	ततस्तद्वचन श्रुत्वा शोक-	३३३	ततो गणधरोऽनोचञ्चात्	२२४
ततः सिद्धोदरो मूर्ध्ना	१२०	ततस्तद्वचन श्रुत्वा निरमय	२७५	ततो गत्वा मया साधो	१४०
ततः सिद्धोदरोऽप्रादी-	११६	ततस्तद्वचनाद् गत्वा	११३	ततो ग्रहयद्द्वीतस्य	२५
ततः सिद्धान्तमग्रदा	५३	ततस्तद्वरीश्वमुर्ध्वा	३७६	ततो गुरुवचः प्राप्य	२०६
ततः सिद्धान्तं प्रमोदाब्ज्या	२६६	ततस्तत्रिनद् श्रुत्वा	३१८	ततोऽगुलीवक तरया	३२५
ततः सोलाऽत्ररीत्यप्र-	१३४	ततस्तन्मण्डलप्रान्त	३४०	ततोऽचिन्तयैरेताम्या	२२६
ततः सुग्रीरगुरुयोऽपि	२७३	ततस्तन्मन्त्रिणोऽनोचन्	७३	ततो जनोपमोग्याना	१०१
ततः सुग्रीरराजेन	३४४	ततस्तन्मञ्जलि कृत्या	२३५	ततो जन्मोऽसपस्तस्य	१२
ततः सुमन्ने काले रजन्वा	१२८	ततस्तनुचदादित्य	३३७	ततो जपत्रयस्थान	२४७
ततः सुमन्ने काले त्रिदितौ	१७०	ततस्तन्मैरेभियुक्त्या	२६३	ततो जिहीर्षया तस्य	१११
ततः सीमनमानारं	२१३	ततस्तस्याः समाभाष	१४८	ततोऽञ्जलिपुट बद्ध्या	३३४
ततः सीम्याननं राम	१०६	ततस्तस्या वचः श्रुत्वा	१३८	ततोऽञ्जलिपुट मूर्ध्नि	३०

तनाऽऽनिवृत्तार	४१	ततोऽनुक्रमतः काले	१४७	ततो लक्ष्मीधरे नम्रे	२२१
तनाऽऽत्यन्तमुदुम्बरी	१०४	तनाऽनेकयामकहा	११८	ततो लक्ष्मीधरोऽदुष्ट	२३०
ततः तत्र तत्रिपण्णातिमा	२३६	ततोऽनेन विपुत्राया	२८४	ततो लक्ष्मीधरोऽगधि	१०५
तना दण्डिनमाह्वय	३५६	ततोऽन्यस्यातितुङ्गस्य	१०४	ततो लक्ष्मीधरोऽगोचत् किमत्र ११६	
तना दशरथः कृत्वा	५६	ततोऽग्रमाननिर्दग्धः	१६३	ततो लक्ष्मीधरोऽगोचत् किमेव १५६	
तना दशरथ श्रुत्वा	६४	ततोऽपरमुपादाय	३६०	ततो लक्ष्मीधरोऽगोचत् अनाम २२९	
तता दशरथाऽऽप्रच्छन्	६०	तता बहुविधै शरैः	३६६	ततो लक्ष्मीधरोऽगोचत् अनाम २६२	
तना दशरथाऽऽगच्छद्	७४	ततोऽभयद् भृश दुःखी	२६६	ततो ललाभागेन	१५८
तना दशरथाऽऽगच्छत् प्रिये	७५	ततो भयाद्विशेषेण	४७	तता लीला वदन् रम्या	३२५
तता दृष्टुमिनिपाप	२७०	ततोऽभिसुखमेतस्य	३१८	तता यान समाकृष्ट	६५
तता दशरथाः १२४था	१७४	तता मग राजजेन्द्रः	२२४	ततो विजमगवैण	२८५
तता देवतमासाथ	६१	तता मगधराजजेन्द्रः	१५	ततो विदितनिश्चेष	१८१
तता धनुर्गृहप्रान्ते	३८	तता मतिस्तमुद्रेण	३५४	ततो विनयस्तस्त	२६१
ततो दर्पणमन्त	२३	तता मदनदास्ताग्नि-	२६४	तता विबोधितस्तेन	६४
तता दशाननाऽऽप्येन	२४८	ततो मदनयावाधि	१६१	ततो विभीषणो विद्वान्	३८१
तता दूरात्प्रमाथार्ष	१५२	तता मन्दादरी कथा	२५५	तता विभीषणोऽगोचत्	३८६
तता दृष्टिर्मता तस्य	५६	तता मन्दादरीसूनु	३८०	ततो विभीषणोऽगोचदिति	३५१
तना द्रागयनाह्वय	४१०	तता महाहने जाते	३३	तता विमन्ता प्राप्ते	२५६
तना द्विजगणा ऊचु	२८	ततो महादधिनाम्ना	२६८	तता विशुद्धया बुद्धया	१२७
तना नगरलाजेन	३३६	ततो महादरः स्वैर	२५५	ततो विशेषविज्ञान	८३
तता नतानन विद्विन्	२४७	तताऽमात्यगणान्तस्थ	३६२	तता विपमयापाण	१६८
तना नदागिरीन् देशा	२६	तता मुत्ताफलसूल-	३२८	ततो विपादिनः सर्वे	३६७
तना नभः समुद्रस्थ	२६६	तता मुदितसम्प्रीतो	३८२	ततो विस्मयमापन्ताः	८५५
तता नभश्चरा ऊचू	३३	ततो मृदुमहामाद-	१५०	ततो विसम्भवादाय	४१
तता नभश्चरार्थीयो	३८५	तता मृशानि पक्वानि	१६६	ततोऽगुणेन सर्वाय	१२७
तता नभश्चरः सूनु	३२६	तता मधुनिभाचैर	४००	ततोऽधुर्मुखनेत्राणा	१५१
तता नभो निपत्याया	१४२	तनाऽय सत्यमुर्मीना	२७४	ततोऽमात्र रोदेव	५६
तता नभश्चरतेना-या	५७	तता यन नभादेशे	३२२	ततोऽगो कृपयाऽऽज्जा	१३८
तता नभश्चर सत्यर्द्ध	३६६	तता यथाचितस्थान	४२	ततोऽगो कृतकर्त्तृषा	१४२
तता नष्टेऽनु चोऽनु	३७६	तता युगमितक्षार्या	२००	ततोऽगो लक्ष्मणान्मन	२६
तता नागशरविहाना	३५६	तता रत्नरथनासा	१८६	ततोऽगो प्रया युवा	१५०
तता नागशरतनेवा	२६०	तता रथरत्नरुद्री	२७६	ततोऽगो पतिन क्षर्या	२६५
तता निगपयाधेय	४१०	तता राजीवपना	१७	ततोऽगो परम क्रोध	२३०
तता निर्भर्त्सन स्वस्य	१६३	तता रामापरच्छ्राये	१५२	ततोऽगो पदयागताद्	२३८
तता निर्भर्त्स्य मकर	१३४	तता राम अभिमामाद्	५६	ततोऽगो बालचन्द्रेण	५
तता निर्भर्त्स्य मत्त	१०	ततो रैचकनाशय	१६२	ततोऽगो मन्त्रिणां सुगन्ध	२७१
ततो निर्भर्त्स्यमाशय	२३८	ततो रायरीतेन	१८४	ततोऽगो मुदितसुत्र	२८
तता निर्भर्त्स्यमाशय	४०४	ततो रणायतनामीना	१४३	ततोऽगो विधुग नाम्ना	२०८
तता निरस्य ता पापं	२६६	तता लक्ष्मण पर रत्न	३६७	ततोऽगो विनयी विन्दे	२८

तस्मात्क्षेपनिनिर्मुक्त-	२६७	तस्या ऋहलशर्वर्था	८८	ताम्बूलप्रार्थनयगात्	३८३
तस्मात्तद्दुर्गसिद्धौ	२६८	तस्या सिद्धान्नमस्कृत्य	२६५	ताम्रचूडाः खर रेणु	५२
तस्मात्तावत् प्रतीक्षेता	१२६	तस्या एव च वाक्येन	२६०	तार्यते दुःखतो यस्मा	७७
तस्मात्प्रेषितद्रुतोऽय	३५५	तस्याभिमुपता प्राप्य	२१०	तादृशपद्मिनिर्मुक्त	३८५
तस्मात्कीर्तिमभूति	२३६	तस्यामीक्षितमात्राया	२३६	तावच्च गङ्गाधीशः	१६४
तस्मादन्यपरिज्ञाण	११५	तस्यामेघमरस्याया	३२५	तावच्च तेन दुष्टेन	२३३
तस्मादवल्ग्वन्यता धैर्यं	२४६	तस्या रूपेण चक्षूषि	१६२	तावच्च नरवृन्दस्य	१७५
तस्मादानय तो क्षिप्र	६३	तस्या रोषसि विश्रम्य	८८	तावच्चन्द्रनखासूनु	२५०
तस्मादानोपता सीता	२६७	तस्यार्धपाणयो दाराः	२८३	तावच्च समतीताया	२५६
तस्मात्सुखिष्ठ तत् स्थान	२५०	तस्या वर्णनमेवाति-	२७८	तावच्चास्तस्थितादित्य	२२०
तस्मादेक एवाह	८०	तस्यात्परितमाथान्था	३१६	तावच्छिरसि सकुटो	२४५
तस्माद् बुद्धि रणे त्यक्त्वा	२६७	तस्यै जगाद् वृत्तान्त	३२२	तावच्चा. सिद्धसमाध्या	३१४
तस्माद् भोग भुवनविहृत	३५०	तस्यैतद्भवन भद्रे	१४३	तावच्चोयद्राहेन	३३६
तस्माद्येनैव सप्राप्ते	२७०	तस्यैवाभिमतो भूत्वा	१३१	तावत् त्रिवर्णाञ्जलिासि	४१३
तस्माद् द्रव्यादिलोभेन	३५५	तस्योपरि समाह्वय	२६२	तावत्पदान्तरस्थाया	२५६
तस्मान् महाबल दीप्त	२६६	ता प्रतिष्ठ पुराधीशः	४०२	तावत्परगात हृष्टा	११२
तस्मिंश्च सूर्यदेवस्य	३५५	ता विनष्टधृति हृष्टा	२३२	तात्परससायक कृत्वा	२७८
तस्मिन् कालगते पद्म	२३६	ता वीक्ष्य लक्ष्मीमिलयो	४१३	तावद् दुन्दुभयो नेदुर्गमने	२०१
तस्मिन् दशाननात्ताभिः	२६३	ताडितः कामराणेन	१२५	तावद् दूषणपञ्चत्या-	२५४
तस्मिन् देव मया सार्द्धं	३३४	ताडितः रमरवाणेश्च	१६१	तावदुत्तिष्ठ गच्छावः	११४
तस्मिन्मरसद्भाभे	२५०	ताडितो वज्रनक्रेण	३७६	तावदेतौ स्वयं गत्वा	३८१
तस्मिन्नामत्रता प्राप्ते	३५८	तात् तात् न ते युक्त	३७८	तावद्द्रणमुखेऽभाणीद्	३६३
तस्मिन् रणशिरो याते	११८	तात् रक्षात्मनः सत्य	७६	तावन्धुमुता साध्वी	३५२
तस्मिन् विप्रवृष्टे तु	३१३	तात्तस्यास्य च को भेदो	३८२	तावन्मे नास्ति दुःखस्य	१४६
तस्मिन् विमानतुल्येषु	११३	तातेन पृथिवी दत्ता	७६	ताववि भ्रातरी तस्मिन्	१८७
तस्मिन् शिलातने रभ्ये	५१	तातेन भरत स्वामी	६६	तावालोक्ष्य ततो रावन्	३६६
तस्मिन् सञ्ज्ञानकोराम-	११४	तातेन भ्रातृवक्त यत्	७८	ताश्च निरसीमसीभाग्या	३१६
तस्मि दत्ता स जैनेन्द्रो	३२६	ता दुःखहेतवः सर्वा	३३२	तासामाकुलिङ्गा काचि	३३६
तस्मि सैकान्तयाताय	१६१	तान् वीक्ष्य शोभन्ततान्	५४	तामामेवोद्भ्रमणेषु	२८२
तस्य ब्रह्मदुर्भेदिरचरैः	२८८	तान् समापततो हृष्टा	३७४	तिनयाकारदेशोऽथ	७२
तस्य क्रोशचतुर्भाग	३१३	तान्ब्रुवन्तापसा वृद्धाः	१०२	तिष्ठिरच्छन्दनञ्छाय-	१३५
तस्य तद्वचन धृत्या	३१७	तान्यद् शात्रुमिच्छामि	६७	तिष्ठ-तस्ते ततोऽभ्यर्ण	७१
तस्य राक्षससैन्यस्य	२३४	तापसप्रमत्ता हृष्टा	१०२	तिरोधान गता क्वचि	६०
तस्य राज्येऽधुना जाते	३३	तापसा जटिलान्वय	१०१	तिर्यग्नरकदुःखानि	२४६
तस्य रजुल्लङ्घसंसर्गा	३८०	तापसोऽनश्यमस्माभि-	१०२	तिष्ठ स्वेच्छयेशानी	२४८
तस्य रमरगिनना दीप्त	२६५	ताम्यमगङ्गुमारेण	३८२	तिष्ठ त्रिष्ठ महानाय	२५८
तस्याः पुण्ड्रय रक्षसि	१६१	तामपश्यत्तनो नेतु	४०५	तिष्ठ त्रिभिह कुचोंगः	१५६
तस्याः भ्रोगीतरारादा	२६	तामेव च पुनर्यस्तां	३४७	तिष्ठन्तिमिह मृत्यु चेदेत	३५३
तस्या प्रयातमात्रायो	२३०	तामेव सरसी रम्या	१२५	तिष्ठामि पापो मरदु म-	६६

दधानानोदृशः कोऽस्मिन्	२४१	दीर्घमुणं च निःश्वस्य	३४५	दृष्ट ब्राह्मणि यातेन	१३६
दद्यावान् मङ्गवान् योऽपि	८	दीर्घसूत्रवमुत्सृज्य	२६७	दृष्ट मया कदाप्येत	५६
दधिना रामदेवस्य	२४८	दीर्घसूत्रो भवानेव	५४	दृष्टपूर्वं मनोहारि	२४१
दयिता सान्द्रफिवैव	१३	दुःख तिष्ठति मे तातः	१२८	दृष्टादृष्टेति किं वक्षि	२४१
दयिने त्रियते यावन्	४७	दुःखतापितसर्वाङ्गा	३०८	दृष्टान्तः परकीयोऽपि	२०६
दर्पणादिभिभूय तत्	८३	दुःखस्य यावदेकस्य	३८	दृष्टिगोचरमाने तु	१०५
दर्पणा बुद्बुदावल्बो	१६५	दुःखस्य यावदेकस्य नाथ	२४२	दृष्टेन केन कार्येण	४७
दर्पसम्पूरितश्चापिन्	१०३	दुःखार्णवतट प्राप्ते	२४७	दृष्ट्या कञ्चित्करेणान्य	३३८
दर्शयंस्तामथोत्कृष्टा	२४०	दुःखिताना दरिद्राणा	५	दृष्ट्या कमलगर्भं च	७०
दर्शनस्य त्रिशुद्धिश्च	१०६	दुःखेन पूर्णचन्द्रश्च	३६७	दृष्ट्या वञ्चित्तराजस्तान्	१६१
दर्शिताशेषविज्ञोऽमा	१६७	दुःख्य दुर्विमर्शेण	२४०	दृष्ट्या गणेश्वरीमूर्द्धि	६३
दशवर्षसहस्रायुः	६३	दुःखेन दीधितिरिन्द्रोः	११५	दृष्ट्या च दूरतः सीता	३२५
दशव्यामायता वृद्धा	२६२	दुरात्मनातिनीर्येण	१६०	दृष्ट्या च प्रमदामेका	१३७
दशाङ्गपुरनाथोऽस्य	१०६	दुर्गसागरमन्थरथा	२६५	दृष्ट्या त कामभोगार्त्तं	१०७
दशाननसहायस्य	३३०	दुर्धने विजने राजन्	३१३	दृष्ट्या त पतित भूमौ	३६४
दशास्यकस्य नगरी	३४६	दुर्विदग्धैः खगैर्माभूत्	२७६	दृष्ट्या त पुरयो हृष्ट-	१०५
दशास्यशासन त्यक्त्वा	३७६	दुर्लभः सङ्गमो भूयः	३०६	दृष्ट्या तमीदृश रामो	२२७
दशास्यन्वासित वीक्ष्य	३७७	दुर्लभादप्यलं तरमान्	३०६	दृष्ट्या तमुत्तमाकार	२३५
दहति त्वचमेवाकां	२६	दुःशशीलया तथा नून	२३५	दृष्ट्या तमुद्गत वीरं	३७७
दह्यमान तथाप्येव	४	दुष्कृतस्योदयस्थस्य	३६६	दृष्ट्या तमुद्यत गन्तुं	८१
दह्यमानान् नृयान् काश्चित्	२६६	दुष्टचेष्टाभिमा तान्	१७२	दृष्ट्या तस्य सितच्छत्रं	१८
दाग्निभकर्यातिभीतस्य	२६०	दुष्टया किं तथा वृत्य	६	दृष्ट्या तमुमुहर्तैन्य	२०
दाग्निद्रव्यान्माञ्चितो लोकः	६४	दुष्प्रियाधरः कोऽपि	२७२	दृष्ट्या ता वक्ष्यसीदं त्वं	२०७
दारुग्रामे तु विप्रोऽभूद्	६२	दुष्टप्रियाधरानेक-	२८६	दृष्ट्या तान् कुपितोऽग्रयत	१३३
दावानलसम यस्य	१३३	दुष्टः शशाशनि कालि-	३६०	दृष्ट्या दैत्याधिप प्राप्त	३१
दायेन मदता राजन्	३१४	दुष्प्रियप्रतिपत्नेन	१३६	दृष्ट्या परमशोनेन	६५
दिककुमार इवोदारो	२२५	दूतः पितुः सफाशान्मे	१२६	दृष्ट्या प्रतिदिन रत्नह्य	२२७
दिदृच्छुस्त्वा महाराज	१७२	दूतत्वेनागत सीता	३३१	दृष्ट्या वज्रधर पूर्वं	३०३
दियमस्य गने यामे	२०७	दूताहृतः समायातः	३३६	दृष्ट्या संरक्षैः प्रुष्टः	११६
दिवमो द्वाग्दशोऽग्नाकं	३१५	दूति सीता मत्र ब्रूहि	२६३	दृष्ट्या सातिशयावेप	२०५
दिव्यगन्धानुत्थितस्य	२२६	दूतोऽस्मि शक्रमुत्थय्य	१५७	दृश्यते नेक्ष्यते भूयः	१३
दिव्यरीताम्बरधरो	३०४	दूर देश यशानाधि	२	दृश्यते बन्धुमत्परथः	३७३
दिग्गन्धोऽस्यसम्पत्ता	४१०	दूरानुरथाय दृष्ट्वैव	३०३	दृश्यते वैरमेतस्मिन्	३५५
दिग्गन्धाराधर दृष्ट्वा	१७२	दूरदेव च ती दृष्ट्वा	१३६	देवदुन्दुभिनादोऽमा-	२०२
दिग्वा शक्तिरिव शक्रस्य	३६७	दूरदेव समालोच्य	१२६	देवदेवं जिन्नं मुक्त्वा	१०६
दिग्नेः सनत्तैर्गोतै-	२६३	दूरधरविभिन्नाङ्गो	१५५	देवदेवी नृशमेन	२८७
दिशः सर्गाः समारोप्य	१५१	दूरे च सरमो दुर्गे	२८	देवार्चनेन सा दृष्टा	२८६
दिशरूपनिनादेन	१५३	दूरे लङ्कापुरी देव	४०६	देवि तत्कृत्यद्दुःख	४७
दीर्घां धुःखातिर्दर्पय	१६७	दूपगो भद्रगः कौगः	३६७	देवि ह्रीणात्तमस्नाकं	१२०

नया गिरावरण्ये वा	७८	नवयौवनसपूर्णा	३३	नानापञ्चिकुलम्-	१०३
नद्येषा विमलजला-	२१८	नवयौवनसंभूत-	२५	नानापुष्पकृतामोदा	२२३
ननाम चाञ्जलिं कृत्वा	१०६	नवयौवनसम्पन्ना	१७२	नानापुष्पफलाकीर्णं	१०३
ननाश भयपूर्णां च	२१	न वर्तते इद कर्तुं	१६२	नानाप्रकाररत्नाशु	२२४
ननु ते शतमेवैतद्यथा-	३२१	नवसङ्गमना कश्चि-	८६	नानाप्रहरणान् धीरान्	१२६
न नो निवर्तते चित्त	८६	न विष्णः स किमस्माकं	१६४	नानाभूषणयुक्ताङ्गौ	१६६
नन्दिघोषोऽन्यदा धर्म-	६६	न विनश्यन्ति कर्माणि	३७३	नानामृगद्वैतजधानसुरक-	२१४
नन्दिवर्धनकाले ते	७१	न वृक्षाज्यायते मार्त	६	नानायानविमानास्ते	३४८
नन्द्यावर्तपुरीं रामो	१५६	नवेन सगमेनास्या	१७४	नानायुद्धकृतध्वान्ता	२०
न प्रसादायतु शक्यः	२३८	नवो बद्धो यथा पक्षी	३८२	नानायुद्धनहस्तेषु	२५०
नमःसमुत्पत्तौ वी	२०६	न शृणोति ध्वनिं किञ्चिद्	२८१	नानायुद्धाश्च सक्रुद्धा	२७७
नमश्चरसमायोगे	३१६	न शृणोति स्मरप्रस्तौ	१६२	नानायुधविचिह्नाना	३५६
नमश्चरैः सम पूजा	५६	नष्टशङ्कस्तमादाय	२२७	नानारत्नाशुसम्पर्क-	१५३
न भेत्तव्यं न भेत्तव्य इति ता	२३४	न सा क्षितिर्न ततोय	६२	नानारूपसमाकीर्णं	२६
न भेत्तव्यं न भेत्तव्यं निवर्त्त-	१४३	न ह्याखूना विरोधेन	१७	नानालतोपगुब्बानि	१७१
नमोऽन्धकारित कुर्वन्	१३५	नाकाले म्रियते कश्चि-	२५४	नानावर्णविमानाग्र-	३६८
नमोविहरणीं लब्ध्व	१६०	नागपाशैरिमौ बद्धौ	३८२	नानावल्गुसमारिल्ल-	४०३
नमस्कारं च कृत्वास्या	१३८	नागा सिंहादयोऽप्यत्र	२०१	नानावृक्षलताकीर्णं	१६६
नमस्कार जिनेन्द्राणा	१६१	नागारिवाहनाल्दौ	३८५	नानावृक्षलताकीर्णं	१६५
नमस्कृत्य मुनि श्रेष्ठ	६४	नागेन्द्र इव हस्तेन	२६४	नानाशङ्करेष्वेषु	११७
नमस्यत जिन भक्त्या	१८७	नागैरञ्जनशैलामैः	११२	नान्तपुरं न देशो न	२०५
नमन्त्रिलोकवन्द्येषु	१४२	नातिदूरे ततो दृष्ट्वा	२६	नाम्नाऽनङ्गारा तस्य	४०२
नयनाना समानन्द	३०२	नात्रयुक्तमत्रशातु	२३५	नास्काग्निभयप्रस्ताः	७
न यस्य जलध्वान्ते	४	नाथ ! भक्तोऽस्मि ते किञ्चि	२४४	नारदः परम विभ्रदम्भ-	३३
न यावदथना याति	१६०	नाथ ! युक्तमयुक्त वा	२७	नारदोऽनुपदं तस्या	३३
न युक्तमथना चित्त	८१	नाथ वाहायता ताव-	१५०	नारायणसमेतेन	१६३
न ये भवप्रभवविकार-	२४३	नाथ ! वेदय मे स्थानं	३७	नारिङ्गमातुलिङ्गाद्यैः	२६२
नरकप्रतिगे धारे	१८३	नाथ शरस्वमेवैरुः	१६८	नात्तिरैरैः कवित्यैश्च	२१२
नरप्रधानदोसिस्ते	१८६	नाथ ! सातिशयोऽय मे	२०६	नाशकनोदनरण्यस्तं	४
नराणा मानदग्धाना	१६६	नाथाज्ञापय किं कृत्य	७३	नासावासीजनस्तत्र	१३
न रात्रौ न दिवा निद्रां	२४	नाथानर्भसमुद्गणेन	२६	नास्त्यर्थाङ्गुलमानोऽपि	७
नरास्ते दयिते स्याध्या	३६२	नाथावापत्सु वामेपा	३८५	नास्त्येव मरणे हेतु-	२६४
नरेन्द्र पश्य नेनापि	२०३	नाथे तथा स्थिते तस्मिन्	६३	नि-शङ्क द्विपन्निकान्तः	३२७
नरेभक्त्यभी सत्य	१७६	नाथो सर्वैरुः पापो	३६७	नि शेष दूत यद्दृष्ट	३००
नरेशः सुमुगस्तत्र	१६०	नानाजनपदाकीर्णा	१७०	निःशेषपञ्चास्य निरेडित	४१३
नरनीलप्रभृतयः	३०४	नानाजनोपभोग्येषु	१७८	निःसर्पत्तारकाकार-	३६३
नरेणोत्पत्य ह्मो वा	३६६	नानाजन्ममरानर्था	७३	निःसृताशुसर्मात्तौ	१८८
नर्यो नीलो वटिद्रवरो	३४६	नानाजातीश्च वृक्षाणां	२६	नि.स्व.दमामोचरः कोऽपि	२५७
नरमेघप्रतीकाशै-	३१३	नानानिर्व्यूहसम्पन्नं	१७२	निक्षिप्यते हि कामामौ	७७

निक्षेपो गुरुभिरन मे	३६६	निर्वया पशुमासादो	२०	नून त्वया न विज्ञात	१०७
निजसैयार्णव हृष्टा	३८६	निदयैश्च गदाघातै	३१८	नून दैत्येन केनापि	२४६
निजा शक्तिममुञ्चद्भि	२४६	निर्दयो मुक्तशस्त्राऽप	३०६	नून न भवितव्य मे	२७७
निजे धुने समुत्कृत्ये	४११	निर्दोषभावानो यस्तु	१०	नून भवन्तमुद्दिश्य	२८
नितान्तमूरकर्माय	१०६	निर्माल्यैजानकीं सम्यक्	२३७	नून सर्वं वृत्त कर्म	२४६
नितान्तपटुतामाञ्जि	४६	निर्मुक्तु उनिश्वासं	२३०	नृत्यत च समालोक्य	१७५
नितान्तबहुयाद्घृणा	३८०	निर्ययी च पुरायुक्त	२७	नृपतिश्चागतो वीक्ष्य	४६
नित्यमर्थयुत देव	१४४	निर्वाह्य दिवसानष्टौ	३५६	नृपनाहुनलच्छाया	१६
निद्रावृण्णितनेत्राणा	३७८	निर्विचेष्ट तमालोक्य	३६६	नृपा शत्रुदमाद्याश्च	१७६
निद्राविद्राणसङ्ग्रामा	३७८	निर्वचंय वृत्त चित्तमशुभ	१६३	नृपा सिंहोदराद्याश्च	१२२
निद्रावशीकृतान् धीरान्	१६०	निवर्तस्व भज स्वास्थ्य	१७०	नृपाणया नरै कुरै	३
निधानमधनेनैव	१०६	निवर्तस्व महातुद्धे	३१७	नेक्षते सधिरप्यत्र	१६०
निधाय हृदये राम	३३३	निवर्त्यमानत्र धूना	८२	नेता वानरमौलीना	२६६
निदन्नव ललासङ्ग	१३५	निवासमन कुर्माऽन	२११	नेत्रचापावनिर्मुक्तै	३२०
निन्द्ययोनियु पर्येव्य	१८८	निवृत्तभोजनविधि	३३३	नेत्रमानसचौराभ्या	१७०
निपत्य शिखरावद्रे	३२५	निवृत्ते मरुत पुत्रे	२७५	नेत्राभ्यामसमत्सुभ्य	६५
निमग्न सशयाम्भोधौ	२७५	निवृत्ति ततो वृद्धै	२७१	नैमितादिष्टकालस्य	२६३
निमिषान्तरमानेण	२१	निवदयन् गुण्यास्ताय	२३६	नैव वारयितु शक्या	१८५
नियत मरण शाला	३६६	निवेत्रैवमसौ तेम्य	२५	नैरा ध्वात समुत्थार्य	२५६
नियमस्त्यःप्रसादेन	१२२	निशम्य तद्वचो राजा	५०	नैपा सीता समानीता	३५२
नियमावधिताऽताते	४०५	निशम्य वचन तस्या	३४२	यादेन सङ्गता साध्वी	२३०
निमुञ्ज्यात्ममम द्वारे	७२	निशम्यामाववाक्यस्य	३१५		
निरंतर तिरोधाय	२२१	निशम्योत्तमिद सीता	१७६	[ प ]	
निरपेक्ष प्रवृत्तेऽस्मिन्	२६१	निशयमे किमस्माक	१७६	पक्ष्य पक्षमिदैत मे	४६
निरर्थक प्रियगतै	३४१	निशितानि च चक्राणि	१६	पक्षिण प्रतिशोधार्थ	२०६
निरर्थकमिदं बाम	५६	निश्चलश्च क्षण स्थित्वा	२४८	पक्षिण सयतोऽगादीन्	२०६
निरस्तमपि निर्यत	३७२	निश्चेष्टविग्रहश्चाय	२७६	पक्षिमत्यमृगान् हत्वा	६
निराश्रयाकुलीभृता	८६	निश्छाया स्फुटित क्षाय	४०४	पक्षिमत्सवमृगान् हति	६
निरीक्ष्यमैनुत्पत्य	११६	निश्शब्दपदनिक्षेपा	१४८	पक्षीमवचसौ यत्मा	१८८
निरीक्ष्य सीमण्या हृष्ट्या	१०८	निपद्याकृपभादीना	२६६	पक्षानै पञ्चभिर्मासै	१०३
निरीक्ष्य स्वजन विप्रा	१४६	निप्या तेनायदा तेन	२०३	पक्षचदनयोर्वदद	२२५
निरुद्ध भ्रातर श्रुत्या	३६४	निप्या तेनायदा तेन	२०३	पञ्चकल्याणसम्प्राप्ति	३५
निरुप्य सर्पशस्त्राणि	२३५	निप्या तेनायदा तेन	२०३	पञ्चपक्षोपम स्वर्गे	७०
निरुपद्रवसञ्चारे	२६२	निसर्गाकतथा गत्या	३३६	पञ्चपष्टिसहस्याणि	३५८
निरुपय वचचिन्ताद्	१०४	निहृतास्मि न चेदेन	११२	पञ्चसद्ग धताम्बूल	३०४
निर्गच्छन्ती प्रजा हृष्ट्या	१७८	निहृतोऽयमनेनेति	३२१	पञ्चस्वीरावतारयेषु	१४२
निर्गमपुत्रवत्रेमि	२०६	नीचानामपि नात्यत	५६	पञ्चबलादिसम्पूर्णा	४०६
निर्गमपुत्रवत्रेमि	२०६	नीता कल्याणमालारया	१२८	पठद्भिर्विशद युक्ता	१०१
निर्गमपुत्रवत्रेमि	३४७	नीतिशै सतत भाव्य	४०६	पततावेश्मना तेन	३४२
निर्गमपुत्रवत्रेमि	२४६	नीतना द्वादशवर्षाणि	२२६	पतद्भिस्तोरणैस्तुद्धै	३३८



पतत मा समालोक्य	४०१	पद्मो लक्ष्मण इत्युच्चै	३६	परितोऽक्रोद्भ्रमणमस्य	२२०
पतन् वीक्ष्य तटा रात्रा	५७	पद्मोऽवदत्त मेऽन्यामि	२६०	परित्यक्तनरद्वेषा	१७३
पताङ्गातारणैश्चित्र	५६	पपात नभसो वृष्टि	१५१	परित्यक्तावृत्तग्रांभे	१०६
पतितस्वाद्य नो रूपे	१६३	पप्रच्छ परिसा चैष	२३२	परित्यक्तोत्सपतिधि	१४०
पतितात्तरवृक्षीध	३१३	पप्रच्छ मगधाधीशो	२८३	परित्यज्यतिरीर्यस्य	१६४
पत्तनप्रामसवाह	२०३	पयसा सस्कृतै वाश्चि	३३३	परिदेवनिस्वान	२४८
पत्तय पत्तिमिलग्ना	२४४	पयोमुच्य वेचिदमी	२२१	परिदेयनमारब्धे	२४६
पत्ति प्रथमभट्टऽत्र	३५८	पर च विरमय प्राप्ता	११	परिदेयनमेव च चक्रे चना	१२
पतिन्निगुणिता सेना	३५८	पर प्राप्य प्रबाध स	२७०	परिदेवनमेव च चक्रे पुनक	६५
प नीमदानरस्यास्य	२४७	पर बिस्मयमापना	१६०	परिदेवनमेव च चक्रे विह्वल	३८
पत्न्या जननराजस्य	६	पर साधुप्रसाद च	३८३	परिदेवनमेव ता	७६
पत्युर्मर्म न उलयत्यु	२७३	परचक्रसमा कान्ता	२२४	परिभस्तापिलद्वेष	६५
पदमयत्र यच्छामि	४६	परदारान् समाकाञ्चन्	२५३	परिप्राप्याश्रमपट	५
पदातिभो रथेनामी	१५६	परदारमिहलापाऽय	२६०	परिवार्य महावीर्यं	२६६
पदाथान् सर्पजागदान्	५३	परपञ्चक्षय कर्तुं	३८५	परिधन्य महाप्रोत्था	१५२
पद्म सीतानुगो भूजा	१७६	परम भाजितश्चाञ्ज	१४५	परिध्वज्य रहो नाथ	४१२
पद्म लक्ष्मणस्युक्त	७५	परम सर्वभावाना	७३	परिता त्वनमूरिभ्या	८२
पद्मैर्मुचिलि त्रैश्च	२११	परम सुदरे तत्र	१२५	परिसा त्व्य सुत कान्ता	२७
पद्मगर्भं लम्बा च	१०४	परम स्नानवारीह	४०५	परिसान्त् योत्तमैराक्यै	२४६
पद्मगर्भं लं यरिमा	२३	परमशितिशिलोघरश्मि	२१७	पर्यैश्छदनान्तैश्च	२३८
पद्मगर्भं लच्छाया	४२	परमापदि छीदत्त	३२६	परेण तेजसा युक्ता	१८०
पद्मश्च सीतया साक	१५१	परमेऽथ निशीये ते	१२३	पर्णैर्लघ्वीं ततो विद्या	१०
पद्मनाभ मुमित्राञ्ज	३६८	परयापि वृताशस्य	२५८	पर्यन्ता महीं स्वैर	१४७
पद्मनाभस्तगाऽनाग्नी	३८६	परलाङ्गादिहैतस्तत्र	१०८	पर्यन्त यमुधाभेता	२६२
पद्मनाभस्ततोऽत्राच	२६७	परसै यममाश्लेष	३६१	पर्यट्य पृथिवीं सर्वा	३६६
पद्म पद्म महासाहा	३८१	परम्परं च दुश्चिन्ता	३४५	पर्यस्ता भूतले षचि	३६१
पद्मरागाभोत्तर	२०२	परस्पर समालाप	३५५	पर्यस्तानि न कि तानि	७१
पद्मश्च तापुवाचैन	१२३	परस्पर समालोक्य	३०३	पथातिनास्त मृष्टाना	८४
पद्मस्य प्रगति कृत्वा	१७६	परस्परकृत दुर्ग	८	पल्लवस्यार्हस्ताभ्यां	२०६
पद्मस्याङ्गिन्यातामी	३४५	परस्परकृताह्वी	२४५	पवनज्ञपराजस्य	२६६
पद्मस्त्रिभुविते स्वर्दे	३२५	परस्परकृताक्षुषी	३१०	पवनस्य मुता न त्व	३४०
पद्माभस्य शरैरगा	३६४	परस्परभिषाताह्वा	३५४	पदस्याःमञ्ज रपाता	२५०
पद्मनाभिकर्णाऽग्नि	३६२	परस्व रूपसारयेषु	१८७	पशाभामैकवार्यस्य	४४२
पद्मे द्विरनन्त् सा	१११	परानाशययुत्तप	१६२	पश्चात्तानानेनाल	६४
पद्मसु चरणाभिर्यां	२८०	परान्नेणेण धैर्येण	३३०	पश्चात्सा र्गा सप्तमाम	२१६
पद्मं जगत् ता देवि	१८३	परान्दुग्गाह्वी क्लामै	२१	पश्चात्त्रिं गमाकीर्णं	२०५
पद्मं नात्र मुञ्च परम	३५	परान्त्रिण त्रया नाथ	३२१	पश्चात्पराकामास्य	४८
पद्मस्तरनाम्नाभि	१६५	परान्धानत्रिणा गन्ध	४११	पश्चिमाया इषाराणा	१२
पद्मं पद्मादिश्चक्र	५४	परार्थे य पुनस्तद	३८६	पश्वा प्रोत्था दृष्टया	३०८

पश्य स निभवेयुक्तं	३३३	पाथाणेनैव ते गात्र	११६	पुरस्तात् नरेशाना	१७४
पश्यताम्परधानोद्-	३५६	पितर तादृशं दृष्ट्वा	७४	पुरम्य दक्षिणे भागे	२७४
पश्यतैन महाभीम	११८	वितरौ परिरमौ	८१	पुरस्थात्पन्तदुर्गात्	११२
पश्यन्तो तुरगान् द्वारे	४१०	विता तद्वचन ध्रुवा	७७	पुरा नरिनराकार-	४८
पश्य पश्य नश्रेष्ठे !	२००	विता दशरथो यम्य	३०५	पुराकृतादतिनिचितात्	३१६
पश्य पापस्य माहात्म्य	२२६	वितानाथोऽथवा पुनः	८०	पुरातन च वृत्तान्त	६७
पश्य मातरमुष्मिन्त्वा	८२	वितुः पालयितु सथ	७८	पुरानेन सप्रामे	२५५
पश्य सीता कथ याति	८२	वितुः सक्तीत क ध्रुत्वा	४०४	पुरा योऽनेरुमानादो	२१०
पश्यात्मीयं पति युद्धे	३३२	वितुरन्ते ततो नीनः	५६	पुरा विशिष्ट चरित कृता-	३१२
पश्यामस्तावदित्युक्त्वा	३३६	वितुर्भातुरच दुःभनेन	३००	पुरा ससर्गतः प्रीतिः	१
पश्यामुप्य महातुमान-	२१३	विनद्ध कस्यचिद्वर्म	३६३	पुरुषः कोऽन्वसो लोक्रे	१७१
पश्यात्माक शुगुप्साभि	४७	विनष्टि पञ्चवर्णानि	४५	पुरुष सप्त मे माता	२२६
पश्येमे निम्नरा धृष्टः	१३४	पुण्डरीकाक्षतरेण	१३७	पुरे कारयितुं शोभा	२७८
पाण्यगुनीयर्षी नीता	३३५	पुण्ड्रेक्षुनाटसम्पन्ना	१०४	पुरा माक्ष्यामि सेनश्च	१२०
पाताल किं भवेत्प्रीता	२४६	पुण्यज्ञात् परिभ्रष्टो	३७२	पुरोहितो गनो जातो	७०
पातालानुसिधतः किं वा	३०	पुण्यस्तन द्वाः श्लाघ्या	४६	पुण्यकाम समारोप्य	२६१
पात्रदानप्रभाषेण	२११	पुण्यन्तो महोत्साहाः	५०	पुण्यचूडो महारक्तो	३६४
पात्रदानमहो दानं	३३५	पुण्यानुभावेन महानराणा	३५७	पुण्यप्रसरपूर्णाः	८२
पात्रदानानुभावेन	२०१	पुण्येन लभ्यते सील्य	७२	पुथाणि गन्धमाहार	२४
पात्रदाने ब्रवीः शीलैः	३७३	पुत्रः प्रकाशसिंहस्य	२	पुण्याद्रेरवतीर्गस्य	३३७
पादनाडितभूमागा	३३२	पुत्र सख्यं त्वया लभ्य	९३	पुष्पैर्ज्वल्यलोद्भूतै-	१०३
पादन्यासीर्द्धुष्टुष्टु-	१६२	पुत्रस्यो भनस्योऽत्र	८४	पूरिताङ्गलिमग्नता	३४५
पाटयाना किमेतेषा	२२४	पुत्राम्या सह सम्मंत्र्य	८४	पूर्णं जगत्प्रति जन्तु-	३०७
पादमार्गप्रदेशेषु	३३८	पुत्रोत्तिष्ठ पुरीं यामः	६५	पूर्णं सनत्कुराराख्यः	१४४
पादमूले तनो नीत्या	१४१	पुत्रोऽनरस्यशराज्ञस्य	३५	पूर्वकर्मनुभावेन प्रेरितः	२६२
पादरिन्यासमात्रेण	३४२	पुनः पुनः समाहूय	३०६	पूर्वकर्मनुभावेन स्थिति	३०१
पादाग्रद्वयभङ्गिनेषु	३३८	पुनः पुनरपृच्छ्यञ्च	२८८	पुनं चने लक्ष्मीनाथः	२१६
पादोदकप्रभाषेण	२०२	पुनः पुनरपृच्छत् सा	१५२	पुनं जन्मनिवास्येऽस्मिन्	५७
पानकानि त्रिचित्राणि	१२६	पुनरभ्येर्मटैः शीघ्र	३६६	पूर्वद्वारमदो यत्तु	१३८
पापकर्मपरित्रिष्टे-	१०८	पुनश्च मावृतेः पार्श्व-	२७४	पूर्वद्वारेण सचारे	३६८
पापघातकर सर्व-	१०७	पुनश्च रात्रोऽनोचन्	१२१	पूर्णमेव तु निर्यातो	१८
पापघातकरमनापुष	२५३	पुनश्चाचिन्तयत्तुद्धे	२४८	पूर्णमेव हता करमा-	५५
पारगः सीतथा सार्यं	६०	पुनश्चोत्राच भरत	६५	पूर्णानुगन्धसद्वक्रोध	३८८
पार्थिवः प्रतिमः कश्चि-	४०६	पुनश्चनैव गान्धार्या	७०	पूर्वांरायतदास्या	१५
पाश्वर्यं स निज सैन्यं	३६२	पुनरति प्राथने जाय	७६	पूर्णं तु प्रन्थुनौ नाकात्	३७२
पाशकोऽत्रान्तरे नरा	२८	पुरःकृत्वातिरीर्यस्य	१६६	पूर्णो यस्य करैकस्यै-	४
पाश्र्वस्थः पञ्चनामस्य	३४८	पुरःप्रवृत्तसोऽमाह-	१५३	पृच्छन्ती श्री घरा तस्य	१११
पाश्र्वस्थया तथा रेजे	४१	पुरग्रामममाफीणां	१६६	प्रथिनीति प्रिया तस्य	१२७
पाश्र्वं कमन्थान्ताया	६३	पुरमध्ये महादुःख	४०६	प्रथिनी महिषी तोप-	१३२

पृथिव्यः सति सप्ताधो	१०७	प्रतिपद्यस्य तत् द्विप्र	२५७	प्रभाते तद्विनिर्मुक्त	१७०
प्रथुस्थाधिपत्याह	२६२	प्रतिपन्नैस्तत सर्वे	२६८	प्रभापरिकरा शक्ति-	४१०
पृथश्च लक्ष्मण कृत्स्न	२२७	प्रतिबुद्धास्तया तेऽथ	३७८	प्रभामण्डलमादाय	६४
पृथा च सा मयारपात	१३६	प्रतिमा यो जिनेन्द्राणा	६८	प्रभामण्डलमायात	३५६
प्रष्टतश्चास्य सानन्दा	३४२	प्रतिमा किन्तु जैनेन्द्री	३१७	प्रभाच तपसः पश्य	१६७
पौदने नगरेऽन्विष्य	३	प्रतिमावस्थितान् काश्चि	१८४	प्रभिन्न वारण तावद्	२०६
प्रकीर्णक जनानन्दं	२६२	प्रतिसन्ध्येति तज्जाया	१३०	प्रभीष्यते वराक्रोऽयं	१७६
प्रकीर्णक महीपृष्ठे	२६२	प्रतीकारो विलापोऽत्र	३६७	प्रभुर्महाबलो भोगी	२७१
प्रकारेणामुना शत्रू	२६८	प्रतीच्छारिन्दमेदानीं	१७४	प्रभूतदिवसप्रात	६४
प्रकृतेऽस्मिन् त्वमाख्यान	३५५	प्रतीच्छेच्छ्रुति मत्तुं चे	१७३	प्रभ्रष्टासुरलोकाच्च	४०५
प्रचण्डनिस्वदण्डाः	२६१	प्रतीत प्रणिपत्यासौ	११३	प्रमदमुपगताना योयिता	१३
प्रचण्डैर्विगल्दगण्डैः	२५८	प्रतीता समस्कारा	१३२	प्रमदाभिख्यमुद्यान	२६३
प्रच्छन्न प्रेषिता दूती	२	प्रतीन्दैर्वचन श्रुता	४०८	प्रमादरहितस्तत्र	१६१
प्रच्छन्नमिह तिष्ठाम-	७	प्रतीहारा भगः शूरा	१३६	प्रमादान्द्रवतो जातो	३३५
प्रजातेन तस्या वत्स	३११	प्रत्यावृत्त्य च सम्भ्रान्त	२८४	प्रयच्छति स्वय नान्न	६८
प्रजात्तरमानन्दा	२१	प्रत्यासन्न ततः वृत्ता	१३२	प्रयतोऽहि क्षपाया च	२०८
प्रजाभि पृथिव्योपृष्ठे	६२	प्रत्युनाच स त भीति	१८७	प्रययौ परया द्युत्या	१०७
प्रजामु रक्षितास्तेत	१६	प्रत्येक पञ्चभिः सति-	१५६	प्रयाणतूर्यसघात	३५७
प्रजामु विप्रनष्टामु	१६	प्रत्येति नाधुना लोक.	३३४	प्रयाहि भगवन् भानो	१४८
प्रजिनाय च सर्वासु	३२५	प्रथम निर्गतोदात्त-	३६४	प्रयोगकुशलश्चाद्य	३८०
प्रणम्य त्रेकया सान्द्र	६५	प्रथम वातिना हर्ष-	३४४	प्रलम्बाम्बुदवृन्दोद्य	३०६
प्रणम्य च जगौ राम	२७६	प्रथमा चन्द्रलोकाख्या	३१४	प्रलम्बितमहाबाहू	३१४
प्रणम्य निजगद्वन्द्य	१२१	प्रथमाभ्या ततस्तस्य	२८५	प्रलयाम्भोदसम्भार-	३६३
प्रणम्य पादयाः साधु	२०२	प्रथमे गोपुरे नील	३६८	प्रभवति गुणसस्य येन	१३
प्रणम्य भरतायासौ	१६७	प्रथित. सिंहकटिना	३७८	प्रवर रथमारुह्य	१४८
प्रणम्य वायुपुत्रोऽपि	३११	प्रदानैर्दिव्यरसूना	२५३	प्रवरभवनमुत्तिष्ठत्यु	१४
प्रणम्य विधिना तत्र	१८३	प्रदोषा पाण्डुरा जाता	५२	प्रवाच्य चार्पित लेप	६४
प्रणम्य शिरसा तस्य	६१	प्रदेशमीत्तरद्वार	३६८	प्रवाच्य माकृतिर्बाणं	३२१
प्रणम्य श्वसुर शत्रू-	८१	प्रदेशा नगरोपेता	२८६	प्रजातपूर्णिताम्भोज-	४१
प्रणम्य सर्वभावेन	८४	प्रदेशान्तरमेतस्मिन्	३५४	प्रवाहेणामृतस्येव	२७६
प्रणामानसाधो हि	२८३	प्रदेशे स त्वया करिभन्	३२८	प्रविशन्त च त दृष्ट्वा	२७२
प्रणामरहित दृष्ट्वा	१७३	प्रदेशे सतमे राज	३६८	प्रविशन् विपुल सैन्य	१६
प्रणिन्त्य गुरु मूर्ध्ना	६	प्रदापे सस्तर वृत्ता	१५०	प्रविश्य च पुर दुर्गं	११२
प्रणिपत्य च भावेन	८७	प्रधानमम्बन्धमिद हि	३७०	प्रविष्ट नगर श्रुत्या	११२
प्रणोमुश्च सम तेन	३१४	प्रपद्यस्य च धीरस्य	३६७	प्रविष्टे मार्गतेर्गैह	२६६
प्रनाशश्चानुपगच्छ	६६	प्रपद्येऽह जिनेन्द्राणा	४	प्रवेशितस्य चास्थान्यां	३३६
प्रवेशा स्मारयंस्तस्य	२८३	प्ररात्य भूतले भूयो	८	प्रवृत्तश्च महाभीमः	१८
प्रतिज्ञाय तद्देवानीं	७५	प्ररीडयते च यन्त्रेऽु	७	प्रशमय्य स्वय कौण-	८१
प्रतिनदी भवन् साधो	२८७	प्रसुष्य च त्रिशास्त्रेन	६५	प्रशशमुश्च ते सीता	८७

प्रयान्तगुगमभूर्णै	३०३	प्रातबोधिरसौ पत्नी	२०६	फलैर्बहुविधैः पुरै	१०१
प्रयान्वावस्थित इत्वा	२३३	प्रातराध मुन हृष्टा	३०६	[ व ]	
प्रयान्वा भव मा पीडा	२०८	प्रातश्च तामरणानी	६४	वदस्तथापि गो वृत्ते	२०१
प्रेषितः पद्मनाभश्च	३२६	प्रातमल्लेखना स्त्रीणा	४०५	यद्वाच्यनममा पत्नी	३६५
प्रमत्तवदना भर्तुः-	२२६	प्राप्ते काले कर्मगामानु	३६६	वदूना परिकर पुष्पिमः	१६५
प्रमत्तमानमी मयः	१८३	प्राप्ते विनाशकालेऽपि	२४१	व यान स्नायुकार्थ	३६०
प्रमत्त साधुना हर्तुः-	५५	प्राप्ता दूष्यष्टद्वार	४००	अप्यपि न मशहृत्तै	६४
प्रमादः साधुना तस्य	१०६	प्राप्ता भवत्यभारैः	६२	वन्धुलोहमय बन्ध	१०६
प्रमाद कु क गच्छाद्यु	११०	प्राप्ता नानारचनभयना	१२४	वभञ्ज त्रिति काशि	३३७
प्रमाद कु क तच्छाया-	१०६	प्राप च वाममारमीय	२४४	वभूय चादितस्यापि	१८४
प्रमाद कु क मा दु र्ण	१००	प्राप सौ गुणमवृर्णी	३३	व वाञ्छमुख हृष्टा	३१८
प्रमाद कु क यस्यामा	४०६	प्राष्टकालगता मेघ	२२३	वन्देयोऽपि कर्त्तव्य	१४७
प्रमादगो मुनिजनै	२६७	प्राप्तये यथा भगवन्	५	वनीवान् रायग स्वामी	२५७
प्रमादगत्तव याने ऽपि	३४०	प्रामादगिरिमागमि	१७१	वलिश्रयत्तत्करच	३७७
प्रमेद इति मयस्य	४७	प्रामादप्रार तम	२७२	वनेऽस्मिन् मार्देशीया	३५६
प्रमेद देवि कंठ्यापि	४७	प्रामादशिल्पश्छाया	१६५	वदिनिध्यान्तैरिन्द्रि	३४४
प्रमेद देवि भृशरते	२५०	प्रियगुणतिफा पश्य	२१३	वदिनिनिर्वयी हृष्ट	३०६
प्रमेद नभ मुत्तम	४१०	प्रियतर विरहे प्राणान्	१०३	वदिश्चेत्कालप्रयास	२७६
प्रमेदमेव कृता	६१	प्रिया जीवति ते मदे	२४४	वदुःख पा नरेशा य	१६
प्रमेदं विमानं मन्त्रः	३६७	प्रियापरिमल कश्चि-	२६३	वदुःखान किमुत्तेन	११७
प्रमेदा च त्रिपुरैः	२८४	प्रियापालदभिमान	३४५	वदुःखाना महाशीला	३५७
प्रमेदमिति चत्तच	११६	प्रिये त्व लिष्ट चात्रै	८०	वदुःखकारैर्मरुणैर्जनो	१००
प्रमेदाय चन्मिता-	१७६	प्रिये मा गाः पर शान	१०	वदुःखि पूष्यमानाऽसौ	३०२
प्रहागमिममेरं मे	३६३	प्रीतिरर्धनमस्य	१०६	वदुःखे मार्गशापंश	३४७
प्रहाजा कश्चि स्या नारी	३७	प्रीतिरर्धनमस्य	२६०	वदुःखुनाऽत र्मजा	६६
प्रहाजा परमा स्या त	३३१	प्रीत्या परमया हृष्टा	७४	वदिजिना वारणा मत्ता	३७६
प्रह्मास्येषु स्थिता केनिर्	५१	प्रीत्या विमानयमि त्यां	३२६	वाल्. सूर्यन्तमा घार	१७
प्रह्मास्येषु इवकदार	३५३	प्रीत्या सवर्त्तैर्भू	८०	वालनील तन्मयान	३७६
प्रह्मास्येषु इवकर्मण	१०४	प्रीतिभिर्भाषणं	३०१	वाञ्छुद्विगि स्वामिन्	२६०
प्रह्मास्येषु धारवर्त्तानां	१०३	प्रीति भाषुमार्ग	६४	वाल्गनां प्रविशुत्तेन	१७४
प्राणिनां सु युभीकणां	६	प्रीति कारणां दूत.	३८	वाल्गिनिह इति स्यातः	१२७
प्राणैः निदिना भु वा	७३	प्रीतिश्च पद्मनाभेन	३६४	वाल्गुद्विहृतसर्वेश	६१
प्राणितेजसकयं मना	३६१	[ फ ]		वालयात् प्रवृत्ति दुष्कर्म	१३०
प्राणितैर्षु कृत्तेन	१६४	फलं व्यानाच्यनुभंभ्य	६८	वाहा हस्तशात् भूमि-	४०५
प्राणितैर्षु कृत्तेन	३०	फलं प्रदुग्धिहृष्ट	६८	वाहाभूमिगतस्य	२०४
प्राणितैर्षु कृत्तेन	१८३	फलं यदतदुद्दिष्ट	६८	वाहाभूमिगतस्य	१६०
प्राणितैर्षु कृत्तेन	३६	फलं पुत्रभयानसा	३३६	वाहाभूमिगतस्य	३३६
प्राणितैर्षु कृत्तेन	१३०	फलं भागनीग्री	२१२	वाहाभूमिगतस्य	३७०
प्राणितैर्षु कृत्तेन	७१	फलं विनाशकारीणि	१०३	वाहाभूमिगतस्य	३४६

बुद्धिमानसि धन्योऽसि	१२१	भयेन रजनतस्तस्या-	१७६	भव्याम्भोजमहासमुत्तम-	३८६
बोधिस्तेन दाक्षिण्या-	२६८	भरतः शिञ्जणीयोऽयं	६५	भाग सर्वं परित्यज्य	७८
ब्रवीत्येवममौ यावत्	६४	भरतस्ये विदग्धाप्ये	६०	भागो न भरतस्तस्य	१६०
ब्राह्मणी विनिशम्यैतं	१४०	भरतस्य किमाकृत	८२	भाग्यवन्तो महासत्तना-	६०
ब्राह्मण्या वभुभूतेश्च	१८४	भरतस्य जयेनात्र	१६०	भामण्डल प्रतिबुद्धाः	३६५
ब्रुवते नास्ति तृष्णा न	८	भरतस्य ततो मात्रा	४१०	भामण्डलकुमारस्य	५४
ब्रुवत्या अपि सीताया-	१२६	भरतस्य निरलण्डस्य	२६७	भामण्डलेन समन्वय	६४
ब्रुवन्निति महाद्वष्टः	१४३	भरतस्य मया नाथ-	४२	भामिनी जनकस्यासीद्	१
बृहन्नञ्चुकिनो हस्ते	४५	भरतस्याखिले राज्ये	७६	भारती न विशत्याजा	१६७
बृहस्तेतुस्ततोऽत्रोचन्	५५	भरतस्यालयं प्राप्त-	४०६	भार्यां मित्रवती तस्य	२८४
बृहज्जटी बृहत्फायी	३७२	भरतापाग्निर्रोचिष्णु	१५८	भावपुष्पैर्किञ्चिं यस्तु	६७
बृहद्गवितनूजस्तु	११०	भरतेन ततोऽत्राचि-	४०६	भाव प्रतपसे किं त्व-	२०१
बृहद्नादितनिर्धायि-	१६	भरतो जयति श्रीमान्	१६४	भापमाणे गुणानेव	१७५
[ भ ]		भर्तारं दुःखयुक्तेव	२५४	भासा भूषणजातानां	३०२
भक्तिभिः पूज्यमानोऽपि	८३	भर्तुर्मे भूयिताङ्गस्य	२७३	भास्कराभाः पयोडाहाः	३५६
भक्त्या वल्लुगुहार यः	६८	भरतो या गतिः सैव	३४६	भास्वन्नकिञ्चिदानीं	१७२
भक्त्या शशाङ्कयानोऽपि	३१	भरत्कीर्तिलताजालै	२६०	भिन्नं वैर्ध्वानदण्डेन	१८१
भगवंस्तत्रमादेन	५८	भरतप्रभानन्दनसर्वभिन्न	४१४	भीमभोगिमद्भोग	३३७
भगवन्तो कृता नक्त	१८४	भरत्या यत्रमी भ्राता	५६	भीमो भीमरथो धर्मो	३६७
भगवन्नयमत्यन्त	२०२	भवत्या रमणोद्याने	२५२	भीषितानां दरिद्राणा-	२
भगवान् स दि सर्वत्र	५८	भवत्या वाञ्छितं कृत्वा	३६२	भुञ्जे देशं मया दत्त-	११३
भगिनी दुर्नत्वा तस्य	२२५	भवन्निक्रमैः प्रीतै	३६६	भुक्त्वा भोगान् दुकृत्वादान्	७७
भग्नं पुध्ननगोद्यानं	३३६	भद्रद्वैतथलस्त्यान-	३६१	भुक्त्वा राज्यं निरं कालं	१८६
भग्नोऽनुह्वापणश्रेणिः	३३८	भय धीरा प्रसीयणा	४००	भुपुण्ड्रीः परस्वन् वाणान्	३१०
भग्नः शरसैव्येऽस्मिन्	१६	भयनं यस्तु जैनेन्द्रं	९८	भूतमात्रमति त्यक्त्वा	५८
भग्न येवरनाथाना	५६	भवनेऽत्रधिना स्मृत्वा	६	भूतोऽयं भविता वापि	११६
भग्न मुहृतसङ्गं तेन	३४३	भवन्त तादृश वीर	३६६	भूमिगोचरिणो मर्त्या-	१८३
भग्नना चन्द्रदासेन	२२८	भवन्त शरणं भक्तः	३५४	भूमिसम्प्राप्तधीर्ग	३४२
भग्न तास्तमुग पुत्र	७६	भवन्तमेव पृच्छामि	१०८	भूयो जन्मधिक्लेश-	३८८
भग्नत्येव तथा देवो	१५७	भगनादारम्य पूर्वोक्तान्	१६०	भूयो भूयो बट्टु घ्पायन्	२४२
भग्न सर्गोः त्रिषाः पुत्र-	२७	भगान्तकस्य भयन	८३	भूयो विपादमागत्य	२४०
भग्नमान निन्नं मैत्र्य	३८६	भगारगा मन स्मृत्वा	७३	भूरिशोऽयप्रशाश्चन्-	५२
भग्नं करश्यात्मानां	२२६	भगामि ह्युग्रधारस्ते	६४	भूर्जिरेपु निरातमुर्वेनि	३७३
भद्र किं स्मिय रजः	६४	भवार्णरसमुर्वीणां-	२६५	भृगुनातपरिस्ता	१८०
भद्र ते कुशलनाथ	१२१	भविता य वृत्तभेन	३३१	भृथाना भक्तिपूर्णां	८८
भद्राः किं विनिति ब्रूये-	१८५	भवितायी जगत्कारी	१६३	भृथो भूत्वा विपुणैर्द्वै	११०
भद्रे षोऽट्ट प्रमादस्य	१६२	भयबोशा यमामाद्य	६०	भेयमान वचं दृष्ट्वा	३६६
भद्रोऽतिष्ठ अशयुः सं	२२७	भयना परयतानुष-	२६६	भेरीरग्य रीण्यार्य-	५२
भग्भाषेषो मूढज्ञाथ	३६८	भय भो यावदापाति	६६	भेरीसङ्गरयः विदि-	३१८

भोगमागरमग्नोऽमी	२७८	मन्त्रपस्थातिवृद्धस्य	२७३	मयाय सटशो मन्वे	२७१
भोगैर्नास्ति मम प्रयोजन	१७७	मद्वाक्त्रादुच्यता मीना	३०६	मया शिशुतया क्विञ्चि-	३११
भो भामण्डलमुप्रीची	३६७	मद्विभोगेन तता वा	२८२	मयासी-मन्धीभाजा	१४०
भो भो निर्गन्ध मा गास्त	२०४	मपुर द्रुषते काश्चिद्	१०२	मया स्नेहानुरूपेन	७०
भो भो महीधराधीरा !	२४१	मध्ये च गहनस्थास्य	२२६	मयि स्थिते समीपेऽस्मिन्	७६
भो भो सुविभ्रनाः सर्वे	२८५	मध्ये तस्यापि विपुल	२२६	मयूरमालनगरे	१५
भो वृक्षारचम्बकच्छाया	२४०	मध्ये मन्दरतुल्योऽस्य	२८८	मयेति गदित वाक्य	२५७
भृत्पत्र दशवक्त्रस्य	३३१	मध्येऽयमस्य सैन्यस्य	३१	मयेऽशासन जैनं	१३६
भ्रुकुटि कुटिला यस्य	२८६	मध्ये यस्य नदी भाति	१३३	मयेऽमर्जितं पूरं	२५४
भ्रमश्च सपिदाद्यर्थ-	१३६	मनुष्यभावमुक्त्वा	२०१	मयैरं सततं पुत्रो	४०२
भ्रमद्विभ्रज्जनेभ्यो-	३३४	मनुष्यलोकाभासाद्य	१६८	मयादा न च नामेय	७६
भ्रमयित्वा द्विती याव-	१३४	मनुष्याणा पराना च	२५६	मयादाना रूपो मूल-	३२८
भ्रमरप्रावृत्तैर्गुल्फैः	३२५	मनोरथ पुरस्कृत्य	२८६	मत्स्यधर्मा यथा कश्चिन्	३८१
भ्रष्टनिःशेषनीतिश्च	३२६	मनोरथशतैः पुत्र	७६	मन्व्यपदत्रा प्राप्य	१६६
भ्राजते तपमानः सन्	७६	मनोविषयमार्गेषु	१८७	महतः सरस्तस्य	१२५
भ्रातरो वाशिशुप्रीवौ	२७०	मनोहरैर्गुहैर्भाति	२६३	महता शोकभारेण	१४६
भ्राता मम मृधे भीमे	२४२	मन्त्रदोषमसत्कार	२७०	महतापि प्रयत्नेन	८८
भ्राता ममाथ सुहृदेय वश्यो	३५७	मन्त्रिणो नृपतीन् सर्वां	८०	महता मोहपदेन	२५३
भ्राता विभीषणो यस्य	२८६	मन्त्री जाम्बूनदोऽनोचत्	३०६	महदाश्चर्यमेत-मे	३७१
भ्रातृभ्रन्त्रनखा पादौ	२५४	मन्त्री माता च मे वेत्ति	१२८	महाकल्लोऽसक्काशा	३७६
भ्रातृमधुपरिध्वङ्ग	८०	मन्थरैश्चासुश्चारै-	१६२	महाजन्मघरष्यान-	४१
भ्रातृभिः स पितृभ्या च	२६२	मन्दमास्तनिक्षितैः	२१२	महातरारषस्तावन्	२६३
[ म ]		मन्दोदरि परे गर्ग	३३१	महातामसशस्त्रं च	३६२
मकरग्राहननादि	३२८	मन्दोदरी क्रमात्प्राप्य	२५७	महातुरङ्गसपुत्रैः	३०१
मकर-दरसात्सगद-	१२१	मन्दोदरी ततोऽनोचत्	३३१	महादे-याजुमे तस्य	१८८
मक्षिकाच्छदनच्छात	४८	मन्दोदरी ततोऽनोचच्छूराः	३३०	महाद्रिकन्दरास्थाल	८८
मगधेन्द्र ततो वातिः	३२४	मन्दोदरी सुत तावदभि-	३८२	महानरानिति पुरुदु ए	२४२
मगधेन्द्रस्ततोऽपृच्छत्	३५८	मन्दोदरीमुतोऽप्येय	३६३	महानिर्भरगम्भीरान्	२११
मगिनारणरम्येषु	१३८	मन्मयावृष्टनि-शेष	१६२	महान्तश्च पुरस्कारा-	१६
मगिषोऽस्थित सौम्य	८३	मन्ये पराजये देवान्	४११	महान्तस्तस्य सञ्जाता	२६३
मण्डलाग्र समाक्षिप्य	१६४	मन्ये तस्य सुरेशोऽपि	३७	महापुरुषयुक्तं ते	१२६
मतिमान्तोऽग्र-रीत्वश्च	३५४	मन्ये यथानुबन्धेन	२४६	महानिधानं रत्नका-	२६३
मत्तारणदन्ताग्र-	३६१	ममात्मगमुदासीनं	२४५	महापदि निगमनस्य	३३०
मत्ताः त्रैमरिणोऽरण्ये	३४०	ममापि सहसा हृष्टा	१२१	महापूतमिति श्रुत्वा	१६४
मत्तैर्गिरिनिभैर्नागै-	३७२	मयदैत्यात्मजा तीन	३२२	महाप्रकृष्टपूरस्य	२३७
मदनाङ्कुरसन्ताप	३७४	मया किं तर्हि कर्त्तव्य	४०६	महाप्रतिभयाकारा	४०३
मदनैर्गदिरैर्निम्नै-	२१२	मया जग्मानि भूरीषि	६७	महाप्रभावसम्पन्न	३०३
मदीय रूपमासाद्य	२७४	मयानुमोदितस्तेऽथ	११	महाभेरीध्वनि चाशु	४०८
मद्नाट्टप्रेरिते राशौ	३६४	मयापि पुत्र जातोऽभि	२२८	महाभोगो महातेजा	१५५

मृदङ्गनद्यमुरज	१६७	यथा भञ्ज समागत्य	१५७	यद्युभिर्महपैरये	३६५
मृदुमददायङ्करमल	२१६	यथा भञ्जतै पित्रा	१३३	यथै सिद्धन् नीला	३६०
मृत्प्रमाना निपतुस्ते	२०	यथाभूत्ता मुनर्धर्म	१६०	यथाधरमुन पार्थे	६६
मृत्युक्लात्मयुक्ता	७३	यथा ने रचिदेतस्मिन्	१५५	यन्त सर्पति मृदात्मा	३१७
मृत्युनाशननि कान्ना	३१४	यथा यथा महाभाग्या	४१०	यन्त्रिगुल्पर सरये	३६०
मेषकाण्डानि वस्त्राणि	१६५	यथा रक्षाकरद्वीप	६६	यत्मात्पुत्रगस्तस्य	२१०
मेषनाहनवारेण	३७६	यथाग विदित तेन	२८५	यस्मिन् दधिमुग्य नाम	३१३
मेरुभृङ्गप्रतीकाश	३६५	यथावस्थितभावाना	२०५	यस्मिन् विद्यते पथा	१६६
माहारिकण्ठक हित्वा	१८७	यथाश्रुति परिहाय	८७	यस्य चारणकथाना	१६४
म्लेच्छनिघान्नात् स्तोत्र	३४	यथा सत्त्वहितेनेद	४०६	यस्य देश समाश्रित्य	१७
म्लेच्छे कि ग्रहण क्षुद्रै	३४	यथा रश्यामि ते मात	८०	यस्य सर्पस्य सम्पन्नाद्	२०३
म्लेच्छोऽय हन्तमुद्युक्ते	१८७	यथेष्ट दीयमानेनु	१७५	यस्या कृते क्षनारस्व	३६६
[ य ]		यथात्तपाचरन् राज-	२३६	यस्या गर्भप्रपन्नाया	४०२
य कराति विभावया	६७	यदत्र द्रविण रिश्चि	१२८	यस्या राजौ वनोद्देशे	१४८
य पुन शीलसम्पन्नो	८	यदर्थे मत्तमातङ्ग	३५२	यस्यातपत्रमाश्लेष्य पूर्ण	२८६
	६८	यदाहाभयतीत्युक्त्वा	४२	यस्यातपत्रमाल कय शरति	३६०
	१४०	यन्नाशनयर्षीसुध	१६७	यस्याथास्तस्य मित्राणि	१४४
	३४६	यदि दधिप्रसाद मे	२५२	यस्यालोक्य तत्र सरये	३०३
	३७२	यदि नाम न तल्लैन्य	३३	यस्यातिरक्षमुत्पन्न	२३४
				यस्यान्नगनि रम्याणि	१६६

महामहिषशृङ्गाग्र-	१०२	मातापितृसुहृन्मित्र	२०८	मित्राणि द्रविण दारा*	१८०
महाम्बुदप्रतीकाशा	३६८	मातामह समादाय	३१०	मिथिलानगरीतोऽह	३२
महायोगेश्वराभोरा	१८१	मातालिंग्यागदत् सीता	६६	मिथ्यादर्शनसुक्ताना	३७१
महारथवरैर्नाना	३६८	माता विप्रेण तौ हन्तु	३५५	मुक्तमान स पापेन	८
महार्णवरवाभैर्ष	३५१	मातु सहादरो भ्राता	६	मुक्तलावण्यरूपस्य	१०७
महालोचनदेवस्य	३८३	मानरो भव देवो वा	१२०	मुक्ता कन्या स्वशिरि	३३२
महावष्टम्भसुस्तम्भा	१६६	मानुषत्वं परिभ्रष्ट	२४०	मुक्तादामसमाकीर्ण	२६६
महाविनयसम्पन्न	१२५	मानुषद्वीपमासाद्य	१४०	मुक्तिक्षान्तिगुणैर्मुक्ता	१६
महाविनयसम्पन्नो	८१	मानुष्यकर्मदं जात	१६६	मुक्त्वा नान कृत्यासन्न	२१६
महाशक्तिमिम शत्रु	२४४	मान इतैरिमैर्गाक्यै	२६७	मुक्त्वा त्रिभुवनाधीश	१०६
महाशीतपरीतस्त्य	३५२	माभूत्स्मिन् कृतक्राधे	२६७	मुग्धबालकमादाय	४०८
महाश्रद्धान्वितस्वान्ता	३३३	मा भैषीर्भद्र मा भैषी	२८७	मुग्धा मुग्धमृगानेना	४१२
महासवेगयुक्तेन	२०५	माभैष्ट नतो राजा कृत्वा	१८५	मुञ्चते समये यस्मिन्	६
महासाधनसामन्त	१६८	माशयाह्वयचैन	११०	मुञ्चते सुकृत चासा	७०
महिमान पर प्राप्य	३८३	माया सुप्रोवसन्देह	२६८	मुञ्चजानन्दनेत्राम्भ	२०२
महीतले समस्तेऽस्मिन्	२८५	मायाविनिहते क्षुद्रै-	२३४	मुञ्चैन् तरित क्षुद्र	१३४
मुहुः प्रेषितद्रुतोऽयमद्य	३४६	मायासहस्रसम्पन्नो	२७५	मुदितै किङ्करैर्भैरी	१७
महेन्द्र निभूत श्रुत्वा	३११	मा यासीर्देवि सजास	२५८	मुनयो य समाश्लित्य	१४०
महेन्द्र केतुरत्युग्र-	३४६	मारयामीति तेनाकवा	५७	मुनि नि प्रतिकर्माण	२०३
महेन्द्रजितसञ्ज्ञश्च	२८६	मारस्यात्यतमृदुभि	२५२	मुनिरायातमान सन्	५२
महेन्द्रजिदसौ बाणै	३६२	मारितास्मि न किं तेन	१२	मुनिसुव्रतनाथस्य तीर्थे-	१६३
महेन्द्रसदृशैस्ताव	२५३	मारीच सिंहजघन	३७४	मुनिसुव्रतनाथस्य सम्प्राप्य	१४१
महेन्द्रोऽय महावीर्यो	३१०	मारीच सिंहजघन	३६४	मुनिसुव्रतनाथाय तस्मै	१४२
महेन्द्रोदययात त	५८	मारीचोऽमलचन्द्रश्च	३५१	मुनीना वस्य केषाञ्चि	७७
महेभद्रुभमशिरर	२३६	मा रोदी सौम्यत्रक्त्रे त्व	३२१	मुनीशेन समादिष्टा	४०६
महोदरस्य वातेश्च	३७७	मार्गं तत्र कियन्त चि	१०४	मुनी सुगु तिगुताख्या	२००
महोरगाङ्गना कि स्याद्	२५	मार्तण्डमण्डलच्छायो	५१	मुनेश्चारित्रशरस्य	१३८
महाम वपितस्ताम्भा	१३	मालिन नष्टमालाक्य	३७५	मुनेस्तस्य प्रभावेण	२०५
मासपण्डाममग्नाङ्गी	१८२	माली तस्याग्रतो भूतो	३७५	मुमुचुश्च घन शङ्ख	३३७
मासाशाननिवृत्ताना	१४४	मा वीवधाऽस्य लक्ष्मीमन्	१६४	मुहुस्तामीक्षते क या	२६
माणिक्यशकलाङ्गानि	२३५	मा अजीरङ्गदैव त्व	१६५	मुहूर्तं मन्त्रिभि सार्धं	२७५
मातर भ्रातरौ चैवा	३५५	माश्वसोद्दीर्घमुष्ण च	७८	मुहूर्तंऽथ चतुर्थे तु	३३३
मातर शरण्य प्राप्ता	३०८	मासमानमुपित्वातो	६६	मूर्च्छनाभि स्वैर्ग्रामै	१६२
मातरौ दु रिते एते	६३	मासानेकादशामुष्णा	४०६	मूर्तिनिर्मुक्तमेवैत-	२०५
माता च वनमालाया	१५२	मामोपवासिनौ वीरौ	२००	मूर्तिमन्तमिषानङ्ग	३२०
माता त मूर्च्छिता दृष्ट्वा	६५	मास्याङ्गीर्लक्ष्मण देव	३६७	मृधारोभुजङ्गादी	१८२
माता पिता च ते वत्स	६२	माहात्म्यादमुनो राजन्	२१	मृगधजो रणाभिश्च	१६६
माता पिता च पुत्रश्च	६	माहेन्द्रिरथ सम्भ्रान्ता	३०६	मृगोप सरसा प्राप्ता	६३
मातापितृसमायोग	३११	माहेन्द्रिमुदितो भूयो	३०६	मृगेन्द्राविधिततमान-	२६७



मृदङ्गयथामुरज	१६७	यथा भज समागत्य	११७	युष्मिर्मह्यैग्यै	३६५
मृदुमकटीरथङ्गुरमल	२१६	यथा भाग्यतैः विनो	१३३	यथा मित्स्विनीतो	३६०
मृगमाना निपेनुत्ते	२०	यथा भूतो मुनेर्धर्म	१४०	यथाध्वमुनेः पार्थे	६६
मृत्युक्त्रोत्समुत्ता	७३	यथा मे त्रैचिदेन्मिन्	१५५	यन्म संपति मूढात्मा	३१७
मृत्युजीवननिःशान्ता	३१४	यथा यथा मद्राभाग्वा	४१०	यन्मित्ररूपरः मत्स्ये	३६०
मेघकाण्डानि वज्राणि	१६५	यथा खलान्दीप	६६	यस्मादशुभजास्तस्य	२७०
मेघनाहनधारेण	३७६	यथायद् विदित तेन	२८५	यस्मिन् दमिमुप नाम	३१३
मेघशृङ्गप्रतीकाश	३६५	यथावस्थितव्याजाना	२०५	अस्मिन् विज्ञाने यथा	१६६
मोहारिकण्टक हित्वा	१८७	यथाश्रुति परिज्ञाय	८७	यन् चारणकन्याना	१६४
म्लेच्छनिर्घाणात् स्तोत्र	३४	यथा सत्कहितेनेद्	४०६	यस्य देश समाप्ति	१७
म्लेच्छैः किं ग्रहणं लुद्रै	३४	यथा स्पृशामि ते मात	८०	यस्य संप्रभ्य सम्पदाद्	२०३
म्लेच्छोऽयं हन्तुमुत्तुतो	१८७	यथेष्ट दीयमानेषु	१७५	यस्याः कृते क्षत्रोरस्य	३६६
[ य ]		यथाक्षमाचरन् राज-	२२६	यस्या गर्भप्रपत्ताया	८०२
यः करोति विमानर्था	६७	यदत्र द्रविणं त्रिञ्चि	१२८	यस्या गनी वनोद्देशे	१४८
यः पुनः शीलसम्पन्नो	८	यदर्थं मत्तमातङ्ग	३५२	यस्यात्तरनमाक्षरं पूर्ण	२८६
य सन्देहकल्केन	६८	यदाज्ञानयतीत्युक्त्वा	४२	यस्यात्तरनमालं क्य शरदि	३६०
य क्लिप्तियिषेलाया	१४०	यदाज्ञानयतीत्युक्ते	१६७	यस्याथास्तस्य मिनाणि	१८८
य य देशं विहितमुज्जना-	३४६	यदि दृष्टिप्रसाद मे	२५२	यस्थाले क्य तदा सत्ये	३०३
य वीक्ष्य जायते कीषो	३७२	यदि नाम न तलैन्य	३३	यस्यानिरालमुत्तर	२३८
य वीक्ष्य जायते चित्त	३७२	यदि भोगशरीराम्या	११०	यस्यास्तस्यनि रम्याणि	१६६
य इदं कथितानुकीर्तन	१४६	यदि मे निश्चयापेत-	२७६	यात्तेषु किमुतापानि	१०५
यत्क्षेपेन कृते तस्मिन्	१५३	यदिमो श्यामिनौ सुये	१७०	यत्कृत् येन कृतं कर्म	४३
यच्छु नाना नरेशाना	४०६	यदि वाह्यमि जीयत	२५५	यामन्नेन सन दुःख	८२
यजन्ते भावत सन्तो	१६	यदि सा वैधस सृष्टि	२५५	या येन भाविता तुद्धि	३८१
यतोऽनया जित पद्म	१७१	यदीय देव नामानि	२८८	यायनं कुरुते पूजा	३१४
यतोऽयं दण्डको देश	२०५	यदोनल्पवने चया	३२२	यावत्तस्य च तामा च	२३
यत्तद्वस्तप्रहस्ताभ्या	३७२	यद् श्याम्पातरतताङ्गी	१४६	यावत् स्मिन्ति ते तन	१३३
यत्प्राप्तं य यदा येन	५०	यद्दर्शं दुःखितोऽप्राङ्गी	६१	यावत्पत्नी नरेन्द्रस्य	२६३
यत्र त्रिणोऽपूज्याना	५७	यद्यनेन सम सक्ता	३२१	यावत्पश्यति तं मुन	२४६
यत्र यत्र पदम्यास	१६६	यद्यथा निमित्तं पूर्ण	१८८	यावत्पश्यति सजात	३६३
यत्र यत्र समुद्देशे	१६२	यद्यथायथापूर्वकर्मालु	२५१	यावत्प्राप्तं मि नो वार्ता	२५३
यथा किल द्वये लोके	३२४	यद्यत्पुण्याम यात	१५८	यावत्सुमीनभाचरौ	३८१
यथा किल विनीताना	११६	यद्येन वारयागोऽन-	१८३	यावत्गृह्यते स्वामा	३२६
यथा किल समस्तोऽयं	४०१	यद्विद्यापरसन्तान	३८६	यावदेतं वदत्येया	४७
यथा क्षापयसि स्वप्न-	१५१	यद्बुद्धं दण्डकादप्यय	३५६	यावदेव घनिनाये	२०५
यथा क्षापयन्तीत्युक्त्वा	३०६	यद्रीद्रभूति सुचिर विचित्र	१३२	यावदेवममो पद्म	३८१
यथा लक्ष्मिरे चाला	१४६	यन्नेतु श्रमणा सर्वे	२४०	यावदेपोऽपनीतो न	२०३
यथा नन्दीश्वरे द्वीपे	४५	यन्त्रैर्बहुजनक्षोद्रे	२६८	यावद्दशुरत्युग्रै-	१८०
यथाधिपेन रामस्य	१३६	यन्निरीक्ष्य वरारोहे	२००	यावद्वातः समाधानं	३८२

यावन्न मुञ्चति प्राणान्	२६०	यो भूतिरूपमन्युश्च	७१	रथैः प्रभास्त्रैर्द्वि वैः	६६
यावन्नेच्छति मा नारी	२५६	या रतिं परनारीपु	६६	रन्ध्रं प्राप्य वने भीमे	२४०
यावन्नोपद्रवः कश्चि	३३४	यो लोकहितमुद्दिश्य	३५	रन्ध्रविन्यस्तचित्तेन	११०
यावन्तः केचिदन्ये तु	३६८	योऽसौ परमथा शक्त्या	२०५	रमण्याश्च महामोदान्	२६
यावन्तो भुङ्क्ते केचि	३१५	योऽसौ विभीषणः ख्यातः	२६८	रमणात्मजपञ्चत्व-	२५४
यावन्मुञ्चामि नो प्राणान्	२५६	योऽसौ विमुचिरित्वासीत्	६३	रमते कश्चिदपि चित्त	६८०
यिथासोः शस्त्रहस्तस्य	३६३	यो रामलक्ष्मणौ नाम	२५७	रमते जीवन्पति.	१८६
युक्त मुच्यते रश्मै	३३६	[ र ]		रम्य चैत्पयह तत्र	२७८
युक्तमुच्यते तात	१६०	रक्तच्छुण्डा विमुञ्चन्त	३६१	रम्येष्वन्नितम्बेषु	६०
युक्तमेवातिगीर्यस्य	१५६	रक्तवस्त्रशिरस्त्राणाः	१६	रम्ये सुविपुले तुगे	६४
युक्त्या भ्रान्तमन्यस्य	२६	रक्तशिलौघरश्मिनिचिता	२१७	रवः क्रिमेप सिंहस्य	२३४
युगान्तकालमसौय-	३१७	रक्ताशोकप्रकाशेन	२०५	रविणा दिवसस्यान्ते	८३
युद्धार्थमुद्गतापेती	३५३	रक्तावन किं तत्	३६१	रविरश्मिभृताद्योत	३३३
युद्धान्ता वसन्तश्च	३६८	रक्ष.प्रभृतिषु श्लष्ये	२२५	रहितश्चानया रामो	२६०
युद्धे च मानस कृत्वा	३१८	रक्षःसामन्तसङ्घातो	३७५	रहिता शतपत्रेण	३२५
युद्धे हसरथ तत्र	३४६	रक्षन्निद म्रत तस्मात्	२३६	रहस्यमिदमेक च	२२४
युग्मर्गममाभ्यता	१६०	रक्षसा वानराणा च	३५६	रहस्यमेतस्समन्य	२६४
युक्त्युज्ज्वलनक्षीना	१७०	रक्षित्य पितुर्गम्य	१६६	राक्षसानामधीशेन	२२४
युग्मयाः कुन्तार्जल	२०७	रक्षिता येन मे प्राणा	३३	राक्षसैः परुपारावै-	१८२
युरित्याभृतालेख	२८६	रक्षाभिर्वैष्टित दृष्ट्वा	३७७	राषवाकृतनुशास्ते	३४७
युरा विभीषणेनाथ	३५४	रणप्रत्यागत धीर	३६१	राषवो रथमारुढो	१६
युग्मान् ब्रवीमि सक्षेग	२५८	रणभेरीनिनादेन	३५१	राजधैर्यात् कुतोऽप्येव	२३४
ये जन्मान्तरमञ्चिनाति	१७६	रणसत्तारकःश्रेऽसौ	३७६	राजन्कर्मान्युदयसमय	२६८
ये तस्य प्रणतास्तुङ्गाः	३५३	रणसञ्जाततोषेण	३६३	राजन् दारुणानङ्गलता	२७२
येन व्यापादिता बत्से	२५५	रणाजिरे परं तेजो	२४५	राजन्न साधयित्वा तं	५
येनासीन् समरे भीमे	२८७	रतिं न लभते क्वापि	३	राजन् वज्रधुरतः क्रुद्धः	३१८
येनैवेन्दुनस्नानाथो	३३१	रत्न पुष्परीराणा	३६६	राजन् विचित्ररूपोऽय	१४४
ये पुण्येन विनिर्मुक्ताः	१५२	रत्नकाञ्चनराशि च	२०६	राजपुत्रपर प्राप्ता	२६१
येऽप्यन्येऽत्रेपण वरुं	२४६	रत्नकुण्डलभानूना	१२	राजपुत्रि परीक्षस्य	३६
ये प्रियादोस्तन द्रष्टु	४३	रत्नप्रथापादितचारु-	१६६	राजपुत्र्या सम बाली	६३
येषून्निमितच्छुण्डा	६३	रत्नमाग्नि क्रिमारणा	७०	राजमानैऽद्रिसाराणान्	१४२
येषा न भोजन हस्ते	१४०	रत्नमाली पुनर्नाना	७१	राजाधिराजतादिल्लः	१५५
येषा विरतिरेकादि	२५३	रत्नजातायनैर्मुक्त	२६	राजानमागत शाला	४६
यैः संमारसमुद्रस्य	१४२	रथामारुढमथान्त	७०	राजा भूत्वा पुनः शत्रु	६
यं जनस्याष्टम भाग	२७४	रथात्ते विगता शीघ्रा	३०६	राजालये समुद्योतो	४०६
योञ्जनानां शनैनापि	१५२	रथादुत्तीर्ष्य पद्मारवः	१७६	राशः पुरोहितस्यास्य	१
यो मिनेन्द्रात्थये दीप	६७	रथान्तर समारुढ	३६४	राश च सयद्दीनस्य	१८६
यो ना परकल्पामि	२६०	रथाश्चकारणारुढाः	३६०	राशोऽन्यस्य मुता नाम्ना	१८६
यो निर्गमयिष्यो पुनरा-	२६४	रथे दिशक्करापि	२८	राश्या पालय यत्न हन-	७६

राज्यं पुत्रेभु निद्रिण	१८८	लक्ष्मी कुमुदती यत्	१६४	सं सं जगत् सि - यो	१०८
राज्य-यश्च प्रमादाश्च	२६३	लक्ष्मी इः मन्मथं	१३०	सं सं दुर्गमरत्नं	१३३
राज्ये तथात्रिरेवम्य	६५	लक्ष्मी रग पुष्पकृष्ण	२२५	सं सं विनिर्दिष्टा इति	६३
रात्रावपि न निन्दन्ति	१०८	लक्ष्मी धर कुमारादा	२३१	सं सं इति इति सुं - यो	३२४
रात्रिमैका वहिमात्या	२३८	लक्ष्मी धरमत्त इव चद्	१२३	सोमस्य यममत्तः	१०६
रामः पत्रच्छ लेनैता	१८३	लक्ष्मी धरमत्ताशय	११६	[ य ]	
रामकपयसमुत्ताः	३६०	लक्ष्मी ररेण इन्द्रोमी	३६०	रत्नमन्तुरेश्वर	१२५
रामसादरज पूत	१५६	लक्ष्मी धरगुडुमी यम्य	३३१	वशाद्रिधि ररे मने	१२५
रामरुद्रमगपं म्ने	२१०	लक्ष्मीमान् लक्ष्मीधारा	३६	वसन्तगिन्दमने	२५०
रामरुद्रमगयोषानि	१६६	लक्ष्मीलताविपिकाद्	३०२	वसन्तस्य गवा भिर	३२३
रामे च पञ्चना प्राते	२६०	लक्ष्मीने दीर्घपुत्र	२५६	वसन्तस्य शरयामि	१३३
रामेण यमत्तरमागि	१६८	लग्ननशरीरनरतीरै-	३८८	वच गुमि तथा भिगा	२०६
राजण्य कुमाराभ्या	३८०	लक्ष्मी त्रिमिप म्य	३०८	वच भिगभिन्नीध	३२१
राजण्य मन्मथे च	३५६	लक्ष्मी हृष्टा समामत्रा	३५६	वसन्तस्य कृपा	१००
राजण्यस्य दि तचुल्यो	२६६	लक्ष्मी कमजिनीपण्ड	३३८	वसन्तस्य दुर्गामा	१०६
रिपुचक्रमिहायात	१०	लक्ष्मीरतिना गूल	२८६	वसन्तस्य गेसामुत्र	३०८
रिपुञ्जया श्रुतिस्थाना.	३५०	लक्ष्मीनाथरन पुत्रेय	३८०	वसन्तस्य गनुसार	३३१
रुद्राक्षराभिधानामि.	२५३	लक्ष्मीनाथमिथोवे-	३६६	वसन्तस्य मरिचि चै	३०
रुद्राक्षरकुचकत्व	६१	लक्ष्मीया. परिवारैषु	२८६	वसन्तस्य मद चार	५०
रुद्रमेवमल कान्त	२५	लक्ष्मीया तेन निव्यन्ता	३५०	वसन्तस्य मनागेन	३६
रुद्रमेवमल कान्त	१५५	लक्ष्मीयात्परिक्षेप	३१०	वसन्तस्य लज इत्तर	३६०
रुद्रमेवमल कान्त	३२०	लक्ष्मीया. कंयना यं दधु	३८६	वसन्तस्य शयनाम	३६५
रुद्रमेवमल कान्त	२३०	लक्ष्मीयात्पुत्रिभ्रान्ता	१०३	वसन्तस्य राजदानस्य	३३१
रुद्रमेवमल कान्त	३५८	लक्ष्मीया च पुनदान	२६३	वसन्तस्य रणे घारे	३५
रुद्रमेवमल कान्त	१६०	लक्ष्मीयात्परिपेयै	१८६	वसन्तस्य कृतमन्मनि	३५
रुद्रमेवमल कान्त	५१	लक्ष्मीयात्परिपेयै	५११	वसन्तस्य भिन्नना	१५१
रुद्रमेवमल कान्त	५८	लक्ष्मीयात्परिपेयै	५०५	वसन्तस्य पणना च	३५
रुद्रमेवमल कान्त	१६८	लक्ष्मीयात्परिपेयै	११३	वसन्तस्य शशाङ्का	१३
रुद्रमेवमल कान्त	१०३	लक्ष्मीयात्परिपेयै	१००	वसन्तस्य पुनरेव म	१००
रुद्रमेवमल कान्त	१०६	लक्ष्मीयात्परिपेयै	१८२	वसन्तस्य न्यमनेने	११८
रुद्रमेवमल कान्त		लक्ष्मीयात्परिपेयै	५६	वसन्तस्य वमना ऊने	१०२
रुद्रमेवमल कान्त		लक्ष्मीयात्परिपेयै	२५५	वसन्तस्य कित्तेव	५३
रुद्रमेवमल कान्त		लक्ष्मीयात्परिपेयै	३२८	वसन्तस्य नैकमयमे	१५६
रुद्रमेवमल कान्त		लक्ष्मीयात्परिपेयै	७३	वसन्तस्य च त तन मेह	२६०
रुद्रमेवमल कान्त		लक्ष्मीयात्परिपेयै	१८१	वसन्तस्य रट्ट हृष्टा	१३०
रुद्रमेवमल कान्त		लक्ष्मीयात्परिपेयै	१८८	वसन्तस्य तन - च	१६६
रुद्रमेवमल कान्त		लक्ष्मीयात्परिपेयै	१८८	वसन्तस्य ल चार	१६६
रुद्रमेवमल कान्त		लक्ष्मीयात्परिपेयै	१७१	वसन्तस्य कृत विन्	१५६
रुद्रमेवमल कान्त		लक्ष्मीयात्परिपेयै	५३	वसन्तस्य विन् पुन	२३३

[ छ ]

लक्ष्मीलक्ष्मीधर वन्तु.	२०
लक्ष्मीलक्ष्मीधर वन्तु.	३३
लक्ष्मीलक्ष्मीधर वन्तु.	१५६
लक्ष्मीलक्ष्मीधर वन्तु.	२०
लक्ष्मीलक्ष्मीधर वन्तु.	२५६
लक्ष्मीलक्ष्मीधर वन्तु.	२७३
लक्ष्मीलक्ष्मीधर वन्तु.	३२६
लक्ष्मीलक्ष्मीधर वन्तु.	३६१
लक्ष्मीलक्ष्मीधर वन्तु.	२२६

यनितामुत्तमत मे	२४०	बहन् परममावन	११०	विद्युताङ्गात् महायोधाम्	३४४
यनिते समेतच्च	२५७	वाचो मद्रचनादेव	१४६	विमहेऽधिभदे वापि	३७२
यनेऽतिभोगे कष्ट	३००	वातायनस्थितैषानि	१६०	विष्णुमाननयन	५२
यनेऽस्मिन् जननिमुक्	२४०	वातेनापहृते सिन्धो	२६६	विष्णुस्य कथ तस्य	१२
यत्न या जिते द्राणा	६७	वातहितामरन्वाजा	१६१	विचारेण न व हृत्य	३२६
य यानान महानागान्	१०५	वानस्याभोगमुट्ट	३०४	विनिनशात्तुरङ्गाश्च	१७१
ययत्तत्राधिकारे ते	७८	वानरीये खमालोक्य	३८८	विचित्रशिरसा यन	२११
ययत्यवनिता तावन्	२३७	वामे भुजे शुपेणश्च	३४८	विनिनस्वजनस्तौहै	१४५
यय तक्षने शीते	१३५	वायस प्राद्वति प्रीया	२८१	विचित्रै कुट्टिमते	३४६
यय पुण्ड्रकद्वयै	१४	वायसा अपि गच्छन्ति	३५	विचि वैव द्रुत गात्रा	२४
यय सम्प्रति त यच्छ	७४	वायुवा ह्यिप्रमाणेन	२१२	विशेषितमिद व्यर्थं	१८३
ययमाप सर्वेण	१६४	वायुपुन हृत ग गा	३०६	विन्दन्नकचुका अष्ट	२३२
ययसात्प्रयानास्तु	७२	वायुशाश्वसमैरश्वै	३०७	त्रिच्छिन्नचापकवच	३६४
ययसिन्धु मूचे मृ यु	३२०	वारणै सप्तभिर्गोभि	१३७	विच्छिन्ननासिवायण	७
ययमानाधरो ग व	१५३	वारणा मेऽकातस्य	३४८	विच्छिन्नाश्वमुत्रात् काश्चत्	२६६
ययम ह्यरमुत्सु प	१३५	वारुणेन ततोऽस्त्रेण	३८०	विजहार भगतभास्तन	१४६
ययवारणमारुह्य	१५२	वाता वपी गतो याव	२६०	विभाषननचाद्युक्ति	२६८
ययस्त्रीजनमुदाने	३३६	वार्ता समागता भवु	३२६	विशापप्रति देव त्वा	१५
ययजननगाभाना	१५५	वायभाणाऽपि य नन	२०२	विशेष कपिऽ रत्त	१४१
ययत्कामदर्शना	२०	वाहदगतप्रसादेन	१२२	विडम्बनमिद कथ्मा	६४
ययरादमहिष धाम	२०	वाक्त्रिपितृयस्तु सम्पात	१३२	वित य सकल लोक	२३६
ययतते किमि मात	८२	वाक्त्रिंति याऽन विद्यात	२७०	वितापिर्विधिना ध्वस्तो	३०५
ययनेऽनुनित राट	८२	वासमानो मुहु कू	१२६	विदग्धनगर चाप	२
ययतमान महाशरु	३४४	वासय युक्त कश्चि	४५	विष्णो विजया मेव	६१
ययरैस्तु महागै यै	१८	वाहनावस्तसम्पात	३८६	विदेशगमनोद्युत्	८१
यया शतभिमुक्तानि	२२३	वाहिनी त्रीणि गुल्मानि	३५८	विदेशा तु हृते पुन	१२
ययासोताशरैश्चरै	४११	वाटोऽह भरतस्यापि	१७३	विदेहेति प्रिया तस्य	२५
ययीना वरते वृद्धि	४६	विशतिपाजना यस्या	३५६	विदेहे धात्रीपण्डे	६६
ययीभिर्गुणैरे स्तारै	३१३	विशतिराशयाणा च	३७	विदेहे पीडरीकारये	४०२
ययर्ष वायुपुत्रस्य	३१६	विशचाक्षय्यति सीता	३२६	विषया तपनास्त च	३६२
ययौभूतेषु सिद्धे	३०७	विस्फीभूतेन्द्रिये	४१	विद्ययाऽनिलपुत्राऽपि	३६२
ययस्तत्किनाभिरप्ये	१८५	विस्फुपुत्रस्तन्नाताम्	२२३	विद्यया पर्णव्याहो	४०३
ययुभूति सम तेन	१८४	विष्मत्रयनाम्नात	२०६	विद्याकवचयुक्त च	३१८
ययुभूतिचरेणाथ	१८०	विस्मयमनादेह	३२०	विद्याको शकविष्णुपति	३६४
ययुता येन दानेऽह	२५८	विनाला लालन वाञ्छि	३६७	विद्या परकृमादीणा	२६०
ययन्नान्तिविनेन्दुना	२६१	विनीनास्तण्डुला माया	१०४	विद्याधरमहामनि	४१२
ययान्द्रामालाभि	१२६	विनात स च शश्वीय	१२०	विद्याधरमहापति	२५०
ययन्ता चानमान त	२३२	विनान्तरुपादृष्ट	४६	विद्याधरे समागय	४२
ययन्तो दर्पमुदारमुच्यै	२१३	विनान्ताय तथा तस्मै	४२	विद्याधरविष्णुर्षै	३०५

त्रिपेणात्यन्तपरम	४६	वेळन्धरपुरस्त्रामो	३४८	शक्नोति सुखधीः पातुं	२५३
विष्टवान-दजननी	५२	वेश्या कामलता हृष्टा	१११	शक्रपासादसङ्काश	३४२
विस्तीर्णां प्रवरा सम्प	३५१	वेश्याचरणथोरचासौ	१६२	शक्रभूतिरयागादी	३५८
विस्तार्णेन किमुत्तेन	२	वेष्टितः किङ्करैः क्रूरै	३४२	शत्रस्येव शची पार्श्वे	४१२
विस्मये जगत शक्ता-	३२०	वैदेहि तन न ज्ञातः	३३०	शक्रायुषश्रुतिर्यत्ते	१२०
त्रिरिमता गापुराप्रस्था	११८	वैदेहि भयसम्भजा	१८१	शङ्कितो धातकीद्वीपो	२६७
त्रिरिमत्य मुचिर राम	३०४	वैदेही सङ्गरेयोचे	१७६	शच्येव रहित शक्र	३०३
त्रिहरन्ती ततः क्षाणी	१७०	वैदेह्याः शरण देय	६६	शतानि वरनारीणा	३५
त्रिहाय लौकिक मार्गं	१४२	वैदेह्या सङ्गतो रामः	२२४	शतानि सप्तविस्तीर्णां	२८८
विहितातिथिसम्माना	१०६	वेन्तेथाल्नयोगेन	३६२	शत्रुघ्नोऽपि सुसम्भ्रा-तो	४०६
बोद्धस्व माहात्म्यमिद	६६	वैराग्यादयथा ताते	१५८	शत्रुन्दमकृतच्छन्दौ	१७६
वीक्षित परम रूप	६२	वैवस्वत शशाङ्को नु	१०५	शत्रुशब्दममृष्यन्तो	१८
वीक्ष्यन् वासरे. स्वल्पै.	२६६	व्याक्षेपो मे कुत- कश्चि-	४६	शनैः प्रसन्नता याते	१५३
वीणा च सत्रिभाषाङ्के	१८१	व्याघ्रयुक्तरिमैलुगै	३६४	शनैः शनैस्ततः कम्प	२४
वीणातन्त्रोसहस्राणा	२६६	व्याघ्रसिंहगजेन्द्रादि	८६	शनैर्विहरमाणा तौ	१७८
वीणादिवादनैस्तासा	२८१	व्याचाननै. कृतोत्पात	२५६	शब्दोऽय शोकसम्भूत	२६०
वीणात्रेणुमृदङ्गादि	१५३	व्यापाद्यते न किं दुष्टः	३४०	शम्भुक. साधितो येन	२३३
वीरपत्नी प्रिय काचि	३६१	व्याताशेषजगत्कीर्ति.	१६६	शम्भुकस्य वध युद्ध	२६६
वीरा योद्धु दत्तचित्ता	३६६	व्यालाजनाद्वा त्रिपतो	६६	शम्भुको नाम सन्दर्च	२२५
वृत्रेण मारिता मेपी	२०७	प्रजता बन्धुदत्तेन	२८५	शम्भु. स्वयभुश्चन्द्रार्वा	३७४
वृक्षैर्वियाजिता बल्प	३३६	प्रज तावत्परमादह्य	६३	शयनान्यासनैः साक	१६६
वृताः सामन्तचक्रेषु	३४८	प्रजति विप्रिनियागा	३६५	शयनासनवादित्र	२११
वृत्तान्तमिममालाक्य	४२	प्रजनोश्च तयारुग्रा	१४२	शयनीयगतै. पुष्टै	४०४
वृत्तान्तमीदृश भुक्त्वा	२०८	प्रजन्तो लीलया युक्ता	१०३	शयिनाश्च यथास्थान	२६६
वृत्तान्तभ्रमगात्समा-	७१	प्रजन्ता वाहनैश्चित्रै	३५४	शरज्जर्जरितच्छत्र	३८१
वृत्तान्तेनामुना कस्य	२६६	प्रज स्वास्थ्यमिम लेख	१३	शरत्कालः परिप्राप्तः	५४
वृत्तान्ताऽय च मञ्जातो	२०६	प्रजानय जनन्यौ नो	२२१	शरघारा क्षिपत्यस्मिन्	२७८
वृथा रादिपि किन्नेत	३२१	प्रतहानतसदानै	६८	शरशक्तिशतस्त्रीभि	३२०
वृथात्राचन मा किञ्चि-	७३	प्राडा प्रजति मे चेत.	२६६	शरीरच्छायया तुल्याः	७२
वेगनिक्षिप्तनि शेष	२८२			शरीरखट्वाभिय मन्मपरः	४१३
वेगनिर्मुक्तदुःखाराः	११७	[ श ]			
वर्गनाशतन्तस्य	३३८	शकुन्तया मृगाश्चामी	१०८	शरीरमानधारी तु	५
येगीरन्ध्रमुनिच्छाय-	३४५	शक्तिः पलायिता करारि	४०१	शरीरयात च विधाय	२२०
येणुन्नीममाशुत्र	३२७	शक्ति दधनापि परा	२६८	शरीररथमुमुक्ताः	१८७
येणुनाशदृष्टामाश्च	३६८	शक्ति य. पाणिना मुक्ता	१७२	शरीरिमार्यं प्लवस्मिन्	१८६
येषैः श्यामलनाभिरच	२१२	शक्तिमोमरचक्रामि	३३७	शराः शरैरक्ष्यन्त	३२०
येदिबापुण्डरीकाभै.	३०८	शनिमुद्गरचक्राणि	२३५	शरे निहितदृष्टि त	४१
येदितागमनन्तान्द्	२६६	शक्तिशक्तिवरद्वरच	४०१	शर्यरी भग्गनां यन्त्रा	१४८
येषि निर्मन्त्रोभ्यद्रा	३०६	शक्त्या मुद्यत पाशानि	२५६	शल्यभूतोऽस्य विश्वस्य	२६७
		शक्त्या हउ गत भूमि	३६६	शक्तिमच्छलमद्वारा-	३०६

शस्त्रान्वकारिते जाते	२३७	शौचमा द्विरदाः पेतु	२३५	श्रुत्या धर्मं मुनेः प्राप्त.	३
शस्त्रिवृन्दावृते तस्मि	१७२	शोकविरमरणे हेतु	१३	श्रुत्यानरण्यपुत्रस्य	१४८
शान्ताम्बलकायन्त	७२	शोकाजुलजनाकीर्णे	२००	श्रुत्या पङ्कजरागावाः	३०१
शालानेभरिचिह्नाना	३७८	शोभावर्तनिमग्ना ता	३८	श्रुत्या परचमूर्त्य-	३६३
शाखामृग्यजो तावत्	३६६	शोको हि नाम कोऽप्येव	२४९	श्रुत्या परजल प्राप्त	३०६
शातकौम्भानिमान् कुम्भान्	४०६	शाचत्यनुगुदीर्णाणा	२६४	श्रुत्यावीड गुतारोकं	२७३
शादूर्लसङ्गतैस्त्वङ्गै-	३६७	शोभयापद्धतस्तस्या-	२३०	श्रुत्या प्राप्तं हनूमन्त	२७४
शादूर्लस्नाहित. पूर्वं	३७५	शौर्यगर्भप्रियायुक्त	३६६	श्रुत्या सिद्धरत्न पद्मा	३२६
शासन यच्छ्रुता नाथौ	१३१	शौर्यमादात्म्यसयुक्त	३०३	श्रुत्या स्व स्व इत नाथ	३७४
शासनस्य जिनेन्द्राणा-	५७	शौर्यातिगर्वसमृद्धा-	३६५	श्रुत्वैव कौतुमी कञ्चि	१७१
शास्त्रानुगतमस्तुद्ध	३५१	श्येनयुत्रैप लघुभ्रमपद्मो	२१४	श्रेयस्करपुरस्वामी	४०६
शिथिलीभूतनि शेष	३२८	श्रद्धासवेगहीनाना	६८	श्रेष्ठेन विदुषा तेन	२८७
शिरसो मुखेनैः स्नानै	६	श्रम कृत्वापि भूयासं	११	श्रोतु समुद्रतस्यैवं	६७
शिरोपत्रमुभासारं	४२१	श्रमणा ब्राह्मणा गावः	१३४	श्लाघामित्थतिनीर्यस्य	१६७
शिलाकामिह वे मिद्धा	२६६	श्रमादिदु खपूर्णस्य	६	श्वसत्यशुभागस्त्रीभिः	४०४
शिवं सौम्याननो वाक्य	३५१	श्रावकोऽय निनीतात्मा	२०६	श्वसुराम्या तता शाला	२८४
शिशार्निपक्वले प्रीति	३४	श्रीनन्दावर्तनगरा	१५५	[ प ]	
शीतल त समाप्राय	४१२	श्रीमास्तावन्मरुत्पुत्रः	३३२	पल्लण्डा वैरिपि क्षाणी	१६५
शुच्यङ्गाया च वैदेह्या	२००	श्रीमानयमसौ राजा	३०३	पद्भि सप्तऋतैः साम्रै	३१५
शुद्धात्मा भगवान्बुधे	६०	श्रीमान् जनकगजस्य	५८	पद्मं स्वातुमम्पत्र	७२
शुद्धात्मा श्रूयते सोऽन	११५	श्रीप्रभामण्डलेऽप्येक	५६	पट्टरैरुपदरीशुच	३३३
शुभे काश्चित्प्रतीक्ष्य	१२८	श्रीरत्नश्रवस पुत्र	३५३	[ स ]	
शुशुभाते तणात्यन्त	२५०	श्रीरत्नश्रवसि सम्पूर्ण	३०३	सङ्क्रुद्धभागिभागोभा	१७४
शुश्रूषा भवतः कृत्वा	१६२	श्रीशैलसमुद्रैर्गौरै	३८५	सद्गुण्वास्तनयास्तस्य	४१०
शुष्मागवृत्तमरोधे	३१३	श्रीशैलस्य गियत्युच्चै	३१३	सद्गुण्वास्तनयास्तस्य	१७६
शुष्मपत्राशिनस्तत्र	१०१	श्रीसत्रयो जयो भानुः	३६	सद्य विनुर्गंध इष्टा	३१६
शूर मन्दिगोश्रीतु	३३१	श्रुत वेसरिज कृच्छ्र	३०८	सर्गतिन समुत्तता	१६३
शूराः परम सामन्ताः	३५३	श्रुत सत्र न तस्मिन्ना	१३६	सधारलमित्ताम्मोट	३६८
शृणु देवि यतोऽरथ्या-	३७	श्रुत वेस्ति जिनेन्द्राणा	४६	सहा प्राप्य ततो हृष्टि	२३६
शृणु नाथ । दयाधार ।	१६२	श्रुतदुश्चिरिति ख्यातो	१५७	सदशंश्री महामत्वी	२७३
शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि यन्मा	६७	श्रुतश्च तेन वृत्तान्तो	२३	सधानवर्जितान् वर्णान्	४८
शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि रामस्य	१५	श्रुता सङ्गीतनिराणा	६२	सध्याभ्रपुत्रकाशान्	२६
शृणु शृण्विति तत्राय	१७१	श्रुत्या जेजलिन. पद्म	१६५	सत्रद्वन्द्वतुण्डीर-	३६८
शृणु मारथ्यनुष्ठेन	७८	श्रुत्या चैत्रविध त च	२०७	सन्यासेन तनु त्यक्त्वा	६६
शृणु मुन्दरि मन्दाय-	२५५	श्रुत्या त मिथिलाधीराः	१५८	सप्रमुच्य प्रणाम च	४००
शृण्वरित मृत्तिकापत्या	२८४	श्रुत्या तदिन्द्रजिद्विक्य	३५२	समापितं म रामेण	६४
शेष मातृजनं नत्या	८०	श्रुत्या तद्वचन तस्या	२३०	सरद्ध राजपुत्रीं त्व	२२५
शेषाः कन्या यथायोग्य	४१२	श्रुत्या तद्वचन शिभत्या	१३५	सरद्धय जनक प्रीतः	१६
शेषामिन ततो मूर्ध्नि	२८६	श्रुत्या तानदल तार	२४६	सरम्भवशसङ्कुल	३१६

सवृत्तो माममाश्रोऽस्य	२८	स तयोः प्रणतिं कृत्वा	१२१	सन्मानैर्नहुभिः शश्वत्	२६७
ससारधर्मनिर्मुक्तान्	२६५	सतालशब्द जनजात्मजाया	२१०	सपत्नीभिरपि प्रीत-	४७
समारोऽतिचिर भ्रान्त्वा	२०५	स तूर्णं धनुरादाय	७६	सपुरस्कारमारोष्य	२६४
संसारे न परः कश्चि	७१	सत्य यदौदृशः स्वपातः	२६०	सतकक्ष्यादृसम्पन्ना	३६८
संसारे मुन्त्रि भ्रान्त्या	६०	सत्यनेनुगर्णशेन	६१	सफेनवलय लसत्य ऋद्वीचि-	२१६
संसिद्धसूर्यहासश्चे	२२८	सत्यप्रतधरः सग्भि-	६६	समानुरञ्जनी यावत्कषेय	७६
सहिताभिव कामेन	२३६	सत्यश्री कमला चैव	३४६	सभाया पितुरस्मार्क	२०८
सङ्गम्यदृष्टया सीता	४१	स त्रिः प्रदक्षिणीकृत्य	१२०	सभावापीविमानाना-	३३८
सकलविप्रवनिर्गतनीर्तयः	४३	स त्वं नाथ जराधोर्न	५०	सद्भावज्ञानेन लज्जा	१२६
सकषया तपः कृत्वा	६	स त्वं निष्कण्टक तात	७८	सम करतलैर्दन्तु-	३३२
सकृत्कारं मुहुः कुर्वन्	४८	स त्वं भूतिमृगो जातो	७०	समं किं परिवर्णेण	१२४
सग्नि पश्यास्य धीरस्य	११६	स त्वं रत्नजटी पूर्व-	२८७	समं कुलिशकर्णेन	१२४
सखी त्व मूर्च्छया तस्या	७६	सत्प्रत्यागादिवृत्तीना	१८	समं दशाननेनास्य	२६८
सख्योऽत्र वनमालायाः	१५१	सत्पुत्रोद्यो भगान्यो वा	२७५	समं पुत्रसहस्राणां	४०५
सख्योऽनेन पथा दृष्टी	१७०	स टप्यो नीयमानः सन्	१३१	समं साहसयानेन	२७८
सग्रावभिः वरैर्भानो-	१०७	सदर्पेर्निर्गतयौधे	३६६	समं लक्ष्मणस्याथ	२८७
सङ्क्षेपं तयोर्थावद्	१२१	सदा करोति सर्वस्मै	३२७	समन्तकुमुमं ताव-	२६२
सङ्कटोऽकटतीक्ष्णाप्र-	३१७	स दृष्ट्यातिशयोपेतौ	२०१	समय शृणु भूनाथ	३६
सङ्कल च त्वा तेन	३०२	सद्गन्ध विपुलं स्वच्छ	३३३	समये नारदस्तस्मिन्	२३
सद्ग्राहामिमुणोर्भारगः	३६२	सद्भावान् प्रणयोत्सिः	१	समयेऽस्मिन्नतिशान्ते	२२१
सद्ग्रामे तागं नशो	२६७	सद्भूतगुणमस्वीत्ते	१२१	समये हि कृते तेन	३५६
सद्ग्रामेऽभिमुणो भ्राता	३६४	सद्यो विनयनग्राहो	१७४	समयेः मान्त्वयित्वेति	१६६
सद्ग्रामे विद्वतः पृष्ठे	३६१	सद्वितीय ततो दृष्ट्वा	१५०	समर्थितप्रतिज्ञासौ	३३२
सद्ग्रातमृत्युमस्मात्-	३८१	सन्कुमाररूपोऽपि	२५८	समसाम्य जनाः शुभस्मरणः	४४
स चाह च मुनम्याशु	१३	स नाजानाद् द्विप न क्षमा	३८०	समस्तोक्तिमुत्तमनिग्रहे	४३
सन्निवाः सन्निधेः साव	३७५	सन्नुष्टोऽङ्गतं ताम्यो	३२६	समस्त च समाख्यात	३११
सन्निधेः परमयुजः	४०६	सन्वयस्मिन् विविधा भ्रात-	२२०	समस्तेभ्यो हि वस्तुभ्यः	१७१
सन्चेष्टाः पूजयमानास्ताः	१२३	सन्वयस्मयमानाङ्गा	८८	समाश्रितवृद्धोऽय-	१०५
सन्चेष्टैर्वदुभिर्मुना	१०१	सन्वधानं शरं धीक्ष्य	३३०	समादधे स्वल्पाणि-	२४
सन्वयपित्री जीमूतो	१८३	सन्दिदेश च सुमोच	३०७	समाधानोपदेशेन	१६१
सन्वयो दृश्यते ज्याया-	१२२	सन्दिहाना निजे नाये	२७४	समाने जानकी तरिमन्	३५२
सन्वयभोदराजाय	२८३	सन्देशतापिच्छेदि	६०	समासाशनसृष्टयश्च	२०६
सन्वया परमा भूमिः	१६५	सन्धियु षिद्धयमानेषु	६	समायासुपविष्टोऽसौ	३५४
सन्वयन्ती तनुदेशं	२२६	सन्ध्याया रञ्जिता प्राची	२५६	समालम्ब्य विनान् गन्धेः	६७
सन्धिम्येनि कृतभ्रान्ति-	२३१	सन्ध्याकारः मुपेक्ष्य	२६६	समाने क्व कुमारगता	२६
सन्ध्याय रोदमी सैन्य-	३६५	सन्ध्याकालेऽथ ये केचित्	१६१	समात्तरय समीपे च	११२
सन्ध्याय चिन्तयन्ती त्या	३४५	सन्ध्यासनाश्रमद्वार्यं	३२२	समात्तरय च सर्वत्र	२४०
सन्ध्याय चिन्तयन्ती त्या	१६७	सन्ध्याशोऽश्वत्थामेशी	५४	समात्तरय च सर्वत्र	१४३
सन्ध्याय चिन्तयन्ती त्या	२०६	सन्मानविशिष्टीर्निदो	१४५	समात्तरय च सर्वत्र	२६०

समसाद्य च तै सर्वे	२७८	सर्पानागता चीना	६	सशस्त्रय दरिक्रय	११२
समाहितमतिनाना	३८०	सर्पजात निशम्यैत	२६४	समागता मही देवि	३३२
समित्फलप्रसूनार्थं	१०२	सर्वते चस्त्रिमुञ्जान	३५६	सस्यत् त्विगि चन्द्रु	२८६
समिदर्थं प्रयातेन	१३६	सर्पता मरण तु त्व	४६	मस्थानि कृप्यच्यानि	१०४
समापता च सम्प्राप्ता	१८७	सर्पेन चगति रयात	२६५	सम्यानि बहुरूपाण	८७
समायाभय चोद्योच	२५८	सर्पथा जिननद्राथा	४११	मस्यैर्गुह्यप्रकारिश्च	२७२
समीचीन्य दूतश्च	२७६	सर्पया परमासाहो	२३६	सरिमता लानितैर्मन्या	१६०
समुत्पतालकैभामै	१८०	सर्पथा प्रातःकथाय	२६१	सहस्रमतिनामाथ	२६७
समुद्रजलमध्यस्थ	२४८	सर्पथा शुद्धभावाश्च	२६५	सहस्रमविश चायन्	८१०
समुद्रावर्तभूल्युर्व	३५४	सर्पेण सुभभा पुम	२६२	सहस्रमरुपयाया	२६१
समुद्रावर्तसजेन	३७	सर्पप्राणिहिताऽनाच	६०	सन्ध्यामरपूयस्य	२०६
समेति बभ्रुलाकाऽस्य	६५	सर्पभारडेन तौ रत्न	३५५	सहस्रैरगताऽप्याभि	१५६
सम्पन्निरेवमाद्याभि	२६१	सर्पभूतहिता नाम	५१	सहापरदितस्वन	२८४
सम्भूय च पुनमुक्त	३४६	सर्पमक्षपवर्तपु	१४०	सहायैमृगराजय	३३७
सम्भूर्णच द्रवदन	८४	सपमतत् समासन्न	१२६	स हि रावगागट्टेन	२६५
सम्भूणाना पत्तमहसा	५३	सर्वलोऽस्य नेत्राणि	१६१	सहानन्दमने शिष्य	१४६
सम्भूर्णे दुसमानोऽपि	२३३	सगत्याधराधाश परा	२५७	सकाश्यपुरनाथाऽय	३६
सम्प्रहरिस्तता र्ण्यै	३०६	सर्वनित्राधराधीशस्त्रि	२३३	साक निजयमुत्था	१९६
सम्प्रहारा महान् पातस्तथा	२७६	सर्पत्यापी समुद्रिघ्ना	३४५	साक विभल्या देया	१६०
सम्प्राप्त परम काथ	१६१	सर्पशास्त्रार्थं चागु	२३०	सागर नरकार च	१०६
सम्प्राप्तश्च महानाल	५१	सर्पसारश्च दुर्बुद्धि	३६७	सागारधर्ममपरे	१५६
सम्प्राप्य च चिरात् सजा	३८६	सर्वसौम्ययुक्तस्य	२०४	सागारधमरुत्स्तु	१४१
सम्प्राप्य सव्यस यस्मा	१५७	सर्वस्मृतिमहाचार्यै	२३६	सागरान्ता मही यय	२८७
सम्भाषणै कुत्तानै	१०१	सर्पस्यामरनौ रयात	५७	सागरागारमत्युग्र	३५६
सम्भ्रान्तमानस मिद्धि	३५१	सर्पेननापि य पूर्या	३४०	साग्र याजनमत ना	१७६
सम्माना जपगिरश्च	३६७	सना प्रियास्तदा तस्य	४५	साग्राभिश्चाग्नाम्नाभि	३७३
सम्मेद च ब्रजन्ती ता	१८७	सवाकरसमानीते	२८१	सा जगौ चातु पद्मस्य	१३७
सम्यग्दर्शनमात्रेण	६१	सनाविष्यसमेतास्व	१०२	सायौ धर्मेण या युजा	१४४
सम्यग्दर्शनरत्न स	६६	सनाद्रसमेतश्च	७१	साधनेन तत्रप्रण	१५६
सम्यग्दर्शनहीना या	१६६	सनानाम च विन्यम्य	६६	साधुगोश्रान्ताकीर्णा	१६
सम्यगट्टि पुनर्बन्तु	८	सनासामन शुद्धाना	८४	साधुत्तमुने पार्श्वे	१६१
संश्लेष्य सर्पता नामै	३६२	सर्पेण भूयता नाथ	७४	साधु दानाद्विज्ञेने	३७१
सरस्याश्च तत्रे काल	५१	सर्पेणमेव जावाना	१५२	साधनानि भगस्त्रैपा	६१
सरस्युत्रिद्रपघ्नापि	२८१	सर्पागायनि गानन	२६७	साधुपूर्वभय धुजा	१६४
सरागि पञ्चजाड्यानि	२२३	सत्यद्वादिताम्बूल	१६६	साधुप्रपाठोत्तरन	१०६
सरायनूनि रम्याणि	१३७	सविमुच्यानुवाच्यैव	१५५	साधुभ्यामुक्तमित्येत	२०६
सत्स्वर्तदुर्गापु	४	स ब्रजन् शुद्धगानाचि	२०७	साधु साधु त्वया चिन	१६५
सपन् भीता समुत्थिय	३२७	सशालर्चयनिस्वान	४३	साधु साध्विति देवाना उभूय	४१
सर्पिणा जिननाथाना	६७	सशर्द्धैगायतै स्थलै	३४२	साधु साध्विति देवाना मधुरा	२०१



साधु साधित सतिमत्य	३१६	सिंहोदर इति ख्यातो	१०६	सुमीवरूपसमुत्तः	३२६
साधुसेनाप्रसादेन	१६४	सिंहोदरप्रभृतयो	१३२	सुमीवरूपसम्पन्नं	३०५
साधूनामग्रतः पूर्वं	२३८	सिंहोदरमहिष्योऽथ	११६	सुग्रीरस्य वचः भुत्वा	२७४
साधूपसर्गमथने	३३६	सितकीर्तिसमुत्पत्ति-	८१	सुग्रीवाकृतचौरिण	३००
साधोः कमलगर्भस्य	७०	सितचन्दनदिग्धगा	२६४	सुग्रीवाकृतनिर्मुक्तं	२७७
साधो केनापि पृष्टत्त्व	३५२	सितानामातपनाणा	३०१	सुग्रीवागमने तेन	२७०
सा निरांशुशिला येन	२६६	सितासितारुणाभोज-	२१२	सुग्रीवाद्याः समासीना	२६७
सानुम्भो रवभासेन	३७१	सिद्धाः सिद्धयन्ति सेत्स्यन्ति	६८	सुग्रीवेण प्रतीष्टश्च	३०२
सानुजः सानुज पद्मो	२१	सिन्धवः स्वच्छक्रोलाला	२२३	सुग्रीवोऽप्यभिसक्तात्मा	२७०
साऽनर्गत समतिनात्त	३२२	सीतया सह रामस्य	३२२	सुग्रीराणि प्रसार्यन्ता	२६७
सा भामण्डलचन्द्रेण	४१०	सीतया शोभितं पार्श्व-	१०६	सुचिरं देवभोगोऽपि	७७
सा भामण्डलसहाय	३२	सीतया सहितस्तरथी	१२६	सुचिरं प्रथितं लोके	१२७
सामन्तैरथ सन्नद्धै	११७	सीता चाकिलष्टसीभाग्या-	१६६	सुतं स्वैर समादाय	२८४
सामन्तैर्बहुभिर्गत्वा	६१	सीता तन विशुद्धाक्षी	६०	सुतरा तेन वाक्येन	१४७
सामाधिकं पुरस्कृत्य	१३८	सोतापतिस्ततोऽनोचदिति	२२०	सुता जनकराजस्य	२६०
सामोरगिरवः श्रुत्वा	३४५	सीतायाः शोक्तताया	२५२	सुता तु द्रोणमेघस्य	४१२
सापेदैर्भूजभेद्भूतैः	६७	सीताया वदनाभोज	३०५	सुतारामवनद्वारं यो	२७४
सायने रविहामाल्ये	३२६	सीता लक्ष्मोदरश्चैव	८६	सुतारेति ततोऽनोचत्	२७३
सा याजदण्डहीन्युक्ति	३१६	सोताशरीरसम्पर्क-	२८१	सुतारी सङ्गता वल्लो	१७८
सायाद्धे सौम्यवपुगो	२६६	सोता सीतेति कृत्वास्य	२६४	सुतैर्दशरथोऽमीभि-	३६
सारङ्गदयिताभिश्च	२६३	सीतोवाच कुशीलस्य	२५८	सुतोऽभूद् भद्रधारिण्यो	६६
सारङ्गैरपि सार्धं	१३४	मुकुमारशरीरोऽमी	२६२	सुतो यस्याङ्गदामिल्यः	२७१
सारैरेवविधैरांक्षैः	३८	सुनेतुः प्रतिबुद्धः सन्	२०७	सुदीर्घोऽपि तयोः कालो	१७८
सा लक्ष्मणकुमारेण	२६६	सुनेतुस्मिनेतुश्च	२०७	सुदुर्लभमिद्रं प्राप्य	३५२
सा पित्रावलगम्भीरा	११६	सुनेशतनयाः पूर्वं	३४८	सुदुष्कर विगेहाना	१०६
सापोचद्विषय वरुधारिम	११	सुकृत दशयवनस्य	३४०	सुनिश्चितानामपि सत्रराणा	३७०
सापोचदस्तु नामैव	११	सुत्प्र प्रसारतो यस्य	३३०	सुन्दरि पश्य वराह	२१४
सापोचम्भपुरैर्वर्णः	१६१	सुत्प्र सप्तसास्त्रेषु	२४७	सुपीररभुजो धीरः	३६८
साह दुःखमदस्याणा	२३३	सुव्यथीतो वयो वायुः	३३५	सुपीररभुजो धीरो दुर्दर-	३६०
साह न षड्यथिच्छक्या	४११	सुन्वेन च प्रयुता सा	५७	सुप्त तममिना हत्वा	१८६
साह पूर्वहृतात् पायाद्	२२६	सुन्वेन पात्विता क्षोणी	५०	सुप्तस्योत्थाप्यमानस्य	४०८
साहममाममयाया	३२८	सुप्तेन प्राप्य निद्रा च	३८५	सुप्ताङ्गरनिश्वासा	१०२
सिद्धमुन्यनाश्रुतः	३६४	सुप्तोदधी निमग्नत्व	३५१	सुप्रभा नाम मे माता	४००
सिद्धनारण्यार्द्रुल	१३८	सुगन्धिभिर्मदाभोजैः	२६४	सुभद्रो मुनिभद्रश्च	१५६
सिद्धनामपुरेऽस्य	१८२	सुगन्धिमाल्यवस्त्राद्यै-	३०४	सुभूमश्चभृद्भूता	१४४
सिद्धमशृद्धसाहोद-	३७४	सुगुनिभ्रमणोऽथोचद्	२०२	सुभूरिचरित पात्र	२०१
सिद्धानां भविजनन	२४०	सुगीरः सन्निवेशः साक	३५७	सुभृश तेन वद्धिः स	३१४
सिद्धानां महागोपी	३१०	सुगीरवैः सुतुनगर-	२६७	सुभदान्भृगुरेकश्च	१२३
सिद्धे करीन्द्रकीर्त्या	१५८	सुगीरमेव सुग्रीशो	२७६	सुनिनाम्ननोऽथोच-	२४७

स्फुट यातोऽमि हा वत्म	२२८	स्वशरीरेऽपि निस्सगा	१४१	हा तात क्व प्रयातोऽमि	३००
स्फुटिताधरपादान्ताः	७२	स्वसशयमशेषत	६७	हा देवि किमिदं मुग्धे	४६
स्फुरच्चण्डाचिरन्त्रयोतिः	४०४	स्वसार च समालिङ्ग्य	६६	हानिः पुरुषकारस्य	३२६
स्फुरत्स्फुलिङ्गज्वाला च	४१०	स्वसारमेवमाश्वस्य	२५४	हा पुत्रो मुमहावीर्यो	३६६
स्फुरद्भुजगपित्तारि-	३१७	स्वस्ति स्वस्तिलकोदार-	१५५	हा भद्रं लक्ष्मण प्राप्त-	३६६
स्मरन् मोता मनायाता	२६४	स्वस्मिन्निहितचेतरके	२२०	हा भ्राताः परमोदार	३६६
स्मरप्रालेषनिर्दग्ध	२६४	स्वाध्यायनिरतानन्यान्	१८६	हा भ्राताः प्रथमं दृष्टो	६४
स्मरेपु हतचित्तोऽमौ	२८३	स्वामिने चावदन्नत्वा	३०	हा मया पुण्डरीकाक्षौ	१४५
स्मित्वा च म जगदाय	१४३	स्वामिनो दशवक्त्रस्य	२६६	हा मातः कोऽयमत्रेति	२३
स्मर्यमाणोपदेशोऽमौ	२०६	स्वामिना दृष्टिमार्गस्थाः	३१६	हा मातः पश्यतामुग्ध	२०२
स्मन्दनैरांशुः सिद्धे	३६५	स्वामी त्व परमोऽस्वामि-	२४७	हा मातः सत्रल लोक	४०३
स्मन्दनैर्विधैर्यानैः	३५६	स्वामी भरतखण्डाना	२८७	हा मातस्तादृश दुःख	४०३
स्मन्दनोद्वाहिनागाहि	३७६	स्वाहारेण क्वचिच्युताः	१६६	हा मेऽन्तःकरणच्छाय-	४०३
स्वच्छनोन्मन्वरधर-	३०४	स्वेच्छ्या तेपु यातेपु	१४७	हार स्वयप्रभामिच्छुं	१४७
स्वजन नैव ती कश्चि-	१८६	स्वेच्छ्या पर्यन्तस्ते	२११	हारराजितपद्मका	१५३
स्वजनस्थस्मरे ज्ञाता	२६१	स्वैर स्वैर जनकतनया	१२४	हा वत्स विधिरोगेन	३६६
स्वनाथरचनात् साधरी	३२६	[ ह ]		हा सीत इति भाषित्वा	२३६
स्वराकादपि पारीयान्	३०५	हसकुलामफेनपटलप्रमिन्न	२१७	हाहाकार गृपाः कृत्वा	३८
स्वप्नः किमेव सम्प्राप्त	४०३	हसस्तारात्ससमि	६३	हा हा मातः किमेतन्पु	२०५
स्वप्नप्रतिममैश्वर्य	१८६	हसीय पद्मिनोऽवण्डे	२२६	हाहाहोकारगम्भीरः	३३८
स्वप्नमेव तु पश्यामि	१३७	हत् महोपकारेण	३३	हिंसाधर्मविहीनाना	१६
स्वभावमागत दृष्ट्वा	२७७	हतान् हन्यते पूर्व	३७२	हिंसाया कारण धोरं	६
स्वभावत्रिव्यामश्नत्वा	२२५	हत्वा शनून् समुद्रवृत्ता	३५२	हितं करोत्यसौ स्वस्य	१०८
स्वभावाज्जसम्पन्ना	६१	हनूमानप्यल रेजे	३०४	हिमादत्त इवात्पर्य	४८
स्वय दुर्मतिना साध्वं	३४१	हनूमानिति निरुयातः	३३०	हुताशनशिखागौर	३०
स्वयस्वामिध गूयं	४२	हनूमानिपुमिस्तस्य	३०६	हृताभयो द्विजो दीन-	२
स्वयमेव गमिष्यामि	२२१	हनूमान्यायदेतेन	३३६	हृता तत्र मया जाया	५७
स्वयमेव च सुप्रीयः	२८६	हत्वा सत्प्रसहस्ताणा	१०७	हृदयागारमुद्दीनं	२४१
स्वर्गादिव तनोऽनसत्	१२६	हरियाहननामाऽय	३६	हृदये स्थापिताः कृच्छ्रा	४८
स्वर्गे राज्यं ददामीति	१७१	हस्त हस्तेन ससृश्य	२६५	हे सुमीयं मुहूर्त्तं ते	३६७
स्वस्त्य हृत्पनया बुद्ध्या	२६७	हस्तप्रहस्तमद्गीरी	३७४	हेमदुग्धमोषमं गात्रं	३०१
स्वल्पमप्यङ्कितं पाप	१०	हस्तप्रहस्तसामन्ता-	३६६	हेमनानामणिराजः	२८८
स्वल्पेन मुहूर्त्तेन त्र-	७१	हा कष्टं देव कम्मात् त्व	२३६	द्विपमाणामय प्रेक्ष्य	२३८
स्वस्वरागमरि स्वस्त्या	३०५	हा फान्त इति कृञ्च	६१	हादनश्चपलश्चो-	३६५

अमाजनत्वं तु गतोऽसि शाठ्या-

द्धर्मस्य तेनाहमितो व्रजामि ॥ ७ ॥

अथास्य सरमसमपितमतिपिबृततदनमभिद्वन्तं बल्लभं श्वान तत्रागतमभिप्रदर्शयन्  
पुनरुवाच—अयं चात्र महाराज अमानुषः साक्षिनिर्देशो दृश्यताम् ।

अयं हि पूरं पटुचाटुकर्मा

भूत्वा मयि श्वा भ्रतोऽनुवृत्त्या ।

आकारगुत्पद्भतया त्विदानीं

त्पद्भानसूचा भयितैः करोति ॥ ८ ॥

त्वत्तः श्रुत किञ्चिदनेन नूनं

मदन्तरे भक्तिरिच्छित्कृत्स्नम् ।

अतोऽनुवृत्त ध्रुमिस्वनेन

त्वत्प्रीतिहेतोरनुजीवितृत्तम् ॥ ९ ॥

अथ स राजा तत्रत्यादेशास्त्रीडाननामितरदनस्तेन चास्य मतिनेपुण्येन समानर्जित-  
मतिर्जातसंगो नेदानीं शाठ्यानुवृत्तिरुवाच इति बोधिसत्त्वमभिप्रणम्योवाच—

त्वदाश्रया काचिदमूक्यैषा

सप्रस्तुता नः सदसि प्रगल्भैः ।

उपेक्षिता कार्ययशान्मया च

तश्चम्यतां निष्ठ च साधु मा गाः ॥ १० ॥

बोधिमत्त उवाच—नेत्र खल्वह महागज असन्नारप्रवृत्तत्वादक्षमया वा प्रणुचमानो  
गच्छामि । न त्वय महागज अयस्थानकाल इति न निष्ठामि । पश्यतु भवान् ।

निमग्नमानादपि ह्यनशोभे

यायां न सन्कारत्रिधौ स्वयं चेत् ।

सङ्गादगता जडतात्रशब्दा

नन्वर्धचन्द्राभिनयोत्तरः स्यात् ॥ ११ ॥

प्राप्तकर्मोश्च निश्चिरं तेन

यास्यामि नाप्रीत्यभिततचित्तं ।

एकानमानामिष्टता हि मयु

पूर्वोपकारा न समीभवन्ति ॥ १२ ॥

अश्लिग्धमायस्तु न पर्युपास्य-

न्तोपर्यिना शुष्क इयोदयान् ।